"मुंशी प्रेमचन्द के उपन्यासों में युगीन चेतना : पुनर्मूल्याँकन"

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी की पी-एच०डी० (हिन्दी)
उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध
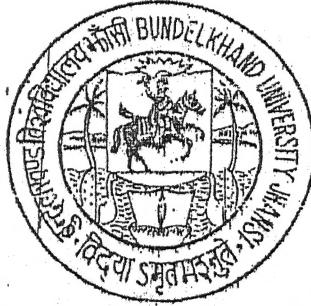
शोध-निर्देशिका
डॉ० (श्रीमती) मनोरमा अग्रवाल
रीडर, हिन्दी-विभाग

शोधार्थी
अनिल कुमार
एम०ए० (हिन्दी)

अनुसंधान केन्द्र
परास्नातक हिन्दी-विभाग
पं० जवाहर लाल नेहरू पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, बाँदा (उ०प्र०)

2008
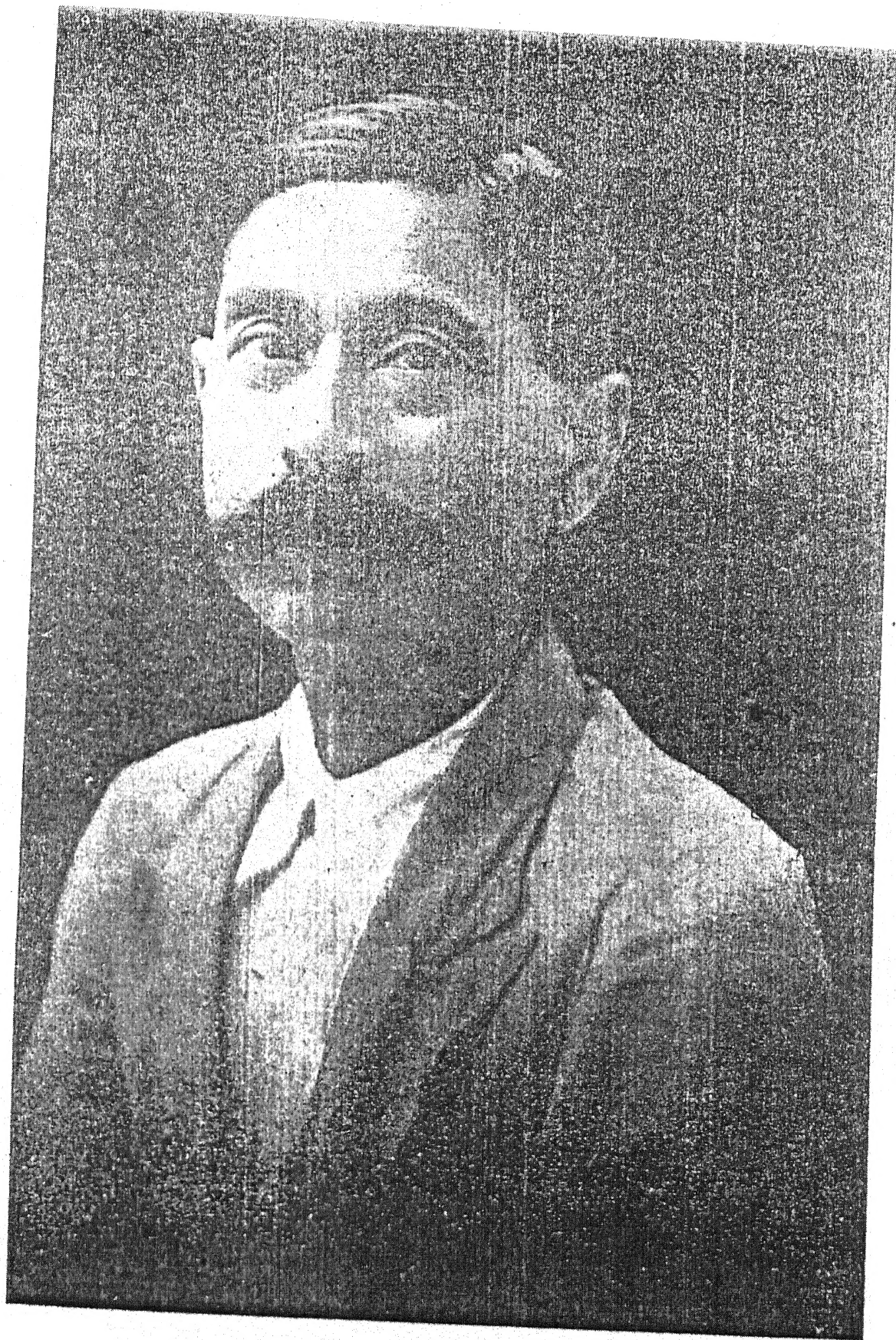
डॉ० मनोरमा अग्रवाल
एम० ए०, डी० फिल०
रीडर, हिन्दी विभाग,
पं० जवाहर लाल नेहरू पी० जी० कालेज, बाँदा

अदिति
बी-6, आवास विकास कालोनी,
सिविल लाइन्स, बाँदा (उ० प्र०)
दूरभाष : 05192-221557
दिनांक......1.9.2008......

प्रमाण–पत्र
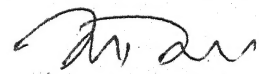
मै प्रमाणित करती हूँ कि अनिल कुमार पुत्र श्री चुन्नू प्रसाद ने बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी के अन्तर्गत हिन्दी विषय में डॉक्टर ऑफ़ फिलासफी की उपाधि हेतु "मुंशी प्रेमचन्द के उपन्यासों में युगीन चेतना : पुनर्मूल्यांकन" शोध प्रबंध विश्वविद्यालय की नियमावली के अनुसार निर्धारित अवधि में पूर्ण कर लिया है। इन्होनें मेरे निर्देशन में दो सौ दिन तक उपस्थित रह कर कार्य किया है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध अत्यंत श्रमपूर्वक लिखा गया है। जो नवीन एवं मौलिक चिंतन के साथ प्रस्तुत है।

शोध प्रबंध मूल्यांकन हेतु विश्वविद्यालय में प्रेषित करने की संस्तुति करती हूँ।

दिनांक-- 01.09.2008

शोध निर्देशिका

(डॉ० मनोरमा अग्रवाल)

प्राक्कथन

प्रेमचंद अपने युग का प्रतिनिधित्व करने वाले उपन्यासकार हैं। भारतीय समाज का ऐसा कोई पक्ष नहीं जिसपर प्रेमचंद की दृष्टि न पड़ी हो उनकी साहित्यिक चेतना उनकी मानवता की प्रतीक है। हिन्दी साहित्य जगत में प्रेमचंद के आगमन से पूर्व हिन्दी कथा साहित्य या तो केवल दिल बहलाव की वस्तु थी या फिर सामाजिक सुधारों के नारों का परचम उठाकर चलने वाला एक उपदेशक अथवा प्रचारक प्रेमचंद के भीतर के कथाकार को यह दोनों ही स्थितियाँ मान्य नही थीं क्योंकि साहित्य उनके लिए एक गम्भीर उत्तरदायित्व का नाम है उनके मतानुसार साहित्यकार को निजी जिन्दगी से नही सामाजिक जिन्दगी से सरोकार होना चाहिए उनकी इसी सोच ने साहित्य के प्रति उन्हे एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया।

प्रेमचंद की रचनाओं में उपलब्ध लोक काल्पनिक नही है यथार्थ है ठोंस है। प्रेमचंद मनुष्य को देवता बनाने के पक्ष में नही हैं मानवता के संरक्षण के लिए वे मनुष्य को मनुष्य ही बने रहने देना चाहते हैं वह उसे उसकी अपनी दुनिया अपनी जमीन पर स्थापित करना चाहते हैं वे किसी आलौकिक जगत के काल्पनिक स्वर्ग की कामना नहीं करते है वह इसी धरती पर एक ऐसे स्वर्ग की अवतारना के इच्छुक हैं जहाँ चहुँ ओर अमन और शान्ति हो जहाँ न्याय और समानता का साम्राज्य हो जनता हर प्रकार की गुलामी से आजाद हो जहाँ शोषण और अत्याचार से सबको मुक्ति मिले।

प्रेमचंद का साहित्य उनकी युग की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक हलचलों तथा गतिविधियों का प्रमाणिक दस्तावेज है। भारतीय साहित्य के माध्यम से भारतीय यथार्थ का परिचय पाने के लिए अन्यत्र कहीं जाने की आवश्यकता नही भारत भूमि के परिचयात्मक इतिहास की दृष्टि से प्रेमचंद साहित्य अपने आप में सम्पूर्ण है। युग चेतना की जैसी सम्यक

अभिव्यक्ति प्रेमचंद के कथा साहित्य में हुई उसकी तुलना हिन्दी के किसी अन्य साहित्यकार से करना सूरज को दिया दिखाने की बात होगी। प्रेमचंद साहित्य का अध्येता उनके साहित्य का अध्ययन करते समय इस सत्य के रूबरू होता है कि उनके साहित्य की जीवन्तता देशव्यापी संकटो तथा युगीन यथार्थ से जूझने का प्रतिफल है।

युग चेतना की दृष्टि से प्रेमचंद के उपन्यासों का सम्यक विवेचन करने के लिए आवश्यक है कि उनके उपन्यासों में आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, दार्शिनिक तथा शिल्पगत चेतना से सम्बन्धित सभी पक्षों का अध्ययन किया जाय। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में प्रेमचंद के उपन्यासों में युगीन चेतना का पुनर्मूल्यांकन इन्ही बिन्दुओं को दृष्टिगत रखते हुए करने का प्रयास किया गया है।

शोध प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में साहित्य, समाज और युग चेतना के सम्बन्ध को स्पष्ट किया गया है। परम्परा और पृष्ठभूमि युगचेतना के अविच्छिन्न अंग होते हैं जो साहित्य को वाणी प्रदान करते हैं अतः युग चेतना परम्परा और पृष्ठभूमि के अर्थ एवं महत्व को उद्घाटित किया गया है। साहित्यकार के निर्माण में युगीन परिस्थितियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए प्रेमचंद के जीवन व्यक्तित्व और साहित्य पर पड़ने वाले युगीन परिस्थितियों के प्रभाव का आंकलन युगीन पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में किया गया है।

द्वितीय अध्याय में उपन्यासकार और समाज के पारस्परिक सम्बन्ध की पड़ताल करते हुए देश में नवजागरण का सूत्रपात करने वाले तथा आधुनिक भारत के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान देने वाले धार्मिक आन्दोलनों का परिचय दिया गया है। प्रेमचंद के उपन्यासों में सामाजिक चेतना का अध्ययन करने के लिए वर्ण व्यवस्था के गर्भ से उत्पन्न अछूत समस्या के अन्तर्गत, अंत्यजों के साथ होने वाले पाशविक व्यवहार का विश्लेषण किया गया है।

प्रेमचंद ने इस समस्या के निदान हेतु अछूतोंद्वार आन्दोलन अछूत समस्या का समाधान, खानपान, शादी विवाह आदि का यथार्थ चित्रण कर अपने प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय दिया है। सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन में नारी की स्थिति का विश्लेषण करने के लिए समाज तथा परिवार में नारी की भूमिका तथा नारी से सम्बन्धित समस्याओं जैसे पर्दा प्रथा, दाम्पत्य जीवन में पति–पत्नी, विधवा समस्या, अनमेल विवाह, बहु विवाह, दहेज प्रथा, तलाक समस्या, अवैध प्रेम समस्या, वेश्या समस्या, नारी शिक्षा और स्वतंत्रता का वर्णन किया गया है। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासो में नारी तथा पुरूष को समानता के पथ पर आशीन कर सदियों से उपेक्षित भारतीय नारी को गौरवान्वित करते हए अपने मानवता वादी तथा प्रगतिशील विचारों का परिचय दिया है साथ ही नारी को समाज में समानता का अधिकार दिलाने के लिए नारी शिक्षा और स्वतंत्रता के महत्व को विश्लेषित किया है।

तृतीय अध्याय प्रेमचंद के उपन्यासों में चित्रित आर्थिक संचेतना से सम्बन्धित है अतः इस अध्याय में प्रेमचंद युगीन आर्थिक परिस्थितियाँ, आर्थिक संचेतना, समाज में व्याप्त आर्थिक वैषम्य, मानव जीवन में अर्थ की महत्ता जमींदार तथा महाजनों की शोषण प्रवृत्ति और उसके परिणाम स्वरूप उत्पन्न किसान जीवन की समस्याएँ, कृषि की दुर्व्यवस्था, निर्धनता और संयुक्त परिवार का अंत, आदि का अध्ययन करते हुए प्रेमचंद के उपन्यासों में चित्रित आर्थिक चेतना के स्वरूप को विश्लेषित किया गया है। चतुर्थ अध्याय में राजनीति और साहित्य के पारस्परिक सम्बन्धों पर प्रकाश ड़ालते हुए राष्ट्रीय और राजनीतिक चेतना का उदय, महायुद्ध और भारतीय राजनीतिक चेतना, गाँधीवादी नीति और काँग्रेसी सरकार, शासक वर्ग द्वारा शोषण एवं संघर्ष इत्यादि के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचंद के उपन्यासों में चित्रित राजनीतिक चेतना के स्वरूप का आंकलन किया गया है।

शोध प्रबन्ध के पंचम अध्याय में ''प्रेमचंद के उपन्यासों में सांस्कृतिक चेतना'' शीर्षक के अन्तर्गत सर्वप्रथम संस्कृति शब्द के अर्थ एवं महत्व को

स्पष्ट करते हुए संस्कृति और सभ्यता तथा साहित्य और संस्कृति के सम्बन्ध को विश्लेषित किया गया है तत्पश्चात प्रेमचंद के उपन्यासों में चित्रित सांस्कृतिक तत्वों के मूल्यांकन का प्रयास किया गया है।

षष्ठम अध्याय में प्रेमचंद के उपन्यासों में चित्रित दार्शनिक स्वरूप को निदर्शित किया गया है जिसमें उपन्यास साहित्य और दर्शन के विरोधी स्वरूप के साथ–साथ उनमें विद्यमान समानता पर भी प्रकाश ड़ाला गया है। इसके अतिरिक्त इसमें नियति शब्द की व्युत्पत्ति एवं अवधारणा का विवेचन किया गया है तथा प्रेमचंद की जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण का अध्ययन करते हुए प्रेमचंद के उपन्यासों में अभिव्यक्त दार्शनिक चेतना का निदर्शन किया गया है।

सत्तम् अध्याय में प्रेमचंद के उपन्यासों की शिल्पगत चेतना के विवेचन हेतु औपन्यासिक कला के प्रति प्रेमचंद के दृष्टिकोंण को जानने की चेष्टा की गयी है तथा प्रेमचंद के उपन्यासों में शिल्पगत के चेतना के स्वरूप उनके कथा शिल्प के वैशिष्ट की कथानक, पात्र और चरित्र–चित्रण तथा कथोपकथन शीर्षक के अन्तर्गत विवेचना की गयी है।

अष्ठम अर्थात शोध प्रबन्ध के अन्तिम अध्याय में निष्कर्ष स्वरूप प्रेमचंद के उपन्यासों में चित्रित विविध चेतनाओं का सिंहावलोकन प्रस्तुत करते हुए उनके उपन्यासों में युगीन चेतना के पुनर्मूल्यांकन का प्रयास किया गया है।

शोध कार्य के मार्ग में शोध विषय सम्बन्धी सामग्री की प्राप्ति एक दुष्कर पड़ाव है। किन्तु शोध का विषय जब प्रेमचंद जैसे महान साहित्यकार हों तो यह मार्ग थोड़ा सरल हो जाता है क्योंकि प्रेमचंद की विशिष्टता ने उन्हें इतना लोकप्रिय बना दिया है जिसके कारण उनके साहित्य का पर्याप्त अध्ययन हुआ है और अध्येयताओं, समीक्षकों एवं अनुसंधान कर्ताओं ने उनके

रचनात्मक साहित्य का मूल्यांकन करते हुए उन पर बहुत कुछ लिखा है। इस कारण प्रेमचंद से सम्बन्धित सामग्री पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है।

मैने अपने शोध विषय से सम्बन्धित सामग्री की प्राप्ति हेतु सर्वप्रथम पं० जवाहर लाल नेहरू, पी० जी० कॉलेज बांदा, बुन्देलखण्ड़ विश्व विद्यालय झाँसी पुस्तकालय, से सम्पर्क किया परन्तु प्रेमचंद की समग्र औपन्यासिक कृतियों का सामूहिक विवेचन करते हुए विविध क्षेत्रों में उनकी जागरूकता एवं प्रगतिशीलता का स्वतंत्र और पृथक रूप में व्यापक एवं सर्वांगीण अध्ययन मेरे शोध विषय का लक्ष्य रहा है। इस दृष्टि से एक ही स्थान पर समस्त सामग्रियों का उपलब्ध होना सम्भव नही था। इस समस्या के निराकरण के लिए मैं अपनी शोध निर्देशिका ड़ॉ (श्रीमती) मनोरमा अग्रवाल (रीड़र हिन्दी विभाग, पं० जवाहर लाल नेहरू, पी० जी० कॉलेज बांदा) का सदैव ऋणी रहूंगा। जिन्होने मुझे हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग का नाम सुझाया। क्योंकि हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, संग्रहालय में हिन्दी साहित्य से सम्बन्धित ज्ञानराशि का संचित अक्षय भण्ड़ार है। जहां मुझे प्रेमचंद के सम्पूर्ण साहित्य के साथ उनपर लिखी अनेकानेक समीक्षात्मक पुस्तकें उपलब्ध हो गई जो मेरे शोध कार्य के लिए पर्याप्त थी। परन्तु प्रेमचंद और उनके साहित्य के विषय में अधिक से अधिक जानने की जिज्ञासा ने मुझे इलाहाबाद के अन्य पुस्तकालयों की खाक छानने पर विवश किया। जिनमें पुस्तकालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद, हिन्दी विभाग, परिषद पुस्तकालय इलाहाबाद विश्वविद्यालय, पब्लिक सेन्ट्रल लाईब्रेरी अल्फ्रेड पार्क, स्टेट लाइब्रेरी नार्थ मलाका, भारतीय भवन पुस्तकालय, हिन्दुस्तानी आकादमी इलाहाबाद आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। परन्तु मैने अपनी यात्रा को यहीं विराम न देते हुए आचार्य नरेन्द्र देव लाइब्रेरी लखनऊ, तथा बनारस हिन्दू विश्व विद्यालय वाराणसी तक का सफर तय किया।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के पूर्ण होने पर मै इस शोध प्रबन्ध की निर्देशिका डॉ मनोरमा अग्रवाल जी के प्रति हृदय से अभारी हूँ। जिन्होंने इस शोध कार्य

में आने वाली कठिनाइयों को दूर करने में अपना पूर्ण सहयोग दिया तथा समय–समय पर अपने विद्वतापूर्ण सुझाओं के द्वारा मेरा मार्गदर्शन करते हुए कठिन कार्य को सहज बनाया। मेरे द्वारा किये गये इस कार्य का बराबर निरीक्षण करती रहीं साथ ही आवश्यकतानुसार उसमें यथोचित संशोधन भी करती रहीं। यह शोध प्रबन्ध ड़ॉ0 मनोरमा अग्रवाल जी की प्रेरणा तथा प्रोत्साहन का प्रतिफल है। जिसके लिए मैं उन्हें शत–शत नमन करता हूँ।

इस पावन पुनीत बेला पर मैं डॉ राम गोपाल गुप्त (हिन्दी विभागाध्यक्ष, पं0 जे0 एल0 एन0 पी0 जी0 कॉलेज बांदा) डॉ0 चंद्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' जी तथा ड़ॉ ज्ञान प्रकाश तिवारी जी (रीड़र हिन्दी विभाग, पं0 जे0 एल0 एन0 पी0 जी0 कॉलेज बांदा) के नाम को कदापि विस्मृति नहीं कर सकता जिन्होंने इस कठिन कार्य में संबल प्रदान करते हुए मुझे प्रोत्साहित किया। मैं अपने इन पूज्य गुरूजनों के प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ।

इस अवसर पर मैं श्रद्धेय ड़ॉ0 मुश्ताक अली (रीड़र हिन्दी विभाग इलाहाबाद, विश्वविद्यालय) तथा डॉ0 सरोज सिंह (रीड़र हिन्दी विभाग, सी0 एम0 पी0 ड़िग्री कॉलेज इलाहाबाद) के स्नेह का भी ऋणी हूँ जिन्होंने गुरूजनो की अनुपस्थिति में उनकी कमी का एहसास नहीं होने दिया और मेरी हर सम्भव सहायता की जिसके लिए मै सदैव उनका आभारी रहूंगा।

इस अवसर पर अपने पूज्य पिता श्री चुन्नू प्रसाद एवं पूज्यनीय माता जी की असीम अनुकम्पा को कोटि–कोटि नमन करता हूँ जिन्होंने इस शोध कार्य हेतु अपनी सहमति तथा बहुमूल्य आर्शीवाद प्रदान किया। इसके साथ मै अपने आदरणीय जीजा जी श्री गया प्रसाद तथा बहन श्रीमती जनक दुलारी का स्मरण करना भी आवश्यक समझता हूँ। जिन्होंने इस कार्य में मेरा पूर्ण सहयोग किया और किसी भी प्रकार की आर्थिक बाधा से मेरे इस कार्य को बाधित नहीं होने दिया। उनके ऋण से मैं कभी उऋण नहीं हो सकता।

इसी क्रम में मैं अपने अनुज शिवशंकर, अशोक, तथा भांजों राजीव, तथा संजीव का स्मरण करता हूँ जिन्होंने निरन्तर मेरा मनोबल बढ़ाया।

अपने समस्त ईष्टमित्रों में डॉ जूही के स्नेहमयी सहयोग को मैं कभी विस्मृत नहीं कर सकता जिन्होंने पग–पग पर मेरी सहायता करते हुए मेरे इस कार्य को गति प्रदान की तथा इसे पूर्णता की कगार पर पहुँचाने में अपना बहुमूल्य योगदान दिया। जिसके लिए जीवन पर्यन्त उनका ऋणी रहूँगा।

इस अवसर पर मैं हिन्दी साहित्य सम्मेलन की संग्रहाध्यक्षा श्रीमती साधना चतुर्वेदी के सहयोग के लिए उन्हें सादर धन्यवाद देता हूँ। साथ ही श्री बृजेश द्विवेदी, श्री रमेश पाण्डेय, जी और कुमारी पूर्णिमा दत्ता तथा घोष मैम, एवं श्री देवेन्द्र सिंह तथा यादव जी का हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने प्रेमचंद साहित्य से सम्बन्धित पुस्तकें यथा समय उपलब्ध कराके इस कार्य को मेरे लिए सुगम बनाया।

आदरणीय श्री एबाद अहमद सिद्धीकी, को स्मरण किये बिना आभार व्यक्त करने का यह क्रम अधूरा रह जाएगा। जिन्होंने समय–समय पर मेरा उत्साह वर्द्धन किया उनके स्नेह का मैं अभारी हूँ।

अन्त में मै इस शोध प्रबन्ध को सुव्यवस्थित रूपाकार प्रदान करने में श्री विनोद सिंह को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने इस शोध प्रबन्ध की कम्पोज़िन्ग का कार्य पूरी सतर्कता तथा तन्मयता से किया।

दिनांक 5-09-2008

स्थान–बांदा (उ० प्र०)

शोधार्थी

अनिल कुमार

(अनिल कुमार)

एम० ए० हिन्दी

अनुक्रमणिका

अध्याय– 1

युग चेतना स्वरूप और दृष्टि

युगचेतना एवं प्रेमचंद के उपन्यास

प्रथम अध्याय—युग चेतना स्वरूप और दृष्टि

अ – युग चेतना स्वरूप और दृष्टि

1– युगचेतना का अर्थ

2– युगचेतना का महत्व

3– परम्परा का अर्थ एवं महत्व

4– पृष्ठ भूमि का अर्थ एवं महत्व

5– परम्परा एवं पृष्ठभूमि में अंतर

6– युगचेतना का परम्परा एवं पृष्ठ भूमि से सम्बन्ध

ब – युगचेतना एवं प्रेमचंद के उपन्यास

1– युग चेतना एवं प्रेमचंद

2– साहित्य रचना में प्रेमचंद पर युगीन प्रभाव

3– प्रेमचंद एवं उनका युग

4– साहित्य के प्रति प्रेमचंद का दृष्टिकोण

5– प्रेमचंद के उपन्यास

प्रथम अध्याय– युग चेतना स्वरूप और दृष्टि–

अ – युग चेतना स्वरूप और दृष्टि

युग चेतना का अर्थ–

'चेतना' सजीव तथा निर्जीव के मध्य की वह विभाजक रेखा है जो जड़ से चेतन को पृथक करती है अर्थात 'चेतना' प्राणियों का वह गुण–धर्म है जो उन्हे जीवधारी सिद्ध करता है। यह मानव जाति में विद्यमान प्रकाश पुंज्ज की वह धारा है, जो उसमें अविरल प्रवाहित होती रहती है और उसे जीवित होने का बोध कराती है। 'चेतना' के द्वारा ही मनुष्य को अपने अस्तित्व का बोध होता है इसी के द्वारा देशकाल तथा वातावरण को समझने तथा उनका भली–भाँति मूल्याँकन करने में सक्षम होता है। मनोविज्ञान के अनुसार 'चेतना' के द्वारा ही मनुष्य को विभिन्न प्रकार की वे अनुभूतियाँ प्राप्त होती हैं जिनके अभाव में मानव मृतप्राय हो जाता है। हर्ष–विषाद, राग–द्वेष इत्यादि अनुभूतियाँ मानव में 'चेतना' के कारण ही उत्पन्न होती हैं। विज्ञान के अनुसार 'चेतना' वह अनुभूति है जो मस्तिष्क में पहुंचने वाले अभिगामी आवेगों से उत्पन्न होती है। यह मानव की वह आन्तरिक क्रिया है जो बाह्य क्रियाओं के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होती है। अर्थ की दृष्टि से 'चेतना' शब्द बड़ा व्यापक है। " 'चेतना' शब्द का प्रयोग बुद्धि, मनोवृत्ति, ज्ञानात्मक मनोवृत्ति, एवं चेतनता के अर्थ में किया जाता है"। [1] अंग्रेजी में 'चेतना' के लिए 'कॉन्शसनेस' 'शब्द' का प्रयोग होता है जिसका अर्थ है आन्तरिक 'चेतना' अर्थात जागरूकता। मनोविज्ञान 'चेतना' के सभी प्रकार के मानसिक अनुभवों का संग्रहालय कहता है। [2]

प्रसिद्ध मनोविश्लेषक फ्रायड ने मानव मन के तीन स्तरों का उल्लेख किया है– चेतन (Conscious) अवचेतन (Sub-Conscious) तथा अचेतन (Un-conscious) माना हैं। 'चेतना' का अपना एक स्वतन्त्र अस्तित्व होता है। यह मानव का सहज या प्रत्यक्ष अनुभव अथवा बोध है जो युगानुकूल परिस्थितियों के विषय में अपना निर्णय देते हुए उसका उचित मार्गदर्शन करता हैं–निरन्तर परिवर्तनशीलता अथवा गतिशीलता चेतना की प्रमुख विशेषताएँ हैं। विलियम जेम्स ने भी 'चेतना' को प्रवाह माना है। उसे गतिशील एवं निरंतर परिवर्तनशील बताया–उनके अनुसार, सचेतन विचार अनुभव का एक स्पष्ट आलोकित केन्द्र है

---

[1] हिन्दी शब्द सागर, सम्पादक श्याम – सुन्दर दास, तृतीय भाग पृ0 सं0 1576।

[2] इन्साइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइसेज, भाग, तृतीय, चतुर्थ, पेज–212

और उसके चारों ओर अन्य विचारों के ज्योर्तिवलय की धुधंली आभा लिपटी रहती है।[1] चेतना का क्षेत्र इतना विशाल होता है कि उसमें समस्त मानसिक प्रक्रियाएँ समाहित हो जाती है।

युग की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों के प्रति जागरूक होकर बौद्धिक स्तर पर उनसे सामंजस्य स्थापित कर लेना 'युग चेतना' है। 'युग– चेतना' वह शक्ति है जो किसी मनुष्य को उसके युग के तत्तकालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, दार्शनिक एवं वैज्ञानिक प्रवृन्तियों का ठीक–ठीक मूल्याँकन करने की क्षमता प्रदान करती है। यह शक्ति नैसर्गिक न होकर किसी मनुष्य में उसके युगीन परिवेश अथवा वातावरण के प्रभाव के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। एक सामान्य व्यक्ति अपने युग तथा वातावरण से प्रभावित होता है परन्तु इन प्रभावों की अभिव्यक्ति नहीं प्रदान कर सकता। परन्तु एक कवि या साहित्यकार अपने भीतर विद्यमान कलात्मक चेतना द्वारा युगीन परिस्थितियों से प्रभाव ग्रहण करके उसे अपने साहित्य में इस प्रकार संजोता है कि उसमें उसका युग साकार हो उठता है क्योंकि उसकी निर्मल चेतना समाज के प्रभावों को अत्यधिक गम्भीरता एवं शूक्ष्मता से ग्रहण करती हैं। काल की प्रवाहमयी पीठिका पर साहित्यकार की परिवर्तनशील अनुभूतियाँ युगचेतना कहलाती है अपने विकास के उत्कर्ष काल में यह चेतना व्यक्तिगत रूप से स्वतन्त्र होती है। वह समाज को प्रभावित कर सकती है तथा स्वयं उनसे प्रभावित होती है। जब कोई साहित्यकार अपने युग के सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक तथा धार्मिक स्वरूप को सम्यक् रूप से ग्रहण कर उन्हें अपने साहित्य में अभिव्यक्त करता है तो वह उसकी साहित्यिक युगचेतना कहलाती है। साहित्यकार अपने युग तथा वातावरण से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रेरणा ग्रहण करके जीवन के समग्र रूप को चित्रित करता है।

साहित्यिक युग चेतना की दृष्टि से यहाँ युगचेतना का प्रयोग काल विशेष के सन्दर्भ में किया जा रहा है। यथा भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, शुक्ल युग आदि। प्रत्येक युग विशेष की अपनी मौलिक चेतना हुआ करती है जो काल तथा समय के साथ परिवर्तित होती रहती है। युगचेतना द्वारा साहित्यकार अपनी साहित्य रूपी बधू का श्रृंगार करता है। सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव जो उसके

---

[1] **Clearly ligted center of experience surrounded by a region "bringe" or "halo" of other thoughts**
Leon ede. The Psychological Novel Page 20

मन–मस्तिष्क पर पड़ता है साहित्य उसी की कलात्मक अभिव्यक्ति का नाम है। ''साहित्य में केवल मानव समाज का चित्रण ही नही होता वरन् वह समाज को विकास तथा उन्नति के पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा भी प्रदान करता है। युग–चितेरे साहित्यकार की कृति में उसके युग की हलचलों को देखा तथा उस युग की धड़कनों को स्पष्ट रूप से सुना जा सकता है। क्योंकि वह भी अपने युग तथा समाज का अभिन्न अंग होता है। वह उनसे अपने को अलग नहीं कर सकता न ही उसका साहित्य युगीन भावनाओं एवं परिस्थितियों से भिन्न हो सकता है। ''साहित्य में मानवीय चेतना की प्रक्रिया और धरातल दोनों परिलक्षित होते हैं। प्रकृति, अन्य मनुष्य और उनके समुदाय, और अतींद्रिय जगत को मानव किस तरह देखता है, इसका स्पष्ट आभास उसके साहित्य में मिलता है। मानव की एक स्पष्ट परिकल्पना साहित्य में अंतर्निहित होती है। संस्कृति द्वारा परिभाषित मानव–जीवन के उद्देश्य तथा उनकी उपलब्धि के व्यक्तिगत और सामूहिक साधन को साहित्य में अभिव्यक्ति पाते है। इस अभिव्यक्ति के अनेक रूप होते हैं। आदर्श और औचित्य की व्याख्या सीधी उपदेशात्मक प्रणाली से भी की जा सकती है, किंतु साहित्य का मुहावरा बहुधा आदेश और प्रवचन की शैली से भिन्न होता है और वह अपने मंतव्य कलात्मक शैली में व्यक्त करता है। चौंका देने वाले चमत्कारी विचार–कण कभी–कभी मानव के भाव–जगत पर छा जाते हैं, किन्तु उनकी महत्ता अल्पजीवी होती है। मानव की चिरंतन समस्याएँ साहित्य का स्थायी आधार बनती हैं। साहित्य भी उन प्रक्रियाओं से प्रभावित होता है जिनसे मानव और उसके समाज को अपने परिवेश को समझने और उसके बारे में विचार करने की दृष्टि मिलती है। साहित्य में मनुष्य की जीवन–यात्रा के गंतव्य की विवेचना होती है और उन ध्येयों और मूल्यों को प्राप्त करने के साधनों की ओर भी इंगित रहता है जो मानव–जीवन को अर्थ और दिशा देते हैं''।[1] जैसा कि कहा जा चुका है कि साहित्यकार प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से अपने आस–पास के वातावरण तथा जीवन से प्रभाव अवश्य ग्रहण करता है। इस प्रक्रिया में उसका संवेदनशील हृदय दो रूपों में प्रेरणा ग्रहण करता है एक रूप तो वह होता है जब किसी घटना से प्रभावित होकर उसका यथार्थ रूप अपने मन मस्तिष्क में उतारकर अपनी कृति में उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति करता है दूसरा कोई ऐसी घटना जिससे वह क्रियात्मक रूप में प्रेरित नहीं होता वरन उस घटना की प्रतिक्रिया मात्र उसके हृदय में उत्पन्न होती है। इसका कारण यह है कि ऐसी घटनाओं के चित्रण को वह समाज के लिए घातक समझता है अतः उसका यथार्थ

---

[1] परम्परा इतिहास–बोध और संस्कृति–श्यामाचरण दुबे–पृष्ठ 154–155।

चित्रण करना उचित नहीं समझता और अपने साहित्य में उसकी आलोचना प्रत्यालोचना द्वारा एक नयी दिशा प्रदान करते हुए समाज को विकासोन्मुख होने की प्रेरणा देता है। ऐसे ही साहित्यकारों की रचनाएँ युग का प्रतिनिधित्व करने वाली होती है जिनमें युग–चेतना के स्वर को स्पष्ट रूप से सुना जा सकता है।

"युग–चेतना साहित्य का धर्म है। जब–जब साहित्य अपनी वास्तविक धर्म–भावना को छोड़कर धार्मिक, दार्शनिक, नैतिक, राजनीतिक प्रचार में लग जाता है, तब–तब उसका सौन्दर्य प्रेरित शरीर क्षत–विक्षत होता है। सच्चा साहित्य युग की यथार्थ पृष्ठभूमि से मुँह नहीं मोड़ सकता है; वह न तो युगवाणी की उपेक्षा कर सकता है और न कोलाहल की अवनी तज कर निर्जन सागरोर्मियाँ पसन्द करता है तथा न वह अम्बर के कानों में निश्छल प्रेम कथा कहने की कामना ही करता है"।"[1] युगीन–चेतना सम्पन्न साहित्यकार अपनी कृतियों में युग जीवन का यथार्थ चित्रण करते हुए जनमानस को एक नयी उर्जा तथा गति प्रदान करता है, समाज को एक नयी दिशा देता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि युग चेतना वह कड़ी है जो साहित्य तथा समाज को एक–दूसरे से सम्बद्ध करके उनके पारस्परिक सम्बन्धों को दृढ़ता प्रदान करती है।

---

[1] भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतना डा0 बैजनाथ प्रसाद शुक्ल पृष्ठ 1

युग चेतना का महत्व–

साहित्य चेतना के बिना प्राणहीन होता है। यदि चेतना साहित्य की आत्मा है तो युग चेतना उसके मंगलकारी नेत्रों की ज्योति जिसके द्वारा वह सारे संसार का सौन्दर्य आत्मसात् करता है। साहित्यकार का दायित्व है कि उसे व्यक्तिगत दृष्टिकोण से न देखकर सामाजिक दृष्टिकोण से देखे। साहित्य जो कि समष्टिगत चेतना की उपज होता है उसमें युग चेतना अनिवार्य रूप से समाहित होती है। युग और साहित्य अन्योन्याश्रित हैं यद्यपि साहित्यकार जीवन के विषय में स्वयं के विचारों तथा अनुभवों के आधार पर ही साहित्य की रचना करता है तथापि वह अपने जैसे असंख्य प्राणियों की सामूहिक अभिलाषा और भावनाओं को ही वाणी प्रदान करता है। समाज के सामूहिक कर्मो के द्वारा ही युग का निर्माण होता है जो साहित्य की प्रेरणा का आधार स्तम्भ है।

साहित्य के क्षेत्र में युगचेतना का स्थान सर्वोपरि होता है क्योंकि युग, साहित्यकार को साहित्य रचना के लिए उपजीवसामग्री प्रदान करता है। इस प्रकार कह सकते हैं कि "साहित्य युग चेतना से संश्लिष्ट होता है। युग की आध्यात्मिक, नैतिक और भौतिक प्रवृत्तियों की प्रतिक्रिया साहित्य में होती है, युग की आशा, आकांक्षा और आदर्श साहित्य में अभिव्यक्त होते है। अतः युग का प्रतिबिम्ब भी साहित्य में मिलता है"। [1] मनुष्य होने के नाते साहित्यकार भी समाज का अभिन्न अंग होता है। परन्तु साधारण मनुष्यों के मुकाबले में वह कहीं अधिक प्रतिभाशाली तथा चेतना सम्पन्न होता है इसी कारण उससे समाज की अपेक्षाएँ कहीं अधिक बढ़ जाती है समाज के प्रति उसका उत्तरदायित्व भी जन साधारण की तुलना में कहीं अधिक बढ़ जाता है कोई भी लेखक या साहित्यकार उस समय तक श्रेष्ठ नहीं बन सकता जब तक कि वह अपने समाज तथा युग के प्रति पूर्ण रूप से जागरूक न हो। युग का प्रतिनिधित्व करने वाले साहित्यकार का युग चेतना से सम्पन्न होना अनिवार्य होता है क्योंकि इसके बिना न तो उसे अपने युग की वास्तविक समस्याओं का ज्ञान होता हैं और न ही उनके प्रति समाज को जाग्रत करके उन समस्याओं के निराकरण के लिए उसे प्रेरित कर सकता है। "साहित्य तो वह कला है जो समाज में जागृति और स्फूर्ति लाए, जो जीवन की यथार्थ समस्याओं पर प्रकाश डाले"।[2] वस्तुतः महान साहित्यकार वही है जो

---

[1] भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतना–डा० वैजनाथ प्रसाद शुक्ल पृष्ठ 1

[2] प्रेमचंदः हंसः दिसम्बर, 1936 ई०।

अपने युग की आत्मा को आत्मसात करके अपनी कृतियों के द्वारा उसे अमर करता है। " युगचेता कलाकार की लेखनी युगचितेरी होती है, वह सुवर्ण के जाज्वल्यमान पदों से आवृत सत्य के मुंह को उघाड़ने में नहीं हिचकती है। स्पष्टतया साहित्य वह आईना है, जिसके समक्ष जाते ही तत्काल समाज की वास्तविक तस्वीर दिखाई दे जाती है। वह दर्पणगत प्रतिच्छवि का परावर्तन नहीं, प्रतिबिम्ब अवश्य है। जीवन के पुनस्सर्जनार्थ साहित्यिक सामाजिक परिवेश के जल का संचय कर अपनी भावनानुभूतियों के ताप में तपाकर युगचेतना के सहारे अमृतोपम वर्षा करता हैं, जिससे सामाजिकों का हृदय समान भाव से रससिक्त हो उठता है"।[1]

युग धर्म तथा सामाजिक परिस्थितियों के फलस्वरूप ही श्रेष्ठ साहित्य की रचना होती है। देशकाल तथा समाज में होने वाले परिवर्तनों का प्रभाव साहित्य पर स्पष्ट रूप से पड़ता है। एक प्रकार से वे साहित्य की रूपरेखा का निर्धारण करते हैं बदलते हुए समय के अनुसार साहित्य की मान्यताओं में भी युगानुकूल नवीन मोड़ आते रहते हैं–" अपने युग को साकार रूप में प्रस्तुत करने के लिए युग चेतना का अपना महत्व है इसकी सहायता से साहित्यकार, साहित्य में नये परिवेश एवं नये आयामों को आत्मसात् करते हुए प्रगतिशील भावभूमि पर जीवन की समग्र प्रतिच्छवि चित्रित करता है"। [2] अतः साहित्य में युग चेतना का अतिविशिष्ट तथा महत्वपूर्ण स्थान होता है कोई भी रचनाकर अपनी युगीन प्रभाव से अछूता नहीं रह सकता यही कारण है कि उसकी कृतियों में उसके युग की छटा स्पष्ट रूप से दिखायी देती है जो लेखक अथवा साहित्यकार अपने युग को अपनी कृतियों में जितनी सजीवता तथा समग्रता से समाहित करता है वह उतना ही विख्यात होता है तथा उसकी रचना युगों–युगों तक जीवित रहती है।

---

[1] भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना–डा0 बैजनाथ प्रसाद शुक्ल पृष्ठ 3

[2] भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना–डा0 बैजनाथ प्रसाद शुक्ल पृष्ठ 10

परम्परा का अर्थ एवं महत्व–

परम्परा मानव संस्कृति की वह प्रवाहमयी धारा है जिसमें भूतकाल से वर्तमान और वर्तमान से भविष्य तक एक निरंतरता बनी रहती है परम्परा युगों–युगों से मनुष्य के सामाजिक जीवन का अविभाज्य अंग रही है जिसके द्वारा उसे तथा उसके समुदाय को अपनी एक अलग पहचान मिलती है। परम्परा की व्यापकता इस बात से सिद्ध होती है कि मानव जीवन के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र से यह किसी न किसी रूप में सम्बद्ध रहती है धर्मशास्त्र, दर्शन, विज्ञान, न्याय, व्यवहार, कला, समाज, साहित्य एवं संगीत के क्षेत्र में परम्पराओं के विविध रूप दृष्टिगोचर होते हैं। परम्परागत आचार, संस्था, भाषा, वस्त्र, विधि, गीत एवं लोकवार्ताएँ सब परम्परा के विभिन्न रूप हैं।

अतीत समाज रूपी भवन का नींव होता है, मनुष्य वर्तमान में जीवित रहते हुए अपने भावी जीवन के विकास के लिए भविष्य को सवारने में चिंतारत रहता है–" परंपराएँ अतीत को वर्तमान और वर्तमान को भविष्य से जोड़ती है। उनके माध्यम से सामाजिक जीवन को निरंतरता मिलती है और उसका स्वरूप निर्धारित होता है। परंपराएँ हर समाज और उसके भिन्न समुदायों और समूहों की आत्म–छवि का अविभाज्य अंग होती है और जीवन के अनेक क्षेत्रों में उनका दिशा–निर्देश करती है"। [1] मनुष्य अपनी परम्पराओं का पूर्णरूप से त्याग नहीं कर सकता वरन जब कभी वे मानव के विकास की गति में अवरोध उत्पन्न करती है तब उन्हें धार्मिक तथा सामाजिक संस्थाओं एवं मूल्यों की असफलता का कारण मानकर उनमें परिवर्तन अवश्य किया जाता है। " परम्परा एक ऐसी सामाजिक विधि है, जिसमें सांस्कृतिक तत्व एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को विरासत के रूप में अबाध गति से प्राप्त होते रहते हैं अथवा अभौतिक संस्कृति उस सीमा तक परिवर्तित होती रहती है कि उसकी प्रतिष्ठा बनी रहे और फिर एक संस्था के रूप में विकसित होती है जहाँ एक वर्ग विशेष से आचार–व्यवहार, ज्ञान एवं विचार अनवरत रूप से प्रत्येक आने वाली पीढ़ी तक पहुँचते रहते हैं। इस प्रकार के परिवर्तन परम्पराएँ कहलाते हैं"। [2]

---

[1] परम्परा इतिहास–बोध और संस्कृति–श्यामाचरण दुबे पृ० सं० 22

[2] T" A Social Situtation Process in which elements of Cultural heritage are transmitted from generation to generation by contacts of Continuity or the non-material Cultural Contents so transmitted, having the prestige Sanction of antiquity. By extension, inan institution where personnel turns over more frequently than once a generation, practices ideas and lore transmitted over a series of such 'turns over' are called traditions"-Dictionary of sociology and related Sciences by henry pratt fairchild P. 322,

परम्परा भूतकाल से वर्तमान को तथा वर्तमान से भविष्य को श्रंखलाबद्ध करके मानव संस्कृति को गतिशीलता प्रदान करती है। यद्यपि परम्परा मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करती है तथापि यह आवश्यक नहीं है कि परम्परा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को समान रूप से प्रभावित करे धार्मिक आस्थाओं तथा रूढ़िगत परम्पराओं में परिवर्तन मंदगति से होते हैं सामाजिक संस्थाओं और व्यवहार के परम्पराओं के कुछ क्षेत्रों में धर्म की अपेक्षा परिवर्तन की गति अधिक तीव्र होती है जबकि साहित्य तथा अन्य कलाओं के क्षेत्र में नए–नए अनुसंधानों तथा नवीन विचारों से प्रभावित होकर परम्पराओं के शीघ्रता से परिवर्तित होने की सम्भावना अधिक होती है भाषा की परम्परा में अपेक्षा कृति तेजी से परिवर्तन होता है।

परम्पराएँ उस विशाल वृक्ष के समान होती है जिसकी जड़े युगों–युगों तक फैली होती है जिसे समय के चक्रवात भी नहीं उखाड़ सकते– " मनाव–जीवन के साथ परम्पराएँ अभिन्न रूप से जुड़ी रहती हैं। साहित्य भी परम्पराओं से मुक्त नहीं हो पाता, क्योंकि वह तो मानव जीवन की अनुकृति है, जो कि स्वयं परम्पराओं से ग्रस्त रहता है। परिस्थितियों के प्रभाव से परम्पराओं का स्वरूप बदलता रहता है। यदि कभी साहित्य की परम्परा अपने मूल रूप में अविश्वसनीय हो जाती है तो नये मूल्य शंका के सहारे चलने लगते है। ऐसे समय कोई भी ऐसी मान्यता नहीं रह जाती है जिसके सहारे साहित्य अग्रगामी हो सके। फलतः औचित्य के आदर्श च्युत हो अपनी सीमातिक्रमण करने लगते है, और साहित्य एवं काव्य में उच्छृंखलता का जन्म होता है। अस्तु, साहित्य एवं काव्य में औचित्य, मर्यादा एवं पूर्ववर्ती परिपाटी आदि को सुरक्षित रखने के लिए निर्विवाद रूप से परम्पराओं का अत्यधिक महत्व है"। [1] परम्पराएँ स्वतः निर्मित नहीं होती अपितु मानव का विवेक अतीत के अक्षय भण्डार में बिखरे पड़े परम्परा रूपी मोतियों का निर्वाचन अपनी युगानुकूल आवश्यकताओं के अनुसार करता हैं। परम्पराओं की अँधी भक्ति उनकी उपयोगिता को समाप्त कर उनकी शक्ति को तो क्षीण करती ही है इसके साथ ही साथ समाज के विकास के गति को अवरूद्ध करती है। यदि सहज विवेक और बुद्धि तथा सच्ची इतिहास दृष्टि से परम्पराओं का चुनाव करते हुए उन्हें एक नया आयाम दिया जाए तो वह समाज को विकास और आधुनिकीकरण की ओर ले जाने वाले इंजन की उर्जा सिद्ध हो सकती है।

---

[1] भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना डा0 बैजनाथ प्रसाद शुक्ल पृ0 13–14

पृष्ठभूमि का अर्थ एवं महत्व–

पृष्ठभूमि युग की आधारशिला होती है उसे युग की जननी कहना अतिश्योक्ति न होगा किसी भी युग की पृष्ठभूमि उस युग की निर्मात्री होती है वह उस भव्य सागर के समान है जिसमें युग रूपी नदी की असंख्य धाराएँ समाहित होती हैं। पृष्ठभूमि में युग के जीवंत चित्र विद्यमान होते हैं–" पृष्ठभूमि में युग अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ आसीन होता है। वह एक आधारपीठिका है जिसके सहारे साहित्यकार युग से परिचित होता है। परिस्थितियाँ देश–काल में परिवर्तन क्रम उपस्थित करती हैं। फलतः राष्ट्र की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, एवं आर्थिक दशाओं में एक आमूल परिवर्तन होता है, जिससे प्राचीन परम्पराएँ विनष्ट होती हैं और उसके स्थान पर वर्तमान के अनुसार उपयोगी–अनुपयोगी युगीन परिस्थितियाँ युग– पृष्ठभूमि बन जाया करती हैं"। [1]

किसी भी युग की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों को भली–भाँति जानने तथा समझने के लिए उस युग की पृष्ठभूमि से पूर्णतः परिचय अनिवार्य है। पृष्ठभूमि के ज्ञान के अभाव में युग का बोध होना असम्भव है। युगबोध साहित्यकार की आत्मा है जिसके बिना वह निष्प्राण होता है। एक साहित्य ही क्या मानव जीवन का प्रत्येक क्षेत्र पृष्ठभूमि से प्रभावित होता है–" किसी साहित्यकार, वैज्ञानिक, संगीतकार एवं दार्शनिक के निर्माण से युगीन पृष्ठभूमि अपना महत्वपूर्ण रोल अदा करती है"। [2] युग और पृष्ठभूमि एक–दूसरे के पूरक भी हैं और एक दूसरे पर आश्रित भी क्योंकि यदि पृष्ठभूमि युग की जन्मदात्री है तो युग की परिस्थितियाँ पृष्ठभूमि के प्राण तत्व–" युग एवं पृष्ठभूमि कार्य–कारण की तरह एक दूसरे से प्रगाढ़ रूप में जुड़े रहते हैं तथा साहित्य के व्यापक एवं विस्तृत क्षेत्र में इन्हें देखा जा सकता है। पृष्ठभूमि में, पृष्ठ यदि भूमि है तो युग वे शब्द है जो उस पृष्ठ पर लिखे जाते हैं। इसे युगीन परिस्थितियों की भूमिका भी माना जा सकता है। पृष्ठभूमि युग–चेतना को जन्म देती है, जो साहित्य की वाणी है"। [3]

---

[1] भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना डा0 बैजनाथ प्रसाद शुक्ल पृ0 14

[2] भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना डा0 बैजनाथ प्रसाद शुक्ल पृ0 15

[3] भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना डा0 बैजनाथ प्रसाद शुक्ल पृ0 15

पृष्ठभूमि का सीधा सम्बन्ध जिसके बीते हुए तथा आने वाले प्रत्येक क्षण से पृष्ठभूमि स्वभाविक रूप से सम्बद्ध होती है " गतिशील समाज में पृष्ठभूमि जल्दी ही बदल जाया करती है। साहित्यकार को वर्तमान से प्रेरणा ग्रहण कर तथा उससे सम्बन्ध स्थापित कर साहित्य–सृजन करना चाहिए, अन्यथा सच्चे साहित्य का सृजन नहीं हो सकता। साहित्यकार एक प्रयोगवादी व्यक्ति होता है, अतएव वह युगीन पृष्ठभूमि के अनुसार अपने प्रयोग व्यवहार में लाता है। वह साहित्य में नव्य प्रयोग पृष्ठभूमि के प्रति जागरूक होकर करता है। इसलिए साहित्यकार का सबसे बड़ा उत्तरदायित्व यह है कि वह पृष्ठभूमि के प्रति ईमानदार हो तथा जन–जीवन का यथार्थ चित्रण युगानुकूल प्रस्तुत करे। प्रत्येक सफल साहित्य–सर्जक युगचितेरा होता है, वह किसी भी दशा में युग– पृष्ठभूमि की उपेक्षा नहीं कर सकता"।[1] युगीन पृष्ठभूमि को दृष्टिगत रखे बिना किसी भी कलाकार की कैला का ठीक–ठीक मूल्याँकन नहीं किया जा सकता फिर चाहे साहित्य हो, संगीत हो, अथवा अन्य ललित कलाएँ। एक प्रकार से पृष्ठभूमि किसी कलाकार के लिए उस ठोस धरातल के समान है जिस पर चलकर वह अपनी साहित्य रूपी इमारत का निर्माण करता है।

[1] भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना डा0 बैजनाथ प्रसाद शुक्ल पृ0 15

परम्परा एवं पृष्ठभूमि में अंतर–

परम्परा तथा पृष्ठभूमि जीवन साथी के समान परस्पर एक सूत्र से बँधे होते है वे पृथक होते हुए भी एक दूसरे के पूरक होते है परन्तु दोनों के क्षेत्रों में पर्याप्त भिन्नता पाई जाती हैं। पृष्ठभूमि का क्षेत्र अत्यन्त विशाल तथा विस्तृत होता है जिसके अर्न्तगत किसी युग की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक आदि परिस्थियाँ समग्र रूप से पृष्ठभूमि में विद्यमान होती है इस प्रकार पृष्ठभूमि का सम्बन्ध युगीन इतिहास से होता हैं जो युग का बोध कराती हैं। परन्तु परम्पराओं का क्षेत्र सीमित तथा संकुचित होता है–" परम्परा न मिथक होती है न इतिहास। दोनों के तत्व उसमें घुले मिले होते हैं"। [1]

पृष्ठभूमि सदैव वर्तमान से सम्बद्ध होती है जबकि परम्परा की जड़े अतीत में विद्यमान होती हैं। पृष्ठभूमि युग का निर्माण करती हैं वह युग की सामाजिक, राजनीति, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक परिस्थिति का पूर्ण रूपेण बोध कराती है परम्पराएं किसी युग विशेष की सभ्यता एवं संस्कृति के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका तो अवश्य निभाती है परन्तु केवल उन्हीं के आधार पर पूरे युग को नहीं समझा जा सकता–" परम्पराएँ नष्ट होती रहती हैं, उनके स्थान पर नवीन परम्पराओं का आगमन होता है। परम्परा कभी–कभी प्राचीन प्रतिष्ठा के मोह में 'मीडियक्रेसी' की दाद पाने लग जाती है, क्योंकि परम्परा का जीवित अंश ही सप्राण नवीनतम मे घुल–मिल जाता है तथा बहुत सा हिस्सा काई की तरह सड़ जाता है या जंग चढ़ जाता है। इस प्रकार परम्परा जब रूढ़ि का रूप ग्रहण कर लेती है तो उसका साथ युगीन परिस्थितियों से छूट जाता है"। [2]

पृष्ठभूमि एक देशगत परिवेश है जो मानव के सम्पूर्ण जीवन को उसकी सभ्यता एवं संस्कृति पर अपना प्रभाव डालती है परन्तु " यह जरूरी नहीं है कि परम्परा जीवन के हर क्षेत्र में समान रूप से प्रभावी हो"। [3] पृष्ठभूमि का आधार युगीन यथार्थ होता है, परम्परा का आधार शास्त्र भी हैं, लोक भी, यही कारण है कि परम्परा आदर्शोन्मुखी होती है तथा पृष्ठभूमि यथार्थोन्मुखीं।

---

[1] परम्परा इतिहास–बोध और संस्कृति–श्यामाचरण दुबे पृ0 सं0 24

[2] भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना डा0 बैजनाथ प्रसाद शुक्ल पृ0 16

[3] परम्परा इतिहास–बोध और संस्कृति–श्यामाचरण दुबे पृ0 सं0 16

युग चेतना का परम्परा एवं पृष्ठभूमि से सम्बन्धः–

युग की आध्यात्मिक, नैतिक और भौतिक प्रवृत्तियों की प्रतिक्रिया का नाम साहित्य है जिसमें युग के उतार चढ़ाव उसकी आशाएँ, आकाँक्षाएं और आदर्श परिलक्षित होते हैं साहित्य मनुष्य की व्यक्तिगत चेतना तथा जीवन चेतना का प्रतिफल होता है––"साहित्य में मानवीय चेतना की प्रक्रिया और उसका धरातल दोनों परिलक्षित होते हैं। प्रकृति, अन्य मनुष्य और उनके समुदाय, और अतींद्रिय जगत को मानव किस तरह देखता हैं, इसका स्पष्ट आभास उसके साहित्य में मिलता है। मानव की एक स्पष्ट परिकल्पना साहित्य में अंतर्निहित होती है।– – – मानव की चिरंतन समस्याएँ साहित्य का स्थायी आधार बनती हैं। साहित्य भी उन प्रक्रियाओं से प्रभावित होता है जिनसे मानव और उसके समाज को अपने परिवेश को समँझनें और उसके बारे में विचार करने की दृष्टि मिलती है। साहित्य में मनुष्य की जीवन–यात्रा के गंतव्य की विवेचना होती है और उन ध्येयों और मूल्यों को प्राप्त करने के साधनों की ओर भी इंगित रहता है जो मानव–जीवन को अर्थ और दिशा देते हैं। साहित्य समाज का दर्पण मात्र नही होता है। उसमें समाज की परंपरा, जीवन–दृष्टि और दर्शन, तथा समसामयिक यथार्थ और चिंताएँ तो अभिव्यक्ति पाती ही हैं, उसमें समाज की विकृतियों और विसंगतियों के चित्रण के साथ भविष्य का पूर्वाभास और दिशा–संकेत भी होता है"। [1]

यह सत्य है कि साहित्य युगीन चेतना की उपज होता है परन्तु साहित्य निर्माण में परम्परा तथा पृष्ठभूमि का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है अतः युगचेतना, परम्परा और पृष्ठभूमि में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। वे साहित्यरूपी माला के मोती है। तीनों में से यदि किसी एक मोती को भी अलग कर दिया जाय तो माला टूट कर बिखर जायेगी। साहित्य को पोषक खाद्य समाज से प्राप्त होता है दूसरे शब्दों में साहित्य स्वयं एक सामाजिक उत्पादन है। यही कारण है कि वह मानवीय परम्पराओं से अबाध रूप से सम्बन्धित है साहित्य परम्पराओं की अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है जिसके द्वारा परम्पराएँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचती हैं साहित्य परम्पराओं पर टिप्पणी भी करता हैं और उनका मूल्याँकन भी यह प्रक्रिया परम्पराओं को एक नया जीवन तो प्रदान करती ही है। साथ ही साथ साहित्य को भी गतिशीलता प्रदान करती है। साहित्य की यह आलोचनात्मक प्रवृत्ति युगीन चेतना का विस्तार करने में सहायक सिद्ध होती हैं "

[1] परम्परा इतिहास–बोध और संस्कृति–श्यामाचरण दुबे पृ० सं० 154 / 155

साहित्य का राजमार्ग परम्परा और पृष्ठभूमि द्वारा निर्मित हुआ करता है, वह परम्पराओं की न तो उपेक्षा करता है और न पृष्ठभूमि से सम्बन्ध ही तोड़ता है। ———————परम्परा का प्रवाह अविरल गति से अग्रगामी रहता है, किन्तु युग–पटल पर परिस्थितियाँ सतत उसके स्वरूप को परिवर्तित कर पृष्ठभूमि का निर्माण करती हैं। ——————— परम्परा का वह अंश जो युग से सम्बन्ध स्थापित कर पृष्ठभूमि की भूमिका बनता वह परवर्ती साहित्यिकों का मार्ग प्रशस्त करता है''। [1]

यह सत्य है कि परम्परा को न तो दमित किया जा सकता और न ही उसकी उपेक्षा की जा सकती है परन्तु परम्पराएँ मानव निर्मित होती हैं अपनी आवश्यकतानुसार अनुकूल तत्वों का चुनाव कर वह उन्हें आकार देता है फलतः बदलते हुए समय में मानव की आवश्यकतानुसार वे परिवर्तित होती रहती है। साहित्य चूँकि मानव की जीवन यात्रा उसकी अनुभूतियों, उपलब्धियों तथा उसके निरंतर, संघर्ष मय जीवन का लिखित दस्तावेज होता है अतः उसमें परम्परा की अभिव्यक्ति तथा व्याख्या भी अनिवार्य रूप से होती है किन्तु साहित्य और '' कला की शाश्वत धारा परस्पर–विरोधी मार्गो से बहती है। कभी तों वह परम्परा के आधार को स्वीकार करती है और कभी मुक्त होकर क्रान्तिकारी हो जाती है। यह मानव–स्वाभाव की विशेषता है कि कभी उसे प्राचीन प्रवृत्तियों के अनुकूल चलना प्रिय लगता है और कभी वह दोनों को अपनाकर समन्वय करता है और इसी में उसे आनन्द आता है। [2] पृष्ठभूमि का वर्तमान से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है मानव की परिवर्तनशील प्रवृत्ति इसके लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी है उसकी यह परिवर्तनशीलता उसके साहित्य में भी परिलक्षित होती है जिसके परिणामस्वरूप–'' परिस्थितियों के प्रभाव से साहित्य मार्ग बदलता रहता है। राष्ट्र की राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक क्रान्तियाँ प्राचीन परम्पराओं को विनष्ट कर नई पृष्ठभूमि निर्मित करती हैं, जिसकी अपनी परिस्थितियाँ होती हैं और उन परिस्थितियों के अनुकूल–प्रतिकूल युगचेतना साहित्य सर्जक ग्रहण करता हैं तथा कलावरण द्वारा युगाभिव्यक्ति करता है। हिन्दी साहित्य का अवलोकन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि एक युग– पृष्ठभूमि वह थी जब वीर रस से परिपूर्ण रचनाओं का सृजन होता था। उस युग में युगीन सांस्कृतिक चेतना एवं सामाजिक चेष्टाओं की पूर्णाभिव्यक्ति हुई है। मुस्लिम आक्रमणकारियों के अत्याचारों तथा उससे उत्पन्न हुई सामाजिक व्यवस्था और रक्षा की भावना के प्रतिक्रिया स्वरूप युग ने मोड़

---

[1] भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना डा0 बैजनाथ प्रसाद शुक्ल पृ0 17

[2] जान लिविंग्स्टन–लेविस कन्वेन्शन एण्ड रवोल्ट इन पोयट्री, पृ0 87

खाई, परिस्थितियाँ बदली, पृष्ठभूमि परिवर्तित हुई और युग चेतना भी इस प्रकार भक्तिकाल का आगमन और इस युग में पुनर्निमाण की शक्तियों का उदय होता है। इसके बाद सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में युगीन परिस्थितियों में परिवर्तन होता दीख पड़ता है। इस युग में भोग विलास के साम्राज्य में रीति–ग्रन्थों का सृजन हुआ और संस्कृत साहित्य की रीति शास्त्रीय परम्पराओं का पुनः अनुकरण किया गया। अतएव यह साहित्य परम्परामुक्त नहीं परम्परा भुक्त है। ------ इस प्रकार प्राचीन साहित्य से लेकर अद्यतन साहित्य के अनुशीलन से ज्ञान होता है कि परम्पराएं पृष्ठभूमि बदल दिया करती हैं और पृष्ठभूमि युग चेतना को जन्म देती है"।[1]

साहित्य में मानव की जीवन शैली तथा उसके अनुभवों एवं अनुभूतियों को, युगीन पृष्ठभूमि कौं दृष्टिगत रखते हुए चित्रित करने की परम्परा युगों से चली आ रही है। लेखक अपने समाज का अभिन्न अंग होता है अत्यधिक संवेदनशीलता एवं दूरदर्शिता उसकी प्रतिभा को निखार कर सामान्य मनुष्य, से अलग उसे एक विशिष्ट स्थान दिलाती है परन्तु इसका तात्पर्य कदापि नहीं है कि वह जन–साधारण से तथा अपने परिवेश से कटकर रहता हैं–"सच तो यह है कि लेखक और उसके परिवेश के सावयवी संबंध होते हैं, वह सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण से बहुत कुछ ग्रहण करता है और साथ ही थोड़े बहुत अंशों में उन्हें प्रभावित और परिवर्तित भी करता है। यदि लेखक अपने आपको व्यापक सामाजिक संदर्भ से काट लेता है तो उसकी रचना में कला भले ही रहे, जीवन का स्पंदन नहीं होता। वर्ग या समुदाय का संकुचित घेरा उसे समाज के सर्वभौम सत्यों से साक्षात्कार नहीं करने देता। साहित्य में परम्परा की अभिव्यक्ति और व्याख्या होती है और उसके माध्यम से इन परंपराओं को स्थायित्व भी मिलता है। साथ ही, साहित्य इन परंपराओं का मूल्यांकन करता है और सतत् नये अर्थो और प्रयोंजनों की खोज भी। ये प्रयत्न स्थितियों की नयी व्याख्या को जन्म देते हैं। इन व्याख्याओं में होने वाले परिवर्तन मानव की विचार–प्रक्रियाओं को एक नया आधार देते हैं"।[2]

साहित्य और परम्परा का परस्पर चोली–दामन का साथ है अतः साहित्य स्वयं को परम्परा से विलग नहीं कर पाता परन्तु जैसे–जैसे मानव चेतना

---

[1] भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना डा० बैजनाथ प्रसाद शुक्ल पृ० 17–18

[2] परम्परा इतिहास–बोध और संस्कृति–श्यामाचरण दुबे पृ० सं० 155

विकसित होती है और उसके आलोक में समाज में विभिन्न परिवर्तन होते हैं वैसे–वैसे वह परंपराएँ जो समाज के लिए उपयुक्त नहीं होती विनष्ट होती रहती हैं और उनके स्थान पर नयी–नयी परम्पराओं का जन्म होता है। युग चेतना सम्पन्न साहित्यकार अपने युग के साथ कदम से कदम मिलाकर चलते हुए अपने साहित्य में समाज का यथार्थ चित्रण करते हैं अतः वह भी इन परिवर्तनों की सहजतापूर्वक स्वीकार करते हुए प्राचीन परम्पराओं से विद्रोह करता है उसका यह विद्रोह साहित्य में युगान्तर प्रस्तुत करता है। परन्तु जैसा कहा जा चुका है कि साहित्य और परम्परा का सम्बन्ध अटूट है कोई भी साहित्यकार परम्परा से कट कर नहीं रह सकता। क्योंकि साहित्य समाज से संशलिष्ट होता है और परम्पराएँ मानव समाज के सामूहिक अस्तित्व का अभिभाज्य अंग होते हैं अतएव वह समाज की नवीन परम्पराओं को आत्मसात् करते हुए समसामयिक परिस्थितियों के आधार पर अपने साहित्यिक धरातल पर निर्माण करता है–"परम्परा और पृष्ठभूमि साहित्य–रथ के दो पहिए हैं। इनमें से किसी एक के अभाव में रथ चल नहीं सकता, घिसट अवश्य सकता है। इस रथ का सारथी युगचेतना है, जो साहित्यकारों को गति प्रदान करती है। परम्परा के ग्रहण किए बिना सत्काव्य–सृजन करना कठिन है। यही कारण है कि युग–प्रतिनिधि कलाकार जहाँ अतीत से कुछ ग्रहण करता हैं वहीं वह वर्तमान के प्रति जागरूक अवश्य रहता है। परम्पराएँ वर्तमान में साहित्यकार को प्रेरणा प्रदान करती है, सुमार्ग दर्शन देती हैं, युग के प्रति उदार बनाती हैं, भविष्य के लिए अभिनव आशा–संचार करती हैं और देती हैं अद्भुत शक्ति"।[1] परम्परा मानव द्वारा निर्मित भी होती है और मानव की आवश्यकता अनुसार अनुकूलित भी होती रहती हैं अतः वह समय–समय पर परिवर्तित होती रहती है और यही परिवर्तनशीलता उनकी जीवनदायनी शक्ति हैं क्योंकि इसके अभाव में वे बदलते हुए युग तथा परिवेश के साथ ताल–मेल स्थापित न कर पाने की दशा में मृतप्राय हो जायेंगी।

युग प्रतिनिधि साहित्यकार वह होता है जो अपने साहित्य में अतीत और वर्तमान के मध्य सामंजस्य स्थापित करता हैं क्योंकि इसी के द्वारा वह समकालीन समस्याओं का ध्यान केन्द्रित करते हुए उनके सम्बन्ध में सामूहिक चेतना का विस्तार करता है। "साहित्यकार का सबसे बड़ा उत्तरदायित्व समाज के प्रति है, जिसके निर्वाह के लिए यह आवश्यक है कि वह युगचेतना से अभिज्ञ हो तथा परम्परा एवं पृष्ठभूमि में समन्वय स्थापित करे। संक्षेप में कहा जा सकता है कि

---

[1] भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना डा0 बैजनाथ प्रसाद शुक्ल पृ0 18 / 19

परम्परा मुक्त पृष्ठभूमि से विलग तथा युगचेतना से वंचित कोरी–कल्पना के आधार पर सृजित साहित्य खजूर में लटके उस फल की तरह है जो न ठोस धरती के हीं निकट है और न अम्बर के। अतएव इस प्रकार के साहित्य का न कोई शाश्वत महत्व होता है और न सामयिक मूल्य। महान् साहित्यकार का साहित्य युग चेतना के माध्यम से परम्परा और पृष्ठभूमि दोनों से प्रगाढ़ाबद्ध रहता है। वह परम्परा से भले ही पीछा छुड़ाने का प्रयास करे, पर पृष्ठभूमि से मुक्त नहीं हो सकता है"। [1] साहित्य स्वायत्ता के कितने ही दावे क्यों न करे परन्तु प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से साहित्य निर्माण में परम्परा एवं पृष्ठभूमि की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

[1] भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों मे युगचेतना डा0 बैजनाथ प्रसाद शुक्ल पृ0 20

ब–युगचेतना एवं प्रेमचंद के उपन्यास

युग चेतना एवं प्रेमचंद–

किसी भी रचनाकार की रचना का उचित मूल्यांकन उन परिस्थितियों को दृष्टिगत रखकर ही किया जा सकता है जिनके मध्य उसने अपना जीवन व्यतीत किया है क्योंकि व्यक्ति और समाज का घनिष्ट सम्बन्ध है और साहित्यकार भी अपने समाज का एक अत्यन्त जागरूक एवं चेतना सम्पन्न प्राणी होता है अतः उसके व्यक्तित्व पर युगीन परिस्थितियों का प्रभाव पड़ना स्वभाविक है जिनमें वह जीवन यापन करता है यह बात निर्विवाद रूप से कही जा सकती है कि किसी युग विशेष की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियाँ ही साहित्यकार को साहित्य सृजन के लिए प्रेरित करती हैं। इसके अतिरिक्त साहित्यकार एक अति संवेदनशील प्राणी होता है। अपनी इसी संवेदनाशीलता के कारण वह अपने युग की छोटी बड़ी घटनाओं से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता उसकी संवेगानुभूति उसके मन को इतना उद्वेलित करती है कि अपनी भावनाओं को हृदय में दबा कर रखना उसके लिए असम्भव हो जाता हैं और उन्हें वह साहित्य के रूप में अभिव्यक्ति प्रदान करता है। दूसरे शब्दों में साहित्यकार–"एक सामाजिक प्राणी है जो समाज में जन्म लेता है, विकास पाता है और समाज में ही उसकी जीवन–गाथा का अन्त होता है। अतएव वह अपने को समाज से अलग नहीं कर पाता है उसकी कल्पना का सतरंगी वर्णपट समाज रूपी प्रिज्म पर युग चेतना के प्रकाश पुंज द्वारा निर्मित होता है। सामाजिक तत्वों का जो प्रभाव अन्तःकरण पर पड़ता है, वहीं साहित्य के रूप में अभिव्यक्त होता है"। [1] युग चेतना साहित्यकार की कृतियों में उसके युग की धड़कनें समाहित होती है। प्रेमचंद का सम्पूर्ण साहित्य इस बात का द्योतक है।

प्रेमचंद का युग संघर्षो और क्रान्तियों का युग था। देश में चारों ओर असंतोष और अव्यवस्था का साम्राज्य था भारतवर्ष की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक व्यवस्था पूर्णत छिन्न–भिन्न हो चुकी थी। विदेशी शासन की दासता ने भारतवासियों के सोचने–समझने की शक्ति तक छीन ली। ग्राम्य व्यवस्था जो कि देश की अर्थव्यवस्था की नींव थी पूरी तरह नष्ट हो चुकी थी। धर्म का स्वरूप विकृत हो चुका था अब वह केवल व्यर्थ के रीति–रिवाज आडम्बर

---

[1] भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना डा0 बैजनाथ प्रसाद शुक्ल पृ0 2

और पाखण्ड तक सीमित होकर रह गया था। चारों ओर अंधविश्वास, अज्ञानता, अशिक्षा, पराधीनता और पतन का घोर अंधकार छाया हुआ था। एक तरफ तो देश को अंग्रेजी शासन से मुक्त कराने का प्रयास चल रहा था, दूसरी ओर भूख, गरीबी और शोषण से त्रस्त जनसमूह था जिन्हें विदेशियों के साथ मिलकर अपनों ने लूटा था। यूरोप में उठने वाली नव–जागरण और औद्योगिक क्रान्ति की लहर ने भारत को भी प्रभावित किया जिसके परिणामस्वरूप देशवासियों को अन्यायपूर्ण आर्थिक विषमता का बोध हुआ। जिसने उनके मन में बिट्रिश शासन के प्रति विद्रोह की अग्नि प्रज्ज्वलित कर दी थी और प्रत्येक भारतवासी देश को अंग्रेजों के चंगुल से मुक्त कराने के लिए प्राणों की बाजी लगाने के लिए उद्यत हो गया। देश की स्वतन्त्रता के लिए संघर्षरत भारत माँ के कितने ही वीर सपूत अंग्रेजों की गोलियों का शिकार हो वीरगति को प्राप्त हुए जिसमें जनता में व्याप्त असंतोष मे और भी वृद्धि कर दी। ऐसे में जलियाँवाला बाग के जघन्य नरसंहार ने विशेष रूप से भारत के युवा पीढ़ी के मन में बिट्रिश सरकार के विरूद्ध विद्रोह की ज्वाला को प्रचण्ड रूप दे दिया और वे क्रान्तिकारी दलों की स्थापना कर स्थान–स्थान पर हिंसक प्रदर्शन कर रहे थे।

प्रेमचंद युगीन भारत राजनीतिक पराधीनता के साथ–साथ सामाजिक रूढ़ियों एवं मूल्यहीन परंपराओं के चक्रव्यूह में फँसा हुआ था। विशेषकर जिसका सबसे भयंकर परिणाम ग्रामीण जनता को भुगतना पड़ रहा था जो आर्थिक रूप से तो जर्जर थी ही। बाल विवाह, बहु विवाह, अनमेल विवाह, नारी शोषण, बेगार प्रथा एवं भ्रष्टाचार ने जन साधारण के जीवन को बर्बाद कर रखा था।

किसी भी व्यक्ति को अपनी पतनोन्मुखता का बोध हो जाना उसके भीतर जाग्रत होने वाली चेतना का द्योतक है। भारतवासियों में एक समूह ऐसे प्रबुद्ध नागरिकों का भी था जो अपने देशवासियों की दीनता से पूरी तरह परिचित था और उन्हें पतन के इस गर्त से बाहर निकालना चाहता था अतएव इन जागरूक प्राणियों ने राष्ट्र और समाज के उद्धार के लिए समाज सुधार का निश्चय किया।

भारतीय इतिहास में उन्नीसवीं शताब्दी का विशेष महत्व है। क्योंकि यह वह समय था जब भारत भूमि पर ऐसी महान विभूतियां अवतरित हुई जिनका जीवन जनसाधारण के लिए प्रेरणा का स्रोत बना जिनकी देशभक्ति कर्मठता एवं कर्तव्यपरायणता के आलोक में जनता को अपनी तथा अपने देश तथा समाज की वास्तविक स्थिति का ज्ञान हो। यद्यपि देश अंग्रेजी शासन से अभी तक मुक्त नहीं

हो पाया था तथापि इस काल को भारत के नवजागरण का काल कहा जा सकता है। क्योंकि इस समय देशभर में चलाए जाने वाले धर्म तथा समाज सुधार आन्दोलनों ने जनता में धार्मिक, सामाजिक तथा वैचारिक चेतना का संचार किया। इसके अतिरिक्त नई शिक्षा प्रणाली विज्ञान के क्षेत्र में होने वाले नवीन अनुसंधान और नये–नये आविष्कारों तथा प्राचीन साहित्य के अध्ययन में भारतवासियों के हृदय में एक नई स्फूर्ति भर दी। जिसके फलस्वरूप धार्मिक तथा सामाजिक विकृतियों को दूर कर एक स्वस्थ समाज की स्थापना का प्रयास किया जाने लगा। भारतवर्ष में इस नव जागरण का प्रथम उद्घोष राजा राममोहन राय तथा स्वामी दयानन्द सरस्वती ने किया, तदुउपरान्त रामकृष्णपरमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, लोकमान्य तिलक, श्रीमती एनीबेसेन्ट, रवीन्द्रनाथठाकुर, महात्मा गाँधी, योगी अरविन्द, रमनमहर्षि इत्यादि मे नव जागरण की इस परम्परा को आगे बढ़ाते हुए इस क्षेत्र में सराहनीय योगदान दिया।

इस युग में जीवन के हर क्षेत्र में वर्ग संघर्ष व्याप्त था। सामंती व्यवस्था से पूँजीवादी व्यवस्था की प्रत्यक्ष टक्कर थी। पूँजीवादी व्यवस्था का सामंती व्यवस्था पर आधिपत्य स्थापित हो रहा था। जमींदार के विरूद्ध कृषक और उद्योगपतियों के विरूद्ध मजदूर संगठित हो रहे थे। सवर्णो के अत्याचार और अन्याय और विरोध में अछूतों का संघर्ष नवीन चेतना के आलोक में प्राचीन और अर्वाचीन मान्याताओं और परम्पराओं के मध्य होने वाले संघर्ष। ऐसे तीव्र संक्रान्ति काल में प्रेमचंद का आविर्भाव हुआ।

एक संवेदनशील, जागरूक तथा युगचेता साहित्यकार होने के नाते प्रेमचंद अपने युगीन वातावरण की प्रत्येक गतिविधियों तथा देशभर में चल रहे आन्दोलनों से प्रभावित होना स्वाभाविक था इस सम्बन्ध में स्वयं प्रेमचंद जी का यह कथन दृष्टब्य है–" साहित्यकार बहुधा अपने देशकाल से प्रभावित होता है। जब कोई लहर देश में उठती है, तो साहित्यकार के लिए उससे अविचलित रहना असंभव हो जाता है। उसकी विशाल आत्मा अपने देश बंधुओं के कष्टों से विकल हो उठती है और इस तीव्र विकलता में वह रो उठता है, पर उसके रूदन में भी व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक रहता है"। [1]

---

[1] कुछ विचार जीवन में साहित्य का स्थान–प्रेमचंद–लेख पृ0 95

हिन्दी साहित्य में प्रेमचंद युग प्रवर्तक साहित्यकार के रूप में जाने जाते है। युग प्रवर्तक इस दृष्टि से कि उन्होंने पूर्ववर्ती लेखन परम्परा को एक नया मोड़ देते हुए उसे एक नई दिशा प्रदान की। प्रेमचंद के पूर्व का कथा साहित्य कल्पना, अवास्वविकता, मनोरंजन, कौतूहल एवं रहस्यमयता से परिपूर्ण था जिसका मुख्य उद्वेश्य लोगो का मनोरंजन करना मात्र था। इस प्रकार के साहित्य ने हिन्दी पाठको की एक बहुत बड़ी संख्या को अपने मोहपाश में बाँध रखा था जादूई, चमत्कारों, जासूसी हथकंडों, प्रेमी–प्रेमिका के किस्सों तथा अपराध जगत के सनसनी पूर्ण वृतांत से सुसज्जित होने के कारण ही इस प्रकार के कथा साहित्य की लोकप्रियता इतनी बढ़ गई थी कि कितने ही लोगों ने केवल इन्हें पढ़ने के लिए हिन्दी भाषा सीखी। देवकी नंदन खत्री और गोपालगहमरी इस परम्परा के प्रर्वतकों में थे।

प्रेमचंद साहित्य को जीवन–जगत के निकट लाने के लिए उसे कल्पना जगत से निकाल कर उसका रिश्ता अपने युग तथा समाज से जोड़ना चाहते थे इसीलिए वे साहित्य का सम्बन्ध केवल पाठकों के मनोरंजन से न जोड़कर व्यक्ति और समाज के जीवन तथा उसके सुख–दुख से जोड़ने के इच्छुक थे। क्योंकि प्रेमचंद साहित्य के माध्यम से अपने समाज की परिस्थिति जन्य विचार शून्यता और जड़ता को समाप्त कर जनता की सामाजिक तथा धार्मिक तन्द्रा को भंग कर उनमें एक नवीन चेतना का संचार करना चाहते थे ताकि पाठकों के मन में जीवन के प्रति सक्रिय दृष्टिकोण रखने की भावना उत्पन्न हो यही उनकी सबसे बड़ी कामना थी वे इस बात से भली भाँति परिचित थे कि भारतवासियों में जब चेतना जाग्रत हो जाएगी तो संसार की बड़ी से बड़ी शक्ति उन्हें स्वतन्त्र होने से नहीं रोक सकेगी इसी चेतना के आलोक में वे अपनी हीनावस्था का अनुभव करके अपनी स्वाधीनता के लिए संघर्ष करेगें प्रेमचंद को पूर्ण विश्वास था कि स्वतंत्रता ही भारतवासियों के कष्टों के निवारण का एक मात्र साधन है। अतएव उन्होंने जासूसी और रोमांस की गलियों की खाक छानने वाले हिन्दी पाठकों को उन्होंने यथार्थ के ऐसे ठोस धरातल पर लाकर खड़ा कर दिया जो उन्हें पूर्ण स्वाधीनता तथा विकास की ओर ले जाता था। वास्तव में साहित्य की एक ऐसी परम्परा का खंडन करना जिसके साथ जनता की रूचि का इतना आग्रह जुड़ा हो अपने आप में एक अदम्य साहस का कार्य था क्योंकि ऐसा करना लेखक के अस्तित्व के लिए घातक सि़द्ध हो सकता था किसी भी अकेले साहित्यकार के लिए ऐसा कर पाना सम्भव नहीं था। परन्तु प्रेमचंद ने अपनी दृढ़ इच्छा शक्ति, अपनी अद्‌भुत प्रतिभा और साहस से यह चमत्कार कर दिखाया–" प्रेमचंद हिन्दी के पहले

रचनाकार है जिनके कृतित्व में उपन्यास एक सम्मानित विधा की हैसियत पाता है, सामाजिक यथार्थ का जीवान्त दस्तावेज बनता है, मानव, चरित्र की जटिलताओं से रू–ब–रू होता है, मध्यवर्गीय जीवन के महाकाव्य होने के गौरव का अतिक्रमण करता हुआ हिन्दुस्तान के साधारणजनों की, मेहनतकशों की जिन्दगी का आख्यान बनकर नई अर्थवक्ता पाता है, भारत की विराट मुक्ति आन्दोलन का भाष्य बनता हैं। प्रेमचंद उपन्यास के क्षेत्र में एक नए रचना संसार के ही प्रणेता नहीं बनते उस रचना–संसार की सम्यक् समझ का एक नया सौन्दर्यशास्त्र भी हमें देते हैं, महत् रचनाशीलता के ही विधायक बनकर सामने नहीं आते, उस रचनाशीलता से टकराने, उसमें अपने जीवन की सच्चाई देखने और उससे आलोक पाने वाले एक विराट् पाठक वर्ग को जन्म भी देते हैं''। [1]

अपने युग का चितेरा साहित्यकार इतिहास की विकासात्कम शक्तियों से प्रेरणा ग्रहण करके युग समय की माँग के अनुसार अपने समय के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलता है ऐसे ही साहित्यकार की कृति सर्वग्राही रूचिकर प्रभावशाली तथा चिरस्थायी होती है काल के क्रूर हाथ भी उसकी लोकप्रियता का हरण नहीं कर सकते प्रेमचंद एक ऐसे ही अमर साहित्यकार थे जिनकी रचनाओं में बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक पैतींस छत्तीस वर्ष का इतिहास समग्र रूप से संकलित है। दूसरे शब्दों में प्रेमचंद का साहित्य भारतवर्ष के तद्युगीन राजनैतिक एवं सामाजिक परिवर्तनों का लिखित दस्तावेज है साथ ही साथ उनके कथा साहित्य में शोषण और उत्पीड़न के उस युग का समाज अपनी समस्त दयनीयता के साथ उपस्थित हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों तथा कहानियों में उन समस्त समस्याओं एवं मान्यताओं का यथार्थ चित्रण किया है जो मध्यवर्ग, जमींदार, पूँजीपति, किसान, मजदूर अछूत और समाज से बहिष्कृत व्यक्तियों के जीवन को संचालित करती है इस दृष्टि से वे साहित्य के साथ–साथ समाज की भी रचना कर रहे थे। सेवासदन, निर्मला, प्रेमाश्रम, गबन, रंगभूमि, कर्मभूमि तथा गोदान इत्यादि इसके प्रमाण हैं। '' प्रेमचंद की जिस रचना–यात्रा का उल्लेख हमनें अभी किया है, हम कह चुके हैं कि वह सरल–सहज रास्तों की यात्रा नहीं थी। यह जिन्दगी के बेहद चक्करदार रास्तों से होकर तय की जाने वाली यात्रा थी, उसके बेहद उलझे समीकरणों और बड़ी बेढ़ब गणित से, चलने वालों को पस्त कर देने वाली यात्रा थी। हम इस तरह के रास्तों और इस प्रकार के गणित से हर क्षण रू–ब–रू होते हुए प्रेमचंद ने जो उसे तय किया उसके क्रम में प्रेमचंद अपनी

---

[1] प्रेमचंद के आयाम–सं0 ए अरविंदाक्षन पृष्ठ 15–16

रचना और अपनी जिन्दगी की आखिरी मंजिल तक पहुँचते हुए वहीं नहीं रह गए थे, जैसे वे इस यात्रा की शुरुआत में थे। जिन्दगी की इस गणित ने अपनी चुनौतियों के क्रम में कदम–कदम पर उन्हें माँजा और निखारा– उनकी सोच और समझ को धार दी, उनके तमाम संस्कारों को बार–बार तराशा और जैसे उनके समूचे रचनाकार और विचारक–मन को खराद पर चढ़ाते हुए अन्त तक उसे आमूलतः बदल कर रख दिया। कम रचनाकार ही अपनी रचनाशीलता के दौर में इस प्रकार 'ग्रो' कर पाते हैं, जैसे प्रेमचंद कृति–दर–कृति निखरते हुए अपनी सोच के स्तर पर जीवन–दृष्टि के स्तर पर, जिसे 'लीप' या छलाँग लेना चाहते हैं, उस प्रकार छलाँग लेते हुए, अपने समकालीनों, ख्यात सहधर्मियों की सूचना में गुणात्मक रूप से अलग और विशिष्ट रचना चिन्तन और सोच की एक नई जमीन पर एक बहुत परिपक्व विवेक लिए हुए आ जाते हैं। ———————यह अनुभव और विचाारों के संस्कार और विवेक की द्वन्द्वात्मक संगीत में सम्पन्न की गई यात्रा है जो उन्हें दोनों स्तरों पर समृद्ध करती है। ' सेवासदन ' से लेकर ' गोदान ' तक का उनका रचनात्मक परिदृश्य हमें उन सब का साक्ष्य देता है ————————।[1]

अपने लेखन के आरम्भिक काल से ही प्रेमचंद प्रगतिशील विचारों के पोषक रहे हैं जैसा कि कहा जा चुका है कि भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने का प्रयास प्रेमचंद के जन्म के काफी समय पहले से ही प्रारम्भ हो चुका था। ब्रह्म समाज, प्रार्थनासमाज और आर्य समाज जैसी संस्थाओं के नाम इस दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रेमचंद इन सुधारवादी संस्थाओं विशेष कर आर्यसमाज से बहुत अधिक प्रभावित थे। प्रेमचंद ने प्रगतिशील लेखक संघ के मेनिफैस्टों (रूपरेखा) के आशय को सार रूप में प्रस्तुत करते हुए हंस में लिखा था–" भारतीय समाज में बड़े–बड़े परिवर्तन हो रहे हैं। पुराने विचारों और विश्वासों की ज़डे हिलती जा रही हैं और एक नए समाज का जन्म हो रहा है। भारतीय साहित्यकारों का धर्म है कि वह भारतीय जीवन में पैदा होने वाली क्रांति को शब्द और रूप दे और राष्ट्र को उन्नति के मार्ग पर चलाने में सहायक हों। भारतीय साहित्य, पुरानी सम्यता के नष्ट हो जाने के बाद से भागकर उपासना और भक्ति के शरण में जा छिपा है। नतीजा यह हुआ है कि वह निस्तेज और निष्प्राण हो गया है रूप में भी अर्थ में भी। ——— हम भारतीय सभ्यता की परम्पराओं की रक्षा करते हुए अपने देश की पतनोन्मुख प्रवृन्तियों की बड़ी

---

[1] प्रेमचंद के आयाम–सं0 ए अरविंदाक्षन पृष्ठ 16 / 17

निर्दयता से आलोचना करेंगें------ हमारी धारणा है कि भारत के नये साहित्य को हमारे वर्तमान जीवन के मौलिक तथ्यों का समन्वय करना चाहिए, और वह है हमारी रोटी का, हमारी दरिद्रता का हमारी समस्याओं को समझ सकेंगें और तभी हममें क्रियात्मक शक्ति आयेगी। वह सब कुछ जो हमें निष्क्रयता अकर्मण्यता और अंधविश्वास की ओर ले जाता है, हेय हैं। वह सब कुछ जो और समीक्षा की मनोवृत्ति लाता है, जो हमें प्रियतम रूढ़ियों को भी बुद्धि की कसौटी पर कसने के लिए प्रोत्साहित करता है, जो हमे कर्मण्य बनाता है और हममें संगठन की शक्ति लाता है उसी को हम प्रगतिशील समझते हैं''। [1] प्रगतिशीलता की इस परम्परा का प्रेमचंद ने जीवन पर्यन्त बड़ी निष्ठा से पालन किया जिसकी प्रतिछवियाँ उनके साहित्य में सर्वत्र विद्यमान है।

प्रेमचंद एक युगान्तकारी साहित्यकार थे युगान्तकारी साहित्यकार वह होता है जो युग के प्राचीन ढाँचे को तोड़कर उसे एक नया रूप एक नया आकार देकर उसका पुनर्निर्माण करता है और ऐसा वही साहित्यकार कर सकता है जो अपने युग की एक-एक धड़कन एक-एक स्पंदन को सुनता तथा महसूस करता हो। प्रेमचंद इस कसौटी पर शत प्रतिशत खरे उतरते हैं। '' प्रेमचंद ने समसामयिक जीवन में गहरे पैठकर उसकी एक-एक प्रवृत्ति को समझा और अपने पाठक के सम्मुख प्रस्तुत कर उसे अपनी परिस्थितियों के प्रति प्रबुद्ध किया''। [2] प्रेमचंद का सम्पूर्ण साहित्य युग चेतना और युगबोध से संपृक्त है युगीन चेतना को जितने समग्र रूप से प्रेमचंद ने ग्रहण किया वस्तुतः उनके युग के किसी अन्य उपन्यासकार ने नही ग्रहण किया उनका समस्त कथा साहित्य इस बात का साक्षी है। इसी युग चेतना के कारण उन्हें सामाजिक राजनीतिक एवं ऐतिहासिक हर प्रकार के उपन्यासों में अपने युग की ज्वलन्त समस्याओं के यथार्थ चित्रण में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है।

---

[1] श्री अमृतराय-कमल का सिपाही, पृ0 608।

2 हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण-महेन्द्र चतुर्वेदी पृष्ठ-108

साहित्य रचना में प्रेमचंद पर युगीन प्रभाव–

साहित्य वह दर्पण है जिसमें उसके सृजनकर्ता के विचारों की छवि स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। वास्तव में वह अपने विचारों को ही शब्दों में ढालकर अपने साहित्य संसार का निर्माण करता है और उसके माध्यम से अपने विचारों को लोगों तक पहुँचाता है। इस प्रकार साहित्यकार की विचार प्रक्रिया और रचना प्रक्रिया में परस्पर घनिष्ट सम्बन्ध होता हैं। साहित्यकार की संवेदनशील प्रवृन्ति के कारण उसके विचारों तथा दृष्टिकोण पर तद्‌युगीन राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं वैयक्तिक परिस्थितियाँ समान रूप से अपना प्रभाव डालती है– " प्रत्येक सजग साहित्यकार अपने युग के प्रति चैतन्य एवं उस युग की परिस्थितियों से परिचित होता है। वह जिस युग में रहता है उससे कुछ सीखता है औरँ भविष्य के लिए कुछ प्रेरणाएं प्राप्त करता है वह दिन प्रतिदिन अपने युग का अधिक से अधिकतम अध्ययन करता हुआ युग की सारी समस्याओं, संस्कारों तथा प्रथाओं से घनिष्ठ रूप से परिचित हो जाता है। प्रत्येक साहित्यकार युगीन परिस्थितियों से प्रभावित होता है"।[1]

कोई भी साहित्यकार अपने रचना संसार की सृष्टि अपने जीवनानुभवों अपनी संवेदना और अपनी रचना दृष्टि के आधार पर करता है। " रचनाकार समाज की शुभ अशुभ उत्थान पतन, सुखः दुख हर्ष–विषाद की स्थितियों की तीव्र अनुभूति के कारण अपने भीतर एक प्रकार की कुरेदन और बेचैनी का अनुभव करता है और अपने समकालीन सामुदायिक जीवन के व्यथा भार को अपनी संवेदना से छानकर सार्वजनीन स्तर पर व्यक्त करने के साथ ही समस्या की समाधानात्मक सरणियों के अनुसंधान का अनुष्ठान भी करता है। विकासधर्मी मानवीय मूल्यों के प्रति आस्थावान बनाकर भावी संभावनाओं के प्रति आश्वस्त करना रचनाकार का स्रष्टा धर्म है। इस प्रकार की लक्ष्य धर्मी कलात्मककृति के प्रेरणा बीज लोक जीवन से ग्रहण किए जाते हैं।"[2] इस प्रकार किसी भी साहित्यकार के साहित्य सृजन में लोक जीवन के विविध पहलू तों सहायक होते ही हैं साथ ही साथ उसके व्यक्तिगत जीवन में घटित होने वाली घटनाएं और राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियाँ भी उसकी साहित्यिक प्रतिभा के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है क्योंकि– " मनुष्य के व्यक्तित्व के निर्माण में परिस्थितियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मनुष्य जिस समाज, परिवेश और

---

[1] प्रेमचंद के जीवन दर्शन के विधायक तत्व–डॉ0 कृष्णचन्द्र पाण्डेय पृ0 सं0 18–19।
[2] प्रेमचंद व्यक्तित्व और रचना दृष्टि–सं0 दयानन्द पाण्डेय पृ0 104

वातावरण में रहता है, उसका प्रभाव उस पर निश्चय रूप से पड़ता है। इस 'प्रभाव' से ही उसके व्यक्तित्व और उसकी कार्य–पद्धति का सृजन एवं निर्धारण होता हैं। इसीलिए प्रायः कहा जाता है कि " मनुष्य परिस्थितियों की उपज है। "परिस्थितियां एक दिव्य शक्ति की भूमिका का निर्वाह करती हैं, क्योंकि इस के बिना मनुष्य में स्थापित करने का कार्य परिस्थितियां ही सम्पन्न करती हैं। क्रूरता, बर्बरता, विध्वंश, नृशंसता, स्वार्थ आदि के ताण्डव उपस्थित करना भी इन्हीं का कार्य होता है। 'समय की शिला पर' जो भी कुछ अंकित होता है, वह मात्र परिस्थितियों के कारण ही। इसीलिए परिस्थितियां जीवन–निर्माण की आधारशिला मानी जाती हैं"।[1]

सांस्कृतिक वातावरण भी साहित्यकार के विचारों को प्रभावित करता है। सामाजिक क्रियाँ–कलाप, रहन–सहन, रीति–रिवाज धर्म और वर्ग, वर्ण तथा जाति से सम्बन्धित समस्याएँ लेखक के सांस्कृतिक विचारों का निर्माण करती है। साहित्यकार का संवेदनशील मन अपने समाज में व्याप्त विसंगतियों से बहुत आहत होता है फलतः उन्हें दूर करने के लिए अपने युग के सुधारवादी आन्दोलनों से उसका प्रभावित होना एक स्वभाविक बात है इसके अतिरिक्त पूर्ववर्ती साहित्य परम्परा और साहित्यकारों की विचारधारा का प्रभाव भी लेखक की विचार प्रक्रिया में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है अपने पूर्व के साहित्यकारों के विचार और साहित्य की परम्परा से लेखक अपने युगानुकूल प्रभाव ग्रहण करता है युगीन साहित्यिक वातावरण तथा पूर्ववर्ती साहित्य की सुदीर्घ परम्परा लेखक की रचना प्रक्रिया भी पृष्ठभूमि होती हैं।

प्रेमचंद का युग राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक हर स्तर पर उथल–पुथल तथा असंतोष का युग था एक ओर देश अंग्रेजों की पराधीनता से तो अभिशप्त था ही समाज में व्याप्त बाल–विवाह, अनमेल–विवाह, वृद्ध–विवाह, दहेज– प्रथा, नरबलि, पर्दा, नारी की दुर्दशा, अशिक्षा, अस्पृश्यता, बहुदेववाद, धार्मिक कर्मकाण्ड, वाह्य आडम्बर अन्ध परम्पराओं ने जन सामान्य को जड़ता की चरम सीमा पर पहुँचाकर देश की प्रगति के मार्ग को अवरूद्ध कर रखा था। "समाज में एक ओर घुँघरू की झन्कार थी, रागनियों की कोमल तानें थी, दूसरी ओर करूण क्रन्दन था, चीत्कार था, विलाप था, हाहाकार था और थी भूखे–तड़पते हृदयों की मूक वेदना जिसे कोई सुनने वाला न था। इन विभिन्न

---

[1] प्रेमचंद–कथा साहित्य : समीक्षा और मूल्यांकन–डा0 धर्मध्वज त्रिपाठी पृ0 60

प्रकार के सामाजिक अन्यायों और धार्मिक संकीर्णताओं से जर्जरित हिन्दू समाज एक लम्बे समय से सामाजिक, धार्मिक सुधार की आवश्यकता अनुभव कर रहा था। ब्रम्ह समाज, आर्य समाज, थियोसोफी, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, अरविंद घोष आदि के द्वारा भारतीय राष्ट्रीयता और आध्यत्मिकता का साथ–साथ विकास हुआ। इन आन्दोलनों ने देश में नवीन संस्कारों को जन्म दिया जिसके फलस्वरूप भारतीय संकीर्णता टूटने लगी, चरित्रिक बल विकसित हाने लगा सांस्कृतिक गौरव की प्रतिष्ठा होने लगी और समन्वयमूलक दृष्टिकोण ने भारतीय साहित्य को उदार एवं उच्च प्रेरणाओं से ओत प्रोत कर दिया''। [1]

देश में एक ओर वे लोग थे जिनके मन में विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक आन्दोलनों से प्रभावित होकर अंग्रेजों की पराधीनता, परम्परागत रूढ़ियों तथा सामाजिक विकृतियों के प्रति आक्रोश तथा क्षोभ था वे उनसे मुक्त होना चाहते थे वहीं दूसरी ओर प्राचीन रूढ़िवादी विचारों का पोषक जन समूह का जो सड़ी–गली मान्यताओं को ह्रदय से लगाए उन्हें त्यागने को कदापि तैयार नहीं था एक ओर लोग बिट्रिश सरकार के शोषण और अत्याचार से त्रस्त होकर काँग्रेस के नेतृत्व में देश के स्वाधीनता के लिए संघर्षरत थे वहीं दूसरी ओर एक वर्ग ऐसा भी था जो स्वार्थवश अपने व्यक्तिगत हितों की रक्षा के लिए अंग्रेजों की चापलूसी करने में भी जान से जुटा था एक ओर अपने कठिन परिश्रम से धरती का सीना चीर कर अन्न उपजाने वाले भूखे–नंगे अधमरे कृषक थे तो दूसरी ओर उनके शरीर से लहू के एक–एक बूँद चूस लेने को आतुर जमींदार, साहूकार तथा दूसरे सरकारी कर्मचारी एक ओर भूख से व्याकुल अन्न के एक–एक दानें को तरसता श्रमिक वर्ग था तो दूसरी ओर उनके श्रम का शोषण करने वाले पूँजीपति और उद्योगपति। समाज की ऐसे परिस्थितियों को जिनसे आम आदमी हर पल जूझ रहा था, प्रेमचंद स्वयं अपने आँखों से देख रहे थे और व्यक्तिगत स्तर पर महसूस कर रहे थे।

कोई भी लेखक सच्चे अर्थो में लेखक कहलाने का अधिकारी तब ही होता है जब वह अपनी पीड़ा और संघर्ष को अपने युग की पीड़ा तथा संघर्ष से जोड़कर देखता है परन्तु यह कार्य इतना सहज नहीं यह किसी भी लेखक के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती है और प्रेमचंद इस चुनौती को सहज स्वीकार करते

---

[1] प्रेमचंद और उनका साहित्य–डा० (श्रीमती) शीला गुप्त पृ० 40

हैं। वे भारत माँ के वीर सपूत थे उसी के गोद में पले बढ़े थे इस धरती में उनके प्राण बसते थे उनके रोम–रोम में भारत की जनता का प्रेम समाहित था उन्होंने देश की पददलित अपमानित और शोषित जनता की पीड़ा को अपनी पीड़ा बनाकर उनके दुखों को अभिव्यक्ति प्रदान की। इन दीन–हीन जनों से उनका भावनात्मक रिश्ता था क्योंकि इनका जन्म एक निम्न मध्य वर्गीय कायस्थ परिवार में हुआ था उनके पिता मात्र बीस रुपए प्रतिमाह पाने वाले एक डाक मुंशी थे इसी कारण उनका बचपन अत्यन्त निर्धनता में व्यतीत हुआ आर्थिक विपन्नता के कारण ही उनका समस्त जीवन अभावों से ग्रस्त रहा। तंगी ने कभी उनका पीछा न छोड़ा जीवन की छोटी–छोटी आवश्यकताओं के पूर्ति के लिए भी उन्हें कड़े संघर्ष से गुजरना पड़ता था अर्थाभाव के कारण ही वे अपनी प्रारम्भिक शिक्षा भी पूरी न कर सके और आगे की पढ़ाई उन्होंने अपने प्रयत्नों से प्राप्त की पिता की मृत्यु के उपरान्त अल्पायु में उन्हें पूरे परिवार के भरण पोषण का भार वहन करना पड़ा इसी कारण वह जनता के दुखों तथा उनकी समस्याओं को कितनी सूक्ष्मता और गम्भीरता के साथ सफलता पूर्वक चित्रित कर सके"। प्रेमचंद ने तत्कालीन मानव–समाज की प्रत्येक परिस्थिति को समझा और उसकी प्रभावपूर्ण स्थितियों पर विचार करके जीवन–मूल्यों से जोड़ने का प्रयत्न किया। इस कार्य में उन्हें आशातीत सफलता प्राप्त हुई। प्रेमचंद साहित्य में जिन घटनाओं और पात्रों का चित्रण है, वे किसी खास किस्म के न होकर सामान्य जीवन की विशेषताओं से ही सम्बद्ध है। यह प्रेमचंद कथा–साहित्य की एक मौलिक उपलब्धि है। इस उपलब्धि को प्रेमचन्द ने यों ही नहीं प्राप्त किया हैं वरन् समाज की गहराइयों तक पैठकर तथा युगीन परिस्थितियों का सूक्ष्मता से अध्ययन करके ही इन अनुभूतियों को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की है।"[1]

प्रेमचंद को विधाता ने लेखन के लिए केवल 30 वर्ष का अल्प समय ही दिया था जबकि उनका सम्पूर्ण–जीवन कठिनाइयों और समस्याओं से आच्छादित रहा इसके बावजूद वे एक वीर सेनानी की तरह जीवन संग्राम के रणक्षेत्र में अंत तक संघर्ष करते रहे कभी–भी परिस्थितियों के समक्षहार नहीं स्वीकार की और अपनी लेखनी द्वारा अपने ही जैसे लाखों करोड़ो दीन हीन जनों को जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं प्रेमचंद साहित्य में जो यथार्थवाद का जो कौशल दिखाई देता है वह अनायास हाथ आने वाली वस्तु नहीं है यह तो उनके अंदर की कसक है टीस है इस सम्बन्ध में स्वयं प्रेमचंद का कथन है–" लेखकीय सर्जना की पृष्ठभूमि यथार्थ जीवन के सत्य का साक्षात्कार और सत्य से उत्पन्न पीड़ा है वह जो कुछ

---

[1] प्रेमचंद–कथा साहित्य समीक्षा और मूल्यांकन–डा0 धर्मध्वत त्रिपाठी पृ0 67–68

भी लिखता है अपनी इसी कुरेदन से लिखता है"।[1] ये उनके मन मस्तिष्क में चलने वाला द्वन्द है और उसके साथ ही साथ उनके युगीन संघर्षो के तीव्र तुफानी थपेड़े है जिनके परिणामस्वरूप उनकी बौद्धिक तथा सामाजिक चेतना दिन प्रतिदिन प्रखर होती गई और अपने युग तथा समाज की समस्याओं पर उनकी पकड़ मजबूत होती गई। यह उसी का परिणाम है कि उन्होंने जिस विषय पर भी लिखा उसके प्रत्येक पहलू की एक–एक परत को खोल कर रख दिया प्रेमचंद के सांसारिक और सामाजिक चेतना में समय–समय पर जो सकारात्मक परिवर्तन होते रहे हैं वह कोरा किताबी ज्ञान नहीं यह तो उनके व्यक्तिगत जीवन और विषम सामाजिक परिस्थितियों के तीखे कड़ुवे यथार्थ है जिनसे प्रेमचंद प्रतिपल जूझते हुए अनुभव प्राप्त कर रहे थे यही कारण है कि उन्होंने अपने युग जीवन को बिना किसी काट–छाँट के उसके वास्तविक रूप को अपने कथा साहित्य में प्रस्तुत किया हैं " वे एक ठेठ भारतीय लेखक थे जो अपने जीवन काल में ही क्लासिक बन चुके थे। लेकिन यह कोई महत्वपूर्ण बात नहीं है। कोई क्लासिक बनकर अमर हो सकता है, पर यह भी हो सकता है कि वह हमारे लिए प्रासांगिक न रह जाए। प्रेमचंद का महत्व यह है कि वे हमारे क्लासिक होने के साथ ही हमारे सर्वाधिक आधुनिक और संदर्भवान लेखक भी हैं। अपनी रचनाओं में वे अपने युग के संपूर्ण भारतीय समाज की लोक–चेतना के साथ इतनी गहराई के साथ जुड़े हुए थे कि हम उनमें उन के किसी एक पक्ष का नहीं बल्कि उस की संपूर्ण समग्रता का साक्षात करते हैं। उनकी कलम से कोई भी नहीं बचा। वे पात्रों की व्यापक विविधता का एक ऐसा संसार रचते हैं कि समाज के सभी वर्गो की परतें हमारे सामने उतरती चलती हैं। हमारे सामने पूरे एक हिंदुस्तान की तसवीर खुलती है। वे प्रेमचंद के रचना संसार का ही हिंदुस्तान नहीं हम सब का हिंदुस्तान होता है, लेकिन एक ऐसा हिंदुस्तान जिसे हम पहले नहीं जानते थे। उनकी हर रचना पढ़ने के बाद हम वही नहीं रह जाते जो पहले थे। हम अपने देश को और करीब से देखने लगते हैं, उसे और अधिक गहराई से समझने लगते हैं। सूरा और होरी अपनी लडाइयों मे हारते है , लेकिन हममें और अधिक लड़ने की ताकत पैदा कर जाते हैं। प्रेमचंद यह कैसे कर पाए ? निश्चित ही यह एक बहुत बड़ी ताकत वाला लेखक ही कर सकता है और यह ताकत समझौतों से नहीं आती। यह उस रचना दृष्टि से आती है जो जीवन की कुरूपताओं को ढ़कती नहीं है और न उन्हें उकेर कर उनमें आनंद लेती है, बल्कि उन कुरूपताओं के लिए दोषी, समाज की शोषण संस्थाओं को पहचान कर उन पर

---

[1] प्रेमचंद घर में : शिवरानी देबी पृ0 141

निर्मम प्रहार करती है। यह दृष्टि संपन्नता अपने समाज की बड़ी लड़ाइयों से जुड़े बिना नहीं आती।''[1]

कोई भी महान रचनाकार अपने समय की आवाज को, अपने युग की मांग को नकार नहीं सकता और वे उसके साहित्य में किसी न किसी रूप में प्रतिध्वनित अवश्य होती है राष्ट्रीय पुनर्जागरण की सुधारवादी चेतना श्रेष्ठ मानवीय तथा नैतिक मूल्यों में आस्था तथा भारतीय राजनीति में गांधीजी के बढ़ते हुए प्रभाव इत्यादि भी कुछ ऐसे तत्व हैं जिन्होंने प्रेमचंद के कथा साहित्य का सम्बन्ध सीधे सोद्वेश्यता से जोड़ दिया और प्रेमचंद के कथा साहित्य की यह सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है कि उन्होंने पूर्ववर्ती साहित्य की परम्परा को तोड़ते हुए भारतीय समाज के उस वर्ग को जो समाज से तो बहिष्कृत था ही साहित्य संसार में भी जिसके लिए कोई स्थान न था, उन्होंने ऐसे बहिष्कृत उपेक्षित जन को अपने कथा संसार का अंग ही नहीं बनाया वरन उन्हें नायक के पद पर भी प्रतिष्ठित किया उनके जीवन की छोटी–बड़ी समस्याओं को अपने लेखन का हिस्सा बनाया। आम आदमी के जीवन को जर्जरित करने वाले–''धार्मिक अन्धविश्वासों, रूढ़ियों, पंडों, पुरोहितों, जनता को भ्रमित करने वाली धार्मिक संस्थाओं तथा नारी–मुक्ति जैसे विषयों को अपने लेखन का विषय बनाया।''[2]

प्रेमचंद युगीन समाज धर्मभीरूता के गहन अंधकार में लिप्त था जनता की पुनर्जन्म और भाग्यवादिता अंधविश्वास तथा अंध परम्पराओं में अटूट आस्था थी जिसने उनके मानसिक तथा बौद्धिक विकास को अवरूद्ध करके उन्हें घोर निराशावादी बना दिया था। जनता की इस जड़ता को समाप्त करने के लिए धार्मिक क्षेत्र में सुधार की आवाज उठायी जाने लगी। प्रेमचंद अपने युग की समस्याओं और दुर्व्यवस्थाओं के कारणों को बहुत निकट से देख और समझ रहे थे तथा इन धार्मिक आन्दोलनों के प्रभाव से वे अछूते न रह सके उनके जीवन पर आर्य समाज और उसके प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरास्वती का स्पष्ट रूप से प्रभाव पड़ा उनके कथा साहित्य के आरम्भ अर्थात 'असरारे मआविद' से ही उनके इन विचारों की झलक मिलने लगती है जिसमें उन्होंने धर्म की आड़ में होने वाली कपट लीलाओं और अत्याचारों पर तीक्ष्ण प्रहार किया हैं। प्रेमचंद की सहानुभूति अछूत वर्ग, निम्न वर्ग और समाज द्वारा उपेक्षित नर–नारियों के प्रति सदैव रही।

---

[1] प्रेमचंद व्यक्तित्व और रचना दृष्टि–संपादक–दयानंद पाण्डेय–पृ0 46

[2] प्रेमचंद के आयाम–ए0 अरविंदाक्षन पृष्ठ 42

प्रेमचंद साहित्य सामाजिक क्रान्ति के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले असन्तोष को प्रस्तुत करता है। 1907 से 1920 तक उनके कथा साहित्य में यथार्थवाद पर उनका नैतिक और आदर्शवादी दृष्टिकोण हावी दिखायी देता हैं परन्तु 1920 ई0 से वह एक ऐसे साहित्यकार के रूप में हमारे सामने आते हैं जिनकी रचनाओं में एक अद्‌भुद रख–रखाव और अपने युग से गहरा लगाव देखा जा सकता है। प्रेमचंद के यथार्थवादी दृष्टिकोण और उनके जीवन दर्शन में समय–समय पर जो परिवर्तन होते रहे हैं वह युग और समाज के प्रति उनकी गहरी प्रतिबद्धता के सूचक है। प्रेमचंद के भीतर का रचनाकार अपने युग के सम्पूर्ण यथार्थ को अपनी रचनाओं में उतारने के लिए व्याकुल रहता था अतः जब कभी वह लेखन कार्य करते सामाजिक समस्याएँ अपने विकराल रूप में उनके समक्ष खड़ी हो जाती और उनसे तरह–तरह के प्रश्न करती जिनके उत्तर जानने की जिज्ञासा में* उनके मस्तिष्क में सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक स्तर पर विचारो का एक तूफान सा उठने लगता था। उनके इस मानसिक द्वन्द का प्रभाव उनकी रचना प्रक्रिया पर अनिवार्य रूप से पड़ता था लेकिन इन सबके बावजूद भी उनकी रचनाओं में कही भटकाव नजर नहीं आता क्योंकि जिस मार्ग पर वह चल रहे थे उसकी एक–एक पगडंडी एक–एक मोड़ से वे भली–भाँति परिचित थे।

दूसरे लेखकों की भाँति प्रेमचंद भी अपने पूर्ववर्ती साहित्यकारों के विचारों से अपने युगीन परिप्रेक्ष्य में आवश्यकतानुसार प्रभाव ग्रहण करते है यह बात और है कि प्रेमचंद जैसा बड़ा साहित्यकार तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों को पढ़कर भी अपने विचारों को उनके साँचे में नहीं ढालता बल्कि अपनी प्रवृत्ति और अपने युग की माँग के अनुसार उसे आत्मसात करता है वह अपनी परंपरा से प्रभाव ग्रहण करते हुए अपनी निजी अनुभूतियों एवं अनुभवों के आधार पर अपने विचारों का भवन निर्मित करता है। प्रत्येक साहित्यकार अपने पूर्ववर्तियों से सीखता एवं अपने समकालीन से प्रभावित होता है परन्तु एक जागरूक एवं प्रतिभाशाली साहित्यकार अपने प्रयत्नों द्वारा साहित्य एवं समाज को एक नयी दिशा प्रदान करता है–"साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचंद तफरीह के लिए अथवा शौकिया नहीं आए थे। साहित्य का एक प्रधान लक्ष्य मनोरंजन या दिल–बहलाव होता है, यह वह जानते थे,। वे यह भी जानते थे और अनुभव कर चुके थे कि इस प्रकार का साहित्य रचकर पाठकों की एक बड़ी जमात का दिल जीता जा सकता है, पैसा और नाम कमाया जा सकता है। 'तिलस्म–होशरूबा' को वे कई बार पढ़ चुके थे, बाबू देवकीनन्दन खत्री की ख्याति से भी परिचित हो चुके थे, परन्तु उन्होंने यह

सब न करके, तमाम जोखिम उठाते हुए अपनी सर्जना को कुछ खास दिशाओं की ओर सक्रिय किया, उन दिशाओं की ओर जिन पर चलकर वे जिन्दगी की उस गणित को समझ और हल कर सकते थे जो तमाम सवालों को लिए उनके सामने फैली हुई थी, और चन्द्रकान्ता सन्ततियों की दुनिया में इजाफा नहीं करना चाहते थे। इसीलिए धन के जाने–माने रास्ते को छोड़कर वे जिन्दगी के ऊबड़–खाबड़ रास्तों पर चले ताकि उसकी उन हकीकतों से परिचित हो और हमें उनसे परिचित करा सकें जो उस समय की स्थितियों में हमारी और जनता के एक बड़े भाग की नियति बनी हुई थी। इसीलिए उन्होंने 'सेवासदन', लिखा, 'निर्मला' लिखा, 'प्रेमाश्रम' 'गबन' 'रंगभूमि' 'कर्मभूमि' और 'गोदान' जैसे उपन्यास लिखे थे।[1]

प्रेमचंद काल में देश की आर्थिक परिस्थिति अत्यन्त ऊहापोहमय थी। आर्थिक वैषम्य ने देश में वर्ग संघर्ष को जन्म दिया जिसके कारण मजदूर, किसान, जमींदार और उद्योगपति के मध्य एक कभी न पटने वाली खाई बन चुकी थी। भारत का जमींदार वर्ग अंग्रेजी शासन व्यवस्था की देन है जिनके माध्यम से उन्होंने भारत की कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था को छिन्न–भिन्न करने की एक नई राह निकाली अंग्रेजों की इस आर्थिक लूट का सबसे भयंकर परिणाम किसानों को भुगतना पड़ा। निर्धन किसानों से उनकी सामर्थ्य से अधिक मालगुजारी वसूल की जाती थी–"जमींदार मध्यस्थ था यानी वह किसानों से भूमि कर लेता था और सरकार को भूमि कर देता था। इस प्रकार किसानों से इतना लगान लेता था कि स्वयं भी मौज कर सके और सरकार को भी दे सके। प्रकारांतर से किसान अपने खून से जमींदारों और साम्राज्यवादी सरकार तथा सरकार की गोद में पलते हुए पूंजीवाद इन सबको सींच रहे थे। किसानों का सीधा सम्बन्ध जमींदारों से था, किंतु सरकारी अहलकार भी प्रायः किसानों के पास आया ही करते थे और तरह–तरह से इन्हें परेशान करते थे। इनकी हड्डियों से पैसे निचोड़ते थे"।[2]

अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुर्भिक्ष आदि दैविक आपदाओं के बाद भी निर्दयतापूर्वक लगान उगाही जाती थी जिसे चुकाने में वे साहूकारों और जमींदारो के ऋणी हो जाते और उसके बदले में उन्हें जीवन पर्यन्त उनका दास बनकर रहना पड़ता था। उनकी यही दासता उसकी निरक्षरता तथा अज्ञानता के अंधकार को और भी गहरा किये हुए थी वैज्ञानिक तथा औद्योगिक उन्नति से वह सर्वथा

---

[1] प्रेमचंद के आयाम–ए0 अरविंदाक्षन पृष्ठ 16

[2] कथाकार प्रेमचंद–संपादक रामदरश मिश्र पृष्ठ 6

अनभिज्ञ था। प्रेमचंद के कथा साहित्य का अधिकतर भाग ग्रामीण जीवन विशेष कर कृषक वर्ग के जीवन पर आधारित हैं। जन्म से लेकर नौकरी तक उनके जीवन का अधिकतर समय ग्रामीण जनता के मध्य व्यतीत हुआ ग्रामीण परिवेश से इस निकटता के कारण भोले-भाले निरीह कृषकों के जीवन तथा उनकी समस्याओं से पूर्ण रूप से अवगत थे। देश के इन निरीह प्राणियों से उनकी भावनाएँ जुड़ी थी और भावनाओं के इस रिश्ते को उन्होंने जीवन पर्यन्त निष्ठापूर्वक निभाया और कृषक वर्ग की पीड़ा, छटपटाहट और मूकवेदना को अपनी लेखनी के माध्यम से सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान की अपनी कृतियों में उन्होंने किसानों के जीवन का सांगोवान चित्रण किया है। किसानों की निरीहता विवशता तथा जमीदारों, साहूकारों एवं सरकारी अहलकारों के अत्याचारों अनाचार के चित्रण से उनका साहित्य भरा पड़ा है-"प्रेमचंद ने जमींदारों और साहूकारों द्वारा शोषित और प्रताड़ित किसान की दयनीय और दारूण दश इतिहास की एक करूण सच्चाई के तौर पर उभरती हुई देखी थी। परिवर्तन के इच्छुक वे जरूर थे, पर अपनी वास्तविक हालत को नजर अंदाज करके या उस पर लादकर परिवर्तन लाना उन्हें पसंद नहीं था। शोषण और आततायी शक्तियों और प्रवृत्तियों की पहचान उन्हें थी, पर अपने समय और समाज में उन्हें ऐसी कोई शक्ति उभरती हुई दिखाई नहीं दी जिसे वे आततायी शक्तियों के विरोध में खड़ा कर सकते। वे समाज की प्रगति रोकने वाली शक्तियों को देख रहे थे, लेकिन पुरानी व्यवस्था को बदलने वाली शक्तियाँ उनके सामने तक मैदान में न आई थी। उनके उपन्यासों में 'कफन' और 'पूस की रात' जैसी कहानियों में थी। किसान की निरंतर बिगड़ती हुई हालत, उसके मजदूर बनते जाने की पीड़ा की अभिव्यक्ति लगातार तीव्र होती गयी है। 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि' और कर्मभूमि, में से होती हुई यह ऐतिहासिक विकास-यात्रा 'गोदान' में अपने चरमोत्कर्ष पर है।"[1]

किसी भी मनुष्य के लिए उसके युग तथा समाज की धारा से कटकर रहना सम्भव नहीं और प्रेमचंद जैसे सजग और चेतना सम्पन्न कथाकार के लिए तो कदापि नहीं। प्रेमचंद साहित्य को समाज और राजनीति का अभिन्न अंग मानते थे तो फिर यह कैसे संभव था कि अपने युग की राजनीतिक परिस्थितियों के प्रभाव से वे अछूते रहते-प्रेमचंद कथा-साहित्य समकालीन राजनीतिक चेतनाओं से सम्पन्न है। राजनीतिक प्रभाव के कारण देशवासियों में जो चेतना फैल रही थी, वह इनकी रचनाओं में भी प्राप्त होती है। मानव जीवन अपने कार्यो और

---

[1] कथाकार प्रेमचंद-संपादक रामदरश मिश्र पृष्ठ 34

अधिकारों के प्रति सचेष्ट हो और समाज में सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करे–प्रेमचन्द का यही लक्ष्य था"।[1] यह सत्य है कि केवल राजनीति को ही उन्होंने विशुद्ध रूप से अपनी रचनाओं का आधार नहीं बनाया परन्तु तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का प्रभाव उनकी कृतियों में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। क्योंकि प्रेमचंद की धारणा थी कि जिस प्रकार समाज में होने वाले हानि–लाभ सुख–दुख का प्रभाव व्यक्ति पर पड़ता है उसी प्रकार राजनीति के क्षेत्र में होने वाले सुख–दुख भी उस पर अपना प्रभाव डालते हैं। वस्तुतः प्रेमचंद राजनीतिक चेतना को समाज के पददलित और शोषित समुदाय से सम्बद्ध करके उसका कल्याण चाहते थे वे पूँजी पर आधारित शोषण तंत्र को राजनीतिक अस्त्र से नष्ट करना चाहते थे।

1920 ई0 से 1939 ई0 तक का भारत पूरी तरह गाँधीवादी प्रभाव से ओत–प्रोत था तद्‌युगीन प्रेमचंद साहित्य पर भी यह प्रभाव स्पष्ट रूप से परलक्षित होता है। प्रेमचंद महात्मा गाँधी के व्यावहारिक जीवन दर्शन से बहुत अधिक प्रभावित थे इस तथ्य को स्वीकार करते हुए वे स्वयं कहते हैं "दुनिया में मैं महात्मा गाँधी को सबसे बड़ा मानता हूँ। उनका भी उद्देश्य यही है कि मजदूर और काश्तकार सुखी हों, वह भी उन लोगों को आगे बढ़ाने के लिए आन्दोलन चला रहे हैं। मैं लिखकर के उनको प्रोत्साहन दे रहा हूँ। महात्मा गाँधी हिन्दू मुसलमानों की एकता चाहते हैं तो मैं भी हिंदी और उर्दू को मिलाकर हिन्दुस्तानी बनाना चाहता हूँ"। [2] यह महात्मा गाँधी के प्रभाव का ही परिणाम था कि उन्होंने अपनी बीस वर्ष पुरानी सरकारी नौकरी से त्याग पत्र दे दिया। भारतीय संस्कृति के प्रति गाँधी जी की करूणा तथा सहानुभूति नैतिक मूल्यों के प्रति असीम श्रद्धा कर्म के सिद्धान्त में अटूट आस्था, देशभक्ति, राष्ट्रीय चेतना, सुधारवादी दृष्टिकोण, सांप्रदायिक सौहार्द की भावना ग्रामीण जीवन के प्रति गहरा लगाव महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व की यह समस्त विशेषतायें न्यूनाधिक रूप में प्रेमचंद में भी विद्यमान थी अतः महात्मा गाँधी से प्रेमचंद का प्रभावित होना स्वाभाविक था। इस दृष्टि से प्रेमाश्रम उनकी सबसे पहली रचना है जिसमें गाँधीवादी विचारधारा की प्रतिध्वनि स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ती है तत्पश्चात रंगभूमि, कायाकल्प, निर्मला, गबन तथा कर्मभूमि इत्यादि पर गाँधीवादी प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। प्रेमचंद के आदर्शवादी पात्रों में उच्च मानवीय आदर्शो का पालन नैतिक मूल्यों में अटल

---

[1] प्रेमचंद–कथा साहित्य समीक्षा और मूल्यांकन–डा0 धर्मध्वज त्रिपाठी पृ0 197

[2] प्रेमचंद घर में शिवरानी देबी–प्रेमचंद 128 –

विश्वास, दया, क्षमा, शील, संयम, सत्य निष्ठा परोपकार आदि गुणों का समन्वय गाँधीवादी प्रभाव का द्योतक है। परन्तु "प्रेमचंद ने गाँधीवादी चेतना को उसी सीमा तक स्वीकार किया है, जहाँ तक वह 'मानव और उसके समाज' के लिए आवश्यक रही। जहाँ पर राजनीतिक वातावरण विषम स्थितियों की ओर मुड़ता गया, उन्हें इससे कोई सरोकार नहीं रहा"।[1] "प्रेमचंद की राजनीतिक विचारधारा में समाज और मानव मूल्यों के प्रति अटूट आस्था का भाव है। इस दृष्टि से प्रेमचंद ने अपने कथा साहित्य में मानव मूल्यों को बनाएं रखने के लिए राजनीतिक विषय-वस्तु को लेकर उसकी विविधता और वास्तविकता को उजागर किया है। प्रेमचंद ने प्रत्येक स्तर पर व्यक्ति और सामाजिक जड़ता का उन्मूलन करने का प्रयास किया है। अपनी वैचारिक चेतना को उर्दू के मासिक पत्र "जमाना" के नियमित स्तम्भ 'रफतारे जमाना' में कौमी जल्से, स्वदेशी तकसीमें बंगाल को रौकने की उम्मीदे खत्म, हिन्दुस्तान में हड़ताल, हिन्दुस्तान पर पार्लियामेण्ट में बहस, तकसीमें बंगाल के खिलाफ कलकत्ता में जलसा आदि लेखों के माध्यम से व्यक्त किया।" [2]

युगीन परिस्थितियों में तीव्रगति होने वाले परिवर्तनों का उनके भीतर का प्रगतिशील कलाकार खुलेमन से स्वागत करता है। उनके साहित्य में जो वैचारिक अंतर्विरोध दृष्टिगोचर होते हैं वे उनकी रचनात्मक चेतना के क्रमिक विकास के विभिन्न पड़ाव हैं। अपनी ही बनाई हुई परम्परा का विरोध करना किसी भी रचनाकार के लिए दुष्कर है। प्रेमचंद इस विकट परिस्थितियों से भी सरलता पूर्वक उबर जाते हैं जैसे-जैसे उनकी चेतना प्रखर होती जाती है वे अपनी ही परम्परा को तोड़ते नजर आते है। अपने लेखन के प्रारम्भ में वे किसी सामाजिक समस्या का विश्लेषण करते हुए अपने नैतिकता तथा आदर्शवादी सूत्रों के माध्यम से कथा के अन्त को निष्कर्षात्मक बना देते थे जिससे विषमता के मूल कारण अस्पष्ट रह जाते थे यद्यपि अपने लेखन के आरम्भिक दौर से ही वे शोषक और अत्याचारी शक्तियों को भली भाँति पहचान गए थे परन्तु सांस्कृतिक पुनर्जागरण के प्रभाव से अपने पुनरूत्थानवादी और सुधारवादी दृष्टिकोण के कारण वे शोषक या आतातायी के हृदय परिवर्तन की प्रतिक्षा करते हैं।

---

[1] कथा साहित्य समीक्षा और मूल्यांकन-डा0 धर्मध्वत त्रिपाठी पृ0 196

[2] कथा साहित्य समीक्षा और मूल्यांकन-डा0 धर्मध्वत त्रिपाठी पृ0 196

प्रेमचंद के कथा साहित्य का मध्यवर्तीय भाग उनके रचनात्मक और वैचारिक दृष्टिकोण और रचना पद्धति में त्वरित गति से होने वाले परिवर्तन का द्योतक है जिसमें वे जीवन के यथार्थ का सघन और संश्लिष्ट चित्रण करते दिखाई देते हैं अब वे किसी भी घटना परिस्थिति या जीवन प्रसंग का विश्लेषण केवल भावनात्मक स्तर पर नहीं अपितु यथार्थवादी दृष्टिकोण से करते हैं इस दौर के कथा साहित्य में असहमति, असंतोष और विरोध के स्वर तो हैं परन्तु संघर्ष के नहीं क्योंकि इस समय तक वे संघर्ष और क्रांति को समाज के लिए हितकर नहीं समझते थे उनका यह दृष्टिकोण गाँधीवादी प्रभाव की देन हैं जिसे उनके इस दौर के उपन्यासों में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है जो गाँधीजी के सुधारवादी कार्यक्रमों और अहिंसक आंदोलन के चित्रण से परिपूर्ण हैं।

अपने साहित्यिक जीवन के अन्तिम पड़ाव तक पहुँचते–पहुँचते प्रेमचंद सामाजिक विसंगतियों के मूल कारणों को अच्छी तरह पहचान चुके थे। सामाजिक संरचना और वर्गीय स्थिति के विषय में जैसे–जैसे उनका ज्ञान विकसित होता गया वैसे–वैसे उनके कथा साहित्य में सामाजिक चेतना का स्वरूप अपेक्षाकृत अधिक परिपक्व होता गया अब वे अत्याचारी और शोषक वर्ग की ठीक–ठीक पहचान की दिशा में तेजी से बढ़ते दिखाई देते हैं। सुधार और हृदय परिवर्तन के गाँधीवादी सिद्धान्तों पर अब उनका विश्वास नहीं रहा। अब वे सामाजिक विसंगतियों और समस्याओं का आलोचनात्मक विश्लेषण का उनका यथार्थ चित्रण करते दिखाई देते हैं।

अपने अन्तिम दौर के उपन्यासों गोदान तथा मंगलसूत्र में वे स्थितियों के आदर्शीकरण के स्थान पर उनका यथार्थ रूप से बेहद सटीक चित्रण करते हैं इनमें पहली बार यथार्थ स्थिति के निर्मम विधान को ग्रहण करके अपनी ही बनाई हुई आदर्श और नैतिकता की सीमाओं का उल्लंघन करते हुए यथार्थ चित्रण और निरूपण की एक नई डगर पर अग्रसर दिखाई देतें है। गोदान में घटनाओं और स्थितियों के संयोजन द्वारा स्थितियों और संबधो को दहला देने वाले जिस क्रूर यथार्थ का चित्रण हुआ है वास्वत में वह विषमता मूलक समाज की वर्गीय व्यवस्था की ही उपज है जिसमें समाज अपनी समस्त भयावह असंगतियों विसंगतियों सहित समाहित है अब तक प्रेमचंद इस तथ्य से पूरी तरह अवगत हो चुके थे कि क्रांति के बिना वर्तमान समाज व्यवस्था को बदला नहीं जा सकता वस्तुतः प्रेमचंद ऐतिहासिक प्रक्रियाओं से पूर्णता परिचित थे और अपनी आँखों से देख रहे थे कि किस प्रकार किसान जमींदारी और साहूकारों के शोषण की चक्की में जिसका

किसान से मजदूर बनने पर विवश हो रहा है। प्रेमचंद का उपन्यास गोदान किसान से मजदूर बबने की बिडंम्बना का ही नहीं खेतों से जुड़ी कृषकों की रागात्मक चेतना के समाप्त होने का भी द्योतक है।

प्रेमचंद युग में तेजी से होने वाले क्रांतिकारी परिवर्तनों के परिणामस्वरूप उनकी बदली हुई मानसिकता को हम उनके अधूरे उपन्यास 'मंगलसूत्र' के पात्र देव कुमार के आत्म मंथन में भली भाँति देख सकते हैं–"देवता वह है जो न्याय की रक्षा करे और उसके लिए प्राण दे दे। अगर वह जानकर अनजान बनता है तो धर्म गिरता है और उसकी आँखों में यह कुव्यवस्था खटकती ही नहीं तो वह अंधा भी है और मूर्ख भी देवता किसी तरह नहीं। देवताओं ने ही भाग्य, ईश्वर और भक्ति की मिथ्या धारणाएँ फैलाकर इस अनीति को अमर बनाया है। मनुष्य ने अब तक इसका अन्त कर दिया होता या समाज का ही अंत कर दिया होता जो इस दशा में जिंदा रहने से कहीं अच्छा होता नहीं मनुष्यों में मनुष्य बनना पड़ेगा"। [1] ऐसा प्रतीत होता है मानो उनकी सहनशीलता अब जवाब दे चुकी थी वे उन समस्त शक्तियों के विरूद्ध मोर्चाबन्द होने की बात करते हैं जो सामाजिक कुव्यवस्था के लिए उत्तरदायी है अतः कहतें हैः–"दरिंदों के बीच में उनसे लड़ने के लिए हथियार बाँधना पड़ेगा। उनके पंजों का शिकार बनना देवतापन नहीं, जड़ता हैं"। [2] यथार्थ के इस निर्भीक चित्रण में, समझौते और समाधान मूलकता के निषेध में, ऐतिहासिक चेतना और सामाजिक चेतना के अंतर्सयोंजन में हम प्रेमचंद की मानसिकता में घटित हो रहे क्रांतिकारी परिवर्तन की झलक स्पष्ट रूप से देख सकते हैं।

---

[1] मंगलसूत्र–प्रेमचंद पृष्ठ संख्या 60

[2] मंगलसूत्र–प्रेमचंद पृष्ठ संख्या 60

प्रेमचंद एवं उनका युग–

साहित्य अवनि पर प्रेमचंद के नाम से विख्यात साहित्यकार के बचपन का नाम धनपतराय था। उनका जन्म 31 जुलाई सन् 1880 में बनारस के समीप लम्ही नामक गाँव में एक निम्न मध्यवर्गीय कायस्थ परिवार में हुआ था। इनके पिता अजायबलाल 20 रूपये माहवार पर एक डाकखाने में मुंशी थे जिसके कारण प्रेमचंद का बचपन अत्यन्त विपन्नता में व्यतीत हुआ इनकी माता का नाम आनन्दी देवी था जो अपनी ममता से उनके जीवन को अभावों की क्षतिपूर्ति कर देती थी मगर काल के क्रूर हाथों ने 8 वर्ष की अवस्था में उनके सर से ममता का आँचल भी छीन लिया। पिता ने दूसरा विवाह कर लिया। अब प्रेमचंद को एक मात्र दादी के स्नेह का सहारा था परन्तु वे भी अधिक दिनों तक जीवित न रह सकी। अब उन्हें पग–पग पर विमाता के कोप का भाजन बनना पड़ता। माता के प्रेम तथा जीवन के समस्त सुखों से वंचित प्रेमचंद को एक संघर्षपूर्ण जीवन जीने के लिए बाध्य होना पड़ा। "उनका मोटा–झोटा, खाना और पहरना" था। बारह आने वाला चमरौंधा जूता और चार आने गज का कपड़ा ये ही उनके जीवन की समस्त आवश्यकतायें थी।"[1] आर्थिक विपन्नता के कारण प्रेमचंद मितव्ययी बन गये। रोजमर्रा की आवश्यकता के लिए भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था, इसी का नाम बचत था, और ये बचत उसकी जिन्दगी थी। जैसे–जैसे बचपन की अवस्था बढ़ती गयी वैसे–वैसे आवश्यकता मुँह बाये खड़ी रहती थी। पैसों की–"खनक के साथ उनका दूर का भी परिचय न था। अतः उसके प्रति उनका बाल–सुलभ आकर्षण ही नहीं, उसको पाने की अभिलाषा भी थी। इसी कारण फीस के मात्र बारह आने मौलवी साहब को देने से पूर्व ही कम हो जाते थे। वे विमाता के कोप से त्रस्त थे इस सम्बन्ध में पिता से भी कुछ न कह पाते।"[2] पन्द्रह वर्ष की अल्पायु में ही उनके पिता ने उनका विवाह बस्ती जिले के एक गाँव रामपुर के एक जमींदार की बेटी से कर दिया जो सूरत और स्वाभाव दोनों ही में प्रेमचंद के विपरीत थी अतः प्रेमचंद की उनकी उनसे न बनी प्रेमचंद की बेजोड़ शादी करके जो भूल उनके पिता से हुई उनका उन्हें इतना दुख था कि उनके पिताजी अधिक दिनों तक जी नहीं पाये। प्रेमचंद के विवाह के एक वर्ष बाद ही उनके पिता की मृत्यु हो गयी, अब सारे परिवार का भार प्रेमचंद पर आ पड़ा। उनकी पत्नी और विमाता जिन्हें वे चाची कहते थे, उन दोनों में प्रतिदिन झगड़े हुआ करते थे जिससे तंग आकर प्रेमचंद ने 1904 ई0 में अपनी पत्नी को

---

[1] प्रेमचंद धर में शिवरानी देबी–प्रेमचंद 25
[2] प्रेमचंद घर में शिवरानी देबी–प्रेमचंद 23

सदा–सर्वदा के लिये उनके मायके भेज दिया। 1905 ई0 में प्रेमचंद ने दूसरा विवाह फतेहपुर जिले में रहने वाली एक बाल विधवा शिवरानी देवी से किया। उस समय में ऐसी शादी अपने आप में एक अत्यन्त साहसी कृत्य था। जो प्रेमचंद के अदम्य साहस का द्योतक है। शिवरानी देवी से प्रेमचंद को एक पुत्री तथा दो पुत्रों की प्राप्ति हुई बेटी का नाम कमला, बड़े–बेटे का नाम श्रीपत और छोटे का अमृतराय था।

प्रेमचंद ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा एक मौलवी साहब से प्राप्त की तत्पश्चात उनके पिता का गोरखपुर स्थानांतरण हो गया वह उन्हें स्कूल में भर्ती कराया गया जहाँ उनकी मुलाकात एक तम्बाकू के ब्यापारी के बेटे से हुई। कथा साहित्य में प्रेमचंद की रूचि इसी लड़के साहचर्य का परिणाम थी। उर्दू साहित्य से प्रेमचंद को बचपन से विशेष लगाव था। उर्दू और अंग्रेजी के उपन्यास वे अधिक चाव से पढ़ा करते थे अपनी इस रूचि के विषय में वे स्वयं लिखते हैं–"उस समय मेरी उम्र कोई बारह वर्ष की रही होगी। हिन्दी बिलकुल न जानता था। उर्दू उपन्यास पढ़ने का उन्माद था। मौलाना शरर, पं0 रतननाथ सरभार मिर्जारूसवा, मौलवी मुहम्मद अली उस समय के सर्वप्रिय उपन्यासकार थे। इनकी रचनायें जहाँ मिल जाती थीं स्कूल की याद भूल जाती थी और पुस्तक समाप्त करके ही दम लेता था। उस जमाने में रेनाल्ड के उपन्यासों की धूम थी। उर्दू में उनके अनुवाद धड़ा–धड़ निकल रहे थे और हाथों–हाथ बिकते थे। मैं भी उनका आशिक था। स्वर्गीय हजरत नियाज ने जो उर्दू के प्रसिद्ध कवि हैं और जिनका हाल ही मे देहान्त हुआ है, रेनाल्ड़ की एक रचना का अनुवाद 'हरमसरा' के नाम से किया। उसी जमाने में लखनऊ साप्ताहिक के 'अवधपंच' के सम्पादक स्वर्गीय मौलाना सज्जाद हुसैन ने, जो हास्य रस के अमर कलाकार थे, रेनाल्ड़ के एक दूसरे उपन्यास का अनुवाद 'धोखा या तिलस्मी फानून' के नाम से किया था। ये सारी पुस्तके मैने उसी जमाने में पढ़ी। पण्ड़ित रतननाथ सरशार से तो मुझे त्रृप्ति ही नही होती थी। उनकी सारी रचनाएँ मैने पढ़–डाली दो तीन वर्षो। में मैने सैकड़ों ही उपन्यास पढ़ डाले होगें। जब उपन्यास का स्टाक समाप्त हो गया तो मैने नवलकिशोर प्रेस से निकले हुए पुराणों के उर्दू अनुवाद भी पढ़े। 'तिलिस्म होशरूवा' नामक तिलस्मी ग्रन्थ के 17 भाग उस वक्त निकल चुके थे और एक एक भाग बड़े सुन्दर रायल के आकार के दो–दो हजार पृष्ठों से कम न होगा

और इन 17 भागों के उपन्यास उसी पुस्तक के अलग–अलग प्रसंगो पर पच्चीस भाग छप चुके थे। इनमें से सभी मैने कई पढ़े।"[1]

पिता जी के गाँव आ जाने के पश्चात वह बनारस के क्वीन्स कालेज मे भर्ती हो गए 1898 ई0 मे उन्होने हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण की 1902 में प्रेमचन्द ने इलाहाबाद में ट्रेनिक स्कूल में प्रवेश किया और वहीं से 1904 ई0 में जूनियर्स टीयर्स सर्टिफिकेट प्राप्त किया। कालेज के प्रधानाचार्य प्रेमचन्द से प्रसन्न थे अतः वह माडल स्कूल के हेडमास्टर के पद पर नियुक्त हुए 1905 ई0 में गर्वमेंट स्कूल कानपुर मे उनकी नियुक्ति सहायक अध्यापक के रूप मे हुई। 1909 ई0 में महोबा जिला हमीरपुर में डिस्ट्रिक बोर्ड के सब इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल हुए सरकारी नौकरी के सिलसिले में उन्हे बस्ती और गोरखपुर भी रहना पड़ा। इसी समय उन्होने 1916 ई0 में इन्टरमीडिएट और 1919 ई0 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्राइवेट बी0 ए0 की उपाधि प्राप्त की। 1920 ई0 में महात्मा गाँधी से प्रभावित होकर उन्होने सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया इसके बाद उनकी नियुक्ति कानपुर के मारवाडी स्कूल मे हेड़मास्टर के पद पर हुई। जहाँ प्रबन्धक के साथ उनकी नही बनी और वे बनारस वापस चले आए। उन्ही दिनों सम्पूर्णानन्द जी गिरफ्तार कर लिए गए और शिवप्रसाद गुप्त जी को मर्यादा के लिए एक योग्य सम्पादक की तलाश थी और इस पद के लिए उन्होने प्रेमचंद का चुनाव किया। लगभग डेढ़ वर्ष तक प्रेमचंद उसके सम्पादक रहे तत्पश्चात गुप्त जी के ही काशी विद्यापीठ में अध्यापक हुए बनारस के अतिरिक्त कुछ समय तक लखनऊ में दुलारे लाल भार्गव के प्रेस गंगा पुस्तक माला में भी उन्होने नौकरी की।

प्रेमचंद की प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू में हुई थी। अपने साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ भी उन्होने उर्दू से ही किया प्रारम्भ में वे नवाबराय के नाम से लिखा करते थे। कहा जाता है कि लगभग 1893 मे पहला निबन्ध संग्रह 'मेरी पहली रचना' प्रकाशित हुई उस समय प्रेमचंद की उम्र 13 वर्ष थी इसके पश्चात नाटक 'होनहार बिरवान के होते चिकने पात' नामक रचना की सृष्टि की। 1899 में ये एक पाठशाला में 18 रूपया माहवारी नौकरी करने लगे और रचना सृजन जारी रहा। इसी समय 'रूठी रानी' उपन्यास भी लिखा। थोड़े समय बाद 1901 के समकक्ष 'श्यामा' नामक उपन्यास लिखा। 1902 में 'प्रेमा' नामक उपन्यास उर्दू में लिखा। 1904 में उन्होने 'हम खुरमा वा हमशवाब' नामक उपन्यास की रचना किया।

---

[1] में प्रेमचंद लिखित'मेरी पहली रचना, निबन्ध।

प्रेमचंद की प्रथम कहानी 'ममता' 1909 के करीब प्रकाशित हुई। 1923 में काशी में सरस्वती प्रेस की स्थापना प्रेमचंद ने की। और 1928 में 'माधुरी' के सम्पादक हुए। इसके पहले अनेक उपन्यास भी लिख चुके थे अन्तकाल में उन्होने 'मंगलसूत्र' अपूर्ण रचना को अपनी लेखनी के द्वारा अन्तिम पैगाम दिया और हिन्दी उपन्यास सम्राट इस जगत से 8 अक्टूबर 1936 को हमें अमूल्य निधियाँ देकर सदा–सदा के लिए सो गए। अपने संघर्षमय जीवन के विषय मे लिखा–'मेरा जीवन सपाट और समतल मैदान है, जिसमें कहीं–कहीं गडढ़े तो है पर टीलों, पर्वतों, घनें जंगलो, गहरी घाटियों और खण्डहरों का स्थान है।"[1]

यह सत्य है कि "साहित्यकार पैदा होता है बनाया नही जाता।" [2]उसमें साहित्य लेखन की प्रतिभा नैसर्गिक होती है जिस प्रकार एक नन्हे से बीज मे एक विशालकाय वृक्ष का रूप धारण करने की क्षमता निहित होती है उसी प्रकार साहित्यकार में जीवन की छोटी से छोटी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति हेतु साहित्य सृजन की क्षमता विद्यमान होती है परन्तु जिस प्रकार बीज मिट्टी, जल, वायु, ताप और प्रकाश के अभाव में वृक्ष के रूप में विकसित नही हो सकता उसी प्रकार साहित्यकार भी युग–जीवन से अलग रहकर केवल अपनी प्रतिभा के आधार पर साहित्य सृजन नहीं कर सकता दूसरे शब्दों में युग तथा समाज से सरोकार रखे बिना वह साहित्य रचना कर ही नहीं सकता अतः प्रेमचंद के साहित्य को सम्यक् रूप से जानने तथा समझने के लिए उनकी युगीन पृष्टभूमि से परिचित होना आवश्यक है– "क्योंकि उसकी काल की परोक्ष–स्वीकृत ने प्रेमचंद के कथा साहित्य को अधिक संगठित और क्रम–बद्ध कथा वस्तु दी थी। प्रेमचंद ने अपने युग की आवश्यकताओ के अनुरूप ऐसे कथा साहित्य की रचना की जिसके सहयोग से समाज को विकास मिला और समाज का प्राणी अपने को अधिक निकट से पहचान सका। प्रेमचंद ने अपनी गहरी, सूक्ष्म और व्यापक अपुभूति के द्वारा कथा साहित्य को नए प्राण दिये, जिसका एक लम्बा क्रमबद्ध इतिहास है। प्रेमचंद का युग भारतीय जनता के राष्ट्रीय संघर्ष का युग था। पराधीनता के कारण प्रत्येक क्षेत्र में भारत का विकास रूका हुआ था उसकी सभी समस्याओं का निराकरण बिना स्वाधीनता प्राप्ति के सम्भव नहीं हो पा रहा था।" [3]

---

1. 'कफन' मुंशी प्रेमचंद पृ0 57।
2. कुछ विचार–प्रेमचंद पृ0 17
3. प्रेमचंद और उनका साहित्य–डा0 (श्रीमती शीला गुप्ता पृ0 32)।

भारतवर्ष में अंग्रेजी का आगमन तो व्यापारी के रूप मे हुआ था परन्तु धीरे–धीरे उन्होने अपनी शक्ति में बृद्धि करते हुए मुगल साम्राज्य के अन्त तक आते आते देश पर पुर्ण रूप से अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया तथा 1857 ई0 में अन्तिम मुगल शासक बहादुर शाह जफर को परास्त करके स्वयं यहाँ के शासक बन बैठे। देश की स्वाधीनता कि लिए किया जाने वाला 1857 ई0 का प्रथम विद्रोह कतिपय कारणों से सफल नहीं हो सका किन्तु इसका एक सकारात्मक परिणाम यह हुआ कि इस विद्रोह से समूचे देश मे चेतना की एक लहर फैल गई। प्रत्येक व्यक्ति अपने–अपने स्तर से देश की स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करने को तत्पर हो गया। अंग्रेज शासन के विरूद्ध भारतीयों के हद्‌य में असन्तोष की भावना दिन प्रतिदिन तीव्र होती जा रही थी जिसे शान्त करने के लिए मिस्टर ए0 ओ0 ह्यूम ने बिट्रिश शासन प्रणाली में सुधार लाने हेतु 1885 ई0 में इंडियन नेशनल काँग्रेस की स्थापना की। काँग्रेस समय–समय पर शासन प्रबन्ध मे सुधार लाने के लिए बिट्रिश सरकार से अनुरोध करती रही परन्तु उसे अपने प्रयासो में सफलता प्राप्त नहीं हुई। 1905 ई0 में लार्डकर्जन ने बंगाल विभाजन की घोषणा की तो देश में विद्रोह का सैलाब उमड़ पड़ा–"सम्पूर्ण भारत ने बंगाल के सवाल को अपना सवाल बना लिया। प्रत्येक प्रान्त ने बंगाल के प्रश्न के साथ अपनी समस्याओं की ओर जोडकर आन्दोलन को ज्यादा गहरा रंग दिया।"[1] बंगाल विभाजन के विरूद्ध चलाए जाने वाले इस देश व्यापी आन्दोलन को बंग–भंग आन्दोलन की संज्ञा दी गई। इस आन्दोलन को कुचलने के लिए शासन ने जो अत्याचार पूर्ण नीति अपनाई उसने देश में उग्रवादी राष्ट्रीय विचारों को जन्म दिया। लोकमान्य बालगंगाधरतिलक, बिपिन चंद्रपाल और लाला लाजपतराय इन्ही उग्रवादी विचारों के पोषक थे उनका विश्वास था कि सरकार से अपनी बात मनवाने के लिए एक प्रभावशाली आन्दोलन करना अति आवश्यक है। बंग–भंग आन्दोलन मे भारतीयो की एकता को देखते हुए उनके मध्य फूट डलवाने के लिए गौरांग महाप्रभू की कूटनीति ने मुस्लिम लीग की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अन्ततः 1906 ई0 में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई। 1907 ई0 में सूरत में कांग्रेस के अखिल भारतीय सम्मेलन में इस मुद्दे पर विवाद हो गया कि अंग्रेजों के विरूद्ध हिंसात्मक नीति अपनाई जाए अथवा अहिंसात्मक जिसका कोई सर्व सम्मत निणर्य न होने के कारण काँग्रेस नर्मदल तथा गर्म दल के रूप में विभक्त हो गई। यद्यपि काँग्रेस पर नर्म दल का प्रभुत्व था तथापि जनसाधारण विशेष कर युवा वर्ग का झुकाव गर्मदल की ओर अधिक था। इस

---

[1] कांग्रेस का इतिहास–डा0 पट्टाभि सीता रामया–भाग–1–पृ0 65

दल को अनुयायियों का विचार था कि विदेशी शासकों के अत्याचार का मुँह तोड़ जवाब हिंसात्मक क्राँति द्वारा ही दिया जा सकता है।

1914 ई0 में लोकमान्य तिलक ने होमरूल आन्दोलन प्रारम्भ किया इस आन्दोलन ने देश भर में सफलता अर्जित की जिसके परिणाम स्वरूप 1916 ई0 मे पूना में होमरूल लीग की स्थापना हुई।

1910 से 1917 ई0 तक का समय विश्व भर में घटित होने वाली महत्वपूर्ण घटनाओं का समय था। दक्षिण अफ्रीका में गाँधी जी को अहिंसात्मक सत्याग्रह में सफलता प्राप्त हुई। 1914 ई0 में प्रथम विश्व युद्ध प्रारम्भ हुआ जिसमे भारतीय सेनाओ को भी अंग्रेजो का साथ देना पड़ा क्योंकि मिश्र राष्ट्र के राजनीतिज्ञों ने यह आश्वासन्न दिया था कि वे प्रजातन्त्र की सुरक्षा तथा निर्बल राष्ट्रों की आत्म–निर्भर बनने के अधिकार देते हुए युद्ध करा रहे हैं। अतः भारतीयों को इस युद्ध के बाद स्वशासन के अधिकार प्राप्त होने की आशा थी। इस युद्ध में जर्मनी की विजय हुई। कोई भी युद्ध निधन तथा निर्दोष जनता के लिए विनाश का संदेश लेकर आता है अतएव विश्वयुद्ध का कुछ ऐसा ही परिणाम हुआ संसार के दूसरे पराधीन देशों की भाँति भारत की जनता की स्थिति भी पहले से कहीं अधिक दयनीय हो गई। 1916 ई0 में भारतीय राजनीति में गाँधी जी ने सक्रिय रूप से भाग लेना प्रारम्भ किया जिससे देश के स्वाधीनता आन्दोलन को एक नयी स्फूर्ति मिली। अंग्रेज सरकार के दिनो–दिन बढ़ने वाले शोषण तथा अत्याचारों ने भारतीयों के हद्य में स्वाधीनता प्राप्ति की कामना को और भी बलवती कर दिया 1918 ई0 में जब दिल्ली काँग्रेस में 'भीतर स्वायत शासन' की माँग की गई, तो अंग्रेजो ने भारतीयों के हौसले पस्त करने के लिए 1919 ई0 में रोलटएक्ट की घोषणा की गई जिसके विरोध में गाँधी जी ने सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ किया जिसमें देश की जनता ने बढ़–चढ़ की भाग लिया इस आन्दोलन में हिन्दू–मुस्लिम समान रूप से सम्मिलित हुए 16 अप्रैल 1919 ई0 को इस एक्ट के विरोध में देश व्यापी हड़ताल की गई जिसका अंग्रेजो ने निर्ममता पूर्वक दमन करते हुए स्थान–स्थान पर गोलियाँ चलाई उनके इस रक्तपात का सबसे वीभत्स दृश्य जलियां वाला बाग नरसंहार के रूप में दृष्टि गोचर होता है इस अमानवीय कृत्य को अंग्रेज अफसर जनरल डायर ने अंजाम दिया था। इसके पश्चात गाँधी जी ने सत्याग्रह आन्दोलन को स्थगित कर दिया।

सन, 1920 ई0 से गाँधी जी ने देश में जिस नये आन्दोलन का सूत्र पात किया वह अहिंसात्मक आंदोलन था जिसका प्रभाव देश के सभी वर्गो पर समान रूप से पड़ा भारत के एक एक गाँव ने इस आन्दोलन कारियों की गिरफ्तारियाँ होने लगी परन्तु इस आन्दोलन की सफलता ने भारतवासियों के उत्साह को क्षीण नही होने दिया। अभी तक असहयोग आन्दोलन तथा किसान आन्दोलन अलग–अलग चल रहे थे। किसानों मे विद्रोह की भावना तेजी से पनप रही थी और वे हिंसा का मार्ग अपना रहे थे 1921 ई0 में चौरी–चौरा में शोषण से क्षुब्ध किसानो ने एक पुलिस चौकी को स्वाहा कर दिया। किसानो की इस हिंसात्मक कार्यवाही के परिणाम स्वरूप गाँधी जी ने असहयोग आन्दोलन के स्थगन की घोषणा कर दी। इस आन्दोलन के दण्ड स्वरूप गाँधी जी को छः माह का कारावास भोगना पड़ा। 1922 ई0 में 'लगानबंदी' आन्दोलन प्रारम्भ हुआ जिसके विरूद्ध ब्रिट्रिश सरकार ने बडी कठोर नीति अपनाई जिसके परिणाम स्वरूप 'स्वराज्यपार्टी' की स्थापना हुई।

1922 से 1926 ई0 तक देश में स्थान–स्थान पर साम्प्रदायिक दंगे हो रहे थे सारा देश साम्प्रदायिक की आग में झुलस रहा था। एक ओर मुस्लिम लीग ने काँग्रेस से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया था वही दूसरी ओर हिन्दू महासभा को शक्तिशाली बनाने के लिए राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की स्थापना की गई।

सन, 1927 ई0 में 'साइमन कमीशन' की घोषणा की गई। फरवरी 1928 ई0 में यह कमीशन सर साइमन के नेतृत्व में भारत आया। इस कमीशन मे एक भी भारतीय के सम्मिलित न होने से रूष्ट लोगो ने इसका बहिष्कार करते हुए देशभर में साइमन वापस जाओ' के नारे लगाए। इसी कमीशन का बहिष्कार करते हुए लाला लाजपतराय पर लाठियाँ बरसाई गयी जिसके कारण वे शहीद हो गए। देश वासियों के मन में व्याप्त असन्तोष बढ़ता ही जा रहा था ऐसे समय में पं0 जवाहर लाल नेहरू के सम्मिलित होने से पार्टी मे एक नयी उमंग पैदा हो गयी।

31 दिसम्बर 1929 ई0 को लाहौर के काँग्रेस अधिवेशन मे देश की पूर्णस्वाधीनता की माँग की गई। 26 जनवरी 1930 ई0 का दिन देश भर में 'स्वराज्य दिवस' के रूप मे मनाया गया। 12 मार्च 1930 ई0 को गाँधी जी ने ऐतिहासिक डांडी यात्रा प्रारम्भ करके नमक आन्दोलन शुरू किया 16 अप्रैल 1930 ई0 को महात्मा गाँधी और उनके अनुयायी डांडी पहुँचकर नमक बनाया जिसके परिणाम स्वरूप गाँधी जी के साथ हजारों लोगो को कारागार में डाल दिया गया।

जिसका देश भर में खुलकर विरोध हुआ अन्ततः 1931 ई0 में गाँधी जी को समझौते के लिए विवश होना पडा 1931 ई0 में होने वाला यह समझौता भारतीय इतिहास में 'गाँधी इर्विन पैक्ट' के नाम से प्रसिद्ध है यह पहला अवसर था जब भारत और इंग्लैण्ड़ के प्रतिनिधि समान रूप से बैठक में भाग ने रहे थे।

इधर गाँधी जी गोलभेज, सम्मेलन में काँग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित होने के लिए इंग्लैण्ड रवाना हुए, इधर देश की परिस्थिति और भी चिंता–जनक होती जा रही थी। लार्डबिलिन्गठन के समय में संयुक्त प्रान्त के किसान लगान बंदी आन्दोलन चला रहे थे,। हरिजनो के लिए पृथक निर्वाचन के प्रस्ताव द्वारा उन्हे हिन्दू समाज से अलग करने का जोरदार प्रयत्न जारी था जिसका विरोध करते हुए महात्मा गाँधी ने आमरण अनशन प्रारम्भ किया जिसकी परिणति 'पूना प्रैक्ट' के रूप मे हुई। 1335 ई0 में 'गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट' पास हुआ जिससे काँग्रेस पूर्णता सहमत नही थी परन्तु अन्त में कुछ शर्तो पर उसने निर्वाचन मे सम्मिलित होने का निर्णय लिया इन चुनावो देश के बहुत बड़े भाग पर काँग्रेस मंत्री मण्डलो की स्थापना हुई।

किसी भी देश की प्राकृतिक सम्पदा तथा भौगोलिक वातावरण उस देश की आर्थिक प्रक्रिया की धुरी होते है–भारतवर्ष की अधिकतर भूमि उपजाऊ है अतः प्राचीन काल से ही कृषि यहाँ के लोगों का प्रमुख व्यवसाय और देश की अर्थव्यवस्था का आधार रही है यहाँ की अधिकांश जनता गाँवो में निवास करती थी इन गाँवों का आर्थिक स्वरूप लगभग अपरिवर्तन शील था। अंग्रेजों के आगमन से पूर्व देश के यह अगणित छोटे–छोटे गाँव शासन की स्वतंत्र इकाई हुआ करते थे इन गांवो की व्यवस्था के विषय में कार्लमार्क्स ने लिखा है–

"ये छोटे–छोटे और बहुत पुरातन गाँव............भूमि के संयुक्त अधिकार खेती और हस्तकौशल के समन्वय और श्रम के अपरिवर्तित विभाजन पर आधारित थे............सौ से लेकर हजारां एकड़ भूमि में एक–एक गाँव की स्थिति होती थी और इनमे से प्रत्येक एक पूर्ण इकाई था, जहाँ अपनी समस्त आवश्यकताओं की सामाग्री उपजा ली जाती थी। यह समस्त सामग्री ग्राम समाज के स्वतः उपयोग की होती थी और कभी विक्रेय (कामोडिटी) का रूप नही ले पाती थी.............. अतिरिक्त उपज ही विक्रय हो सकती थी, लेकिन वह भी तब तक नही जब तक उसका एक निश्चित अंश कर या लगान के रूप मे राजा तक नही पहुँच गया है"

"साधारण से साधारण गाँव मे संयुक्त कृषि होती थी और धान्य का आपस में बँटवारा हो जाता था। साथ–साथ प्रत्येक परिवार में काटने–बुनने का काम होता था।"[1]

अंग्रेजो ने अपनी सत्ता के सुदृढ़िकरण के लिए भारत में आर्थिक शोषण की जो नीति अपनाई उसके परिणाम स्वरूप प्रेमचंद के युग तक आते–आते भारत की ग्राम व्यवस्था पूरी तरह विश्रंखलित हो गई इग्लैण्ड के कारखानो मे तैयार किये गए माल की खपत के उद्वेश्य से अंग्रेजों ने भारतीय उद्योग धन्धो को नष्ट कर दिया जिसके कारण कारीगरों को भूखो मरने की नौबत आ गई ऐसे में, गाँव जाकर खेती करने के अतिरिक्त उनके पास और कोई विकल्प न था।

"इस तरह जो भारत, खेती और उद्योग–धन्धों की मिली–जुली व्यवस्था का देश था, उसे जबरदस्ती ब्रिटेन के कलकारखानो वाले पूँजीवाद का खेतिहर उपनिवेश बना दिया गया।"[2]

किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिए कृषि एवं उद्योग धन्धों के मध्य संतुलन होना अव्यावश्य होता है। बेकार कारीगरों के कृषि को जीविका बनाने के कारण यह संतुलन पूर्ण रूप से समाप्त हो गया– सामर्थ्य से अधिक बोझ ने भारतीय कृषि को लाभ हीन बना दिया। अंग्रेजों की इस आर्थिक शोषण नीति का सर्वाधिक दुष्परिणाम भारत के दीन–हीन कृषक वर्ग को भुगतना पड़ा कृषक जो अब तक अपनी भूमि का स्वामी हुआ करता था अंग्रेजो की नई कृषि प्रणाली के अन्तर्गत भूमि पर से उसका अधिकार समाप्त हो गया तथा "जमीन के मालिको का एक नया वर्ग सामने आया। एक ऐसा वर्ग जिसको ब्रिटिश सरकार ने खडा किया था और जो बहुत हद तक उस सरकार से मिला जुला था।"[3] जमीदार जो पहले केवल मालगुजारी वसूल करने का अधिकारी था अंग्रेजों की नयी भूमि व्यवस्था के अन्तर्गत भू–स्वामी बन गया और कृषक लगान अदा करने वाला एक दास, लगान न चुकाने की दशा में खेत बेचे और रेहन रखे जाने लगे। अति वृष्टि, अनावृष्टि ओले तथा टिड्डी जैसी दैविक आपदाओं के बावजूद किसानो से नियत दर पर निर्दयता पूर्वक लगान वसूल किया जाता। कृषक लगान देने में असमर्थ होते तो उनकी भूमिछीन ली जाती। प्रथम विश्व युद्ध के नतीजे में उत्पन्न आर्थिक संकट के परिणाम स्वरूप 1929 मे होने वाली विश्व व्यापी मन्दी के प्रभाव

1. मार्क्स एंजिल्स : सेलेक्टेड वर्क्स पृ0 316।
2. भारत :वर्तमान और भावी–रजनी पामदत्त 1956 नृ0 54।
3. हिन्दुस्तान की कहानी–पं0 जवाहर लाल नेहरू पृ0 374।

से भारतवर्ष भी अछूता न रहा जिसका सबसे बुरा असर कृषको पर पड़ा आर्थिक मन्दी के कारण पैदावार के मूल्य तो आधे हो गए परन्तु लगान की दर मे कोई कमी नही की गई जिसके कारण– "किसान लगान तथा ऋण चुकाने योग्य भी न रहा तथा अपनी जीविका की आवश्यक वस्तुएँ खरीदने में भी भारतीय कृषक असमर्थ हो गए। विनिमय दर के कारण व्यापारिक तथा औद्योगिक वर्ग भी असन्तुष्ट हो गया। इसी बीच मजदूरो के मध्य भी वर्ग चेतना आ गई। वस्तुओ के दाम कम होते जा रहे थे तथा रूपये के दाम बढ़ रहे थे। मजदूरों के बेतन मे वृद्धि नही की जा रही थी जिससे मिलों में हडताले आरम्भ हो गई। बंगाल की जूट मिलों, जमशेद के लोहे के कारखानो तथा बम्बई की सूत–कपास की मिलो में भी भारी हडताले आरम्भ हो गई।"[1]

प्रेमचंद युगीन समाज पूरी तरह–अस्त व्यस्त था। संयुक्त परिवार प्रथा जो कि भारतीय समाज की आधार शिला थी जिसके अनुसार परिवार के सभी सदस्य मिल–जुलकर एक ही छत के नीचे रहते थे। इस संयुक्त–परिवार प्रथा के अनेक लाभ थे–

"उपभोग के क्षेत्र मे भी संयुक्त परिवार के कारण आर्थिक दृष्टि से काफी बचत हो जाती थी। एक साथ रहने के कारण संयुक्त रूप से चीजो पर व्यय किया जाता था और इस तरह दुहरे खर्च की आश्यकता ही नही रहती थी।"[2]

नवीन आर्थिक शक्तियों पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव ने व्यक्तिवादी प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया जिसने भारतीय संयुक्त परिवारो को विखेर कर रख दिया जिसके परिणाम स्वरूप ....पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित अनेक समस्याओ को जन्म दिया घरों के टुकड़े हो गए, परिवार सदस्यों में पारस्परिक प्रेम की भावना का ह्रास होने लगा परिवार की अनाथ स्त्रियाँ जिनका भरण–पोषण संयुक्त परिवारों में किसी न किसी प्रकार होता था, निराश्रम हो गई।

शताब्दियों से सामाजिक अन्याय तथा अत्याचार की शिकार पद्दलित तथा शोषित नारी की दुर्दशा प्रेमचंद युगीन समाज में चरमोत्कर्ष पर थी यद्यपि सती प्रथा पर कानूनन रोक लगाई जा चुकी थी तथापि इस नारी की दशा मे कोई विशेष परिवर्तन नही हुआ क्योंकि सती प्रथा के निषेध के साथ ही विधवा–विवाह की समस्या ने गम्भीर रूप धारण कर लिया था इसके अतिरिक्त, दहेज–प्रथा,

---

[1] प्रेमचंद की कहानियों में ग्राम्य जीवन का चित्रण : सरोज गौड़ पृ0 22।

[2] भारतीय अर्थशास्त्र पृ0 103।

अनमेल– विवाह, बहुपत्नी प्रथा, पर्दा–प्रथा और तलाक–समस्या ने नारी जीवन को नाटकीय बना रखा था जिसके कारण समाज मे नारी की दशा अत्यन्त शोचनीय थी नारी की इस दुर्दशा ने समाज के कुछ सहृदय विचारकों, को उनकी समस्याओं पर विचार करने के लिए विवश कर दिया जिन्होंने नारी मुक्ति के लिए शिक्षा पर विशेष बल दिया वे अनमेल विवाह तथा दहेज प्रथा के उन्मूलन के लिए प्रयास रत रहे। आर्यसमाज ने विशेष रूप से बाल विवाह एंव अनमेल विवाह का विरोध किया। समाज मे विधवाओं के सम्माननीय जीवन यापन के लिए सेवा सदनो तथा आश्रमो की स्थापना पर बल दिया जाने लगा।

प्राचीन समय से चली आ रही वर्ण व्यवस्था जो कि कर्म पर आधारित थी। अब जन्म को उसका आधार मान लिया गया था जिसके अनुसार व्यक्ति के जन्म से ही, धार्मिक सामाजिक, आर्थिक, तथा राजनैतिक अधिकार निश्चित हो जाते। वर्ण के इस विधान को ईश्वरीय विधान समझा जाता था जिसका उल्लंघन सर्वथा वर्जित था विवेच्य काल तक आते–आते इसने जटिल रूप धारण कर लिया समाज अनेक छोटी–छोटी जातियों एवं उपजातियों में विभक्त हो गया जिसके परिणाम स्वरूप जनता मे, ऊँच–नीच की भावना ने जन्म लेकर पूरे सामाजिक वातावरण को विषाक्त बना दिया स्वयं को उच्च तथा श्रेष्ठ समझनेवाली जातियों ने अपनी प्रभुता के बल पर निम्न जातियों के जीवन को पशु तुल्य बना दिया था। समाज के अछूत वर्ग वर्ण –व्यवस्था के इस देश का सबसे अधिक शिकार हुआ। जिनके उद्धार के लिए समाज सुधारकों तथा देश के प्रगतिशील नेताओं ने देश के अनेक स्थान पर सुधारवादी संस्थाओं की स्थापना की गई। महात्मा गाँधी ने राष्ट्रीय आन्दोलन के कार्यक्रमों मे अछूत समस्या को सम्मिलित करके अछूतोद्धार आन्दोलन को एक नई स्फूर्ति प्रदान की।

इसके अतिरिक्त तद्युगीन समाज धर्मभीरूता के गहन अंधकार मे लिप्त था, जनता की पुनर्जन्म, भाग्यवादिता, अंधविश्वास तथा अंधमान्यताओं में अटूट आस्था थी जिसने अनेक मानसिक विकास को अवरूद्ध करके उन्हे घोर निराशावादी बना दिया था। जनता की इस जड़ता को समाप्त करने के लिए धार्मिक क्षेत्र में भी सुधार की आवाज उठाई जाने लगी थी।

प्रेमचंद युग की इन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों के देखते हुए निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि वे एक ऐसे संक्रामित युग की उपज थे जिसमे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में असन्तोष व्याप्त था।

जिसमे राजनीतिक क्षेत्र में उथल–पुथल मची थी। देश परतन्त्रता से मुक्त होने के लिए ब्याकुल था। यह एक ऐसा युग था जिसमें एक ओर ब्रिट्रिश शासन के अत्याचार दमन दुर्व्यवस्था, भेदभाव मूलक नीति थी, धार्मिक, अंधविश्वास, रूढिवादिता, अशिक्षा तथा अज्ञानता थी, अकाल था, विमारी थी, आपसी कलह था, टैक्सों की वृद्धि थी, जनता में भय और त्रास व्याप्त था—" सामाजिक क्षेत्र में कई वर्गो की आपस में टकराहट हो रही थी। सामंतवादी समाज और महाजनी समाज की आपस मे टकराह तो थी ही, साथ ही, सामंतो यानी जमीदारों और किसानो, पूंजीपतियों ओर मिलमालिको की आपस मे टकराहट हो रही थी। पूंजीवादी यानी महाजनी सभ्यता उदित हो रही थी, जमीदारी प्रथा देश में थी ही। महाजनी सभ्यता सामंती के मूल्यों को निस्सार सिद्ध कर रही थी। जमींदारी प्रथा वास्तव में सामंती सभ्यता का ही एक अंग है। महाजनी सभ्यता के नाते शहरो में कल–कारखानें कायम हो रहे थे और सामंती रूढियां चरमराकर टूटने को हो रही थी। छूआछूत, जाति–पाति आदि का भेदभाव धीरे–धीरे समाप्त हो रहा था। सांमत कालीन अभिजात–भावना खोखली सिद्ध हो रही थी। धर्म की महत्ता और देशी रियासतो के राजों–महराजो की महत्ता नयी सत्यता और नये साम्राज्यवाद को आने से रोक नही सकी, उसकी निस्सारता प्रमाणित हो गई अब तक देश की जो सम्पत्ति राजों, सामंतो और जमीदारों के हाथो में केन्द्रित थी, वह अब शहरो के उद्योगपतियों के हाथो में आने लगी। इस प्रकार इन दोनो के बीच एक टकराहट दिखाई पड़ती है....................................विदेशी पूँजीवाद को विदेशी साम्राज्य की शक्ति प्राप्त थी....................................किसान अपने खून से जमीदारों और साम्राज्यवादी सरकार तथा सरकार की गोद में पलते हुए पूँजीवाद इन सबको सींच रहे थे।....................पूँजीपति और मजदूर भारत में ये दो नये वर्ग बनने लगे थे। महाजनी सभ्यता के परिणाम स्वरूप यह नया वर्ग विभाजन अस्तित्व में आया था। मजदूर वर्ग किसानों के समान ही शोंषित था।"[1]

प्रेमचंद साहित्य में तद्युगीन समाज की प्रत्येक पहलू पूरी जीवन्तता के साथ चित्रित है। उनके कथा साहित्य में जहाँ एक ओर भूख, दरिद्रता, अन्याय तथा अत्याचार से पीड़ित जनसमुदाय है वहीं आतातायी शासक स्वार्थी तथा पाषाण ह्रदय जमींदार, सूदखोर, महाजन, साहूकार, धुर्तपण्डें, पुरोहित, भ्रष्टाचार में लिप्त पुलिस तथा अदालतें एवं धन लोलुप उद्योगपति भी अपने वास्तविक रूप में मौजूद है। इसका सबसे बडा कारण यह है कि उन्होने जितने, निकट से जनता की विवशता, एक दयनीयता को देखा था उतने ही निकट से उन्हे लूटने वाले

---

[1] कथाकार प्रेमचंद–सम्पादक रामदरश मिश्र–पृ0 सं0 7–8।

उन पर अत्याचार करने वाले उनका खून चूसने वाले नर पिशाचों को भी देखा था। प्रेमचंद चाहते तो लोगो के मनोरंजन के निमित्त साहित्य रचना करके पाठकों की एक बडी संख्या को अपना दीवाना बना कर अतुल धन सम्पत्ति अर्जित कर ऐश्वर्य पूर्ण जीवन व्यतीत कर सकते थे परन्तु उन्होने ऐसा नही किया। धन तथा ऐश्वर्य पर उन्होने जनता के दुखों को वरीयता दी और साहित्य रचना के लिए एक ऐसी डगर का चुनाव किया जिस पर चलकर वे अपने देश बन्धुओ की समस्याओ को अधिक समीप से देख सके और उनसे जुड़े प्रश्नो के समाधान खुद भी खोजें बनाने के लिए उन समस्याओं का निदान ढूंढने की प्रेरणा दें सकें।

प्रेमचंद केवल एक साहित्यकार ही नही थे एक समाज सुधारक भी थे। वे समाज में व्याप्त विकृतियों तथा विसंगतियों को दूर करके एक ऐसे स्वस्थ समाज का निर्माण करना चाहते थे जो अत्याचार अन्याय तथा शोषण से मुक्त हो। उन्हे पूर्ण विश्वास था कि सामाजिक तथा आर्थिक वैषम्य एवं पूँजीवादी शोषण का अन्त जनता की जाग्रति और अत्याचार के विरूद्ध उनके संघर्ष करने की शक्ति के द्वारा ही सम्भव है अतः उन्हें अपने कथा–साहित्य के माध्यम से सामाजिक विकारों, आर्थिक विषमता, असमानता, रूढ़िवादी परंपराओ धार्मिक पाखंडो तथा अंधविश्वासों के विरूद्ध संघर्ष करने की शक्ति तथा उत्साह प्रदान करते है। प्रेमचंद निर्धन किसानो के दुख को वाणी प्रदान की, सामाजिक अन्याय के शिकार लोगो की पैरवी की, विधवाओं का उनका अधिकार दिलाने तथा वेश्याओं को समाज में सम्मान दिलाने के लिए आवाज उठाई, दहेज, रिश्वत तथा अंधविश्वास जैसी कुप्रथाओ से समाज को मुक्त कराने के लिए आजीवन प्रयत्नशील रहे। तद्‌युगीन भारत के राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक जीवन के जितना समग्र और यथार्थ चित्रण प्रेमचंद साहित्य में विद्यमान है कदाचित अन्य किसी साहित्यकार की कृति में उपलब्ध न हो।

साहित्य के प्रति प्रेमचंद के दृष्टिकोण–

साहित्य के जीवन की 'आलोचना' बनाकर मानव जीवन से उसका नाता जोड़ने वाले साहित्यकार प्रेमचंद हिन्दी साहित्य जगत मे एक ऐसे युग प्रवर्तक कथाकार के रूप में समादृत हैं जिन्होने हिन्दी कथा साहित्य को सर्वथा अभिनव रचना दृष्टि प्रदान करते हुए उसे अभिव्यक्ति के नवीनतम आयाम से परिचित कराया। हिन्दी साहित्य में प्रेमचंद का आगमन एक ऐसे संक्रमण काल में हुआ जो–".........केवल राजनैतिक संघर्ष का काल नही था, केवल सामाजिक शक्तियों के एक दूसरे से टकराने का भी समय नही था, बल्कि एक नवीन युग के जन्म लेने का समय था, यहाँ से हमारा देश नए मोड़ पर आकर खड़ा हो गया, और उसके साथ ही साथ देश की साहितियक चेंतना भी नवीन दिशा की ओर मुड़ी।"[1]

प्रेमचंद ने साहित्य–क्षेत्र में जिस समय प्रवेश किया उस समय का भारतीय साहित्य विशेषकर हिन्दी कथा साहित्य जासूसी तथा चमत्कारी घटनाओं तथा प्रेमी–प्रेमिका के संयोग–वियोग के अयथार्थ एवं काल्पनिक प्रसंगो से परिपूर्ण था। ऐसे समय में जब प्रेमचंद ने लेखन कार्य प्रारम्भ किया तो उनके समक्ष चंद्रकान्ता संतति जैसी जादुई तथा चमत्कारी रचनाएँ भी जिनका यथार्थ जीवन से कोई सम्बन्ध न था जिनका उद्‌देश्य केवल पाठको का मनोरंजन करना था उस समय के अधिकतर कवि तथा साहित्यकारों की दृष्टि राजे–महराजों के महत्वों तथा अट्‌टालिकाओं पर टिकी थी जिन्हे प्रसन्न करके अधिक से अधिक परितोषिक पाना ही उनका लक्ष्य था। अपने पूर्ववर्ती साहित्यकारों के साहित्य रचना के उद्‌देश्य को स्पष्ट करते हुअ प्रेमचंद लिखते है– "उस समय साहित्य और काव्य के विषय में जो लोक रूचि थी, उसके प्रभाव से अलिप्त रहना सहज न था। सराहना ओर कद्रदानी की हवस तो हर एक को होती है। कवियों के लिए उनकी रचना ही जीविका का साधन थी और कविता की कद्रदानी और अमीरो के सिवा और कौन कर सकता है। हमारे कवियों को साधारण जीवन के सामना करने और उसकी सच्चाईयों से प्रभावित होने के या तो अवसर ही न थे या हर छोटे बड़े पर ऐसी मानसिक गिरावट छायी हुई थी कि मानसिक और बौद्धिक जीवन रह ही न गया था।"[2]

---

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी–हिन्दी साहित्य पृ0 382।
2. साहित्य का उद्वेश्य प्रेमचंद पृ0 4

ऐसे मे प्रेमचंद शायद वह पहले साहित्यकार है जिनकी निगाहें निर्धनता के मारे जीवन की बुनियादी आवश्यकताओ के लिए अभावों से जूझते भूखे नंगे विवश तथा लाचार लोगो की ओर उठी और उनके भीतर का सहृदय साहित्यकार चीत्कार कर उठा–" हमे सुन्दरता की कसौटी बदलनी होगी अभी तक यह कसौटी अमीरी और विलासिता के ढ़ंग की थी। हमारा कलाकार अमीरों का पल्ला पकड़े रहना चाहता था, उन्ही की कद्रदानी पर उसका अस्तित्व अवलंबित था और उन्ही के सुख–दुख, आशा–निराशा, प्रतियोगिता और प्रतिद्वन्द्विता की आख्या कला का उद्देश्य था। उसकी निगाह अंतःपुर और बंगलों की ओर उठती थी। झोंपड़े और खंडहर उसके ध्यान के अधिकारी न थे। उन्हे वह मनुष्यता की परिधि से बाहर समझता था।"[1]

प्रेमचंद ने इन निरीह प्राणियों के दुख–दर्द को अपने हृदय की अथाह गहराइयों से अनुभूत ही नही किया वरन उन्हे अपने साहित्य जगत का अभिन्न अंग बनाते हुए अथिव्यक्ति प्रदान की उन्होने प्रेमी युगल के मिलन तथा वियोग की कथाओ से आनन्दित होने वाले एवं राजा महाराजों के भव्य प्रसादो तथा अन्तःपुर के कल्पनालोक में विचरण करने वाले साहित्यकारों और पाठकों का ध्यान अपने साहित्य के माध्यम से दरिद्रो की दीनता तथा हाड़–तोड़ परिश्रम करने वाले किसानो एवं मजदूरों की भूख निर्धनता और असहायता की ओर आकर्षित किया। अपने इस प्रयास में उन्हे आलोचनाओं के कड़े प्रहार भी सहन करने पड़े जो उनके लिए बहुत बड़ी चुनौती थी परन्तु प्रेमचंद जैसे दृढ़प्रतिज्ञ कलाकार को हर चुनौती का मुँह तोड़ जवाब देना आता था अतः वे कहते हैं–"जब तक साहित्य का काम केवल मन–बहलाव का सामान जुटाना केवल लोरियाँ गा–गाकर सुलाना, केवल आँसू बहकर जी हल्का करना था, तब तक उसके लिए कर्म की आवश्यकता न थी। वह एक दीवाना था जिसका गम दूसरे खाते थे, मगर हम साहित्य को केवल मनोरंजन और विलासिता की वस्तु नही समझतें। हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो जो हम गति और संघर्ष पैदा करें, सुलायें नही, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।"[2]

---

1. कुछ विचार (भाग–1) प्रेमचंद पृ0 21।
2. कुछ विचार (भाग–1) प्रेमचंद पृ0 30–31।

एक जनवादी साहित्यकार होने के नाते प्रेमचंद देश को परतंत्रता की बेडियों से मुक्त कराने के लिए जनता की सुषुप्त आत्मा को जाग्रत करके उनमें चेतना का संचार करना चाहते थे जिससे उन्हे अपनी पतनोन्मुख अवस्था का ज्ञान हो सके और वे स्वयं को तथा साम्राज्य को पतन के इस गर्द से बाहर निकालने के लिए प्रयत्नशील हों साहित्य को उन्होनें इसी महान उद्वेश्य की पूर्ति का अस्त्र बनाया क्योंकि वे साहित्य की शक्ति से भली–भाँति परिचित थें–"पुराने जमाने में समाज की लगाम मजहब के हाथ में थी। मनुष्य की आध्यात्मिक और नैतिक सभ्यता का आधार धार्मिक आदेश था और वह भय या प्रलोभन से काम लेता था–पुण्य–पाप के मसले उसके साधन थे।"[1]

"अब साहित्य ने यह काम अपने जिम्मे ले लिया है और उसका साधन सौन्दर्य प्रेम है। वह मनुष्य में इसी सौन्दर्य–प्रेम को जगाने का यत्न करता हे। ऐसा कोई मनुष्य नही जिसमें सौन्दर्य की अनुभूति न हो। साहित्यकार में यह वृन्ति जितनी ही जाग्रत और सक्रिय होती है, उसकी रचना उतनी ही प्रभावमयी होती है। प्रकृति निरीक्षण और अपनी अनुभूति की तीक्ष्णता की बदौलत उसके सौन्दर्य–बोध में इतनी तीव्रता आ जाती है कि जो कुछ असुन्दर है, अभद्र, है, मनुष्यता से रहित है, वह उसके लिए असहय हो जाता है। उस पर वह शब्दों और भावों की सारी शक्ति से वार करता है। यों कहिए कि वह मानवता, दिव्यता और भद्रता का बाना बाँधे होता है। जो दलित है, पीड़ित है, वंचित है–चाहे वह व्यक्ति हो या समूह, उसकी हिमायत और वकालत करना उसका फर्ज है। उसकी अदालत समाज है। इसी अदालत के सामने वह अपना इस्तगाशा पेश करता है और उसकी न्याय वृन्ति तथा सौन्दर्य–वृन्ति को जाग्रत करके अपना यत्न सफल समझता है।" [2]

साहित्य रचना करते समय प्रेमचंद का सदैव यह प्रयास था कि वे जो कुछ भी लिखें वह इतना प्रभाव शाली हो कि पाठको के मन–मस्तिष्क में घर कर जाए जिससे उनकी सोई हुई भावनाएँ जाग्रत हो उनके निष्प्राण शरीर में एक नवीन स्फूर्ति एक नई चेतना उत्पन्न हो जिसके द्वारा वे अपनी समस्याओं को समझें और उनके समाधान की ओर अग्रसर हो जो साहित्य ऐसा करने में सक्षम हो वही सच्चे अर्थ में साहित्य कहलाने का अधिकारी है अतः वे कहते हैं–"जिस साहित्य से हमारी सुरूचि न जागे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले, हममे

[1] साहित्य का उद्वेश्य, प्रेमचंद पृ0 5–6।
[2] साहित्य का उद्वेश्य, प्रेमचंद पृ0 5–6।

शक्ति और गति न पैदा हो, हमारा सौन्दर्य प्रेम न जाग्रत हो–जो हम में सच्चा संकल्प और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे, वह आज हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहाने का अधिकारी नहीं।"[1]

प्रेमचंद ने जीवन के यथार्थ धरातल पर अपने साहित्य के भव्य प्रासाद का निर्माण किया है उनके कथा साहित्य में मानव–चरित्र के सबल तथा दुर्बल दोनों पक्ष उजागर है। एक सफल चित्रकार की भॉति उन्होने जीवन के हर, पहलू में रंग भरे हैं समाज के सभी वर्ग के पात्रों को प्रेमचंद ने अपने कथा साहित्य में स्थान दिया है उनके तुच्छ से तुच्छ पात्र में भी कहीं न कहीं कोई मानवीय गुण अवश्य विद्यमान होता हैं। उनके अनुसार "चरित्र को उत्कृष्ट और आदर्श बनाने के लिए यह जरूरी नही कि वह निर्दोष हो–महान से महान पुरूषों में भी कुछ न कुछ कमजोरियाँ होती है। चरित्र को सजीव बनाने के लिए उसकी कमजोरियों का दिग्दर्शन कराने से कोई नही होती। बल्कि यही कमजोरियाँ उस चरित्र को मनुष्य बना देती है। निर्दोष चरित्र तो देवता हो जायगा और हम उसे समझ ही न सकेंगे। ऐसे चरित्र का हमारे ऊपर कोई प्रभाव नही पड़ सकता। हमारे प्राचीन साहित्य पर आदर्श की छाप लगी हुई है। वह केवल मनोरंजन के लिए न था। उसका मुख्य उददेश्य मनोरंजन के साथ आत्मपरिष्कार भी था। साहित्यकार का काम केवल पाठकों का मन बहलाना नही है। यह तो भाटों और मदारियों, बिदूषकों और मसखरों का काम है। साहित्यकार का पद इससे कहीं ऊँचा है। वह हमारा पथ प्रदर्शक होता है वह हमारे मनुष्ययत्व को जगाता है, हममे सद्भावों का संचार करता है हमारी दृष्टि को फैलाता है। कम से कम उसका यही उद्देश्य होना चाहिए। इस मनोरथ को सिद्ध करने के लिए जरूरत है कि उसके चरित्र ....हो, जो प्रलोभनों के आगे सिर न झुकायें बल्कि उनको परास्त करें, जो किसी विजयी सेनापति की भाँति शत्रुओं का संहार करके विजय नाद करते हुए निकलें। ऐसे ही चरित्रों का हमारे ऊपर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है।"[2]

प्रेमचंद साहित्य की सोद्देश्यता और उपयोगिता के समर्थक थे इस तथ्य को वे स्वयं स्वीकार करते हुए कहते है–"मुझे यह कहने में हिचक नहीं कि मैं और चीजों की तरह कला कों भी उपयोगिता की तुला पर तौलता हूँ। निस्संदेह कला का उद्देश्य सौन्दर्य–वृत्ति की पुष्टि करना है और वह हमारे आध्यात्मिक

---

[1] सहित्य का उद्वेश्य प्रेमचंद–पृ0 5।
[2] साहित्य का उद्वेश्य–प्रेमचंद पृ0 57–58।

आनन्द की कुंजी है, पर ऐसा कोई रूचिगत मानसिक तथा आध्यात्मिक आनन्द नहीं जो अपनी उपयोगिता का पहलू न रखता हो ....फूलों के देखकर हमें इस लिए आनन्द होता है कि उनसे फलों की आशा होती है, प्रकृति से अपने जीवन का सुर मिलाकर रहने में हमें इस लिए आध्यात्मिक सुख मिलता है कि उससे हमारा जीवन विकसित और पुष्टि होता है............कलाकार अपनी कला से सौन्दर्य की सृष्टि करके परिस्थिति को विकास के उपयोगी बनाता है।"[1]

देश में जब चारो ओर निराशा और असंतोष के बादल छाये हो, शोषण और अत्याचार का बाजार गर्म हो, भूख और गरीबी के कारण जनता में त्राहि–त्राहि मची हो ऐसे में कोई जागरूक तथा सहृदय साहित्यकार 'कला के लिए कला' के सिद्धान्त का पालन कैसे कर सकता है और प्रेमचंद जैसे सहृदय और जनवादी साहित्यकार तो कभी नही परन्तु कहने का तात्पर्य यह कदापि नही है कि उन्हें कला अर्थ कला के सिद्धान्त पर विश्वास नही था या वे इस सिद्धान्त के विरोधी थे इस बात का स्पष्टीकरण उन्ही के शब्दों में देखिए–

"साहित्य का सबसे ऊँचा आदर्श वह है कि उसकी रचना केवल कला की पूर्ति के लिए कीजिए Art for Art,s Sake के सिद्धान्त पर किसी को आपत्ति नही हो सकती वह साहित्य चिरायु हो सकता है जो मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियाँ है। इन्ही की छटा दिखाना साहित्य का परम उद्वेश्य हैं। बिना उद्वेश्य के तो कोई रचना हो ही नही सकती। जब साहित्य की रचना किसी सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक मत के प्रचार के लिए की जाती है तो वह अपने ऊँचे पद से गिर जाता है...............हमारा ख्याल है कि कुशल कलाकार कोई विचार प्रधान रचना भी इतनी सुन्दरता से करता है कि उनसे मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियों का संघर्ष निभाता रहे Art for Art,s Sake का समय वह होता है जब देश सम्पन्न और सुखी हो जब हम देखते है कि हम भाँति–भाँति के राजनीतिक और सामाजिक बंधनो में जकड़े हुए है जिधर भी निगाह उठती है दुख और दरिद्रता के भीषण दृश्य दिखाई देते है, विपत्ति का करूण क्रन्दन सुनाई देता है तो कैसे सम्भव है कि किसी विचारशील प्राणी का दिल न दहल उठे।" [2]

साहित्य का सम्बन्ध व्यक्ति विशेष से न होकर पूरे समाज से होता है इस दृष्टि से एक साहित्यकार के ऊपर बहुत बड़ा दायित्व होता है उसकी स्थिति एक

---

[1] कुछ विचार –प्रेमचंद पृ0 18–19।
[2] प्रेमचंद "उपन्यास" समालोचक जनवरी 1925 ई0।

पथ–प्रदर्शक की होती है जो अपने साहित्य के माध्यम से ज्ञान और चेतना की एक ऐसी मशाल लेकर चलता है जिसके प्रकाश में जनता अपनी वास्तविक स्थिति तथा ऊपरी समस्याओं से ही अवगत ही नही होती वरन उसे विसंगतियों तथा कठिनाइयों से संघर्ष करके अपने जीवन को सुखी बनाने का साहस भी मिलता है इस विषय मे प्रेमचंद का मत है–''साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना नही उसका दरजा इतना न गिराइये। वह देश भक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नही बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सच्चाई है।'' [1]

यही कारण है कि साहित्य उनके लिए साधना है व्यवसाय नही साहित्यकार को वे साधक मानते है व्यवसायी नही और साधक को धन, दौलत तथा मान प्रतिष्ठा से क्या प्रयोजन–''जिन्हे धन–वैभव प्यारा है, साहित्य–मन्दिर में उनके लिए स्थान नही है। यहाँ तो उन उपासको की आवश्यकता है जिन्होने सेवा को ही अपने जीवन की सार्थकता मान ली हो, जिनके दिल में दर्द की तड़प हो और मुहब्बत का जोश है। अपनी इज्जत तो अपने हाथ है। अगर हम सच्चे दिल से समाज की सेंवा करेंगे तो मान, प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि सभी हमारे पॉव चूमेंगी। फिर मान–प्रतिष्ठा की चिन्ता हमे क्यों सताये ? ओर उसके न मिलने से हम निराश क्यों हो ? सेवा में जो आध्यात्मिक आनन्द है वही हमारा पुरस्कार है,–हमें समाज पर अपना बड़प्पन जताने, उस पर रोब जमाने की हवस क्यों हो ? दूसरों से ज्यादा आराम के साथ रहने की इच्छा भी हमें क्यों सताये ? हम अमीरों के श्रेणी में अपनी गिनती क्यों करायें ? हम तो समाज के झंड़ा लेकर चलने वाले सिपाही है और सादी जिन्दगी के साथ ऊँची निगाह हमारे जीवन का लक्ष्य है। जो आदमी सच्चा कलाकार है, वह स्वार्थमय जीवन का प्रेमी नही हो सकता।'' [2]

प्रेमचंद साहित्य को जीवन की आलोचना मानते है अतः वह जीवन के प्रत्येक पक्ष का गहन अध्ययन करते हुए अत्यन्त शूक्ष्म दृष्टि से उसका विश्लेषण करते है। उनको कथा–साहित्य में मानव–जीवन अपने सम्पूर्ण यथार्थ के साथ उपस्थित है प्रेमचंद साहित्य के माध्यम से जीवन को अभिव्यक्ति प्रदान करना चाहते थे और उसके प्रति अपने अनुभूतियों को व्यक्ति करना चाहते थे स्वयं

---

[1] कुछ विचार भाग–1 प्रेमचंद पृ0 24।
[2] कुछ विचार भाग–1 प्रेमचंद पृ0 28।

उनके शब्दों में– "साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिस में कोई सच्चाई प्रकट की गई हो, जिसकी भाषा प्रौढ़ परिमार्जित सुन्दर हो और जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो। और साहित्य में यह गुण उसी अवस्था में उत्पन्न होता है, जब उसमें जीवन की सच्चाइयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गई हो।" [1]

इसी कारण प्रेमचंद ने जीवन की सच्चाइयों को आधार बनाकर अपने साहित्य संचार की रचना की है परन्तु यथार्थ वादी लेखन की धुन में कहीं भी वे साहित्य के आदर्शों की अवहेलना नहीं करते क्योंकि साहित्य रचना उनकी दृष्टि में एक ऐसा महान दायित्व है जिसके लिए बहुत अधिक संयम तथा संतुलन की आवश्यकता होती है और–"ऐसा महान दायित्व जिस वस्तु पर है, उसके निर्माताओ का पद कुछ कम जिम्मेदारी नही है। कलम हाथ में लेते ही हमारे सिर बड़ी भारी जिम्मेदारी आ जाती है। साधारणतः युवावस्था में हमारी निगाह पहले विध्वंस करने की ओर उठ जाती है। हम सुधार करने की धुन में अंधाधुंध शर चलाना शुरू करतें है। खुदाई फौजदार बन जाते है। तुरन्त आँखे काले धब्बों की ओर पहुँच जाती है। यथार्थवाद के प्रवाह में बहने लगते है। बुराइयों के नग्न चित्र खींचने में कला की कृतकार्यता समझतें है। यह सभ्य है कि कोई मकान गिराकर ही उसकी जगह नया मकान बनाया जाता है। पुराने ढ़कोसलों और बन्धनों को तोड़ने की जरूरत है, पर इसे साहित्य नहीं कह सकते। साहित्य तो वही है, जो साहित्य की मर्यादाओं का पालन करे। हम अक्सर साहित्य का मर्म समझे बिना ही लिखना शुरू कर देतें है। शायद हम समझतें हैं कि मजेदार, चटपटी और ओजपूर्ण भाषा लिखना ही साहित्य है। भाषा भी साहित्य का एक अंग है, पर साहित्य विध्वंस नही करता, निर्माण करता है।" [2]

यद्यपि प्रेमचंद एक यथार्थवादी लेखक है वह साहित्य के द्वारा समाज की बुराइयों को दूर करके एक स्वस्थ समाज का निर्माण करना चाहते है परन्तु इस प्रकार जिसमें साहित्य की गरिमा भी बनी रहे और समाज सुधार भी हो जाए वे ऐसे यथार्थवादी लेखकों से क्षुब्ध दिखाई देतें है जो यथार्थवाद की आड़ में सुधार के नाम पर साहित्य और समाज दोनो को प्रदूषित कर रहे है– मासिक पत्रिका विशाल भारत के दिसम्बर 1929 के अंक में प्रकाशित बनारसी दास चतुर्वेदी के नाम लिखे एक पत्र में लिखतें है–"मै नग्न कुवासनाओं का निदर्शन बहुत ही

---

[1] साहित्य का उद्वेश्य प्रेमचंद पृ0 2

[2] साहित्य का उद्वेश्य प्रेमचंद पृ0 28।

हानिकारक समझता हूँ। साहित्य में इसको लाने की जरूरत नही अगर कोई आदमी चोरी को रोकने के लिए चोरी कला की ब्याख्या करे। यूँ घर वालो की मिलाया, यूँ रात को गया, यूँ ताले को तोड़ा, यूँ सेंध लगाया..................इससे लज्जा आए न आए पर ऐसे लोगों को यह कला आ जाएगी जो अभी तक चोरी का साहस न कर सकते थे। बहुत से लोग केवल इस लिए वेश्याओं से बचे रहते है कि उन्हे इस कूचे की रीति–नीति नही मालूम अगर कोई वेश्या गामियों को लज्जिद करने के इरादे से ही क्यों न हो उस रीति का रहस्य खोल दे, तो उन लोगो की झिझक, दूर हो जायेगी और वे खुल खेलेंगे। साहित्य का प्रभाव चरित्र पर पड़ता है। साहित्य का उद्वेश्य ही चरित्र निर्माण है। इसलिए इस काम में अपने आदर्शों और उद्वेश्यों को पवित्र रखना चाहिए।"

प्रेमचंद ऐसे साहित्य को उच्चकोटि का मानते हैं जिसमें आदर्श और यर्थाथ का संतुलित समन्वय हो ऐसे वे "आदर्शोन्मुख यथार्थवाद" की संज्ञा से अभीहित करतें है उनके अनुसार साहित्यकार का यह परम कर्तब्य है कि वह ऐसे पात्रों की सृष्टि करे जो श्रेष्ठ नैतिक मूल्यों एवं उच्च विचारों के पोषक हो अतः वे कहते हैं–"हम वही उपन्यास उच्चकोटि का समझते हैं जहाँ Realism और Idealism का समन्वय हो गया हो उसे Idealistic Realism कह सकते है Ideal को सजीव बनाने के लिए Realism का उपयोग होना चाहिए और अच्छे उपन्यास की यही विशेषता है उपन्यास कार की सबसे बड़ी विभूति ऐसे चरित्रों की सृष्टि करना है जो सद्व्यवहार और सद्विचार से पाठक को मोहित करे।" [1]

साहित्य के प्रति प्रेमचंद के उपरोक्त दृष्टिकोण इस बात का स्पष्ट संकेत है कि वे एक साहित्यकार से क्या–क्या अपेक्षाएं रखते थे ? एक साहित्यिक कृति में वे किन गुणों का समावेश देखना चाहते थे। साहित्य रचना में उनके साहित्यिक आदर्श क्या थे ? प्रेमचंद जब तक जिये अपने युग और समाज का हिस्सा बनकर जिये उन्होने अत्याचार और शोषण ते तड़पती कराहटी जनता के करूण क्रंदन को सुना था उनके दुख को उनकी पीड़ा को अपनी आत्मा की गहराइयों में अनुभव किया था। वे अपने देश वासियो को हर प्रकार की दासता से दुखों से मुक्त देखना चाहते थे अतः वे ऐसे साहित्य के समर्थक थे– "जो विचार में स्वतंत्र हो, चिंतन में संतुलित हो जीवन की अवरोधक शक्तियों के प्रति उग्र हो, दीन–दरिद्र जनता की हीन दशा से विक्षिप्त और सर्वोपरि भारत की मूक जनता

---

[1] प्रेमचंद : उपन्यास समालोचक जनवरी 1925।

के जीवन को ही प्रदर्शित करके उसको आशाओं और अभिलाषाओं को वाणी देने वाला हो।" [1] प्रेमचंद के सहित्य विषयक विचारों को दृष्टिगत रखते हुए निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि उनके साहित्यिक दृष्टिकोंण विशुद्ध रूप से मानवता वादी है जिसके केन्द्र में मानव तथा समाज कल्याण की भावना निहित है। प्रेमचंद को किसी न किसी वाद से सम्बद्ध करके देखने का प्रयास सदैव ही किया जाता रहा है। वास्तव में उनका साहित्य विभिन्न वाद रूपी पुष्पों की एक ऐसी सुन्दर वाटिका है जिसमें कहीं गाँधीवादी रंग दृष्टिगोचर होता है कहीं समाजवादी तो कहीं मार्क्सवादी, क्योंकि उनका मानना था कि यह समस्तवाद मानवता की परिधि में आते है। अतः प्रेंमचंद जैसे मानवता वादी महान साहित्यकार को किसी वाद के दायरे में सीमित करके देखना घोर अन्याय होगा।

---

[1] प्रेमचंद युगीन भारतीय समाज : डा0 इन्द्रमोहन कुमार सिन्हा पृ0 427।

प्रेमचंद के उपन्यास–

प्रेमचंद के साहित्य जगत में प्रवेश करने से पूर्व हिन्दी के पाठक काल्पनिक जगत में विचरण कर रहे थे। क्योंकि प्रेमचंद से पूर्व हिन्दी साहित्य में देवकी नन्दन खत्री, गोपालराम गहमरी, मेहता लज्जाराम शर्मा, किशोरी लाल गोस्वामी इत्यादि हिन्दी के अत्यन्त लोकप्रिय उपन्यासकार थे। जिनके उपन्यास तिलस्मी ऐयारी, जासूसी, प्रेम कथाओं इतिहास प्रसिद्ध वैभव वर्णनों के आसुरी सुख से ओत प्रोत थे जिन्हे पढ़कर कोई भी सहृदय पाठक प्रभावित हुए बिना नही रह सकता। इन उपन्यासों में ऐसा आकर्षण था जो पाठक के मन–मस्तिष्क को सम्मोहित कर देता था। जिससे पाठक की बुद्धि कुछ भी सोचने विचारने के योग्य नही रह जाती थी। वह इन उपन्यासों के नशे में ऐसा डूब जाता था कि उसके विचार करने की स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती थीं थी। और उसकी बुद्धि उपन्यासकार के अधीन हो जाती थी। निःसार मनोरंजन के अतिरिक्त इन उपन्यासों की कोई उपयोगिता नही थी इनका उद्वेश्य केवल मनोरंजन करना या उपदेश देना था। उपन्यास हमारे कौतूहल और अतृप्त वासनाओ की संतुष्टि मात्र थे।

प्रेमचंद ने सदियों से चली आ रही इस साहित्यिक परम्परा को तोड़ा। उन्होने "खयाली दुनिया में मस्त हिन्दी के पाठकों को उतारकर यथार्थ की ठोंस जमीन से परिचित" ही नही कराया अपितु उपन्यासों को सीधा जन–साधारण से जोड़कर उन्हे आधुनिक परिवेश देने का सराहनीय कार्य किया। वास्तविक अर्थो में आधुनिक हिन्दी उपन्यासों का शुभारम्भ प्रेमचंद के उपन्यासों से होता है। उन्होने हिन्दी के पाठकों को तिलस्मी, जासूसी, और अनूदित उपन्यासों के मोहपाश से मुक्ति दिलायी क्योंकि वे ऐसे साहित्य को समाज और मानवता दोनो के लिए घातक समझतें थे। उनके अनुसार–"वह साहित्य जो हमें विलासिता के नशे मे डूबा दे, जो हमें वैराग्य पस्त हिम्मती, निराशावाद, की ओर ले जाए, जिसके नजदीक संसार दुख का घर है, उससे निकल भागने में हमारा कल्याण है। जो केवल लिप्सा और भावुकता में डूबी हुई कथाएँ लिखकर कामुकता को भड़काए, निर्जीव है।"[1]

प्रेमचंद कहते थे–"हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च–चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्म

---

[1] सहित्य का उद्वेश्य–प्रेमचंद–पृ0 26

हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश ही जो हममें गति, संघर्ष और वेचैनी पैदा करे, सुलाए नही, क्योंकि और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।"[1] उनकी लेखनी ने हमे ऐसे उपन्यास दिए जिन्होने पाठकों की भावनाओं को परिमार्जित किया। समाज में ब्याप्त विकृतियों और समस्याओं का निदान करके एक स्वस्थ समाज का निर्माण कर सके। इस प्रकार उन्होने हिन्दी उपन्यासों को एक नया क्षितिज प्रदान किया और अपने उपन्यास के माध्यम से जन–साधारण को सामाजिक जीवन के सर्वाधिक सन्निकट, खींच लाने का प्रशंसनीय कार्य किया।

प्रेमचंद के उपन्यासों की रचना प्रक्रिया को भली–भाँति समझने के लिए उनके रचनाकाल के विभिन्न युगों एवं पक्षों पर दृष्टि करना आवश्यक है। प्रेमचंद की साहित्यिक यात्रा कब प्रारम्भ हुई अथवा उन्होने लिखना कब से आरम्भ किया इस विषय में अनेक भ्रांतियां–विद्यमान है जिसके लिए प्रेमचंद के अपने ही कथनों में विरोधाभास उत्तरदायी है जिनको आधार बनाकर प्रेमचंद के विषय में लिखने वाले विद्वानों जीवनीकारों तथा समालोचकों की भ्रांतिपूर्ण एवं अप्रमाणित सूचनाओं से अनुसन्धान ग्रन्थ भरे पड़े है। ड़ा0 गीतालाल ने अपने निबन्ध "प्रेमचंद के जीवन तथा साहित्य सम्बन्धी तिथियों में भ्रांतियाँ" [2] में इन भ्रांतियों के साथ–साथ प्रेमचंद की रचनाओं के काल निर्धारण की प्रामाणिक सूचना देने का भी प्रयास किया है। प्रेमचंद साहित्य के अध्येता कुछ विद्वानों ने उनकी प्रारंभिक उपन्यासों के सम्बन्ध में इस प्रकार के विभिन्न मत प्रकट किये है।

ड़ॉ इन्द्रनाथ मदान लिखते है–"इसरारे– मुहब्बत (1898) एक संक्षिप्त उपन्यास जो बनारस के साप्ताहिक आवाजे–खल्क में क्रमशः प्रकाशित हुआ............ ...प्रतापचंद (1901) जो अपने असली रूप में कभी प्रकाशित नही हुआ।"[3] ड़ॉ रामरतन भटनागर के कथनानुसार–"इसरारे मुहब्बत उनका पहला उपन्यास था, जो 19 वीं शताब्दी के अन्य अनेक उपन्यासों की तरह बनारस के एक साप्ताहिक पत्र में क्रमशः प्रकाशित हुआ। कदाचित 'प्रतापचंद' (1901) उपन्यास भी उर्दू की ही रचना थी। परन्तु यह इस रूप में कभी प्रकाशित नहीं हुआ।"[4] जमाना के सम्पादक और प्रेमचंद के अन्तरंग मित्र मुंशी दया नारायण निगम के अनुसार, "जहाँ तक मुझे मालूम हो सका प्रेमचंद का पहला नावेल 'हम खुर्मा ओ–हम सवाब' के नाम से बाबू महादेव प्रसाद वर्मा लखनवी के एहतमाम से ....हल्के

---

[1] कुछ विचार : प्रेमचंद पृ0–25।
[2] डा0 गीता लाल : प्रेमचंद के जीवन तथा साहित्य सम्बन्धी तिथियों में भ्रांतियां, साहित्य, जनवरी 1960।
[3] इन्द्र नाथ मदान : प्रेमचंद एक विवेचन पृ0 180।
[4] रामरतन भटनागर : कलाकार प्रेमचंद पृ0 30।

कागज पर मामूली लिखानी छपायी में शाया हुआ था। मुसन्निफ की पहली तसनीफ होने की हैसियत से उसमें नौमश्की की अक्सर खामियाँ मौजूद थी।" [1]

प्रेमचंद के उपन्यासों के प्रकाशन काल को लेकर चाहे जितना मदभेद हो परन्तु उनके उपन्यासों की संख्या निर्धारण में अधिक मदभेद नही क्योंकि सौभाग्य वश उनके लगभग समस्त उपन्यास उपलब्ध है वस्तुतः उनके मौलिक उपन्यासों की संख्या पंद्रह है। जो इस प्रकार है—असरारे—मआविद अथवा देवस्थान रहस्य – प्रेमचंद का यह उपन्यास 8 अक्टूबर 1903 से। फरवरी 1905 ई0 तक वाराणसी के एक उर्दू साप्ताहिक पत्र 'आवाज ए—खल्क में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ पुस्तक रूप मे यह उपन्यास प्रकाशित हुआ था नही इसके संकेत नही मिलते अमृतधारा ने इसका हिन्दी में अनुवाद करके प्रेमचंद :"कलम का सिपाही" के मंगलाचरण खण्ड़ में इसे सम्मिलित किया है।

प्रेमा:– यह उनके उर्दू उपन्यास 'हम खुर्मा व हम सवाब ' का हिन्दी रूपान्तर है। हिन्दी में प्रकाशित यह प्रेमचंद का प्रथम उपन्यास है जो 1907 ई0 में इण्ड़ियन प्रेस प्रयाग से प्रकाशित हुआ।

किशना :– सम्भवतः यह प्रेमचंद का दूसरा उर्दू उपन्यास है अक्टूबर नवम्बर 1907 के 'जमाना' में इस उपन्यास की, श्री नौबतराय नजर की एक समालोचना प्रकाशित हुई थी जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि यह उपन्यास 1907 ई0 में बनारस के मेडिकल हाल प्रेस से उर्दू में प्रकाशित हुआ था।

रूठीरानी :– यह उपन्यास उर्दू में जमाना मासिक पत्र में 1907 ई0 में, अप्रैल से अगस्त तक धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ था। [2]

इसके पुस्तक के रूप में प्रकाशित होने के कोई संकेत नही मिलते, हिन्दी में इसका प्रथम प्रकाशन अमृतराय की 'प्रेमचंद कलम का सिपाही' के मंगलाचरण खण्ड़ में 1962 में हुआ।

---

[1] दयानारायन निगम : जमाना प्रेमचंद नम्बर।

[2] अमृतराय : प्रेमचंद : कलम का सिपाही, जीवनी खण्ड पृ0 105।

सेवासदन :— यह उपन्यास पहली बार हिन्दी पुस्तक एजेन्सी कलकत्ता से 1918 ई0 में प्रकाशित हुआ था। उर्दू में यह उपन्यास बाजारे हुस्न के नाम से दो भागों में प्रकाशित हुआ है। सर्वप्रथम् 1921 ई0 में तथा दूसरी बार 1922 ई0 में लाहौर के रारूल इशाअत पंजाब से प्रकाशित हुआ।

वरदान :— यह उर्दू उपन्यास जलवए—ईसार का हिन्दी रूपान्तर है जिसका उर्दू संस्करण 1912 ई0 में इंडियन प्रेस इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ। हिन्दी में ग्रन्थ भण्डार बम्बई से 1921 ई0 में प्रकाशित हुआ।

प्रेमाश्रम :— यह उपन्यास हिन्दी में 1922 ई0 में हिन्दी पुस्तक एजेन्सी कलकत्ता से प्रकाशित हुआ। इसका उर्दू संस्करण 'गोशए—आफियत' शीर्षक से प्रकाशन हेतु प्रेमचंद ने तैयार किया जो प्रकाशको के अभाव में एक लम्बे अन्तराल के बाद पहली बार 1928 ई0 में दारूल इशाअत् लाहौर से प्रकाशित हुआ।

रंगभूमि :— 1925 ई0 में गंगा पुस्तक माला कार्यालय लखनऊ से सर्वप्रथम दो भागों में प्रकाशित हुआ। इसका उर्दू अनुवाद 'चौगाने—हस्ती 'शीर्षक से पहली बार 1927 ई0 में दारूल इशाअत लाहौर ने प्रकाशित किया।

कायाकल्प :— यह उपन्यास सर्वप्रथम 1926 ई0 में भार्गव बुक ड़ीपो वाराणसी से प्रकाशित हुआ। उर्दू में पर्दा—एन्मजाज के नाम से सर्वप्रथम लाजपत राय एण्ड संन्स लाहौर ने प्रकाशित किया।

निर्मला :— यह उपन्यास पुस्तक रूप में सर्वप्रथम जनवरी 1927 ई0 में चाँद कार्यालय इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ। इससे पहले यह चाँद के नवम्बर 1925 से नवम्बर 1926 तक के अंको में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ। उर्दू में सर्वप्रथम 1929 ई0 में गिलानी इलेक्ट्रिक प्रेस लाहौर से प्रकाशित हुआ।

प्रतिज्ञा :— प्रेमचंद का यह उपन्यास सर्वप्रथम मासिक पत्र चाँद के जनवरी 1927 से नवम्बर 1927 तक के अंको में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ। पुस्तक के रूप में सर्वप्रथम इसका प्रकाशन 1929 ई0 में सरस्वती प्रेस बनारस से हुआ। उर्दू में 'बेवा' के नाम से मई 1932 ई0 में पहली बार प्रकाशित हुआ।

गबन :— हिन्दी में सर्वप्रथम इसका प्रकाशन 1931 ई0 में सरस्वती प्रेस बनारस से हुआ। उर्दू में इसका प्रथम संस्करण लाजपतराय एण्ड संस लाहौर से प्रकाशित हुआ। जिसका प्रकाशन का वर्ष अंकित नही है।

कर्मभूमि :— प्रेमचंद का यह उपन्यास 1932 ई0 के पूर्वाद्ध में सरस्वती प्रेस बनारस से प्रकाशित हुआ। उर्दू में मैदान–ए–आलम' शीर्षक से सर्वप्रथम जामिया मिल्लिया, दिल्ली से 1936 ई0 में प्रकाशित हुआ।

गोदान :— हिन्दी में पहली बार यह 1936 ई0 में सरस्वती प्रेस बनारस से प्रकाशित हुआ। मकतबा–ए–जामिया, दिल्ली से 1936 ई0 में गउदान नाम से उर्दू प्रकाशित हुआ।

मंगलसूत्र :— प्रेमचंद का यह अंतिम तथा अपूर्ण उपन्यास है जिसका प्रकाशन 1948 ई0 में सरस्वती प्रेस बनारस से हुआ।

प्रेमचंद के उपरोक्त उपन्यासों में वरदान, प्रतिज्ञा, सेवासदन, प्रेमाश्रम, निर्मला, कायाकल्प, रंगभूमि, गबन, कर्मभूमि तथा गोदान, औपन्यासिक शिल्प की दृष्टि से पूर्ण उपन्यास है उनका अंतिम उपन्यास मंगलसूत्र है जो अपूर्ण है। निम्नलिखित उद्धरण में प्रेमचंद के उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

वरदान

(हिन्दी में लिखा गया प्रेमचंद का यह सबसे पहला उपन्यास है जिसके लेखन काल को लेकर आलोचको में मतभेद है। अल्पायु में लिखे गए प्रेमचंद के इस छोटे से उपन्यास में आलोचक गण उपन्यास कला की दृष्टि से अनेक त्रुटियाँ निकाल सकते है परन्तु अपनी इस प्रथम कृति में तत्कालीन समाज का सजीव चित्रण करने का सफल प्रयास किया है। यद्यपि इस उपन्यास में हिन्दू-समाज की विभिन्न समस्याओ का विवेचन और विश्लेषण में इतनी गहनता और गम्भीरता नहीं पायी जाती जितनी प्रेमचंद के परवर्ती उपन्यासों में दृष्टिगोचर होती है तथापि इन उपन्यासों की पृष्ठभूमिका के रूप में इसके महत्व को नकारा नहीं जा सकता जिसमें प्रेमचंद के विशेष दृष्टिकोण का आभास मिलता है। अपने लेखन के आरम्भिक काल से ही हमारे पारवारिक सामाजिक एवं राष्ट्रीय-जीवन में व्याप्त कुरीतियों की ओर से हमारा ध्यान आकर्षित करके हमें जाग्रत करना चाहते थे। वरदान में दो बाते विशेष रूप से उल्लेखनीय है एक तो यह प्रेमचंद समाज सेवा के आदर्श को लेकर चलना चाह रहे है। दूसरी यह कि वे अपने युग की परिस्थितियों के सजगता से निहारते और पाठकों के हृदय में राष्ट्रीय आत्म-गौरव को जगाते चलते है।

इसका कथानक मुख्यतः तीन परिवारो से सम्बद्ध है। पहला परिवार मुंशी शालिग्राम और उनकी पत्नी सुवामा का है जिनका पुत्र प्रतापचन्द्र इस उपन्यास का नायक है। दूसरा परिवार है मुशी संजीवन लाल और उनकी पत्नी सुशीला का जिनकी पुत्री विरजन है जो इस उपन्यास की नायिका है।) मुंशी शालिग्राम एक सज्जन व्यक्ति थे। उनकी पत्नी सुवामा ने देवी से वरदान माँगा था जिसके फलस्वरूप उन्हे वृद्धावस्था मे प्रताप जैसे पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई थी। अभी प्रताप छः वर्ष का ही हुआ था कि उसके पिता कुम्भ के मेले मे जाते है और साधु संतो से ऐसा प्रभावित होते है कि पुनः लौटकर नहीं आते। उनकी मृत्यु के उपरान्त उनके द्वारा छोड़ा गया ऋण सुवामा अपनी ज़मीन और समान बेचकर चुकाती है और खुद अपने लिए सिर्फ एक मकान बचाती है जिसका आधा भाग वह मुंशी संजीवन लाल को किराए पर दे देती है। संजीवन लाल की पुत्री विरजन और सुवामा के पुत्र प्रताप में परस्पर मित्रता हो जाती है जो उम्र के साथ-साथ बढ़ती ही जाती है और अन्ततः प्रेम में परिणत हो जाती है। डिप्टी श्यामाचरण की पत्नी प्रेमवती सुशीला की सहेली थी वह विरजन को देखते ही उसे अपने बेटे कमलाचरण के लिए माँग लेती है। सुशीला बिना कुछ सोचे विरजन की शादी

कमलाचरण से कर देती है। जो एक नम्बर का शोहदा था बाद में जब प्रताप से उसकी करतूतों के बारे में सुशीला को पता चलता है तो वह इस आघात को सहन नहीं कर पाती उसे तपेदिक हो जाती है और वह मर जाती है तदुपरान्त विरजन का सामीप्य पाकर कमलाचरण सुधर तो जाता है परन्तु पढ़ाई लिखाई में उसका मन कदापि नहीं लगता वह दिन रात विरजन के प्रेम मे डूबा रहता है। विरजन उसे पुनः पढाई शुरू करने हेतु बार–बार प्रेरित करती है जिसके परिणाम स्वरूप वह प्रयाग पढ़ने चला जाता है। प्रताप एक मेधावी छात्र के रूप में प्रयाग में पहले से ही प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था। कमलाचरण के प्रति उसके हृदय में जो द्वेष की भावना थी वह अब समाप्त हो चुकी है अतः वह कमला चरण का हार्दिक स्वागत करता है। प्रयाग आने पर कमला की सोई हुई कुप्रवृत्तियाँ पुनः जाग उठती हैं। पढ़ाई–लिखाई मे उसका मन नहीं लगता वह एक माली के बेटी सामू से, प्रेम की पेंगे बढ़ाने लगता है। जब उसके तथा–कथित प्रेम का भांडा फूटता है तो वह डर के मारे भाग जाता है और बिना टिकट लिए ही एक ट्रेन में सवार हो जाता और टिकट चेकर के आने पर चलती ट्रेन से कूद पड़ता है और अपने प्राणों से हाँथ धो बैठता है और विरजन के जीवन को कम उम्र में ही वैधब्य का ग्रहण लग जाता हैं। कमलाचरण के पिता डाकुओं की गोली का शिकार हो जाते है और माँ सदमें के कारण पागल होकर मर जाती है।

विरजन के विधवा होने के पश्चात् उसके प्रति प्रताप का सोया हुआ प्रेम पुनः जाग्रत हो जाता है वह उससे मिलने तो जाता है परन्तु उसका सामना करने का साहस नहीं जुटा पाता और सन्यास धारण करके बाला जी बन जाता है। इधर कमला चरण की मृत्यु के पश्चात विरजन कवयित्री बन जाती है और अपनी सहेली माधवी के साथ एकान्त में रहने लगती है। प्रताप के लिए विरजन के मन में जो प्रेम था अब वह श्रद्धा में परिवर्तित हो जाता है। वह माधवी का विवाह प्रताप से कराना चाहती है। बालाजी की ख्याति विरजन तक भी पहुँचती है वह उन्हे काशी आने का निमंत्रण देता है। माधवी से मिलने के पश्चात बाला जी उसके प्रेम को देखते हुए अपना सन्यास त्यागने को तैयार हो जाते है पर माधवी उन्हे कर्तव्य मार्ग से विमुख नही होने देती और स्वयं भी सन्यासिनी बन जाती है।

इस उपन्यास में प्रेमचंद ने अनमेल–विवाह के दुष्परिणाम का यर्थाथ–चित्रण तो किया ही है साथ ही समाज में फैली हुई कुरीतियों और भ्रष्टाचार के भयावह दृश्यों का चित्रण भी किया है जिसमें कहीं महाजनों का अत्याचार तो कहीं पठान और साहूकार के निर्मम शोषण और जमींदार के अन्याय

और अनाचार को चित्रित किया है। यद्यपि इस उपन्यास का राजनीतिक, आर्थिक–समस्या से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है तथापि किसानों के शुभेच्छु प्रेमचन्द्र अपनी इस छोटी सी कृति में भी कृषक वर्ग की दुर्दशा से अपने पाठकों को अवगत कराना नहीं भूलते विरजन द्वारा अपने पति कमलाचरण के नाम लिखे गए पत्र के माध्यम से अनावृष्टि, दुर्भिक्ष तथा महामारी के पश्चात् होने वाली किसानों की तबाही का वर्णन किया है।

"वरदान में कथावस्तु की शिथिलता, चरित्र विकास का अभाव और विश्वसनीयता की कमी स्पष्ट दीख पड़ती है। लेकिन 'वरदान' प्रेमचन्द की उस मनो रचना का आभास ज़रूर देता है, जिसने आगे चलकर प्रेमचन्द से अनेक महान ग्रन्थों की रचना करा ली।"[1] प्रेमचन्द ने इस आरम्भिक रचना में तद्युगीन भारत के पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन में व्याप्त समस्याओं एवं कुरीतियों का जिस प्रकार से चित्रण करने का प्रयास किया है वह उनके इस उपन्यास को सामाजिक उपन्यास की श्रेणी में स्थान दिलाता है यह और बात है कि इस उपन्यास में कोई भी समस्या स्पष्ट रूप से मुखरित नही हो पायी है परन्तु इस उपन्यास के द्वारा इन समस्याओं के प्रति प्रेमचन्द के दृष्टिकोण का अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है अपनी शिल्पगत कमियों के बावजूद हिन्दी उपन्यास को एक नये युग की ओर बढ़ने की प्रेरणा देने के कारण इस उपन्यास का अपना महत्व है।

सेवासदनः–

सेवासदन हिन्दी उपन्यास के धरातल पर प्रेमचंद की ख्याति फैलाने वाला एवं नए उम्र के लोगो को संदेश देने वाला उनको प्रतिष्ठा की सर जमीं पर स्थापित करने वाला पहला उपन्यास है। इसके प्रकाशन के पहले कल्पना जगत में विचरण करने वाले जासूसी उपन्यासो की महत्ता थी जिनमें मनोरंजन के सिवा जीवन की वास्तविक भूमि से कोई जुड़ाव नही था। "यथार्थ चित्रण की दृष्टि से 'सेंवासदन' का महत्व इस बात में है कि वह अपने युग के समाज का वास्तविक चित्र हमारे सामने प्रस्तुत करता है। सामाजिक यथार्थ का कोई भी पक्ष प्रेमचंद की सूक्ष्म ग्राही दृष्टि से बचकर नही जा सका है।"[2] सेवासदन की मुख्य पात्रा

---

[1] *प्रेमचन्द्र एक अध्ययन – डाक्टर राजेष्वर गुरू पृष्ठ 136*

[2] प्रेमचंद का मार्क्सवादी मूल्यांकन–डा0 जनेश्वर वर्मा पृ0 137।

सुमन के माध्यम से सर्वप्रथम प्रेमचंद ने नारी की निस्सहायता, पराधीनता उसकी विवशता और उसके साथ पशुओं के समतुल्य व्यवहार और उसके परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाली दहेज प्रथा, अनमेल विवाह, वेश्यावृत्ति आदि विभिन्न समस्याओं का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।

'सेवासदन' की कथा एक मध्यवर्गीय परिवार से आरम्भ होती है और विभिन्न सामाजिक पक्षों का वर्णन करते हुए एक व्यापक समस्या के रूप मे सामने आती है। सुमन एक मध्यवर्गीय घराने की लड़की है जिसके माध्यम से मध्यवर्गीय नारी की पराधीनता की व्यथा और उसकी मुक्ति की गाथा का प्रारम्भ होता है। सुमन एक सुशील और सुन्दर लड़की है। दहेज की व्यवस्था न हो पाने के कारण सुमन के मामा, उमानाथ उसका विवाह एक अधेड़ उम्र के दुहाजू वर गजाधर से कर देते है। सुमन की माँ गंगाजली जब वर को देखती है तो रो पड़ती है उसे ऐसा प्रतीत होता है है मानो सुमन को किसी ने कुएं में डाल दिया हो। रंग रूप आयु और आर्थिक दृष्टि से सुमन और उसके पति में कही भी समानता नही है। इसी अनमेल–विवाह के द्वारा 'सेवासदन' में वर्णित नारी समस्या का जन्म होता है। यदि गम्भीरता पूर्वक देखा जाए तो इस समस्या का मूल कारण आर्थिक है। दहेज प्रथा मध्यवर्ग की आर्थिक समस्या है। सुमन अपने पिता के घर में बड़े ही लाड़ प्यार से पली थी परन्तु उसका विवाह दुर्भाग्य से अच्छे घर में नही हुआ पति के घर आकर उसे नारी जीवन के अभिशप्त होने का अनुभव प्राप्त होता है। प्रेमचंद ने आर्थिक पराधीनता को नारी–जीवन की सबसे बडी त्रासदी माना है जिसके परिणाम स्वरूप सुमन को पति के हर प्रकार के अत्याचार सहन करने पडते है क्योंकि यह उसकी विवशता है। एक तो गजाधर दरिद्र था ऊपर से पति पत्नी दोनो के स्वभाव मे विभिन्नता थी सुमन हंसमुख और मिलन–सार थी। गजाधर ईष्यालु और उजड्। दोनो में नोक–झोंक प्रारम्भ हो गयी जिसने कलह का रूप धारण कर लिया और उसका दाम्पत्य–जीवन नारकीय बन गया। एक दिन पदमसिंह शर्मा के यहाँ से जब वह भोली बाई का मुजरा देखकर देर–रात घर वापस आती है तो गजाधर उस पर लाछन लगाकर उसे घर से निकाल देता है सुमन कहीं आश्रय न पाकर भोली बाई के चुंगल मे फंस जाती है। इस प्रकार कुछ तो सुमन की व्यक्तिगत दुर्बलता कुछ तो उसके पति के अत्याचार और इन सबसे बढ़कर विषम परिस्थितियों नें भोली–भाली सुमन को वेश्या बनने में विवश कर दिया।

भोली–भाली ग्रहणियाँ किन–कारणों से वेश्या बनती हैं सेवासदन की सुमन इसका जीता–जागता प्रमाण है सुमन के माध्यम से प्रेमचंद ने यह समझाने का प्रयत्न किया है किस प्रकार उसके जैसी स्त्रियों को सामाजिक अत्याचार और कुप्रथाएँ वेश्या जीवन व्यतीत करने पर विवश करते है। सुमन के घर से निकाले जाने के उपरान्त यदि समाज आश्रय दे देता तो वह वेश्यावृत्ति से बच सकती थी 'सेवासदन' का विषय नवीन नहीं है यह प्रथा तो प्रचीन–काल से चली आ रही है। लेकिन 'सेवासदन' से पूर्व वेश्याओ को अत्यधिक घृणित रूप मे चित्रित किया जाता था जिससे विषय लोगो के मन में वेश्याओं के प्राति घृणा उत्पन्न होती थी। लेकिन 'सेवासदन' की विशेषता यह है कि उसमें सर्वप्रथम वेश्याओं का चित्रण सहानुभूति पूर्ण ढ़ंग से हुआ और वेश्याओं के प्रति पहली बार किसी साहित्यकार ने मानववादी दृष्टिकोंण अपनाया है।

'सेवासदन' में प्रेमचंद ने समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों और सामाजिक नेताओं के दोहरे आचरण का भण्डा–फोड़ किया है सेठ सिम्मन लाल, सेठ बलभद्र दास, पण्डित दीनानाथ अबुल वफा, और अब्दुल लकीर आदि ऐसे पात्र है जो चारित्रिक रूप से पतित होते हुए भी अपनी धनाढ्यता के बल पर समाज में मान और प्रतिष्ठा के पात्र है यही नही यह बड़ी सामाजिक–संस्थाओ का संचालन भी करते हैं। समाज–सुधार की बागडोर जब ऐसे लोगो के हाथों में होगी तो जनता का कितना हित होगा वह सोचने की बात है। प्रेमचंद ने ऐसे भ्रष्ट चरित्र और कुत्सित मानसिकता वाले चरित्रो का व्यंगपूर्ण ढ़ंग से चित्रण किया है

'सेवासदन' मे प्रेमचंद का उद्वेश्य केवल सुमन की व्यथा सुनाना, ही नही वरन् देश की पराधीनता और जनसाधारण की दयनीय दशा का वर्णन करना भी है।

"सेवासदन में समाज की मुख्य एवं गौण बहुत सी सामाजिक समस्याओं पर प्रेमचंद ने अपने मौलिक विचार उपस्थित किये है।" [1] उपन्यास सम्राट ने मनोरंजक कहानी के द्वारा मन बहलाने के लिए ही 'सेवासदन' उपन्यास नही लिख सका है, अपितु कथा के विभिन्न–घटनाओं को मोड़ देने वाली परिस्थितियों (विशेष रूप से बाह्रय) पर भी बारीक नजर डालते चलते है, इस प्रकार अपने विस्तृत ज्ञान–अनुभव तथा गम्भीर चिन्तन–मनन के आधार पर, विभिन्न

---

[1] प्रेमचंद के उपन्यास साहित्य में सांस्कृति चेतना–नित्यानंद पटेल–पृ0 35।

सामाजिक–समस्याओं को 'बहुत कुछ' कहने के लिए (शूक्ष्म विवेचन विश्लेषण के लिएं) योग्य स्थान (माकूल जगह) यही 'बहुत कुछ' उपन्यास सम्राट की सारी कथा को विशेष रूप से बहुत कुछ सरस–रोचक, गम्भीर मौलिक, भाव विचार–उद्‌बोधक, अजोड़–अनमोल, नित्य–नवीन चिरस्थायी तथा अन्ध–विश्वासों, अन्धकार को दूर करने वाला बना देता है। अन्धकार दूर हो जाए, तो समाज के उदय, उत्कर्ष का मार्ग खुल सकता है। प्रेमचंद के उपन्यासों में सेवासदन का एक विशेष महत्व है। क्योकि यह हिन्दी उपन्यास साहित्य का सर्वप्रथम मौलिक समस्या–मूलक और युगान्तकारी उपन्यास है। युगान्तकारी इसलिए कि इसमें हिन्दी के पूर्ववर्ती उपन्यासों की उपदेशात्मक और भावात्मकता के स्थान पर गहन अध्येता और सूक्ष्म अवलोकी कला की अवतारणा हुई है। इस उपन्यास में प्रेमचंद सामाजिक–जीवन के कटु सत्य के वीभत्स रूप को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रण लेकर उपस्थित होते है यही कारण है कि 'सेवासदन' की कथा कहते हुए वे सामाजिक कुरीतियों का विश्लेषण एक आलोचक की पैनी दृष्टि से करते चलते है।

प्रतिज्ञा

प्रतिज्ञा एक सामाजिक समस्या प्रधान उपन्यास है। इसको सामाजिक उपन्यास कहना इसलिए उपयुक्त है कि प्रेमचंद ने अपने अन्य उपन्यासों की तरह इसमें राजनीतिक परिवेश को नहीं जोड़ा वैसे तो सामाजिक जीवन में सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक सभी परिस्थितियाँ एक–दूसरे से संश्लिष्ट रहती हैं एवं एक–दूसरे पर प्रभाव डालती रहती हैं। यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए प्रतिज्ञा में प्रेमचंद नें न केवल विधवा नारी की दयनीय स्थितियों को सामने लाने का भरपूर प्रयास किया है। वरन उसके विभिन्न पहलू पर समान रूप से विचार किया है। प्रतिज्ञा उपन्यास की कथा विधवा नारी के जीवन की विभिन्न समस्याओं से प्रारम्भ होती है और उन्हीं समस्याओं से जूझते हुए उसका अन्त हो जाता है। प्रेमचंद ने अन्य उपन्यासों की तरह इसमें और कई कथा जोड़ने का प्रयास किया है।

प्रतिज्ञा उपन्यास में मुख्यतः एक ही परिवार की कथा है और वह है लाला बद्री प्रसाद के परिवार की कथा। अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध अमृतराय, दाननाथ और पूर्णा का भी बद्रीप्रसाद के परिवार से सम्बन्ध है। बद्रीप्रसाद की पत्नी के एक

लड़का और एक लड़की है। लड़की का नाम प्रेमा और लड़के का नाम कमला प्रसाद है। सुमित्रा कमला प्रसाद की पत्नी है। अमृतराय और दाननाथ एक–दूसरे के घनिष्ठ मित्र हैं दोनो अन्दर ही अन्दर प्रेमा को चाहते हैं। प्रेमा अमृतराय की साली है। बड़ी बहन के मरने के बाद प्रेमा का विवाह अमृतराय से सुनिश्चित कर दिया जाता है। दाननाथ इस आघात को शान्तिपूर्वक सहन कर लेता है और किसी से कुछ नहीं कहता। एक दिन एक सभा में विधवा–विवाह के ऊपर बोले गये भाषण को सुनकर अमृतराय अपना दृष्टिकोण बदल लेता और मन में विधवा से विवाह करने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर लेता है। अन्ततः प्रेमा का विवाह दाननाथ से हो जाता है। अमृतराय अपना सम्पूर्ण जीवन विधवाओं की सेवा के लिए अर्पण कर देता है और एक विधवाश्रम का निर्माण करता है। प्रेमा और पूर्णा की घनिष्ट मित्रता है। पूर्णा पं0 बसन्त कुमार की धर्म पत्नी है। होली के दिन बसन्त कुमार भंग पीकर गंगा स्नान जाता है और लहरों में बह जाता है और उसके जीवन का अन्त हो जाता है। पूर्णा अनाथ हो जाती है और मजबूरी वश उसे लाला बद्री प्रसाद के यहाँ शरण लेनी पड़ती है। यहीं से कथा वस्तु में एक नया मोड़ आता है। कमला प्रसाद की कुदृष्टि पूर्णा के ऊपर पड़ती है जिससे वह बचने का भरसक प्रयास करती है। पूर्णा को लेकर सुमित्रा और कमला में भी संघर्ष पैदा हो जाता है। दाननाथ को यह शंका बनी रहती है कि प्रेमा आज भी अमृतराय को चाहती है जिसके फलस्वरूप वह कमला के साथ मिलकर उसे नीचा दिखाने की कोशिश करता है। कमला का अमृतराय से इसलिए वैमनस्य है कि वह उसे नैतिकता का उपदेश देता है और कुमार्ग पर चलने से रोकना चाहता है। कमला इधर पूर्णा पर भी चक्कर चलाता रहता है और बहाने बनाकर एक दिन उसे अपने बाग में टहलाने ले जाता है और उसके साथ बलात्कार करने की कोशिश करता है। पूर्णा का स्वाभिमान खुद की रक्षा के लिए जाग उठता है और वह कुर्सी से उस पर आघात करती है और वहाँ से भागकर अमृतराय के विधवा आश्रम में जीवन बिताने लगती है।

प्रेमचंद जिस समय प्रतिज्ञा उपन्यास की रचना कर रहे थे उस समय का पुरूष प्रधान समाज उसके प्रति जो दृष्टिकोण रखता था उसको उजागर करने और विधवा नारी की दयनीय दशा को सम्मुख लाने का प्रयास किया है। प्रेमचंद ने पूर्णा के चरित्र के माध्यम से सामाजिक दुराचार से ग्रसित विधवा नारी की दासताँ पाठकों के सम्मुख लाने की कोशिश की है। आश्रय विहीन पूर्णा आडम्बरी कमला प्रसाद के कामुकता मयी आघातों से अपने को बचाते हुए अमृतराय के

आश्रम में आश्रय पाती है। प्रेमचंद ने कुशलता पूर्वक पूर्णा के चरित्र के माध्यम से पुरूष वर्ग की उन काली करतूतों को हमारे सामने लाने का प्रयास किया है कि जिनका सहारा लेकर यह वर्ग नारी के शरीर के साथ खिलवाड़ करना चाहता है।

प्रेमचंद के युग में आर्य समाज जैसी संस्थाएँ रूढ़िगत परम्परा का विखण्डन कर रही थीं और विधवा विवाह को प्रोत्साहन दे रही थी। अंग्रेजी शिक्षा के चलते नवीन चेतना का विकास हो रहा था। चाँद जैसी अनेक नारी विषयक पत्रिकाएँ नारी–जागरण का संदेश घर–घर दे रही थीं। प्रेमचंद ने 'प्रतिज्ञा' उपन्यास में इस विषय पर अपने विचार समाज के समक्ष प्रस्तुत किए हैं। इस सापेक्ष में सुमित्रा के चरित्र को उभार कर सामने लाए हैं। सुमित्रा एक ऐसी नारी पात्र है जो अपने अधिकारों के प्रति जागरूक है और परम्परा से चले आ रहे रूढ़िग्रस्त समाज की उस मान्यता का जिसके अनुसार पुरूष वर्ग को विशेष अधिकार प्राप्त है खुलकर विरोध करती है। तथा दृढ़ता पूर्वक अपने अधिकारों की मॉग करती है। यही उसके वैवाहिक जीवन का संघर्ष है। इस मामले में न दबकर रहना पसन्द करती है न ही समझौता करके इस प्रकार प्रेमचंद ने सुमित्रा को सामाजिक अन्याय और भेद–भाव की नीति के प्रति आगे लाकर नारी विद्रोह का एक नमूना पेश किया है।

प्रेमचंद के 'प्रतिज्ञा' उपन्यास का वास्तविक महत्व इस बात को लेकर नहीं है कि उसमें सामाजिक जीवन की यथार्थ पूर्ण समस्याओं का मार्मिक रूप चित्रित किया गया है अपितु इस बात को लेकर है कि वैचारिक क्षेत्र और प्रबुद्ध स्तर पर इस समस्या का व्यवहारिक ढंग से निदान प्रस्तुत किया गया है। प्रेमचंद ने समाज में विधवा नारी की दयनीय दशा का जिम्मेदार एक ओर वैचारिक संकीर्णता और सामाजिक परम्परा को तो दूसरी तरफ नारी के आत्मबल की कमी को ठहराया है। समस्या के समाधान के रूप में प्रेमचंद ने अमृतराय और सुमित्रा जैसे पात्रों को स्थान दिया है। अमृतराय द्वारा उन्होंने सामाजिक रूढ़ियों का विखण्डन करवाकर समाज को बिधवा नारी के अनरूप बनाने की कोशिश की है। तो दूसरी ओर सुमित्रा के माध्यम से नारियों में आत्म विश्वास एवं पुरूषों के विशेषाधिकार का विरोध एवं पुरूष और स्त्री को समाज में समान दृष्टि से देखने के लिए अपने अधिकारों की मॉग की है। समस्या के निदान रूप में प्रेमचंद यह सुझाव देते हैं कि स्त्री को इतना आत्मबल प्रदान किया जाए कि वह इन परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए एक नयी जिन्दगी शुरू करें। पुरूष वर्ग जो कि

शिक्षित है उसको अपने विचारों का विस्तार करना चाहिए और समाज में व्याप्त कुरीतियों का खुलकर विरोध करना चाहिए। लेकिन अमृतराय जैसे आदर्श व्यक्ति आज के समाज में कितने हैं और हैं भी तो कहाँ तक नारी के समस्याओं का निदान कर पाते हैं।

निर्मला

असहाय नारी के वेदनाग्रस्त जीवन की करूण कथा से समाज के अन्तःकरण को द्रवित करने वाले इस उपन्यास का प्रेमचंद के नारी समस्या प्रधान उपन्यासों में एक विशिष्ट स्थान है। सदियों से समाज में रूढ़ियों की भेट चढ़ती चली आ रही नारी को न्याय दिलाने के लिए उस पर होने वाले अत्याचारों के विरूद्ध जन मत तैयार करने का सराहनीय प्रयास किया। एक जनवादि लेखक होने के कारण प्रेमचंद ने वंचितो, शोषितों, पीड़ितों, और दलितों की हिमायत को सदैव अपना धर्म समझा और जहाँ कहीं उन्हें अत्याचार, अन्याय और शोषण दिखायी दिया उन्होंने खुलकर इसका विरोध किया। फिर यह कैसे सम्भव था कि पुरूष प्रधान समाज में अभिशप्त जीवन जीने पर मजबूर नारी समाज की विडम्बनाओं की वे अनदेखी करते नारी के प्रति उनके मन में कितनी करूणा और सहानुभूति थी। और उसके जीवन की समस्याओं को सुलझाने में वे किस हद तक प्रयत्नशील थे उनके सम्पूर्ण कथा साहित्य में स्थान–स्थान पर इसके परिणाम मिलते हैं।

'निर्मला' उपन्यास का कथानक तीन परिवारों की गुम्फित गाथा है। जिसमें एक परिवार उदय भानुलाल और कल्याणी का है, दूसरा भालचन्द्र और रंगीली बाई का, और तीसरा मुन्शी तोताराम का है। इन्हीं तोताराम से निर्मला का विवाह होता है। जो इस उपन्यास की मुख्य परिधि है। पहली पत्नी से तोताराम के तीन पुत्र मंसाराम, जियाराम और सियाराम थे। तोताराम की एक बूढ़ी बहन रूकमणि भी हैं। निर्मला और तोताराम के विवाह सम्बन्ध में उम्र की विविधता के कारण निर्मला जो पत्नी का हक पति के लिए होता है नही दे पाती। निर्मला विमाता होते हुए भी बच्चों को माँ के जैसा ही प्यार देने का भरसक प्रयास करती है जिसके चलते तोताराम को निर्मला और मंसाराम जो कि हम उम्र हैं दोनों पर संदेह हो जाता है। जिसका परिणाम मंसाराम की मृत्यु के रूप में प्राप्त होता है। इस मृत्यु का दुष्परिणाम यह होता है कि परिवार में कटुता आ जाती है। जिसका प्रभाव जियाराम और सियाराम पर पड़ता है। जियाराम गहनों का सन्दूक चुरा

लेता है और संदेह होने पर आत्म हत्या कर लेता है। सियाराम घर छोड़कर चला जाता है। रूकमणि और निर्मला में नहीं बनती है और अंत में गम्भीर दशा में निर्मला की मृत्यु हो जाती है। इस उपन्यास में एक और कथा है। डाँ0 भुवन मोहन सिन्हा और उनकी पत्नी सुधा की। सुधा और निर्मला में दोस्ती है। सुधा को निर्मला के प्रति बहुत लगाव तथा सहानुभूति है। वह उसकी हर हाल में मदद करती है। किन्तु निर्मला का दुर्भाग्य यहाँ भी पीछा नहीं छोड़ता। यह वही भुवन सिन्हा है जिससे निर्मला का विवाह तय हुआ था और वह पछताता है और निर्मला के प्रति उसकी आसक्ति बढ़ जाती है। सुधा के न रहने पर वह निर्मला के साथ दुर्व्यहार करता है और सुधा के फटकारे जाने पर वह आत्म हत्या कर लेता है।

'निर्मला' उपन्यास का कथानक मध्य वर्ग से लिया गया है दहेज प्रथा मध्य वर्गीय परिवार की प्रमुख समस्या है। जिसकी 'निर्मला' के मूल्य कथानक के रूप में परिणिति हुई है। इस समस्या का प्रारम्भ भालचन्द्र सिन्हा से होता है जिनके बड़े पुत्र भुवनमोहन सिन्हा के साथ निर्मला के विवाह की बात चलायी गयी थी। पहले जब निर्मला के पिता जिन्दा थे तो उन्होंने दहेज की कोई रकम निर्धारित नहीं की थी क्योंकि अधिक धनराशि मिलने की आशा थी परन्तु उनका मृत्यु के उपरान्त दहेज न मिलने की आशंका से विवाह करने से इन्कार कर देते हैं। दहेज इक्ट्ठा न होने के कारण निर्मला का विवाह भी अपने पिता के हम उम्र से कर दिया जाता है जो कि दुहाजू है। इस प्रकार दहेज प्रथा और उसके दुष्परिणामों के साथ ही उपन्यास की कथा प्रारम्भ होती है निर्मला उपन्यास की प्रधान नायिका है। बेमेल विवाह के कुप्रभाव के कारण ही निर्मला का भविष्य अन्धकारमय होता जाता है। और दूसरी तरफ तोता राम का जीवन भी अशान्तिमय व्यतीत होता है। प्रेमचंद ने निर्मला उपन्यास में जिन सामाजिक कुप्रथाओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया है उनमें प्रथम दृष्टि दहेज प्रथा की ओर गयी है। परिणामतः यह कह सकते हैं कि अनमेल विवाह और उसके दुष्परिणामों को जन्म दहेज प्रथा ने ही दिया है। इसके प्रभाव के कारण कितने ही परिवार तहस–नहस हो जाते हैं और निर्मला जैसी कितनी ही अबोध बालिकाएँ मृत्यु के गाल में समा जाती हैं। इसीलिए प्रेमचंद ने इसका घोर विरोध किया है।

समस्या के निदान हेतु प्रेमचंद ने दहेज प्रथा जैसी सामाजिक कुप्रथाओं का पर्दाफाश करने के लिए संगठन बनाने का सुझाव दिया है और यह अपील की है कि देश के नवयुवकों को आगे आना चाहिए। यदि उनके अभिभावक दहेज के

लोभी हों तो उनको इसका विरोध करना चाहिए। प्रेमचंद का यह मानना था कि जब तक देश के नवयुवक आगे आकर इसका विरोध नहीं करेंगें तब तक दहेज रूपी विष समाज में व्याप्त रहेगा और नवयुवतियों के भविष्य को विषैला नाग बनकर ड़सता रहेगा। प्रेमचंद का मानना था कि कन्या का विवाह वर की खूबियों के अनुसार होना चाहिए धन के अनुसार नहीं। अयोग्य वर की गले बाँधने से बेहतर यह है कि लड़की को जीवन भर क्वारी रखा जाए।

'निर्मला' प्रेमचंद का वह प्रथम उपन्यास है। जिसमें उनके यथार्थवादी लेखन का विशुद्ध रूप देखने को मिलता है। उस उपन्यास में चित्रित समस्याओं का उन्होंने कोई आदर्शवादी समाधान प्रस्तुत नहीं किया है बल्कि उनका विश्लेषण मात्र किया है। हाँ इतना अवश्य है कि इस उपन्यास के अन्त में वे अपने उद्देश्य की ओर संकेत करना नहीं भूलते। इस उपन्यास में प्रेमचंद को सामाजिक बुराइयों के सूक्ष्म चित्राँकन में अद्वितीय सफलता प्राप्त हुई है। निर्मला का पाठक इन सामाजिक विकारों से जो शिक्षा ग्रहण करता है वह स्वतः ही प्राप्त होने वाली है न कि जबर्दस्ती उस पर थोपी जाने वाली, क्योंकि अनायास ही उसकी निगाहें इन बुराइयों पर पड़ती है और ढ़ेर सारी वैयक्तिक और सामाजिक विकृतियाँ उसके सम्मुख खड़ी हो जाती हैं और उसके सामने प्रश्नों के ढ़ेर लग जाते हैं कि निर्मला का विवाह उसके हम उम्र भुवन मोहन से क्यों नहीं हो पाया? क्यों वह अपने बाप की अवस्था के आदमी तोताराम से ब्याह दी गई? मंसाराम की दुखद और असमय मृत्यु का जिम्मेदार कौन है? जियाराम क्यों अपनी जीवन लीला समाप्त कर लेता है? भुवन मोहन की आत्महत्या के लिए कौन उत्तरदायी है। सियाराम क्यों घर से भागता है? निर्मला अपने घर में घुट–घुट कर मरने पर क्यो विवश होती है ? और इनके उत्तर जानने की तीव्र जिज्ञासा उसके मन मस्तिष्क में उत्पन्न हो जाती है इस जिज्ञासा का काफी कुछ समाधान वह इस उपन्यास में ही पा लेता है। क्योंकि इस उपन्यास में लेखक ने मध्यमवर्गीय परिवार की अनेक समस्याओं का चित्रण किया है। जिसमें दहेज, अनमेल विवाह, वैधव्य की त्रासदी, और स्त्री पुरूष के बिगड़ते हुए सामाजिक सम्बन्धों के परिणाम स्वरूप समाज और परिवार के मानवीय सम्बन्धों पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों का उपन्यासकार ने विशद विश्लेषण किया है।

प्रेमाश्रमः—

प्रेमाश्रम की रचना प्रेमचन्द ने पहले महायुद्ध के समाप्त हो जाने के पश्चात की। यह समय भारत वर्ष के लिये समाजिक राजनतिक तथा आर्थिक दृष्टि से संक्रांति काल था। इस समय जो देश व्यापि आन्दोलन हो रहे थे उनकी बागडोर मध्यम–वर्ग ने सम्भाली थी लेकिन इन आन्दोलनों को सफल बनाने के लिये देश की समस्त जनता ने अपना यथासम्भव सहयोग दिया। भारत के इतिहास में यह पहला अवसर था। जब जन साधारण को राष्ट्रीय और राजनीतिक आन्दोलनो के नेतृत्व का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। देश व्यापी आन्दलनों का नेतृत्व करने वालों पर यह वास्तविकता खुल गयी कि जन साधारण के सहयोग के बिना उन्हे वांछित सफलता नही प्राप्त हो सकती। और भारत की जनता में एक बड़ी संख्या श्रमिकों और किसान वर्ग की थी इन्हे देश व्यापी आन्दोलनों से जोड़ने के लिये यह बात अनिवार्य थी कि इन श्रमिकों और कृषकों की समस्याओं को न सिर्फ समझा जाय बल्कि उनके निवारण के लिये भी प्रयास किया जाय मजदूरों और किसानों की समस्या पर सर्वप्रथम गाँधी जी ने अपना ध्यान केन्द्रित किया। उन्होने हर उस शक्ति के विरूद्ध आन्दोलन प्रारम्भ किया जो किसानों के शोषण के लिये उत्तरदायी थी। उन्होने देश भर में स्थान–स्थान पर शान्तिपूर्ण सत्याग्रह आन्दोलन किया जिसमें उन्हें सफलता प्राप्त हुई और इस सफलता में मजदूरो ने सम्राज्यवादी शक्तियों के दाँत खट्टे कर दिये और सारे विश्व में अपनी ताकत का लोहा मनवाया। इस क्रान्ति ने सारे विश्व को प्रभावित किया। फिर प्रेमचन्द जैसा चेतना सम्पन्न कलाकार कैसे तटस्थ रह सकता था। प्रेमचन्द इस वास्तविकता से भली–भाँति परिचित थे कि भारत का स्वाधीनता आन्दोलन तब तक सफल नही हो सकता जब तक कि उसमें किसानों की स्वाधीनता का स्वर न सम्मलित हो। अतएव उन्होने इस उपन्यास में किसानों की समस्याओं को अपनी लेखनी के द्वारा स्वर प्रदान किया है।

'प्रेमाश्रम' किसान–जीवन का महाकाव्य है।

सर्वप्रथम कृषक जीवन और उसकी समस्याओं का विशद और यथार्थ चित्रण करने का श्रेय प्रेमचन्द के इस उपन्यास को प्राप्त है। इस उपन्यास के माध्यम से उन्होने जमींदारों के शोषण और किसानों के संघर्ष के विविध पहलुओं को प्रस्तुत किया है। ज्ञान शंकर की कथा उपन्यास का केन्द्र बिन्दु है। परन्तु जमींदारों और किसानों के द्वन्द्व के विविध पक्षों को प्रस्तुत करने के लिये लेखक

ने अनेक प्रासंगिक कथाओं का आशय लिया है। इन समस्त कथाओं की प्रस्तुति इतनी कलात्मकता से हुई है कि उन्हे पृथक करके नही देखा जा सकता वे एक ही माला के मोती प्रतीत होती है। इनमें प्रेमशंकर, प्रभाशंकर, गायत्री, कमलानन्द, ज्वाला सिंह तथा लखनपुर के किसानों की कथाओं को प्रमुखता प्राप्त है। 'प्रेमाश्रम' जमींदारी शोषण और किसान संघर्ष का भव्य सागर है– "अंग्रेजी अंग्रेजी शासन द्वारा पोषित नौकरशाही की निरंकुशता और लूट खसोट का प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में सविस्तार चित्रण किया है। नौकरशाही वर्ग जमींदारों और साहूकारों के साथ मिलकर भोले–भाले असहाय किसानों को तरह–तरह से प्रताड़ित करता था। किस प्रकार किसानों की परिश्रम की कमाई को तो लूटता ही है। साथ ही साथ उनसे निर्दयता पूर्वक बेगार भी लेता है और छोटी–छोटी बात पर उन्हें अपमानित करता है तथा मारता–पीटता है और झूठे मुकदमें चलाकर उनका जीवन नरक करता है। प्रेमाश्रम में कृषक जीवन की इन समस्त कठिनाइयों के मर्मस्पर्शी चित्र विद्यमान हैं।

प्रेमाश्रम की रचना कृषक–जीवन और उसकी समस्याओं को केन्द्र में रखकर की गयी है और कृषकों की सबसे विकट समस्या जमींदारी शोषण की थी। "प्रेमाश्रम हिन्दी का पहला उपन्यास है जिसमें जमींदारी शोषण का बहुत विस्तार के साथ चित्रण किया गया है। अतः इसमें पुरानी पीढ़ी से लेकर नयी पीढ़ी तक के जमींदारों के तरह–तरह के नमूने विद्यमान हैं।" [1] इस सम्बन्ध में 'डॉ0 राजेश्वर गुरू' अपनी पुस्तक, 'प्रेमचन्द्र एक अध्ययन' में इस प्रकार अपने विचार व्यक्त करतें हैं – "प्रेमाश्रम में जमींदारों की तीन पीढ़ियाँ मिलती है एक है लाला जटा शंकर की जो समाप्त हो चुकी हैं, दूसरी है लाला ज्ञान शंकर की जिसके कारनामे सारे 'प्रेमाश्रम' में बिखरे पड़े है, तीसरी है मायाशंकर की जो साम्यवाद को स्वेच्छा से स्वीकार करता है।" [2]

प्रेमाश्रम में नयी–पीढ़ी के हृदयहीन जमींदार शोषकों के तीन–रूप देखने को मिलते हैं पहला ज्ञानशंकर है जो स्वार्थान्धता में हिंसक पशु की भाँति किसानों का शोषण करता है। वह इतना धूर्त है कि येन–केन–प्रकारेण अपने चाचा की, ससुर की, साली की यहाँ तक की दुनिया भर की सम्पत्ति को हड़प लेना चाहता है। दूसरा रूप राय कमलानन्द है जो व्यवहार से नहीं वरन् केवल विचारों से

---

[1] ***प्रेमचन्द्र : एक मार्कवादी मुल्यांकन – डॉ0 जनेश्वर वर्मा पृष्ठ 172***

[2] ***प्रेमचन्द्र एक अध्ययन – राजेश्वर गुरू पृष्ठ 153***

किसानों के समर्थक है तीसरे प्रकार के जमींदार का रूप गायत्री में देखने को मिलता है जो जमींदारों की शोषण प्रवृत्ति से मुक्त नहीं है वह अपने पिता राय कमलानन्द के कठोर व्यवहार को न्यायोचित ठहराती हैं। इस प्रकार "जमींदारी के तीन रूप हमारे सामने हैं। पहला गायत्री, जो चली जाती हुई परम्परा की प्रतीक है। राय साहब में अपनी दयनीय स्थिति की वास्तविकता की चेतना है और ज्ञानशंकर में जमींदारी को पूँजीवादी ढ़ग से करने का आग्रह।" [1]

ज्ञान शंकर अपनी स्वार्थसिद्धी के लिए अपने आसामियों पर बेदख़ली और इज़ाफा लगान के मुकदमें चलाता है। अपील के खारिज होने पर गाँव वालों को प्रताड़ित करने के लिए जून की भीषण गर्मी में गाँव के तलाब का पानी बन्द कराता है। इस प्रकार के अत्याचार और शोषण की चक्की में पिसते-पिसते किसानों की सहनशक्ति जवाब दे जाती है, उनके धैर्य का बाँध टूट जाता है और वे जमींदार के विरूद्ध विद्रोह करने की ठान लेते हैं यह किसानों का पहला संगठित स्वर है जिसकी गूँज सर्वप्रथम प्रेमाश्रम में सुनाई देती है

प्रेमशंकर प्रेमाश्रम का आदर्श पात्र है। अमेरिका में रहकर नयी शिक्षा प्राप्त करने और नये विचारों को आत्मसात करने के पश्चात् भी उसका दृष्टिकोण सुधारवादी है। जमीदारी प्रथा को देश के विकास में सबसे बड़ी बाधा मानता हैं इसी कारण अपने हिस्से की जमींदारी को अपने भाई ज्ञानशंकर से यह कहते हुए छोड़ देता हैं- "मैं अपने श्रम की रोटी खाना चाहता हूँ। बीच का दलाल नहीं बनना चाहता। तुम अपने ही मन में विचार करो। यह कहाँ का न्याय है कि मेहनत तो कोई करे, उसकी रक्षा का भार किसी दूसरे पर हो, और रूपए उगाहें हम?"[2]

प्रेमाश्रम की रचना किसान-जमींदार सम्बन्धों को केन्द्र बनाकर की गई है प्रेमचंद लखनपुर के किसानों को जमींदारों के शोषण का अन्त करने वाली उदय होती हुई शक्ति के रूप में चित्रित किया है। किसानों की सुख शान्ति के लिए किसानों की समस्याओं को सुलझाने के लिए प्रेमचन्द इस उपन्यास में जमींदारी प्रथा को समाप्त करने की घोषणा करते हैं और उनका मार्ग-दर्शन करते हुए उन्हें शोषण के विरूद्ध संघर्ष के लिए प्रेरित करते हैं। इसमें समाज का दो वर्ग

---

[1] *प्रेमचन्द्र - एक अध्ययन - डा0 राजेश्वर गुरू पृष्ठ 161*

[2] *प्रेमाश्रम पृष्ठ 153*

शोषक और शोषित के रूप में एक दूसरे के सामने खड़ा है। प्रेमाश्रम प्रेमचन्द का एक राजनैतिक उपन्यास है जिसमें उन्होंने देश में अंग्रेजी शासन के विरूद्ध चलने वाले संघर्ष के साथ–साथ जमींदार तथा किसान संघर्ष को भी चित्रित किया है। प्रेमचंद एक ऐसी समाज व्यवस्था की कामना करते थे जहाँ सबको उन्नति करने का समान अवसर प्राप्त हों प्रेमचंद जिस आदर्श समाज का स्पप्न देखते थे वह प्रेमशंकर द्वारा संचालित प्रेमाश्रम के रूप में मूर्तिमान हो उठा है। जिसके द्वारा प्रेमचंद ने परोपकार लोग मंगल की भावना, निस्वार्थ सेवा, आत्मा त्याग और श्रम की महत्ता का प्रतिपादन किया है।

कायाकल्प

इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने जगदीशपुर की विधवा रानी देवप्रिया तथा उनके पति के अनेक जन्मों की चमत्कारिक कथा प्रस्तुत की है। जिसके अन्तर्गत वृद्धा देवप्रिया का पति कई बार जन्म लेता है और देवप्रिया से मिलकर उसे वृद्धा से पुनः युवती बना देता है। इसी कारण प्रेमचन्द के उपन्यासों में उनका उपन्यास 'कायाकल्प' सर्वाधिक आलोचना का विषय रहा है। प्रेमचन्द की अन्य उत्कृष्ट यथार्थवादी रचनाओं को देखते हुए संरचनात्मक दृष्टिकोण से यह उनकी एक कमजोर कृति है जिसमें प्रेमचन्द यथार्थवादी पथ से हटकर पारलौकिक जगत में विचरण करते दिखाई देते हैं यदि 'कायाकल्प' के इस दुर्बल पक्ष से परे होकर देखा जाए तो इसके पात्रों तथा घटनाओं के माध्यम से तत्कालीन भारत की राजनैतिक परिस्थितियों का पूर्ण रूप से परिचय मिलता है जिसके अन्तर्गत असहयोग आन्दोलन की असफलता, साम्प्रदायिक दंगें, ब्रिटिश सरकार के शोषण इत्यादि का इस उपन्यास मे यर्थाथ चित्रण हुआ है जो इस उपन्यास का सबल पक्ष है कथा की दृष्टि से इस उपन्यास के तीन भाग है प्रथम भाग हिन्दू–मुस्लिम समस्या पर केन्द्रित है, द्वितीय भाग राजा प्रजा और किसानों से सम्बन्धित है तृतीय और अंतिम भाग में राजाओं के अन्तःपुर का सजीव चित्रण किया गया है।

यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय तो इस उपन्यास की चमत्कार पूर्ण तथा अलौकिक घटनाओं के मध्य प्रेमचन्द ने वर्ग संघर्ष की कथा प्रस्तुत की है जिसमें एक ओर अत्याचारी जागीरदार उनकी रानियाँ और कारिन्दें हैं तो दूसरी ओर अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत किसान–जनता अर्थात एक ओर प्रजा और चक्रधर की सेवा समिति के लोग हैं तो दूसरी ओर राजा विशाल सिंह और उनके कर्मचारी। चक्रधर गाँधीवादी नेता के प्रतिरूप हैं उनका यह गाँधीवादी रूवरूप

कई स्थलों पर व्यक्त हुआ है जब कभी अत्याचार और शोषण के विरूद्ध जनता के हृदय में विद्रोह की ज्वाला भड़कती है चक्रधर उसे शान्ति और अहिंसा के उपदेश द्वारा शान्त कर देते हैं। उदाहरणार्थ जब जेल के दरोगा के अत्याचार से क्षुब्ध कैदी विद्रोह करते हैं तो चक्रधर अपनी अहिंसात्मक नीति के अनुसार अंग्रेज सैनिकों की रक्षा करने पहुँच जाते हैं उनके इस कृत्य के कारण अत्याचार के विरूद्ध उठने वाली आवाज तो शान्त हो ही जाती है साथ ही साथ उन मजदूरों का बलिदान भी व्यर्थ जाता है। इस प्रकार प्रेमचंद ने इस उपन्यास में उस गाँधीवादी नेतृत्व की असफलता की ओर संकेत किया है जो हिंसा का भय दिखाकर जनता के आन्दोलन को किसी निष्कर्ष पर पहुँचने से पूर्व ही समाप्त कर देता है जिससे अत्याचारी का हृदय परिवर्तन तो नहीं होता जनता की स्थिति यथावत बनी रहती है यदि हम इन घटनाओं को उस समय के राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में देखे तो हमें गाँधीजी के नेतृत्व में चलने वाले प्रथम असहयोग आन्दोलन की कथा नजर आएगी। अपने अहिंसा के सिद्धान्त की रक्षा के लिए चौरी–चौरा काण्ड के पश्चात जब गाँधीजी ने आन्दोलन स्थगित कर दिया था तो उसका भी ऐसा ही परिणाम हुआ था।

इस उपन्यास में प्रेमचंद नें एक तथ्य और उजागर किया है वह यह है कि जनता को अपने स्वत्व की लड़ाई खुद लड़नी होगी। क्योंकि सम्पत्तिशाली वर्ग उनके साथ सहानुभूति का कितना ही ढ़ोंग क्यों न करें उनके हित की कितनी ही बातें क्यों न करें परन्तु प्रभुसत्ता प्राप्त होते ही उनकी कृपा दृष्टि कब कोप दृष्टि में परिवर्तित हो जाए कुछ कहा नहीं जा सकता राजा विशाल सिंह की भाँति ही चक्रधर जैसा परोपकारी नेता सत्ता और धन के मद से स्वयं को विलग नहीं रख सका जब उनकी पत्नी अहिल्या राजा विशाल सिंह की पुत्री साबित हो जाती है और इस नाते वे राजा के दामाद हो जाते है तो उनकी मनोवृत्ति भी एकाएक परिवर्तित हो जाती है।

उपन्यास के तीसरे भाग में प्रेमचंद ने राजाओं के निरंकुश तथा विलासपूर्ण जीवन का सजीव चित्रण किया है। रानी देवप्रिया के सम्बन्ध में वे लिखते हैं– ''रानी देवप्रिया का जीवन केवल दो शब्दों में समाप्त हो जाता था– विनोद और विलास। इस वृद्धावस्था में भी उनकी वृत्ति अणुमात्र भी कम न हुई थी। .... रियासत उनके भोग–विलास का साधन मात्र थी। प्रजा को क्या कष्ट होता

है, उन पर कैसे–कैसे अत्याचार होते हैं, सखे झूरे की विपत्ति क्यों कर उनका सर्वनाश कर देती है, इन बातों की ओर कभी उनका ध्यान न जाता था। उन्हें जिस समय जितने धन की जरूरत हो, उतना तुरन्त मैनेजर को देना काम था। वह ऋण लेकर दे, चोरी करे या प्रजा का गला काटे, इससे उन्हें कोई प्रयोजन न था।" [1] रानी देवप्रिया जो राजा विशाल सिंह के बड़े भाई की विधवा है बुढ़ापे में भी अपनी अतृप्त तृष्णाओं की पूर्ति के साधन जुटाने में लगी रहती है और येन–केन प्रकारेण अपने विगत यौवन को पुनः प्राप्त करना चाहती है उसकी एक ही अभिलाषा है कि युवक उसके रूप सौन्दर्य पर मुग्ध हों इस उपन्यास में प्रेमचंद आवागमन के सिद्धान्त को अत्यन्त मार्मिक एवं व्यंगात्मक ढ़ंग से प्रस्तुत किया है वे राजकुमार इन्द्र विक्रम सिंह के माध्यम से परलोक की अलौकिक एवं चमत्कारिक यात्रा का वर्णन इस प्रकार करते हैं– "इस यात्रा में मुझे तुम्हारी (रानी देवप्रिया की) याद आती रही। विकल होकर आकाश में इधर उधर दौड़ा करता था। प्रायः सभी प्राणियों की यही दशा थी।"[2]

इस उपन्यास में पुनर्जन्म की घटनाओं की अधिकता है। इसमें रानी देवप्रिया के पति के तीन बार जन्म लेने की चमत्कारिक कथा कही गयी है। सर्वप्रथम रानी देवप्रिया के पति के रूप में मृत्यु तत्पश्चात – हर्षपुर में जन्म फिर तीसरे और अन्तिम चरण में चक्रधर के पुत्र शंखधर के रूप में। रानी देवप्रिया को भी इसमें कायाकल्प के द्वारा दो बार युवती बनते दिखाया गया है। पहली बार राजकुमार की तीन वर्षों की तपस्या से तथा दूसरी बार हर्षपुर की कमला अर्थात शंखधर की पत्नी के रूप में। पुनर्जन्म की इस कथा को विश्वसनीय बनाने के लिए प्रेमचन्द ने कई उपाय किये हैं। 'कायाकल्प' में प्रेमचन्द ने समाजिक जीवन का चित्रण जितना सजीव और मर्मस्पर्शी किया है उसकी तुलना में पुनर्जन्म का चित्रण उतना प्रभाव शाली नहीं है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रेमचन्द ने कायाकल्प में आध्यात्मिक कथा को भी व्यक्ति की समस्याओं के साथ सम्बद्ध करके उसे सामाजिक रूप प्रदान करने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया है।

---

[1] *कायाकल्प प्रेमचंद पृष्ठ 54–55*

[2] *कायाकल्प–पृ0 99–100*

कायाकल्प

इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने जगदीशपुर की विधवा रानी देवप्रिया तथा उनके पति के अनेक जन्मों की चमत्कारिक कथा प्रस्तुत की है। जिसके अन्तर्गत वृद्धा देवप्रिया का पति कई बार जन्म लेता है और देवप्रिया से मिलकर उसे वृद्धा से पुनः युवती बना देता है। इसी कारण प्रेमचन्द के उपन्यासों में उनका उपन्यास 'कायाकल्प' सर्वाधिक आलोचना का विषय रहा है।

प्रेमचन्द की अन्य उत्कृष्ट यथार्थवादी रचनाओं को देखते हुए संरचनात्मक दृष्टिकोण से यह उनकी एक कमजोर कृति है जिसमें प्रेमचन्द यथार्थवादी पथ से हटकर पारलौकिक जगत में विचरण करते दिखाई देते हैं

यदि 'कायाकल्प' के इस दुर्बल पक्ष से परे होकर देखा जाए तो इसके पात्रों तथा घटनाओं के माध्यम से तत्कालीन भारत की राजनैतिक परिस्थितियों का पूर्ण रूप से परिचय मिलता है जिसके अन्तर्गत असहयोग आन्दोलन की असफलता, साम्प्रदायिक दंगें, ब्रिटिश सरकार के शोषण इत्यादि का इस उपन्यास मे यर्थाथ चित्रण हुआ है जो इस उपन्यास का सबल पक्ष है कथा की दृष्टि से इस उपन्यास के तीन भाग है प्रथम भाग हिन्दू–मुस्लिम समस्या पर केन्द्रित है, द्वितीय भाग राजा प्रजा और किसानों से सम्बन्धित है तृतीय और अंतिम भाग में राजाओं के अन्तःपुर का सजीव चित्रण किया गया है।

यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय तो इस उपन्यास की चमत्कार पूर्ण तथा अलौकिक घटनाओं के मध्य प्रेमचन्द ने वर्ग संघर्ष की कथा प्रस्तुत की है जिसमें एक ओर अत्याचारी जागीरदार उनकी रानियाँ और कारिन्दें हैं तो दूसरी ओर अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत किसान–जनता अर्थात एक ओर प्रजा और चक्रधर की सेवा समिति के लोग हैं तो दूसरी ओर राजा विशाल सिंह और उनके कर्मचारी। चक्रधर गाँधीवादी नेता के प्रतिरूप हैं उनका यह गाँधीवादी रूवरूप कई स्थलों पर व्यक्त हुआ है जब कभी अत्याचार और शोषण के विरूद्ध जनता के हृदय में विद्रोह की ज्वाला भड़कती है चक्रधर उसे शान्ति और अहिंसा के उपदेश द्वारा शान्त कर देते हैं। उदाहरणार्थ जब जेल के दरोगा के अत्याचार से क्षुब्ध कैदी विद्रोह करते हैं तो चक्रधर अपनी अहिंसात्मक नीति के अनुसार अंग्रेज सैनिकों की रक्षा करने पहुँच जाते हैं उनके इस कृत्य के कारण अत्याचार के विरूद्ध उठने वाली आवाज तो शान्त हो ही जाती है साथ ही साथ उन मजदूरों

का बलिदान भी व्यर्थ जाता है। इस प्रकार प्रेमचंद ने इस उपन्यास में उस गाँधीवादी नेतृत्व की असफलता की ओर संकेत किया है जो हिंसा का भय दिखाकर जनता के आन्दोलन को किसी निष्कर्ष पर पहुँचने से पूर्व ही समाप्त कर देता है जिससे अत्याचारी का हृदय परिवर्तन तो नहीं होता जनता की स्थिति यथावत बनी रहती है यदि हम इन घटनाओं को उस समय के राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में देखे तो हमें गाँधीजी के नेतृत्व में चलने वाले प्रथम असहयोग आन्दोलन की कथा नजर आएगी। अपने अहिंसा के सिद्धान्त की रक्षा के लिए चौरी–चौरा काण्ड के पश्चात जब गाँधीजी ने आन्दोलन स्थगित कर दिया था तो उसका भी ऐसा ही परिणाम हुआ था।

इस उपन्यास में प्रेमचंद नें एक तथ्य और उजागर किया है वह यह है कि जनता को अपने स्वत्व की लड़ाई खुद लड़नी होगी। क्योंकि सम्पत्तिशाली वर्ग उनके साथ सहानुभूति का कितना ही ढ़ोंग क्यों न करें उनके हित की कितनी ही बातें क्यों न करें परन्तु प्रभुसत्ता प्राप्त होते ही उनकी कृपा दृष्टि कब कोप दृष्टि में परिवर्तित हो जाए कुछ कहा नहीं जा सकता राजा विशाल सिंह की भाँति ही चक्रधर जैसा परोपकारी नेता सत्ता और धन के मद से स्वयं को विलग नहीं रख सका जब उनकी पत्नी अहिल्या राजा विशाल सिंह की पुत्री साबित हो जाती है और इस नाते वे राजा के दामाद हो जाते है तो उनकी मनोवृत्ति भी एकाएक परिवर्तित हो जाती है।

उपन्यास के तीसरे भाग में प्रेमचंद ने राजाओं के निरंकुश तथा विलासपूर्ण जीवन का सजीव चित्रण किया है। रानी देवप्रिया के सम्बन्ध में वे लिखते हैं– "रानी देवप्रिया का जीवन केवल दो शब्दों में समाप्त हो जाता था– विनोद और विलास। इस वृद्धावस्था में भी उनकी वृत्ति अणुमात्र भी कम न हुई थी। .... रियासत उनके भोग–विलास का साधन मात्र थी। प्रजा को क्या कष्ट होता है, उन पर कैसे–कैसे अत्याचार होते हैं, सखे झूरे की विपत्ति क्यों कर उनका सर्वनाश कर देती है, इन बातों की ओर कभी उनका ध्यान न जाता था। उन्हें जिस समय जितने धन की जरूरत हो, उतना तुरन्त मैनेजर को देना काम था। वह ऋण लेकर दे, चोरी करे या प्रजा का गला काटे, इससे उन्हें कोई प्रयोजन न था।" [1] रानी देवप्रिया जो राजा विशाल सिंह के बड़े भाई की विधवा है बुढ़ापे

---

[1] *कायाकल्प प्रेमचंद पृष्ठ 54–55*

में भी अपनी अतृप्त तृष्णाओं की पूर्ति के साधन जुटाने में लगी रहती है और येन–केन प्रकारेण अपने विगत यौवन को पुनः प्राप्त करना चाहती है उसकी एक ही अभिलाषा है कि युवक उसके रूप सौन्दर्य पर मुग्ध हों इस उपन्यास में प्रेमचंद आवागमन के सिद्धान्त को अत्यन्त मार्मिक एवं व्यंगात्मक ढ़ंग से प्रस्तुत किया है वे राजकुमार इन्द्र विक्रम सिंह के माध्यम से परलोक की अलौकिक एवं चमत्कारिक यात्रा का वर्णन इस प्रकार करते हैं– "इस यात्रा में मुझे तुम्हारी (रानी देवप्रिया की) याद आती रही। विकल होकर आकाश में इधर उधर दौड़ा करता था। प्रायः सभी प्राणियों की यही दशा थी।"[1]

इस उपन्यास में पुनर्जन्म की घटनाओं की अधिकता है। इसमें रानी देवप्रिया के पति के तीन बार जन्म लेने की चमत्कारिक कथा कही गयी है। सर्वप्रथम रानी देवप्रिया के पति के रूप में मृत्यु तत्पश्चात – हर्षपुर में जन्म फिर तीसरे और अन्तिम चरण में चक्रधर के पुत्र शंखधर के रूप में। रानी देवप्रिया को भी इसमें कायाकल्प के द्वारा दो बार युवती बनते दिखाया गया है। पहली बार राजकुमार की तीन वर्षों की तपस्या से तथा दूसरी बार हर्षपुर की कमला अर्थात शंखधर की पत्नी के रूप में। पुनर्जन्म की इस कथा को विश्वसनीय बनाने के लिए प्रेमचन्द ने कई उपाय किये हैं। 'कायाकल्प' में प्रेमचन्द ने समाजिक जीवन का चित्रण जितना सजीव और मर्मस्पर्शी किया है उसकी तुलना में पुनर्जन्म का चित्रण उतना प्रभाव शाली नहीं है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रेमचन्द ने कायाकल्प में आध्यात्मिक कथा को भी व्यक्ति की समस्याओं के साथ सम्बद्ध करके उसे सामाजिक रूप प्रदान करने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया है।

रंगभूमि

कथाफलक की दृष्टि से 'रंगभूमि' प्रेमचन्द्र का सबसे वृहद उपन्यास है इसमें उन्होने अपने युग की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं एवं संघर्षों का पूरी ईमानदारी के साथ यथार्थ–चित्रण किया है। इस उपन्यास में पूँजीवाद और भारतीय परम्परा के द्वन्द्व को प्रेमचन्द ने बहुत व्यापक स्तर पर प्रस्तुत किया है। इसकी रचना विशेष रूप से राजनीतिक जागरण को आधार बना कर की गयी है अतः इसमें हमें तद्‌युगीन राजनीतिक चेतना के दर्शन होते हैं। प्रेमचन्द ने इसमें समकालीन राज्य व्यवस्था विशेष कर अंग्रेजी सरकार

---

[1] *कायाकल्प–पृ0 99–100*

की नीतियों की खुलकर आलोचना की है प्रेमचन्द जिस समय रंगभूमि की रचना कर रहे थे वह गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन का निष्कर्ष काल था। जिससे प्रेरणा ग्रहण करते हुए उन्होंने सूरदास के चरित्र में गाँधीवादी विचार धारा के व्यवहारिक पक्ष को मूर्तरूप प्रदान किया है।

रंगभूमि का मुख्य पात्र सूरदास एक अन्धा भिखारी है, उसके पास पूर्वजों की दस बीघा जमीन है। जो गाँव के पशुओं के लिए चारागाह का काम करती है निजी हित की दृष्टि से उस जमीन से सूरदास को कोई लाभ नहीं है। एक ऐंग्लों इण्डियन उद्योगपति जॉनसेवक उस जमीन पर सिगरेट का कारखाना लगाना चाहता है। परन्तु सूरदास उस जमीन को किसी भी कीमत पर बेचना नहीं चाहता है क्योंकि वह जमीन बेजबान पशुओं का पेट भरती है वह उनके पेट पर लात कैसे मार सकता है लेकिन जॉनसेवक उस जमीन को किसी भी प्रकार से हड़प लेना चाहता है। जमीन का यह विवाद ही इस उपन्यास की मूल कथा और संघर्ष का मूल कारण है सूरदास जमीन बेचने से बार–बार इन्कार करता है और जान सेवक उस जमीन को प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध है जिसको लेकर बहुत उपद्रव मचाता है बात खून खराबे तक पहुँच जाती है। अंततः सूरदास से उसकी ज़मीन बल पूर्वक छीन ली जाती है फैक्ट्री बन जाने पर उसमें काम करने वाले मजदूरों के आवास के लिए गाँव खाली करने के आदेश दिये जाते हैं सूरदास अपनी झोपड़ी भी नहीं छोड़ना चाहता, नौबत पुलिस और फौज तक पहुँच जाती है लोग सूरदास के नेतृत्व में सत्याग्रह करतें हैं उसमें दुर्भाग्यवश सूरदास को गोली लग जाती है और वह मर जाता है।

सूरदास की मूल कथा के अतिरिक्त प्रेमचन्द ने विनय और सोफिया की प्रेम कथा को भी अत्यन्त रोचक ढ़ंग से प्रस्तुत किया है। एक दुर्घटना में विनय और सोफ़िया का परिचय होता है जो बाद में प्रेम का रूप धारण कर लेता है सोफिया जॉनसेवक की आदर्शवादी पुत्री है जो अपने पिता के विचारों से सहमत नहीं और न ही अपने माँ के विचारों से क्योंकि उसकी माँ में धार्मिक कट्टरता कूट–कूट कर भरी है जबकि सोफ़िया मानवता और कर्म को अधिक महत्व देती है, धर्म को लेकर एक दिन दोनो माँ बेटी में झगड़ा हो जाता है और वह सोफिया को घर से निकाल देती है विनय कुवँर भरत सिंह और जाह्नवी का अकेला पुत्र है गाँधीवादी विचारधारा और जीवन दर्शन में उसकी प्रबल आस्था है, इन्दु, विनय की बहन है जिसका विवाह चतारी के राजा महेन्द्र प्रताप सिंह से हुआ है वह

म्युनिसिपैलिटी का चेयर मैन है जिसकी सहायता से जॉनसेवक ज़बरदस्ती सूरदास की जमीन पर कब्जा कर लेता है इन्दु पति के इस निर्णय से सहमत नहीं है। रानी जाह्नवी अपने पुत्र विनय को देश और जाति पर बलिदान होने वाले वीर के रूप में देखना चाहती हैं – "परन्तु सामाजिक विकास के नियमों को समझने वाली वैज्ञानिक दृष्टि के अभाव में उनका यह स्वप्न पूरा नहीं हो पाता। प्राचीन आदर्शों को नवीन परिस्थितियों पर घटित करने के असंगत प्रयास में वह अपने पुत्र को ऐसी शिक्षा देती है जिसके फलस्वरूप उसका चरित्र असंगतियों में उलझा हुआ प्राचीनता और नवीनता की खिचड़ी बनकर रह जाता है।

सूरदास ही 'रंगभूमि' का सर्व प्रधान पात्र है वह संगठन कथा का केन्द्र है वह अपने जीवन की लड़ाई धरम के बल पर लड़ना जानता है और उसका धरम है अन्याय का विरोध करते हुए निरंतर संघर्ष करते रहना परिणाम की चिन्ता किये बिना अन्याय के विरूद्ध पूरी शक्ति से युद्ध करना यह युद्ध वह किसी सर्वनाश के लिए नहीं लड़ता बल्कि एक स्वस्थ समाज के निर्माण हेतु लड़ता है। उसका चरित्र दया, धर्म, सत्य, न्याय, विवेक और परोपकार जैसे उच्चतम मानवीय गुणों से सुसज्जित है सूरदास यह भली–भाँति जानता है कि वह चाहे जितना भी प्रयत्न करे महाजनी सभ्यता के प्रसार को रोक नहीं सकता फिर भी अपने अदम्य साहस के सहारे वह मैदान में डटा रहता है। सूरदास के सम्मुख दो मोर्चे है एक ओर वह पूँजीवाद के दानव के गाँव में प्रवेश को रोकना चाहता है तो दूसरी ओर अपने ग्रामवासियों को अनैतिकता से बचाने के लिए प्रयत्नशील है यद्यपि सूरदास को उसके लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती वह हार जाता है परन्तु उसकी हार में ही उसकी जीत निहित है क्योंकि "उसके संघर्ष ने उसके और उसके साथियों के आत्म सम्मान की रक्षा की। सूरदास को गर्व है कि वह कायरों की तरह मैदान छोड़कर नहीं भागा, उसे दृढ़ विश्वास है कि वह जीतेगा। यानी न्याय का पक्ष जीतेगा, भले ही सूरदास व्यक्तिगत रूप से दुनिया में न रहे।" [1]

"रंगभूमि की मुख्य समस्या पूँजीवाद की अनिवार्यता और उसकी व्यावहारिक जटिलताओं से सम्बन्धित है। 'रंगभूमि' की समस्त समस्याओं में एक समस्या देशी रियासतों की भी है। रियासतों के प्रतिक्रियावादी जीवन में अन्याय और शोषण चरम सीमा तक पहुँच चुका था। प्रेमचन्द ने जसवन्त नगर की कथा

---

[1] *प्रेमचन्द और उनका युग – डा० राम विलास शर्मा – पृष्ठ 76*

के माध्यम से उसका यथा–तथ्य चित्रण किया है। 'रंगभूमि' के माध्यम से प्रेमचन्द ने रियासतों की दोषपूर्ण शासन प्रणाली की खुलकर आलोचना की है तथा देशी राजाओं और ब्रिटिश साम्राज्य के एजेन्टों की काली करतूतों का पर्दाफाश किया है 'रंगभूमि' में प्रेमचन्द ने धार्मिक और सांस्कृतिक समस्याओं पर भी प्रकाश डाला है वे धार्मिक और सांस्कृतिक कट्टरवादिता को देश के लिए घातक समझते हैं मिसेज सेवक और रानी जाह्नवी के चरित्रों के माध्यम से धार्मिक कट्टरवादिता के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाली साम्प्रदायिकता की भावना और उसके दुष्परिणामों पर विस्तार पूर्वक अपने विचार व्यक्त किए हैं और साथ ही साथ देश में राष्ट्रीय एकता की भावना को प्रोत्साहित करने के लिए सोफिया जैसे धर्मसहिष्णु मानवतावादी चरित्र का निर्माण किया है

रंगभूमि* में प्रेमचंद सूरदास की प्रतीक कथा के माध्यम से समस्त भारतीय जनता को अपने अधिकारों की रक्षा के लिए निरन्तर संघर्षरत रहने की प्रेरणा प्रदान करते हैं यद्यपि अपने संघर्ष में सूरदास को अंततः पराजय मिलती है तथापि प्रेमचंद ने उसे कहीं भी हताश नहीं दिखाया प्रेमचन्द ने एक ओर जहाँ सूरदास में अटूट, आशा, विश्वास और दृढ़ संकल्प शक्ति को समाहित करके उसे जनता को प्रेरणा देने वाली शक्ति के रूप में स्थापित किया है। वही दूसरी ओर देशी रियासतों के चित्रण के माध्यम से जाति सेवा का व्रत धारण करने वालों तथा कथित रक्षकों पर तीक्ष्ण प्रहार करके चेहरे पर पड़े जाति प्रेम के पर्दे के तार–तार किया है। यदि प्रेमचन्द के सम्पूर्ण साहित्य पर दृष्टिपात किया जाए तो इसे उनकी उत्कृष्टतम कृति नहीं कहा जा सकता परन्तु मानव जीवन के प्रति प्रेमचन्द के दृष्टिकोण की जिस प्रकार व्यवहारिक परिणति इस उपन्यास में हुई है वह रंगभूमि को उनके श्रेष्ठतम उपन्यासों में स्थान अवश्य दिलाती है। इसके साथ ही साथ यह प्रेमचन्द के पूँजीवादी दृष्टिकोण के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक विचारों को स्पष्ट करने में भी पूर्ण रूप से सक्षम है।

'गबन'

यह एक सामाजिक रचना है, जिसमें सामाजिक विसंगतियों को समाज के सम्मुख रख प्रेमचंद ने उनका निदान प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। वैसे तो लोग गबन को स्त्री की आभूषण प्रियता की ट्रेज़ड़ी कहते हैं लेकिन कथा की गहराई में जाने से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचंद इस कथा के माध्यम से समाज का कौन सा रूप हमारे सामने प्रस्तुत करने वाले हैं। प्रेमचंद ने मनुष्य की

मनोगत दुर्बलताओं और अलग–अगल परिस्थितियों में उसकी चेष्टाओं का वर्णन करते हुए यह बताया है कि किस तरह से एक व्यक्ति एक बार एक मामूली भूल करने के बाद दोबारा परिस्थितियों के अनुसार कार्य करने को मजबूर हो जाता है। इसके अतिरिक्त प्रेमचंद ने 'गबन' में एक ओर मध्यवर्ग की वास्तविक दशा का यथार्थ चित्रण किया है तथा दूसरी ओर उन्होंने पुलिस की करतूतों का भी भंडाफोड़ किया है तथा उसकी वास्तविकता से हमें अवगत कराया है यहॉ पुलिस बिट्रिश तानाशाही का प्रतीक है। प्रेमचंद ने गबन उपन्यास में जीवन को जिस दृष्टि से देखा उसको उसी रूप में चित्रित किया तथा आदर्श की लेशमात्र भी न पड़ने दी। प्रेमचंद ने ग्रामीण परिवेश का वर्णन करते हुए गॉव का पवित्र स्वच्छ, निश्छल साकार रूप प्रस्तुत किया है गबन के पात्र अभावग्रस्त जिन्दगी व्यतीत करते हुए भी उसी गॉव के पावन धरती पर सुख–शान्ति का अनुभव करते है और अपनी अस्थिर* जिन्दगी को गॉव में ही व्यतीत करते हैं । आरम्भ से लेकर जिन्दगी के अन्तिम दौर तक वे विभिन्न परिस्थितियों का सामना करते हैं। जिसके द्वारा प्रेमचंद ने तीसरी शताब्दी के अन्तिम और चौथी शताब्दी के प्रथम चरण मे देश की सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों से कथा को गुम्फित कर दिया है। प्रेमचंद ने इन घटनाओं का सीधे वर्णन न करके अपने कुशल मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से एक नाटकीय रूप प्रदान किया है।

गबन की कथा दो पक्षीय है। पहला पक्ष इलाहाबाद की घटना से सम्बन्ध रखता है जो मध्यम वर्गीय परिवार से सम्बद्ध है दूसरा पक्ष में प्रेमचंद ने राजनीतिक चेतना की भूमिका को जोड़कर पुलिस के कारनामों का वर्णन किया है। तथापि दोनो कथाएँ आपस में असम्बद्ध हैं, जिसे उपन्यास के मुख्य नायक रमानाथ के जीवन से जोड़ दिया है जो स्त्रियो की आभूषण प्रियता के कथानक को जीवन्तता प्रदान करती है। रमानाथ और जालपा की मुख्य कथा के विस्तार के लिए, रतन, ज़ोहरा, देवीदीन आदि की प्रासंगिक कथाओं का समावेश किया गया है जो मुख्य कथा को गति प्रदान करती है। रतन की दास्तां युवती विधवा और नारी के सामाजिक अधिकारों की समस्या जो सम्मिलित परिवार में निहित होती है उसे ज्योति प्रदान करती है। जोहरा का कथानक वेश्यावृत्ति के एक पहलू को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है। देवीदीन की कथा राजनीतिक चेतना से जुड़ी हुई है जो निम्न मध्यवर्ग की उदारवृत्ति की परिचायक है। अतः हम कह सकते हैं कि प्रत्येक कथा की अपनी प्रासंगिकता है। देवीदीन के कथानक को लेकर प्रेमचंद ने बड़ी ही कुशाग्रता के साथ रमानाथ और जालपा के कथानक को

पारिवारिक परिस्थितियों के केन्द्र से निकाल कर राजनीतिक परिस्थिति से जोड़ दिया है।

गबन की कथा रमानाथ और जालपा की न होकर एक ऐसे वर्ग की कथा है, जो आर्थिक ढाँचे के आधार पर निम्नवर्ग के ही अन्तर्गत आता है लेकिन उच्चवर्ग की भाँति जीवन व्यतीत करता है। इस वर्ग की मनोवृत्ति महत्वाकांक्षी एवं स्वप्नदर्शी होती है। वह जीवन पर्यन्त ऊँची–ऊँची उड़ाने भरता रहता है। वह सम्पत्तिशाली वर्ग की भाँति ही अपने जीवन को ऐश्वर्य पूर्ण एवं रंगीली अभिलाषाओं सहित व्यतीत करना चाहता है लेकिन उसका दुर्भाग्य यह है कि वास्तविक जीवन में इन सपनों को साकार नहीं कर पाता। जिसका परिणाम यह होता है कि इस वर्ग के बहुत से लोग गरीबी और बेकारी से घिर जाते है जिसके चलते वह अपना अस्तित्व खो बैठते है और जाकर सर्वहारा वर्ग में मिल जाते हैं प्रेमचंद ने अपने उपन्यास गबन में इस विघटनकारी मानसिकता का परिचय दिया है।

मुंशी दीनदयाल की बेटी जालपा की शादी दयानाथ के पुत्र रमानाथ के साथ कुशलता पूर्वक सम्पन्न हो जाती है। लेकिन दयानाथ के द्वारा शादी में किये गये खर्च उसके लिए मुसीबत बन जाते हैं वे कर्ज में इतना डूब गये थे कि उससे पार पाना उनकी सामर्थ्य से बाहर था। वे शादी के लिए जो जेवर चढ़ावे में ले गये थे वह सोनारों के यहाँ से उधार लाए गए थे अगर यह चाहते तो बहू से माँगकर उनके ज़ेवर वापस कर सकते थे लेकिन अपनी झूठी मान–मर्यादा को बनाये रखने के लिए वह बहू के जेवरों को रात में चुराते हैं और सोनारों को लौटा देते हैं बहू और समाज दोनों के नजरों से बचने के लिए वह दोनों बाप बेटे अपनी आत्मा का सौदा कर डालतें है अभूषणों के अभाव में जालपा बहुत दुखी हो जाती है मध्यम वर्गीय परिवेश में पल–पोसकर बड़ी हुई जालपा की बलवती स्पृद्य आभूषणो के प्रति निहित है ताकि वह भी समाज की औरतों के बीच अपना स्तर कायम रख सके। जालपा की एक अभिलाषा थी कि उसके विवाह में उसे चन्द्रहार मिले लेकिन ऐसा न होने पर चिन्ता ग्रसित होकर चन्द्रहार के सोंच में एकांत पड़ी रहती थी और न किसी के घर जाना न किसी से मिलना जुलना गवाँरा करती थी। जब उसको अपने पति रमानाथ के द्वारा चन्द्रहार भेट किया जाता है तो जालपा का प्रेम रमानाथ के लिए बढ़ जाता है और वह रमानाथ के साथ आना जाना पसन्द करने लगती है और पड़ोसियों के यहाँ भी मिलने जाती

है। लेकिन यह सहयोग ज्यादा दिन तक नहीं चलता एक समय ऐसा आता है कि जब रमानाथ के सामने ऐसी परिस्थिति पैदा हो जाती है कि घर छोड़कर भाग जाता है तदुपरान्त परिस्थितियों के जाल में फँसकर जालपा का हृदय परिवर्तन हो जाता है और हृदय में जो आभूषण के प्रति आकर्षण था वह नष्ट हो जाता है तथा उसके स्थान पर लोक भावना एवं देश प्रेम की भावना जाग्रत हो जाती है और यह मध्यवर्ग के दिखावे को त्याग कर लोक कल्यांण में लग जाती है। दूसरी तरफ रमानाथ का भी हृदय परिवर्तन जालपा और देवीदीन के प्रयासों से होता है और वह स्वार्थान्धता से मुक्त होकर लोकमंगल में लग जाता है आभूषण के प्रियता की दास्ताँ केवल मध्यवर्गीय नारी जालपा की ही नहीं अपितु उच्च मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग के स्त्रियों में भी यह प्रवृत्ति पायी जाती है। इसकी पुष्टि हमे रतन और जग्गों के कथानक से मिल जाती है।

प्रेमचंद ने वस्तुतः प्रत्येक उपन्यास में जहाँ उनको अवसर मिला बिट्रिश शासन प्रणाली, पुलिस के अत्याचारों को हमारे सामने प्रस्तुत करने का भरसक प्रयास किया है। लेकिन गबन उपन्यास में रमानाथ और देवीदीन के माध्यम से इस व्यवस्था की गहराई में उतरने का प्रयत्न किया है। देवीदीन दृढ़ संकल्पी कांग्रेसी नेता और स्वदेशी आन्दोलन का सजग प्रहरी है। वह स्वदेशी आन्दोलन की करूण गाथा अपने मुख से बड़ी ही दृढ़ता के साथ सुनाता है क्योंकि इसी स्वदेशी आन्दोलन के चलते उसके दो बेटे बलिदान हो गए। प्रेमचंद ने पुलिस के भ्रष्टाचार का रमानाथ के माध्यम से पर्दाफाश किया है और इस घटना को कलकत्ते में चल रहे काल्पनिक मुकदमें से जोड़ा है। पुलिस किस प्रकार प्रलोभन, देती और ड़राती धमकाती है जो कमजोर दिल के होते है पुलिस के हाथ–चढ़ जाते हैं और सरकार की तरफ से झूठी गवाही देते है, रमानाथ ऐसी ही बिड़म्बनाओं से जुड़ा पात्र है। झूंठी गवाही के प्रसंग के द्वारा प्रेमचंद ने उस समय क्रान्तिकारियों के सहारे देश में जो राष्ट्रीय जागरण हो रहा था उसका परिचय कराया है।

प्रेमचंद ने गबन उपन्यास में मध्यवर्गीय परिवारों के जीवन वृतान्त को हमारे सामने प्रस्तुत करने का प्रयास करते हुए उसमें व्याप्त कुरीतियों, रूढ़ियों अंध विश्वासों और प्रदर्शन भावना का यर्थाथ परक और ज़ोरदार चित्रण किया है। लेखक देवीदीन और जग्गो के सहारे यह संकेत करना चाहता है कि वे दोनों रमानाथ, जालपा और रतन आदि से निर्धन होते हुए भी अपने जीवन से संतुष्ट

हैं। क्योंकि उनमें मिथ्याड़म्बर नहीं है रमानाथ और जालपा इसलिए दुख उठाते हैं क्योंकि वे बनावटी ज़िन्दगी जीते हैं जिसमें कष्ट है झूठापन है, कठिनाई है। गबन उपन्यास में प्रेमचंद ने जो समस्याएं हमारे सम्मुख लाने का अथक प्रयास किया है वह एक व्यक्ति या एक परिवार की समस्या होते हुए भी सम्पूर्ण मध्य–वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। आर्थिक दुर्बलता के चलते मनुष्य केवल झूठी आत्म–तुष्टि कर सकता है परन्तु सच्चे सुख–शान्ति की अनुभूति नहीं कर सकता। लेखक ने कथानक को रोचकता प्रदान करते हुए, तथ्यों के माध्यम से पात्रों का मनोवैज्ञानिक ढंग से वर्णन किया है। स्त्री–स्वतंत्रता, स्त्री–शिक्षा, फैशन की समस्या, राष्ट्रप्रेम और स्वदेशी आन्दोलन, फैशन की बढ़ी हुई प्रवृत्ति, पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का बढ़ता हुआ प्रभाव संयुक्त परिवार, विधवा जीवन, नवयुवक वर्ग की बेरोजगारी, अधिकारी वर्ग की शोषण वृत्ति, परम्परागत रूढ़ियों आदि विविध क्षैत्रीय समस्याओं से गुम्फित यह उपन्यास मध्यवर्गीय जीवन का जीता जागता उदाहरण है।

'कर्मभूमि'

प्रेमचंद का यह उपन्यास मुख्य रूप से एक समस्या प्रधान उपन्यास है अपनी इस औपन्यासिक कृति में उन्होंने देश की तत्कालीन सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं पर प्रकाश डाला है जिसमें स्वाधीनता की समस्या विशेष रूप से उल्लेखनीय है इसके अतिरिक्त अछूतों तथा किसानों की समस्याओ का भी चित्रण किया है क्योंकि यह सभी आपस में एक–दूसरे से किसी न किसी रूप में सम्बद्ध है। इस प्रकार प्रेमचंद कर्मभूमि में कई समस्याओं को एक साथ जोड़ते हुए चलें हैं। गरीब किसानों का शोषण, मंदिर में अछूतों का प्रवेश, महंत का धार्मिक पाखंड, राजनीतिक जाग्रति, सरकारी दमन आदि इसकी कथा की मुख्य धारा के अन्तर्गत आते हैं। इसके अधिकतर पात्र जन कल्याण तथा समाज सेवा के कार्यों में संलग्न है क्योंकि कर्मयोग का संदेश देना ही इस उपन्यास का उद्देश्य है और यही इसका सारतत्व भी।

व्यापक दृष्टि से देखे तो "कर्मभूमि अपने रचनाकाल के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक जीवन का एक प्रतीकात्मक इतिहास है, सिसमें सन् 1929 से लेकर सन् 1931 तक के भारतीय जन जीवन की सम्पूर्ण गाथा अपनी समस्याओं के साथ उभरकर पाठकों के सामने आती है। कथा की पृष्ठभूमि सन् 1929 की आर्थिक मन्दी और सन् 1930 में गाँधी जी के नेतृत्व में चलने वाले

राष्ट्रीय स्वातंत्रय आन्दोलन पर आधारित है। उपन्यास की कथा जैसे–जैसे विकास की दिशा में अग्रसर होती है वैसे ही वैसे अनेक समस्यायें एक–एक करके हमारे सामने आती है।

राष्ट्रीय आन्दोलन के नेृत्व की समस्या सामाजिक जीवन में नारी के योगदान और उसके सामाजिक अधिकार की समस्या और पूँजीवादी अर्थप्रधान संस्कृति से प्रभावित शिक्षा–पद्धति की समस्या को 'कर्मभूमि' की प्रधान समस्याओं के अंतर्गत लिया जा सकता है।"[1] प्रेमचंद एक कुशल समाजशास्त्री की भाँति उनका परिचय कराते हैं तथा इन समस्याओं को आर्थिक धरातल की भूमि पर अवतरित करके इनका विवेचन एवं विश्लेषण करते हैं। प्रेमचंद अपने प्रत्येक पात्र से अमीरी और गरीबी पर तर्क–वितर्क कराते हैं और जगह–जगह समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता के दारूण चित्र, हमारा ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने को विवश कर देते हैं।

प्रेमचंद इस सामाजिक दुरूहता को हमारे सामने प्रस्तुत करते हुए पूँजीवादी व्यवस्था की अर्थप्रधान शिक्षा पद्धति को दोषी ठहराते हैं। इस प्रकार की शिक्षा के चलते छात्रों की मानसिकता, सामाजिक उत्तरदायित्व और जनहित की भावना से हट जाती है ओर ज्यादा से ज्यादा अर्थोपार्जन एवं सुख की अनुभूति करने वाले साधनों की ओर उनका ध्यान आकृष्ट हो जाता है। ऐसे छात्र जब शिक्षा को पूरा करने के पश्चात सामाजिक क्षेत्र में आते है तो इनका मुख्य उद्‌देश्य पैसा कमाना ही रहता है। प्रेमचंद का मानना था कि शिक्षा का उद्‌देश्य मात्र कागज की डिग्रियाँ प्राप्त करना नहीं अपितु समाज को विकास की ओर उन्मुख कराना होना चाहिए और इस उद्‌देश्य की प्राप्ति के लिए वे अर्थप्रधान शिक्षा पद्धति को बदलकर उसे जनवादी रूप प्रदान करने पर बल देते है।

प्रेमचंद समाज में स्त्री और पुरूष को समान दृष्टि से देखना चाहते थे। इसीलिए समाज में व्याप्त विभिन्ताओं की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए नारी जागरण की बात कहते हैं। प्रेमचंद ने 'सुखदा' नामक पात्र को आधुनिक नारी के विद्रोह स्वरूप में प्रतिष्ठित किया है वह खुलकर पुरूष को प्रधानता देने वाले

---

[1] *प्रेमचंद : एक मार्क्सवादी मूल्यांकन – जनेश्वर वर्मा, पृ0 282।*

रूढ़िगत प्राचीन मूल्यों का विरोध करती है। प्रेमचंद का मानना है कि दाम्पत्य जीवन की इज्जत का जितना दायित्व पुरूष पर है उतना नारी पर भी अतः आपस का सामंजस्य ही दाम्पत्य जीवन का सुखी बना सकता है। इसीलिए एक ओर जहाँ प्रेमचंद पति और पत्नी के समान अधिकार के पक्षधर हैं वहीं दूसरी ओर अनमेल–विवाह का विरोध करते हैं। अनमेल–विवाह के दुष्परिणामों को हमारे सम्मुख नैना और मनीराम के माध्यम से लाने का प्रयास करते हैं। प्रेमचंद ने नारी की महत्ता और उसके अधिकारों का समर्थन पारिवारिक क्षेत्र से आगे बढ़कर सामाजिक क्षेत्र में भी किया है।तभी नारी के सहयोग से स्वच्छ समाज के विकास का मार्ग दिखाया है

'कर्मभूमि' में चित्रित समस्याओं में अछूत समस्या का महत्व पूर्ण स्थान है। 'कर्मभूमि' में अछूतों की समस्या मन्दिर में अछूतों के प्रवेश को लेकर शुरू होती है। जिसके लिए आन्दोलन किया जाता है और इस आन्दोलन के परिणाम स्वरूप अछूतों को मन्दिर में प्रवेश का हक मिल जाता प्रेमचंद का मुख्य उद्देश्य अछूत–समस्या को मिटाना था। और मन्दिर में प्रवेश के अधिकार मिल जाने मात्र से यह सम्भव न था इसके लिए वह जाति–पाति के भेद भाव को मिटाना चाहते थे और समाज को एक स्तर से देखना चाहते थे। उच्च वर्ग में अछूतों को लेकर संस्कारगत घृणा को जन्म देने वाली वर्ण–व्यवस्था को वह समाज के लिए विष के समान मानते थे। इस दृष्टि से प्रेमचंद द्वारा अछूत समस्या के निदान और गॉधी जी द्वारा दिए गए अछूत समस्या के निदान में अन्तर है। प्रेमचंद अछूत–समस्या को वर्ग स्वार्थों द्वारा थोपी गयी आर्थिक समस्या मानते थे। तथा इसके निदान हेतु भेदभाव पैदा करने वाली वर्ण–व्यवस्था का विद्रोह करना जरूरी समझते थे। गॉधी जी वर्ण–व्यवस्था के समर्थक थे और वह उसे सुरक्षित रखना चाहते थे। प्रेमचंद वर्ण–व्यवस्था और जाति–पाति के विभेद को मिटाना चाहते थे। इसीलिए वह अछूतों के धार्मिक अंधविश्वासों को दूर करना चाहते थे और इसके लिए उनमें शिक्षा के विकास को अनिवार्य समझते थे। उन्हें मदिरा पान एवं मरे हुए जानवरों के मांस को खाने जैसी विकृतियों से बचाना चहते थे। और खान–पान के स्तर पर उन्हें समानता प्रदान करना चाहते थे इसके लिए वह संगठित जनशक्ति का समर्थन करते हुए उन्हें अपने आर्थिक और सामाजिक अधिकारों के लिए जूझने की शक्ति प्रदान करना चाहते थे।

'कर्मभूमि' उपन्यास की महत्ता उसके रचना–काल में होने वाली राजनीतिक उथल–पुथल तथा पराधीनता के विद्रोह में विराट जन आन्दोलन के

संघर्ष में निहित है। इस दृष्टिकोण से देखें तो 'कर्मभूमि' की कथा को हम सन् 1930 के राष्ट्रीय आन्दोलन से जोड़ सकते हैं। जब 'कर्मभूमि' की रचना (1929) हो रही थी उस समय देश आर्थिक विपन्नता से जूझ रहा था विशेषकर भारतीय किसान विश्व व्यापी मंदी की मार झेल रहे थे। इस मंदी के चलते भारतीय कृषकों की जो दुर्दशा थी उसके कारण किसानों में असन्तोष की भावना को जन्म ले लेना स्वाभाविक था और लगान न अदा करना तथा किसानों को एकत्रित कर लगान बन्दी के लिए आन्दोलन छेड़ना उनकी विवशता थी। प्रेमचंद ने कर्मभूमि की कथावस्तु में किसानों के इस आन्दोलन का समावेश किया है प्रेमचंद का यह उपन्यास वर्ग–संघर्ष के चित्रण से परिपूर्ण है जिसमें शुरूआत से लेकर अन्त तक प्रत्येक पात्र इस संघर्ष से जूझता नजर आता है। इसमें एक ओर तो महंत जी का विलास पूर्ण जीवन तथा दूसरी तरफ शोषित वर्ग की दीन–हीन दशा का चित्रण प्रेमचंद ने व्यंग्यपूर्ण शैली में वर्ग वैषम्य की ओर अर्थपूर्ण संकेत किया है

प्रेमचंद ने अछूत समस्या को विस्तृत रूप प्रदान करते हुए इसे राजनीतिक एवं राष्ट्रीय क्रान्ति के विभिन्न पहलुओं से जोड़ कर देखने का प्रयास किया है जो शहरों से लेकर देहातों तक फैला हुआ था। हरिजनों की इसी कथा का एक सूत्र विकसित होकर हरिद्वार के निकटवर्ती चमारों के एक गाँव तक पहुँचता है, जहाँ पर वह जमींदार–कृषक और मंदी के कारण उत्पन्न होने वाली लगान की समस्या तथा जन–संघर्ष का प्रतीक बन जाता है। किसानों के बीच वामपंथी और कांग्रेसी दोनों ही प्रकार के कार्यकर्ता काम करते हुए दिखाई देते हैं। यह भी इस युग का एक यथार्थ ही है परन्तु उनकी कार्यनीति में जो अंतर है उससे भी प्रेमचंद भलीभाँति अवगत है।"[1] प्रेमचंद ने स्वामी आत्मानंद और अमरकान्त के क्रिया–कलाप के द्वारा इस अन्तर को स्पष्ट किया है। एक ओर मंदी के चलते किसानों की हालत बड़ी दयनीय हो गयी है, लगान देना उनकी क्षमता से बाहर की बात है। वहीं दूसरी ओर महंत जमींदार के कारिन्दे लगान वसूली के लिए मज़बूर कर रहें हैं। इस ऊहापोह की स्थिति पर विचार विमर्श के लिए आत्मानन्द और अमरकान्त के द्वारा एक गोष्ठी का आयोजन किया जाता है, जिसमे आत्मानन्द किसानों को उत्साहित करते हुए कहते हैं–आओ, आज हम सब चलकर महंत जी का मकान और ठाकुर द्वारा घेर लें और जब तक वह लगान

---

[1] *प्रेमचंद : एक मार्क्स वादी मूल्यांकर– डॉ0 जनेश्वर वर्मा, पृ0 294।*

बिल्कुल न छोड़ दें, कोई उत्सव न होने दे।"[1] इन शब्दों को सुनकर किसानों में एक नया जोश जाग उठता है और अपने अधिकारों के लिए वे अपना सर्वस्व न्योछावर करने को आतुर हो जाते हैं इस पर गांधीवाद का अनुयायी अमरकान्त किसानों को यह आन्दोलन छोड़कर महंत से समझौता करने की बात करता है। इस प्रकार प्रेमचंद ने वामपंथी और कांग्रेसी कार्यकर्ताओं की कार्य–प्रणाली को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करने का भरसक प्रयास किया है। एक दल तो अपनी जन शक्ति को एक जुट करके जन अन्दोलन के माध्यम से अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए जनता में नया जोश भरकर वर्ग संघर्ष अपनाता है। वहीं दूसरा दल जनता के क्रान्तिकारी उफान को शान्त करने के लिए शोषणकर्ता महन्त–जमींदार के प्रति सौहार्द पूर्ण बातेंकर वर्ग–मैत्री की ओर मुड़कर सरकारी अफसरों के साथ समझौते का रास्ता अपनाता है।

वस्तुतः कह सकते हैं कि गोदान प्रेमचंद के बौद्धिक विकास की उत्कृष्ट रचना है लेकिन 'कर्मभूमि' उनके इस वैचारिक उत्कर्ष की पूर्वपीठिका है जिसमें उन्होंने गॉधीवादी मूल्यों को व्यवहारिक धरातल पर उतारकर उनके आगे प्रश्न–चिन्ह लगा दिये हैं। अमरकान्त का चरित्र इसका जीता–जागता उदाहरण है। जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचंद का विश्वास गांधी जी के अहिंसावादी सिद्धान्त पर से उठ चुका था और उनकी आस्था समाजवादी विचारधारा में अधिक सुदृढ़ होती जा रही थी। उन्होंने कर्मभूमि में शासन–व्यवस्था की उपयोगिता के बारे में लिखा है–"गवर्नमेंन्ट तो कोई जरूरी चीज नहीं। पढ़े–लिखे आदमियों ने गरीबों को दबाये रखने के लिए एक संगठन बना लिया है। उसी का नाम गवर्नमेण्ट है। गरीब और अमीर का फर्क मिटा दो, और गवर्नमेन्ट का खात्मा हो जाता है।"[2] प्रेमचंद के यह शब्द उनके विचारों में आने वाले क्रान्तिकारी परिवर्तन के सचूक हैं।

कर्मभूमि में प्रेमचंद के यथार्थवाद का उत्कर्ष स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि 'कर्मभूमि' प्रेमचंद का एक ऐसा उपन्यास है जिसके अन्तर्गत उन्होंने वैयक्तिक मनोभावनाओं, पारिवारिक दुर्व्यवस्थाओं, सामाजिक कुरीतियों, राजनीतिक आन्दोलनों और राष्ट प्रेम के लिए

---

[1] *'कर्मभूमि', प्रेमचंद पृ0 243।*

[2] *कर्मभूमि, प्रेमचंद पृ0 191।*

किये गये बलिदानों का चित्र उकेरने की कोशिश की है। इस उपन्यास में अछूतों के मंदिर प्रवेश को लेकर जो बखेड़ा खड़ा होता है उसके माध्यम से उन्होंने हिन्दुओं में व्याप्त सुधारवाद की झूठी डींग हॉकने वाले वास्तव में धार्मिक संकीर्णता पर प्रकाश डाला है। जिसके कारण अछूत वर्ग की समस्या कुष्ट रोग की तरह निरन्तर बढ़ती जा रही थी। अछूत समस्या के मूल में आर्थिक विषमता विद्यमान है और केवल मन्दिर प्रवेश से उनकी समस्याओं का निदान सम्भव नहीं। इसी कारण प्रेमचंद ने अछूतोद्वार के सभी पक्षों का भली–भाँति विश्लेषण करते हुए और समाज की सड़ी गली मानसिकता पर जमकर प्रहार किया है। इस उपन्यास का हर पात्र अपने–अपने जीवन क्षेत्र में सक्रिय है तथा सत्य और न्याय की खोज में अपने प्राणों की आहुति देने को आतुर है।

'गोदान'

'गोदान' कृषक जीवन का महाकाव्य है। यह प्रेमचंद की परिपक्व सोच का प्रतिफल है। यह कृति आकार की दृष्टि से भले ही उनके अन्य उपन्यासों से बृहद न हो लेकिन शिल्प की दृष्टि से यह एक विस्तृत उपन्यास है। 'गोदान' की व्यापकता का अनुमान इससे लगा सकते हैं कि प्रेमचंद ने इसमें ऑचल से लेकर शहर तक फैले हुए वर्तमान समाज के विविध रूप और वर्ग स्वार्थान्धता एवं संघर्षों का नग्न चित्र हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है। प्रेमचंद गोदान में गाँव और शहर का एक साथ वर्णन करके आज के समाज का सम्पूर्ण चित्र हमारे सम्मुख प्रस्तुत करना चाहते थे। गॉव और शहर की कथा को एक साथ व्यक्त करने का अभिप्राय समाज में व्याप्त उस महाजनी–सभ्यता के विस्तृत प्रभाव को दर्शाना था जो समाज में रोग की तरह फैल रही थी।

गोदान में व्याप्त काला बजारी से भरपूर महाजनी सभ्यता की छाप सम्पूर्ण उपन्यास में देखने को मिलती है। गाँव के सदस्य दातादीन पण्डा, झींगुरी, सहुआइन, नोखेराम हैं, और शहर में खन्ना तथा तन्खा हैं इनका दबदबा ऐसा है कि इनकी छत्रछाया में पल रहे छोटे–छोटे महाज़न भी बड़े काश्तकारों से तनिक भी नहीं दबते।

वस्तुतः समाज में व्याप्त महाजनी–सभ्यता के इसी वर्चस्व को दिखाने एवं उसके दुष्परिणामों को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए प्रेमचन्द ने गाँव और शहर का एक साथ वर्णन किया है।

गोदान उपन्यास का केन्द्र बिन्दु अवध–प्रान्त में स्थित बेलारी गांव का एक किसान परिवार है। गोदान का मुख्य पात्र होरी जो कि कृषक है उसी के जीवन से इस उपन्यास की कथा प्रारम्भ होती है और उसी के सम्पूर्ण जीवन के उतार–चढ़ाव के संग कथा जुड़ती–बढ़ती–घटती रहती है और उसके जीवन अन्त के साथ इस उपन्यास की समाप्ति होती है। होरी के पास पॉच बीघे जमीन है। परिवार के सम्पूर्ण सदस्यों का पालन पोषण इसी खेती के सहारे है जो सुचारू रूप से परिवार की व्यवस्था कर पाने में सक्षम नहीं है और खेती का लगान भी सही समय पर चुकाना सम्भव नहीं होता। प्रेमचंद ने होरी के माध्यम से किसानों के अभावग्रस्त जीवन को हमारे सामने लाने का प्रयास किया है प्रेमचंद द्वारा कराया गया होरी के परिवार की निर्धनता का मर्मस्पर्शी परिचय सिर्फ होरी की ही दासतॉ नहीं अपितु आज भी किसानों की यही दशा है सिर्फ रूप परिवर्तन हुआ है अगर हम प्रेमचंद के दृष्टिकोण की गहराई में उतरे तो आज के समय में किसानों की स्थिति उससे भी बदतर है। अपने पात्र होरी के माध्यम से प्रेमचंद नें किसानों की दुर्दशा को सामने लाने का प्रयास किया है। उन्होनें होरी के चरित्र को भारतीय किसान के प्रतिनिधि पात्र के रूप में प्रस्तुत किया है। प्रेमचंद ने भारतीय किसान की उस आकॉंक्षा को हमारे सामने प्रस्तुत किया है कि प्रत्येक किसान की यह इच्छा होती है कि उसके घर में एक गाय जरूर हो किन्तु कृषक जीवन की ऐसी विवशता है कि जीवन पर्यन्त मेहनत करने के पश्चात् भी उसकी इच्छा पूर्ति नहीं होती। जो कुछ वह कृषि–कार्य से उत्पन्न करता है उसका अधिकतर भाग तो जमींदारों और महाजनों के गाल में विलीन हो जाता है।

गोदान में होरी की कथा निर्दयी शोषण वृत्ति एवं आर्थिक वैषम्य का नग्न चित्र प्रस्तुत करती है। घर बसाने का प्रलोभन देकर होरी भोला से एक गाय उधार लेता है गाय के आते ही घर में खुशियों की लहर दौड़ जाती है। लेकिन यह उल्लास के पल स्वप्न की भॉति ऑंखे खुलने के साथ नष्ट हो जाते हैं। होरी से जलन रखने वाला उसका भाई हीरा ही गाय को रात में आकर–चुपके से जहर खिला देता है और वह मर जाती है। हीरा गौ हत्या के भय एवं लोक लाज के कारण घर छोड़कर चला जाता है। चौकीदार उस क्षेत्र के थानेदार को यह सूचना दे देता है। सूचना पाते ही थानेदार हीरा के घर की तलाशी लेने के बहाने आ धमकता है। होरी के मन में यह अवधारणा विद्यमान है कि यदि पुलिस के द्वारा तलाशी ली गयी तो उसकी एवं उसके भाई हीरा की सामाजिक मर्यादा नष्ट हो जाएगी। अतः इस विपत्ति के निदान के लिए वह गॉंव के ही पटवारी पटेश्वरी

की सहायता से झिंगुरी सिंह से 30 रूपये कर्ज लेता है। धनिया खुलकर इसका विरोध करती है जब थानेदार की वहॉ से दाल न गली तो गॉव के नेताओं को पकड़ा और पचास रूपए की मॉग इस अंदाज में किया "मैं पन्द्रह मिनट का समय देता हूँ। अगर इतनी देर में पूरे पचास रूपए न आये तो तुम चारों के घर की तलाशी होगी। और गण्डा सिंह को जानते हो ? उसका मारा पानी भी नहीं माँगता।"प्रेमचंद ने जहॉ भी अवसर मिला इन काली करतूतों को अपने उपन्यासों में स्थान दिया।

होरी के गाँव बेलारी से पॉच मील दूर सेमरी गाँव में होरी के ही जमींदार रायसाहब अमर पाल सिंह रहते हैं। प्रेमचंद ने इस वर्ग में व्याप्त शोषण भावना का विभिन्न समुदायों के बीच बड़ी ही कुशलता पूर्वक चित्रण किया है। उन्होंने राय साहब के चरित्र के माध्यम से जमींदारी प्रथा की विसंगतियों का पर्दाफाश किया है। इस वर्ग के लोगों का पुनीत धर्म एवं कर्म है आश्रित किसान वर्ग का अधिक से अधिक दोहन करना। राय साहब द्वारा प्रतिवर्ष जो धनुष यज्ञ का विशाल आयोजन किया जाता है। उसका पूरा व्यय किसान वर्ग को वहन करना पड़ता है। शगुन के नाम पर एक मोटी रकम किसानों से जबरदस्ती एकत्रित की जाती है। गोदान में प्रेमचंद ने अत्यन्त मार्मिक ढंग से जमींदारी शोषण का चित्र प्रस्तुत किया है। उन्होंने यह बताना चाहा है कि जो किसान रात–दिन मेहनत करता है वह चैन भी नहीं ले पाता उसे दोनों वक्त का भोजन नहीं नसीब होता तथा जिनके हाथ–पैर भी नहीं हिलते वह आकाश बेल की तरह पल्लवित होते रहते हैं।

गोदान में प्रेमचंद ने दो संसार रचे हैं। एक संसार–सामंती व्यवस्था में जकड़ा हुआ गाँव है जहाँ होरी जैसे लाखों करोड़ों किसानों का जीवन तबाह है दूसरा वह है जहाँ सुसभ्य समझे जाने वाले लोग रहते हैं अर्थात् नागरिक जीवन जहाँ बौद्धिक स्तर पर तो आदर्श की बड़ी–बडी बातें होती हैं परन्तु व्यवस्था में कुछ खास परिवर्तन नहीं है प्रेमचंद शोषितों, पीड़ितों एवं वंचितों के पक्षधर थे वे सामाजिक कुरीतियों को दूर करके एक स्वस्थ समाज का निर्माण करना चाहते थे इस प्रकार की दोहरी कथा–शैली अपनाने के पीछे शायद उनका यही प्रयोजन रहा हो कि वे परिस्थितियों की विषमता को अधिक स्पष्ट करने के लिए तथा शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करने के लिए अत्याचारी शोषक वर्ग का चित्रण आवश्यक समझते हो यही कारण है कि इस उपन्यास में जहाँ एक ओर वे ग्रामीण पात्रों की कथा में होरी के द्वारा किसानों की दीन–हीन दशा का मर्म

स्पर्शी चित्रण करते हैं, वहीं इसे और प्रभावशाली बनाने के लिए नागरिक पात्रों में प्रोफेसर, वकील, डॉक्टर इत्यादि को प्रस्तुत करते हैं जिन्हें किसानों की दीनता की चिन्ता तो सताती है परन्तु केवल वार्तालाप के स्तर तक जो उनके सुधार हेतु 'देहात सुधार' संघ की योजना बनाते हैं परन्तु जो स्वयं स्वार्थ और प्रलोभन के दल–दल में फँसे हों वह दूसरो की नैयया कैसे पार लगा सकते हैं। राय साहब और उनके मित्रों के माध्यम से प्रेमचंद इसी वास्तविकता का अनावरण करते हैं।

गोदान में महाजनी शोषण के भयावह दृश्य सर्वत्र दृष्टिगोचर होते जिसके द्वारा समाज में महामारी की भॉति महाजनी–सभ्यता के बढ़ते हुए प्रकोप को प्रेमचंद दर्शाना चाहते हैं। जिसके प्रभाव से मध्यवर्ग भी अछूता नहीं है। गोदान में पं0 ओंकार नाथ और श्याम विहारी तंखा की मध्यवर्ग के गणमान्य व्यक्तियों में तुलना होती है, लेकिन वे मानसिक रूप से सदैव उच्चवर्ग के साथ अपनी तुलना कराने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। वे भी महाजनों के साथ सम्मिलित होकर निरीह जनता का खून चूसते हैं तथा अपनी स्वार्थ सिद्धी के लिए किसी हद तक गिर सकते हैं। पंडित ओंकार नाथ दैनिक पत्र 'बिजली के सम्पादक है जिनके द्वारा प्रेमचंद वे उन पत्रकारों की दुश्चरित्रता का पर्दाफाश करते हैं जो जनता के दुख–दर्द का सौदा करते हैं जिन खबरों से भोले–भाले लोगों का लाभ हो सकता है। उन्हें अत्याचार से मुक्ति मिल सकती है, उन्हें स्वार्थवश रूपयों के ढेर तले प्रेमचंद तंखा के माध्यम से उच्च–श्रेणी के मध्यवर्ग के सदस्यों की अवसरवादिता और स्वार्थपरता पर कटाक्ष करते है। प्रेमचंद आज भी उतने प्रासांगिक हैं जितने उस समय थे। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि उन्होंने समाज में व्याप्त जिन विसंगतियों और दोषों को अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया। वर्तमान समय में भी हमारा समाज पूर्ण या आंशिक रूप से उनके त्रस्त है। प्रेमचंद जिस समय लिख रहे थे वह हिन्दुस्तानियों की पराधीनता का युग था परन्तु आज जब कि देश को स्वतन्त्र हुए साठ वर्ष बीत चुकें हैं समाज मे व्यप्ति भ्रष्टाचारों और भी उग्र रूप धारण कर लिया है।

मेहता और मालती मध्यवर्ग के बुद्धि जीवियों का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र हैं मेहता विश्वविद्यालय में दर्शन शास्त्र के प्राध्यापक हैं। जबकि मालती इंग्लैण्ड से दर्शन पढ़कर आई है।

प्रेमचंद ने सामाजिक जीवन के चित्रांकन मेहता और मालती के चरित्रॉकन से जोड़कर देखने का प्रयत्न किया है। राय साहब गॉव और शहर दोनों को

जोड़ने वाले केन्द्र बिन्दु हैं रायसाहब और मेहता में घनिष्ठ मित्रता है। धनुष यज्ञ के समारोह के उपलक्ष्य में राय साहब के मित्रों के साथ–साथ मेहता और मालती भी बेलारी गाँव में पधारे हुए हैं और शिकार पार्टी के अवसर पर उन्हें गाँव के वातावरण में जाने तथा वहाँ के लोगों के बारे में जानने का अवसर मिलता है। गाँवों के किसानों का जीवन कितना कष्टमय व्यतीत होता है इसका कटु अनुभव उन्हें होता है अतः उनके ह्रदय में किसानों के प्रति करूणा एवं सहानुभूति जाग्रत हो जाती है। किसानों का सादगी भरा जीवन मालती के जीवन में बहुत परिवर्तन ला देता है और उसकी सोंच में एक नयी क्रान्ति पैदा होती है उधर मेहता को सोयी हुआ मानवता जब जाग उठती है और वह ऑखें खोलकर देखते तो उन्हें सम्पत्तिशाली वर्ग की ऐशो आराम भरी जिन्दगी एवं दर्शन की बौद्धिक सोच शोषित एवं प्रताड़ित निरीह जनता की भावनाओं की अपेक्षा बहुत ही ओछी महसूस होती है।

प्रेमचंद मेहता और मालती के चरित्र के माध्यम से इस सत्य को उद्घाटित करना चाहते हैं कि जब व्यक्ति अनुभूति के संसर्ग में जाता है तो उसकी प्रवृत्ति में व्याप्त अहमं एवं दूसरे को परेशान करने वाली भावना का खुद ही नाश हो जाता है और वह सनमार्ग पर चल देता है तथा स्वच्छ एवं सुन्दर जीवन व्यतीत करता है। और अपने जीवन का उद्देश्य समाजहित की मानता है। इसी कारण मेहता और मालती दोनों ही निरीह जनता के दुखदर्द उनके कल्याण की बातें सोचते हुए कर्म की ओर उन्मुख हो जाते हैं–[1]

अपने जीवन की संध्या बेला तक आते–जाते प्रेमचंद का दृष्टिकोण इतना विस्तृत हो गया था कि वे मेहता और मालती को केवल लोगों की सेवा तक ही सीमित नहीं रखते, बल्कि उन्हें पीड़ितों और वंचितों की दयनीयता के कारणों की छानबीन करते और उन्हें इस स्थिति से बाहर निकालने के लिए प्रयत्नशील दिखते हैं

आर्थिक स्थिति को लेकर समाज में उत्पन्न विभिन्न विसंगतियों का प्रेमचंद ने गोदान में चित्रण किया है। उन्होंने पूँजीपतियों मिल–मालिकों, और मध्यवर्ग के विभिन्न पहलुओं के साथ ही साथ मिलों में काम कर रहे बहुसंख्यक मजदूरों की दुर्दशा का बड़ी ही कुशलतापूर्वक मार्मिक चित्रण किया उन्होंने मजदूरों और

---

[1] *गोदान, पृ0 309–310।*

किसानों की समस्याओं को अलग–अलग न देखते हुए एक ही माना है। वे इस वर्ग की दयनीय स्थिति से भली–भाँति परिचित थे कि किसान ही शोषित होकर सर्वहारा वर्ग के रूप मे उभरकर सामने आता है तथा मिलों में काम करने के लिए लाचार हो जाता है। प्रेमचंद ने गोबर को इसके प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया है और नवीन चेतना का द्योतक माना है। गोबर गाँव की परिस्थितियों से मिल मज़दूर बन जाता है। अगर ध्यान पूर्वक देखा जाए तो किसानों की परिस्थितियाँ और मिल में काम कर रहे मजदूरों की परिस्थितियाँ एक जैसी है। प्रेमचंद ने दोनों परिस्थितियों के बीच सामंजस्य स्थापित करते हुए समाज में व्याप्त उसके दुष्परिणामों को उजागर करने का भरसक प्रयास किया। जमींदार शोषण खुले आम करता है तथा पूँजीपति छिपकर। इस उपन्यास में प्रेमचंद इसका जीता जागता उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

कृषकों की समस्याओं का विश्लेषण करते समय प्रेमचंद उनके प्रत्येक पहलू पर गम्भीरता से विचार करते हैं वे किसानों की दीनता के लिए केवल जमींदार तथा उनके सहयोगी शोषण वर्ग को ही उत्तरदायी नहीं ठहराते अपितु किसानों के अन्धविश्वास, धर्म, भीरूता, रूढ़िवादी परम्पराओं का दृढ़ता पूर्वक पालन करने को भी उनकी दुर्दशा का जिम्मेदार मानते हैं किसानों के चरित्र के इस दुर्बल पक्ष का प्रेमचंद ने इस उपन्यास में स्थान–स्थान पर बड़ा ही यथार्थ चित्रण किया है। किसान शोषक वर्ग के अत्याचार को अपने भाग्य का लेखा मानकर उसे चुपचाप सहन करते हैं उनके मन में कभी विद्रोह के भाव जाग्रत नहीं होते वे अपने ऊपर आने वाली हर विपत्ति को कभी दैविक नियम मानकर तो कभी पूर्वजन्म के पाप–पुण्य के नाम पर कभी नियति का हवाला देकर तो कभी मरजाद के नाम पर आजीवन स्वीकार करते रहते हैं। इसके अतिरिक्त किसानों के आपसी मत–भेद तथा वैमनस्य भी उन्हें उनकी हालत सुधारने का अवसर नहीं देते वे छोटी–छोटी सी बात पर आपस में ही शत्रुता कर बैठते हैं ऐसे में वे शोषक वर्ग के खिलाफ संगठित कैसे हो सकते हैं संगठन के इसी अभाव के कारण उन्हें जीवन में पग–पग पर पराजय का सामना करना पड़ता है किसानों की खुशियों को लूटने में उन्हें बरबाद करने में गाँव के धर्माचार्य भी किसी से कम नहीं। प्रेमचंद इस उपन्यास में पं० दातादीन को इस वर्ग के प्रतिनिधि रूप में प्रस्तुत करते हैं।

पाषाण हृदय दातादीन की वास्तविकता उस समय खुलकर सामने आती है जब होरी और धनिया विधवा अहिरन झुनिया को जो उनके बेटे गोबर के बच्चे

की माँ बनने वाली है, अपने घर में शरण देते हैं जो दातादीन जैसे धर्म के ठेकेदारों की दृष्टि में महापाप है होरी और धनिया इस पाप से उसी समय मुक्त हो सकते हैं जब वे "बिरादरी को भात, तथा ब्राम्हनों को भोज" देगें अतः गाँव की पंचायत होरी पर सौ रूपये नकद और तीस मन अनाज का जुर्माना लगाती है समाज में धर्म और नैतिकता का ढिंढोरा पीटने वाले इन धूर्तों के कारण होरी से उसकी फसल उसका घर बार सर्वस्व छिन जाता है और वह कृषक से मज़दूर बन जाता है होरी को पाप से मुक्त कराने के नाम पर उसको बरबाद करने वाले यह बिरादरी और धर्म के ठेकेदार खुद कितने पवित्र हैं इस सच्चाई को सामने लाने के लिए प्रेमचंद समय–समय पर पाठकों को उनकी वास्तविकता से अवगत कराते चलते है धर्म और धन के सुदृढ़ किले में बैठे हुए इन महानुभावों की ओर कोई ऊँगली तक नहीं उठा सकता, इसका सबसे बड़ा कारण है समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता है धर्म तो शोषक वर्ग के लिए एक साधन मात्र है जिसके द्वारा वे गाँव भोली–भाली जनता को लूटते और ठगते हैं। शोषण के इस व्यापार से किसानों को मुक्त कराने के लिए इस उपन्यास में प्रेमचंद ने गोबर जैसे विद्रोही पात्र की रचना की है जिसके द्वारा वह इस सत्य को सामने लाना चाहते हैं कि किसानों और मजदूरों में जब तक वर्गीय और राजनीतिक चेतना का संचार नहीं होता वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होकर संगठित रूप से संघर्ष नहीं करते तब तक उन्हें दुरावस्था के इस दल–दल से मुक्ति नहीं प्राप्त होगी

गोदान में एक ओर होरी है जो गाँव में रहकर अपनी अन्ध–परंपराओं और धर्म–भीरूता के पाश से अन्त तक विलग नहीं हो पाता दूसरी ओर गोबर है जिसके आचार–विचार तथा रहन–सहन में शहर में रहकर एक क्रान्तिकारी परिवर्तन होता है। अब वह एक ऐसा विद्रोही युवक है जिसका धार्मिक संकीर्णताओं पर तनिक भी विश्वास नहीं है शहर में रहकर उसकी मानसिक, स्थिति में जो सबसे बड़ा अन्तर आता है वह है उसकी राजनीतिक चेतना तथा वर्ग–चेतना जो उसे इतना निर्भय बना देती है कि न अब उसे पंचो का डर है और न बिरादरी का शोषण करने। यह गोबर की परिवर्तित विचार धारा का ही प्रवाह है जिसके आलोक में वह पूँजीवादी व्यवस्था में धन की प्रभुता से परिचित होता है। गोदान में अत्याचार और शोषण पर आधारित श्रेणीबद्ध समाज की अन्यायपूर्ण व्यवस्था से प्रेमचंद की उकताहट इस बात की द्योतक है कि उनके धैर्य का बाँध टूट चुका था और इस व्यवस्था को केवल बदलना नहीं चाहते अपितु इसे पूर्णरूप से समाप्त करके आर्थिक और सामाजिक समानता पर आधारित एक स्वस्थ समाज के निर्माण इच्छुक नजर आते हैं। किसानों के

खून–पसीने की कमाई पर सर्प की भॉति कुंडली मारकर बैठे शोषक वर्ग के विरूद्ध गोबर के विद्रोही मन में क्रांति की जो ज्वाला है उसे प्रेमचंद हर कृषक के हृदय में प्रज्वलित देखना चाहते हैं। जिसमें अत्याचारियों की वर्बरता और पशुता जलकर भस्म हो जाए गोबर के उग्र विचारों के दर्पण में हम उनकी इस मनोकामना को स्पष्ट रूप से देख सकते हैं।

प्रेमचंद के उपन्यासों में गोदान का विशेष महत्व है। जिसमें उन्होंने भारतीय ग्राम्य जीवन का समग्र रूप से चित्रण किया है। प्रेमचंद ने इस उपन्यास में जिस प्रकार सम्पूर्ण ग्रामीण एवं शहरी जीवन को समाहित किया है। वह उस समय के उत्तर भारत के ऐतिहासिक परिचय की दृष्टि से अतुलनीय है। जिसके द्वारा उन्होंने समाज को युग धारा से सम्बद्ध करने का जो प्रयास किया है। वह प्रशंसनीय है। गोदान में प्रेमचंद ने गाँव की सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था कृषकों की दीन–हीन दशा शोषक वर्ग की क्रूरता ग्राम्य वासियों के रीति–रिवाज, मेले–ठेले तथा लोक संस्कृति का सजीव चित्रण किया है। इसमें जहाँ एक ओर ग्राम्य जीवन के अन्तर्गत कृषकों के निर्मम शोषण तथा उनकी शोचनीय दशा का मर्मस्पर्शी चित्रण है वहीं दूसरी ओर उपन्यासकार ने नागरिक जीवन के विविध पहुलों पर प्रकाश डालते हुए मिल मालिकों, पूँजीपतियों और मध्यवर्ग की विभिन्न श्रेणियों के अतिरिक्त नगरों में रहकर मिलों में मजदूरी करने वाले निराश तथा हताश विशाल जन–समूह के विवशता पूर्ण जीवन के कारूणिक चित्र अंकित किए हैं। जिन्हे देखकर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उनसे बढ़कर किसानों का हितैषी और पक्षधर रचनाकार हिन्दी साहित्य जगत में अन्य कोई नहीं है। गोदान पढ़ते समय पाठक के मन मस्तिष्क में भिन्न–भिन्न प्रकार के प्रश्न उठते हैं। यथा समाज को श्रेणियों में विभक्ति करने के पीछे कौन है ? सामाजिक आर्थिक विषमता की जड़ें कहाँ विद्यमान है ? सर्वहारा वर्ग के शोषण के लिए कौन जिम्मेदार है ? किसानों की दुरावस्था का उत्तरदायी कौन है ? और वे इस निराशाजनक स्थिति से बाहर कैसे आ सकते हैं ? इत्यादि अपने इन प्रश्नों का उत्तर भी वह इसी उपन्यास में पा लेता है और उसे इस सत्य का ज्ञान होता है कि अन्याय, अत्याचार के अतिरिक्त आर्थिक तथा सामाजिक विषमता और शोषण ही सर्वहारा तथा कृषक वर्ग की दुर्दशा के मुख्य कारण है और इन्हें समाप्त किये बिना किसानों तथा मजदूरों की मुक्ति सम्भव नहीं और ऐसा तभी हो सकता है। जब किसान अपनी धर्म भीरूता, रूढ़िवादिता और अन्ध परम्पराओं को त्याग कर अपने वर्ग शत्रुओं को पहचानें और अपने हितों की रक्षा के लिए वर्गीय तथा राजनीतिक स्तर पर जागरूक हों क्योंकि उनकी पतनोन्मुख अवस्था के लिए

उनकी स्वयं की रूढ़ियां दुराग्रह और अन्धविश्वास बड़ी हद तक जिम्मेदार हैं। समाजवादी व्यवस्था में विश्वास रखने वाले प्रेमचंद ने इस उपन्यास में वर्ग संघर्ष का चित्रण करके शोषण ग्रस्त मानव के कल्याण के लिए वर्ग विहीन समाज की स्थापना पर बल दिया है।

'मंगलसूत्र'

मंगलसूत्र प्रेमचंद का अन्तिम और अपूर्ण उपन्यास है। मंगलसूत्र जिसमें प्रेमचंद की लेखनी ने केवल 60 पृष्ठों तक ही उनका साथ दिया क्योंकि मृत्यु रूपी काल ने प्रेमचंद को अपने गाल में समा लिया और उनकी सोच को वहीं विराम लगा दिया। प्रेमचंद जिस समय (1936) मंगलसूत्र की रचना कर रहे थे यह प्रेमचंद के लिए बड़ा ही उतार–चढ़ाव का समय था। वे बिगड़ी हुई आर्थिक दशा, शारीरिक एवं मानसिक कष्टों से घिरे हुए थे। उनकी आन्तरिक शक्ति डॉवा–डोल हो गई थी। जिन लक्ष्यों को लेकर वह जी रहे थे वह भी टूटते नजर आ रहे थे। इन्हीं परिस्थितियों का प्रतिफलन 'मंगलसूत्र' है –''मंगलसूत्र' के ये 60 पृष्ठ महात्मा देवकुमार के परिवार की कथा व्यक्त करते हैं। देवकुमार के परिवार में उनके सिवा उनकी पत्नी शैव्या, पुत्री पंकजा, छोटा बेटा साधु कुमार और बड़ा बेटा संत कुमार और उसकी पत्नी पुष्पा हैं। देव कुमार साहित्य साधक, निर्लोभ, सीमित अभिलाषाओं वाले सत्य पुरूष हैं, जिन्होंने जीवन भर साधना करके एक ही चीज कमाई, यश। उनकी लिखी पुस्तकों का समाज में बड़ा आदर होता है, लेकिन घर मे उनकी उतनी मान्यता नहीं है, कम–से कम बड़ा बेटा, संतकुमार उन्हें हमेशा उलाहने देता रहता है। शैव्या भी असंतुष्ट रहती है। पर देव कुमार का सौंदर्य भाव से जागा हुआ मन कभी कंचन की उपासना को जीवन का लक्ष्य न बना सका। यह नहीं कि वह धन का मूल्य जानते न हों। मगर उनके मन में यह धारणा जम गई थी जिस राष्ट्र में तीन चौथाई प्राणी भूखों मरते हों, वहॉ किसी एक को बहुत–सा धन कमाने का कोई नैतिक अधिकार नहीं है।''[1] आज उनकी इस धारणा पर आघात हुआ है। बेटा एक जमाने में अपने पिता के द्वारा बाप दादों की जायदाद माटी मोल बेच देने पर आज पिता को आड़े हाथों ले रहा

---

[1] *प्रेमचंद एक अध्ययन – डॉ राजेश्वरगुरू – पृ0 248।*

है। इतना ही नहीं, वह चाहता है कि पिता अपनी की गई गलती का प्रायश्चित करें। यानी बेची गई जायदाद कानूनी तरीकों से वापिस लेने में बेटे की मदद करे।

इस तरह प्रेमचंद ने बड़ी ही कुशलता पूर्वक पिता–पुत्र के सम्बन्ध में हुए वैचारिक द्वन्द्व को आधुनिक युग में कार्य कर रही पूँजीवादी नीति के परिप्रेक्ष्य में चित्रित किया है। प्रेमचंद ने बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से देव कुमार नामक पात्र को हमारे सामने लाने का प्रयत्न किया है जो रूढ़िगत मान्यताओं के हर पहलू पर विचार करने के लिए मजबूर हो जाता है विचारों के सागर में गोता लगाने के बाद उनकी सोच में कुछ समझदारी आने लगती है वे यह समझने लगते है कि इस समाज में व्याप्त दुरूहता का कारण पूँजी है जिनके पास पैसा है उन्हीं के लिए अधिकार है और न्याय भी है और उनके हृदय जगत पर तेजी से घात–प्रतिघात होता है। उन्हें अब यह एहसास होने लगता है कि इन हालात में देवत्व का जामा पहनना मूर्खता का काम है यह विवेकवान प्राणी का कर्तव्य नहीं है यह तो निष्क्रियता है। इस तरह के आत्ममंथन के बाद उनका हृदय परिवर्तन हो जाता है। उनकी आस्था उस पूँजीवादी न्याय व्यवस्था एवं धर्म व्यवस्था से उठ जाती है जो शोषण पर आधारित है देव कुमार का आत्मंथन वास्तव में प्रेमचंद का आत्मंथन है जिसके फलस्वरूप उनके विचारों में होने वाले क्रान्तिकारी परिवर्तन को हम इस उपन्यास में भली–भाँति देख सकते हैं। यही कारण है कि व्यर्थ के आदर्श और टूटते बिखरते सामाजिक मूल्यों के प्रति जैसा तीखा विद्रोह देव कुमार के मन में उत्पन्न होता है वैसा प्रेमचंद के अन्य किसी उपन्यास के पात्र में दृष्टि गोचर नहीं होता। प्रेमचंद उस दोषपूर्ण सामाजिक व्यवस्था को परिवर्तित करने के लिए कृत संकल्प हैं। जिसमें झूठी मान–मर्यादाओं का बोझ ढोते ढोते मनुष्य टूट कर विखर जाता है और अन्ततः मिट जाता है। प्रेमचंद ने गोदान में देव कुमार के माध्यम से सामाजिक विसंगतियों पर प्रत्यक्ष रूप से प्रहार किया है। देव कुमार–होरी की भाँति शोषण को नियति मानकर शोषण के समक्ष घुटने नहीं टेकता वरन् आत्म रक्षा के लिए लाम बन्द होने की घोषणा करता है।

संत कुमार और उनके मित्र मि० सिन्हा मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र हैं जो अपनी वर्गगत विशेषताओं के चलते धन और वैभव को ही जीवन की चरमोपलब्धि मानते हैं और धन की यह लालसा उन्हें इतना स्वार्थी तथा आत्म केन्द्रित बना देती है कि वह उसके लिए कुछ भी कर सकते हैं प्रेम का झूठा नाटक कर सकते है, अपने पिता को पागल सिद्ध कर सकते हैं। जबकि उनका

छोटा भाई साधु कुमार अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों के प्रतिपूर्ण रूप से सजग मध्यवर्ग का एक प्रतिनिध पात्र है, वह संत कुमार की भॉति स्वार्थी तथा आत्म केन्द्रित नहीं न ही उसकी तरह ऊँची–ऊँची अभिलाषाओं को जीवन में स्थान देता है। उसकी आकॉक्षा है तो इतनी कि जनसाधारण का शोषण करने वाली विषमता पर आधारित समाज व्यवस्था समाप्त हो उसके मन में यह प्रश्न उठता है –''हम तो दोनों वक्त चुपड़ी हुई रोटियॉ और सेब–संतरे उड़ाते हैं, मगर सौ में निन्नानवे आदमी तो ऐसे हैं जिन्हे इन पदार्थों के दर्शन भी नहीं होते। आखिर हममें क्या सुर्खाब के पर लग गये हैं।''[1] उसके विचारों के इस दर्पण में हम जन–सामान्य के प्रति उसके प्रेम और सहानुभूति की भावना को स्पष्ट रूप से देख सकते हैं।

सेठ गिरधर दास वर्तमान पूँजीवादी मानसिकता का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र हैं एक शोषण करने वाले पूँजीपति के समस्त गुण उनमें विद्यमान है। राजनीतिक कार्यक्रमों में सक्रिय रूप से भाग लेना साहित्यकारों को मान–सम्मान देना उनकी सहृदयता और देश भक्ति नहीं वरन् वह व्यवहार कुशलता है, जिसके आवरण में वे अपनी वास्तविकता को छुपाना चाहते हैं। उनके पिता सेठ मक्कू लाल ने देवकुमार की लाखों की सम्पत्ति मात्र बीस हजार रूपये में लिखवाली थी। कालान्तर में जब देव कुमार के लड़के उस सम्पत्ति को वापस पाने के लिए सेठ जी पर मुकदमा करना चाहते है तो उनका वास्तविक रूप सामने आ ही जाता है

मंगलसूत्र के स्त्री पात्रों में संत कुमार की पत्नी पुष्पा का चरित्र विशेष महत्व रखता है क्योंकि इस उपन्यास तक आते–आते प्रेमचंद के विचारों में जो क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए उसके पश्चात् नारी समस्या को भी उन्होंने एक नये दृष्टिकोण से देखा और पुष्पा के चरित्र के माध्यम से अपने इन विचारों को प्रकट किया है कि नारी जब तक आर्थिक रूप से पुरूष पर निर्भर रहेगी उसे वह अधिकार व सम्मान नहीं प्राप्त होगा जिसकी वह अधिकारिणी है इस उपन्यास में उन्होंने पुष्पा के माध्यम से नारी के मन में अपने अधिकारों के प्रति उत्पन्न होने वाली चेतना को उजागर किया है पुष्पा इस बात को अच्छी तरह समझ चुकी है कि नारी जब तक आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नहीं होगी उसकी नियति में कोई परिवर्तन नहीं हो सकता वह संतकुमार से कहती है –''मैं तुम्हारे घर में कितना काम करती हूँ, इतना ही काम दूसरों के घर में करूँ तो अपना निबाह कर सकती

---

[1] **मंगलसूत्र, पृष्ठ–26**

हूँ कि नहीं। ....तब मैं जो कुछ कमाऊँगी वह मेरा होगा। .... तुम कहोगे यहॉ तुम्हारा जो सम्मान है, वह वहॉ न रहेगा, मगर मैंने मिस बटलर को आजीवन क्वाँरी रहकर, सम्मान के साथ जिन्दगी काटते देखा है। .... उनकी इज्जत सभी करते थे और उन्हें अपनी रक्षा के लिए किसी पुरूष का आश्रय लेने की कभी जरूरत नहीं हुई। .... अगर वह डॉक्टरी पढ़कर अपना व्यवसाय कर सकती है तो मैं क्यों नहीं कर सकती? .....पुष्पा के यह विद्रोही स्वर इस बात के द्योतक हैं कि प्रेमचंद नारी की सामाजिक मान मर्यादा के सम्बन्ध में अपनें आदर्शवादी दृष्टिकोण से कितने आगे निकल आए हैं अब वे यथार्थ की ठोस जमीन पर खड़े होकर नारी की आर्थिक स्वतंत्रता पर गम्भीरता से विचार करने लगते हैं।

मंगलसूत्र के अन्य नारी पात्रों में देव कुमार की पत्नी शैव्या और उनकी पुत्री पंकजा है जिन्हें प्रेमचंद ने सहृदय कामकाजी महिलाओं के रूप में प्रस्तुत किया है। सब–जज पुत्री त्रिवेणी अथवा तिब्बी का चरित्र हमें गोदान की मिस मालती की याद दिलाता है

उपन्यास के इस अल्पांश द्वारा अन्तिम रूप से किसी भी निर्णय पर नहीं पहुँचा जा सकता परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि –''मंगलसूत्र यदि पूर्ण होता तो प्रेमचंद के उपन्यास साहित्य का एक नया पड़ाव साबित होता। गोदान में जिसका संकेत उन्होंने दिया है उसे साकार रूप देने का प्रयत्न इस उपन्यासों में करते दीख पड़ते हैं। प्रेमचंद के अनेक उपन्यासों को सामने रखकर उनके अनुभव के बीच की फॉंक को देखा जा सकता है। इस उपन्यास में प्रेमचंद के बदलते हुए मानदंड निश्चय ही उनकी मानसिकता के नये पड़ाव की गवाही प्रस्तुत करते हैं।''[1] औपन्यासिक शिल्प की दृष्टि से मंगलसूत्र में कमी खोजने वालों को निराशा ही हाथ लगेगी क्योंकि इसका एक वाक्य भी ऐसा नहीं है जिसे उपन्यास कला की शिल्पगत त्रुटि के अन्तर्गत रखा जाय। प्रेमचंद की यह कृति अपूर्ण होते हुए भी इस दृष्टि से महत्व रखती है कि इसमें उनके प्रगतिशील क्रान्तिकारी विचारों की छटा स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है इस उपन्यास के माध्यम से उन्होंने वर्तमान सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था के प्रति अपने मन में बढ़ते हुए असंतोष को प्रकट किया है।

---

[1] *प्रेमचन्द का कथा संसार – डा0 बदाम सिंह रावत पृ0 248।*

अध्याय– 2

उपन्यासकार एवं समाज का पारस्परिक सम्बन्ध–

सामाजिक चेतना का नव जागरण उन्नीसवी शताब्दी के पूर्व भारतीय समाज–

—: द्वितीय अध्याय :—

उपन्यासकार एवं समाज का पारस्परिक सम्बन्ध—

सामाजिक चेतना का नव जागरण उन्नीसवी शताब्दी के पूर्व भारतीय समाज—

(ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसाइटी)

वर्ण व्यवस्था

अस्पृश्यता

समाज मे नारी की स्थिति

परिवार में नारी के विविध रूप और उनकी समस्याये

पर्दा प्रथा

दाम्पत्य जीवन

विधवा समस्या

अनमेल विवाह

बहु विवाह

दहेज प्रथा

तलाक समस्या अवैध प्रेम समस्या

वेश्या समस्या

नारी शिक्षा और स्वतंत्रता

अ– उपन्यासकार एवं समाज का पारस्परिक सम्बन्ध –

साहित्य मानव–मानस की विशिष्ट एवं रमणीय अनुभूति है। ' साहित्य का पहला अंग है भाव, जिसके लिए कल्पना का योगदान अपेक्षित है परन्तु कल्पना ऐसी जो अनुभूति के आधार पर निर्मित हो। "[1] इसी यर्थाथानुभूति की विशिष्ट व्यंजना करने वाला साहित्य रूप विधान उपन्यास है। इसीलिए इसमें हृदय को स्पन्दित करने की शक्ति होती है। मानव चेतना समाज– सापेक्ष हुआ करती है और उपन्यास मानव चेतना का संवाहक है–उपन्यास वस्तुतः मानव–जीवन को ही रूपायित करता है, चाहे उसका रूप किसी ढंग का हो, अतः उसमें मानवीय पात्रों का अनिवार्य रूप से उपयोग होता है। प्रतीकात्मक उपन्यासों में जहाँ मनुष्येतर पात्रों के क्रिया–कलाप चित्रित किये जाते हैं वे भी मनुष्य जीवन के ही क्रिया–कलाप को प्रतीकात्मक ढंग से व्यंजित करते है। इस लिए निर्जीव पात्र भी जीवित से दिखाई देने लगते हैं। कहानी में जो घटनाएं होती हैं, या घटना विहीन उपन्यासो में जहां मानसिक घटनाओं का चित्रण होता है, उसका भोक्ता पात्र होता है या जिसके आधार पर घटनाऍ या मानसिक संसार की रचना होती है, पात्र उसका चरित्र कहलाता हैं।

कार्डवेल के अनुसार– ' कला एक सामाजिक प्रक्रिया है।' कलाकार द्वि व्यक्तित्व सम्पन्न प्राणी हैं, एक सामान्य मानव रूप दूसरा साहित्यिक, जिसमें सर्ज्नात्मक चेतना प्रबल होती है। परिस्थिति जन्य अनुभवों की अमूल्य राशि को कल्पना का पुट देकर वह कला के माध्यम से व्यक्त करता है। जिस प्रकार दीपक से दीप प्रज्वलित होता है, वैसे ही साहित्यकार–युगीन सामाजिक पृष्ठभूमि से प्रेरणा ग्रहण करते हुए युग–चित्रित करता है।

कथाकार समाज का एक जीवन्त एवं विशिष्ट सदस्य होता है। वह समाज में फैले हुए विविध मानव–चरित्रों को अपनी रचना में स्थान देता है। उसके उपन्यास मे जिन पात्रो का चित्रण होगा, वह समाज के ही एक अंग होगे। पाठक भी सोचता है कि जिन पात्रों की कहानी वह पढ़ रहा है, ऐसे पात्र हमारे आस–पास हैं भी अथवा नही। यदि समाज से उनका सम्बंध नही होता, तो ऐसे पात्रो के प्रति पाठकों का रूझान नही होता। इसके विरूद्ध यदि उपन्यास में चित्रित पात्रों के क्रिया–कलाप उसके अपने क्रिया–कलाप होते है या पात्र उपन्यास में जिन समस्याओं से संघर्ष कर रहा है, ऐसी परिस्थितियों से उसने भी

---

[1] डा0 त्रिभुवन सिंह, हिन्दी उपन्यास और यर्थाथवाद, पृ0 31

साक्षात्कार किया है। इस दशा में उपन्यास में चित्रित पात्र उसको गहराई से स्पर्श करते है। यहां तक कि मनोविश्लेषणात्मक उपन्यासों के कुंठित और असाधारण पात्र भी समाज में कही मिल जाते है।

उपन्यासकार के लिए समाज वह आधार पीठिका है, जहाँ वह स्वयं जन्म लेकर जीवन की विकासशील सीढ़ियों पर चढ़ता हुआ सामाजिक जीवन को अनुभवों के साथ आत्मसात करके समाज का यथार्थचित्र अपने उपन्यास में प्रस्तुत करता है। समाज से जो कुछ वह ग्रहण करता है उसमें कलात्मक रंग भरकर सामाजिक मनोरंजन करते हुए जीवन की विशिष्ट प्रतिच्छवि चित्रित करता है। इस पीठिका का अनुपस्थिति में वह तिलस्मी महल में टंगे बिना–जुबान के परिन्दों का ही निर्माण कर सकता है, जिसमें प्राणों का स्पन्दन तो दूर रहा सांस लेने तक की चेतना नही होती है। स्पष्ट है कि साहित्य लोक मंगल की साधना है, जिसका साधक साहित्यकार कहलाता है।

' कलाकार का कोई महत्व नही होता, महत्वपूर्ण होती है उसकी कृति।'[1] श्रेष्ठ साहित्य युगधर्म तथा सामाजिक परिस्थितियों की देन होता है। देशकाल में भेद पड़ने के कारण सामाजिक परिस्थितियो में जो अन्तर पड़ता है। साहित्य धर्म की मान्यता तथा उसके अन्दर भी युगानुकूल मोड़ आते रहते है। हमारा आधुनिक उपन्यास साहित्य मानव की आधुनिक विषम परिस्थितियो की देन है। उपन्यास शब्द पुराना नही है। बल्कि 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पाश्चात्य सभ्यता और कथा साहित्य के सम्पर्क में आने के कारण यह शब्द हिन्दी साहित्य में अपना स्वरूप लेकर आया। गद्य साहित्य की आशातीत उन्नति के कारण ही साहित्य के इस आधुनिक श्रेष्ठ रूप की सृष्टि आवश्यकताओं के अनुसार हो सकी।

जगत और जीवन की अभिव्यक्ति अब तक जिन साहित्यिक रूपों द्वारा हो रही थी, वे जीवन की प्रस्तुत विषय परिस्थितियों को चित्रित करने में असमर्थ जान पड़ते थे। कवि गीत धर्मी होने के कारण व्यक्तिगत स्वतंन्त्रता का उपासक होता है। जिस कारण उसकी दृष्टि व्यक्तिगत अधिक होती है–समष्टि गत कम। इसके विपरीत उपन्यासकार बाहरी प्रभावों को अधिक ग्रहण करता है। कवि भावुकता से प्रेरित होने के कारण प्रायः यह भूल बैठता कि वह सामाजिक प्राणी है, परन्तु उपन्यासकार की प्रवृन्ति इस प्रकार की नही होती। वह समाज में रहकर

---

[1] **The artist is of on importan, Ceonly what he creates is important (Mr. faulkener, Writers at works P.138)**

सम–सामयिक परिस्थितियों से प्रभाव ग्रहण करता हुआ अपनी बुद्धि एवं अनुभवों से युग एवं समसामयिक समस्याओ का यथार्थ चित्र, समाज के समक्ष प्रस्तुत करता है। ध्यान रखना चाहिए कि ' ' उत्तम कविता अपेक्षाकृत युग से पूर्व की रचना होती है, क्योंकि अन्य साहित्यिक–कलाओं की अपेक्षा इसमें वैयक्तिकता तथा भावुकता का स्पर्श अधिक होता हैं। हम अनुमानतः कह सकते है कि कविता व्यक्ति के अन्तर्जगत से उद्‌भव सहज भावों को एक विशेष ढंग से अभिव्यक्त करती है, परन्तु उपन्यास व्यक्ति को समाज के अंग के रूप में रहकर अनुभव करता है। ऐसी कला जिसे उपन्यास कहते है केवल समाज में ही उत्पन्न हो सकती है, जहां आर्थिक विषमताएं व्यक्ति को समझाना सरल होता है, और सोचने की इस दृष्टि का बड़ा ही महत्व है। इस प्रकार कविता स्वभाव जन्य है तथा समाज की मिथ्या वादी परिस्थितियां उपन्यास को जन्म देती है।'' [1]

उपन्यास साहित्य मानव जीवन की सम्पूर्णता को घेर कर चलने के कारण अपनी सीमा में इतना विस्तार पा गया है कि उसका ठीक–ठीक वर्णन कर पाना बहुत कठिन है। विद्वानों ने फिर भी उपन्यासों के भेंदो को जानने का प्रयास किया है। उपन्यास साहित्य का सामूहिक अध्ययन करने के पश्चात कोई भी इस निष्कर्ष तक पहुंच सकता है कि शैली, वस्तु निर्माण तत्व विशेष की प्रचुरता तथा वर्ण विषय के आधार पर उपन्यासों का वर्गीकरण समीचीन है।

उपन्यास साहित्य अपने को निरन्तर समाज से अत्यधिक संपृक्त करने का प्रयास करता रहा है। प्रेमचंद का समग्र साहित्य युग–चेतना का संवाहक है। परन्तु समकालीन जन–जीवन के साथ–साथ ताजे अतीत के ऐतिहासिक परिवेश में प्रवेश कर सामाजिक चेतना के नवजागरण जो कि वरदान, सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि कायाकल्प, निर्मला, गबन, कर्मभूमि, गोदान आदि में देखने को मिलती है। जिसमें प्रेमचंद ने– इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना से लेकर आधुनिक समय के भारतीय सामाजिक जीवन का बहुमुखी चित्रण किया है।

प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में स्वयुग की, सामाजिक राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक परिस्थितियों पर प्रकाश डाला है, समाज की परिधि बड़ी विस्तृत एवं व्यापक होती है। मानव मात्र के अनेक पुरूषार्थ (पहलू)/ धर्म , अर्थ, काम और

---

[1] **" Remembering that......................Novel is the sophestication of modern culture' Christopher caudwell ....Husion and reality newed 1946.**

मोक्ष–सभी समाज के अन्दर ही आते है और इनकी पूर्ति समाज में ही रहकर की जा सकती है। प्रेमचंद की अनन्त साधना का क्षेत्र समाज है। उन्होने अपने साहित्य में यथार्थ को महत्व दिया है। उनके उपन्यास साहित्य में व्यापक सामाजिक चेतना के अन्तर्गत जनहित संस्कृति और भारतीय आदर्श सब कुछ आ जाते है। समाज में फैली हुई अव्यवस्था की अमरलता को उपन्यासकार ने ठीक–ठीक पहचाना है और उसने देखा कि इसके परिणाम स्वरूप समाज में उथल पुथल हो रही है।

तद्युगीन समाज में देश आत्म चेतना से शून्य नही था, अपितु उसका मानस मंदिर अज्ञान की निद्रा में लिप्त हो पतन की ओर अग्रसर था उन्हे पतन की इस अवस्था से निकालने के लिए धर्म साहित्य और समाज के क्षेत्र में उन दिनो विभिन्न सुधार आन्दोलनों का प्रादुर्भाव हुआ। जिनका समाज पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। साहित्यकार भी एक सामाजिक प्राणी है और साधारण मनुष्यों का अपेक्षा वह कही अधिक संवेदनशील जागरूक तथा चेतना सम्पन्न होता है। तो फिर प्रेमचन्द जैसा जनवादी कलाकार इन आन्दोलनों के प्रभाव से मुक्त कैसे रह सकता था। प्रेमचंद आर्य समाज से प्रभावित थे उन्होंने धर्म के नाम पर फैले हुए पाखण्ड जाल को अपने उपन्यासों द्वारा नष्ट करने का प्रयास किया है। अपने साहित्यिक जीवन के आदि काल से ही प्रेम चन्द ने जिस सामाजिक एवं राजनैतिक चेतना का प्रमाण दिया, वह इस बात का साक्षी है कि प्रेमचंद मूलतः सामाजिक चेतना सम्पन्न कथाकार थे। वह अच्छी तरह जानते थे कि समाज के अभ्युत्थान के अतिरिक्त कला का कोई प्रयोजन हो ही नहीं सकता।

प्रेमचंद की रचना का उद्देश्य मानवता था। मानव मानव ही बना रहे , यही प्रेमचंद का अन्तिम उद्देश्य और लक्ष्य था। अपने पात्रों के लिए प्रेम चंद ने उच्च घरों के द्वार नही खट–खटाए। टूटे–फूटे घरों के खुले द्वारों में निःसंकोच भाव से प्रविष्ट हुए । वही से अपने पात्रों को प्राप्त किया जो अभी तक पशु समझे जाते थे। और समाज के एक बड़े वर्ग से अलग थे। प्रेमचंद ने एक बहुत बड़ी संख्या के इन प्राणियों के सुख–दुख राग द्वेष, रीति रिवाज को निकट से देखा, समझा और अपनी रचनाओं में उन्हे उतार दिया। प्रेमचंद ने कभी साहित्यिक व्यवस्थाओं, रूढ़ियों ,अन्धविश्वासों, परम्पराओं को नही अपनाया। इसके विपरीत विद्रोही रूप से इन रूढ़ियों का अवलोकन किया। अतएव सामाजिक चेतना के नव–जागरण की भूमिका के परिपार्श्व में प्रेमचंद के उपन्यासों का मूल्यांकन समीचीन होगा।

सामाजिक चेतना का नवजागरण :–

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व भारतीय समाज :–

उन्नीसवी शताब्दी के पूर्व का हिन्दू समाज जड़ता की उस दयनीय स्थिति को प्राप्त हो गया था और अपनी उस संजीवनी शक्ति को खो बैठा था जिसके बल पर कोई जाति जीवन संघर्ष में टिकी रहती है। हिन्दुओं में जटिल जाति व्यवस्था जिसके फलस्वरूप स्पर्श, भोजन तथा विवाह सम्बन्धी कठोर पाबन्दियां बाल–विवाह, विधवा विवाह वर्जन, निरामिष भोजन के प्रति अपेक्षाकृत अधिक आग्रह तथा गोमांस–विषयक कठोर निषेध परम्परा की रूढ़ियों, अन्धविश्वास के प्रेत और धार्मिक कठभुल्लापन के कारण हिन्दू समाज में अनेक बुराइयां उत्पन्न हो गई थी। *

शताब्दियों से प्रत्येक गांव अपनी आर्थिक सीमाओं में निबद्व रहा, जिसके परिणाम स्वरूप व्यापक आर्थिक सम्बन्ध देशीय और प्रदेशीय स्तर पर–स्थापित न हो सके। तदयुगीन समाज को नियंत्रित करने वाली केवल तीन परम्परागत संस्थाएं थी। यद्यपि ग्राम पंचायत का कार्य मूलतः शासकीय और आर्थिक नियंत्रण तक सीमित था, तथापि उस पर वर्ण – व्यवस्था के आदेशों का इतना प्रभाव था कि वह जाति–व्यवस्था का विरोध करने में अक्षम ही नहीं थी, अपितु वर्ण व्यवस्था के नैतिक मानदण्डों को व्यवस्थित करने वाली संस्था भर रह गई थी। जाति व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति की समाजिक स्थिति उसके जन्म पर आधारित थी। वर्ण व्यवस्था के अनुसार ' समाज केवल चार वर्णो में ही विभाजित न था, वरन् प्रत्येक वर्ण असंख्य उपजातियों में विभाजित होकर अपनी अपनी ढफ्ली के स्वर में अपने गौरव का राग अलाप रहा था। जाति – व्यवस्था शादी विवाह, खान–पान , व्यवसाय और अन्य जातियों के साथ सामाजिक व्यवहार के नियमों का निर्देशन करती थी। हिन्दू समाज में संयुक्त परिवार मूलभूत संस्था थी, आणविक परिवार का उस समय अस्तित्व न था। व्यवहारिक रूप से ये संयुक्त परिवार ही उपजाति का निर्माण करते है, और हिन्दू सीमा के बाहर किसी समाज या समूह को अंगीकार नही करता ।[1]

---

[1] The widest expression of the family is the: Sub-caste which often consists only of a faw joont family which inter marry and interdie among themselves Beyound this extended joint family the Hindu in practicerecogn is eson society or cummunity. K.M. Ponikar: Hindu Socityat Cross Roud, 1955. P.18

ये दोनो संस्थाए जाति–व्यवस्था तथा संयुक्त परिवार–धर्म निरपेक्ष न्याय विभाग से परिचालित न होकर समस्त हिन्दू रीति–रिवाजों के अनुसार चलती थी। इसके परिणाम स्वरूप, हिन्दू समाज समयानुसार परिवर्तन क्रम का साथ न दे सका, जिससे लाभ यह हुआ कि हिन्दू समाज अनेक विदेशी आक्रमणों को झेलते हुए भी अपना अस्तित्व बनाये रहा, परन्तु हानि यह हुई कि वह अपनी कुरूपताओ और विकृतियों को त्याग न सका।

15वीं शताब्दी में विचार–प्रक्रिया की स्वतंत्रता का एक तूफान उठा जिसके कारण हिन्दुओं के विचार उद्वेलित अवश्य हुए परन्तु इतिहास साक्षी है कि जन साधारण के मन मस्तिष्क पर पुराने संस्कार ही छाए रहे। कबीर जैसे क्रांति दूत का उदय भी हिन्दू समाज की विकृतियो को हटा नही पाया। अंग्रेजो के आगमन तक वैसे ही रूढ़िवादी कुरीतियां हिन्दू जाति की प्रगति में बाधक बनी रही, सदियों की परतन्त्रता और विदेशी शासन तथा प्रगतिशील मान्यताओं की अभाव ग्रस्तता ने हिन्दू–समाज को पतन के खाई में ढकेल दिया था और " हिन्दू समाज की अशिक्षा जन्यजडता का सबसे भयंकर परिणाम हिन्दू नारियों को भुगतना पड़ रहा था। " [1] भारत वर्ष में शताब्दियो से नारी उत्पीड़न की जो परंपरा चली आ रही थी। उसके अनुसार उसे ज्ञान और शिक्षा से तो दूर रखा ही गया अन्य दूसरे मानवीय अधिकारों से भी उसे वंचित कर दिया गया। नारी पर लगाए गए सामाजिक तथा धार्मिक प्रतिबन्धों का बोझ इतना अधिक था कि उसके नीचे दबकर नारी का अस्तित्व ही विलीन सा हो गया। समाज में अपने पति से अलग उसकी कोई हैसियत ही नही थी। जिसके फलस्वरुप पति के मृत्यु के उपरान्त पत्नी के जीवन को व्यर्थ समझा जाता था। अतः पति के मरने के बाद पत्नी को उसकी चिता के साथ जिन्दा जला दिया जाता था। इस पाश्विक प्रथा को सती प्रथा कहा गया। प्राचीन इतिहास में ऐसे साक्ष्य मौजूद है जिनसे यह विदित होता है कि पति के मरने के पश्चात पत्नी स्वेच्छा से अपना शरीर त्याग देती थी। लेकिन विवेच्य काल तक आते आते नारी अपने समस्त अधिकारों से वंचित हो गयी जिससे उसकी इच्छा अनिच्छा का प्रश्न ही नहीं उठता था। पुरूष वर्ग को शायद इस बात का विश्वास नही था कि विधवाएं पवित्र जीवन व्यतीत कर सकती है। भारत में संयुक्त परिवार व्यवस्था के अन्तर्गत विधवाओं को विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता था।

---

[1] Nothing go forcibly illustrates thje degrading charecter of the ageas pts call gisness to women- B.P.I. RVOlxP.22

विधवाओं की समस्त समस्याओ में प्रमुख समस्या उनके रहन–सहन की थी। पति की सम्पत्ति पर उनका कोई अधिकार न होने के कारण पति की मृत्यु के बाद वह बिल्कुल निःसहाय हो जाती थीं। इस प्रकार वह परिवार के दूसरे सदस्यों पर अपने गुजारे के लिए निर्भर होकर बोझ बन जाती थीं। ऐसी नारी परिवार की आय बढ़ाने में किसी प्रकार सहायक नही थी अतः परिवार उससे यथा सम्भव शीघ्र अति शीघ्र मुक्त होना चाहता था। " पति–वियोग में जो नारी स्वेच्छा से मृत्यु का वरण करे उसके लिए इस सामाजिक सुविधा के विरूद्व कुछ कहने के लिए रह नही जाता लेकिन दुखद बात तो यह थी कि लोग विधवाओ को जबर्दस्ती अत्यन्त कूरता के साथ उसके पति की लाश के साथ जला डालते थे।"[1]

वैचारिक क्रान्ति के नेताओं में राजा राममोहन राय वह पहले नेता थे जिन्होने सर्व प्रथम सती प्रथा के विरूद्ध आवाज उठाई। क्योंकि उन्होनें स्वयं अपने परिवार में इस अमानुषिक कृत्य को सम्पन्न होते देखा था। अतः राजा राममोहन राय ने घूम–घूमकर इस प्रथा के विरूद्ध जनमत तैयार किया। अपने इन प्रयत्नो में उन्हे पुरातन पंथियों से संघर्ष करना पड़ा। अन्त में उनके अथक प्रयत्नो के परिणाम स्वरूप 4 दिसम्बर 1829 की रेग्युलेशन संख्या 17 के अनुसार सती–प्रथा को कानूनी तौर पर अवैध घोषित कर दिया गया।

हिन्दू नारियों की दूसरी समस्या यह थी कि वे चाह कर भी पुनर्विवाह नही कर सकती थीं। यदि पुनर्विवाह की सुविधा हिन्दू –विधवा को प्राप्त रहती तो वे अपने को, अपने परिवार के अनाचार और अत्याचार से बचा सकती थी। किन्तु हिन्दू समाज द्वारा इस प्रकार की कोई सुविधा नारियों को प्राप्ति नही थी। पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार और नये विचारो की प्रतिष्ठा ने जन मानस को इस प्रश्न पर भी गम्भीरता के साथ सोचने की प्रेरणा दी। हिन्दू समाज की विचित्रता यह थी कि पुरूष चाहता तो सैकड़ों विवाह कर सकता था। बंगाल के कुलीन ब्राह्मणो के घरों में बहु–विवाह करने का रोग जैसा था। एक एक की पचास

---

[1] The custom of binding down the widow with the corpses of their deceased husbands as also of using bamboos to press down those who wonted to escape from the to trure was condemned asbeing nothing short of delibrate women murder.

- Ram Mohan Roy and Pogressive Movementsin India (Introduction 1xxx.1)

1- A contrury of social reforms in India-S. Natrajan P.30-31

–पचास पत्नियां होती थी। उन पचासों में कुछ तो ऐसी भी थी जिनके जीवन में सौभाग्य सूर्य कभी उदित ही नही हो पाता था।"[1]

जो समाज पुरूषों को इस रूप से अबाध–स्वच्छन्दता दे वही किसी नारी को संरक्षण रूप में भी पुनः विवाह की स्वीकृति न दे इसे एक क्रूर विधान ही कहा जायगा। अस्तु ब्रहम समाज ने इस संबंध में आन्दोलन छेड़ा। इस विषय में आन्दोलन करने वालो में ईश्वर चन्द्र विद्या सागर, शशिजय मुखर्जी जैसे लोगो के नाम स्मरण करने योग्य है। 26 जुलाई 1856 को ऐक्ट संख्या 15 जिसको हिन्दू वीडो रीमैरेज ऐक्ट कहा गया है स्वीकृत हुआ। इसके अनुसार विधवा –विवाह को वैध – घोषित किया गया ।[2]

हिन्दू स्त्रियों का पारिवारिक सम्पत्ति पर कोई कानूनी हक नही था। देश का पुरातन पंथी वर्ग स्त्री–शिक्षा को शास्त्र –विरोधी मानता था और समाज में ऐसा कुंसंस्कार फैला हुआ था कि शिक्षिता नारी विधवा हो जाती है।[3]

हिन्दू समाज की एक जटिल उलझन जाति व्यवस्था को लेकर है। अपनी सभ्यता के उषा काल में आर्यों ने जाति की व्यवस्था श्रम के विभाजन के आधार पर की थी जो स्वभावतः दृढ और अपरिवर्तनीय नही थी। किन्तु समाज में, ज्ञानोपलब्धि करने वाले ब्राह्मणो के महत्व वर्धन के साथ क्रमशः जाति व्यवस्था गुण और कर्म पर स्थित न रहकर जन्म और पैत्रिक परस्परा पर अवस्थित हुई। किन्तु ब्राह्मणों का महत्व जब अपने प्रकर्ष पर पहुंचा तब प्रतिक्रिया रूप यह विचार भी बद्धमूल हुआ कि समाज को जन्म को महत्व न देकर कर्म को महत्व देना चाहिए। 15वीं शताब्दी में भारत वर्ष में जो वैचारिक क्रान्ति हुई थी उसने भी ब्राह्मणो की महत्ता का विरोध किया और तथा कथित अन्त्यजों को सामाजिक और धार्मिक अधिकारो पर प्रतिष्ठित करने का उद्योग किया।

हिन्दूओं की जाति–व्यवस्था का विरोध पहले तो केवल इस लिए किया गया था कि उसने एक विशेष वर्ग ब्राहमणो को इतर वर्णो का भाग्य विधाता बना दिया था। सामाजिक और धार्मिक जीवन में आचरण के लिए संहिता बनाने का

---

[1] बी0पी0आई0आर0–बालूम **X** , पृ0 221

[2] बी0पी0आई0आर0– बालूम **X** , पृ0 268

[3] बी0पी0आई0आर0– बालूम **X** , पृ0 284

अधिकार रखने वाले ब्राहमण वर्ग ने तथा कथित अन्त्यज वर्ग को और तो और भगवान से भी दूर कर दिया था। 15वीं शताब्दी में जो क्रान्ति हुई उसका उद्देश्य समाज से बहिष्कृत इन जातियों को भक्ति प्रधान जीवन बिताने का अधिकार देना था। कबीर ने एक मूल प्रश्न यह भी उठाया था। बड़े लोगो की नजर में जो छोटे काम है उनके करने वाले छोटे थे। हीन थे। कबीर ने श्रम के महत्व का उद्घोष करते हुए यह कहा कि काम कोई छोटा नही होता। अस्तु, पेशे को प्रमाण मान कर जाति विषयक उच्चता अथवा हीनता का निर्धारण नही किया जा सकता ।

जाति–व्यवस्था की एक बड़ी त्रुटि यह थी कि व्यक्ति अपनी पैतृक परम्परा से बाहर, जाकर जीवनोद्योग करने का अधिकारी नही रह गया था।"[1] इस व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति की योग्यता और शक्ति को कोई महत्व ही नही दिया गया। दूसरी त्रुटि यह थी कि इससे समाज में विषमता व्याप्त हो गई। उच्चता और हीनता की भावना ने जन्म लिया और यदि किसी ने इसके विरूद्ध जबान खोली तो उच्च जातियो ने लाठियों के बल पर उसे खामोश कर दिया।

शोषण और अनाचार की इस परम्परा पोषण के लिए धर्म का उपयोग किया गया। अपने धार्मिक अधिकारों का प्रयोग करते हुए स्वार्थान्ध ब्राहमणो ने छोटी जातियों के विवेक को इस प्रकार कुंठित कर दिया कि उनमें प्रतिक्रिया या विद्रोह की भावना पनप ही न सके। उनकी दुर्दशा का कारण उनके पूर्व जन्म के पापों को बताया गया। यदि इस जन्म में ब्राह्मण द्वारा रचे गये धार्मिक विधान का वे विरोध करेंगें तो अगले जन्म में भी वे दुख भोगेंगें। धर्म के इस पूंजीवादी स्वरूप ने एक ऐसे वर्ग को जन्म दिया जो अपने कष्टों को विधि का विधान मानकर उच्च वर्गो के अत्याचारों को चुपचाप सहन करता रहा। इस वर्ग को अछूत कहकर उसे समाज से बेदखल कर दिया गया। उसकी छाया के स्पर्श से ही उच्च वर्गो का शरीर अशुद्ध होने की आशंका थी क्योंकि इस वर्ग के लिए मंदिरो में प्रवेश निषिद्ध था, वेद पाठ और दूसरे संस्कारों को करने की तो यह वर्ग कल्पना भी नहीं कर सकता था। छोटे–मोटे सामाजिक अधिकार जैसे कुएँ और पोखरे से पानी लेने का अधिकार भी इसे प्राप्त नही था। हिन्दू जाति का ही एक अंग होते हुए भी छुआ–छूत और असमानता के कारण एक ही अपराध के लिए उच्च वर्ग की अपेक्षा निम्न वर्ग को अपेक्षाकृत अधिक कठोर दंड दिया जाता था। हिन्दू समाज में इन कुरूपताओं के आने का कारण उसकी रक्षात्मक प्रवृत्ति

---

[1] एस0बी0आई0एन0ए0आर0देसाई, पृ0 2131

रही है। समाज का मुख्य ध्येय यह हो गया कि अपने रीति–रिवाजों की येन–केन प्रकारेण रक्षा की जाय। ऐसी स्थिति में समाज ने सभी प्रकार की कुरूपताओं को स्वीकार किया, जो कुछ अपना था।

हिन्दू समाज की दूसरी व्यवस्था यह थी कि व्यक्ति का उसमें अस्तित्व न था, अपितु समाज में व्यक्ति का अस्तित्व समूह के सदस्य के रूप में था । ऐसी दशा में सामाजिक कुरूपताओं के विरूद्व विद्रोह करना व्यक्ति की क्षमता के बाहर की चीज थी इस प्रकार समाज स्थिर हो अमानवीय स्थिति तक पहुंच गया था, जिसमें परिवर्तन होना आवश्यक हो गया था।

हिन्दू समाज की व्यवस्था के अनुसार व्यक्ति का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नही था। वह अपने समूह के द्वारा पहचाना जाता था। ऐसी स्थिति में सामाजिक विसंगतियो के विरूद्व किसी व्यक्ति विशेष के विद्रोह का तो प्रश्न ही, नही उठता था ऐसी दशा में अत्याचार और शोषण का चरम सीमा पर पहुंच जाना एक स्वभाविक बात थी और सदियों से बर्बरता की बेड़ियो में जकड़ी मानवता को स्वतंत्र करने के लिए इस अमानवीय व्यवस्था में परिवर्तन अपरिहार्य हो गया था।

ब्रह्म समाज–

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत की धार्मिक एवं सामाजिक स्थिति हीनावस्था की चरम सीमा को छू चुकी थी। रूढ़ि मिथ्याडम्बर तथा अन्धविश्वास आदि प्रवृत्तियां दिन–प्रतिदिन समाज को पतन की ओर अग्रसर कर रही थीं। इसके अतिरिक्त समाज में वैवाहिक कुरीतियां, बाल–विवाह बहुविवाह, तथा अनमेल विवाह, विधवा विवाह निषेध, दहेज प्रथा आदि प्रचलित थीं। समाज में अछूत तथा स्त्री जाति की दशा शोचनीय थी। धार्मिक–क्षेत्र में कल्पित देवी–देवताओं तथा भूत–प्रेतों का आधिपत्य था। बलि के नाम पर जीव–हत्या, कर्मकाण्ड की ओट में लूट–खसोट मची हुई थी। भारतीय समाज की यह दुर्दशा दिनप्रति दिन वेगातीत थी। तत्कालीन समाज को देखकर प्रत्येक व्यक्ति सुधार की तो सोचता था परन्तु किसी में आगे आने का या तो साहस ही नहीं था या उनमें शक्ति ही शेष न थी। ऐसे समय में बंगाल प्रदेश की एक दुर्घटना से भारत में एक महान–सुधारक का आविर्भाव हुआ। राजा राममोहन राय के बड़े भाई की मृत्योपरान्त प्रचलित प्रथा के अनुसार राममोहन राय की भाभी को सती होना पड़ा। उस समय घर पर राममोहन राय अनुपस्थित थे किन्तु इस समाचार को सुनकर उन्हे मर्मान्तक

आघात पहुंचा। इसके फलस्वरूप उन्होने प्रत्यक्ष रूप से इस प्रचलित ' सती प्रथा' का जोरदार विरोध करते हुए आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। अन्ततः उन्हे सन 1829 में सफलता मिली और लार्ड विलियम बैंटिन्ग ने सती प्रथा को अवैध घोषित कर दिया। सामाजिक क्षेत्र में सुधार आन्दोलन का शुभारम्भ यहीं से होता है। धार्मिक क्षेत्र में भी राजा राममोहन राय का प्रयत्न आत्मीय सभा (1815) वेदान्त कालेज (1816) की स्थापना के द्वारा प्रारम्भ हुआ। 1819 में आत्मीय सभा के बन्द हो जाने पर उन्होने ' यूनिटेरियन सोसायटी' के नाम से कलकत्ते में ही एक अन्य संस्था को जन्म दिया किन्तु यह सोसायटी भी उन्हे संतोष न दे सकी। अतः उन्होने 20 अगस्त सन् 1928 को ' ब्रहम समाज ' नामक एक अपेक्षाकृत अधिक व्यापक संस्था की स्थापना धार्मिक–सामाजिक सुधार की कामना से कलकत्ता में की। इस प्रकार राजा राम मोहन राय को आधुनिक युग में भारत वर्ष में होने वाली वैंचारिक क्रान्ति का जनक कहा जा सकता है। उन्होने राजनैतिक, धार्मिक , सामाजिक तथा शैक्षणिक सभी क्षेत्रों में कान्ति का बिगुल बजाया वैसे तो राजा राममोहन राय का मुख्य उद्देश्य राजनैतिक तथा सामाजिक सुधार था परन्तु धर्म का क्षेत्र भी उनके सुधारों से अछूता नही रहा। उन्होने एक सर्व शक्तिमान ब्रहम की उपासना पर बल देते हुए बहुदेव वाद, मूर्ति पूजा तथा अन्ध विश्वासों का खण्डन किया। वे किसी भी बात को तर्क की कसौटी पर कसे बिना स्वीकर करने के पक्ष में नही थे अतः उन्होने बुद्वि प्रयत्न पर बल दिया। राजा राममोहन राय के इन क्रांतिकारी विचारों का दूसरों के साथ–साथ परिवार वालों ने भी विरोध किया। परन्तु वे कभी भी अपने लक्ष्य से डिगे नही। उनकी मृत्यु (1833 ई0) के पश्चात ब्रह्म समाज की बागडोर देवेन्द्र नाथ ठाकुर तथा केशव चन्द्र सेन ने संभाली। केशव चन्द्र सेन के ह्रदय में ईसा मसीह के प्रति अपार श्रद्वा थी जिससे प्रभावित होकर उन्होने ब्रहम समाज की मान्यताओं में ऐसे परिवर्तन किए जो राजा राम मोहनराय के आदेशों से सर्वथा भिन्न थे। धीरे–धीरे इस संस्था ने अपना प्रभुत्व खो दिया और फिर एक समय ऐसा भी आया जब यह संस्था बिल्कुल टूट गई और साधारण समाज नाम की एक नई संस्था इसके स्थान पर स्थापित हुई।

वस्तुतः भारत में ब्रहम समाज की स्थापना का मूल कारण ' ब्रिटिश सुधार आन्दोलन ' की सफलता से प्राप्त प्रेरणा ही थी। " जिस प्रकार कियात्मक रूप में पाश्चात्य राजनैतिक विचारों का आरम्भ एरिस्टोटिल से माना जाता है उसी प्रकार

आधुनिक भारत में राजनैतिक विचारों का इतिहास महामना राजा राममोहन राय से प्रारम्भ होता है।" [1]

" दीनबन्धु एण्ड्रूज ने उक्त आन्दोलन के काल को भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के भवन की नीवं कहा है। "[2]

' ब्रहम समाज ' ने हिन्दू जाति में जागरण पैदा करने का प्रयास किया। इसने ' सती प्रथा ' तथा ' बाल – विवाह ' का विरोध, विधवा विवाह का समर्थन एवं प्रचार किया, धार्मिक क्षेत्र में मूर्ति पूजा का खण्डन तथा एकेश्वरवाद को वेदविदित बताकर समर्थन करना, इसका कार्य–प्रणालियों में शामिल था। ब्रह्म समाज की स्थापना के 5 वर्ष पश्चात् सन 1833 में राजा राममोहन राय के मृत्योपरान्त इसका नेतृत्व महर्षि देवेन्द्र नाथ टैंगोर ने किया। इन्होंने ब्रह्म समाज में राममोहन राय से भी अधिक भारतीय संस्कृति के तत्वों को स्थायी महत्व देना प्रारम्भ किया। किन्तु सन 1856 में श्री केशव चन्द्रसेन ब्रहम, समाज में प्रविष्ट होकर दिनोदिन इसे पाश्चात्य संस्कृति तथा ईसाई धर्म के नजदीक लाते गए। परिणामतः इसका सम्बन्ध वेद आदि शास्त्रों से छूट कर पाश्चात्य जगत ईसाई धर्म से स्थापित हो गया । इस कारण भारत में ब्रहम समाज का प्रभाव समूचे देश पर तो क्या बंगाल में भी मात्र थोड़े से अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगो तक ही सीमित रह गया। स्पष्टतः ऐसी दशा में ब्रहम समाज के प्रभाव से प्रेमचंद अछूते रह गए। समाज सुधार के इस क्षेत्र में ब्रह्म समाज की चर्चा करते हुए सन् 1936 में प्रेमचंद ने लाहौर में आर्य समाज के वार्षिक अधिवेशन में कहा था। जाति–भेद और खान–पान में छूत–छात और चौके चूल्हे की बाधाओं के मिटाने का गौरव उसी (आर्य समाज) को प्राप्त है। यह ठीक है ब्रहम समाज ने इस दिशा में पहले कदम रखा पर वह थोड़े से ही अंग्रेजी पढे–लिखे लोगो तक रह गया। यदि ब्रह्म समाज ने हमारे देश में आधुनिक नागरिक की भूमिका निभाई तो आर्य समाज ने आधुनिक सैनिक की। एक सांस्कृतिक उद्भावक था और दूसरा समाज सुधारक । भारत में पुनर्जागरण की मुख्य रूप से दो धाराएं दृष्टिगोचर होती है। जिनमें से एक का प्रतिनिधित्व ब्रहम समाज तथा प्रार्थना समाज कर रहे थे और दूसरी धारा का नेतृत्व आर्य समाज , रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसाइटी ने किया।

---

[1] विमन बिहारी मजूमदार हिस्ट्री आव इंडियन सोशल एण्ड पालिटिकल आइडियाज।पृ० 22"

[2] **Cf. Andrews and R. Mukharjee .OP Cit. P.4**

आर्य समाज :–

जहां ब्रहम समाज बंगाल के पढ़े–लिखे वर्ग तक ही सीमित रह गया वही आर्य समाज़ उसके 46 वर्ष बाद (सन 1875) में जन्म लेकर भी साधारण जनता तक अपने संदेश को पहुंचाने में पूर्णतया सफल रहा। हिन्दी भाषा और साहित्य को आर्य समाज की देन अविस्मरणीय है। आर्य समाज द्वारा अपने सारे कार्यक्रमो को आर्य भाषा (हिन्दी) के माध्यम से सम्पादित करने के कारण जनता से उसका अपेक्षाकृत अधिक और घनिष्ट सम्बन्ध स्थपित हो सका।

आर्य समाज जहां ऊपरी सतह पर सामाजिक क्रान्ति कर रहा था। वहीं स्वाधीनता के लिए चलाए जाने वाले स्वदेशी आन्दोलन में भी सक्रिय भूमिका अदा कर रहा था। डा0 कर्ण सिंह का कथन है कि " आज इसमें किचिंत भी संदेह नही है कि ' स्वदेशी आन्दोलन ' (1905) के पीछे आर्य समाज के धार्मिक राष्ट्रवाद का ही हाथ था। " [1]

आर्य समाज ने धार्मिक क्षेत्र में मूर्ति पूजा तथा वाह्याडम्बर का खण्डन करते हुए एकेश्वरवाद का समर्थन किया है। सामाजिक क्षेत्र में बाल–विवाह , अनमेल विवाह, बहु विवाह का विरोध तथा विधवा विवाह का समर्थन आदि उसके प्रमुख कार्यक्रमों के अन्तर्गत आते हैं। आर्य समाज जन्म पर आधारित वर्ण व्यवस्था का विरोध करता है और वर्ण व्यवस्था का आधार कर्म को स्वीकार करता है। उसका यह मानना है कि कोई भी जाति जन्म से अछूत नही होती । अछूतोद्धार की दिशा में इस संस्था के कारनामें अविस्मरणीय है। राजनीति के क्षेत्र में आर्य समाज स्वदेशी राज्य को सर्वोपरि मानता है। राष्ट्र के उद्धार में स्वदेशी आन्दोलन का सराहनीय योगदान रहा है। स्वदेशी राज्य का समर्थन करते हुए दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश के आठवें उल्लास में लिखा है– " कोई कितना ही करें परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। " आर्य समाज से स्वदेश प्रेम की भावना ग्रहण करके अनेक भारतवासी देश की स्वतंत्रता के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाने को तैयार हो गए। ' बिस्मिल कहते है कि –" मैने सत्यार्थ प्रकाश पढ़ा, उससे तख्ता ही पलट गया। सत्यार्थ प्रकाश के अध्ययन ने मेरे जीवन के इतिहास में एक नवीन पृष्ठ खोल दिया। " [2]

---

[1] **Karan Shingh, Prophet of Indian Nationlism. P.221**

[2] सव्यार्थ प्रकाश आठवां उल्लास, पृ0 960 , संस्करण 19वां, संवत 1982 वि0।

स्वामी जी ने विदेशियों से अपने राज्य की पुनः प्राप्ति के लिए सम्पूर्ण भारतवासियों को आपस में संगठित होने पर बल देते हुए कहा–, विदेशियों के आर्यावर्त में राज्य होने के कारण आपसी फूट, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, मतभेद, विद्या का न पढ़ना पढ़ाना वा बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति मिथ्या शोषणादि कुलक्षण आदि कुकर्म में जब आपस में भाई–भाई लड़ते है, तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है। " [1]

भारत के स्वाधीनता आन्दोलन में स्वदेशी, स्वभाषा, स्वराष्ट्र आदि की गूंज को प्रचलित करने का श्रेय इसी समाज को जाता है। " सुधारवादी आन्दोलन का ध्येय राष्ट्रवादी था, इसी लिए आर्य समाज का आन्दोलन अपनी ऐतिहासिक भूमिका सम्पूर्ण कर राष्ट्रीय आन्दोलन में घुल मिल गया। "[2]

धार्मिक अन्धविश्वास के कारण लोग समुद्र यात्रा कर देशान्तर जाने को अशुभ समझते थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इसका विरोध किया वे विदेशागमन को देश, जाति व व्यक्ति के लिए हितकर मानते हुए उसके समर्थक थे। दसवें उल्लास में उन्होने इस सन्दर्भ में लिखा है – ' जो मनुष्य देश देशान्तर और द्वींपांतर में जाने में शंका नही करते वे देशान्तरो के अनेकविध मनुष्यों समागम रीति भांति देखने अपना राज्य और व्यवहार बढ़ाने से निर्भय शूरवीर होने लगते और अच्छें व्यवहार का ग्रहण बुरी आदतो को छोड़ने में तत्पर हो बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होते है। भला जो महाभ्रष्ट म्लेच्छ कुलोत्पन्न वेश्या आदि के समागम से आचार भ्रष्ट धर्महीन नही होते, किन्तु देशान्तर के उत्तम पुरूषो के साथ समागम में छूत और शेष मानते है। यह केवल मूर्खता की बात नही तो क्या है। "[3]

प्रेमचंद जीवन के आरम्भिक दौर से ही आर्य समाज और स्वामी दयानन्द पर आस्था रखते थे। सन 1913 में हमीरपुर से मुंशी दया नारायण निगम को लिखे गए पत्र, जिसमें आर्य समाज को अपने हिस्से का 10 रूपए चन्दा भेज देने की बात लिखी गई थी, से उनके आर्य समाज के नियमित सदस्य होने की बात का भी पता चलता है। सन् 1928 में उन्होने दयानन्द और आर्य समाज की प्रशंसा करते हुए श्रीमती शिवरानी देवी से कहा था–' मै तो धन्यवाद देता हूँ दयानन्द को । उन्होने आर्य समाज का प्रचार करके स्त्रियों का और समाज का

---

[1] **Ram Prasad, Bismil Kakori Ke Bhent (Delhi No. Q) Hindi 47**

1 लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय , परिप्रेक्ष्य और प्रतिकियाएँ, पृ0 62–63.

बड़ा उद्धार किया है।[1] आर्य समाज के प्रति उनकी जो आस्था थी वह आजीवन बनी रही। अप्रैल 1936 में लाहौर आर्य समाज के वार्षिक अधिवेशन में आर्य भाषा सम्मेलन के अध्यक्ष पद से दिए गए उनके भाषण से भी यह बात सिद्ध होती है। उन्होने कहा था कि – ' मै तो आर्य समाज को जितनी अधिक धार्मिक संस्था समझता हूँ उतनी तहज़ीबी, सांस्कृतिक, संस्था भी समझता हूँ। बल्कि आप क्षमा करें तो मैं कहूँगा उसके तहजीबी कारनामें उसके धार्मिक कारनामों से ज्यादा प्रसिद्ध और रोशन हैं। आर्य समाज ने साबित कर दिया है कि सेवा ही किसी धर्म के सजीव लक्षण हैं। सेवा का ऐसा कौन सा क्षेत्र है जिसमें उसकी कीर्ति की ध्वजा न उड़ रही हो। क़ौमी जिन्दगी को हल करने में उसने जिस दूंरदेशी का सबूत दिया है, उस पर हम गर्व कर सकते है। हरिजनों के उद्धार में सबसे पहले आर्य समाज ने कदम उठाया। लड़कियों की शिक्षा की जरूरत को सबसे पहले उसने समझा।* वर्ण व्यवस्था को जन्म गत न मानकर कर्मगत सिद्ध करने का सेहरा उसके सिर है। जाति –भेद–भाव और खान–पान में छूत छात और चौके चूल्हे की बाधाओं को मिटाने का गौरव उसी को प्राप्त है। यह ठीक है कि ब्रह्म समाज ने इस दिशा में पहले कदम रखा, पर वह थोड़े से अंग्रेजी पढ़े–लिखे–लोगो तक ही रह गया। इन विचारो को जनता तक पहुँचाने का बीड़ा आर्य समाज ने उठाया। अन्धविश्वास और धर्म के नाम किए जाने वाले हजारों अनाचारों की कब्र उसने खोदी, हालांकि मुर्दे को उसमें दफन न कर सका और अभी तक उसकी जहरीली दुर्गन्ध उड़–उड़ कर समाज को दूषित कर रही है। समाज के मानसिक और बौद्धिक धरातल (सतह) को आर्य समाज ने जितना उठाया है, शायद ही भारत की किसी संस्था ने उठाया हो।' [2]

जिस समय प्रेमचंद ने अपने लेखन की शुरूआत की उस समय आर्य समाज आन्दोलन बड़े ज़ोर पर था। आर्य समाज उन्ही दिनों ढकोसलो तथा सामाजिक कुरीतियों का जोरदार विरोध कर रहा था। जनता में राष्ट्र प्रेम एवं स्वदेशी राज्य की इच्छा जाग्रत हो रही थी। प्राचीन संस्कृति का उत्थान इसका लक्ष्य था। ये बातें प्रेमचंद जी के साहित्य में देखने को मिलती है जिन पर निश्चित रूप से आर्य समाज का प्रभाव पड़ा है। इस तथ्य को स्वीकार करते हुए

---

2. सव्यार्थ प्रकाश, दशम् उल्लास, पृ0 160।

3. प्रेगचंद, घर में, परि0 45,पृ0 96 1

[2] साहित्य का उददेश्य–पृ0 186–187, प्रथम संस्करण जुलाई–1954 ।

डा0 इन्द्रनाथ मदान ने लिखा है कि –" जिस समय उन्होने (प्रेमचंद ने) लिखना प्रारम्भ किया उस समय आर्य–समाज अपने विकास पर था। आर्य समाज में सुधार वृत्ति का प्राद्यान्य था और प्राचीन संस्कृति के उद्धार के लिए प्रयत्न किया जा रहा था। विशेषकर सामाजिक कुप्रथाओं को दूर करने की ओर अधिक ध्यान दिया गया था। विधवा विवाह, वृद्ध विवाह, बाल–विवाह, दहेज, अनमेल विवाह, आदि ही में आर्य जाति के पतन का बीज छिपा था। प्रेमचंद जी ने अपने जीवन के प्रारम्भ में ही इसका अनुमान कर लिया था। आर्य संस्कृति के प्रति उन्हे मोह था ही। इन कुरीतियो को मिटाने का संकल्प करके उन्होने लिखना प्रारम्भ किया। लिखना ही नही, जैसा कि उनकी जीवनी से प्रकट है, एक बाल – विधवा से विवाह कर समाज में आदर्श रख दिया और जीवन तथा साहित्य में साथ–साथ क्रान्ति शुरू हुई।" [1]

प्रेमचंद के आरम्भिक उपन्यास ' देव स्थान रहस्य ' प्रेमा ' सेवासदन 'निर्मला' प्रतिज्ञा' आदि का मुख्य उददेश्य समाज सुधार रहा है। ' कायाकल्प ' उपन्यास में भी सुधारवादी प्रवृत्ति विद्यमान है। ' ग़बन' उपन्यास में कलकत्ता से संबंधित कथानक में आभूषण प्रियता के दोष तथा पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन पर पड़ने वाले उसके दुष्परिणाम को दिखाया गया है। 'कर्मभूमि ' को राजनैतिक उपन्यास की कोटि में रखा जा सकता है किन्तु उसमें भी अछूतों की समस्या का चित्रण करके छुआछूत को दूर कर समानता की स्थापना को ही लक्ष्य बनाया गया है। 20वीं शताब्दी के तीसरे दशक में राष्ट्रीय आन्दोलन की गति तीव्र हो जाने पर देश में सुधारवाद की भावना में कुछ कमी आ गयी थी। प्रेमचंद को इस दिशा में आर्य समाज से ही प्रेरणा मिली होगी। राजनैतिक क्षेत्र में इस युग में गाँधी जी का सिक्का जम गया था। युग उन्हे अपना नेता मान चुका था। राष्ट्रीय आन्दोलन के गाँधी जी ही सूत्रधार थे। डां0 लक्ष्मी नारायण गुप्त ने भी इस बात को स्वीकार करते हुए अपने शोध प्रबन्ध में लिखा है। ' समाज सुधार और राष्ट्रीयता आर्य समाज की देन है। यद्यपि महात्मा गांधी द्वारा संचालित अहिंसात्मक आन्दोलन ने राष्ट्रीयता को बहुत आगे बढाया परन्तु समाज सुधार और राष्ट्रीयता का श्री गणेश आर्य समाज ने ही किया। प्रेमचंद को इसकी प्रेरणा आर्य समाज से ही मिली। यही कारण है कि उन्होने सामाजिक सुधार –सम्बन्धी उपन्यास सन 1921 के सत्याग्रह प्रारम्भ होने से 15–16 वर्ष पूर्व ही लिखना

---

[1] 'हिन्दी के कथाकार– डा0 इन्द्रनाथ मदान, पृ0 366 तीसरा संस्करण नवम्बर 1949

प्रारम्भ कर दिया था। प्रेमचन्द उत्तरकालीन उपन्यासो में यद्यपि समयानुसार अहिंसा, हिन्दू मुस्लिम समस्या, वर्ग चेतना आदि की ओर अग्रसर नही हुए परन्तु समाज सुधार की भावना उसमें ऐसी मिली हुई है कि उसे अलग कर ही नही सकते। एक आर्य समाजी की भांति प्रेमचंद राष्ट्रीय उत्थान के साथ समाज को साथ लेकर चले है। "[1]

गांधी जी जिस राष्ट्रीय और समाज सुधार आन्दोलन का संचालन कर रहे थे उनका श्री गणेश वस्तुतः आर्य समाज ने ही किया। प्रेमचंद के आरम्भिक उपन्यासो में समाज सुधार की जो अनुगूंज सुनाई देती है वास्तव में यह आर्य समाज की देन है। यद्यपि बदलते हुए समय के साथ उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन आता गया तथापि उनके उत्तरकालीन उपन्यासों में भी समाज–सुधार का उनका आर्य समाजी दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से देखाई देता है। वे आर्य समाज के एक सच्चे अनुयायी की भांति राष्ट्रीय मुक्ति और समाज के उद्धार की भावना को एक साथ लेकर चले और आरम्भ से अन्त तक उनके कल्याण के लिए संघर्षरत रहे।

प्रार्थना समाज :–

ब्रह्म समाज की भांति यह भी एक सुधारवादी संस्था थी जो 1867 में बम्बई में स्थापित हुई। इसके प्रमुख नेताओं में डॉ0 भंडारकर और महादेव गोविन्द रानाडे थे। इस समाज का मुख्य उद्देश्य धार्मिक क्षेत्र की बुराईयों को दूर करना था। इसके अतिरिक्त पाश्चात्य सम्यता जो दूषित प्रभाव अंग्रेजी पढ़े लोगों पर पड़ रहा था उसे दूर करना भी इस समाज का उद्देश्य था। प्रार्थना समाज ने भी किसी नये दर्शन का प्रवर्तन नही किया। रानाड़े ने इस समाज के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए बतलाया कि –" ब्रह्म के एकत्व का अनुभव और हिन्द–धर्म में घुसी हुई विकृतियों का पर्दाफाश करना प्रार्थना–समाज का मुख्य लक्ष्य था। विविध–जातियो और धर्म के लोगो का परस्पर खान–पान और विवाह–शादी, विधवा–विवाह, स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में सुधार और अछूतोद्धार आदि की ओर इस संस्था का ध्यान विशेष रूप से केन्द्रित रहा। रानाड़े की धारणा थी "समाज सुधारक को सम्पूर्ण व्यक्ति को लेना होगा, न कि उसके किसी पक्ष को लेकर सुधारों की माँग करनी होगी। "[2]

---

[1] 'हिन्दी भाषा और साहित्य को आर्य समाज की देन– डॉ0 लक्ष्मी नरायण, पृ0 228, पृ0सं0 संवत् 2018 वि।

[2] आर0सी0मजूमदार : एन एडवान्स हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ0 882 ।

रानाडे ने प्रार्थना समाज की मान्यताओ का विवरण अपनी प्रसिद्व पुस्तक ' ' रेलिजस एण्ड सोशल रिफार्म ' में प्रस्तुत किया है। एक तरह से ब्रह्म समाज द्वारा फैलायी जाने वाली जागृति को प्रार्थना समाज ने गतिशीलता प्रदान की। मिस एस0डी0 कालेट ने बताया है कि प्रार्थना सम्पन्न समाज ने पुराने ब्राह्मणवाद से अपने को सर्वथा पृथक नही किया। इसके सदस्य मूलतः हिन्दू थे,। हिन्दू धर्म को मानते थे लेकिन स्वातंत्र चेता होने के कारण धार्मिक बुराईयों को मिटाने के आंकाक्षी थे।

रामकृष्ण मिशनः–

उन्नीसवीं शताब्दी को ' रामकृष्ण मिशन ' के रूप में पूर्व और पश्चिम का अपूर्व समन्वय प्राप्त हुआ। स्वामी रामकृष्ण परमहंस, जिनके नाम पर मिशन की स्थापना हुई, कलकत्ता के निकट किसी मंदिर के साधारण पुजारी थे। कलकत्ता विश्वविद्यालय का एक नवयुवक स्नातक नरेन्द्र नाथ दत्त परमहंस को एक योग्य शिष्य के रूप में मिला और भारत को सच्चा सपूत, जो स्वामी विवेकानन्द के नाम से विख्यात हुआ।

रामकृष्ण मिशन ने भारतीय समाज–व्यवस्था और संस्कृति के प्रति देशवासियों में सम्मान की भावना को जन्म दिया। विदेशों में स्वामी विवेकानन्द के भाषणों की धूम मचने से भारतीय युवको में अपूर्व आत्मविश्वास का जन्म हुआ। इस प्रकार हम देखते है कि " स्वामी विवेकानन्द पहले हिन्दू थे जिन्होंने विदेशो में भारत की प्राचीन संस्कृति की विजय–पताका फहराई । " [1] विवेकानन्द ने अपने गुरू के सिद्वान्तों का निरूपण करने के क्रम में जो भाषण दिये उनका पुस्तक रूप– " My Master Gyan Yoga Ray Yoga Karunyaga Bhakt Iyoga................. आदि के नाम से उपलब्ध है। " [2]

रामकृष्ण मिशन में साधना करने वाले साधकों ने सेवाव्रत ग्रहण किया। वे इस व्रत का प्रचार घूम–घूम कर किया करते और इसी सेवायज्ञ को वे मुक्ति विधायक मानते। सन्यासियो के इस समुदाय ने देश को यह सुझाया कि भारतवर्ष

---

[1] आर0सी0 मजूमदारः एन एडवान्स हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ0 886।

2 " Their religion was in the Ki tchentheir god was the Co king pot and their relig ion was - Dont touch me I am holy " Vivekanand and has works Page 167

को सेवा–व्रती शक्ति–सम्पन्न पुरूषार्थियों की अपेक्षा है न कि जीवन से विमुख होकर जंगलो में तपस्या करने वाले साधकों की। भावना की लीलाओ का विस्तार, उसकी शक्ति का प्रकाश जिस लोक समाज में होता है उससे भाग कर मुक्ति का साधन नही किया जा सकता। विवेच्यकाल में जैसे हिन्दुओं के बीच धार्मिक आन्दोलन खड़े हुए वैसे ही, मुसलमानो के समाज में भी थोड़ा बहुंत सुधार कार्य का प्रयास करने के लिए आन्दोलन खड़े हुए। ऐसे आन्दोलनो में ' अहमदिया आन्दोलन मुख्य है, जिसके प्रवर्तक मिर्जागुलाम अहमद माने गये है। " [1] और 'सन 1889 में इस आन्दोलन का प्रवर्तन बहुत कुछ ब्रह्म समाज के ढांचे पर हुआ।"[2] थियोसोफिकल सोसाइटी तथा पाश्चात्य संस्कारों से प्रभावित होने के कारण यह आन्दोलन धार्मिक सहिष्णुता का व्रती था। उपर्युक्त समस्त संस्थाओं तथा सुधारको ने भारतीय समाज की पतर्नोन्मुखी प्रवृत्तियों को पहचान कर जीवन के विकास में आने वाली बाधाओं, रूढ़ियो, अन्ध विश्वासों तथा मिथ्याडम्बरों का जबरदस्त विरोध अवश्य किया था।

प्रेमचंद जी इनसे प्रत्यक्ष रूप से प्रायः अप्रभावित ही रहे, क्योंकि या तो प्रेमचंद जी का इनसे कभी सम्पर्क ही न हो सका था, हुआ भी तो इतना कम कि वह भी प्रायः नही के बराबर रहा। अतः उनसे कोई लाभ की प्राप्ति नही हो सकी। हां, रामकृष्ण मिशन के संस्थापक स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव प्रेमचंद के साहित्यिक जीवन के पूर्वाद्ध में अवश्य दिखाई पड़ता है। '[3] यह प्रायः वही समय था जबकि पाठकों को प्रेमचंद जी ने ' वरदान ' उपन्यास दिया था। वरदान लिखते समय [4] तक प्रेमचंद जी के मन में राष्ट्रीयता की कल्पना ' हिन्दू राष्ट्रीयता ' ही थी और देश सेवा का अर्थ बाढ़ अकाल संक्रामक रोग आदि पीड़ित जनता

---

[1] एस0बी0आई0एन0 आर0 देसाई, पृ0 265।

[2] एस0बी0 आई0एन0ए0आर0 देसाई, पृ0265।

[3] प्रेमचंद ने विवेकानन्द पर एक छोटी सी पुस्तक लिखी है।

[3] यह कांग्रेस तथा गांधी के प्रभावी आन्दोलन के पूर्व का समय था। उस समय तक कांग्रेस का नेतृत्व तिलक तथा गोखले के हाथो में था। इस सन्दर्भ में प्रस्तुत शोध प्रबंध का पंचम परिच्छेद दृष्टव्य है।

[3] स्वामी विवेकानन्द–प्रेमचंद पृष्ठ 25 ।

की तन–मन से सेवा करना ही था। ये सभी गुण ' वरदान ' के नायक प्रतापचन्द (बाद के बाला जी) में दिखाई पड़ते है।

स्वामी विवेकानन्द जी ने सुधारक के लिए तीन शर्ते रखी है।' पहली यह कि देश और जाति का प्रेम उसका स्वभाव बन गया हो, ह्दय उदार हो। और देशवासियों, की भलाई की सच्ची इच्छा उसमें बसती हो। दूसरी यह कि अपने प्रस्तावित सुधारों पर उसका दृढ़ विश्वास हो। तीसरी यह कि वह स्थिर चित हो और दृढ़ निश्चयी हो। सुधार के पर्दे में अपना कोई काम बनाने की दृष्टि न रखता हो और अपने सिद्वान्तों के लिए बड़े से बड़ा कष्ट और हानि उठाने को तैयार हो।, यहां तक कि मृत्यु का भय भी उसे अपने संकल्प से न डिगा सके।'[1]

''स्वामी, विवेकानन्द जी द्वारा बताई गई ये सम्पूर्ण विशेषताएं 'वरदान' के प्रतापचंद्र के चरित्र में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। प्रतापचंद्र सुवामा को देवी के वरदान के स्वरूप में प्राप्त एक ' सपूत बेटा ' –' जो अपने देश का उपकार करे–– है। '[2] इस प्रसंग में ही एक बात और उल्लेखनीय है कि यहां पर प्रेमचंद जी ने सुवामा की मूर्ति–पूजा (देवी की उपासना) को एक फलित मूर्ति पूजा के रूप में प्रस्तुत किया है। देवी की पूजा से सुवामा की मनोकामना पूरी होती है और देश का उपकार करने वाला एक सपूत बेटा प्रताप चन्द्र–उसके गर्भ से जन्म लेता है। स्मरणीय यह है कि तत्क्षण पुनर्जागरण या नवोत्थान के समय में रामकृष्ण, परमहंस, स्वामी विवेकानन्द तथा रामकृष्ण मिशन सम्प्रदाय के अन्य लोगों के अतिरिक्त किसी ने भी मूर्ति – पूजा के प्रति अपनी आस्था नही प्रकट की।

प्रेमचंद ने ' वरदान ' में प्रतापचन्द्र के चरित्र पर दृष्टिपात करते हुए, स्वामी विवेकानन्द के चरित्र की पुष्टि की है। उसमें देश और जाति के प्रति एक स्वाभाविक प्रेम है। इस जाति प्रेम के ही कारण उसकी राष्ट्रीयता की परिकल्पना भी बहुत कुछ हिन्दू राष्ट्र या हिन्दू राष्ट्रीयता का रूप धारण कर लेती है। ' स्वामी जी का आदर्श बहुत ऊंचा था – अर्थात निम्न श्रेणी वालों को ऊपर उठाना, उन्हे शिक्षा देना और अपनाना।' [3] स्वामी विवेकानन्द जी के इस आदर्श को तो प्रेमचंद जी ने अपने जीवन का निश्चित एवं स्थायी कार्यक्रम ही बना लिया था जिसे उन्होने शुरू से अन्त तक अपनाये रखा। यद्यपि वरदान में यह आदर्श

---

1 ' वरदान ' परि0 1,पृ0 6 ।

2 ' स्वामी विवेकानन्द – ले0 प्रेमचंद, पृष्ठ 25 ।

अधिक स्पष्ट रूप से नही दिखाई देता लेकिन विरजन के पत्र इस दिशा में एक संकेत अवश्य देते है। यदि इस निम्न श्रेणी को व्यापक अर्थ में देखें–अर्थात वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुसार चतुर्थ श्रेणी के अन्तर्गत आने वाले शूद्र वर्ग को ही न लेकर निम्न वर्ग के अन्तर्गत मजदूर किसान या अन्य गरीब वर्ग को लेकर देखें तो प्रेमचंद साहित्य के पाठक के सामने प्रेमचंद जी का यह आदर्श बिलकुल स्पष्ट रूप से नजर आने लगता है। यद्यपि यह सत्य है कि आगे चलकर के महात्मा गांधी ने जान रस्किन के ' अन टू दि लास्ट ' से प्रेरणा प्राप्त करके निम्न वर्ग के उत्थान के लिए भगीरथ प्रयत्न किए और प्रेमचंद जी जब गांधी जी के वैचारिक सम्पर्क में आए तो गांधीवादी विचार धारा को अपेक्षा कृत अधिक युगानुरूप पाकर उस मार्ग को स्वीकृत कर अपने लक्ष्य की ओर बढ़े। आगे पुनः साम्यवादी प्रभाव भी पड़ा किन्तु मूलरूप से इसकी प्रेरणा उन्हे स्वामी विवेकानन्द जी से ही मिली थी, यह सत्य है।

थियोसोफिकल सोसाइटी :–

उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भिक काल से ही देश में उठने वाली सामाजिक सुधार की लहरो ने केवल भारतीय जन–मानस को ही नहीं प्रभावित किया अपितु उदार प्रवृत्ति रखने वाले विदेशी, वे भी भारतीय समाज को एक नया रूप देना चाहते थे। अतः " सन् 1875 में एक रूसी महिला मादाम बलावा ट्रस्की ने " थियोसोफिकल सोसाइटी " की स्थापना की भारत में जिसका प्रभाव श्रीमती एनीबेसेन्ट के नेतृत्व में खूब फूला और फला ।"[1] देश के दूसरी सुधारवादी संस्थाओ की भांति इस संस्था ने भी भारतीय संस्कृति तथा राष्ट्रवाद की आत्मा को जगाया। हिन्दू आदर्शों के प्रति आस्था और प्राचीन गौरव के प्रति आकर्षण इसकी मुख्य विशेषता थी। स्वामी विवेकानन्द ने इसे अमीरी की अध्यात्म वाद को भारतीय कलम की संज्ञा दी थी। विश्व–बन्धुत्व की स्थापना इस संस्था का मुख्य उद्देश्य था इस सोसायटी ने किसी को उसका धर्म छोड़ने पर बाध्य किया। इस संस्था के द्वार सभी धर्मों को मानने वालों के लिए समान रूप से खुले थे। इस संस्था ने हीनता बोध से पीड़ित भारतीय समाज को बड़ी राहत पहुंचाई। श्रीमती एनी बेसेन्ट ने भारतीयों को उनके आत्म गौरव का स्मरण दिलाते हुए कहा था–" There were four great Auto Cracies at the beginning of the war. The Tsar Rassia, the Austrain Emperor over Austria, the Kaiser over Germany- the British Emperor over India. Two have fallan

---

[1] पी० रिपअर, मार्डन इंडिया, पृ0288.

one is falling is the fourth to re main to be the amazement of and menaceto a world set free." [1]

इस प्रकार एक ओर जहां इस सोसायटी ने भारतीयों में व्याप्त हीनता की भावना का अन्त करने में सहायक भूमिका निभाई वहीं दूसरी ओर हिन्दुओं के हृदय में अपनी परम्परा तथा संस्कृति के प्रति फिर से आस्था जगाई।

प्रेमचन्द सन् 1914 में हमीरपुर से बस्ती और सन् 1915 में बस्ती से गोरखपुर गए। सन 1916 में उनका परिचय श्री रघुपति सहाय ' फिराक ' से गोरखपुर में ही हुआ। यह परिचय धीरे–धीरे घनिष्ठता में बदलता गया और दोनो एक दूसरे के घर भी आने जाने लगे गए। फिराक साहब के बड़े भाई श्री गनपत सहाय से भी इन्ही दिनों उनका परिचय हुआ। संभवतः श्री गनपत सहाय जी का थियोसोफिकल विचार धारा में विश्वास था। यदि नही भी था तो भी उन्हे थियोसोफी के प्रति पर्याप्त रूचि थी और इससे सम्बंधित उनके पास अनेक पुस्तकें थी जिन्हे प्रेमचन्द जी उनसे ले आकर पढ़ा करते थे। [2] प्रेमचन्द जी द्वारा पढ़ी जा रही ये थियोसोफी की पुस्तकें उनकी मानसिक वृत्ति पर अपना प्रभाव डाल रही थी। सन 1917–18 में लिखी एवं प्रकाशित ' सेवासदन ' उपन्यास के समाज सुधाकर पात्र प्रो0 रमेशदत्त जो स्वयं एक थियोसोफिस्ट है, कहते है–' थियोसोफिस्ट होना कोई गाली नही है। मै थियोसोफिस्ट हूँ और इसे सारा शहर जानता है। हमारे ही समाज के उद्योग का है कि आज अमेरिका, जर्मनी और रूस इत्यादि देशो में आपको राम और कृष्ण के भक्त और गीता, उपनिषद आदि सद्ग्रन्थों के प्रेमी दिखाई देने लगे है। हमारे समाज में हिन्दू जाति का गौरव बढ़ा दिया है, उसके महत्व को प्रसारित कर दिया है और उसे उच्चासन पर बिठा दिया जिसे वह अपनी अकर्मण्यता के कारण कई शताब्दियो से छोड़ बैठी थी। यह हमारी परम कृतघ्नताः होगी अगर हम उन लोगों का यश न स्वीकार करें, जिन्होनें अपने दीपक से हमारे अंधकार को दूर करके हमें वह रत्न दिखा दिए है जिन्हें देखने की हममें सामर्थ्य न थी। वह दीपक ब्लावेटस्की का हो, या ओलकाट का या किसी अन्य पुरूष का, हमें इससे कोई प्रयोजन नही। जिसने हमारा

---

[1] **Progs: Govt. Home Deptt. Poll Cafi. F. Nos. (B) 150-159-of Feb. 1919**

[2] ' फिराक के बड़े भाई गनपत सहाय से जो तपेदिक के शिकार हो जल्दी ही दुनिया से उठ गए, ज्यादा राह–रस्म थी। मुंशी जी गाहे– ब–गाहे उनके पास से मदाम ब्लावटस्की और कर्नल ओलकाट की लिखी हुई थियोसोफी की किताबें लाकर पढ़ते थे।' –वही, परि0 11, पृ0 175।

अंधकार मिटाया हो, उसका अनुग्रहीत होना हमारा कर्तव्य है। अगर आप इसे गुलामी कहते है तो यह आपका अन्याय है :[1]

'थियोसोफी' कोई स्वतंत्र धर्म नही है, न तो किसी धर्म विशेष का सम्प्रदाय ही है। इसका आधार धार्मिक सहिष्णुता है। कोई भी व्यक्ति, वह चाहे जिस भी धर्म या जाति का हो, पूर्ण रूप से अपना धर्मपालन करता हुआ थियोसोफिकल सोसायटी का सदस्य बन सकता है। हिन्दू, मुसलमान , ईसाई, यहूदी, पारसी आदि में से किसी भी धर्म के मानने वाले के लिए ' सोसायटी में प्रवेश के पूर्व या पश्चात् यह शर्त नही होती कि वह अपना धर्म छोड़कर किसी अन्य धर्म का पालन या अनुसरण करे। प्रेमचन्द को हिन्दू समाज की सबसे अधिक रूचिकर लगने वाली बात थी, एक ही परिवार में भिन्न–'भिन्न मतों को मानते हुंए भी परस्पर प्रेम एवँ सहयोग के साथ रहना। रंगभूमि में हिन्दू–धर्म की इसी विशेषता को बताते हुए ईसाई कन्या सोफिया कहती है–' मैने देखे है हिन्दू घरानों में भिन्न–भिन्न मतों के प्राणी कितने प्रेम से रहते है। बाप सनातन धर्मावलम्बी है, तो बेटा आर्यसमाजी। पति बह्ममसमाज में है, तो स्त्री पाषाण–पूजको में। सब अपने–अपने धर्म का पालन करते है। कोई किसी से नही बोलता। हमारे यहां (सोफी की जाति ईसाइयो के यहां) आत्मा कुचली जाती है। फिर भी यह दावा है कि हमारी शिक्षा और सभ्यता विचार स्वातंत्रय की पोषक है।'[2] सोफ़िया एनीबेसेंन्ट की ही भांति एक विश्व धर्म (Cosmopolitanism) में विश्वास रखती है।'[3] इसी लिए एक ओर जहां वह अपनी कट्टर ईसायिन माता का विरोध करती है, वहीं दूसरी और ईसामसीह तथा हिन्दू–धर्म की अच्छाइयों की सराहना भी करती है और उसकी अच्छाइयों को ग्रहण करने का प्रयास भी करती है। इन्हीं गुणो को अपनाने के कारण, उसमें सेवा, त्याग, दया के भाव है, उसके ह्रदय में प्रेम तथा स्नेह के भाव विद्यमान है। वह आदर्शवादी पात्र है, यर्थाथवाद के प्रति उसमें कोई रूचि नही दिखाई देती, यद्यपि एक बार वह परिस्थितियों के वशीभूत हो वीरपाल सिंह के साथ रहने लगती है और क्रान्तिकारी दल की सदस्या बन जाती है किन्तु अवसर पाते ही वह उस क्रान्तिकारी रूप को छोड़कर पुनः आदर्शवादिता का आश्रय ले लेती है। सोफिया किसी धार्मिक सम्प्रदाय विशेष

---

[1]. सेवा सदन, परि0 40 पृष्ठ 171–72

[2] रंगभूमि, परि0 3, पृष्ठ 38 ।

[3] प्रेमचन्द को सोफिया के चरित्र की प्रेरणा एनी बेसेन्ट से ही मिली थी। ऐसा उन्होने स्वयं स्वीकार किया है। इस सन्दर्भ में ' कमल का सिपाही: प्रेमचन्द' पृष्ठ 342 एवं 387 दृष्टव्य है।

से बंधकर नही चलती । वह तो धर्म के मूल तत्व सत्य, अंहिसा, प्रेम, सेवा और त्याग को ग्रहण कर अपने मार्ग पर अग्रसर होती है, इसके लिए उसे जिस किसी भी संम्प्रदाय या धर्म में उपयोगी तत्व दिखाई पड़ते है उसे वह ग्रहण कर लेती है। इस धार्मिक जत्थेबन्दी का विरोध करते हुए प्रेमचंद जी लिखते है।–' धर्म और ज्ञान, दोनो एक है और इस दृष्टि से संसार में केवल एक धर्म है। हिन्दू–मुसलमान,, ईसाई, यहूदी, बौद्ध ये धर्म नही है, भिन्न–भिन्न स्वार्थों के दल है, जिनसे हानि के सिवा आज तक किसी को लाभ नही हुआ। '[1] वस्तुतः ये धार्मिक संप्रदाय स्वयं मे न तो अहितकर है न हानिप्रद। किसी भी धर्म के मूल धार्मिक ग्रंथो में कही भी दूसरे सम्प्रदायों के प्रति द्वेष–भाव या वैर–भाव देखने को नही मिलता है। किन्तु इन धर्मो के अनुयायियों ने अपने धर्मों में निहित सत्कर्म एवं सद्धर्म की बात को विस्मृत कर आड़म्बरों को अपना लिया जिससे समाज में टकराव की स्थिति उत्पन्न हो गई जिसमें समाज की उन्नति को ही अवरूद्ध नही किया बल्कि उसे पतन की ओर ले जाने लगा। यदि राग'द्वेष से परे हटकर देखा जाए तो सभी धर्म के प्रवर्तको ने सत्कर्म, सद्विचार एवं सद्धर्म की शिक्षा देते हुए मानव–जाति के उत्थान की बात कही है।

प्रेमचंद का मानना था कि सभी धर्मों को एकरूपता की दृष्टि से देखा जाए और आदर–सत्कार की भावना रखी जाए। धर्मान्धता एवं धार्मिक संकीर्णता का विरोध करते हुए कायाकल्प का आदर्श पात्र चक्रधर कहता है–" मै नीति ही को धर्म समझता हूँ। और सभी संप्रदायो की नीति एक सी है। अगर–अन्तर है तो बहुत थोड़ा। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्व सभी सत्कर्म और सद्विचार की शिक्षा देते है। हमें कृष्ण, राम, ईसा, मुहम्मद, बुद्ध सभी महात्माओ का समान आदर करना चाहिये। ये मानव जाति के निर्माता है। जो इनमें से किसी का अनादर करता है, या उसकी तुलना करने बैठता है, वह अपनी मूर्खता का परिचय देता है। बुरे हिन्दू से अच्छा मुसलमान उतना ही अच्छा है, जितना बुरे मुसलमान से अच्छा हिन्दू। देखना यह चाहिए कि वह कैसा आदमी है, न कि यह कि वह किस धर्म का आदमी है। संसार का भावी धर्म सत्य, न्याय और प्रेम के आधार पर बनेगा। हमें अगर संसार में जीवित रहना है तो अपने ह्रदय में इन्हीं भावों का संचार करना पड़ेगा।" [2] आगे चलकर गाँधी जी ने भी साम्प्रदायिकता को दूर

---

[1] रंग भूमि, परि0 34,पृष्ठ 409 ।

[2] ' कायाकल्प ' परि021, पृ0 165 ।

करने का प्रयास किया और इसे अपने कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण अंग बनाया। गांधी जी ने अपने ढंग से इस समस्या का समाधान भी प्रस्तुत किया। धर्म सहिष्णुता तथा साम्प्रदायिकता के घोर विरोधी है। प्रेमचंद इस विषय में गांधी जी से बहुत अधिक प्रभावित दिखाई देते है और साम्प्रदायिकता के प्रश्न पर अपने उपन्यासो में गांधीवादी दृष्टिकोण की पैरवी करते नज़र आते है।

वर्ण – व्यवस्था –

प्राचीन काल से हिन्दू समाज वर्ण –व्यवस्था के अन्तर्गत ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णो में विभक्त था। वर्ण–व्यवस्था के–उद्भव में श्रम–विभाजन की ही सामाजिक उपयोगिता रही है और इसी लिए उसका अस्तित्व शताब्दियो तक बना रहा। परन्तु कालान्तर में विजित द्रविड़ जातियों को भी पंचम–वर्ण के रूप में स्वीकार कर अछूत बना दिया गया, जिनसे आर्थिक संगठन में तो लाभ उठाया गया परन्तु उन्हें उन सामाजिक अधिकारों से वंचित रखा गया, मनुष्य होने के नाते जिसके वे अधिकारी थे। खान– पान, शादी–विवाह, पेशे तथा जीवन दृष्टिकोण की विभिन्नता के कारण प्रत्येक वर्ण अनेक उपजातियों में विभाजित होता गया। गुजरते समय के साथ–साथ वर्ण–व्यवस्था में जटिलता आती गई अब उसका आधार कर्म के स्थान पर जन्म को मान लिया गया जिसके कारण कोई भी व्यक्ति दूसरे वर्ण अथवा जाति में प्रवेश नही कर सकता था। आधुनिक औद्योगिक आर्थिक–व्यवस्था ने नये पेशो को जन्म दिया तथा यातायात की सुविधा के कारण व्यक्ति का जीविकोपार्जन के लिए निर्धारित पेशों पर निर्भर रहना कठ़िन हो गया। नगरों के होटल तथा मिल, कारखानो में एक साथ बैठ़ने के कारण भेद, खान–पान आदि के नियम निभाने कठिन हो गये और जाति –व्यवस्था पर आघात लगता प्रारम्भ हुआ। बीसवीं शताब्दी तक आते–आते समाज सुधार आन्दोलनो तथा स्वाधीनता आन्दोलन के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाली चेतना और जागृति के कारण जाति–व्यवस्था छिन्न–भिन्न होने लगी लेकिन इसी युग में एक विशेष प्रवृत्ति ने जन्म लिया, वह यह कि उपजातियां तो नष्ट होने लगी किन्तु उनके स्थान पर बड़ी जातियां संगठित होनें लगी, जिससे जातीय कटुता अधिक बढ़ गई। यद्यपि वर्ण–व्यवस्था समाजिक संस्था है, किन्तु भारत वर्ष में धार्मिक भावनाओं के प्राचुर्य ने इसे धार्मिक रंग में रंग दिया । शताब्दियों की जड़ता एवं परतन्त्रता के अन्धकार ने धर्म को पथभ्रष्ट कर दिया। जिसमें धर्म का यथार्थ पक्ष गौण होता गया और उसके स्थान पर सामाजिक जीवन में रूढ़ियो, रीतियो, प्रथाओं आदि का आडम्बर पूर्ण पालन

आवश्यक समझा गया। फलतः' समाज तथा धर्म दोनो में विकृतियां आती गयी और जिनका आधार रूढ़ियां, प्रथाएं तथा रीतियाँ बनती गयीं।

प्रेमचंद वर्ण व्यवस्था के कारण समाज में व्याप्त विषमता को सामाजिक विकास में सबसे बड़ी बाधा समझते थे। प्रेमचंद परम्पराओं के अंधानुकरण को उचित नही समझते थे। इस संबंध में उनका दृष्टिकोण क्रान्तिकारी था अतः उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से वर्तमान समय में प्रचलित वर्ण–व्यवस्था के हानिकारक स्वरूप को चित्रित करते हुए इस बात की ओर संकेत किया है कि वर्ण व्यवस्था का प्रचलित स्वरूप किस प्रकार मानवता के लिए घातक तथा व्यक्ति और समाज के उन्नति के मार्ग में बाधक बनता है।

वर्ण–व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मणो को धार्मिक विशेषाधिकार प्राप्त थे जिसके कारण उन्हें समाज में सर्वाधिक तथा अति विशिष्ट स्थान प्राप्त था जिसके चलते समाज में पंड़े –पुरोहितों के एक ऐसे वर्ग का जन्म हुआ जिसने अपने सुख–सुविधाओ के लिए धार्मिक रूढ़ियो तथा अंधविश्वासो का आश्रय लेकर भोली भाली जनता का निर्मम शोषण करते हुए समाज को पतन के मार्ग पर अग्रसर किया।

अस्पृश्यता –

समाज को सुचारू रूप से चलाने हेतु तथा श्रम विभाजन के लिए आर्य ऋषियों ने जिस वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था की थी, कालान्तर में उसका रूप विकृत हो गया तथा वर्ण का निश्चय कर्म के अनुसार न होकर जन्म के अनुसार होने लगा। जिसने विभिन्न वर्णो में ऊंच–नीच की भावना को जन्म दिया। जिसके कारण एक वर्ण, दूसर–वर्ण के साथ वैवाहिक सम्बंध तो स्थापित करता ही न था। खान–पान में भी विभिन्न–वर्ण छुआ–छूत मानते थे। वैवाहिक सम्बंध के आधार पर–हिन्दू समाज अनेक जातियों एवं उपजातियों में बंट गया था। हिन्दू–समाज का इस प्रकार अनेक जातियों मे बंट जाना आगे चल कर राष्ट्र की एकता और अखण्डता के हानिकारक सिद्ध हुआ। परन्तु इसका सबसे विनाशकारक परिणाम कदाचित अस्पृश्यता ही है। समाज की नीच एवं घृणित सेवाएं करने वाले वर्ग को अछूत समझा जाने लगा उन्हे अस्पृश्य की संज्ञा देकर समाज से पूर्ण तथा बहिष्कृत कर दिया गया और उन्हे पंचम वर्ण के अन्तर्गत रखा गया। अछूतो से इतर हिन्दू सवर्ण कहलाये।

" भारतीय इतिहास इस बात का साक्षी है कि जात –पात की प्रथा क्षय–रोग अर्थात अवनति अथवा हास का कारण है। जिन लोगों को आज अछूत कहा जाता है, वे तो हिन्दू–समाज रूपी शरीर का वह अन्तिम अंग है, जहां अछूतपन का कोढ़ नासूर के रूप में हमारे सामने आया है। इस देश के छः करोड़ लोगों को अछूत बना कर उन्हे सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक अधिकारों से वंचित कर दिया। जिसके कारण वे बेचारे पहले धर्म परिवर्तन के और उसके बाद स्वतंत्र– संगठन बनाकर विद्रोह करने के लिए बाध्य हुए। उनकी दयनीय स्थिति से ईसाई पादरियो, इस्लाम धर्म के प्रचारको तथा ब्रिटिश साम्राज्य ने पूरा–पूरा लाभ उठाने का प्रयास किया। उन्हे अपने अपने प्रयास में आंशिक सफलता भी प्राप्त हुई। " [1]

प्रेमचंद –युग में अछूतो की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। उनके जीवन पर अनेक प्रकार के सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक प्रतिबन्ध लगे हुए थे। प्रेमचंद के हृदय में दलित एवं पीड़ित मानवता के लिए सहानुभूति तथा करूणा का अथाह भंडार विद्यमान था। प्रेमचंद ने अछूतवर्ग का चित्रण करते हुए उन परिस्थितियों के सुधार पर बल दिया जिनमें यह वर्ग जीवन व्यतीत करता है।

प्रेमचंद ने अछूत समस्या के एक दूसरे पहलू पर भी, अपनी दृष्टि डालते हुए हरिजनों को समाज में समान अवसर देने का समर्थन किया है। कर्मभूमि में हरिजनों के मंदिर प्रवेश का प्रश्न उठाकर वे इस बात की मांग करते है कि अछूतों अथवा हरिजनो को प्रत्येक क्षेत्र में समान अधिकार और समान अवसर मिलना चाहिए । कर्मभूमि में इस आन्दोलन का नेतृत्व डा0 शान्ति कुमार और सुखदा करते है और हरिजन को मंदिर में प्रवेश की अनुमति मिल ही जाती है और यह आन्दोलन सफल हो जाता है। प्रेमचंद धर्म का अर्थ कर्तव्य से लेते है और जो अपने कर्तव्य का पालन ईमानदारी के साथ करता है, उनकी दृष्टि में वही सबसे बड़ा धार्मिक है। वही पूज्य और ईश्वर के निकट है। वह जन्म के अनुसार किसी को ऊंच–नीच नही मानते। वह अपने आदर्श पात्र अमरकान्त के माध्यम से इसकी अभिव्यक्ति करवाते है–" मै जात पात नही मानता माता जी। जो सच्चा है वह चमार भी हो तो आदर के योग्य है, जो दगाबाज, झूंठा , लम्पट हो, वह ब्राह्मण भी हो तो आदर के योग्य नही । '[2] इसी बात को गोदान का

---

[1] प्रेमचंद युग का हिन्दी उपन्यास डा0 मोहन लाल रत्नाकर पृ0 226

[2] ' कर्मभूमि ' भाग–2, परि0 1, पृष्ठ 142 ।

ब्राहमण पात्र मातादीन आत्मा के शुद्ध हो जाने पर पवित्र भाव से कहता है–" मै ब्राह्मन नही चमार ही रहना चाहता हूँ। जो अपना धरम से मुंह मोड़े वही चमार है।" [1]

प्रेमचंद मानवता वादी दृष्टिकोंण रखते थे उनके जहन में साम्प्रदायिकता का विरोध करके सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होने आर्यसमाज से प्रभावित होने के बावजूद भी उससे पृथक होकर अपनी अलग दृष्टि रखी–" साम्प्रदायिकता एक पाप है जिसका कोई प्रायश्चित नही । " [2] प्रेमचंद का मानना है कि हिन्दू–मुसलमान दोनो एक राष्ट्र की सन्तान है, दोनो के हित और अहित एक है, दोनो के कर्तव्य एक है दोनों का उत्थान और पतन एक साथ होगा और नष्ट भी एक साथ ही होंगे। प्रेमचंद के अनुसार–" कर्तव्य क्षेत्र में हिंन्दू और मुसलमान का भेद नही दोनो एक ही नाव में बैठे हुए है, डूबेगे तो दोनो डूबेगे, बचेगे तो दोनो बचेगे।" [3]

प्रेमचंद ने धर्म के बाहय रूप खंडन किया है। इसकी प्रेरणा उन्हे स्वामी दयानन्द सरस्वती से मिली । इन्ही से प्रेरित होकर के उन्होने आर्यसमाजी तरीके पर मूर्ति–पूजा दान–व्रत आदि का विरोध किया। उनका विश्वास था कि –" जो भी आज धर्म के नाम पर हो रहा है सब अन्ध–विश्वास है । यह सब मूर्खो के बहलाने के तरीके है। " [4] किन्तु इसका अभिप्राय यह नही कि प्रेमचंद जी धर्म और उसकी शक्ति में विश्वास नही रखते हो धर्म के बाह्याड़म्बर का विरोध करते हुए भी धर्म की शक्ति में आस्था रखते थे। यही कारण है कि उनके समग्र साहित्य में कोई ऐसा पात्र नहीं देखने को मिलता जो नास्तिक हो। प्रेमचंद का ईश्वर निराकार (अदृश्य) होते हुए भी दयालू है वह मनुष्यों पर प्रत्येक स्थिति में दया करता है। " कर्मभूमि में एक स्थान पर वे लिखते है–" ईश्वर बड़ा दयालु है भैया। मां के पेट में बच्चे को भोजन पहुंचाता है। यह दुनिया ही उसकी रहीमी

---

[1] ' गोदान परि0 34, पृष्ठ–518, ग्यारहवां संस्करण।

[2] श्री बनारसीदास को 17–10–1918 के पत्र में चिटठी– पत्री भाग –2 पृ0 71 पत्र संख्या 581 ।

[3] चाहे कोई भी हो। मरते है तो तुम्हारे ही भाई बन्द न । तुम्ही में से निकल कर वे मुसलमान हुए है, और यह सब तुम्हारी मूर्खता का तनाव है। फिर मै तो कहता हूँ, गाय के पीछे आदमी की कुरबानी होना अच्छा है ? और वह गाय तो तुम्हारी और मुसलमानो दोनो की है। वह भी इसी दिन जगह पैदा होते है और मरते है। जिस–' जिस चीज से उनका हानि लाभ होगा। उसी से तुम्हारा भी होगा अगर तुम ठंडे दिल से समझा दो तो दूसरी बात है। अगर तुमसे समझते न बने तो उसे छोड़ दो, प्रेमचन्द घर में, परि0 50, पृष्ठ 114–15

[4] प्रेमचंद : घर में परि0 44 पृ0 91 ।

का आईना है। जिधर आंखे उठाओ उसकी रहीमी के जलवे । इतने खूनी डाकू यहां पड़े हुए है, उनके लिए भी आराम का समान कर दिया। मौका देता है, बाबू बार–बार मौका देता है कि अब भी संभल जाएं। उनका कौन गुस्सा सहेगा भैया जिस दिन उसे गुस्सा आवेगा, यह दुनिया जहुन्नुम को चली जाएगी। हमारे तुम्हारे ऊपर वह क्या गुस्सा करेगा। हम चींटी को पैरों तले पड़ते देखकर किनारे से निकल जाते है। उसे कुचलते आता है। जिस अल्लाह ने हमको बनाया जो हमको पालता है, वह हमारे ऊपर कभी गुस्सा कर सकता है ? कभी नही ।" [1] जल तथा वायु, भूमि और प्रकाश ये सब मनुष्य को दिए गए ईश्वरीय उपहार है। जिन पर किसी का कोई व्यक्तिगत अधिकार नही है। क्योंकि " भूमि या तो ईश्वर की है जिसने इसकी सृष्टि की है या किसान की जो ईश्वरीय इच्छा के अनुसार इसका उपयोग करता है। " प्रेमचंद के अनुसार–" यही प्राकृतिक नियम है। किसी को यह अधिकार नही है कि वह दूसरों की कमाई को अपनी जीवन–वृत्ति का आधार बनाये। ———————— भूमि उसकी है जो उसको जोते। " [2] किसी भी मनुष्य को यह अधिकार प्राप्त नही कि वह अपनी शक्ति के बल पर ईश्वर द्वारा प्रदान की गई प्राकृतिक वस्तुओ से दूसरो को वंचित कर दे।

प्रेमचंद जी एक ईश्वर के सिद्धान्त को मानते है। उनकी दृष्टि में ईश्वर अल्ला, खुदा–भगवान ,राम –रहीम सब एक है और वही ईश्वर –" सारे जहान का खालिक और मालिक है। " [3] इसी ईश्वर की शक्ति पर प्रेमचंद का पूरा –पूरा भरोसा है। वही इस संसार को चलाता है। विश्व का नियन्ता है।

ईश्वर की दृष्टि में सभी मनुष्य एक समान है शायद इसी कारण उसने मानव संरचना में कोई अन्तर नही किया तो फिर किसी मनुष्य को ऊंच या नीच बनाने वाला मनुष्य कौन होता है। हिन्दू समाज में धर्म का आश्रय लेकर अपने ही लाखो करोड़ो बन्धुओं को नीच और अछूत कहकर उन्हें समाज से बहिष्कृत करके पशु के समान जीवन व्यतीत करने को विवश कर दिया। सवर्णों तथा अवर्णों के मध्य रोटी–बेटी का सम्बन्ध सर्वथा वर्जित था। अछूतों के साथ खाना–खाने या उनके सामने वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने की तो उच्च–जाति के हिन्दू तो

---

[1] ' कर्मभूमि' प्रेमचंद, भाग–5, परि0 6, पृष्ठ 353,

[2] प्रेमाश्रम–प्रेमचंद पृ0 163–164

[3] प्रेमाश्रम प्रेमचंद पृ0 163–164 ।

कल्पना ही नहीं कर सकते थे। प्रेमचंद हिन्दू–समाज की इस भेद–भाव पूर्ण नीति के कट्टर विरोधी थे। अपने उपन्यासों में उन्होंनें अछूतों की समस्या के विविध पक्षों पर गम्भीरता से विचार किया। अछूत वर्ग की नारी के प्रति उच्च–जाति के पुरूष के दृष्टिकोण का परिचय गोदान में मातादीन और सिलिया चमारिन से उसका अवैध – प्रेम– सम्बन्ध है। सिलिया के मातादीन से पुत्र भी होता है।

इतना सब होने पर भी मातादीन सिलिया से अपने खेतों में काम करवाता है और उसे काम करने की मशीन से अधिक कुछ नही समझता । उसके खेतों में दिन–रात काम करने के बाद भी सिलिया को इतना भी अधिकार नही है कि उसके अनाज में से दो मुट्ठी अन्न भी ले सके। सिलिया के पूछने पर मातादीन कहता है–" नही तुझे कोई अख्तियार नही है। काम करती है, खाती है जो तू चाहे किरवा भी लुटा भी, तो यह न होगा। "[1] सिलिया के प्रति मातादीन के दुर्व्यवहार से क्षुब्ध होकर चमार, मातादीन के मुंह में हड्डी डालकर उसे बंधराम कर देते है। सिलिया के माता–पिता पंडित दातादीन के ब्रह्म तेज से भी भयभीत नही होते सिलिया की मां पंडित दातादीन को चुनौती देते हुए कहती है–" वाह–वाह पण्डित खूब निभाव करते हो। तुम्हारी लड़की किसी चमार के साथ निकल गई होती और तुम इस तरह की बाते करते, तो देखती। हम चमार है इसलिए हमारी कोई इज्जत ही नही । हम सिलिया को अकेले न ले जायेगे। उसके साथ मातादीन को भी ले जाएगे जिसने हमारी इज्ज़त बिगाड़ी है। " [2] इसी सन्दर्भ में उच्च –जातियों के नेम–धर्म की पोल खोलते हुए वह कहती है–" तुम बड़े नेमी –धरमी हो। उसके साथ सोओगे, लेकिन उसके हाथ का पानी न पिओगे। " [3]

अछूतों के जीवन की परिस्थितियों एवं उनके प्रति उच्च–जातियों के अमानुषिक व्यवहार का चित्रण करके प्रेमचंद ने स्पष्ट कर दिया है कि समाज में प्रचलित धर्म एवं धार्मिक मान्यताओं के कारण किस प्रकार एक वर्ग अत्यन्त अमानवीय दशा में जीवन जीने को बाध्य कर दिया जाता है। धर्म के नाम पर प्रचलित ऊंच–नीच के भेदभाव का प्रेमचन्द ने हमेशा ही विरोध किया। अतः

---

[1] गोदान प्रेमचंद पृष्ठ 253

[2] गोदान प्रेमचंद पृष्ठ 253

[3] गोदान प्रेमचंद पृष्ठ 253

प्रेमचन्द युग में गांधी जी ने अछूतों के उद्धार के लिए जो आन्दोलन चलाया, प्रेमचन्द को उसके साथ पूरी सहानुभूति थी। यद्यपि गांधी जी से पूर्व स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी अस्पृशयता को अवैदिक बतला कर इसका विरोध किया था तथापि इस दिशा में ठोस और सक्रिय प्रयत्न गांधी जी ने ही किया। गांधी जी के प्रेरणा से अछूतों के लिए स्थान–स्थान पर मन्दिरों के द्वार खुल गए थे। तथा कथित धर्माचार्यों की दृष्टि में गांधी जी का यह कार्य सर्वथा धर्म के विरूद्व था। इस लिए रूढ़िवादी सेठों और रईसों ने गांधी जी के इस कार्य की तीव्र अलोचना की। फलतः अछूतों के मंदिर प्रवेश को लेकर सुधारकों एवं रूढ़िवादी दल के मध्य स्थान–स्थान पर संघर्ष हुआ।

समाज में नारी की स्थिति :-

वैदिक युग में नारी की स्थिति सुदृढ़ थी। उसकी प्रतिष्ठा समाज में पुरूषों के समकक्ष थी। पुत्रों की भांति उन्हें भी उपनयन संस्कार का अधिकार प्राप्त था। वे उच्च शिक्षा प्राप्त करके विदुषी, दार्शनिक, चिकित्सिका, आचार्या आदि के सम्मानित पदो पर आसीन रहती थी। इसके साथ ही साथ वे गायन नृत्य , वादन तथा अन्य विविध–कलाओं में पारंगत होती थी और स्वाधीनता पूर्वक जीवन–व्यतीत करती थी। मैत्रेयी, गार्गी, लोपा मुद्रा, अपाला ,इन्द्रानी और घोषा इत्यादि के नाम उदाहरण स्वरूप दिए जा सकते है। साधारण परिवार की नारियां भी अपनी हस्त–कलाओं के द्वारा विपरीत परिस्थितियों में भी भली प्रकार अपना जीवन यापन करती थी। यद्यपि उच्च –शिक्षा केवल धनी परिवारो तक ही सीमित थी, तथापि साधारण परिवारों में भी बालिकाओ को वेद मंत्र और प्रार्थनाएं सीखाए जाते थे। क्षत्रिय परिवारों में बालिकाओं में सैन्य शिक्षा का प्रचलन था। विवाह के क्षेत्र में भी उन्हे स्वतंत्रता प्राप्त थी। स्वयंवर के द्वारा उन्हें अपने पति को वरण करने का अधिकार प्राप्त था। " इस युग की एक बात और उल्लेखनीय है। वह है, नारी और पुरूष का समानाधिकार। दोनों एक दूसरे के मित्र थे, उनके अधिकारों और कर्तव्यों में विशेष वैषम्य नहीं था। दोनों संयुक्त रूप से सोमरस निकालते थे, उसे शुद्व करते थे और पीते थे एवं यज्ञ, दान तथा देवताओं की स्तुति करते थे। वैदिक शब्द ' दम्पत्ति ' का अर्थ है, ' घर का संयुक्त अधिकारी अथवा प्रभु। ' इस प्रकार घर पर पति और पत्नी दोनो का समान अधिकार था। पति और पत्नी को अभिन्न, एक दूसरे का अर्द्धांग पूरक और एक शरीर के दो अंग माना जाता था। अतः दोनो के सहयोग के बिना कोई भी धार्मिक क्रिया पूर्ण नही मानी जाती थी।"[1]

---

[1] प्रेमचन्द का नारी–चित्रण–गीतालाल पृष्ठ 06

परन्तु जैसे–जैसे समय बीतता गया भारतीय नारी का सम्मान कम से कम होता गया और एक समय ऐसा आया कि उसकी समतामय स्थिति का लोप होता गया। और वह रानी से दासी बन गयी। इसके मूल्य में धार्मिक कर्मकाण्डों में पवित्रता नियमों और बिधियों की जटि़लता तथा वेद, मंत्रों के शुद्व उच्चारण की अनिवार्यता आदि कारण विद्यमान थे। " पुरूष शारीरिक शक्ति और स्वामित्व की भावना तथा नारी की शारीरिक निर्बलता अतः संरक्षण की आवश्यकता, आर्थिक पराधीनता और प्रेम में समर्पण भावना ने इसमें योग दिया । ", तथा " ईसा की तीसरी शती से हिन्दू–नारी के लिए पराधीनता, निन्दा, अशिक्षा, पर्दा, बाल–विवाह, बहु–विवाह, विधवा–विवाह–निषेध, सती–प्रथा,सतीत्व आदि के एकांगी आदर्श और नैतिकता के दोहरे मानदण्ड द्वारा जो चतुर्दिक घेरा डाला गया , वह विभिन्न सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक परिस्थितियों के कारण उत्तरोत्तर जटिल होता गया । "[1]

शनैः शनैः परिस्थितियां कुछ ऐसी विषम होती गयी कि पति के बिना नारी का कोई अस्तित्व ही नही रहा। यहां तक कि पति की मृत्यु के बाद समाज उसे जीवित रहने का अधिकार भी नही देता था परिणामतः उसे पति की चिंता के साथ जिन्दा जला दिया जाता था। समाज में यह अमानुषिक प्रथा सतीप्रथा के नाम से प्रचलित थी। संभवतः इस प्रथा के कई कारण थे। पुरूष–वर्ग को विधवाओं के चरित्र पर विश्वास न रहा होगा जिसके कारण वह सोचते रहे होगें कि विधवांए पति की मृत्यु के बाद पवित्रता पूर्वक जीवन नही व्यतीत कर सकती थी। इसके साथ ही साथ भारत में प्राचीन काल से चली आ रही संयुक्त परिवार प्रथा भी इसके लिए उत्तरदायी थी। पति का मृत्यु के बाद विधवाओं के लिए रोटी–कपड़े की व्यवस्था का दूसरा कोई विकल्प नही था। अतः वह परिवार के अन्य सदस्यो की आश्रिता बन जाती थी। परिवार वाले उसे एक ऐसा बोझ समझते थे जिसे वह शीघ्रातिशीघ्र अपने सिर से उतार फे़कना चाहते थे। कुछ स्त्रियां ऐसी थी जो पति की मृत्यु के बाद जीना ही नहीं चाहती थी स्वेच्छा से वह सती हो जाती थी।, उनकी बात और है लेकिन अधिकतर विधवाओ को उनकी इच्छा के विरूद्व काल के मुंह में धकेल दिया जाता था। "[2]

भारतीय नारी की दूसरी मुख्य समस्या ये थी कि पति के मृत्यु के बाद वह पुनर्विवाह नहीं कर सकती थी। यदि समाज इसकी अनुमति प्रदान कर देता तो शायद भारतीय स्त्रियों की स्थिति कुछ और होती " हिन्दू समाज की विचित्रता यह थी कि

---

[1] प्रेमचंद का नारी– चित्रण – गीता लाल पृष्ठ 9

[2] प्रेमचन्द का नारी–चित्रण – गीता लाल पृष्ठ 9

पुरूष चाहता तो सैकड़ो विवाह कर सकता था। बंगाल के कुलीन ब्राहमणो के घरो में बहु–विवाह करने का रोग जैसा था। एक–एक की पचास–पचास पत्नियॉ होती थी उन पचासों में कुछ ऐसी भी थी जिनके जीवन में सौभाग्य सूर्य कभी उदित नही हो पाता था। ''[1]

नारी की पराधीनता के प्रमुख कारणों में एक कारण यह भी था कि उसका अपनी पारिवारिक सम्पत्ति पर कोई अधिकार नही था। पारिणाम स्वरूप अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए दूसरों पर आश्रित रहना पड़ता था।

ये वह परिस्थितियाँ है जिन्होने भारतीय नारी के इर्द–गिर्द समस्याओं का ऐसा जाल बन गया जिससे मुक्ति पाना उसकी सामर्थ्य से बाहर था।

---

[1] **The custom of binding down the widow with the corpses of deceased husbands as also of using bamboos to press down those who wanted to excape from the torture, was codemned as being nothing short of delibrate women murder.**

Ram Mohan Roy and progressive Movements in India (Introduction I,XXXI)

2. B.P.I.R. Volume X, P. 22.

परिवार में नारी के विविध रूप और उनकी समस्यायें:-

प्रेमचंद का युग देश के विभिन्न क्षेत्रों में नवीन चेतना का युग था। अतः नारी समाज में भी नवजागरण का संचार हुआ। शताब्दियों से भारतीय नारी रूढ़ियों और कुरीतियों के जिन बेड़ियों में जकड़ी हुंई थी। उनसे उसे मुक्त कराने तथा नारी को समाज में समानता का अधिकार दिलाने की मांग पर बल दिया जाने लगा। नारी जीवन से संबंधित समस्याओ तथा बाल–विवाह, वृद्ध –विवाह, अनमेल–विवाह, बहु–विवाह, वेश्यावृत्ति तथा पर्दा–प्रथा आदि समस्याओं के विषय में सुधारकों और विचारकों ने विचार किया। एक सजग कलाकार होने के नाते प्रेमचंद का ध्यान इन समस्याओ की ओर आकृष्ट हुआ। समाज में स्त्री और पुरूष की स्थिति में विषमता तथा नारी के प्रति पक्षपात पूर्ण व्यवहार और उसके परिणाम स्वरूप उत्पन्न नारी जीवन की विसंगतियों का प्रेमचंद ने गहन अध्ययन किया था। नारी जीवन की समस्याओं के प्रति प्रेमचंद कितने गम्भीर थे तथा उन्हे वे कितना महत्व देते थे। इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि प्रेमचंद के प्रारम्भिक उपन्यासों ' प्रेमा ' , वरदान, 'सेवासदन', आदि के केन्द्र में नारी जीवन की समस्याएं ही विद्यमान है। नारी की दुर्दशा पर उन्होंने स्थान–स्थान पर अपने साहित्य में आंसू बहाए है। उन्होंने नारी पर होने वाले अत्याचार की उत्तरदायी सामाजिक रूढ़ियो और मान्यताओं पर अपने उपन्यास के माध्यम से कड़ाप्रहार किया, और शोषण करने वाले पुरूष–वर्ग की कड़ी अलोचना की।

पुरूष वर्ग के ह्रदय में नारी जाति के प्रति जो हीन भावना विद्यमान है उसकी कटु आलोचना करते हुए ' कायाकल्प ' में वह स्पष्ट शब्दों में कहते है–" हम क्यों ऐसा समझते है कि स्त्रियों का जन्म केवल भोग–विलास के लिए ही होता है ? क्या उनका ह्रदय ऊँचे और पवित्र भावों से शून्य होता है ? हमने उन्हें कामिनी, रमणी, सुन्दरी आदि विलास सूचक नाम दे देकर वास्तव में उन्हें वीरता, त्याग और उत्सर्ग से शून्य कर दिया है। " [1] प्रेमचंद ने स्त्री पुरूष को सदैव समानता की दृष्टि से देखा। उनका विचार है –" औरत से जो गलती हो जाती है, उसकी गुनहगार अकेली औरत ही नहीं है, पुरूष भी है बल्कि मैं तो कहता हूँ कि पुरूष औरत से दुगुना गुनहगार, नहीं तो ड्योढ़ा तो जरूर ही है। मै कहता हूँ कि फिर स्त्री को ही क्यों बाहर निकाला जाता है, पुरूष को क्यों नहीं निकाला

---

[1] कायाकल्प–प्रेमचंद पृष्ठ 259 ।
2 प्रेमचंद घर में पृष्ठ 331

जाता ? इसका क्यों नहीं बहिष्कार किया जाता ? इसमें सोलहों आना स्त्री को ही क्यों गुनहनगार ठहराया जाता है ? और पुरूष तो शुरू से ही स्त्रियों के साथ जासती करता आ रहा है। "[1] डा0 इन्द्रनाथ मदान के शब्दों में –" वे स्त्री–पुरूष की समानता पर विश्वास रखते थे। मुनष्य द्वारा नारी पर अत्याचार होते देखकर वे अत्यन्त क्रुद्ध हो उठते थे। "[2]

जीवन को सुचारू रूप से चलाने के लिए प्रेमचंद स्त्री–पुरूष दोनो को एक दूसरे का पूरक मानते हैं तथा एक –दूसरें के अभाव में स्त्री–पुरूष के जीवन को नारकीय मानते है। गोदान में भोला की स्थिति देखिए, वह होरी से कहता है–" मेरा तो घर उज़ड़ गया, यहॉ तो कोई एक लोटा पानी देने वाला भी नही । " 4 स्त्री की जीवन में इतनी बड़ी उपयोगिता होते हुए भी उसको समाज तथा परिवार में वह स्थान प्राप्त नहीं है जिसकी वह अधिकारिणी है। यह बात प्रेमचंद को जीवन भर कचोटती रही। यही कारण है कि प्रेमचंद नारी को शोषण सामाजिक अन्याय तथा असमानता के प्रति–विद्रोही बनाकर उसे पूर्ण रूप से स्वाधीन बनाना चाहते है। –" उनके नारी–पात्र अपनी स्वाधीनता के लिए कृत–संकल्प है। वे अपने को पुरूषों से कुछ कम स्वाधीन नही समझती । वे इतनी प्रबुद्ध है कि अपने को पराधीन बनाये जाने के सारे षड़यन्त्रों को भली–भांति समझती हैं। वे इतनी बुद्विमती हैं कि उन्होने एकांगी आदर्श की कुत्सित बेड़ियों को छिन्न–भिन्न कर अपने लिए अलग कार्यक्षेत्र का निमार्ण कर लिया है। अब वे ऐसे पुरूषों की दासी बनकर उनके इशारों पर नाचना नहीं चाहती, जो अन्यायी और बर्बर हैं। उन्हें मान्य है कि स्त्रियों की इच्छा के विरूद्ध जिस कार्य को पुरुष स्वयं करते है, यदि स्त्रियॉ भी उसी का अनुसरण करती है, तो पुरूष को उसमें हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नही है। " [3] प्रेमचंद नारी की स्वाधीनता और व्यक्तित्व के विकास के लिए शिक्षा को महत्व पूर्ण मानते हैं क्योंकि इसके अभाव में न तो उसे अपने अस्तित्व का बोध होगा न ही अपने अधिकारों की रक्षा कर पायेगी। गबन में वकील पण्डित इन्द्रभूषण से प्रश्न करवाते है–" आपके बोर्ड में लड़कियो की अनिवार्य शिक्षा का प्रस्ताव कब पास होगा ?

---

3 कायाकल्प–प्रेमचंद पृष्ठ 259 ।

[4] गोदान–प्रेमचंद पृष्ठ 12

[3] प्रेमचंद की नारी पात्र–डा0 भरत सिंह पृ0 62 !

जब तक स्त्रियों की शिक्षा का काफी प्रचार न होगा, हमारा कभी उद्धार नही होगा। "[1]

प्रेमचंद की अवधारणा है कि नारी की समस्त समस्याओं का समाधान तभी सम्भव है जब उसे पुरूषों के समान अधिकार प्राप्त होगे। अपने उपन्यास गबन में इस समस्या को बड़ी गम्भीरता के साथ प्रस्तुत किया है। पंडित इन्द्रभूषण की मृत्यु के पश्चात् जब उनके भतीजे मणिभूषण ने उनकी सारी सम्पत्ति अपने नाम करवा ली उनका बंगला बेच दिया और विधवा रत्ना के लिए जब दस–ग्यारह रूपये का मकान तय किया गया तो वह तड़प उठी–" मैं अपनी मर्यादा की रक्षा स्वयं कर सकती हूँ। तुम्हारी मदद की जरूरत नही। मेरी मर्जी के बगैर तुम यहां की कोई चीज नही बेच सकते । [2] " मणिभूषण इस बात का जो उत्तर देता है वह युगो से चली आ रही पुरुष प्रधान सामाजिक व्यवस्था की कलई खोल देता है। " आपका इस घर पर और चाचा जी की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नही । " [3] सम्मिलित परिवार में विधवा को अपने पुरूष की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नही होता । " [4] अगर चाचा जी अपनी सम्पत्ति आपको देना चाहते, तो कोई–वसीयत अवश्य लिए जाते । " नारी के प्रति पुरूष के इस उपेक्षाभाव और उसके अमानुषिक व्यवहार की प्रेमचंद ने स्थान–स्थान पर तीव्र आलोचना की है।' गोदान ' उपन्यास में खन्ना और गोबिन्दी के सन्दर्भ के द्वारा उन्होने पुरूष वर्ग की इस भावना का दिग्दर्शन कराया है।

प्रेमचंद नारी को न्याय और अधिकार दिलाने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे। ' सेवासदन ' की सुमन और ' कर्मभूमि ' की सुखदा इसके उदाहरण है। आर्थिक रूप से भारतीय नारी सदैव पुरूष के अधीन रही है।

उसे अपनी छोटी–छोटी आवश्यकताओं के लिए पुरूष के आगे हाथ फैलाना पड़ता है। परिणाम स्वरूप उसके ह्रदय में अनेक प्रकार की हीनता के भाव उत्पन्न हो जाते है। वह पुरूषों की अपेक्षा स्वयं को निर्बल और तुच्छ समझने लगती है। गृह स्वामिनी होकर भी दासी की तरह जीवन–व्यतीत करती है।

---

[1] गबन प्रेमचंद पृष्ठ 103

[2] गबन प्रेमचंद पृष्ठ 263

[3] गबन प्रेमचंद पृष्ठ 262

[4] गबन प्रेमचंद पृष्ठ 262.263 ।

धनिया का चरित्र भारतीय नारी के इसी कारूणिक पक्ष को उजागर करता है। आर्थिक विवशता के चलते भारतीय नारी को जीवन भर यातना सहनी पड़ती है। प्रेमचंद ने अपने उपन्यास ' सेवासदन ' में सुमन के वेश्या बनने में उसकी आर्थिक परिस्थितियो को ही मुख्य रूप से उत्तरदायी ठहराया है। प्रेमचंद लिखते है वे स्त्रियां बहुत ही सुन्दर है, बहुत ही कोमल हैं, पर उन्होंने अपने स्वर्गीय गुणों का ऐसा दुरूपयोग किया है ? उन्होंने अपनी आत्मा को कितना गिरा दिया है ? हॉ केवल इन रेशमी वस्त्रों के लिए, इन जगमगाते हुए आभूषणों के लिए उन्होंने अपनी आत्मा को विक्रय कर डाला। वे आँखे जिनसे प्रेम की ज्योति निकलनी चाहिए थी। कपट–कटाक्ष कुचेष्ठा से भरी हुई है। वे ह्रदय जिनसे विशुद्ध निर्मल प्रेम का श्रोत बहना चाहिए था, कितनी दुर्गन्ध और विषाक्त मलिनता से ढ़के हुए है। नारी के वेश्या होने के कारण को स्पष्ट करता हुए प्रेमचंद कहते है–" साहसी पुरूष को कोई सहारा नहीं है तो वह भीख मांगता है लेकिन स्त्री को कोई सहारा नही तो वह लज्जा हीन हो जाती है। आर्थिक परतन्त्रता के कारण भरतीय नारियो में सबसे दयनीय स्थिति हिन्दू–विधवा की होती है। पति की मृत्यु के पश्चात पुत्रहीन होने की दशा में पति की सम्पत्ति पर उसका अधिकार होता है। किन्तु सम्मिलित परिवार प्रथा उसके इस अधिकार का हनन करती है। प्रेमचंद इस प्रथा के घोर विरोधी है। वे रतन के माध्यम से कहते है–" बहनो किसी सम्मिलित परिवार में विवाह मत करना और अगर करना तो जब तक अपना घर अलग न बना लों, चैन की नींद मत सोना।"[1]

प्रेमचंद नारी की प्रेमभावना का सम्मान करते थे। किन्तु प्रेम सम्बन्धी उनका दृष्टिकोंण भारतीय आदर्शो और मान्यताओं का पक्षधर है। उन्होंने भारतीय नारी को प्रेमिका के रूप में अवश्य चित्रित किया है किन्तु उसे कहीं भी मर्यादाओं का उल्लंघन नही करने दिया। सकीना ' कर्मभूमि' विरजन ' वरदान ' सोफी ' रंगभूमि ' मनोरमा " कायाकल्प " आदि चरित्र इसके उदाहरण हैं।

प्रेमचंद गृहस्थाश्रम को सबसे प्रधान मानते है। प्रतिज्ञा में अपने दृष्टिकोण को प्रोफेसर दीनानाथ के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त करते है, " मैने कभी अविवाहित जीवन को आदर्श नही समझा। वह आदर्श हो ही कैसे सकता है ? अस्वभाविक वस्तु कभी आदर्श हो ही नही सकती। "[2] विवाह को प्रेमचंद एक

---

[1] गबन–प्रेमचंद पृष्ठ 266 ।

[2] प्रतिश्रा, प्रेमचंद –पृष्ठ 142

सामाजिक समझौता के रूप में स्वीकार करते है। गोदान में मेहता के शब्दों से यह बात स्पष्ट होती है–" विवाह को मै सामाजिक समझौता मानता हूँ और उसे तोड़ने का अधिकार न पुरूष को है, न स्त्री को। समझौता करने के पहले आप स्वाधीन है, समझौता हो जाने के बाद अपने हांथ कट जाते है। " प्रेमचंद विवाह में लड़के , लड़की की पूर्ण सहमति के समर्थक है–" उनकी यह धारणा है कि विवाह से पूर्व पति–पत्नी का एक दूसरे से परिचय और उनकी रूचि की जानकारी आवश्यक है। माता–पिता के द्वारा जो विवाह तय किए जाते है, वे आदर्श भले ही हो पर उनका व्यवहारिक पक्ष अत्यन्त असंतोषजनक है। क्योकि उसके उपरान्त किसी प्रकार का कोई विकल्प शेष नही रह जाता । " [1] इसी कारण ' कायाकल्प ' में यशोदा नन्दन से कहलाते है।–" मै चाहता हूँ आप एक बार अहिल्या से मिल लें। यों तो मन से आपको अपना दामाद बना चुका, पर अहिल्या की अनुमति ले लेना आवश्यक समझता हूँ। आप भी शायद यह पसन्द न करेगे कि इस विषय में स्वेच्छा से काम लूँ। " [2] ' वरदान ' में उन्होनें अपने विवाह सम्बन्धी विचार इस प्रकार व्यक्त किये है–" चाहे विवाह किसी भी रूप में किया गया हो–हिन्दू रीति से, आर्य समाज पद्वति से, ईसाइयों के गिरजे में, प्रार्थना द्वारा, पारस्परिक प्रेम में ह्रदय के आदान –प्रदान रूप में, पर वास्तव में ह्रदय का सच्चा मिलाप ही सच्चा विवाह है। " [3] इसी प्रकार सेवा सदन में लिखते है–" विवाह के बल मन का भाव है। संसार में ठीक जन्म पत्री , लग्न निर्धारित कर, अनेक वेदमंत्रो के पाठ द्वारा हुंए विवाह भी आगे चलकर असफल होते हुए देखे गए है, जिसका प्रयत्क्ष प्रमाण ये सारी तलाक शुदा, परित्यक्ता या उपेक्षिता भारतीय रमणियाँ है, जिनके विवाह निश्चित वैवाहिक नियमो के अन्तर्गत हुए थे। "[4]

प्रेमचंद वैवाहिक कुरीतियों को ही नारी–जीवन की अधिकांश समस्याओं के लिए उत्तरदायी मानते थे। प्रेमचंद युग में वैवाहिक समस्याओं ने नारी के इर्द गिर्द ऐसा जाल बुन रखा था जिसमें वह पर कटे पक्षी के समान उलझ कर रह गई थी, जिससे मुक्ति पाना उसकी सामर्थ्य के परे था। नारी को इस हीनावस्था

---

[1] प्रेमचंद की नारी भावना–गीतालाल पृष्ठ 115

[2] कायाकल्प प्रेमचंद पृष्ठ 14

[3] वरदान प्रेमचंद पृष्ठ –148

[4] कायाकल्प, प्रेमचंद पृष्ठ–14।

से बाहर निकालने के लिए आर्य समाज ने वैवाहिक कुरीतियों के उन्मूलन की दिशा में सराहनीय कार्य किये जिनसे समाज के विचारशील और सहृदय प्राणी प्रभावित हुए बिना नही रह सका। आर्य समाज के इन सुधारवादी कार्यक्रमों से प्रेमचंद स्पष्ट रूप से प्रभावित थे क्योंकि उनके हृदय में भी नारी जाति के प्रति गहन संवेदना विद्यमान थी। वे भी उन्हें पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त कराके समाज में एक सम्मानित स्थान दिलाना चाहते थे। यही कारण है कि नारी की वैवाहिक समस्याओं का जितना विशद और यथार्थ चित्रण प्रेमचंद साहित्य में हुआ है वह कदाचित किसी अन्य साहित्यकार के यहां दुर्लभ है।

पर्दा प्रथाः—

प्रेमचंद ने नारी जीवन से सम्बंधित समस्याओं में पर्दे को भी एक ज्वलन्त समस्या माना है। उन्होने अपने साहित्य में स्थान—स्थान पर पर्दा प्रथा के दुष्परिणामों का चित्रण किया है। भारतीय समाज की एक बड़ी संख्या मध्यवर्ग के अन्तर्गत आती है। पर्दा प्रथा के कारण इस वर्ग की स्त्रियों की दशा अत्यधिक शोचनीय थी। यह वर्ग आर्थिक दृष्टि से कमजोर था। गांव में जब इनका गुजारा मुश्किल हो जाता तो यह लोग शहर की ओर पलायन करते जहां घर के नाम पर उनके रहने के लिए छोटे—छोटे एक या दो कमरे होते थे। और सम्मिलित परिवार होने के कारण परिवार में सदस्यों की संख्या अधिक होती थी। पुरूष वर्ग तो अपना अधिकतर समय बाहर व्यतीत करते थे। परन्तु पर्दा के कारण घर की स्त्रियों को दहलीज लांघने का अधिकार भी नहीं था। छोटे—छोटे घुटन भरे कमरे में निरन्तर रहने के कारण उनके शारीरिक और मानसिक विकास में अवरोध उत्पन्न हो जाता था। जिसके परिणाम स्वरूप वह कई प्रकार के रोगों से ग्रस्त रहती थी और ऐसी अस्वस्थ माताओं के बच्चे अस्वस्थ होते थे। इस कुप्रथा का प्रभाव आने वाली पीढ़ी पर पड़ता । घर की चार—दीवारी में रहते—रहते उसके अन्दर हीन—भावना उत्पन्न हो जाती है। वह पुरूषो की तुलना में स्वयं को निर्बल और तुच्छा समझती थी। उनकी इस प्रवृत्ति का प्रभाव उनकी इन सन्तानों पर भी पड़ता था। ऐसी माताओ के बच्चे भी दब्बू, निर्बल, और ड़रपोक होते थे। पर्दा प्रथा के इन्हीं दुष्परिणामों को देखते हुए प्रेमचंद पर्दा प्रथा का घोर विरोध करते है। उनका मानना था कि यह प्रथा स्त्री की शारीरिक तथा मानसिक दुर्दशा के लिए बड़ी हद तक दोषी है। अपने उपन्यासों तथा कहानियो में उन्होने स्थान—स्थान पर इस प्रथा का विरोध किया। गबन में सह—शिक्षा की प्रशन्सा करते हुए कहते है—''— जहां लड़के —लड़कियाँ एक साथ शिक्षा पाते है, वहाँ

जाति भेद बहुत महत्व की वस्तु नही रह जाती है। यह समझिए कि जिस देश में स्त्रियों को जितनी अधिक स्वाधीनता है, वह देश उतना ही सभ्य है। कैद में परदे में या पुरूषों से कोसों दूर रखने का तात्पर्य यही निकलता है कि आपके यहाँ जनता इतनी आचार भ्रष्ट है कि स्त्रियो का अपमान करने में जरा भी संकोच नही करती ।"[1] क्या केवल यौन विषयक पवित्रता नारी जीवन का आधार है। केवल यौन पवित्रता के कारण स्त्री को सर्वगुण सम्पन्न नही माना जा सकता। उसके व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास तभी सम्भव है। जब वह इसके साथ–साथ अन्य गुणों को भी प्राप्त करे और घर की चार दीवारी में कैद रहकर किसी स्त्री के लिए यह सम्भव नही। यही कारण है कि अपनी कहानी ' कानूनी कुमार ' में वे इच्छा व्यक्त करते है कि एक ऐसा कानून बनाना चाहिए जिसके कोई स्त्री पर्दे में न रह सके। "[2] माताओं पर देश का भविष्य अवलम्बित है। पर्दा हटाओ बिल पास होना चाहिए।"3 अपनी और एक कहानी ' दुराशा प्रहसन ' में उन्होने पर्दे के दुष्परिणाम का वर्णन किया है। इस कहानी के पात्र दयाशंकर की पत्नी उससे कहती है।" जब तक ऐसे चरके न खाओगे, तुम्हारी आँखे नही खुलेगी घर में कैद करने का यह दण्ड है। तुमसे तुमने मुझे पिजरे में बन्द कर दिया, पर काट दिए । परदे ने मुझे पशु बना दिया। इसी कहानी में एक स्थान पर दयाशंकर कहता है–" क्या कहूँ मित्र अत्यन्त लज्जित हूँ। तुमसे सत्य कहता हूँ कि आज से मै पर्दे का शत्रु हो गया। इस निगोड़ी प्रथा के बन्धन ने ठीक होली के दिन ऐसा विश्वासघात किया कि कभी इसकी सम्भावना न थी। प्रेमचंद पर्दे के विरोधी अवश्य थे परन्तु इससे उनका यह तात्पर्य कदापि नही कि वह अपनी नारी सुलभ लज्जा का त्याग कर दें। वह चाहते है कि उनके देश की नारी अपने आचार विचार में भारतीय संस्कृति के उच्च आदर्शों को गृहण करे।

दाम्पत्य जीवन–

भारतीय वाड्मय में विवाह एक सामाजिक मान्यता है जो चिरकाल से चली आ रही है। विवाह प्रथा के अन्तर्गत एक लड़का और लड़की वैवाहिक संस्कारों के अनुसार एक–दूजे से दाम्पत्य सूत्र बन्धन में बँध जाते है और समाज के अनुरूप एक परिवार का रूप धारण कर लेते है। पारिवारिक सापेक्षता में नारी–जीवन का सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न दाम्पत्य जीवन से सम्बन्धित है, जो

---

[1] गबन–प्रेमचंद–पृष्ठ 103

[2] मानसरोवर भाग–दो पृष्ठ 289 ।

स्त्री–पुरूष, पति–पत्नी के पारस्पिरिक सम्बन्धों पर आधारित रहता है। पति–पत्नी का यह सम्बन्ध भारतीय धर्म, और संस्कृति के अनुसार पवित्रता का प्रतीक है। परिवार के उत्थान और पतन में सबसे महत्वपूर्ण योगदान पति–पत्नी का ही होता है, जो कि उनके पारस्परिक प्रेम सम्बन्धों पर निर्भर करता है। इस अनन्त प्रेम की प्रगाढ़ता के कारण ही परिवार में सुख–शान्ति स्थापित रह सकती है, कटुता चाहे पति–पत्नी के सम्बन्ध में हो या सास–बहू में हो, देवरानी–जिठानी में हो या ननद भावज में, जहाँ प्रेम की कमी होगी वहीं कलह उत्पन्न होगा और इस कलह से पारिवारिक पतन ही सम्भव है। पाश्चात्य नारी की स्वाधीनता को देखकर हमारे भारतवर्ष की नारियों में स्वाधीन रहने की उमंग दौड़ने लगी थी। जो इस युग के लेखकों के लिए शोचनीय प्रश्न बनकर खड़ी हो गयी कि कहीं नारी गलत रास्ते का अनुकरण न कर बैठे और पारिवारिक जीवन को अशान्ति का रूप दे बैठे और इस प्रश्न पर भली–भाँति विचार करने लगे और अन्त में स्त्री के सच्ची स्वाधीनता के पक्षधर हो गए।

प्रेमचंद भारतीय समाज को स्वस्थ और आदर्श रूप में देखना चाहते थे। अतः उन्होंने अपने उपन्यास जगत में वैवाहिक जीवन को स्थान दिया और यह जोर दिया कि समाज के उत्थान के लिए पारिवारिक जीवन का सुचारू होना अनिवार्य है। इसके अभाव में विकास की प्रक्रिया असम्भव है।. विवाह तो एक सामाजिक समझौता के दायरे में आता है और सामाजिक संगठन में विवाह का सर्वोपरि स्थान है प्राचीन समय में हिन्दू–समाज में विवाह के आदर्श थे वर्तमान समय में उनकी प्रासंगिकता कम होती जा रही है। जो दाम्पत्य–जीवन पहले सुखों की सेज था उसने आज, परिवर्तित होकर काँटों की सेज का रूप धारण कर लिया है। लेकिन आज वैवाहिक असंगतियाँ घर–घर में विराजमान है जो कि न केवल स्त्री पुरूष के सम्बन्ध को विच्छेदित करती है अपितु समाज की शान्ति को भंग कर अशान्ति का प्रचार कर रही है। वैवाहिक समस्या किसी एक वर्ग विशेष की समस्या नही वह तो सम्पूर्ण भारत की समस्या है। प्रेमचंद आदर्श के पक्षधर है उन्होने 'प्रतिज्ञा' उपन्यास में एक स्थान पर प्रो0 दीनानाथ के माध्यम से कहलाया है–"मैने कभी आविवाहित जीवन को आदर्श नही समझा। वह आदर्श हो ही कैसे सकता है ? अस्वाभाविकता कभी आदर्श हो ही नहीं सकती।" [1]

---

[1] प्रतिज्ञा, प्रेमचंद पृ0 142।

प्रेमचंद प्राचीन प्रगतिशील आदर्शों के समर्थक रहे है। उन्होंने अपने उपन्यास 'वरदान' में लिखा है–''यह कच्चे धागे का कंगन पवित्र धर्म की हथकड़ी है, जो कभी हॉथ से न निकलेगी, और मंडप उस प्रेम और कृपा की छाया का स्मारक है, जो जीवन पर्यन्त सिर से न उठेगी।'' [1] प्रेमचंद वैवाहिक परम्पराओ को श्रेष्ठ न समझते हुए ह्रदय के सच्चे मिलन को ही श्रेष्ठ समझते है–''ह्दय का मिलाप सच्चा विवाह है। सिन्दूर का टीका ग्रन्थि–बन्धन और भाँवर ये सब संसार के ढ़कोसले है।, [2] विवाह भाँवर या सिन्दूर बन्धन नही, बन्धन केवल मन का भाव है।''[3] प्रेमचंद के नजर में अविवाहित रहने से कोई लाभ नही है वरन उससे हानियाँ है। उन्होंने 'रंगभूमि' के पात्र प्रभु सेवक से कहलाया है–''यह आशा क्यों की जा सकती है कि दाम्पत्य जीवन की अवहेलना से जाति का विशेष का उपकार होगा।'' [4] प्रेमचंद ने कर्म के लिए दाम्पत्य जीवन को नितान्त आवश्यक माना है, क्योंकि 'कर्मक्षेत्र में यश का सेहरा भोगियो के सिर बंधा है। [5]

प्रेमचंद ने अपनी एक कहानी में लिखा है–'विवाह मनुष्य को सुमार्ग पर रखने का सबसे उत्तम साधन है, जिसे अब तक मनुष्य ने आविष्कृत किया है।'[6]

प्रेमचंद विवाह में गम्भीरता का होना अनिवार्य समझते है। वह धर्म और प्रेम को विवाह का अवलम्ब मानते है। सेवासदन की शान्ता कहती है–''हम विवाह को धर्म का बन्धन समझती है हमारा प्रेम धर्म के पीछे चलता है।''[7] प्रेमचंद के विचार प्राचीन आदर्शो के पोषक है–''विवाह स्त्री–पुरूष के अस्तित्व को संयुक्त कर देता है उनकी आत्माएं एक–दूसरे मे समाविष्ट हो जाती है।................उन देशों पश्चिमी देशों की बात न चलाइये, वहाँ के लोग विवाह को केवल समाजिक सम्बन्ध समझते है। ....उनके विचार में स्त्री–पुरूष की अनुमति ही विवाह है,

---

[1] प्रेमचंद वरदान, पृ0 33।

[2] प्रेमचंद–वरदान, पृ0 153–154।

[3] प्रेमचंद सेवासदन–पृ0 242।

[4] प्रेमचंद रंगभूमि पृ0 136–139।

[5] प्रेमचंद रंगभूमि पृ0 136–139।

[6] मानसरोवर भाग, 5 पृ0 228।

[7] प्रेमचंद–सेवासदन, पृ0 264।

लेकिन भारतवर्ष में कभी इन विचारों का आदर नही हुआ।"[1] प्रेमचंद उन लोगो से आन्तरिक विरोध रखते है जो कि विवाह को विकास के क्षेत्र मे बाधक मानते है। इसी प्रसंग को लेकर, 'कर्मभूमि' उपन्यास में सुखदा समाज–सेवी प्रो0 शान्ति कुमार से कहती है–'क्या विवाहित जीवन में सेवा–धर्म का पालन असम्भव है? या स्त्री इतनी स्वार्थान्ध होती है कि आप के कार्यो में बाधा डाले बिना नही रह सकती ? गृहस्थ जितनी सेवा कर सकता है, उतनी एकान्त–जीवी कभी नही कर सकता है। "[2] प्रेमचंद के अनुसार–"दाम्पत्य मनुष्य के सामाजिक जीवन का मूल है। उपहार–त्याग आदि देवोचित गुणों के विकास के जैसे सुयोग गृहस्थ जीवन में प्राप्त होते है, और किसी अवस्था में नही कर सकते है।"[3]

प्रेमचंद गलत रीति–रिवाजों के विरोधी रहे है। उन्होने 'कायाकल्प' में रीति –रिवाजों का खण्डन किया तथा उन्हे महत्वहीन कहा है–"चार भँवरे फिर जाने से ही ब्याह नही हो जाता।"[4] प्रेमचंद की दृष्टि में सामाजिक संगठन के लिए विवाह अनिवार्य है दाम्पत्य जीवन की महत्ता का गुणगान करते हुए प्रेमचंद लिखते है–"दाम्पत्य मनुष्य के सामाजिक जीवन का मूल है। उसका त्याग कर दीजिए, बस हमारे सामाजिक संगठन का सीराजा बिखर जायेगा, और हमारी दशा पशुओं के समान हो जायेगी। गृहस्थ्य को ऋषियों ने सर्वोच्च धर्म कहा है, और अगर शान्त ह्दय से विचार कीजिए तो विदित हो जायेगा कि ऋषियों का यह कथन अत्युक्ति नही है। दया, सहानुभूति, सहिष्णुता, उपकार, त्याग आदि देवोचित गुणों के विकास के जैसे सुयोग्य गृहस्थ्य जीवन में प्राप्त होते है, और किसी अवस्था में नही मिल सकते। [5]

प्रेमचंद के अनुसार विवाह केवल शरीर का मिलन नही अपितु मन से मन का मिलन है। अतः पवित्र बंधन के लिए वे सभी प्रकार के बाह्याडम्बर तथा ढांग का जमकर विरोध करते है । वे रूढिग्रस्त रीति–रिवाजों तथा लग्न, ग्रह–नक्षत्र, जन्म कुण्डली, कन्यादान आदि को अनावश्यक मानते हुए इस अवसर पर गाये जाने वाले अभद्र गीतों वेश्यानृत्य आदि को अपव्यय समझते है।

---

[1] प्रेमचंद–प्रेमाश्रम, पृ0 264–265।

[2] कर्मभूमि, प्रेमचंद पृ0 129।

[3] रंगभूमि, पृ0 139।

[4] प्रेमचंद कायाकल्प, पृ 61।

[5] प्रेमचंद रंगभूमि–भाग –1–पृ0 154

विधवा समस्या–

हिन्दू–समाज में नारी जीवन से सम्बन्धित समस्याओं मे सबसे विकराल समस्या विधवा समस्या है। पुरुष प्रधान समाज में वैसे तो नारी का सम्पूर्ण जीवन ही तिरस्कृत और उपेक्षित है लेकिन विधवा नारी पर होने वाले अत्याचार और अन्याय की कोई सीमा नहीं है। नारी समाज में सबसे ज्यादा शोषित और दलित वर्ग विधवाओं का ही है। भारतीय समाज में नारी को सदियों से समस्त अधिकारों से वंचित रखा गया है। उसका केवल अपने परिवार की सम्पत्ति पर ही नही अपितु अपने पति के सम्पत्ति पर भी कोई अधिकार नही। जिसके कारण पति की मृत्यु के पश्चात उसके भरण–पोषण का दायित्व परिवार के दूसरे पर आ जाता था। इस प्रकार परिवार वाले उसे बोझ समझने लगते थे और इस बोझ से छुटकारा पाने के लिए उन्होंने सती–प्रथा को प्रारम्भ किया जिसमें पति के मृत्यु के उपरान्त उसे पति के साथ जिन्दा जला देते थे। समाज की अन्य समस्याओं की भाँति समाज सुधारकों का ध्यान इस ज्वलन्त समस्या ने भी अपनी ओर आकृष्ट किया। इस दिशा में सबसे पहले सराहनीय कार्य ब्रह्मसमाज के संस्थापक राजा राममोहन राय ने किया उन्होने इस अमानवीय प्रथा का कड़ा विरोध किया और इसके विरूद्ध सरकार से कानून पारित करवा कर अवैध घोषित करा दिया। इस कानून ने समाज के कट्टर पंथियों और स्वार्थान्ध लोगों के हाथ बाँध दिये। अब वे विधवा नारी रूपी बोझ से मुक्ति पाएं तो कैसे इसके लिए उन्होंने एक और रास्ता निकाला और यह कहना प्रारम्भ कर दिया कि विधवा को सांसारिकता से दूर रहना चाहिए। उसके जीवन का एक मात्र लक्ष्य त्याग और तपस्या होना चाहिए और इसके लिए विभिन्न प्रकार से सांसारिकता से दूर रहना चाहिए। उसके जीवन का एक मात्र लक्ष्य त्याग और तपस्या होना चाहिए और इसके लिए उसे पेट भरने के लिए दो वक्त की रोटी और तन ढांकने के लिए वस्त्र चाहिए। इसके अलावा उसे अन्य किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं। इस प्रकार समाज के ठेकेदारों तथा धर्म के पोंगा पंथियों ने उसे समस्त सुख सुविधाओं से वंचित कर दिया। समाजसुधारकों को सबसे अधिक इस बात की पीड़ा थी कि हमारे समाज में उनको भी विधवा ही समझा जाता है जिन्होंने सुहाग क्या होता है यह भी नहीं जाना। ऐसी बाल–विधवाएँ समाज के उदारमना सुधारक नेताओं के आगे प्रश्न चिन्ह बनी हुई थी। ऐसी बालिकाओं का वैधव्य केवल रूढ़ि का वैधव्य हो सकता है। अभाव का अनुभव न होने के कारण इनको वैधव्य के दर्शन का अनुभव नहीं हो सकता। ऐसी विधवाएँ कई प्रकार की समस्याएँ खड़ी करती थीं। पुरुष समाज की भूखी ऑखें ऐसी आरक्षिताओं पर टूट

सकती है और चूंकि समाज का नियमन पुरुष के हाथों में है किसी प्रकार के स्खलन का उत्तरदायित्व अन्ततः विधवा पर ही आ जाता है।" [1] इस प्रकार हिन्दू नारी के लिए वैधव्य से बढ़कर दूसरा कोई अभिशाप नही होता और उनकी सबसे विडम्बना यह है कि उनके अपने सगे सम्बन्धियों के पास उन्हे देने के लिए सांत्वना के शब्द तक नहीं होते क्योंकि उनका अपना परिवार उन्हे पति को चबा जाने वाली राक्षसी समझता है। समाज विधवा की छाया तक को अशुभ मानता है अतः किसी मांगलिक अवसर पर उपस्थित होने की अनुमति नही देता इस प्रकार निरपराध होते हुए भी अपने वैधव्य को वे दण्ड स्वरूप भोगने को विवश होती है और सामाजिक रूढियों के कारावास में अपने जीवन के शेष दिन व्यतीत करती है क्योंकि समाज में उनके लिए कहीं कोई स्थान नही है।

प्रेमचंद युगीन समस्याओं में हिन्दू–विधवा की समस्या भी एक महत्वपूर्ण सामाजिक समस्या थी। प्रेमचंद के समय में भी विधवा स्त्रियों की दशा पूर्ववत् बनी हुयी थी। वे एक प्रकार से जीवित लाश हुआ करती थी। समाज के दलित तथा उत्पीड़ित वर्ग के प्रति प्रेमचंद के हृदय में सच्ची सहानुभूति थी और स्त्रियों से ज्यादा पद दलित और शोषित समाज का अन्य कौन सा वर्ग होगा और यदि स्त्री विधवा हो जाए तो समाज में उसके शोषण की कोई सीमा नहीं होती तो फिर प्रेमचंद जैसा सहृदय लेखक नारी जाति की इस दुर्दशा की मूक दर्शक की भाँति कैसे देख सकता था। उन्होंने अपनी लेखनी के द्वारा नारी वर्ग पर होने वाले अत्याचारों को समाप्त करने का संकल्प लिया। विधवा–समस्या के प्रति प्रेमचंद को सबसे अधिक प्रेरणा आर्य समाज से मिली। इसके सुधारवादी विचारों से प्रभावित प्रेमचंद ने विधवाओं को नारकीय जीवन जीने के लिए विवश करने वाली इस सामाजिक कुप्रथा का अपने उपन्यासों और कहानियों में जमकर विरोध किया। प्रेमचंद विधवाओं के अधिकार कर्तव्य उनकी विवशता और उनकी सामाजिक स्थिति से भली–भांति परिचित थे। उनका यह अनुभव उनके उपन्यासों मे सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। विधवाओं की असहाय तथा विवश सामाजिक स्थिति का उन्होंने अपने उपन्यासों में बड़ा ही मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। आर्यसमाज विधवा समास्या का एक हल विधवाओं का पुनर्विवाह करवा के प्रस्तुत करता है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि इस सम्बन्ध में प्रेमचंद आर्य समाज के सुधारवादी विचारों से प्रभावित थे। अतएव उन्होंने अपने उपयान्स प्रेमा अर्थात हम खुर्मा व हम सबाब में पूर्णा और प्रेमा' की वैधव्य की समस्या का समाधान

---

[1] प्रेमचंद के उपन्यासों में समसामयिक परिस्थितियों का प्रतिफलन डॉ0 सरोज गौड़ पृ0 233

पुनर्विवाह कराकर प्रस्तुत किया है। प्रतिज्ञा में प्रेमचंद ने एक बार फिर प्रेमा के कथानक को ही उठाया है परन्तु इसकी कथा के विकास में महत्वपूर्ण परिर्वतन दृष्टिगोचर होता है। जहॉ प्रेमा में अमृतराय पहले पूर्णाबाद में प्रेमा के साथ विधवा विवाह करता है। [1] वही प्रतिज्ञा में पंडित अमरनाथ के आगे विधवा से विवाह करने के लिए प्रतिश्रुत होकर भी वह विवाह नहीं करता। [2] इस कारण कुछ लोगों ने प्रेमचंद पर यह आक्षेप लगाया है कि उनकी कथनी और करनी में अन्तर है या उनमें पुनःविवाह कराने का साहस नहीं है। परन्तु प्रेमचंद ने स्वयं एक बाल विधवा से विवाह करने का अदम्य साहस दिखाया था जिससे लोगों के इन आक्षेप का खण्डन स्वतः ही हों जाता है। परन्तु 'प्रश्न प्रेमचंद की साहस हीनता अथवा उनके साहस का नहीं है। मुख्य बात तो यह है कि प्रतिज्ञा के रचनाकाल तक आकर प्रेमचंद के मानस में कहीं कोई परिवर्तन हुआ है। जिसके कारण विधवा समस्या का जो समाधान प्रेमा में उपस्थित है। उसे 'प्रतिज्ञा' में प्रेमचंद ग्रहण नही करते है। [3] वस्तुतः प्रतिज्ञा मे प्रेमचंद को विधवा विवाह के हल के रूप में एक विधुर का विधवा स्त्री के साथ विवाह उचित न लगा हो और यहॉ उन्हें पुनर्विवाह के स्थान पर आश्रम परक हल देना ही अधिक श्रेयस्कर लगा हो। क्योंकि यह भी अपने आप मे एक प्रकार से समस्या का निदान ही है। एक विधवा के लिए दूसरों के अधीन रहकर दुखमय जीवन बिताने से कहीं अच्छा यह है कि वह आश्रम में रहकर अपने स्वालम्बन से सम्मानपूर्वक सुखी जीवन व्यतीत करें।

"अगर अन्ध विश्वासी, मूढ़मति, अविवेकी पुरुष विधवाओं को पुनर्विवाह का अधिकार न दें तथा ऐसे साहसी युवक समाज में पैदा न हों, जो रुढ़ियों से मुक्त सुधार वादी भावनाओं से ओत–प्रोत होकर, विधवाओं को पत्नी के रूप में अपने गले लगाये, तो आश्रम ही इस दयनीय समस्या का सर्वोत्तम रचनात्मक हल होगा। पर तभी जबकि अमृतराय जैसे सच्चरित्र व्यक्ति इन आश्रमों के सुसंचालक होंगे।"[4] अतः स्पष्ट है कि प्रेमचंद विधवा विवाह को स्त्री के शीलभंग के रूप में स्वीकार नहीं करता। वे विवाह योग्य विधवाओं के कट्टर पक्षपाती है।

---

[1] मंगलाचरण प्रेमचंद–पृ0 214–346

[2] प्रतिज्ञा प्रेमचंद पृ0– 148

[3] प्रेमचंद के उपन्यासों में समसामयिक परिस्थितियों का प्रतिफलन–डॉ0 सरोज गौड़ पृ0–236

[4] प्रेमचंद के नारी पात्र–डॉ0 भरत सिंह पृ0 105

पुनर्विवाहित विधवाएँ यदि वे एक निष्टठता से अपने धर्म का पालन करती हैं, तो प्रेमचंद की दृष्टि में श्रद्धेय है।[1]

हिन्दू विधवाओं की दुर्दशा के लिए उनकी स्वयं की मानसिकता भी उत्तरदायी है। वैधव्य को ईश्वरीय प्रकोप समझकर उसके लिए स्वयं को दोषी ठहराती है। इस कारण वह अपने जीवन के शेष दिन अपने पति की स्मृति को समर्पित कर देती है। बाल–विधवा की दशाा तो इससे भी गयी बीती है जब उसे पति का संग ही नहीं मिला तो स्मृतियॉ कहॉ से आएॅगी जिनके सहारे वह जीवन व्यतीत करे। विरजन (वरदान) गायत्री (प्रेमाश्रम) बाहेश्वरी (कायाकल्प) कल्याणी (निर्मला) रूक्मिणी (निर्मला) रतन (गबन) और रेणुका (कर्मभूमि) प्रेमचंद के उपन्यासों में चित्रित कुछ ऐसी विधवाएँ है जिन्हें अपने वैधव्य को लेकर किसी से कोई शिकायत नहीं है। वे एक आदर्श विधवा की भांति अपना जीवन बिताती हैं। हिन्दू विधवाओं ने जब स्वयं भाग्य के साथ समझौता कर लिया और इस विषय में उन्हें किसी से कोई गिला नहीं था। तो फिर इस दुर्दशा से उन्हें कैसे उबारा जाए। दूसरी बात यह है हमारे हिन्दू धर्म की विडम्बना यह है कि वह किसी विधवा स्त्री को ये अधिकार नहीं देता कि वह अपनी इच्छा अनुसार पुनर्विवाह कर लें। हिन्दू–धर्म के निचले वर्ग में विधवा विवाह प्रतिबन्धित नही हैं। इस लिए इस वर्ग में इस प्रकार की कोई समस्या नहीं है। यदि उच्च वर्ग की स्त्रियों को भी यह अधिकार प्राप्त होता तो उनके सामने यह समस्या खड़ी ही नहीं होती।

प्रतिज्ञा में प्रेमचंद ने स्पष्ट किया है कि विधवाओं के विषय में दया की दृष्टि से न सोचा जाए बल्कि उनकी दशा को सुधारने के लिए सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना होनी चाहिए। इसीलिए उनका पात्र पं0 अमरनाथ लोगों से यह प्रश्न करता है। आप लोगों में कितने महाशय है जो वैधव्य के भॅवर में पड़ी अबलाओं के साथ अपने कर्तव्य का पालन करने का साहस करते हैं। [2]

प्रेमचंद ने विधवा समस्या को केवल बाध्य दृष्टि से नहीं देखा था। बल्कि इस समस्या की गहराई में उतर कर न सिर्फ उसके कारणों अपितु उसके निदान का भी पता लगाया। वे इस तथ्य से भली–भाँति परिचित थे कि विधवाओं के सम्मुख सर्वप्रथम उनके भरण पोषण की समस्या है। क्योंकि पति की मृत्यु के बाद

---

[1] प्रेमचंद के नारी पात्र–डॉ0 भरत सिंह पृ0 105

[2] प्रतिज्ञा प्रेमचंद पृष्ठ संख्या–4

वे आश्रय हीन हो जाती थी। और अपने परिवार में उपेक्षिता और अपमानित होकर विवशता का जीवन ब्यतीत करतीं थी। गबन में रतन नामक एक ऐसी विधवा का चित्रण है जो अपने पति इन्द्रभूषण के जीवित रहते हुए हर प्रकार से सुखी और समृद्ध थी। परन्तु उनके मरने के बाद समस्त अधिकारो से वंचित होकर उनके भतीजे मणिभूषण के अधीन हो जाती है। रतन के ह्रदय में हिन्दू समाज की दूषित कानून व्यवस्था के प्रति क्षोभ उत्पन्न हो जाता है। वह कहती है –" न जाने किस पापी ने यह कानून बनाया था कि पति के मरते हिन्दू नारी स्वत्व से वंचित हो जाती है।" [1] 'निर्मला' उपन्यास की रूक्मणी भी हिन्दू समाज की दूषित व्यवस्था की शिकार है। प्रतिज्ञा की पूर्णा के समक्ष तो यह समस्या और भी विकराल रूप धारण कर लेती है क्योंकि उसका तो कोई सगा सम्बन्धी नहीं जो उसे आश्रय दे सकें।

इससे स्पष्ट है कि प्रेमचंद विधवाओं की दुर्दशा का मूलकारण उनकी आर्थिक पराधीनता को मानते हैं। आर्थिक दृष्टि से नारी पूर्णरूप से पुरूष पर निर्भर है। यही कारण है कि पति की मृत्यु के बाद वह सर्वथा निराश्रय हो जाती है इसी के साथ नारी को सम्पत्ति सम्बन्धी कोई अधिकार प्राप्त न होने के कारण विधवा होने पर उसे अपने पुत्र या किसी सम्बन्धी की आश्रिता बनकर रहना पड़ता है। ऐसी स्थिति में उसकी स्थिति और भी करूणा जनक तथा दयनीय हो जाती है। इस प्रकार हम देखते है कि प्रेमचंद ने विधवा–जीवन से सम्बन्धित समस्याओं के समस्त पक्षों का यथार्थ एवं मर्मस्पर्शी चित्रण करते हुए उनकी समस्याओं के समाधान भी प्रस्तुत किए है,। वे विधवाओं को एक सम्मानित जीवन व्यतीत करते देखना चाहते थे। यही कारण है कि वे उनकी आर्थिक पराधीनता से मुक्त कराने के लिए उन्हें पति की सम्पत्ति पर अधिकार दिलवाना चाहते थे और इस दिशा में कानून बनवाने के समर्थक थे।

अनमेल विवाह

एक स्वस्थ और प्रगतिशील समाज का निर्माण स्वस्थ और सुखी कुटुम्ब या परिवार करते हैं और परिवार का सुख पति–पत्नी के सुखी दाम्पत्य–जीवन पर निर्भर है। वैवाहिक जीवन की असंगतियॉ समाज में विभिन्न प्रकार की कुरीतियों को जन्म देती हैं। हमारे समाज में ऐसी कितनी सुमित्रा, विद्यावती, निर्मल, इन्दू

---

[1] 'गबन' प्रेमचंद पृ0 333

तथा गोबिन्दी है जिन्हें विवाह के नाम पर केवल प्रताड़ना ही प्रताड़ना मिली हैं। प्रेमचंद ने इस समस्या के मूल कारणो पर विचार किया। उनके अनुसार सामाजिक असमानता ही अनमेल विवाह का कारण हैं। प्रेमचंद मानते है कि–"हिन्दू समाज की वैवाहिक प्रथा इतनी चिन्ताजनक इतनी लचर हो गई है कि कुछ समझ में नहीं आता कि उसका सुधार क्योंकर हो।"[1] "सामाजिक दबाव, धार्मिक रूढ़ियॉं, आर्थिक विवशता, मर्यादा की रक्षा, जाति–पॉति के भेद–भाव और बालिका के आचार–विचार स्वभाव एवं वय से भिन्न उसे सिर का भार मान कर, लड़के की योग्यता–अयोग्यता को तिलांजलि दे, केवल अपने प्राचीन व्यक्तियों की सुनिश्चित अविवेक पूर्ण पूर्वावधारनाओं के अनुसार अयोग्य लड़के के साथ उसके गठबन्धन से जो कुछ हाथ लगता है, उसे प्रेमचंद ने अपनी कहानी 'शान्ति' की शान्ति', 'कुसुम' की कुसुम, कन्या विवाह की आशा उपन्यास 'निर्मला' की निर्मला, 'सेवासदन' की सुमन, 'प्रतिज्ञा' की सुमित्रा से सुनवाया है।"[2]

नारी–जीवन सामाजिक कुप्रथाओं की जिस बेड़ी से जकड़ा हुआ है। उसकी सबसे मज़बूत कड़ी दहेज की कुप्रथा है जो अनमेल विवाह का सबसे बड़ा कारण है अपने उपन्यास 'सेवासदन' तथा 'निर्मला' में प्रेमचंद ने इसी तथ्य को उजागर किया है। 'सेवासदन' की सुमन तथा 'निर्मला' की निर्मला का अनमेल विवाह इसी दहेज प्रथा का परिणाम है।

आर्थिक संकट के कारण सुमन का मामा उसका विवाह एक पौढ़ दुहाजू गजाधर से कर देते हैं जो आयु रूपगुण और स्वाभाव सभी प्रकार सुमन से बिल्कुल विपरीत है। इन्हीं विषमताओं के कारण सुमन एवं गजाधर कभी एक दूसरे से प्रेम नही कर पाये जो सुखी दाम्पत्य–जीवन का आधार है। निर्मला को भी दहेज के कारण ही चालीस वर्ष के प्रौढ़ व्यक्ति मुशी तोताराम के पल्ले बॉंध दिया जाता है जिसकी पहली पत्नी का स्वर्गवास हो गया है और उसके तीन पुत्र भी है। आयु के इसी अन्तर के कारण निर्मला मुंशी तोताराम से हँसने–बोलने में भी संकोच का अनुभव करती थी। इसके मनोवैज्ञानिक कारण पर प्रकाश डालते हुए प्रेमचंद लिखते हैं–"अब तक ऐसा ही एक आदमी उसका पिता था, जिसके सामने वह सिर झुकाकर, देह चुराकर निकलती अब उनकी अवस्था का एक आदमी उसका पति था। वह उसे प्रेम की वस्तु नहीं सम्मान की वस्तु समझती

---

[1] वरदान प्रेमचंद पृ0–40

[2] प्रेमचंद के नारी पात्र–डॉ0 भरत सिंह पृष्ठ–84

थी। उनसे भागती फिरती, उनको देखते ही उस की प्रफुल्लता पलायन कर जाती थी।"[1] पति–पत्नी की आयु में असमान अन्तर स्त्री–पुरुष के सम्बन्धों को किस प्रकार तनाव ग्रस्त कर देता है। प्रेमचंद के उपन्यासों में इसका सजीव चित्रण हुआ हैं। अनमेल विवाह के कारण जहाँ एक ओर पत्नी के हृदय में असन्तोष की भावना व्याप्त रहती है वहीं दूसरी ओर पति–पत्नी के असामान्य अस्वाभाविक व्यवहार के कारण उस पर संदेह करने लगता है। प्रेमचंद ने 'सेवासदन' और 'निर्मला' में प्रौढ़ पुरूषों से विवाहिता युवतियों के असन्तोष, पति की हीन भावना से उत्पन्न होने वाले सन्देह का यथार्थ चित्रण किया है।

प्रौढ़ व्यक्ति से विवाह होने पर एक ओर जहॉ युवतियों के जीवन में दुख और असन्तोष व्याप्त होता है वही दूसरी ओर वृद्ध व्यक्ति से विवाह का भंयकर परिणाम यह होता है कि उन्हें असमय ही वैधब्य का दुःख झेलना पड़ता है। गबन उपन्यास में प्रेमचंद ने इस कड़वे सत्य का मार्मिक वर्णन किया है। वकील इन्द्रभूषण सन्तान प्राप्ति की लालसा में वृद्धावस्था में रतन से विवाह करते हैं सन्तान प्राप्त की उनकी कामना पूर्ण नही होती परन्तु रतन को असमय वैधव्य का मुख देखना पड़ता है। वकील साहब के अन्तिम समय में वह जालपा को जो पत्र लिखती है उसके एक–एक शब्द उस जैसी असंख्य भारतीय नारियों की मनोव्यथा के परिचायक है–"पूर्व जन्म का संस्कार केवल मन को समझाने की चीज है । जिस दंड का हेतु ही हमे न मालुम हो, उस दंड का मूल्य ही क्या। ––– इस अंधेरे, निर्जन, कॉटो से भरे हुए जीवन–मार्ग में मुझे केवल एक टिमटमाता हुआ दीपक मिला था। मैं उसे आंचल में छिपाए विधि को धन्यवाद देती हुई, गाती चली जाती थी, पर वह दीपक भी मुझसे छिना जा रहा है। इस अन्धकार में मैं कहॉ जाऊगीं, कौन मेरा रोना सुनेगा, कौन मेरी बॉह पकड़ेगा" ? [2]

'सेवासदन' और 'निर्मला' में प्रेमचंद ने अनमेल विवाह के दुष्परिणामों का उद्घाटन किया है अनमेल विवाह के कारण ही सुमन वेश्या वृत्ति जैसी घृणित व्यवसाय को अपनाने के लिए बाध्य हो जाती है। निर्मला के जीवन को बर्बाद करने तथा उसकी अकाल मृत्यु के पीछे उसके अनमेल विवाह का हाथ है इस प्रकार प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों तथा कहानियों के माध्यम से यह दिखाया है कि अनमेल विवाह की वेदी पर निर्मला और सुमन के जैसी न जाने कितनी

---

[1] 'निर्मला'–प्रेमचंद पृ० 59

[2] गबन प्रेमचंद–पृष्ठ 193

भोली–भाली स्त्रियों की खुशियाँ उनकी आशाएँ–आकाँक्षाएं पूरी होने के पहले ही स्वाहा हो जाती है। अनमेल विवाह के कारण नारी का जीवन कितना अभिशक्त हो जाता है और भविष्य में इसके क्या दुष्परिणाम होते हैं। इसका प्रेमचंद को भली–भाँति अनुभव था।[1] प्रेमचंद अपनी कहानियों तथा उपन्यासों में इस कटु सत्य का यथार्थ तथा मर्मस्पर्शी चित्रण किया है।

बहु–विवाह

यद्यपि हिन्दू–समाज में बहु–विवाह का कोई विधान नहीं है तथापि यह प्रथा भारतीय समाज में युगों से चली आ रही है–– "हिन्दू समाज की विचित्रता यह थी कि पुरुष चाहता तो सैकड़ो विवाह कर सकता था। बंगाल के कुलीन ब्राहमणों के घरों मे बहु–विवाह करने का रोग जैसा था। एक–एक की पचास–पचास पत्नियाँ होती थी। उन पचासों में कुछ तो ऐसी भी थी जिनके जीवन में सौभाग्य–सूर्य कभी उदित ही नहीं हो पाता था।"[2] पुरुषों की इस स्वच्छन्दता और उच्छंखलता का कारण समाज की वह दूषित व्यवस्था है जो जीवन के इन सामाजिक प्रतिबन्धों, कभी धर्म के नाम पर तो कभी समाज की झूठी मान–मर्यादा के नाम पर तरह–तरह के प्रतिबंध लगाती है। परन्तु पुरूष वर्ग पर किसी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नही लगाती। बहु–विवाह प्रचलन ने नारी की समस्याओं में और वृद्धि की है और समाज मे उसकी स्थिति और दयनीय हो गयी है। प्रेमचंद साहित्य में बहु–विवाह के दो रूप देखने को मिलते है। एक तो निम्न वर्ग या मध्य वर्गीय व्यक्तियों द्वारा किये गए बहु–विवाह दूसरा राजा महाराजा द्वारा किए गए बहु–विवाह।' मध्यवर्गीय व्यक्ति के द्वारा किये गए बहु–विवाह के कई कारण होते हैं। जिनमें सन्तान प्राप्ति की कामना, अपनी सन्तति के संरक्षण की चिन्ता आधुनिक संस्कृति का आकर्षण पारस्परिक राग द्वेश तथा परिवार की देखभाल मुख्य रूप से उल्लेखनीय है। जबकि निम्न वर्ग के लोग राह चलती औरतों को भी आश्रय देने के नाम पर अपने घर में रख लेते है और उनसे विवाह कर लेते हैं। दाम्पत्य जीवन में सन्तुलन बनाये रखने के लिए प्रेमचंद एक ही विवाह के समर्थक हैं। जो व्यक्ति केवल भोग–विलास के लिए बहु–विवाह करते हैं प्रेमचंद उनका विरोध करते हैं। बहु–विवाह के परिणाम

---

[1] प्रेमचंद घर में–शिवरानी देवी प्रेमचंद, 1956, पृ0 96।

[2] प्रेमचंदके उपन्यास में समसामयिक परिस्थितियों का प्रतिफलन पृ0–98।

स्वरूप किसी पुरुष की पूर्व तथा पश्चात्य पत्नियाँ जीवन भर दुख्ा ही उठाती हैं इस तथ्य का प्रेमचंद ने अपने साहित्य में यथार्थ चित्रण किया है। प्रेमंचद के जिन पात्रों ने केवल भोग–विलास के कारण बहु–विवाह किए हैं। उन्हें प्रेमचंद ने आजीवन रूलाया है। जो इस बात का परिचायक है कि वे बहु–विवाह को उचित नहीं मानते । बहु–विवाह का वास्तविक रूप राजा–महाराजाओं के यहाँ दृष्टिगोचर होता है। कभी तो यह राजे–महराजे अपनी प्रतिष्ठा के निमित्त एक से अधिक विवाह रचाते थे। तो कभी केवल शौक के कारण नए–नए विवाह करते थें। कुछ राजा ऐसे भी होते थे जो अन्य राज्यों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने की इच्छा से विभिन्न राजाओं की कन्याओं से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करते थे। कुछ राजकीय सुरक्षा तथा अपने पूर्व जो की परम्परा का पालन करने की दृष्टि से बहु–विवाह किया करते थे। प्रेमचंद ने ऐसे राजा–महाराजाओं का चित्रण यथा स्थान अपने साहित्य में किया है कि राजा लोग अपनी प्रसन्नता के लिए बहु–विवाह तो कर लेते हैं परन्तु उसका परिणाम नारी जाति के लिए कितना कष्टदायक होता है इसकी उन्हें तनिक भी परवाह नहीं होती। अपने उपन्यास –'रुठी रानी' तथा कायाकल्प में बहु–विवाह से उत्पन्न नारी जाति के कष्टों का चित्रण किया है।

इस प्रकार प्रेमचंद अपने इन उपन्यासों में बहु–विवाह के परिणाम स्वरूप उत्पन्न समस्यांओं जिनमें सपत्नियों मे कलह, वृद्ध विवाह के दुख, अनमेल विवाह के दुष्परिणाम व्यक्ति उत्पीड़न तथा दाम्पत्य जीवन में अशान्ति मुख्य हैं, का चित्रण करके बहु–विवाह के प्रति अपना रोष व्यक्त किया है प्रेमचंद दाम्पत्य जीवन के स्थायित्व के लिए पति पत्नी में एक निष्ठा एवं प्रेम भावना को अति आवश्यक मानते हैं। पुरुष वर्ग प्रायः दाम्पत्य जीवन के इस आदर्श का उल्लघंन करते हुए दूसरा विवाह रचा लेते हैं जिसके परिणाम स्वरुप दम्पतियों में पारस्परिक स्नेह के स्थान पर द्वेष और कलह उत्पन्न हो जाता हैं जो पारिवारिक जीवन को प्रभावित करती है और अन्ततः उसका दुष्प्रभाव समाज पर भी पड़ता है। अतएव पारिवारिक तथा समाजिक जीवन को स्वस्थ तथा सुखमय बनाने के लिए प्रेमचंद बहु–विवाह की कुप्रथा का अपने साहित्य में यदा–कदा विरोध करते हैं।

दहेज प्रथा –

हमारे देश को समय–समय पर अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा है कभी अलगाववाद की समस्या, कभी साम्प्रदायिक दंगे तो कभी बेरोजगारी, कभी जन–संख्या की समस्या किन्तु इन सब समस्याओं में सबसे विकृत समस्या दहेज की समस्या है जो समस्त मानव जाति के माथे पर कलंक के समान है।

दहेज एक ऐसी दानवी प्रथा है। जिसने न जाने कितनी युवतियों को निगल लिया, ये मानव समाज के शरीर पर वह कोढ़ है जो दिन–प्रतिदिन उसे कुरूप से कुरूपतर बनाता रहा है। हमारे समाज की त्रासदी यह है कि आज हर व्यक्ति इस अमानवीय प्रथा की निन्दा करता है। इससे मुक्ति पाना चाहता है। परन्तु इस दिशा में कोई ठोस कदम उठाने को तैयार नहीं जिससे इस दानव का विनाश हो सकें।

दहेज शब्द का तात्पर्य उस धन से है। जो कन्या के माता–पिता उसके विवाह के अवसर पर स्वेच्छा से भेंट स्वरूप देते थे, परन्तु इसका रूप अब परिवर्तित हो चुका है। इस भेंट ने अब भीख का रूप धारण कर लिया है। अब लड़के वाले निर्लज्ज होकर लड़की वालों से लम्बे–लम्बे दहेज की मॉग करते है। वे यह नही सोचते कि कल अपनी कन्या का विवाह करते समय उन्हे भी इन कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ेगा। इस प्रथा के कारण हमारे राष्ट्र समाज हमारे देश की जनता की जो हानि हुई है। उसकी पूर्ति कभी नहीं हो सकती। हमारे देश में यह प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही है। परन्तु इसका प्रचलन राजा–महाराजाओं तथा कुलीनो तक सीमित था परन्तु आज इसने समस्त मानव समाज को अभिशापित कर रखा है।

इस भौतिकवादी युग में व्यक्ति की मान प्रतिष्ठा का आधार धन है। जिसके पास जितनी दौलत है। वह समाज में उतना ही प्रतिष्ठित है और इस धन को विवाह के समय कन्या पक्ष दहेज की मॉग करके प्राप्त करना चाहता है।

दहेज एक ऐसा अभिशाप है। जिसने हत्या जैसे जघन्य सामाजिक अपराधों को बढ़ावा दिया है। समाज में ऐसी लड़कियों की कमी नही है। जो दहेज के अभाव के कारण कुँवारी ही बैठी रहती हैं। समाज में उनको हेय दृष्टि से देखा जाता है। उन्हें इतने ताने दिये जाते हैं जो उनके लिए असहय होतें है। जिससे विक्षुब्ध होकर वे आत्म हत्या करने के लिए विवश हो जाती है और यदि

ऐसी निर्धन लड़कियों का विवाह हो भी जाए तो ससुराल वाले उन्हे जिन्दा जला कर मार डालते है।

दहेज के दानव की तृप्ति के लिए लड़की के पिता को ऋण लेना पड़ता है गहने खेत और घर गिरवी रखने पड़ते है। इसका दुरूपयोग यह होता है कि ऐसे अनेक परिवार पीढी दर पीढी ऋण की चक्की में पिसते रहते है। वह कभी अपनी निर्धनता से उभर नहीं पाते। इस प्रथा के कारण निर्धन परिवारों की लडकियों को उचित वर नही मिलते परिणाम स्वरूप पिता की आयु के व्यक्ति से उनका विवाह कर दिया जाता है। प्रेमचंद ने अपने एक मित्र केशवराम सब्बरवाल के नाम से अपने एक पत्र में लिखा था कि– "जिन्होने कमोवेश समाज की बुराईयों का पर्दाफाश करने के उद्देश्य से 'निर्मला' और 'प्रतिज्ञा'' शीर्षक से दो छोटे उपन्यास, लिखे है।"[1] 'निर्मला' की गहनता का मूल्यांकन करते हुए श्री अमृतराय ने "कलम का सिपाही" में लिखा है कि "निर्मला" में समाज के जालिम ढकोसले, लेन–देन की नहूसते बेवा की बेचारगी और निपट अकेलापन और अनमेल ब्याह की गुत्थियो की प्रस्तुति हुई है।"[2]

इसके उपरान्त प्रेमचंद ने "सेवासदन" उपन्यास मे दहेज की समस्या को उजागर किया है, और दिखाया है कि यदि दहेज की कुप्रथा हमारे समाज मे न होती तो सुमन का विवाह गजाधर जैसे व्यक्ति के साथ नहीं होता और सुमन वेश्या बनने पर मज़बूर नही होती। हमारे समाज मे केवल धनवान व्यक्ति का सर्वत्र सम्मान होता है।

अतः आज हर व्यक्ति किसी भी रूप में किसी भी उपाय से धन प्राप्त करना चाहता है और इसका एक आसान एवं अचूक उपाय है दहेज, जिसके लिए वे ऐसों से अपना सम्बन्ध जोड़ना चाहता है जिनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो। इस प्रथा के लिए मध्यवर्ग की दिखावे वाली मानसिकता भी उत्तरदायी है। यह वर्ग समाज में अपनी प्रतिष्ठा को स्थापित करने के लिए अपनी सामर्थ्य से बढ़कर अपनी बेटियों को दहेज देता है। इस दिखावे में दहेज की आग को इतना भड़का दिया है जिसमें न जाने कितनी किशोरियों के फूल जैसे कोमल शरीर जलकर स्वाहा हो गये है।

---

[1] चिट्ठी पत्री भाग 2, प्रेमचंद पृ0 207।

[2] कलम का सिपाही–अमृतराय पृ0 379।

जनसंख्या वृद्धि भी दहेज–प्रथा को बढ़ावा देने के लिए जिम्मेंदार है। पुरुष प्रधान हमारे समाज में आज हर माता–पिता पुत्र रत्न की कामना करते हैं उनकी इच्छा जनसंख्या वृद्धि का कारण बनती है। हमारे समाज में आज कन्या जन्म को इतना घृणित समझा जाता है। माँ के गर्भ में ही उसकी भ्रूण हत्या कर दी जाती है। जिसका परिणाम यह है कि आज महिलाओं का प्रतिशत पुरुषों की अपेक्षा कम होता जा रहा है। माता–पिता उसको खुश देखने के लिए उसे अच्छा दहेज देते है चाहे फिर इसके लिए उन्हे जीवन भर ऋण के बोझ तले दब कर रहना पड़े। दहेज देना हमारे समाज का अनिवार्य नियम बन गया । जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि दहेज आज व्यक्ति के मान प्रतिष्ठा का प्रतीक बन गया अतः अपनी प्रतिष्ठा को बनाऐ रखने के लिए आज हर व्यक्ति दहेज देने के लिए विवश है ।

आधुनिक शिक्षा प्रणाली भी दहेज प्रथा के लिए किसी न किसी रूप में दोषी है। आज शिक्षा इतनी महंगी हो गयी है। जिसके लिए पिता को अपने पुत्र की शिक्षा पर भारी धन का व्यय करना पड़ता है जो कभी–कभी उसकी सामर्थ्य से बाहर होता हैं। अपने इस धन को वह अपने पुत्र के विवाह में भारी भरकम दहेज के द्वारा पुनः प्राप्त करना चाहता है। इस प्रकार आधुनिक शिक्षा प्रणाली भी दहेज प्रथा के प्रचलन मे किसी न किसी रूप से सहायक सिद्ध होती है।

निर्मला उपन्यास में प्रेमचंद ने दहेज की समस्या पर गहनता से अपने विचारों को अभिव्यक्त किया है।

"निर्मला" के पिता वकील उदयभानु लाल की कमाई तो खासी थी लेकिन उसमे संचय वृत्ति नही थीं "[1] इससे वकील साहब की मृत्यु के बाद परिवार आर्थिक दृष्टि से विपन्न हो गया। "[2] वकील साहब के जीवन काल मे ही निर्मला का विवाह आबकारी विभाग के भालचन्द्र सिन्हा के पुत्र भुवनचन्द्र के साथ निश्चित हुआ था। वर पक्ष ने वकील साहब की अच्छी खासी आमदनी को देखकर यह समझ लिया था कि वकील साहब अपनी लड़की की शादी धूमधाम से करेगें और ऐसे व्यक्ति के साथ दहेज की रकम स्थिर करने से अधिक लाभप्रद

---

[1] निर्मला – प्रेमचंद पृष्ठ 1।

[2] निर्मला – प्रेमचंद पृष्ठ 16।

यही है कि उस प्रश्न को वकील साहब की मर्जी पर ही छोड़ दिया जाय।"[1] वकील साहब के दिवंगत होते ही भालचन्द्र सिन्हा की आशालता पर अनायास तुषारापात हो गया।[2] इसी से उसने अपशकुन का बहाना लेकर विवाह सम्बन्ध तोड़ दिया।[3] इस प्रकार निर्मला उस सम्पन्न घर में बहू बनकर न जा सकी।

इस सम्बन्ध विच्छेद के बाद उसकी विधवा माँ कल्याणी उसके विवाह के लिए योग्य वर की तलाश करती है। एक लड़का जिसे रत्न कहा जा सकता था। मिलता तो है लेकिन घर में उसको खरीदने के लिए पैसे नही है।[4] एक दूसरे वर का पता चलता है जो रेलवे में नौकरी करता था और सब तरह से निर्मला के योग्य था। किन्तु कल्याणी को उस वर के साथ निर्मला का विवाह इसलिए इष्ट नही हुआ कि उसका खान–पान अच्छा नही था।[5] उस समय हिन्दू–समाज में व्यक्ति की योग्यता का कोई अर्थ नहीं था। मुख्य थी कुल परम्परागत प्रतिष्ठा। इस कारण रेलवे की नौकरी करने वाले इस योग्य वर के साथ निर्मला का विवाह नहीं हो सका क्योंकि कल्याणी उस हिन्दू समाज की है जिसने कुलीनता के झूंठे दम्भ को दांत से पकड़ रखा है और उसे वह किसी कीमत पर छोड़ेगी भी नही। और इसी कुलीनता का लाभ उठा लेता है तीन बच्चों का बाप।"[6] तोताराम जो अपनी 45 वर्षो की पक्की उम्र में कुछ 15 वर्षो की फूल सी कोमल निर्मला का पति बन जाता है। जाहिर है ,विपन्नता और निस्हायता की स्थिति में ही भाग्यवाद का सहारा लेकर कल्याणी ने अपनी बेटी का ब्याह इस बूढ़े तोताराम के साथ कराया होगा ।[7]

हिन्दू–समाज की ऐसी विड़म्बना है कि वैयक्तिक गुणों को कुल–परम्परा के आगे बेकार समझा जाता था और उस की निगाह में कन्या की योग्यता भी कोई माने नहीं रखती हैं। प्रेमचंद जी का वक्तब्य है कि–'बेटे वालों के आगे एक

---

[1] निर्मला – प्रेमचंद पृष्ठ 1।

[2] निर्मला – प्रेमचंद पृष्ठ 22।

[3] निर्मला – प्रेमचंद पृष्ठ 21।

[4] निर्मला – प्रेमचंद पृष्ठ 35।

[5] निर्मला – प्रेमचंद पृष्ठ 36।

[6] निर्मला – प्रेमचंद पृष्ठ 38।

[7] निर्मला – प्रेमचंद पृष्ठ 38।

ही बात का महत्व है और वह है दहेज [1] इधर हिन्दू घराने की लडकियां कुवाँरी नही रखी जा सकती। इस विवशता के कारण पक्ष का पहलू भारी पड़ जाता है।

दहेज की कुप्रथा माँ की ममता पर भी अपना वर्चस्व कायम कर लेती है। वह भी यही सोचती है कि बेटे और बेटी मे प्रत्यक्ष अन्तर है। बेटी के विवाह में दहेज देना पड़ता है और बेटे के विवाह में दहेज मिलता है। इसी से कल्याणी कहती हैं–लड़के हल के बैल हैं भूसे खली पर उनका पहला हक है। उनके खाने से बचे वह गायों का। [2] संभवतः अनजाने ही कल्याणी ने बेटी के लिए गाय शब्द का प्रयोग किया है। किन्तु यह शब्द हिन्दू समाज में कन्या की निरीहता की ओर भी इशारा करता है। सचमुच हिन्दू घरों की अविवाहिता कन्याएँ गाय ही तो होती है–निरीह, विवश और मूक।

विवाहोपरान्त अपने भरे–पूरे परिवार मे निर्मला को किसी प्राकर का अभाव झेलना नहीं पड़ा किन्तु अपने पति तोताराम के पास बैठने और उसके साथ हंसने बोलने मे उसे एक प्रकार का संकोच होता था। [3] प्रेमचंद ने इस संकोच का कारण निर्दिष्ट करते हुए बताया है कि अब तक ऐसा ही एक आदमी उसका पिता था। अब उसी उम्र का यह तोताराम उसका पति है। [4] तोताराम के प्रेम–प्रदर्शन के प्रति उसे घृणा होती थी। फिर भी निर्मला परिस्थितियों के साथ समझौता करने की अनथक चेष्टा करती है। अपने सौतेले बेटों के प्रति वह स्नेह का व्यवहार भी करती है। किन्तु यह उसका अपराध हो जाता है। नवयुवक मंशाराम और निर्मला के परस्पर सम्बन्ध में तोताराम को वात्सल्य की पवित्रता के स्थान पर कलुषता नज़र आती है। [5]

दहेज–प्रथा का अभिशाप निर्मला की जिन्दगी खराब तो करता ही है तोताराम के परिवार को भी छिन्न–भिन्न कर डालता हैं। प्रेमचंद जैसे यह कहना

---

[1] निर्मला – प्रेमचंद पृष्ठ 35।

[2] निर्मला – प्रेमचंद पृष्ठ 39।

[3] निर्मला – प्रेमचंद पृष्ठ 39।

[4] निर्मला – प्रेमचंद पृष्ठ 39।

[5] निर्मला – प्रेमचंद पृष्ठ 56–57।

चाहते है कि दहेज की इस कुप्रथा का परिणाम किसी एक व्यक्ति को ही भुगतना पड़ता है ऐसा नहीं है। इस की आग में अनेक लोग दग्ध होते हैं।

तोताराम सोचता है कि उसने निर्मला से विवाह करके ऐसा कौन सा पाप किया कि उसे भगवान का दण्ड मिले। [1] उसी के पिता थे जिन्होंने पचपनवें वर्ष में विवाह किया था और उनका जीवन दुःखपूर्ण भी नही था। [2] सोचते–सोचते उसे अपने दाम्पत्य जीवन की विफलता का एक ही कारण दृष्टिगत होता है जिसका उल्लेख करते हुए वह कहता है–पहले स्त्रियॉ पढ़ी–लिखी न होती थीं, पति चाहे कैसा ही हो उसे पूज्य समझती थीं। तो क्या निर्मला का शिक्षिता होना उसके जीवन व्यर्थता का कारण है ? तोताराम को इस सम्बन्ध में पूर्ण निश्चय नहीं हैं विकल्प के एक क्षण में वह यह भी सोचता है कि या यह बात हो कि पुरुष सब कुछ देख कर भी बेहयायी से काम लेता है।"[3] तोताराम की विचार सरणि में यह दूसरी बात ही अधिक स्थिरता के साथ जाकर बैठती है। यह कहता हैं–'अवश्य यह बात हैं। जब युवक बृद्धा के साथ प्रसन्न नहीं रह सकता तो युवती क्यों किसी वृद्ध के साथ प्रसन्न रहने लगी ? [4] इस प्रकार तोताराम के द्वारा प्रेमचंद अपना दृष्टिकोण पाठकों के समक्ष रखते हैं। प्रेमचंद यह बताना चाहते है कि दहेज–प्रथा की अमानुषिकता किसी युवती को वृद्ध के पास पहुँचाकर या तो उसे जीवन की रिक्तता एवं व्यर्थता का अनुभव करने के लिए विवश करती है अथवा उसे कुलटा बनाती है।

हिन्दू–समाज की यह कुप्रथा एक सामाजिक समस्या के रूप में समाज के सामने थी। सुधारकों का ध्यान इस प्रश्न की ओर गया भी। किन्तु दहेज के मोह का छूटना बड़ा कठिन व्यापार है। जिस समाज में भुवनचन्द्र जैसा पढ़ा–लिखा लड़का निर्लज्ज की तरह कहता हो कि कहीं ऐसी जगह शादी करवाइए कि खूब रूपये मिले और न सही एक लाख का तो डौल हों। [5] उस समाज में आशा के लिए आधार कहॉ रह जाता है ? लेकिन प्रेमचंद इस विषय में सर्वथा निराश नही थे। वे जानते थे कि नारी–समाज में देहज की कुप्रथा के प्रति क्रियात्मक विद्रोह

---

[1] निर्मला – प्रेमचंद पृष्ठ 105।

[2] निर्मला – प्रेमचंद पृष्ठ 105।

[3] निर्मला – प्रेमचंद पृष्ठ 89।

[4] निर्मला – प्रेमचंद पृष्ठ 89।

[5] निर्मला – प्रेमचंद पृष्ठ 25।

भाव उत्पन्न होगा और आज न सही कल पुरुष समाज भी इस प्रथा की बुराई का अनुभव करेगा ही।

एक लाख का डौल लगाने की आकांक्षा रखने वाले भुवनचन्द्र की ही मॉ है रंगीली बाई जो अपने पति और बेटे को बेबश विपन्न विधवा कल्याणी से दहेज की मॉग करते देख व्यथित होती है।[1] यदि रंगीला बाई की बात चलती तो शायद निर्मला की कहानी कुछ दूसरी ही होती। भुवनचन्द्र जिसके साथ निर्मला का ब्याह पैसे के आभाव में नही हो सका था उसी की पत्नी सुधा है जो भुवनचन्द्र की ऑखे खोल देती है और इसका शुभ–परिणाम यह होता कि भुवनचन्द्र के छोटे भाई का विवाह निर्मला की बहन कृष्णा से बिना तिलक–दहेज के ही हो जाता है।[2] प्रेमचंद यह मानते है कि दहेज की प्रथा गलत है और जो चीज गलत होती है। वह सदा सर्वदा तक बनी रह सकती है। आवश्यकता है बुरी चीज के विरूद्ध आन्दोलन करने की। मनुष्य में इतना न्याय विवेक तो है ही कि वह गलत चीज को गलत समझ सके। इसी का उदाहरण है भुवनचन्द्र का वह प्रायश्चित जिसके कारण निर्मला के घर अपनी ओर से संवाद भेज कर वह अपने छोटे भाई के लिए कृष्णा की मांग करता है। इस प्रकार वह उसके जिस लोभ के कारण निर्मला की जिन्दगी बर्बाद हुई है उसका यत्किंचित् प्रायश्चित उसकी ओर से हो जाता है।

"कायाकल्प में भी चक्रधर के विवाह –सम्बन्ध के निर्धारण के समय दहेज का प्रश्न खड़ा होता है।[3] चक्रधर पढ़ा–लिखा तो है ही। उस पर दहेज–प्रथा के विरूद्ध होने वाले सुधार–कार्य का प्रभाव भी है। इसी से वह डट कर कहता है कि दहेज लेना तो अपने लड़के को बैल घोड़े की तरह बेचने जैसा है और वह विकाऊ होने को तैयार नहीं है।[4]

गोदान का होरी भी निर्धनता के कारण अपनी बेटियों को दहेज नही दे सकता उसकी बेटी सोना का मन पिता की विवशता पर रो पड़ता है।

---

[1] तुम बाप–पूत एक ही थैली के चट्टे–बट्टे हो दोनों उस गरीब लड़की के ऊपर छूरी फेरना चाहते थे। निर्मला–पृ0 26।

[2] निर्मला–प्रेमचंद–पृ0 126

[3] कायाकल्प–प्रेमचंद पृष्ठ 16

[4] निर्मला–बारह तो क्या पच्चीस बरस तक यों ही पाला पोसा ? मुँह धो रक्खे–चकधर– तो में बाजार में खड़ा करके क्यों नही लेती ? देखों कैसे के मिलते है– कायाकल्प पृ0 16

वह अपने होने वाले ससुराल सन्देश भेजती है कि उन्हें उसके घरवालों से दहेज की कोई रकम नहीं मिलेगी। बिना दहेज के सम्बन्ध करना हो तो ठीक है। वरना वह आत्महत्या कर लेगी। वह ऋण के बोझ तले दबे हुए अपने बाप की समस्याओं को और अधिक नही बढ़ाना चाहती। सोना का यह निर्णय नारी समाज में दहेज के विरूद्ध उत्पन्न होने वाली जाग्रति का संकेत देता है। होरी की दूसरी बेटी रूपा दहेज की प्रथा के कारण एक ऐसे व्यक्ति के हाथों सौप दी जाती है जो किसी भी प्रकार से उसके योग्य नहीं। दहेज की इस कुप्रथा के लिए प्रेमचंद आर्थिक कारणों को ही उत्तरदायी मानते हैं। निर्मला का अनमेल विवाह अर्थाभाव के कारण ही होता है। इस उपन्यास के माध्यम से प्रेमचंद समाज के सम्मुख यह प्रश्न खड़ा करते है कि निर्मला जैसी अनगिनत लड़किया ऐसी है जो इस कुप्रथा के कारण अनमेल विवाह के बन्धन में बॅध कर जिन्दा लाश में परिवर्तित हो जाती है वह दहेज के दुष्परिणाम से समाज को अवगत कराते हैं जिससे इस कुप्रथा का अन्त हो सके।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि यद्यपि दहेज प्रथा विरोध में आर्यसमाज जैसी सुधारवादी संस्थाओं ने जनमत तैयार करने की भरपूर चेष्टा की परन्तु समाज में ऐसे धूर्त और स्वार्थी व्यक्तियों की कमी नही जो दहेज के विरूद्ध, लम्बे चौड़े व्याख्यान तो देते है लोगो के दहेज मॉगने से रोकते है परन्तु समाज में स्वयं अपने बेटों की शादी में चोरी छिपे दहेज लेते है। प्रेमचंद ने अपने साहित्य में ऐसी पाखण्डी लोगों पर जमकर प्रहार किया है। दहेज रूपी दानव के पोषण में केवल लड़के के माता–पिता का ही हाथ नही होता वरन नवयुवक वर्ग का भी इसमें बहुत योगदान होता है,। निर्मला के पात्र भुवनमोहन के उदाहरण द्वारा प्रेमचंद ने इस तथ्य पर प्रकाश डाला है। उनके मतानुसार दहेज जैसी पाशविक प्रथा का अंत उसी स्थिति में सम्भव है जब वर्ग इस प्रथा के विरूद्ध अपने आत्मबल का परिचय दे क्योंकि प्रेमचंद इस वास्तविकता से भली–भॉति अवगत थे कि समाज में गहराई तक अपनी जड़े जमा चुके इस दानवी प्रथा को केवल कानून बनाकर समाप्त नही किया जा सकता। समाज के इस कोढ़ का एक मात्र निदान इसके विरूद्ध जन साधारण के ह्रदय में घृणा उत्पन्न करना है।

तलाक समस्या –

प्रेमचंद ने अपने सम्पूर्ण साहित्य में एक भी तलाक प्राप्त दम्पति का वर्णन नही किया। यह इस बात का द्योतक है कि वे इस समस्या व्यवस्था को उचित

नही समझते थे। क्योंकि वैवाहिक सम्बन्ध को वह शारीरिक न मान कर आत्मा का सम्बन्ध मानते थे। कायाकल्प मे उनका यह दृष्टिकोण को हम स्पष्ट रूप से देख सकते है। जब राजकुमारी रानी देवप्रिया से कहता है – " प्रिये तुम्हे मालूम है, विवाह का सम्बन्ध देह से नही आत्मा से है। क्या आत्मा अनन्त और अमर नही है?" [1] जब आत्मा अमर अनन्त और अजर है तो निश्चय ही विवाह आत्मा से सम्बन्धित होने के कारण अपने आप अनन्त और अमर हो गया चाहे पारलौकिक रूप से विवाह का कोई आत्मा से सम्बन्ध माने या न माने परन्तु अपने ऐहिक रूप में तो वह एक आदर्श समझौता ही है और–" आदर्श समझौता वही है, जो जीवन पर्यन्त रहे।" [2] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचंद तलाक के कट्टर विरोधी है। तलाक के सम्बन्ध में उन्होने अपने डा0 इन्द्रनाथ मदान को लिखे एक पत्र में व्यक्त किए है–"सर्वहारा वर्ग में तलाक साधारण की भॉति है केवल तथा–कथित उच्च वर्ग में गम्भीर रूप धारण कर लिया है। अपने श्रेष्ठतम रूप में विवाह भी एक प्रकार का समझौता और सर्मपण ही है। यदि कोई दम्पत्ति सुखी होना चाहते है तो उन्हे एक दूसरे की गुंजाइस रखनी चाहिए। इस समस्या के लिए प्रेमचंद उस सामाजिक व्यवस्था को दोषी मानते हैं जो स्त्री पुरुष में भेद स्थापित करती है। कर्मभूमि में अमरकान्त जब सकीना से प्रेम करने लगा है और अपनी पत्नी सुखदा को छोड़ कर चला जाता है तो सुखदा के मन में विद्रोह की भावना जाग्रत हो जाती है वे प्रेमचंद के इस दृष्टिकोण के पारिचायक हैं––" उसका विद्रोही मन सारे संसार से प्रतिकार करने के लिए जैसे नंगी तलवार लिए खड़ा रहता है। कभी–कभी उसका मन इतना उद्विग्न हो जाता है कि समाज और धर्म के सारे बन्धन को तोड़ कर फेंक दे ऐसे आदमियों की सजा यही है कि उनकी स्त्रियॉ भी उन्ही के मार्ग पर चलें तब उनकी ऑखे खुलेंगी तब उन्हे ज्ञात होगा कि जलना किसे कहते हैं। एक मैं कुल मर्यादा के नाम को रोया करूँ, लेकिन यह अत्याचार बहुत दिन नही चलेगा। अब कोई इस भ्रम में न रहे कि पति चाहे जो कहे उसकी स्त्री उसके पॉव धो, धोकर पिएगी, उसे अपना देवता समझेगी, उसके पॉव दबाएगी और वह उससे हँस कर बोलेगा, तो अपने भाग्य को धन्य मानेगी। वह दिन लद गए।" [3]

---

[1] कायाकल्प–प्रेमचंद पृष्ठ 63।

[2] मानसरोवर प्रेमचंद भाग पॉच पृष्ठ 228।

[3] प्रेमचंद–कर्मभूमि पृष्ठ 205।

कभी–कभी इस समस्या के लिए पति–पत्नी के परस्पर मतभेद भी उत्तरदायी होते है। रंगभूमि में प्रेमचंद ने इन्दु और महेन्द्र कुमार के प्रसंग द्वारा इस ओर संकेत किया है। वे दोनों पति–पत्नी जो कुछ भी करते सोचते हैं वह सदैव प्रतिकूल हो जाता है। एक स्थान पर महेन्द्र कुमार कहते हैं––" मैं जानता हूँ, तुम जिद में ऐसा नही करती मैं यहाँ तक कह सकता हूँ, तुम मेरे आदेशानुसार चलने का प्रयास भी करती हो किन्तु फिर जो यह अपवाद हो जाता है, उसका क्या कारण है? क्या यह बात तो नही कि पूर्व जन्म में हम और तुम एक दूसरे के शत्रु थे, जो विधाता ने मेरी अभिलाषाओं और मंसूबों का सर्वनाश करने के लिए मेरे पल्ले बॉंध दिया है? मैं बहुधा इसी विचार में पड़ा रहता हूँ पर कुछ रहस्य नही खुलती।"[1] परिणाम स्वरूप उनका दाम्पत्य जीवन कटु से कटुतर होता जाता है और अन्त में इन्दु अपने पति द्वारा हुए अपमान को सह नहीं पाती और वह अपने मायके चली जाती है। वह महेन्द्र कुमार से कहती है–" अच्छा अब चुप रहिए, बहुत हो गया, मैं आपकी गालियाँ सुनने नही आयी हूँ, यह लीजिए अपना घर, खूब टॉंगें फैला कर सोइए।"[2]

वस्तुतः गृहस्थ जीवन की सच्ची सफलता स्त्री–पुरुष के परस्पर हितों को ध्यान में रखकर कुछ मुड़ने–तुड़ने की गुंजाइश रखकर चलने में ही है। परन्तु इतने पर भी प्रेमचंद उन साधन हीन स्त्रियों की दशा से आँख नही चुराते, जो अपने स्वार्थी पतियों की पाशविक यातनाओं की शिकार हो जाती है और दुखी स्त्री द्वारा तलाक माँगने पर वे उसके जीवन निर्वाह के व्यय को भी वहन नही करना चाहते। वस्तुतः ऐसे में प्रेमचंद तलाक को सही मानते हैं। परन्तु तभी जब कि पति उसके भावी जीवन–व्यय को स्वीकार करें।

अवैध प्रेम समस्या –

अवैध प्रेम हमारी दोषपूर्ण वैवाहिक प्रथा का परिणाम है। विवाह किसी व्यक्ति का सर्वाधिक निजी मामला है जिसके विषय में उसे निर्णय लेने का पूर्ण अधिकार होना चाहिए। क्योंकि इस निर्णय पर उसके जीवन भर की खुशियाँ आधारित होती है। परन्तु हमारे देश और समाज में शादी–विवाह स्त्री–पुरुष की

---

[1] प्रेमचंद–रंगभूमि भाग दूसरा, पृष्ठ 137–138।

[2] प्रेमचंद–रंगभूमि भाग दूसरा, पृष्ठ 398।

परस्पर सहमति और इच्छा पर निर्भर नही करते अपितु परिवार के कठोर नियंत्रण तथा समाज के अनेंकों अवरोधों के दमन द्वारा होता है। इसके प्रतिक्रिया स्वरूप किसी स्त्री या पुरुष का अवैध प्रेम कर लेना अस्वाभाविक बात नही है। क्योंकि दबाव वश विवाह कर लेने से उनके युवा हृदय की आकाक्षांएँ और अभिलाषाएं भस्म तो नही हो जाती।

प्रेमचंद ने तत्कालीन वैवाहिक प्रथा और उन दोषों को सूक्ष्म दृष्टि से परखा था जो अवैध प्रेम को जन्म देता था। अवैध प्रेम के कई कारण हैं। जिसका प्रारम्भ विवाह के सम्बन्ध में माता–पिता की उत्तरदायित्व हीनता और गम्भीरता के आभाव से होता है। जिसके परिणाम स्वरूप पति–पत्नी के विचारों एवं जीवन मूल्यों में ऐसा वैषम्य होता है जिसके कारण उनका पूरा जीवन नारकीय बन जाता है और अपने जीवन को सुखी बनाने की इच्छा में वह किसी दूसरे से प्रेम कर बैठते हैं जिसे समाज अवैध की संज्ञा देता है। ' प्रतिज्ञा ' के कमला प्रसाद और सुमित्रा और 'कर्मभूमि' के अमर सुखदा तथा 'सेवासदन' के गजाधर और सुमन का स्वभाव एक दूसरे से बिल्कुल विपरीत है। सुमित्रा और कमला प्रसाद के दृष्टिकोण आपस में नहीं मिलते, स्वाभाव के इस वैषम्य के कारण कमला प्रसाद और सुमित्रा में नित्य कलह होता है और इसी कलह के परिणाम स्वरूप वह एक विधवा पूर्णा से प्रेम अपनी वासना पूर्ति के लिए करता है।

'कर्मभूमि' उपन्यास में सुखदा और अमर का स्वभाव एक दूसरे से बिल्कुल विपरीत है। उन दोनों के जीवन आदर्श भिन्न है। सुखदा प्यार की जगह भोग में विश्वास रखती है। माँ के प्रेम ने उसे उद्दण्ड बना दिया है। उसके भीतर शासक की प्रवृत्ति विद्यमान है अतः वह अमर को अपने अधीन देखना चाहती है। उसके लिए भोग विलास ही सब कुछ है। इसके विपरीत धनी पिता की सन्तान होते हुए भी अमर को भोग विलास से घृणा है। उसके जीवन में धन का कोई महत्व नहीं है। जीवन दृष्टि के इस वैषम्य के कारण वह दोंनों पति–पत्नी होते हुए एक दूसरे के हृदय मे स्थान नहीं पाते। पत्नी के उपेक्षित व्यवहार से त्रस्त अमर एक मुस्लिम युवती सकीना से प्रेम करने लगता है। 'वरदान' उपन्यास में प्रतापचन्द्र और विरजन दोनों में बचपन से ही मित्रता हो जाती है। वे दोनों साथ–साथ खेलते–कूदते खाते–पीते, लड़ते–झगड़ते फिर एक हो जाते इस प्रकार दोनों साथ–साथ बड़े हुए। बचपन की मित्रता ने कब प्रेम का रूप धारण कर लिया पता नही चला। इन दोनों के स्वभाव भी एक–दूसरे के अनुरूप थे। यदि दोनों का विवाह हो जाता, तो दोनों परिवार स्वर्ग बन जाते। इनके जीवन में

आनन्द ही आनन्द होता। परन्तु हुआ इसके विपरीत, विरजन की माँ सुशीला ने भी अन्य माता–पिता के समान विरजन के लिए वर का चुनाव करने में लापरवाही तथा असावधानी से काम लेते हुए उसकी शादी लड़के के संस्कार शिक्षा, आचरण, स्वभाव–प्रकृति व्यवहार–वर्तन आदि पर ध्यान न देकर धन–सम्पत्ति को ही प्रमुखता देते हुए डिप्टी साहब श्यामाचरण के पुत्र कमलाचरण से कर देती है जो स्वभाव में विरजन के बिल्कुल विपरीत था। विरजन जितनी संस्कारी सुशील, संयमी तथा सुशिक्षित थी वह उतना ही बिगड़ैल, आवारा शराबी, कबाबी, दुर्व्यसनी, दुराग्रही और जुआरी था। लेकिन यह दोष केवल विरजन की माँ का नहीं है बल्कि हिन्दू समाज की उस मानसिकता का है जो लड़की की पसन्द न पसन्द पर ध्यान न देकर केवल धन को महत्व देता है।

विवाह के पश्चात विरजन ने अपने प्रेम से कमलाचरण को सुमार्ग पर लाने का बहुत प्रयत्न किया। कमलाचरण के माता–पिता समझते थे कि घर पर रहकर वह पढ़े लिखेगा नहीं अपितु आवारा दोस्तों की संगति में और बरबाद हो जायगा इसलिए विरजन की सहायता से उन्होंने उसे पढ़ने के लिए इलाहाबाद भेज दिया। विरजन अपने पत्रों के माध्यम से उसका मन बहलाने का प्रयत्न करती है। परन्तु विलासी कमलाचरण की दृष्टि में विरजन के इस निश्छल प्रेम का कोई मोल न था। उसके मन में प्रेम की नही भोग की लालसा थी। वह विरजन को मन ही मन में बुरा भला कहता है " उसे मुझसे प्रेम नही मुख और लेखनी का प्रेम भी कोई प्रेम है ? मैं चाहे उस पर प्राण ही क्यों न वारूँ पर उसका प्रेम वाणी और लेखनी से बाहर न निकलेगा। ऐसी मूर्ति के आगे जो पसीजना जानती ही नहीं, सिर पटकने से क्या लाभ ?।"[1] भोग–विलास की कामना करने वाले को शुद्ध प्रेम से संतुष्टि भला कैसी मिल सकती है। इस अनमेल विवाह का परिणाम यह हुआ कि वह प्रेम और सौन्दर्य की प्रतिमा विरजन के स्थान पर, माली की कुँवारी कन्या सरयू जो कि विरजन के पैरों की धूल के बराबर भी न थी, से रासलीला रचाने लगता है क्योंकि उसे तो केवल स्त्री शरीर से प्रयोजन था– "सरयू सुन्दरी न थी, तथापि कमला सौन्दर्य का इच्छुक न था, जितनी किसी विनोद की सामग्री का। कोई भी स्त्री, जिसके शरीर पर यौवन की झलक हो, उसका मन बहलाने के लिए समुचित थी।"[2] इस अवैध प्रेम का

---

[1] वरदान – प्रेमचंद पृष्ठ 103

[2] वरदान – प्रेमचंद पृष्ठ 103

दुष्परिणाम यह होता है कि कमलाचरण को अपनी जान से हाथ धोना पड़ता है और विरजन को बालपन में ही बैधव्य का मुख देखना पडता है। उसका घर संसार बसने से पहले ही उजड़ जाता है।

"प्रेमाश्रम में 'गायत्री' और 'ज्ञानशंकर के अनैतिक प्रेम के लिए वह हिन्दू समाज की उस कुत्सित प्रथा को दोषी ठहराते है जो विधवाओं को पुनर्विवाह की अनुमति नही देता, क्योंकि इस समाज व्यवस्था के अनुसार यह घोर पाप है। उसे तो अपनी समस्त इच्छाओं , वासनाओं और स्वाभाविक प्रवृत्तियों का दमन करके पति–परायणता का व्रत निभाने का कठोर आदेश था। इसके लिए हिन्दू समाज के ठेकेदार धर्मशास्त्रों की दुहाई देते थे और इस आदेश का उल्लंघन करने वाले को समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता था। धर्म के ठेकेदारों द्वारा लगाए गए इस प्रतिबन्ध के चलते–" लाखों विधवाएं जीवित लाश बनी हुई थी। नर पिशाच उन्हें नोचते खसोटते थे और उसके सतीत्व को लूटने के लिए भाँति–भाँति के लटके रचते थे। फलतः वे धर्म भ्रष्ट होती थी, वेश्यावृत्ति स्वीकार करने को मजबूर होती थीं अथवा फिर आत्महत्या करके जीवन से पिण्ड छुड़ाती थी।" [1]

किसी युवा निःसन्तान विधवा के लिए केवल पति की यादों के सहारे जीवन बिता देना संभव नही है ऐसी स्थिति में जबकि उसके समक्ष तरह–तरह के प्रलोभन हों। – इस तथ्य का यर्थाथ निरूपण प्रेमचन्द ने गायत्री के प्रसंग से किया है। "प्रेम की प्यास अमर है और जीवन को सुखी सार्थक करती है। इस स्वाभाविक प्यास की तृप्ति न होने के कारण निस्संतान युवा विधवाओं की वासनाओं का आवेग उत्कर हो जाता है, जरा से प्रलोभन मिलने पर वह बाँध तोड़ दे, तो अस्वभाविक क्या है?।"[2]

गायत्री अपनी छोटी बहन विद्या के पति ज्ञानशंकर के रूप तथा गुण पर मोहित हो जाती है वह उसकी प्रशंसा इन शब्दों में करती है–" तुम्हारी बातों में जादू है, तुम्हारी बातों से कभी मन तृप्त नही होता, तुम्हारी बातों में मुझे थियेटर से अधिक आनन्द मिलता है।" [3] गायत्री के मुख से अपनी इतनी प्रशंसा सुनकर ज्ञानशंकर का मन असीम सुख की अनुभूति करता है। गायत्री के प्रति ज्ञानशंकर का आकर्षण केवल उसके रूप लावण्य के कारण नही था बल्कि उसकी अतुल्य

---

[1] प्रेमचंद के उपन्यास साहित्य में सांस्कृतिक चेतना–नित्यानन्द पटेल– पृष्ठ 160

[2] प्रेमचंद के उपन्यास साहित्य में सांस्कृतिक चेतना–नित्यानन्द पटेल– पृष्ठ 161

[3] प्रेमाश्रम–प्रेमचंद पृ0105।

धन सम्पत्ति पर भी उसकी निगाहें टिकी हुई थीं। अतः उसने गायत्री को अपने प्रेम–पाश में बॉध रखने के लिए सैकड़ो जाल बिछाये जिसमें वह सफल भी रहा। विद्या पर जब अपने पति की वास्तविकता खुलती है तो वह उसके इस विश्वासघात को सहन नही कर पाती और आत्महत्या कर लेती है। बहन की हृदय विदारक मौत ने गायत्री की सोई हुई अंतरात्मा को जगा दिया और वह ज्ञानशंकर के प्रेमजाल से मुक्त हो गयी अब वह उससे उतनी ही घृणा करने लगी जितना कभी ज्ञानशंकर के लिए उसके हृदय में प्रेम था गायत्री के यह शब्द उसकी घृणा और ग्लानि के परिचारक है– " उसने मेरे व्रत और नियम को धूल में मिला दिया केवल अपने ऐश्वर्य प्रेम के हेतु मेरा सर्वनाश कर दिया। [1] "जी चाहता है कि उसने जैसे मेरे जीवन को भ्रष्ट किया है, वैसे ही मैं भी उसका सर्वनाश कर दूँ।"[2] इस प्रकार "गायत्री की कथा प्रेम से शुरूआत होकर आत्मग्लानि पर समाप्त होती है।"

'गायत्री' ने जो किया वह तो पाप है ही लेकिन गायत्री से भी बड़ा पापी यह समाज है जो बालिका, युवती, प्रौढ़ा तथा वृद्धा विधवा के लिए एक समान विधान रचता है जिसके चलते न जाने कितनी बाल तथा युवती विधवाओं की अपूर्ण इच्छाएँ तथा अतृप्त कामनाएं विकृत रूप–धारण कर लेती है जिसका परिणाम समाज में प्रायः अवैध सम्बन्धों के रूप में दृष्टिगोचर होता हैं।

वेश्या समस्या –

'वेश्या' नारी जाति का वह विकृत रूप है जिसे हमारे समाज में सर्वाधिक घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। उसे कदम–कदम पर अपमानित किया जाता है। समाज के प्रतिष्ठित लोग जिनके दम से रात्रि में उसके साए से भी दूर भागते हैं। वह दिन के उजाले में उसके साए से भी दूर भागते है। जैसे वह कोई छूत की बीमारी हो। वेश्या–समस्या हमारे समाज की एक ऐसी ज्वलन्त समस्या है। जो प्रचीन काल से चली आ रही है और तब से वेश्या कहलाने वाली नारी तिरस्कार और अपमान का हलाहल पीती चली आ रही है। उन्हें हीन दृष्टि से देखने वाला समाज यह क्यों नही सोचता कि जिस भारतीय समाज में नारियाँ अपने सतीत्व की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहूति तक दे देती थीं। उसी

---

[1] प्रेमाश्रम प्रेमचंद पृष्ठ 532 से 533

[2] प्रेमाश्रम प्रेमचंद पृष्ठ 533

समाज में नारी वेश्या का रूप धारण क्यों करती है। इसके लिए हमारे समाज में प्रचीन काल से चली आ रही वह रूढ़िगत परम्पराएँ उत्तरदायी है जिनके अन्तर्गत नारी को घर की चार दीवारी में कैद करके रखा जाता है। परिवार में प्रत्येक सदस्यों का पोषण करना और उनकी सेवा करना उसका परम धर्म था। उसका अपना तो जैसे कोई अस्तित्व ही नहीं था। वह हर प्रकार से पुरूष की आश्रिता बनकर रहती थी, परिणाम स्वरूप पुरूषों ने अहंकार वश नारी को अपने चरणों की दासी समझ लिया। इन परिस्थितियों में समाज मं उसका हर प्रकार से शोषण हुआ। उसे केवल भोग विलास की वस्तु समझा जाने लगा । उसके साथ पशुवत् व्यवहार किया जाने लगा। ऐसी परिस्थिति में क्षुब्ध होकर नारी का पतित और पथभ्रष्ट हो जाना स्वाभाविक है। ऐसी नारियों को समाज वेश्या की संज्ञा देता है और समाज से उन्हे बहिस्कृत कर दिया जाता है।–" प्रेमचंद युगीन समाज में नैतिकता का दोहरा मानदण्ड़ प्रचलित था जिन कार्यो के लिए पुरूष की कोई आलोचना नही होती थी, उन्हीं के कारण नारी पतिता और कुलटा समझी जाती थी। नारी और पुरूष की इस सामाजिक स्थिति के वैषम्य तथा उसके परिणाम स्वरूप उत्पन्न नारी जीवन की समस्याओं को प्रेमचंद ने अपनी गहन सामाजिक दृष्टि से परखा था।"[1]

प्रेमचंद ने नारी और पुरूष को एक दूसरें का पूरक और समाज का अभिन्न और अनिवार्य अंग माना है। समाज के समुचित विकास के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि पुरूष और स्त्री को समानता का अधिकार मिले। नारी को पुरूष की भाँति सम्मान मिले ताकि वह पथ भ्रष्ट न होने पाए। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों 'सेवासदन' 'गबन' 'गोदान' तथा अपनी कुछ कहानियों जैसे 'नरक का मार्ग' और निर्वासन इत्यादि में उन सभी सामाजिक आर्थिक तथा मनोवैज्ञानिक कारणों पर प्रकाश डाला है जो नारी को वेश्या बनने पर विवश कर देते है। प्रेमचंद ने समाज के इस उपेक्षित–बहिष्कृत और शोषित–वर्ग की कभी भी निन्दा नहीं की न ही उसको कभी घृणा की दृष्टि से देखा। इसके विपरीत उनके ह्रदय में इस वर्ग के लिए सहानुभूति और दया के भाव थे। क्योंकि वह अच्छी तरह से जानते थे कि कोई भी नारी इस व्यवसाय को सहर्ष स्वीकार नहीं करती बल्कि परिस्थितियाँ उसे ऐसा करने पर बाध्य कर देती है। 'सेवासदन' में उन्होनें इसी तथ्य का उद्घाटन किया है। विवाहोपरान्त सुमन जिन विषम परिस्थितियों में जीवन व्यतीत करती है उससे यह कटु सत्य उभर कर सामने आता है कि पत्नी

---

[1] प्रेमचंद साहित्य में व्यक्ति और समाज डा0 रक्षा पुरी पृ0 116

के रूप में नारी की झोली में केवल तिरस्कार और अपमान ही आता है और यही नारी वेश्या बन जाती है तो –पुरुषवर्ग अपनी कामवासना की तृप्ति के लिए उसके चरणों में धन और वैभव का ढेर लगा देता है। पत्नी के रूप में सुमन को अपने पति गजाधर से केवल प्रताड़ना और तिरस्कार ही मिला वहीं वेश्या भोलीबाई के समक्ष शहर के बड़े–बड़े रईस और प्रतिष्ठित लोग झुकते हैं। यही नही पद्मसिंह जैसे शिक्षित व्यक्ति भी उसका सम्मान करते हैं। इस सामाजिक अन्याय को सुमन सहन नही कर पाती उसके मन में विद्रोह की भावना जाग्रत हो जाती है। ऐसे में जब पति गजाधर उसे घर से निकाल देता है। तो जीवन निर्वाह के लिए वह वेश्या वृत्ति अपना लेती है। सुमन के वेश्या बनने के पीछे दो कारण विद्यमान है। जिन्हें प्रेमचंद सुमन के माध्यम से ही व्यक्त करते है। वह विट्ठलदास से कहती है–" मै जानती हूँ कि मैने अत्यन्त निकृष्ट कर्म किया है। लेकिन मै विवश थी, इसके सिवा मेरे लिए और कोई रास्ता न था। इतना तो आप जानते ही हैं कि संसार में सब की प्रकृति एक सी नही होती कोई अपना अपमान सह सकता है, कोई नही सह सकता। मै एक ऊँचें कुल की लड़की हूँ, पिता की नादानी से मेरा विवाह एक दरिद्र मूर्ख मनुष्य से हुआ, लेकिन दरिद्र होने पर भी मुझसे अपमान न सहा जाता था। जिनका निरादर होना चाहिए उनका आदर होते देखकर मेरे ह्रदय में कुवासनाएँ उठने लगती थीं।––सम्भव था कि कालान्तर में यह अग्नि आप ही आप शान्त हो जाती पर पद्म सिंह के जलसे ने इस अग्नि को भड़का दिया। इसके बाद मेरी जो दुर्गति हुई वह आप जानते ही है। पद्म सिंह के घर से निकलकर मै भोलीबाई की शरण में गयी। मगर उस दशा में भी मैं इस कुमार्ग से भागती रही। मैने चाहा कि कपड़े सीकर अपना निर्वाह करूँ पर दुष्टों ने मुझे ऐसा तंग किया कि अन्त में मुझे इस कुएँ में कूदना पड़ा।"[1] कहीं–कहीं नारी का भोलापन और उसकी दुर्बल मनोंवृत्ति भी उसके पतन का कारण बनती है। भोलीबाई के ठाठ बाट और रूप रंग से भी अपनी तुलना करते हुए सुमन सोचती है–"मै भी यदि वैसा बनाव–चुनाव करूँ, वैसे गहने कपड़े पहनूँ तो मेरा रंग–रूप और न निखर जाएगा, मेरा यौवन ओर न चमक जाएगा ?"[2]

सुमन के मन में आदर एवं सम्मान की लालसा इतनी तीव्र हो गयी कि उसे प्राप्त करने के लिए वह पतन के गहरे गर्त में गिर पड़ी। अपनी इस दुर्बलता

---

[1] सेवा सदन, पृ0 64

[2] सेवा सदन, पृ0 31

को वह स्वयं स्वीकार करती है–"आप चाहे समझते हों कि आदर और सम्मान की भूख बड़े आदमियों को ही होती है।–– वे इसके लिए चोरी, छल–कपट सब कुछ कर बैठते है। आदर में वह सन्तोष है जो धन और भोग विलास में भी नही है। मेरे मन में नित्य यही चिन्ता रहती थी कि आदर कैसे मिले। इसका उत्तर मुझे कितनी ही बार मिला, लेकिन आपके होली वाले जलसे के दिन जो उत्तर मिला, उसने भ्रम दूर कर दिया, मुझे आदर और सम्मान का मार्ग दिखा दिया। यदि मै उस जलसे में न जाती तो आज मैं अपने झोपड़े में संतुष्ट होती। आपको मै बहुत सच्चरित्र पुरुष समझती थी इसलिए आपकी रसिकता का मुझ पर भी प्रभाव पड़ा। –– एक सरल हृदया आदर की अभिलाषिणी स्त्री पर इस हृदय का जो पल हो सकता था वही मुझपर पर हुआ।"[1]

वेश्या के साथ समाज किस प्रकार का कठोर व्यवहार अपनाता है। प्रेमचंद ने सेवासदन में इसका मार्मिक वर्णन किया है। जिस समाज की दोष पूर्ण व्यवस्था उसे पतिता बनने पर विवश करती है। वही समाज उसका बहिष्कार करता है और उसे घृणा की दृष्टि से देखता है। यद्यपि सुमन ने वेश्या वृत्ति बहुत थोड़े समय के लिए अपनाई थी। लेकिन उसका दुष्परिणाम उसे हर कदम पर अपमानित होकर भुगतना पड़ा। सुमन जब विधवा आश्रम में रहने लगती है तो सर्वप्रथम उसे इस कड़वे सत्य का सामना करना पड़ता है कि अब अगर वह सोने की भी बनकर आ जाएँ तो उसे पहले की भॉति सम्मान नही मिल सकता आश्रम रहने वाली विधवाओं को जब यह पता चलता है कि सुमन वेश्या है तो वह सब आश्रम से जाने लगती है। सुमन को विवश होकर आश्रम छोड़ना पड़ता है। आश्रम से निकलकर सुमन अपनी बहन 'शान्ता' के साथ रहने लगती है लेकिन यहाँ भी उसे वह सम्मान नहीं मिलता जिसकी वह अधिकारिणी है। उसका बहनोई सदन उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखता है। सदन की माता जो कुछ सुमन के विषय में कहती है वह हमारे समाज की दूषित मानसिकता का द्योतक है – चलो वह बड़ी नेम धरम से रहने वाली है सात घाट का पानी पीके आज नेम वाली बनी है। देवता की मूरत टूट कर फिर नही जुड़ती। वह अब देवी बन जाए तब भी मै उसका विश्वास न करूँ।

अपनी बहन शान्ता के विवाह के अवसर पर घटित होने वाली दुर्घटना के लिए वह स्यवं को जिम्मेदार ठहराती है– " अगर विलास की इच्छा और अपमान

---

[1] प्रेमचंद–सेवा सदन, पृ0 117

ने उसकी लज्जा शक्ति को शिथिल न कर दिया होता तो वह कदापि घर से बाहर पाँव न निकालती।——घर से निकलते समय उसे यह खयाल भी न था कि मुझे कभी दालमण्डी में बैठना पड़ेगा। वह बिना कुछ सोचे–समझे घर से निकल खड़ी हुई। उस शोक और नैराश्य की अवस्था में वह भूल गई कि मेरे पिता है, बहन है।"[1] किसी नारी के वेश्या बनने की सजा उसके सम्बन्धियों को भी भुगतनी पड़ती है। उन्हें समाज हेय दृष्टि से देखता है वेश्या वृत्ति का यह अभिशाप उसके परिजनों के ऊपर दुर्भाग्य की काली छाया की भाँति मँडराता रहता है जो उनका कहीं भी पीछा नही छोड़ता। सुमन की बहन शान्ता का विवाह केवल इसलिए रूक गया कि उसकी बहन सुमन वेश्या है जिन लोगों के बल पर वेश्या वृत्ति फलती–फूलती है वही उसके प्रति समाज में घृणा का प्रचार करते है। सदन चोरो की भॉति सुमन के कोठे पर तो जा सकता है लेकिन उसकी बहन से विवाह नही कर सकता। समाज की इस खोखली नैतिकता पर प्रेमचंद ने कितना करारा व्यंग्य किया है –" उसे लौकिक शास्त्र में यह प्रेम उतना अक्षम्य न था जितना सुमन की परछाई का उसके घर में आ जाना।[2] सुमन के पिता तो इस अपमान को सहन न कर पाए और आत्महत्या कर ली।

हमारे भारतीय समाज में नारी को ऐसा दीन–हीन बनाकर रखा गया है कि उसे जीवन व्यतीत करने के लिए किसी न किसी रूप में पुरुष का आश्रय लेना ही पड़ता है और इस आश्रय के अभाव में वह पूरी तरह से असुरक्षित हो जाती है और असुरक्षा उसे पतन के मार्ग पर ले जाने का कारण बनती है–" किसी भी समाज के लिए यह अत्यन्त लज्जाजनक है कि नारी पुरुष के अत्याचारों से पीड़ित होकर जीवन–निर्वाह के लिए शरीर का व्यवसाय करें। वेश्या वृत्ति हमारे सामाजिक जीवन को विषाक्त बना देती है।"[3] प्रेमचंद के शब्दों में – " हमने वेश्याओं को शहर से बाहर रखने का प्रस्ताव इसलिए नही किया कि हमें उनसे घृणा है। हमें उनसे घृणा करने का कोई अधिकार नही। यह उनके साथ घोर अन्याय होगा। यह हमारी ही कुवासनाएँ, हमारे सामाजिक अत्याचार, हमारी ही कुप्रथाएं, (मुहल्ला) हमारे ही जीवन का कुलुषित प्रतिबिम्ब हमारे ही अधर्म का साक्षात् स्वरूप है। हम किस मुँह से उनसे घृणा करें। उनकी अवस्था

---

[1] प्रेमचंद–सेवा सदन, पृ0 117

[2] प्रेमचंद–सेवा सदन, पृ0 117

[3] प्रेमचंद–साहित्य में व्यक्ति और समाज– डा0 रक्षापुरी– पृष्ठ 147

बहुत शोचनीय है। हमारा कर्तव्य है कि हमें उन्हें सुमार्ग पर लायें, उनके जीवन को सुधारें और यह तभी हो सकता है जब वे शहर से बाहर दुर्व्यसनों से दूर रहें। हमारे सामाजिक दुराचार अग्नि के समान है, और ये अभागिन रमणियों तृण के समान। अगर अग्नि को शान्त करना चाहते हो तो तृण को उससे दूर कर दीजिए, तब अग्नि आप ही आप शान्त हो जायेगी।"[1] इसके विपरीत सदन जैसे व्यक्ति है जो वेश्याओं के प्रति दोहरा दृष्टिकोण रखते हैं एक ओर तो वह वेश्या के साथ अवैध सम्बन्ध स्थापित करने में कोई आपत्ति नहीं समझते दूसरी ओर उनकी निन्दा करने का कोई भी अवसर हाथ से जाने नहीं देते। सदन के यह शब्द इस बात के परिचारक है–" हाँ, ये स्त्रियाँ बहुत सुन्दर है, बहुत ही कोमल है, पर उन्होंने अपने इन स्वर्गीय गुणों को ऐसा दुरूपयोग किया है। उन्होंने अपनी आत्मा को कितना गिरा दिया है। हाँ केवल इन रेशमी वस्त्रों के लिए इन जगमगाते हुए आभूषणों के लिए उन्होंने अपनी आत्माओं का विक्रय कर डाला। वे ऑखे जिनसे प्रेम की ज्योति निकलनी चाहिए थी, कपट कटाक्ष और कुचेष्टाओं से भरी हुई हैं। ––कितनी अधोगति है।"[2] हमारे समाज कि विडम्बना यह है कि वह वेश्या समस्या के प्रति उदासीन है कोई नारी किसी विवशता के कारण अगर पतन के इस दलदल में फँस जाए तो हमारे पुरुष प्रधान इस समाज में किसी भी पुरुष में इतना बाहुबली नही है कि वह उसे कीचड़ से निकाल सके। प्रेमचंद अपनी लेखनी के माध्यम से उनके पुरुषत्व से पीड़ित वेश्याओं को सामाजिक न्याय दिलाने के लिए उचित हों। पद्‌म सिंह के यह शब्द प्रेमचंद के इस प्रयास की ओर संकेत करते है– "आप अगर एक घंटे के लिए मेरे साथ दालमंड़ी चले तो आपको मालूम हो जायेगा कि जिसे आप ज्वालामुखी पर्वत समझते हैं वह केवल बुझी हुई आग का ढेर है। अच्छे और बुरे आदमी सब जगह होते हैं। वेश्याएँ भी इस नियम से बाहर नही हैं। आपको यह देखकर आश्चर्य होगा कि उनमें कितनी धार्मिक श्रृद्धा, पाप जीवन से कितनी घृणा, अपने जीवकोद्धार की कितनी अभिलाषा है। उन्हें केवल एक सहारे की आवश्यकता है जिसे पकड़कर वह बाहर निकल जायँ।" [3] इसके साथ ही साथ प्रेमचंद इस तथ्य का उद्‌घाटन भी करते हैं कि वेश्याओं में भी नारी सुलभ गुण विद्यमान होते है दूसरी नारियों की भाँति उनके ह्रदय में भी पुरुष प्रेम की तीव्र लालसा व्याप्त होती है। वेश्याओं के प्रति लोगों की यह धारणा है कि वे धनी व्यक्तियों को अपने झूठें प्रेमपाश में

---

[1] प्रेमचंद–सेवासदन– पृष्ठ 215–216।

[2] प्रेमचंद– सेवासदन, पृष्ठ 219–229।

[3] प्रेमचंद– सेवासदन, पृष्ठ 311।

बॉध कर उन्हें कंगाल बना देती हैं लेकिन सभी वेश्याओं में यह बात चरितार्थ नही होती अगर वह किसी पुरुष को सच्चे हृदय से प्रेम करने लगती है। तो उस पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर देती है परन्तु वासना के मद में चूर पुरुष की ऑख उसके इस निश्छल प्रेम को नही देख पाती। 'सेवासदन में सुमन के चरित्र में हमें यह गुण दृष्टिगोचर होता है। वह सदन पर मुग्ध होकर उससे प्रेम करने लगती है लेकिन सदन उसके प्रेम को दिखावा मात्र समझता है और धन के बल पर उसका प्रेम खरीदना चाहता है। सदन के इस व्यवहार से सुमन दुखी हो जाती है। सुमन की भॉति गबन के जोहरा भी रमानाथ के निष्कपट व्यवहार पर मुग्ध है। विपत्ति के समय में वह रमानाथ की हर सम्भव सहायता करती है। इस विषय में प्रेमचंद लिखते हैं–"जीवन में जोहरा को यह पहला आदमी ऐसा मिला था जिसने उसके सामने अपना हृदय खोलकर रख दिया, जिसने उससे कोई परदा न रखा। ऐसे अनुराग रत्न को वह खोना नही चाहती थी।"[1] रमानाथ जब जोहरा से वेश्याओं की बेवफाई की बात करता है तो वह मर्दा की मानसिकता पर से पर्दा हटाती हुई कहती है–"मुआफ कीजिएगा, आप मर्दो की तरफदारी कर रहें है। हक यह है कि वहॉ आप लोग दिल बहलाव के लिए जाते है, महज़ ग़म ग़लत करने के लिए, महज़ आनन्द उठाने के लिए। जब आपको वफ़ा की तलाश ही नही होती, तो वह मिले क्यों कर?" [2]

प्रेमचंद समाज से वेश्यावृत्ति समाप्त करना चाहते थे। "सेवासदन" में प्रारम्भ में वे विट्ठलदास द्वारा दालमंडी से सुमन का उद्धार कराके उसे विधवा आश्रम में रखवा देते है, लेकिन इस समस्या का वैयक्तिक समाधान है इसलिए आगे चलकर वे विट्ठलदास और पद्म सिंह के नेतृत्व में आन्दोलन करवाते हैं–" वेश्याओं को शहर के मुख्य स्थान से हटाकर बस्ती से दूर रखा जाय (2) उनको शहर के मुख्य सैर करने के स्थानों और पार्को में आने का निषेघ किया जाय, (3) वेश्याओं का नाच कराने के लिए एक भारी टैक्स लगाया जाय, और ऐसे जलसे किसी हालत में खुले स्थानों में न हो।"[3] इस प्रस्ताव का तीव्र विरोध होता है परन्तु पद्मसिंह के प्रयास के परिणाम स्वरूप यह प्रस्ताव पारित हो जाता है। प्रेमचंद वेश्याओं को नगर के प्रमुख स्थानों से हटाना चाहते है इसके पीछे उनका

---

[1] गबन, प्रेमचंद पृ0 291।

[2] गबन, प्रेमचंद पृ0 286।

[3] सेवासदन, प्रेमचंद पृ0 182।

यह आशय कदापि नहीं है कि व उन्हे बहिष्कृत करना चाहते है या उनसे घृणा करतें हैं वरन् वह उन्हें सुमार्ग में लाने के लिए शहर से दूर रखना चाहते हैं।

परन्तु प्रेमचंद द्वारा प्रस्तुत किया गया यह समाधान वेश्या समस्या का कोई स्थायी समाधान नहीं था क्योंकि हिन्दू समाज व्यवस्था इतनी जटिल है कि यदि कोई स्त्री एक बार वेश्या वृत्ति अपनाने के बाद उसे त्यागना चाहे तो समाज उसे चैन से जीने नही देता है। "गबन की जोहरा इसका ज्वलन्त उदाहरण है। जोहरा जालपा से प्रभावित होकर उसकी शरण में आश्रय लेना चाहता है।"[1] लेकिन समाज की रूढ़िवादी परम्परा के चलते वह अपने इस प्रयास में असफल होकर गॉव की ओर मुड़ जाती है लेकिन वहाँ भी उसे नहीं रहने दिया जाता और अन्त में हर ओर से निराश होकर वह मृत्यु का सहारा लेती है। [2] प्रेमचंद का मानना है कि, जब समाज के व्यक्तियों में आत्मगौरव की भावना उत्पन्न हो जाएगी और उनके अन्दर इतना साहस भर जायेगा कि वह बिना किसी भय के वेश्या कहलाने वाली नारियों के उद्धार में एक जुट होकर लग जाऍगें। तभी इन असहाय नारियों का उद्धार सम्भव है। प्रेमचंद ने वेश्या समस्या के समाधान के लिए कई पूर्ण अपूर्ण समाधान प्रस्तुत किए हैं। जिनमें एक यह है कि उन्हें बस्ती से दूर रखा जाए ताकि समाज में यह कुत्सित वृत्ति और अधिक न फैलने पाये, लेकिन प्रेमचंद इसे समस्या का पूर्ण समाधान नही मानते। यद्यपि वे वेश्याओं को नगर से दूर रखने का सुझाव देतें है तथापि वे व्यक्ति के स्वभाव को ही अधिक महत्व देते है, इस विषय में वे कहते है कि" इससे यही सिद्ध होता है कि इस विषय में मनुष्य का स्वभाव ही प्रधान है।आप इस आन्दोलन से स्वभाव तो नही बदल सकते।"[3]

इस प्रकार प्रस्तुत समाधान समस्या का आंशिक हल है। वेश्या समस्या का दूसरा हल प्रेमचंद ने सेवासदन जैसी संस्थाओं की स्थापना के द्वारा सुझाया जिसमे उनके लिए ऐसी शिक्षा की व्यवस्था की जाय जो उन्हें स्वावलम्बी तथा आत्माश्रयी बनाने में सहायक हों। लेकिन पहले समाधान की तरह इसे पूर्ण समाधान नहीं कहा जा सकता क्योंकि मात्र स्वावलम्बन और आत्मनिर्भरता से स्त्री की समस्त आवश्यकताएं पूर्ण नही होती किन्तु पराधीन रहकर उत्पीड़न जीवन

---

[1] प्रेमचंद, गबन पृ0 399।

[2] प्रेमचंद, गबन पृ0 418।

[3] सेवासदन, प्रेमचंद पृ0 126।

व्यतीत करने की अपेक्षा, इस प्रकार सम्मान पूर्वक जीवन व्यतीत करना इस प्रकार की नारियों के लिए अधिक श्रेयस्कर हैं।

तीसरा समाधान यह है कि वेश्याओं के प्रति समाज के दृष्टिकोण से परिवर्तन लाया जाय। समाज के युवावर्ग को ऐसी प्रेरणा दी जाय कि वह समाज द्वारा उपेक्षित ऐसी असहाय नारियों से विवाह करके उन्हें समाज में सम्मान पूर्वक रहने का अवसर प्रदान करें ताकि इस समस्या को समूल नष्ट किया जा सके। प्रेमचंद जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से समाज से वेश्या वृत्ति को समाप्त करने और नारी जाति को इस अभिशाप से मुक्ति दिलाने का भरसक प्रयत्न किया है। प्रेमचंद जी ने अपने सुधारवादी दृष्टिकोण से जो समाधान प्रस्तुत किये हैं इससे समाज को प्रेरणा तो अवश्य मिली, परन्तु मनुष्य अपनी कुवासानाओं का इतना दास है कि उससे घृणा करते हुए भी उसे छोड़ नही पाता।

नारी शिक्षा और स्वतन्त्रता–

उन्नीसवीं शताब्दी के द्वितीय चरण में अनेक आन्दोलन हुए, उन आन्दोलनों में नारी शिक्षा और स्वतन्त्रता पर विशेष ध्यान दिया गया और इन आन्दोलन के सभी वर्ग समर्थक रहे। लेकिन नारी शिक्षा को लेकर सनातन तथा प्रगतिशील विचारकों में काफी मतभेद हुआ क्योंकि सनातन पंथी विचारधारा युग के साथ चलने को तैयार नही थी, अतः परिवर्तन के चलते टक्करों के कारण टूटकर बिखर गई और प्रगतिवादियों ने युग का प्रर्वतन किया। परिणाम स्वरूप नारियों को स्वावलम्बी बनाने हेतु सन् 1916 ई0 में प्रथम महिला विश्वविद्यालय की स्थापना छोन्टो केशव कारवों के द्वारा हुई और प्रथम उपकुलपति सर भण्डारकर नियुक्त हुए। जकरिया का कथन है कि–" यह भारतवर्ष का प्रथम स्वतन्त्र विश्वविद्यालय है जो बिना सरकारी सहायता के अपना अस्तित्व बनाये रहा।"[1]

"भारत में स्त्री–शिक्षा के क्षेत्र में पथ–प्रदर्शक होने का श्रेय ईसाई मिशनरियों को है, जिन्होंने विशुद्ध सेवा भावना से इसे बढ़ावा दिया। बह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज, थियासोफिकल सोसाइटी रामकृष्ण मिशन तो इस क्षेत्र में बाद में आए और इनके आने के बाद ईसाई मिशनरियों का प्रभाव कम हुआ। ये संस्थाएँ जहाँ अपना समाज अथवा मन्दिर स्थापित करती, वही एक

---

[1] जकारियाः रीजेन्ट इण्डिया पृ0 65।

कन्या–पाठशाला भी खोल दी जाती थी। जनता को अंग्रेजी स्कूलों की अपेक्षा इन पर अधिक विश्वास था। ब्रहम समाज और प्रार्थना समाज ने पश्चात्य शिक्षा पर अधिक बल दिया। आर्य समाज द्वारा स्थापित जालंधर और देहरादून की महादेवी कन्या पाठशाला में प्रचीन और अर्वाचीन शिक्षा प्रणाली का अच्छा समन्वय था।"[1] प्रेमचंद नारी में दिव्य गुणों की स्थापना चाहते थे। उनका मानना था कि नारी पूर्ण रूप से शिक्षित हो और अपने अस्तित्व को समझे यह तभी सम्भव है जब नारी की पढ़ाई–लिखाई की ओर ध्यान दिया जाए। प्रेमचंद के उपन्यास जगत में नारियॉ शिक्षित नजर आती हैं। "सेवासदन" में सुमन की छोटी बहन शान्ता अपने श्वसुर को पत्र लिखती है। इस पत्र के द्वारा उसके दृढ विचारो की पुष्टि होती है। ' निर्मला ' उपन्यास में निर्मला विवाह के बाद भी पढ़ना चाहती है और मंशाराम से पढ़ने का प्रयास भी करती है। प्रेमचंद स्त्री–शिक्षा को पूर्ण रूप से शिक्षित देखना* चाहते थे और इसके साथ–साथ कानूनी अधिकार भी दिलाना चाहते थे जिससे पुरुष उसकी कमाई न ऐठ सके। प्रेमचंद अनिवार्य शिक्षा के पक्षधर है। वह गबन उपन्यास की पात्र रतन के पति हाईकोर्ट के एडवोकेट काशी के सर्वाधिक प्रसिद्ध वकील पं0 इन्द्रभूषण से प्रश्न करवाते हैं–" आपके बोर्ड़ में लड़कियो की अनिवार्य शिक्षा का प्रस्ताव कब से पास होगा? जब तक स्त्रियों की शिक्षा का काफी प्रचार न होगा, हमारा कभी उद्धार नही होगा।"[2] गोदान उपन्यास में वीमेन्स 'लीग' में प्रो0 मेहता के माध्यम से कहलाते है–" मै नही कहता देवियों को विद्या की जरूरत नही है। है और पुरुषों से अधिक है। स्त्री की विद्या और अधिकार हिंसा और विध्वंस में नही, सृष्टि और पालन में हैं।"[3]

प्रेमचंद ने नारी के सम्पूर्ण विकास के लिए दो चीजों को महत्व दिया पहला शिक्षा तथा दूसरा महत्व अधिकारों का है। प्रेमचंद का मानना है कि स्त्री को पुरुषों के जैसे अधिकार देना चाहिए ताकि वह दूसरे की आश्रित न रह सके और उसे सभी क्षेत्रों में बराबर का स्थान मिल सके। अधिकार विहीन स्त्री के प्रति प्रेमचंद को पर्याप्त सहानुभूति है। 'गबन' में पण्डित इन्द्रभूषण के उपरान्त उनके भतीजा मणिभूषण ने उनके रुपये–पैसे और घर अपने नाम करवा लेता है और उसकी पत्नी रतन के लिए दस–ग्यारह रूपये का मकान ठीक करवा देता है, तब

---

[1] नारीपात्र– गीतालाल, 13–14।

[2] गबन–प्रेमचंद पृ0 103

[3] गोदान–प्रेमचंद पृ0–3, 4., 5. 6,7– गबन प्रेमचंद पृ0 262–263।

रतन की ऑखें खुली है और वह गुस्से में आकर कहती है–"मैं अपनी मर्यादा की रक्षा स्वयं कर सकती हूँ। तुम्हारी मदद की जरूरत नही। मेरी मर्जी के बगैर तुम यहाँ की कोई चीज नही बेच सकते।"[1] स्वार्थी मणिभूषण ने इसका जो उत्तर दिया उससे अधिकार वंचिता भारतीय स्त्री के भावी यातना मय जीवन की करुण कहानी स्पष्ट हो जाती है–" आपका इस घर पर और चाचाजी की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नही।"[4] सम्मिलित परिवार में विधवा को अपने पुरुष की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नही होता।"[5] अगर चाचाजी अपनी सम्पत्ति आपको देना चाहते, तो कोई वसीयत अवश्य लिख जाते।"[6]

अन्त में उसने असीम वेदना के साथ प्रश्न किया–" मगर ऐसा कानून बनाया किसने? क्या स्त्री इतनी तुच्छ नगण्य है? क्यों?[7] जरूरत इस बात की है कि "स्त्रियॉ शिक्षित हों, और साथ–साथ स्त्रियों को वे अधिकार मिल जाये, जो पुरुषों को मिले हुए हैं।" [8] जब तक स्त्रियों के स्वत्व की रक्षा राज–निर्धारित कानूनों से नही होगी, तब तक उन्हें रतन के समान पश्चाताप की अग्नि में झुलसना ही पड़ेगा और विवश होकर कहना पड़ेगा कि–" बहनों किसी सम्मिलित परिवार में विवाह मत करना, करना तो जब तक अपना घर अलग ना बना लो चैन की नींद मत सोना। यह मत समझों कि तुम्हारे लिए फूलों की सेज नही, कांटों की शय्या है, तुम्हें पार लगाने वाली नौका नही, तुम्हे निगल जाने वाला जन्तु है।"[2]

यद्यपि प्रेमचंद ने स्त्रियों की सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक तथा राजनीतिक उन्नति के लिए समानाधिकार का सदैव समर्थन करते रहे तथापि अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के अनुसार शिक्षा–ग्रहण करके पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण करने वाली शिक्षित स्त्रियों की विलासिता एवं स्वार्थपरता से क्षुब्ध नजर आते है। उन्होंने गोदान उपन्यास की मालती एवं मिस पद्मा की पद्मा को प्रतीक बनाकर उन शिक्षित नारियों के जीवनादर्शों की ओर संकेत किया है जो अंग्रेजी शिक्षा के परिणाम स्वरूप पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित होकर कोई न कोई व्यवसाय अपना लेती है ऐसी स्त्रियॉ विवाह से घृणा करती है क्योंकि उसे वह अपनी स्वतंत्रता में बाधक मानती है क्योंकि उनके अनुसार विवाह करें पर नारी पुरुष की दासी बन जाती है। प्रेमचंद इस तथ्य से भली भाँति परिचित थे कि पुरुषों की भाँति देश

---

[1] प्रेमचंद घर में– शिवरानी देवी पृष्ठ 260।

[2] गबन– प्रेमचंद पृ० 266।

की शिक्षित नारियां भी पाश्चात्य सभ्यता के आदर्शों को ग्रहण कर रही थी जिसके कारण उनमें परम्परागत भारतीय गुणों का लोप होता जा रहा था। इस विषय में गोदान में मिस्टर मेहता के माध्यम से कहतें है–"मुझे खेद है, हमारी बहनें पश्चिम का आदर्श ले रही है, जहाँ नारी ने अपना पद खो दिया है और स्वामिनी से गिरकर विलास की वस्तु बन गयी है। पश्चिम की स्त्री स्वच्छन्द होना चाहती है, इसलिए कि वह अधिक से अधिक विलास कर सके। हमारी माताओं का आदर्श कभी विलास नही रहा।[1] पश्चिम की स्त्री आज गृह–स्वामिनी नही रहना चाहती। भोग की विदग्ध लालसा ने उसे उच्छृखल बना दिय। है।" इसी कारण प्रेमचंद स्त्रियों को आधुनिक शिक्षा देने के पक्ष में नही थे प्रेमचंद शिक्षित नारियों द्वारा पश्चिमी सभ्यता के अनुकरण के लिए पुरूषों के अत्याचार को उत्तरदायी ठहराते हैं जिससे मुक्ति पाने के लिए शिक्षित नारी विवाह न करके पुरूषों की आधीनता से मुक्त रहना चाहती है। अपने इन विचारों को गोदान में गोविन्दी के इन शब्दों में व्यक्त करते हैं जो मालती के विवाह न करने को न्यायोचित ठहराते हुए कहती है– "नारी बहुत अच्छा करती है, जो ब्याह नही करती। अभी सब उसके गुलाम है। तब वह एक की लौंड़ी होकर रह जायगी। [2] इसके साथ ही साथ यह भी सोचती है कि " क्या मेरी दशा को देखकर उसकी आँखें न खुलती होगी। विवाहित जीवन की दुर्दशा आँखों देखकर अगर वह इसजाल में नहीं फॅसती, तो क्या बुरा करती है।[3] वास्तव में पुरुषों के अत्याचार और भोग विलास को ही प्रेमचंद शिक्षित नारियों के आत्मिक पतन का कारण मानते हैं क्योंकि अपने ऊपर होने वाले अन्याय प्रतिक्रिया स्वरूप ही उनके मन में इस प्रकार के विद्रोह की भावना उत्पन्न होती है जिसके परिणाम स्वरूप वे विवाह न करके स्वतंत्र रहकर भोग विलास का जीवन व्यतीत करना चाहती है। प्रेमचंद के मतानुसार उनकी इस धारणा को केवल पुरुष वर्ग के प्रेम और स्नेह द्वारा परिवर्तित किया जा सकता है जिनसे प्रेरणा ग्रहण करके देश की शिक्षित नारियां त्याग और सेवा के आदर्श कीं ओर उन्मुख होंगी।

---

[1] गोदान प्रेमचंद–पृ० 166 ।

[2] गोदान प्रेमचंद–पृ० 195 ।

[3] गोदान प्रेमचंद–पृ० 195 ।

अध्याय– 3

आर्थिक चेतना

तृतीय अध्याय–आर्थिक चेतना

1. आर्थिक परिस्थितियाँ –
2. आर्थिक संचेतना–
3. आर्थिक वैषम्य
4. जमींदारो/महाजनो की शोषण प्रवृत्ति
5. मानव जीवन में अर्थ की महत्ता
6. कृषि की दुर्व्यवस्था
7. किसान जीवन की समस्याएं
8. निर्धनता और संयुक्त परिवार का अन्त
9. प्रेमचंद के उपन्यासों में चित्रित आर्थिक चेतना

आर्थिक परिस्थितियाँ –

समाज के सर्वांगीण विकास मे अर्थ की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, यह पूर्ण सत्य है। किसी भी देश की आर्थिक व्यवस्था उस देश के सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन का आधार स्तम्भ होती है क्योंकि ''अर्थ ही जीवन का नियामक है। युग का राजनैतिक और सामाजिक घटना तत्कालीन आर्थिक प्रतिक्रिया से प्रभावित रहता है और सामाजिक तथा राजनैतिक विकास वर्गो के संघर्षो के आधार पर होते है।''[1] अर्थ ही देश की सामाजिक व्यवस्था तथा प्रगतिशील चेतना को तीव्रता प्रदान करते हुए उसे समृद्धि तथा विकास की ओर अग्रसर करता है। किसी व्यक्ति के सामाजिक स्तर का निर्धारण उसकी आर्थिक स्थिति करती है ठीक उसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में किसी राष्ट्र के स्थान का निर्णय उसकी आर्थिक दशा पैंर निर्भर करता है। अतः कह सकते हैं कि किसी भी देश अथवा राष्ट्र की आर्थिक परिस्थितियाँ उसकी सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों से कहीं अधिक बलवान होती है जो समाज के नवनिर्माण में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

प्राचीन काल में विदेशों मे भारत को सोने की चिड़िया के रूप में ख्याति प्राप्त थी। अपनी अपार धन सम्पदा के कारण– ''भारत विदेशियों के लिए सदा ही आकर्षण का कारण रहा। 15 वीं शताब्दी के अन्तिम चरण मे यूरोप के अनेक धर्म प्रचारकों ने भारत में आना प्रारम्भ कर दिया था। सन् 1498 ई0 में सर्वप्रथम पुर्तगाल निवासी वास्कोडिगामा कालीकट में उतरा। इसके पश्चात् डच, डेन फ्रांसीसी तथा अंग्रेज इत्यादि योरोप निवासियों ने भारत में आना प्रारम्भ कर दिया। यह जातियॉ हमारे देश में मुख्यतया व्यापारिक उद्देश्यों की पूर्ति ही के लिए आयी थीं, किन्तु कालान्तर में पारस्परिक संघर्ष के कारण एक–एक करके इनका पतन होता गया और अन्त में अंग्रेजों ने भारत मे अपने साम्राज्य की स्थापना कर ली। अंग्रजों से पूर्व अन्य शासकों ने भारतीय अर्थ–व्यवस्था में कोई विशेष परिवर्तन उत्पन्न होने नहीं दिया और देश का सामान्य आर्थिक जीवन प्रायः हस्तक्षेप से मुक्त (Undisturbed) ही रहा। परन्तु भारत में अंग्रेजी शासन की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि उस काल में अनेक ऐसे कार्य हुए जिनका देश की अर्थ–व्यवस्था पर गहरा असर पड़ा। उनकी नीतियों ने भारत की प्राचीन अर्थ व्यवस्था की काया ही पलट दी।''[2]

---

[1] डा0 वीणा गौतभ आधुनिक हिन्दी नाटको ' ' में मध्यवर्गीय चेतना पृ0 162।

[2] भारतीय अर्थशास्त्र एवं आर्थिक विकास–डा0 जगदीश नरायण निगम–पृ0 121–122।

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारतीय समाज पूर्णतया ग्राम इकाई पर निर्भर था। कृषि तथा हस्त उद्योग भारतीय अर्थ–व्यवस्था के आधार स्तम्भ थे ब्रिटिश सरकार की आर्थिक नीति ने भारतीय अर्थ–व्यवस्था के इस आधार स्तम्भ को छिन्न–भिन्न कर दिया। भारत की प्राचीन भू व्यवस्था के अनुसार किसान अपनी जमीनों के हुआ करते थे वे अपनी साल–भर की उपज का एक भाग राजा को खिराज या कर के रूप में दे देते थे सालाना उपज के अनुसार यह खिराज घटता बढ़ता रहता था परन्तु इस पुरानी परम्परा को समाप्त कर दिया। इस विषय मे रजनीपामदत्त का कथन है कि– "---- ब्रिटेन की आर्थिक और कानूनी धारणाओं ने भारत की परंपरागत आर्थिक संस्थाओं और धाराणाओं को हटाकर उनका स्थान ले लिया ------पहले परम्परा थी कि साल भर की उपज का एक अंश 'राजा का हिस्सा' होता था जो संयुक्त मिल्कियत वाले किसानों या गॉव का स्वयं प्रबन्ध करने वाले ग्रामीण समुदाय द्वारा नज़राने या कर के रूप में शासक को दिया जाता था। 'राजा का हिस्सा' भी वार्षिक पैदावार के घटने बढ़ने के साथ घटता बढ़ता रहता था। अंगरेजों ने इस परंपरा को समाप्त कर, मालगुजारी के रूप में एक निश्चित रकम लेना शुरू किया। यह राशि ज़मीन के हिसाब से तय कर दी जाती थी और साल में फसल कम हुई हो या ज्यादा यह निर्धारित राशि देनी ही पड़ती थी।------शुरू के दिनों मे सरकारी प्रशासको द्वारा और शुरू के सरकारी दस्तावेजों में इस राशि को आम तौर से "लगान" कहा जाता था। ---इस सारी प्रक्रिया को भारत में इंग्लैड़ के ढंग की जमींदारी प्रथा (भारत में इस तरह की व्यवस्था की अतीत में कोई मिसाल नही है। कर देने वाले पुराने किसानों के आधार पर नए वर्ग की रचना की जा रही है।, व्यक्तिगत जोतों की प्रणाली, जमीन को बंधक रखने तथा बेचने की प्रणाली और वहॉ की पूंजीवादी कानून व्यवस्था जारी करके पूरा कर दिया गया।------- इस रूपान्तरण से अंगरेज विजेताओं ने व्यवहारतः भूमि पर पूरा–पूरा अधिकार कर लिया और किसानों को ऐसे काश्तकार का दर्जा दे दिया जिन्हें लगान का भुगतान न करने पर जमीन से बेदखल किया जा सके या उस जमीन को स्वयं द्वारा नामजद किए गए जमींदार के नाम लिखा जा सके। -----पुराने ज़माने में अपना प्रबंध संचालन स्वयं करने वाले ग्रामीण समुदाय को उसके आर्थिक कार्यो और प्रशासनिक भूमिका से वंचित कर दिया गया। ------इस प्रकार औपनिवेशिक प्रणाली की विशिष्ट प्रक्रिया वस्तुतः बहुत बेरहमी के साथ भारत में पूरी की गई --भारत की जनता को उसकी ज़मीन से बेदखल कर दिया गया ----किसान

पहले ज़मीन के मालिक थे, अब उनकी मिल्कियत छीन ली गई और वे लगान लेकर दूसरे की जमीन पर खेती करने वाले काश्तकार बन गए।,, [1]

सन् 1857 से 1918 तक अंग्रेजों ने भारत के आर्थिक शोषण के लिए जिस नीति का अनुसरण किया उसके अन्तर्गत औद्योगिक विकास के नाम पर भारी संख्या में कारखाने स्थापित किये गये। भारत में अंग्रेजी शासन का सूत्रपात ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना के साथ हुआ प्रारम्भ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा भारत से माल ले जाए जाने के कारण भारतीय उद्योग को एक प्रकार का प्रोत्साहन मिलता था परन्तु अठारहवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध में इग्लैड में औद्योगिक क्रांति होने पर कहाँ के कारखानों मे निर्मित माल भारत आने लगा और अपने माल को खपाने के लिए अंग्रेजों ने भारतीय उद्योग धन्धों का सर्वनाश करना प्रारम्भ किया और इसके लिए भारत मे ब्रिटिश सरकार ने ऐसी प्रणाली अपनाई जिससे भारत में निर्मित माल इंग्लैण्ड मे बने माल के सामने न ठहर सके उसने भारतीय कपड़ो पर इतना कर लगा दिया कि इंग्लैण्ड मे उसका खरीददार ही नहीं रहा वही दूसरी ओर बाहर से आने वाले माल पर आयात कर भारी छूट दे दी इसका परिणाम यह हुआ कि "इंग्लैण्ड के मशीन से बने कपड़ो ने जहाँ भारत के बुनकरों को बरबाद किया वहीं दूसरी तरफ़ मशीन के बने सूत ने भारत के सूत कातने वालो को उजाड़ दिया ——— यही हालत रेशमी कपड़ो ऊनी कपड़ो, लोहे, बर्तन काँच और कागज कें मामले में भी देखी जा सकती हैं।"[2] अंग्रेजों की कूटनीति के परिणाम स्वरूप देश के प्राचीन बड़े–बड़े औद्योगिक नगर बरबाद हो गए ग्रामीण उद्योग धन्धे विनष्ट हो गए। इस विषय मे रजनी पाम दत्त ने अपनी पुस्तक "आज का भारत" में लिखा है "————भारत में लाखों शिल्पियों और कारीगरों की तबाही के साथ बिकल्प के रूप में किसी नए उद्योग का विकास नहीं हुआ। पुराने और धनी आबादी वाले औद्योगिक नगर ढाका मुर्शिदाबाद (जिसे क्लाइव ने 1757 में लंदन जितना ही विस्तृत, उतनी ही अधिक अबादी वाला और उतना ही समृद्ध' कहा था', सूरत आदि', ब्रिटेन की कृपा से देखते ही देखते ऐसे उजाड़ हो गये कि भीषणतम युद्ध होने पर या विदेशी विजेताओं के शिकार होने पर भी उनकी वैसी दशा नही होती।" [3] इसी सम्बन्ध में आगे लिखा है–"केवल पुराने औद्योगिक नगर और केन्द्र ही विनष्ट नहीं हुए और उनकी आबादी उजड़कर गॉवों में भर गई और गाँवों में ज्यादा भीड–भाड़ हो गयी सबसे

---

[1] 'आज का भारत'–रजनीपामदत्त–पृ0 244–245।

[2] आज का भारत–रजनीपामदत्त–पृ0 143।

[3] आज का भारत–रजनी पामदत्त–पृ0 143।

बड़ी–बात यह हुई कि गाँव की पुरानी अर्थव्यवस्था तथा कृषि एवं घरेलू उद्योग की एकता के आधार पर मरणांतक प्रहार हुआ। शहरों और गॉवों दोनों स्थानों में रहने वाले लाखों शिल्पियों और कारीगरो, काटने वालो, बुनकरों, कुम्हारो और लोहा गलाने वालों, लोहारों के सामने खेती करने के सिवा और कोई विकल्प नही बच रहा। इस प्रकार भारत, जो कृषि और उद्योग की मिली–जुली पद्धति वाला देश था अब जबरन ब्रिटेन के कारखाने वालें पूँजीवाद का कृषीय उपनिवेश बना दिया गया।"[1] इस प्रकार ग्रामीण कुटीर उद्योग धन्धों के नष्ट हो जाने से आय के अन्य साधनों के आभाव में भारतीय कृषि पर निरन्तर बोझ बढ़ता गया और कृषि एक लाभहीन धंधा बनकर रह गई अंग्रेज शासक इतने से ही संतुष्ट नहीं हुए उन्होनें अपने शासन के स्थायित्व के लिए जनता पर नये–नये कर लगाए जिसने भारतीयों की दुर्दशा में और भी वृद्धि कर दी।

प्रेमचन्द युगीन भारतीय कृषक अत्यन्त निर्धनता और विपन्नता में जीवन व्यतीत कर रहे थें क्योंकि अंग्रेजों की शोषण नीति का सबसे भयंकर परिणाम इसी वर्ग को भुगतना पड़ रहा था एक तो अंगेंजों ने कृषि प्रणाली में समूल परिवर्तन कर दिया जिसके कारण किसानों की स्थिति लगान देने वाले दास की बनकर रह गई ऊपर से ग्रामीण क्षेत्रों में मिले और कारखाने खुल जाने से कृषि सम्बन्धी वस्तुओं का मूल्य बढ़ गया जिसके साथ मालगुज़ारी और लगान मे भी वृद्धि हो गई अतिवृष्टि–अनावृष्टि, बाढ़ तथा ओले जैसी दैवी आपदाओं के कारण यदि फसल नष्ट हो जाती तब भी लगान की दर में कोई कमी न होती, जमींदार के कारिन्दे और चपरासी बडी निदर्यता पूर्वक किसानों से लगान वसूल करते। निरन्तर शोषण के कारण किसानों की आर्थिक दशा इतनी खराब हो गयी कि अब लगान चुकाने की सामर्थ्य उनमें नही थी। फलतः वह महाजन से ऋण लेने को विवश हो गये। यह महाजन भोले–भालें अनपढ़ किसानों से मनमाना ब्याज वसूलते।" इन परिस्थितियों का यह प्रभाव पड़ा कि किसान लगभग दिवालिये पन के कगार पर जा खड़ा हुआ। किसानों को अपनी ज़मीन बेचने के लिए बाध्य होना पड़ा और इस प्रकार वे भूमिहीन मज़दूरों की श्रेणी मे शामिल होने लगे। उत्पादन पर असर पड़ा और उनके राशन का कोटा इतना कम हो गया कि उनके भूखों मरने की नौबत आ पहुॅची। कर्ज़दारी से ग्रामीण आबादी के बहुसंख्यक लोगों को बढती हुई गरीबी का सामना करना पड़ा क्योंकि उनके लिए कोई वैकल्पिक काम नहीं था। इसके साथ ही ज्यादा से ज्यादा जमीन जमींदारों

---

[1] आज का भारत–रजनी पामदत्त–पृ0 145।

और साहूकारों के हाथों में केन्द्रित होती गई --- कुपोषण, बीमारी और मौत का चोली दामन का साथ है। इनके परिणाम श्रमिक की अकुशलता, दुर्बलता और अनमनपन के रूप में प्रकट होतें है--- ग्रामीण अर्थव्यवस्था के ह्रास के गम्भीर प्रभाव गॉवों पर और सामाजिक संगठन पर तथा देश की आम अर्थव्यवस्था पर पडे।'[1]

ग्राम व्यवस्था के विश्रंखलित होने के साथ-साथ देश की सामन्ती सभ्यता का भी अंत हो गया और उसके स्थान पर अंग्रेजी साम्राज्यवाद के संरक्षण में, पूॅजीवादी सभ्यता देश में तेजी से पॅाव पसारने लगी जिसमें भारत में वर्ग भावना तथा वर्ग संघर्ष को जन्म दिया। इसके साथ ही साथ मध्य वर्ग के रूप में एक नया वर्ग अस्तित्व में आया। प्रेमचंद ने इस पूॅजीवादी सभ्यता को महाजनी सभ्यता का नाम देते हुए अपने "महाजनी सभ्यता" शीर्षक लेख में इस सभ्यता के कुत्सित चरित्र का व्याख्यायित किया है। भारत के ग्रामों पर ही नहीं नगरों पर भी इस महाजनी सभ्यता का दुष्प्रभाव व्यापक रूप से पड़ा।

आगे चलकर सन् 1905 में इस पूॅजीवादी अर्थव्यवस्था को उस प्रथम बड़े आर्थिक संकट से गुजरना पड़ा जिसमें 1914 ई0 मे प्रथम महायुद्ध का रूप धारण किया। सन् 1919 ई0 तक की आर्थिक परिस्थितियों पर प्रथम महायुद्ध की विनाशलीला का गंभीर प्रभाव पड़ा तद्‌युगीन भारतीय नेताओं ने इस आशा पर भारत को प्रथम महायुद्ध में भाग लेने की स्वीकृति प्रदान की थी कि युद्धोपरांत भारत की आर्थिक दशा में सुधार होगा। परन्तु आशा के विपरीत अंग्रेजों की आर्थिक नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। शिक्षित होने के पश्चात् भी मध्यवर्ग बेकारी का शिकार था। मजदूरों तथा किसानों की स्थिति पहले से भी अधिक दयनीय हो गई। जिसका परिणाम यह हुआ कि लोगों के हृदय मे दबा हुआ क्षोभ उमड़ पड़ा श्रमिक वर्ग उद्योग पतियों तथा कृषक वर्ग जमींदारों के विरूद्ध उठ खड़ा। आद्यौगीकरण के विकास ने पूॅजीपति वर्ग का और भी अधिक प्रभुत्व सम्पन्न बना दिया। देश में गिने चुने मुट्‌ठी भर लोग फल-फूल रहे थे जिनके विषय में प्रेमचंद ने लिखा है "पूँजीपति कथा हिन्दू क्या मुसलमान एक ही हैं। उनकी विचार शैली एक उनकी स्वार्थ लिप्सा एक उनका उद्‌देश्य जनता को लूट कर अपनी जेब भरना है। जनता की आर्थिक जागृति उन्हें अपने स्वार्थों के प्रतिकूल नज़र आती है। वे चाहते है कि जनता सदैव इसी दशा में रहे और वे

---

[1]भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास-तृतीय खण्ड लेखक ताराचन्द पृ0 53-56।

उसका खून चूसते रहे।"[1] महायुद्ध के दौरान सैनिकों को अनाज में भेजे जाने से युद्धोपरान्त अन्न की कमी के संकट के साथ–साथ कृषकों के सेना में भर्ती होने से कृषकों की संख्या में भी कमी हो गयी फलतः अन्न तथा कपड़े मंहगे हो गये और इस मंहगाई का पूरा–पूरा लाभ पूँजीपति वर्ग को प्राप्त हुआ परन्तु सरकार द्वारा अतिरिक्त लाभ कर लगाये जाने से इस वर्ग को भी आर्थिक संकट झेलना पड़ा। सन् 1929 में होने वाली विश्वव्यापी के प्रभाव से भारत भी अछूता नहीं रहा। इस मन्दी का सबसे भयंकर परिणाम कृषको को भुगतना पड़ा। उनकी दशा और भी दयनीय हो गयी। आर्थिक मन्दी के कारण कृषि सम्बन्धीं वस्तुओं के मूल्य में 50 प्रतिशत की कमी आयी परन्तु लगान की दर ज्यों की त्यों बनी रही इन्ही परिस्थितियों के चलते 1933–34 के मध्य तो कृषकों की आर्थिक स्थिति इतनी चिन्ताजनक हो गयी कि वे लगान तथा ऋण चुकाने योग्य भी न रहे लगान अदा न कर सकने की दशा में बहुत से किसानों ने भूमि से "इस्तीफे" दे दिये।" [2] प्रेमचंद साम्राज्यवादी शोषण तंत्र से पूरी तरह अवगत थे वे जानते थे कि –– " अंग्रेजी राज्य में गरीबों, मजदूरों और किसानों की दशा जितनी खराब है और होती जाती है उतनी समाज के किसी और अंग की नही। सरकार के हाथों किसी संम्प्रदाय की इतनी बर्बादी नही हुई थी जितनी किसानों और मजदूरों की खासकर किसानों की ––––– किसानों की हालत रोज–ब रोज खराब होती जा रही है। उन पर लगान बढता जाता है। सख्तियां बढ़ती जाती है कौंसिलों में उनके हितों का कोई रक्षक नहीं। कांग्रेस के मेम्बर या और लोग कभी–कभी न्याय और नीति के नाते भले ही किसानों की वकालत करें लेकिन किसानों के नाना प्रकार के दुखों और वेदनाओं की उन्हे वह अखर नहीं हो सकती जो एक किसान को हो सकती है –– सब छोट– बड़े उसी को नोचते है –– सब उसी का रक्त और मॉस खाकर मोटे होते है – अगर उन्हे संगठित करने की कोशिश की जाती है तो सरकार जमींदार सरकारी मुलजिम और महाजन सभी भन्ना उठते है। चारों ओर हाय–हाय मच जाती है। 'बोल्शेविज्म' का हौवा बताकर उस आन्दोंलन को जड़ से खोदकर फेक दिया जाता है ––––।"[3] जमींदार और उनके करिन्दों की बर्बरता, महाजनों की धूर्तता, विदेशी शासन व्यवस्था कि निरंकुश नीति की प्रतिनिधि पुलिस तथा भूमि व्यवस्था से सम्बद्ध सरकारी कर्मचारियों के भ्रष्टाचार को प्रेमचंद ने बहुत निकट से देखा था।

---

[1] विविध प्रसंग भाग–2–पृ0 223।

[2] भारत : वर्तमान और भावी–रजनीपामदत्त पृ0 99।

[3] "स्वराज्य से किसका अहित होगा ?" प्रेमचंद, हंस अपैल,1930 पृ0 6

प्रेमचंद का युग भारतीय इतिहास में औद्योगिक अर्थ व्यवस्था की दृष्टि से भी बहुत महत्व रखता है। अंग्रेजों ने अपने शासन के आरम्भिक काल में अपने आर्थिक हितों को ध्यान में रखते हुए भारत के औद्योगिक विकास के मार्ग को अवरूद्ध कर रखा था परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ब्रिटिश सरकार के समस्त विरोधों के पश्चात भी भारत में बड़े पैमाने पर उद्योग–धन्धों की स्थापना हुई। प्रथम महायुद्ध भारत के औद्योगिक विकास के लिए बहुत सहाय सिद्ध हुआ। युद्ध के समय विदेशों से माल न आ सकने के कारण भारतीय उद्योग धन्धों चमक उठे। विदेशी माल से प्रतिद्वन्दिता के आभाव में भारतीय उ़द्योग धन्धों की स्थिति सुदृढ़ होने के साथ–साथ भारत का पूँजीपति वर्ग का शक्तिशाली बनता जा रहा था जिसे देखते हुए युद्धोपरान्त ब्रिटिश सरकार अपने साम्राज्यवादी हितों को दृष्टिगत रखते हुए अपनी नीति में परिवर्तन करके इस वर्ग को कुछ सुविधायें प्रदान करके उसे अपना समर्थक बना लिया।

पूँजीवाद की प्रगति तथा औद्योगिक विकास के प्रतिक्रिया स्वरूप वर्ग संघर्ष अस्तित्व में आया। महायुद्ध काल में तथा उसके उपरान्त वस्तुओं के मूल्य में भारी वृद्धि हुई जिसने भारतीय तथा अंग्रेज पूँजीपतियों को और अधिक सम्पत्तिशाली बना दिया परन्तु मजदूरों की मजदूरी में बढोत्तरी न होने के कारण उनकी दशा दिन प्रतिदिन बिगडती गई।

उपरोक्त अर्थिक परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप विवेच्यकाल तक भारत की आर्थिक स्थिति अत्यन्त निराशाजनक तथा उहापोहमयी थी। पूँजीवादी व्यवस्था ने कभी न समाप्त होने वाले जिस वर्ग संघर्ष को जन्म दिया उसने श्रमिकों तथा उ़द्योगपतियों, किसानों तथा जमींदारों के मध्य एक ऐसी खाई निर्मित कर दी जो गुजरते समय के साथ–साथ और भी गहरी होती जाती है। प्रेमचंद युग कालीन इन परस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए कहा जा सकता हैं कि प्रेमचंद का युग सामन्तवाद के पूँजीवाद में परिवर्तित होने का युग है जिसके अन्तर्गत भारतीय समाज में कई नवीन सामाजिक तथा आर्थिक वर्गो का उद्भव तथा विकास हुआ। प्रेमचंद युग की आर्थिक परिस्थितियों के उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रेमचंद का साहित्य युगीन आर्थिक गतिविधियों एवं सघर्षो का जीवन्त दस्तावेज है। जिसमें तद्‌युगीन आर्थिक परिस्थितियॉ अपनी सम्पूर्ण वास्तविकता के साथ विद्यमान है।

आर्थिक संचेतना–

ब्रिटिश शासन काल भारतीय इतिहास का वह काला अध्याय है जिसमें अंग्रेजों के क्रूर एवं भयावह शोषण तथा निर्मम अत्याचार की हृदय विदारक दास्तान दर्ज है। जैसा कि युगीन आर्थिक परिस्थितियॉ शीर्षक के अन्तर्गत वर्णन किया जा चुका है कि किस प्रकार अंग्रेजों की साम्राज्यवादी आर्थिक शोषण नीति में भारतीय व्यापार और उद्योग धन्धों को चौपट कर दिया। अंग्रेजी शासन काल में भारत के शिल्प तथा उद्योग विनष्ट हो गये यहॉ के व्यापारी तथा कारीगर वर्बाद हो गए किस प्रकार अंग्रेजों ने अपने छल–बल के द्वारा भारत का अनुद्योगीकरण करते हुए इसे कृषि प्रधान देश में परिवर्तित कर दिया। जिसके कारण –" 19वीं सदी के आखिरी दशकों से ही शहरों में देशी उद्योगों के उजड़ने के फलस्वरूप, बेकार हो गए लोगों की जनसंख्या का दबाव खेती पर पड़ रहा था। यह हालत 20 वीं सदी के पहले तीन दशकों में कुछ और कारणों से मिलकर और भी बुरी हो गई। इन और कारणों को जमींदारों द्वारा गरीब किसानों की बड़े पैमाने पर बेदखली सबसे मुख्य कारण था। किसी और रोजगार के आभाव में वे खेत–मजूर बनने को लाचार थे। भारत में 1882 में खेत–मजूरों की संख्या 75 लाख थी। यह संख्या बढ़कर 1921 में 2 करोड़ 10 लाख हो गयी। अगले दस सालों में यह संख्या और भी बढ़कर 3 करोड़ 30 लाख तक पहुॅच गयी।" [1]

1919 तक आते–आते देश की आर्थिक स्थिति अत्यन्त चिंताजनक हो गई योरप के महायुद्ध का भारत से कोई सीधा सम्बन्ध न होते हुए भी इस युद्ध के भीषण परिणाम भारतीय जनता को भुगतने पड़े सरकारी आंकड़ो के अनुसार उस सयम अनाज के मूल्य में 93 फीसदी वृद्धि हो गई थी इसके साथ ही साथ कपड़ों की कीमतें भी बहुत बढ़ गई जिसके परिणाम स्वरूप अन्न तथा कपड़े दोनो ही दुर्लभ हो गये थे जिसके कारण मध्य श्रेणी तथा निर्धन लोगों विशेषकर किसानों का जीवन और भी दुरुह हो गया। इसके प्रतिक्रिया स्वरूप किसानों में जर्बदस्त असंतोष व्याप्त हो गया। रजनीपाम दत्त के कथनानुसार "विश्वयुद्ध के बाद और खास तौर से विश्व व्यापी अर्थ संकट के अंतिम दशक के बाद से किसानों का असंतोष अभूतपूर्व तेजी के साथ बढ़ा और उसका स्वरूप दिनों दिन क्रांतिकारी हुआ है। विश्वव्यापी आर्थिक संकट ने कृषि की अर्थ व्यवस्था पर जबरदस्त

---

[1] राष्ट्रीय नवजागरण और साहित्य–कुछ प्रसंग : कुछ प्रवृत्तियां–वीरमारत तलवार पृ0 49।

आघात किया। भारत के सभी हिस्सों में किसानों ने लगान बढ़ाने, कर्जदारों को गुलाम बनाने और किसानों की जमीनें जबरन छीनने की कार्यवाही के विरूद्ध आंदोलन किए। बेदखलियों का प्रतिरोध करने के लिए कुर्क ज़मीनों के नीलाम का बहिष्कार करने और सूदखोर महाजनों के खिलाफ आपस में एकता स्थापित करने के लिए उन्होने स्वतः स्फूर्त ढंग से ग्राम समितियॉ बनाई।" [1] देश की चिंताजनक अर्थिक स्थिति से भारतीय नेतागण में क्षोभ व्याप्त था। दादा भाई नौरोजी, गोपाल कृष्ण गोखले, महादेव रानाड़े, जैसे नेताओं ने अंग्रेजो की शोषण नीति की खुलकर आलोचना की इस प्रकार हम देखते है कि –" प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति पर भारत में चेतना के एक नए युग का सूत्रपात हुआ। यह शुरूआत 1918–21 की जबरदस्त हड़ताल से हुई। इस हड़ताल ने राष्ट्रीय क्रांतिकारी लहर के लिए अग्रदूत का काम किया और इसने ही अंततः कांग्रेस को भी आंदोलन के लिए प्रेरित किया जिसके फलस्वरूप 1920–22 का आंदोलन छिड़ा। [2]

आर्थिक हितों की रक्षा एवं विदेशी शोषण को समाप्त करने के लिए चलाए जाने वाले इन आन्दोलनों की "–– शुरूआत इस मॉग के साथ हुई थी कि भारत के शिल्प, व्यापार और उद्योग के रास्ते से रोड़े हटाये जायें, उन्हे बढ़ने का मौका दिया जाए। दादाभाई नौरोजी, रमेशचन्द्र दत्त, वी0जी0 जोशी, मधोलकर और जस्टिस रानाडे, सभी राष्ट्रीयवादी नेताओं ने अंगरेजी राज की आलोचना करते हुए बहुत परिश्रम से जमा किये गए तथ्यों और आंकड़ों से यह साबित करके दिखाया कि अंगरेजी राज ने भारतीय व्यापार और उद्योगों को न सिर्फ तबाह किया, बल्कि हर तरह से उसके विकास में रूकावटें खड़ी कीं।" [3] बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में ही भारतीय अर्थ शास्त्रियों के विचार जनता में फैलने लगे और––" शोषण दमन और अत्याचारों के सहन करने की असाधारण क्षमता से सम्पन्न, अमानवीय अत्याचारों के प्रति जड़ता की सीमा तक उदासीन भारतीय जन–मानस यदि, ––––––अपनी शताब्दियों पुरानी तंद्रा से उठकर खड़ा हो गया तो इसलिए कि अब तक सारे आघात उसके शरीर पर हुए थे; उसे भौतिक सुख–सुविधाओं से वंचित किया गया था, लेकिन यह नई शोषण नीति उसकी आत्मा को ही दबोच रही थी, उसकी जीवन प्रणाली पर प्रहार कर रही थी। नयी महाजनी सभ्यता और बढ़ते हुए औद्योगीकरण ने स्नेह, सौहार्द और भाई–चारे की

---

[1] आज का भारत–रजनीपामदत्त–पृ0 291।

[2] आज का भारत–रजनीपामदत्त–पृ0 391।

[3] राष्ट्रीय नवजागरण और साहित्य–कुछ प्रसंग : कुछ प्रवृत्तियां–वीर भारत तलवार पृ0 32।

नींव पर टिकी समाज व्यवस्था एवं पति–पत्नी, पिता–पुत्र और भाई–भाई की आंतरिक आत्मा पर आधारित संयुक्त परिवार की नींव हिला दी थी। भारतीय जन–समाज के पैरों के नीचे से धीरे–धीरे वह ज़मीन खिसक रही थी जिस पर वह अब तक मजबूती से खड़ा था। वह भले ही अपनी भौतिक लड़ाई में मार खाता रहा हो, लेकिन उसकी पराजय ने कभी उसे कुंठित नही किया था। अपने जीवन– मूल्यों और आदर्शों को मजबूती से पकड़े हुए एक सूक्ष्म आध्यात्मिक आंनद और जीवन की सार्थकता का अनुभव करता रहा। लेकिन जब महाजनी सभ्यता और औद्योंगीकरण की आंधी उसकी चिर संचित परंपरा और जीवन प्रणाली के लिए चुनौती बनकर आई तो वह अपने परिवेश के प्रति उदासीन नही रह सका, शक्ति का स्रोत उसमें पहले से ही था, लेकिन उसका रूप था अर्न्तमुखी और चेतना गत प्रश्न था उसकी जिजीविषा के चेतनागत संघर्ष के भौतिक संघर्ष में रूपांतरण का। यह कार्य स्वयं युग परिस्थितियों ने प्रारंभ कर दिया था। हम कह सकते है कि गॉधी ने उसे गति प्रदान की।" [1]

बीसवीं शताब्दी भारत के औद्योगिक विकास की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण मानी जाती है क्योंकि इस सदी ने भारतीय उद्योग धन्धों को गति प्रदान की वीर भारत तलवार के अनुसार —" पहले विश्वयुद्ध के दौर में भारतीय व्यापार और उद्योगों को कुछ आगे बढ़ने का मौका मिला, खासकर कलकत्ते में जूट के कारोबार में पैसा लगाए मारवाड़ियों, लोहे के उत्पादन में लगे टाटा घराने और गल्ले की निर्यात में लगे आढ़तियों की दुबली पूँजी लड़ाई के बाद कुछ मोटी होकर निकली लेकिन भारतीय ब्यापार और उद्योग की दशा में हुए इस सुधार का कारण ब्रिटिश शासन का संरक्षण और आर्शीवाद न था। कारण था ब्रिटिश शासन की लाचारी और कमजोरी। युद्ध के दौरान अधिक उत्पादन की जरूरत और योरोपीय रास्तों की नाकेबन्दी के फलस्वरूप संकट ग्रस्त ब्रिटिश साम्राज्यवाद भारत के व्यापार और उद्योग पर पहले जैसा नियंत्रण रख सकने में असमर्थ था। युद्ध की जरूरतों के लिए वह रियायतें देने को मजबूर हुआ। भारतीय व्यापार और पूँजी का विकास ब्रिटिश शासन की शक्ति और व्यवस्था के कारण नहीं, उसकी कमजोरी और अव्यवस्था के कारण हुआ। " [2] वस्तुतः लार्ड हार्डिग ने ब्रिटिश राज्य के आर्थिक तथा सैनिक स्वार्थो की पूर्ति हेतु भारत के औद्यौगिक विकास पर जोर दिया। सन् 1918 का 'मांटेग्यू चैम्स फोर्ड रिपोर्ट' का यह भाग इसका

---

[1] कथाकार प्रेमचंद–संपादक–रामदरश मिश्र : ज्ञानचन्द्र गुप्त–57।

[2] राष्ट्रीय नवजागरण और साहित्य कुछ प्रसंग : कुछ प्रवृत्तियां –वीर भारत तलवार पृ0 33।

साक्ष्य है —" आर्थिक और सैनिक दोनों ही दृष्टियों से साम्राज्यवादी हितों के लिए यह आवश्यक है कि अब आगे से हिन्दुस्तान के प्राकृतिक साधनों का भली–भॉति उपयोग किया जाए। हिन्दुस्तान के औद्योगिक विकास से साम्राज्य की ताकत और कितनी बढ़ जायगी — हम अभी इसका अनुमान तक नहीं लगा सकते है।" [1] परन्तु इस औद्योगीकरण ने भारतीय शिल्प तथा कुटीर उद्योगों का नाश कर दिया। जिसके कारण लाखों ग्रामीण बेकारी और भुखमरी का शिकार होने लगे। गॉव अब साम्राज्यवादी तथा भारतीय उद्योगपति के दोहरे शोषण का निशाना बन गए। शोषण के इस कारोबार में कच्चामाल पैदा करने वाले किसानों की दशा सबसे अधिक शोचनीय हो गई थी क्योंकि कच्चे माल और तैयार माल की कीमतों के अन्तर में लगातार वृद्धि हो रही थी। भारतीय पूँजीपति वर्ग भी मनमाना मुनाफा बटोरने में ब्रिटिश उद्योगपतियों से पीछे नही था।

सन् 1919 ई0 से 1936 तक की आर्थिक परिस्थितियों पर प्रथम महायुद्ध के त्रास का बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। ऐसी स्थिति में मजदूरों और श्रमिकों की स्थिति बड़ी दयनीय हो गयी। फलतः "महायुद्ध के बाद मजदूरों और किसानों तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के बीच संघर्ष बहुत तीखा होता गया। यह संघर्ष कई स्तरों पर था। एक ओर किसान और मजदूर संगठित होकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध कर रहे थे, इसके साथ ही मजदूरों और भारतीय पूँजीपतियों के बीच भी संघर्ष तीव्र हुआ। गॉव में किसान, जमींदारों के विरूद्ध संघर्ष कर रहे थे। देशी रियासतों की जनता भी युगों के शोषण का जुआ फेकने को तत्पर थी और विरोध के लिए उठ खडी हुई थी। भारतीय पूँजीपति अधिक से अधिक राजनैतिक और आर्थिक अधिकार पाने के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध कर रहे थे। राष्ट्रीय आन्दोलन में हर वर्ग के लोग अपने–अपने वर्ग हितों के अनुरूप इसमें सम्मिलित हो रहे थे। यह संघर्ष होमरूल की मॉग, सशस्त्र क्रांति द्वारा स्वराज्य प्राप्ति की चेष्टा विशाल संगठित तथा असंगठित किसानों और मजदूरों के आन्दोलन जैसे विभिन्न रूपों में था।" [2] 1921 में अखिल भारतीय ट्रेड युनियन कॉग्रेस की बम्बई मे स्थापना हुई। जिसका नेतृत्व कॉग्रेस के उदार पंथियों के हाथों में एक लम्बे समय तक रहा। दिसम्बर सन् 1927 में होने वाले इस युनियन के अधिवेशन में साइमन कमीशन के बहिष्कार, चीन की स्वतंत्रता के लड़ने वालों के साथ सहानुभूति, एवं वहाँ भारतीय फौज भेजने की निन्दा के प्रस्ताव पारित हुए साइमन

---

[1] रजनी पामदत्त : इण्डिया टूडे, पृ0 144, 1949।

[2] प्रेमचंद के आयाम–ए0 अरविन्दाक्षन पृ0 39।

कमीशन के बम्बई आगमन पर मजदूरों ने काले झंडे लेकर उसके बायकॉट के नारे लगाते हुए एक विशाल जुलूस निकाला तत्पश्चात "मज़दूर वर्ग ने एक संगठित और स्वतंत्र शक्ति का रूप ले लिया। उसकी अपनी विचार धारा राजनीतिक क्षेत्र में प्रत्यक्ष भूमिका अदा करने लगी हालांकि उसने अभी तक नेतृत्व की भूमिका नहीं प्राप्त की। 1928 में जबरदस्त हड़तालें हुई जिनका नेतृत्व जुझारू वर्ग चेतना से लैस सर्वहारा वर्ग ने किया।" [1] 1928 की हड़ताल भारतीय इतिहास में मजदूर पूँजीपति संघर्ष के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय है क्योंकि इसी हड़ताल से श्रेणी युद्ध को दृढ़ता प्राप्त हुई। भारत का बुर्जुआ वर्ग मजदूरों की इस बढ़ती हुई शक्ति से आतंकित था अतः उसने कांग्रेस के उदार पंथी नेताओं के माध्यम से बढ़ते हुए मज़दूर आन्दोंलनो पर अंकुश लगाने की चेष्टा की दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार भी अपने दलालों के माध्यम से मजदूर आन्दोलनों को अपने हितार्थ प्रयोग में लाने का प्रयास करती रही।

उस समय देश भर में केवल मजदूरों के ही नही अपितु किसानों के भी आन्दोलन हुए और वे एक कान्तिकारी शक्ति के रूप में उभर कर सामने आए। परन्तु भारत की इन क्रांतिकारी शक्तियों की विडम्बना यह थी कि उनके पास केवल कांग्रेस का सुधारवादी नेतृत्व था जिसकी बुर्जुआ वर्ग के हितों की रक्षा तथा साम्राज्यवादियों से सॉठ–गॉठ की राजनीति के कारण साम्राज्यवाद तथा सामन्तवाद विरोधी जन आन्दोंलनों के कोई सकारात्मक परिणाम न निकले। क्योंकि– " जन आन्दोंलनों के निर्णायक बिन्दु पर पहुँचते ही ये नेतृत्व साम्राज्यवादियों से समझौतें का रूख अपनाता था और आन्दोलन को स्थगित कर देता था। फलस्वरूप ब्रिटिशशासक भारतीय पूँजीपतियों और सामन्तों की मदद से किसानों, मजदूरों और क्रान्तिकारियों के निर्मम दमन में सफल रहे। राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन एक क्रान्तिकारी स्वरूप ले, यह न ब्रिटिश शासकों के हित मे था और न ही भारतीय बुर्जुआ तथा सामन्त वर्ग के हित में था। यह एक अतिरिक्त समझौता था। फलस्वरूप 1933 के लगभग ब्रिटिस शासकों ने भारतीय पूँजीपतियों को अनेक सुविधाएं प्रदान की।" [2]

प्रेमचंद शोषक वर्ग के इस गठबंन्धन को भली प्रकार समझ रहे थे अतः लिखते है –" हमारी लड़ाई केवल अंग्रेज सत्ताधारियों से नही हिन्दुस्तानी

---

[1] आज का भारत–रजनीपामदत्त–पृ0 391।

[2] प्रेमचंद के आयाम–सं0 ए अरविन्दाक्षन–पृ0 41।

सत्ताधारियों से भी है। हमें ऐसे लक्षण नज़र आ रहे है कि यह दोनों सत्ताधारी इस अधार्मिक संग्राम में आपस में मिल जाएंगे और प्रजा को दबाने की, इस आन्दोलन को कुचलने की कोशिश करेगें।" [1] वे स्पष्ट रूप से देख रहे थे कि "अगर उन्हे (किसानों को) संगठित करने की कोशिश की जाती है तो सरकार, जमींदार, सरकारी मुलजिम और महाजन सभी भन्ना उठते हैं चारों ओर से हाय–हाय मच जाती है, बोल्शेविज्म का हौवा बताकर उस आन्दोलन को जड़ से खोदकर फेंक दिया जाता है।" [2] प्रेमचंद भारत के एक विशाल जन समूह को उत्पीड़ित करने वाले, उन पर शासन करने वाले साम्राज्यवादी शत्रुओं को ही नहीं पहचानते बल्कि वे समस्त शोषक वर्गो के समान रूप से प्रतिक्रियावादी जन विरोधी चरित्रों से भी भली–भांति परिचित है। जिसमे भारतीय सामंतवाद के ध्वंसावशेष के प्रतिनिधि राजे–महराजों के साथ–साथ पूँजीपति, व्यापारी, जमींदार ताल्लुकेदार वकील आदि नये धनी–मानी देशी महाजन भी सम्मिलित है।

साम्राज्यवादी तथा सामंती शोषण के विरूद्ध अनवरत संघर्ष करने वाले प्रेमचन्द पूँजीवादी व्यवस्था को देश के लिए घातक समझते थे क्योंकि कि वे अच्छी तरह से जानते थे कि वर्तमान पूॅजीवादी सभ्यता श्रम के शोषण पर अवलम्बित हैं। मज़दूरो तथा किसानों का शोषण करने वाले शासन तंत्र की कुटिल नीतियों से वे भली–भांति परिचित थे। वे जानते थे कि आर्थिक मुक्ति के बिना जनता को इस शोषण से छुटकारा मिलना असम्भव है। अतः अपने लेख में लिखते है –– " जब तक देश के सुदिन नही आते और सभी व्यवसायों का राष्ट्रीयकरण नहीं हो जाता, पूॅजीपतियों के हाथ में किसानों और मजदूरों की किस्मत रहेगी, और सरकार ऊपरी मन से नियंत्रण करने का स्वांग भरकर कोई उपकार नहीं कर सकती। हम तों किसानों को यही सलाह देगें कि वे खुद अपना संगठन करें और अपनी शक्कर अपनी खंड सालों में बनाकर इस ड्युटी का पूरा फायदा उठावें, मगर किसानों के संगठन करे कौन। हम तो देख रहे हैं कि राष्ट्र के वे नेता, जिनसे इसकी आशा की जा सकती थी, शक्कर कंपनियों के हिस्सेदार या संस्थापक बने हुए है, और पूँजीतियों की हैसियत से स्वाभाविक है कि वे ज्यादा से ज्यादा नफा अपनी गोद में रखने की चेष्टा करें।" [3] प्रेमचंद जानते थे कि ब्रिटिश राज की साम्राज्यवादी पूँजी से राष्ट्रीय पूँजी का सम्बन्ध केवल विरोध का नही वरन परस्पर सहयोग और गठजोड़ का भी है क्योंकि इस पारस्परिक

---

[1] हंस मार्च 1930।

[2] विविध प्रसंग भाग–2 पृ0 42।

[3] विविध प्रसंग भाग–3 पृ0 496।

सहयोग के बिना भारत के निर्बल पूँजीवाद की उन्नति सम्भव नही थी। इसीलिए भारत का पूँजीपति वर्ग साम्राज्यवाद के प्रति निरन्तर समझौतावादी नीति अपनाए था इसी कारण यह वर्ग भारत के स्वाधीनता आन्दोलन को व्यापक बनाने की अपेक्षा उसे सीमित था नियंत्रित करने के लिए प्रयासरत था।

प्रेमचंद अपने लेखन के आरम्भिक काल से ही व्यवस्था के शोषक चरित्र को पहचान गए थे। वस्तुतः प्रेमचंद से पूर्व हिन्दी साहित्य में शोषक वर्ग की इतनी स्पष्ट पहचान और किसी ने नहीं की थी। एक ओर अंग्रेजों की साम्राज्यवादी शोषण का मकड़जाल था वहीं दूसरी ओर सामन्तवादी लूट अपनी चरम सीमा पर थी। एक ओर अंग्रेजों के चंगुल से देश को मुक्त कराने के लिए आन्दोलन चलाए जा रहे थे, दूसरी ओर जमींदारों और पूँजीपतियों के विरोध में कोई स्वर स्पष्ट रूप से मुखरित नही हो पा रहा था। ऐसे में तद्‌युगीन औपनिवेशक आर्थिक मूलाधार सामन्ती और शेष एवं उसके सांस्कृतिक प्रतिरूपों को समझने तथा अपने अन्दर की कुरेदन की रचनात्मक अभिव्यक्ति को लेकर वे आरम्भ सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं का निदान गाँधी जी के सिद्धान्तों में खोजते हुए हृदय परिवर्तन जैसे आदर्शवादी एवं सुधारवादी नुस्खे प्रयोग में लाते है लेकिन गॉधीवाद की आदर्शवादी छॉव में सामाजिक यर्थाथ के कुशल चितेरे जनवादी रचनाकार प्रेमचंद का दम घुटने लगता है क्योंकि प्रेमचंद के स्वराज्य की कल्पना गॉधी जी के रामराज्य की कल्पना से बिल्कुल विपरीत थी। ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त की पैरवी करने वाले गॉधीजी एक ऐसे समाज की कल्पना कर रहे थे जिसमें पूँजीपति और जमींदारों के अधिकार सुरक्षित हों। पूँजीपतियों की उनकी सम्पत्ति न छीनी जाए तथा जमींदारों को उनकी जायदाद से वंचित न किया जाएं जबकि इसके विपरीत प्रेमचंद किसानें और मजदूरों की मुक्ति पूँजीवाद और सामंतवाद के उन्मूलन में देखते थे अतः यह सामाजिक परिवर्तन के दिशा में मार्क्सवादी वर्ग संघर्ष के प्रति अपनी पक्षधरता को स्वीकार करते है। उनका यह वैचारिक परिवर्तन परवर्ती रचनाओं 'गोदान' जैसे उपन्यास तथा 'पूस की रात' तथा 'कफन' जैसी कहानियों में परिलक्षित होता है। प्रेमचंद समाज में क्रान्ति लाना चाहते थे। इसीलिए वे समाज मे व्याप्त अंतर्विरोधों एवं विसंगतियों से निरन्तर संघर्ष करते है। अपने साहित्य में उनका यर्थाथ चित्रण करके समाज की मृतप्राय काया में एक नवीन चेतना का संचार करते है मनुष्य–मनुष्य की गुलामी करें यह उन्हें कदापि मंजूर नहीं था वे हर प्रकार की दासता के विरोधी थे चाहे वह शारीरिक दाशता हो या मानसिक और इससे मुक्ति दिलाने के लिए वे जनसाधारण को अपने साहित्य के माध्यम से यथा स्थिति से अवगत कराते हुए उन्हे चिन्तन के लिए प्रेरित करते हैं। उनकी समस्याओं के समाधान के लिए उन्हे संघर्ष की ओर उन्मुक्त करते है।

प्रेमचंद के उपन्यासों में चित्रित आर्थिक चेतना–

प्रेमचंद इतिहास के एक ऐसे संक्रमण कालीन युग की उपज थे जब औपनिवेशक शासन के परिणाम स्वरूप सम्पूर्ण भारत की अर्थव्यवस्था गम्भीर परिस्थितियों से जूझ रही थी। भारत में ब्रिटिश शासन काल तबाही का एक ऐसा युग था जिसमें शोषण के नए–नए रूपों का अविष्कार किया जिसके अन्तर्गत भारत की भूमि व्यवस्था में आमूल परिवर्तन करना, निरूधोगीकरण, किसानों को उनकी जमीनों सें बेदखल करना उन्हें गुलामों की भॉति विदेशो मे ले जाकर उनसे बेगार करना इत्यादि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अंग्रेजों की शोषण नीति, सामन्तों एवं जमींदारों के अत्याचार ने जन साधारण की कमर तोड़ रखी थी दूसरे शब्दों में प्रेमचंद का समाज एक औपनिवेशिक समाज था जो दूसरे मरणासन्न सामन्ती व्यवस्था तथा परिपक्व होती पूँजीवादी व्यवस्था से गुजर रहा था जिसके अन्तर्गत सामन्त और पूँजीपति दोनों ही ब्रिटिश शक्ति के सहारे कृषकों व श्रमिक का रक्त चूस रहे थे। इस प्रकार भारत की विवश जनता के लिए अंग्रेजों की दासता से बढ़कर एक दासता और थी और वह थी अपने लोगो की चाकरी मजदूर उद्योगपतियों अथवा मिल–मालिकों की तथा कृषक जमींदारों की गुलामी करने को विवश थे। ऊपर से अशिक्षा, अन्धविश्वास था भाग्यवादिता ने उन्हें निराशा तथा अवसाद के घोर अन्धकार में धकेल रखा था। जिसका दुष्प्रभाव उनके पारिवारिक सामाजिक धार्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन पर पड़ना अनिवार्य था। इन–दीन–हीन अशिक्षित प्राणियों में इतना साहस भी नही था कि वे अपने ऊपर होने वाले अत्याचार के विरूद्ध अपना मुँह खोल सके जनवादी साहित्यकार प्रेमचंद के लिए यह सब कुछ असहनीय था। "प्रेमचंद ने अपनी लेखनी का प्रारम्भ ही सही जीवन मूल्यों की रक्षा के लिए किया। इसीलिए उन्होने अपनी कलम से उस सीधी लड़ाई को उभार दिया, जो शोषक और शोषित के बीच भारतीय जमीन पर फैली हुयी थी। यह अपने समय के साथ बराबर चलते रहे, और वही कुछ लिखते रहे जो उनके सामने घटित हो रहा था। प्रेमचंद के समय कुछ बातें प्रमुख रूप से उभर कर सामनें आई प्रथम यह कि राष्ट्रीय जागरण धीरे–धीरे उभरता हुआ तेजी से हिन्दुस्तान की धरती पर फैल गया। दूसरा यह कि भ्रष्ट जमींदारी व्यवस्था, अपने ही कारनामों, अपने ही अत्याचारों और शोषण के कारण चरमरा कर टूटने को हो रही थी। तीसरे स्तर पर पश्चिम के प्रभाव से हिन्दुस्तान में भी औद्यौगीकरण हो रहा था। शरह विस्तार पा रहे थे और कल कारखानों के लिए जिस मज़दूर की जरूरत होती है वह किसान के परिवार से ही निकल कर आ रहा था। इसी———अपने युग की इन प्रमुख विशेषताओं से प्रेमचंद अपने को

अलन नही रख सके। वह अपने को अलग रख भी नही सकते थे, क्योकि वह एक जागरूक संवेदनशील लेखक थे। अपने जीवन संघर्ष में उन्होने जो कटु अनुभव पाए, उसने उनके लेखन को समाज के उस कमजोर वर्ग से जोड़ दिया जो शोषित था और अपने जीने के अधिकार के छिन जाने से तड़फड़ा रहा था। प्रेमचंद ने इस दबे कुचलें वर्ग को एक नई आवाज दी। इसके दुःख दर्द को सामने लाकर मानवीय के प्रति अपनी चेतनता को स्पष्ट किया।"[1]

प्रेमचंद शोषित उत्पीड़न दीन–हीन जनों के लेखक है उनका रचना संसार युगीन यथार्थ के ठोस धरातल पर सृजित संसार है। प्रेमचंद जानते थें कि मनुष्य के भौतिक जीवन का आधार है समाज और समाज की धुरी है उसकी आर्थिक व्यवस्था उन्होने कहीं भी मानव जीवन के इस ध्रुव सत्य की अनदेखी नहीं की उन्होने अपने कथा साहित्य के माध्यम से समाज की जितनी भी समस्याओं को उठाया है उनके मूल में कहीं न कहीं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक कारण विद्यमान है —"प्रेमचंद को भारतीय समाज के प्रत्येक अंग मज़दूर, किसान नगर जीवन आदि की आर्थिक स्थिति का यथार्थ ज्ञान था।" [2] प्रेमचंद के उन्यासों में उन प्रसंगों का सबसे यथार्थ पूर्ण तथा मर्मस्पर्शी चित्रण होता है जिसमें वे भूख से तड़पते लू–धूप में झुलसते, जाड़े पाले में ठिठुरते जीवन की छोटी–छोटी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु जिन्दगी और मौत से जूझते प्राणियों की विवशता को दर्शाते हैं ऐसा जीवंत तथा ह्रदय स्पर्शी चित्रण वही कर सकता है जिसने व्यक्तिगत स्तर पर जीवन के आभाओं से साक्षात्कार किया हो अपने जैसे असंख्य निर्धन लोगों को रोजमर्रा की जरूरतों को पूरा करने के लिए संघर्ष की चक्की मे पिसते देखा हो —"प्रेमचंद का निर्धनता, गरीबी और आभावों से जन्म का रिस्ता रहा है। इस दयनीय स्थिति में व्यक्ति किस तरह समझौता करता टूटता घिसटता है, इसे प्रेमचंद स्वयं जानते थे, अतः प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं में इस अर्थाभाव के अनेक पहलुओं को प्रदर्शित किया है। कर्ज और गुलामी, ब्याज की सूद और महाजन की जी हुजूरी का प्रमाणित दस्तावेज उनकी रचनाएँ है। एक कलाकार के नाते उन्होने इस कर्ज की दूरी पृष्ठभूमि प्रस्तुत की है। मंदी और बेकारी के समय में किसान और मजदूर, साहूकार और जमींदार के यहॉ स्वयं को ही नही अपितु अपनी संतान तक को नीलाम कराने पर मजबूर होते है। यह वास्तविक सच है।

---

[1] कथाकार प्रेमचंद–रामदरश मिश्र–पृ0 48।

[2] प्रेमचंद और उनका साहित्य–शीलागुप्त–पृ0 42।

प्रेमचंद के ''सेवासदन', 'कायाकल्प', 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि', 'गोदान' उपन्यास तथा उनकी 'सवासेर गेहूँ', 'ईदगाह', 'पूस की रात', 'कफन' आदि कहानियां विस्तार से निर्धनता और उससे जनित परिणामों का सशक्त दस्तावेज़ है। वास्तव में आभाव और गरीबी का जैसा चित्रण प्रेमचंद में मिलता है वह अद्वितीय है। उनकी कला ने इस सामाजिक रोग को बड़ी बारीकी से देखा है।''[1] प्रेमचंद आर्थिक विपन्नता को ही जनसाधारण की सारी विपत्तियों का कारण मानते थे जो समाज मे व्याप्त आर्थिक असमानता की उपज है और यह वैषम्य ईश्वर प्रदत्त नही वरन् दूषित समाज व्यवस्था की ही देन है प्रेमचंद का साहित्य तत्कालीन समाजिक जीवन में धनी–निर्धन, किसान–जमींदार उद्योगपति–श्रमिक एवं राजा प्रजा के सम्बन्धों में शोषक तथा शोषित की नीति को उजागार करता है ''सामाजिक सम्बन्धों के आर्थिक आधार को समझ सकने की अन्तर्दृष्टि प्रेमचंद की एक अन्यतम विशेषता है जिसे करके वे दलित और शोषित वर्ग के एक महान पक्षधर के रूप में हमारे सामने आते है। सामाजिक विकास को एक स्वस्थ दिशा प्रदान करने के लिए उन्होंने प्रतिक्रियावादी शक्तियों के विरोध मे समाज के श्रमिक और शोषित वर्ग का खुलकर समर्थन किया है। आर्थिक आधार पर ही उन्होने समाज की ह्रासोन्मुख और विकासोन्मुख व्यक्त शक्तियों को पहचाना है और इस बात के लिए सन्तोष व्यक्त किया है कि उनका भाग्य गरीबी के साथ बंधा हुआ है और वे शोषित वर्ग के साथ है। ''[2]

देश की आर्थिक समस्या का सीधा सम्बन्ध राष्ट्रीय पराधीनता से है। प्रेमचन्द इस तथ्य से भली–भॉति अवगत थे अतः राष्ट्रीय स्वाधीनता अथवा स्वराज्य को उन्होंने प्राथमिकता दी। परन्तु प्रेमचन्द के लिए स्वाधीनता का तात्पर्य गरीब जनता की दरिद्रता, शोषण, उत्पीड़न दलन तथा दमन से मुक्ति था वह देश की राजनीतिक स्वतंत्रता का लाखों करोड़ो निर्धन लोगों की आर्थिक स्वतन्त्रता से जोड़कर देखते थे कॉग्रेस का 'नया प्रोग्राम' शीर्षक जागरण की एक सम्पादकीय टिप्पणी में स्वराज्य के अपने आशय को स्पष्ट करते हुए लिखते है ––'' हम पूंजीपतियों का स्वराज्य नही चाहते, गरीबों, काश्तकारों तथा मजदूरों का स्वराज्य चाहते है।''[3] उनके अनुसार स्वराज्य आन्दोलन –––''––– उन लोगों का आन्दोलन है जो अपने सारे संकटों का मोचन एकमात्र–एकमात्र स्वराज्य ही को समझते है। जो गरीब है भूखे है दलित है, या जो गैरत से भरा

[1] प्रेमचंद और भारतीय साहित्य–सम्पादक–सुरेश कुमार पृ0 116।
[2] प्रेमचंद एक मार्क्सवादी मूल्यांकन–डा0 जनेश्वर वर्मा–पृ0 87।
[3] जागरण, 16 अक्टूबर सन् 1933।

हुआ, दशाभिमान से चमकता हुआ ह्रदय रखते है और यह देखकर जिनका खून खौलने लगता है कि कोई दूसरा हमारे ऊपर शासन करे।"[1] प्रेमचंद यह भी भली–भॉति समझ रहे थे कि "कुछ लोंग स्वराज्य आन्दोलन से इसलिए घबडा रहे है कि इससे उनके हितों की हत्या हो जायेगी,––– वे परोक्ष या अपरोक्ष रूप से सरकार का साथ देने पर आमादा है। इनमें अधिकांश हमारे जमींदार सरकारी नौकर, बड़े–बड़े व्यापारी और रूपये वाले लोग शामिल है उन्हें भय है कि अगर यह आन्दोलन सफल हो गया तो जमींदारी छिन जायेगी, नौकरी से अलग कर दिये जायेंगे, धन जब्त कर लिया जायगा। इसलिए इस आन्दोलन को सिर न उठाने दिया जाय उन्हे ब्रिटिश सरकार के बने रहने में अपनी कुशल नज़र आती है।" [2]

साम्राज्यवाद की कूटनीति और उसे देशी सामंतो और पूँजीपतियों की सांठ–गांठ से प्रेमचंद पूर्णताः परिचित थे इसी कारण —" उन्होंने व्यवस्था के मूल चरित्र के परिवर्तन की आवश्यकता का अनुभव किया था। मात्र व्यक्ति के परिवर्तन में समस्याओं का हल उन्हें सम्भव नहीं दिखाई देता था। जॉन के स्थान पर गोबिन्द को बिठा देने के कायल नहीं थे। उनका विचार था कि सामंती और पूँजीवादी सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक ढॉचे को तोड़े बिना किसान, मजदूर की मुक्ति सम्भव नहीं। 'गोदान' मे वे पूँजीवादी–सामंती सम्बन्धों की पूरी तरह पड़ताल करते हैं और दोनों के गहरे अंतर्विरोधों को गहराई से स्पष्ट करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि किसान मजदूरों के शोषण के इनके अपने तरीके है और सम्बन्ध में दोनो में गहरी एकता है। इसीलिए कॉग्रेस के सुराज की कल्पना से उनका मोह भी भंग हो जाता है।–––बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में वे स्वदेशी आन्दोलन की भूरि–भूरि प्रशंसा करते हैं और पूँजीपति वर्ग की राष्ट्रीय भावना की सराहना भी करते है। लेकिन महायुद्ध के बाद पूँजीपति वर्ग अपने वास्तविक चरित्र की अभिव्यक्ति करने लगता है। भारतीय पूँजीपति वर्ग भी जनान्दोलनों से उतना ही भयभीत है कि जितना कि ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन। यहीं से भारतीय पूँजीपति वर्ग की भूमिका बदल जाती है वह जन–संघर्षों को समझौता में बदलने की कोशिशे करता है, और काफी हद तक इसमें सफल भी होता है। " [3] प्रेमचंद पूँजीपतिवर्ग के इस दोहरे चरित्र को भली–भॉति समझ रहे थे। इसीलिए वह जानते थे कि पूँजीवादी नेतृत्व के द्वारा राष्ट्रीय आन्दोंलन के जनवादी

---

[1] विविध प्रसंग–भाग 2–पृ0 48।
[2] विविध प्रसंग–भाग 2–पृ0 41–42।
[3] वर्तमान साहित्य–जुलाई–2005–पृ0 119।

उद्देश्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता अतः वे जनता से अपनी लड़ाई स्यवं लड़ने का आग्रह करते है।

राष्ट्रीय आन्दोंलन के पूँजीवादी नेतृत्व की दोरंगी–नीति को 'गबन' उन्यास के पात्र देवीदीन खटिक के माध्यम से उजागर करते हुए लिखते है ––" बड़े–बड़े देश–भगतों को बिना बिलायती सराब के चैन नही आता। उनके घर में जाकर देखो तो एक भी देशी चीज न मिलेगी। दिखाने को दस बीस कुरते गाढे के बनवा लिए, घर का और सब समान विलायती है। सबके सब भोग–विलास में अन्धे हो रहे है, छोटे भी और बड़े भी उस पर दावा यह है कि देश का उद्धार करेगें। अरे तुम क्या देश का उद्धार करोगें। पहले अपना उद्धार तो कर लों।–––––एक बार यहाँ एक बड़ा भारी जलसा हुआ। एक साहब बहादुर खडे होकर खूब उछले–कूदे; जब वह नीचे आए, तब मैने उनसे पूँछा– साहब, सच बताओं जब तुम सुराज का नाम लेते हो तो उसका कौन सा रूप तुम्हारी आँखों के सामने आता है ? तुम भी बड़ी–बड़ी तलब लोगे, तुम भी अंग्रजों की तरह बंगलों में रहोगे, पहाड़ो की हवा खाओंगे, अंग्रेजी ठाठ बनाए घूमोंगे इस सुराज से देश का क्या कल्यान होगा। तुम्हारी और तुम्हारे भाई–बन्दों की जिन्दगी भले ही आराम और ठाठ से गुजरे, देस का तो कोई भला न होगा। बस बंगलें झांकने लगे। तुम दिन में पाँच बेर खाना चाहते हैं, और वह भी बढ़िया माल, गरीब किसान को एक जून सूखा चबेना भी नही मिलता उसी का रक्त चूसकर तो सरकार तुम्हे हुद्दे देती है। तुम्हारा ध्यान कभी उनकी ओर जाता है ? अभी तुम्हारा राज नहीं हो जायेगा, तब तो तुम गरीबों को पीसकर पी जाओगें। "[1] प्रेमचंद की पूँजीवादी नेतृत्व की अपेक्षा जनवादी नेतृत्व पर विश्वास था। इसी विश्वास को अपने एक लेख में इन शब्दों में व्यक्त करते हैं––" यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि मजदूर और किसान एक होकर जो चाहे कर सकते हैं। उनकी शक्ति असीम है। वह जब तक बिखरे हुए है, घास के टुकड़े हैं, एक होकर जहाज को खीचने वाले रस्से हो जायेगे।"[2]

जन संघर्ष के जनवादी नेतृत्व के लिए प्रेमचंद मध्यवर्ग के बुद्धि जीवियों की भूमिका को बहुत महत्वपूर्ण मानते थे। प्रेमचंद की उत्कृष्ट आकांक्षा थी कि ––" भारतीय मध्यवर्ग अपने भीतर की समस्याओं से ऊपर उठकर तथा पूँजीवादी लालसाओं को त्यागकर अपने भीतर राख के ढ़के अग्निकुंज को पहचाने और

---

[1] 'गबन प्रेमचंद पृ0 152।

[2] प्रेमचंद–वर्तमान आन्दोलन के रास्ते में रूकावट जमाना दिसम्बर 1921।

उसकी लपट की रोशनी गाँव में बिखेर दे क्योंकि सच्ची क्रांन्ति वही से शुरू होती है।"[1] अपने लेखन के आरम्भिक काल में उन्होने शिक्षित मध्यवर्ग को जो महत्व प्रदान किया सम्भवतः उसका कारण यह रहा है कि वे इस वर्ग से भारतीय समाज के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने की अपेक्षा कर रहे हों क्योंकि यह नवोदित वर्ग अपनी बात तथा व्यवहार में आर्दशवादी दिखाई देता था। मध्यवर्ग के इस आदर्शवाद से प्रभावित होकर उन्होंने 'सेवासदन' तथा 'निर्मला' जैसे उपन्यासों की सृष्टि की परन्तु अंग्रेजी राज्य की परोपजीवी प्रवृत्ति की देन होने के कारण सामाजिक भावना एवं उच्चस्तरीय नैतिक मूल्यों के आभाव में विलासिता, मिथ्याडम्बर और भ्रष्टाचार इस वर्ग के जीवन पद्धति के अनिवार्य अंग बन गए थे। जिसके परिणाम स्वरूप इस वर्ग का वास्तविक चरित्र मानवीय सार से रहित था। यह वर्ग दूसरों के श्रम पर मोटा होना जानता था। प्रेमचंद अपनी कथा दृष्टि के विकास के साथ–साथ मध्यवर्ग के चरित्र को समझने लगते है और अपने आरम्भिक उपन्यास 'सेवासदन' से ही इस वर्ग के दोहरे चरित्र को बेनकाब करने लगते हैं। " प्रेमचंद ने अपने सभी उपन्यासों में, जहॉ भी उन्हें अवसर मिल गया. है इस वर्ग के समाज विरोधी आचरण के यथार्थ परक चित्र अंकित किये है।-----'सेवासदन' से ही नौकरशाही की आलोचना द्वारा ब्रिटिश शासन व्यवस्था के शोषण और भ्रष्टाचार के विरूद्ध प्रेमचंद के विद्रोह का अभियान आरम्भ होता है जो गोदान तक निरन्तर विकसिक होता चला जाता है।" [2] प्रेमचंद इस बाद को भली–भॉति समझ रहे थे कि ब्रिटिश सरकार द्वारा पोषित इस नौकरशाही वर्ग के लोगों को जनता के दुख दर्द से कोई सरोकार नहीं उन्हें तो अपने लम्बे–लम्बे वेतनों की चिन्ता घेरे रहती है जज, वकील, प्रोफेसर पुलिस विभाग के उच्चाधिकारी सभी अपनी स्वार्थ सिद्ध में लगे हुए है। अंग्रेजी शासन का समर्थक बने रहने में ही वे अपना कल्याण समझते है। क्योंकि ऐसा करके उन्हे वहॉ सुख–सुविधाएँ और कुछ अधिकार प्राप्त हो जाते है। जिससे उसके मिथ्या अहंकार और आत्मा प्रदर्शन की भावना को संतुष्टि प्राप्त होती है। 'स्वराज' की पोषक एवं समाज विरोधी व्यवस्थाओं के विषय में चर्चा करते हुए 1921 ई0 में लिखे गए अपने एक लेख में लिखते है ' शिक्षित समुदाय सदैव शासन का आश्रित रहता है। उसी के हाथों शासन कार्य का संपादन होता है। अतएव उसका स्वार्थ इसी में है कि शासन सुदृढ़ रहे और वह स्वयं शासन के स्वेच्छाचार 'दमन' निरंकुशता और अराजकता मे भाग लेता रहे। इतिहास में ऐसी घटनाओं की भी कमी नही है, जब शिक्षित वर्ग ने राष्ट्र और देश को अपने स्वार्थ पर

---

[1] 'आलोचना' लेख अंक (52–पृ0 11)

[2] प्रेमचंद : एक मार्क्सवादी मूल्यांकन–पृ0 141।

बलिदान दे दिया है। यह समुदाय विभीषणों और भगवानदासों से भरा हुआ है।" भारत के स्वतन्त्रता आंदोलन में जिस प्रकार की उदासीनता इस वर्ग ने दिखाई उससे तो प्रेमचंद क्षुब्ध थे ही साथ ही समाज में फैली कुरीतियों, अंधविश्वास, छल प्रपंच सामंती शोषण वर्ग और वर्ग भेद के प्रति इस वर्ग ने जिस प्राकर की उदासीनता एव तटस्थता का प्रदर्शन किया उससे भी प्रेमचंद रूष्ट थे। क्योंकि भारतीय समाज में व्याप्त छआछूत, धार्मिक पाखण्ड, ढोंग अंधविश्वास, सूदखोरी, साम्राज्यवादी, शोषण महाजनी तथा सामंती उत्पीड़न ने भारतीय जन–जीवन का खोखला और जर्जर कर दिया था।

प्रेमचंद के उपन्यासों में ब्रिटिश शासन की छत्र–छाया में पलने वाले जमींदारों और ताल्लुकेदारों के निर्मम शोषण के यथार्थ पर चित्रण से परंपरा सेवासदन से ही प्रारम्भ हो जाती है जमींदारों के साथ–साथ गॉव के महाजन और धर्माचार्य भी निरीह किसानों का किस निदर्यता से उत्पीड़न करते है इसे प्रेमचंद ने बहुआयामी व्यक्तित्व वाले महंत रामदास जो जमींदार होने के अतिरिक्त महाजन तथा धर्माचार्य भी है, के चरित्र के शोषण धर्मी क्रिया–कलापों के द्वारा चित्रित किया है जिनके यहॉ शोषण का सारा कारोबार 'श्री बांके बिहारी जी के नाम' पर चलता है यहाँ तक कि महन्त रामदास धर्म के नाम पर गरीब चेतू के प्राण तक ले लेता है। महन्त जी की इस निर्दयता का चित्रण करते हुए प्रेमचंद लिखते है ––" इस साल महन्त जी तीर्थ यात्रा करने गए थे। वहाँ से आकर उन्होंने एक बड़ा यज्ञ किया था। एक महीने तक हवन कुण्ड जलता रहा, महीनों तक कड़ाह न उतरे, पूरे दस हजार महात्माओं का निमंत्रण था। इस यज्ञ के लिए इलाके के प्रत्येक आसामी से हल पीछे पॉच रूपया चंदा उगाहा गया था, किसी ने खुशी से दिया किसी ने उधार लेकर और जिसके पास न था उसे रूक्का ही लिखना पड़ा। 'श्री बॉके बिहारी जी' की आज्ञा को न टाल सकता था ? यदि ठाकुर जी को हार माननी पड़ी तो केवल एक अहीर से जिसका नाम चेतू था। वह बूढ़ा दरिद्र आदमी था। कई साल से उसकी फसल खराब हो रही थी। थोड़े ही दिन हुए उसे श्री बॉके बिहारी जी' ने उस पर इजाफा लगान की नालिश करके उसे ऋण के बोझ से और भी दबा दिया था। उसने यह चंदा देने से इनकार कर दिया, यहाँ तक कि रूक्का भी न लिखा। ठाकुर जी भला ऐसे द्रोही को कैसे क्षमा करतें।" चेतू को उसके विरोध के बदले इतनी मार पड़ती है कि वह ठाकुर द्वारे के सामने ही दम तोड़ देता है।"[1] प्रेमचंद की कृतियों में 'सेवासदन' को धार्मिक तथा आर्थिक शोषण के विरूद्ध पहली आवाज उठाने का

---

[1] सेवासदन' प्रेमचंद–पृ0–78।

श्रेय प्राप्त है। जिसमें अहिर का चरित्र शोषण और दमन के प्रति शोषित और दमित वर्ग के विद्रोह का प्रतीक है।

अंग्रेज भारतीय सामंतवाद के चरित्र से भली–भॉति परिचित थे। भारत की अपार धन सम्पदा को लूटने के लिए भारतीय सामंतो को उन्होंने अपना दुमछल्ला बना लिया। उन्हें अपना दलाल बनाने के लिए अंग्रेजों उनसे सहानुभूति पूर्ण सम्बन्ध स्थापित किये और जब भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद सुदृढ हो गया तो उन्होंने भारतीय समाज को एक औपनिवेशिक सामंती समाज बना डाला। अंग्रेजो ने देशी रियासतों को समाप्त करके सामंतों तथा नबाबों को कुछ सुविधाएँ उपलब्ध करा दी ताकि वे उनकी जी हुजूरी करते हुए उनकी दलाली कर सके। इस तथ्य को प्रेमचंद प्रेमाश्रम में राय कमलानन्द के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त करते है। ''यह जायजाद नही है, इसे रियासत कहना भूल है, यह निरी दलाली है।'' प्रेमचंद मानवता को पीड़ित करने वाले कारणों पर पैनी दृष्टि रखते थे औपनिवेशिक शासन व्यवस्था में शासन वर्ग और जमींदारों के शोषण ने भोली–भाली जनता विशेष कर किसानों को दीनता तथा दरिद्रता की जिस चरम सीमा पर पहुँचा दिया था प्रेमचंद ने शोषण के इस मायाजाल के एक–एक तंतु को बहुत बारीकी से देखा था। प्रेमचंद का जन्म एक ऐसे वातावरण में हुआ था जहाँ उन्होंने कृषक जीवन की आर्थिक समस्याओं उनकी विवशताओं तथा शोषण के विविध रूपों का व्यक्तिगत स्तर पर अनुभव किया, अर्थाभाव व्यक्ति को किस प्रकार समस्याओं के चक्रव्यूह में उलझाता है इस कड़वे सच को उन्होने स्वयं भोगा था और शायद इस भोगे हुए यथार्थ के कारण ही वे कृषक वर्ग के इतने बडे पक्षधर बन सके डा0 कमलारंजन के अनुसार प्रेमचंद किसानों के प्रवक्त माने जाते हैं उनके कष्टों उनकी आर्थिक विपन्नता, विवशता को उन्होने बहुत निकट से देखा था। उनके सम्पूर्ण कथा साहित्य में प्रताड़ित किसानों की अकथ विवशता की कहानी वर्णित है। उनकी आर्थिक विपन्ता उनकी दयनीय अवस्था उनके विभिन्न कष्टों का इतिहास उनके कथा साहित्य के पृष्ठो में अंकित है। हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम जमींदारी प्रथा के उन्मूलन की मॉग करने वाला प्रेमचंद का उपन्यास 'प्रेमाश्रम' है जिसमें उन्होंने किसानों के सामन्तवाद विरोधी संघर्ष को सजीवता से चित्रित किया है। 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचंद अपनी असली जमीन पर आते है। प्रेमचंद की असली जमीन है —गॉव के शोषित पीड़ित खेतिहर समुदाय के जीवन संघर्ष का बयान यह संघर्ष एक और जमींदारो के खिलाफ है, तो दूसरी

ओर विदेशी साम्राज्यवाद के जन विरोधी दमन तंत्र को चुनौती देता है।"[1] 'प्रेमाश्रम' को सन् 1921 ई0 के किसान आन्दोलन की प्रतिध्वनि कहा जाता है। श्री जगदीश्वर चतुर्वेदी अपने एक लेख में लिखते है---'प्रेमाश्रम' की रचना काल 1918-19 ई0 है। यह वह दौर है जब उत्तर-प्रदेश में बड़े पैमाने पर किसानों के संघर्ष भड़क उठते है। महामना पं0 मदन मोहन मालवीय ने 1918 में उत्तर प्रदेश किसान सभा का गठन किया। पंडित नेहरू ने 1919 में अवध के रईसों के खिलाफ किसान आंदोलन का नेतृत्व किया। दूसरी ओर बाबा रामचन्द्र ने किसानों में संघर्ष का बिगुल बजाया। ये सारे आन्दोलन अवध में उभरो अवध में उभरने का प्रधान कारण यह है कि अवध के ताल्लुकेदार 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम के बाद से ब्रिटिश शासकों के विशेष कृपा पात्र थे ज्यादातर जमीनों पर उन्ही का स्वामित्व था। ऐसी स्थिति मे किसानों की लड़ाई जमींदारों और ब्रिटिश शासन के खिलाफ थी।" [2]

'प्रेमाश्रम' की मूल्य समस्या भूमि की समस्या है जिसके अन्तर्गत लगान तथा बेदखली की समस्या का चित्रण करते हुए प्रेमचंद ने किसानों की विविध समस्याओं पर प्रकाश डाला है किसान एक ओर अमलातन्त्र की क्रूरता, लिप्सा और पाश्विक भ्रष्टता को झेल रहा है दूसरी ओर जमींदार के अत्याचार की चोट उसे तोड़ रही है आपसी बैमनस्य अलग से है और उनकी इन समस्याओं में है सबसे बड़ी समस्या है उनकी निर्धनता जिसके कारण वे कृषि कार्यो का सम्पादन समुचित ढंग से नहीं कर पाते इसी कारण खेती से उनका परता नही पड़ता। " क्या जाने क्या हो गया है कि अब खेती में बरक्कत नहीं रही। पॉच बीघे रब्बी बोयी थी, लेकिन दस मन की भी आशा नहीं है और गुड का तुम जानते ही हो, जो हाल हुआ है। कोल्हाडे में बिसेसर साह ने तौला लिया। "[3]

'प्रेमाश्रम' जमींदार और किसान के संघर्ष की कहानी है। जमींनदार किसानों के शोषण के लिए कैसे-कैसे हथकंडे अपनाते है। इसका अत्यन्त सफल चित्रण प्रेमचंद ने इस उपन्यास में किया है। बेगार और नज़राना छोटी-छोटी गल्तियों पर गरीबों का पिटवाना लगान में वृद्धि करना, जमीन से बेदखल कर देना, कुर्की करवा देना, झूंठे अपराध में फंसाकर मुकदमें चलवाना और किसानों को जेल में डलवाकर उन्हें तबाह करने का कोई तरीका उनसे छूटा न था। "ज्ञानशंकर के पिता का वार्षिक श्राद्ध है। उस अवसर पर उसके आसामियों को

---

[1] कथाकार-प्रेमचंद-सं0 रामदरश मिश्र-पृ0 115।
[2] 'वर्तमान साहित्य ' जुलाई 2005 पृ0 59।
[3] 'प्रेमाश्रम '-प्रेमचंद-पृ0 11।

बाजार भाव से कहीं कम भाव में उसे घी देना है। जिस किसान के घर भैंस नही है उस पर भी यह तकाजा है। जमींदार को घी चाहिए उसे इस बात की चिन्ता करने की जरूरत नही है। आसामी के पास दूध देने वाली भैंस है या नही।"[1] प्रेमचंद के अनुसार किसानों के दोहन के उत्तरदायी केवल जमींदार एवं साहूकर ही नहीं बल्कि वह सभी व्यक्ति जिन्हें सरकार की ओर से कोई अधिकार प्राप्त है और उनके आधीन कार्य करने वाले कर्मचारी भी किसानों का शोषण और उत्पीडन करने में किसी से कम नहीं है। प्रेमचंद जानते थे कि इस वर्ग के उल्लेख के बिना कृषकों के जिन समस्याओं को वे उद्घाटित करना चाहते हैं वे अधूरी रह जायेगी। ये वर्ग भोले–भाले देहातियों के साथ कैसा धूर्ततापूर्ण व्यवहार करता है। इसका अत्यन्त सजीव चित्रण करते है —" शहरों में तो उनकी दाल नही घलती या गलती है तो बहुत कम। वहॉ प्रत्येक वस्तु के लिए उन्हें जेब में हाथ डालना पड़ता है किन्तु देहातों में जेब की जगह उनका हाथ अपने सोते पर होता है या किसी दीन किसान की गर्दन पर ! जिस घी, दूध, शाक–भाजी, मांस–मछली आदि के लिए शहर में तरसते थे, जिनका स्वप्न में भी दर्शन नहीं होता था, उन पदार्थो की यहाँ केवल जिह्वा और बाहु के बल से रेल–पेल हो जाती है। जितना खा सकते है, खाते है, बार–बार खाते है, और जो नहीं खा सकते, वह घर भेजते है। घी से भरे हुए कनस्टर, दूध से भरे हुए मटके, उपले और लकड़ी, घास और चारें से लदी हुयी गाड़ियॉ शहरो मे आने लगती है घर वाले हर्ष से फूले नहीं समाते, अपने भाग्य को सराहते है, क्योंकि अब दुःख के दिन गए और सुख के दिन आए।––– देहात वालों के लिए वह बड़े संकट के दिन होते है, उनकी शामत आ जाती है, मार खाते है, बेगार में पड़ जाते है, दासत्व के दारूण , निर्दय आघातों से आत्मा का भी ह्रास हो जाता है।"[2] इसके पात्रों की जबानी वह इस वर्ग के अत्याचार की कहानी इस तरह सुनाते है "डपट सिंह की ईधन की लकडियॉ उठ जाती है। वह कहता है––" खॉ साहब से कितना कहा कि इसे मत ले जाइये, पर उनकी बला सुनती है। चपरासियों ने ढेर दिखा दिया बात की बात में सारी लकड़ियॉ उठ गई –––– क्या कहता, दस पॉच मन लकड़ी के पीछे अपनी जान सॉसत में डालता। गालियॉ खाता, लश्कर में पकड़ जाता, मार पड़ती ऊपर से।"[3] कादिर मिंया कहते है––"हाकिमों का दौरा क्या है, हमारी मौत है। बकरीद में कुर्बानी के लिए जो बकरा पाल रखा

---

[1] 'प्रेमाश्रम ' प्रेमचंद पृ0 11।
[2] 'प्रेमाश्रम' प्रेमचंद्र–पृ0 53–54।
[3] 'प्रेमाश्रम' प्रेमचंद–पृ0 54।

था वह कल लश्कर में पकड़ गया।"[1] मनोहर कहता है—"यह लोग बड़ा अन्धेर मचाते है। आते है इन्तजाम करने, इन्साफ करने, लेकिन हमारे गले पर छुरी चलाते है। इससे कहीं अच्छा तो यही था कि दौरे बन्द हो जाते। यही न होता कि मुकदमे वालों वालों को सदर जाना पड़ता, इस सॉसत से तो जान बचती।"[2] और सबसे करूण दृश्य उस समय उपस्थित होता है जब बीमार बुढ़िया को अस्पताल ले जाने वाली गाडी बेगार मे पकड़ ली जाती है। बटोही गॉव-वालों से कहता है—"घर तो है देवरी पार, अपनी बुढिया माता के लिए अस्पताल जाता था। मगर वह जो सड़क के किनारे बगीचे में डिप्टी साहब का लश्कर उतरा है, वहॉ पहुँचा तो चपरासियों ने गाडी रोक ली और हमारे कपड़े-लत्ते फेंक-फांक कर लकडी लादने लगे। कितनी अरज-बिनती की, बुढिया बीमार है, भर रात का चला हूँ, आज अस्पताल नहीं पहुँचा तो कल न जाने इसका क्या हाल हो। मगर कौन सुनता हैं ? मै रोता ही रहा, वहॉ गाड़ी लद गयी। तब मुझसे कहने लगे, गाडी हॉक। क्या करूँ, अब गाड़ी हॉक सदर जा रहा हूँ। बैल और गाड़ी उनके भरोसे छोड़कर आया हूँ। जब लकड़ी पहुँचा कर लौटूँगा तब अस्पताल जाऊँगा। तुम लोगों से हो सके तो बुढ़िया के लिए एक खटिया दे दो और कहीं पड़ रहने का ठिकाना बना दों इतना पुण्य करो मै बड़ी विपत्ति में हूँ।"[3]

ये नौकरशाही वर्ग वास्तव में ब्रिटिश शासन तन्त्र का ही एक अंग है। इस वर्ग के चारित्रिक पतन के लिए प्रेमचंद ब्रिटिश शासको के द्वारा अपनायी गई उस समय की शिक्षा प्रणाली को ही उत्तरदायी ठहराते है अंग्रेजी शासन द्वारा पोषित नौकरशाही का विशाल समुदाय इसी दूषित शिक्षा-प्रणाली की ही उपज थी। इस उपन्यास के पात्र कादिर के माध्यम से प्रेमचंद कहते हैं—विद्या उन्हे गरीबों का गला रेतना सिखा देती है।" शिक्षित वर्ग के प्रति प्रेमचंद के इस क्षोभ के पीछे तद्‌युगीन नेताओं की दुरंगी नीति है जिसे प्रेमचंद जनता की दुर्दशा का सबसे बडा कारण मानते है सन् 1919 में लिखे गये लेख 'पुराना जमाना,'नया जमाना' में स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं—' जनता को इस जड़ता की स्थिति में रखने का सारा-दोष शिक्षित और सम्पन्न लोगों पर है। हमारे स्वराज के नेताओं में वकील और जमींदार ही सबसे ज्यादा है। ——— शिकायत हमें उन लोगों से है जो पढ़े लिखे है, वकील है और जमींदार है वह अपने दिल से पूँछे कि वह प्रजा के साथ अपना कर्तव्य पूरा कर रहे है। ——क्या यह शर्म की बात नहीं है कि

---

[1] 'प्रेमाश्रम'-प्रेमचंद-पृ0 55।
[2] प्रेमाश्रम-प्रेमचंद-पृ0 55।
[3] प्रेमाश्रम प्रेमचंद पृ0 56।

जिस देश में नब्बे फीसदी आबादी किसानों की हो, उस देश में कोई किसान सभा, कोई खेती का विद्यालय, किसानों की भलाई का कोई व्यवस्थित प्रयत्न हो। अपने सैकड़ो मदरसे और कालिज बनवाए, यूनीवर्सिटियाँ खोली और उनके आन्दोलन चलाए मगर किसके लिए ?।'' [1]

प्रेमचंद इस बात पर चिन्ता व्यक्त करते हैं कि जनता के शोषक तो एक हैं और किसान मज़दूर असंगठित वे भली–भाँति जानते थे कि शोषक वर्ग के खिलाफ संगठित हुए बिना इस शोषण चक्र को समाप्त करना उनके लिए असम्भव होगा। अतः प्रेमचंद ने सर्वप्रथम किसानों की एकता तथा संगठन पर बल देते हुए इस उपन्यास में जमींदारों के शोषण के विरूद्ध पहली संगठित आवाज उठाई है। प्रेमाश्रम में प्रेमचंद किसानों से जो विद्रोह कराते हैं उसे जानने से पूर्व उसके ''–– कारणों और स्वरूप की जानकारी आवश्यक है। गाँव के किसान तालाब पर बैठे हुए अपनी स्थिति का विश्लषेण और उसकी विवेचना करते है। वे जानते है कि वे अनपढ है, कमजोर है, उसमें फूट है और दूसरी ओर रिश्वतखोर, असहृदय अफसर है, स्वार्थी, लोभी जमींदार है।'' [2] सुक्खू किसान कहता है,' देखते हो कैसा उपद्रव कर रहे है। रात–दिन जाफा, बेदखली, अखराज की धूम मची है।''[3] स्थिति तब विस्फोटक रूप धारण कर लेती है जब जमींदार के आदमी बाजार भाव 10 छटॉक होने पर भी सेर भर घी देने के लिए किसानों को बाध्य करते है तो आर्थिक तंगी से त्रस्त किसानों के लिए यह अत्याचार असहाय हो जाता है। उसके मन में दबा हुआ क्रोध विद्रोह के स्वर में फूट पड़ता है और जमींदार के आदमी के यह कहने पर ''जब जमींदार की जमीन जोतते हो तो उसके हुक्म के बाहर नही जा सकते।'' इस पर मनोहर उत्तर देता है '' जमीन कोई खैरात जोतते है ? उसका लगान देतें है। एक किस्त भी बाकी पड़ जाय तो नालिश होती है।'' आगे क्रुद्ध होकर कहता है '' न करिन्दा कोई काटू है न जमींदार कोई हौवा है। यहाँ कोई दबैल नहीं है जब कौड़ी–कौड़ी लगान चुकाते है तो धौस क्यों सहे।''[4] मनोहार का बेटा बलराज अत्यन्त निर्भीकता पूर्वक कहता ––––''सुन लेगा, तो क्या किसी से छिपा के कहते है। जिसे बहुत घमण्ड हो आकर देख ले। एक–एक का सिर तोड़ के रख दूँ। यही न होगा, कैद होकर

---

[1] विविध प्रसंग भाग–1 पृ0 266, 267, 268।
[2] प्रेमचंद एक अध्ययन–राजेश्वर गुरू पृ0 156।
[3] प्रेमाश्रम प्रेमचंद पृ0 3।
[4] प्रेमाश्रम प्रेमचंद पृ0 5–6।

चला जाऊंगा। इससे कौन डरता है। महात्मा गॉधी भी तो कैद हो आये हैं।"[1] 'प्रेमाश्रम' में किसानों की पुरानी पीढ़ी भले ही सब कुछ सहन करने को तैयार हो लेकिन युवा पीढी प्रगतिशील तथा क्रान्तिकारी विचारों से ओत प्रोत है। उदाहरर्णाथ उपन्यास का एक युवा पात्र बलराज कहता है, "तुम लोग मेरी हंसी उड़ाते हो, मानो कास्तकार कुछ होता ही नही, वह जमींदार की बेगार ही भरने के लिए बनाया गया है। लेकिन मेरे पास जो पात्र आया है ,उसमें लिखा है कि रूस देश में काश्तकारों ही का राज है, वह जो चाहते है करते हैं। वहॉ अभी हाल की बात है, काश्तकारों ने राजा को गद्दी से उतार दिया है और अब किसानों और मजदूरों की पंचायत राज करती है।"[2] बलराज वर्गीय चेतना तथा अपने अधिकारों के प्रति पूरी तरह जागरूक हैं और उनकी रक्षा के लिए किसी भी प्रकार के अनाचार का विरोध करने के लिए सदैव तत्पर रहता है —"जमींदार कोई बादशाह नहीं है कि चाहे जितनी जबरदस्ती करे और हम मुॅह न खोले। इस जमाने में तो बादशाहों का भी इतना अख्तियार नही, जमींदार किस गिनती में है। कचहरी दरबार में कहीं सुनवाई नही है तो (लाठी दिखाकर) यह तो कहीं नही गयी है।"[3] यद्यपि गॉधी जी के हृदय परिवर्तन के सिद्धान्त में आस्था रखने वाले प्रेमचंद इस उपन्यास में प्रेमशंकर के प्रयासों से ज्वालासिंह, इरफान अली, प्रियनाथ और इजाद हुसैन आदि का हृदय परिवर्तन कराते है तथापि सत्याग्रह के सिद्धान्त पर से उनकी आस्था डगमगाने लगती है। अब उन्हें कहना पड़ता है कि सत्याग्रह में अन्याय को दमन करने की शक्ति है यह सिद्धान्त भ्रान्तिपूर्ण सिद्ध हो गया। यही कारण है कि प्रेमाश्रम में शोषण के विरूद्ध क्रान्ति का विगुल बजाते है और इसके पात्र मनोहर के हिंसक कर्म की निन्दा न करके शुक्खू चौधरी तथा कादिर मिंया जैसे सहिष्णु व्यक्तियों से उसकी भूरि–भूरि प्रशंसा करवाते है।

इस प्रकार "प्रेमाश्रम' में पहली बार किसी भारतीय लेखक ने आसनस्थ होकर किसानों की आर्थिक दुरवस्था का चित्रण, उसके कारणों की मीमांसा और अपने सम्बोध के अनुसार उनका समाधान प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। 'प्रेमाश्रम' की अधिकारिक कथा आर्थिक है, किसानों का शोषण जमींदारो के रवैये,

---

[1] प्रेमाश्रम प्रेमचंद पृ0 13।

[2] प्रेमाश्रम प्रेमचंद पृ0 69।

[3] प्रेमाश्रम प्रेमचंद पृ0 68।

सरकार की नीति अमलों के हथकंडे आदि के ही तानों बानों से हिन्दी में पहली बार एक औपन्यासिक कथापट पर निर्मित हुआ जिसका एक अपना, शत, प्रतिशत अपना, उभरा हुआ रूपांक या ड़िजाइन है। इस डिजाइन को मौलिकता बनावट से अधिक उसकी बुनावट में, समकालीन जीवन में प्रत्यक्ष परिलक्षित आर्थिक सम्बन्धों, प्रसंगों, समस्याओं, हलचलों और घटनाओं आदि की स्वीकृति तथा उन समस्त प्रत्यक्ष आर्थिक सम्बन्धों प्रसंगों समस्याओं, हलचलों और घटनाओं आदि के मूल में कार्य करने वाली परोक्ष शोषणाभिमुखी केन्द्रवर्ती चेतना की गहरी समझ के स्तरों पर यथार्थ की पहचान और पकड़ मे प्रकट हुई है।"[1] 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचंद ने ग्रामीण–अर्थ व्यवस्था का यथार्थ परक चित्रण करते हुए कृषकों की आर्थिक दीनता तथा विवशता के लिए जमींदारी तथा महाजनी शोषण को उत्तरदायी ठहराया है वे जमींदारी प्रथा के उन्मूलन मे ही कृषकों का कल्याण देखते है अतः इस उपन्यास मैं वही जमींदारों के शोषण के विरूद्ध आवाज ही नहीं उठाते अपितु भूमि के पैत्रृक अधिकार का खण्डन करते हुए प्रेमशंकर के मुख से कहलवाते हैं––"भूमि उसकी है जो उसको जोते। शासक को उसकी उपज में भाग लेने का अधिकार इसलिए हैं कि वह देश में शान्ति और रक्षा की व्यवस्था करता है, जिसके बिना खेती हो ही नहीं सकती। किसी तीसरे वर्ग का समाज में कोई स्थान नही है।" [2] प्रेमाश्रम में किसान–जमींदार समस्या के हल के रूप में जिस नये समाज की प्रेमचंद स्थापना करते है उसे वास्तविकता के धरातल पर अवतरित करने के लिए वह अंग्रेजी शासन से नहीं, अपनी भीतरी कमजोरियों से अपने समाज के जड़ ढांचे से लड़ने की बात करते है।

प्रेमचंद ने लगभग अपने समस्त उपन्यासों में जहाँ भी उन्हें अवसर मिला है मजदूरों तथा किसानों के उत्पीड़न एवं सम्रज्यवादी शोषण के समस्त प्रक्रियाओं को उसकी पूरी जटिलता के साथ समग्रता पूर्वक उद्घाटित किया है। "कायाकल्प" भी इसका अपवाद नहीं है "कायाकल्प" प्रेमचंद की एक अनूठी रचना है जिसमें एक और पुर्नजन्म के विचित्रता पूर्ण आख्यान है' तो दूसरी ओर तद्युगीन समाज के राजाओं और जगीरदारों के विलासी जीवन और उनके करिन्दों के अनाचार का शोषण से ग्रस्त किसानों एवं मजदूर की दुर्व्यवस्था का अन्याय और अत्याचार के विरोध में जाग्रत होने वाली जनता की संघर्ष भावना का भी वर्णन है।

---

[1] प्रेमचंद कालीन उपन्यासो में ग्रामीण जीवन पारस नाथ सिंह–पृ0 78।

[2] प्रेमाश्रम प्रेमचंद पृ0 163।

औपनिवेशिक शासन के भीतर पलने वाली सामन्ती तत्वों की भूमिका तथा उसके कुत्सित चरित्र पर प्रेमचंद की पैनी दृष्टि थी। प्रजा वात्सलता की डींगें हॉकने वाले प्रभूत्व शाली वर्ग के चेहरों पर पड़े हुए दयालुता और विशाल ह्रदयता के आवरण को वे कुवॅर विशाल सिंह के माध्यम से तार–तार करते हुए वे इस वास्तविकता को जनता के सम्मुख लाते हैं कि पूॅजीपति वर्ग जन कल्याण और प्रजाहित के कितने भी वादे क्यूँ न करे उसके वादों पर कदापि भरोसा नहीं किया जा सकता क्योंकि अधिकार और सम्पत्ति हाँथ आते ही इस वर्ग की नियति बदलते देर नहीं लगती बेगार की चर्चा सुनकर जिन कुवँर विशाल सिंह की आँखे नम हो जाया करती थीं वही राजा साहब बनने के बाद अपने तिलकोत्सव के अवसर पर बिना भोजन दिये चमारों से बेगार लेते हैं, भोजन माँगने पर उन्हें निर्दयता पूर्वक पिटवाते हैं उनके नेता चक्रधर पर बंदूक कुन्दे से वार करते है। हड़ताली मजदूरों के विद्रोह को कुचलने के लिए अपने सिपाहियों को उन पर गोली चलाने का आदेश देते है। सामन्ती चरित्र के इस वीभत्स रूप को जानने के बाद सत्ता हस्तान्तरण के पश्चात् उनके द्वारा जनता पर किये जाने अत्याचारों के विषय में सोच कर प्रेमचंद जैसे दूरदर्शी साहित्यकार का चितिंत होना स्वाभाविक ही था। जिसे उन्होने "आहूति" कहानी के माध्यम से व्यक्त किया है। "कायाकल्प" उपन्यास के उपरोक्त प्रसंग के द्वारा वह शोषित वर्ग को यह संदेश देना चाहते है कि उन्हें अपने हितों की लड़ाई स्वयं लड़नी होगी। प्रभुत्वशाली वर्ग की दया कृपा अथवा नेतृत्व पर भरोसा करना स्यवं को धोखा देने जैसी बात होगी क्योंकि दुर्बल समुदाय के प्रति यह वर्ग केवल शाब्दिक सहानुभूति व्यक्त कर सकता है।

मानवता को पीड़ित करने वाले कारणों पर पैनी दृष्टि रखने वाले प्रेमचंद का विचार था कि पूॅजीवादी व्यवस्था भारत जैसे विशाल देश के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है उनका दृढ़ विश्वास था कि इस व्यवस्था के रहते भारत की चतुर्मुखी उन्नति असम्भव है क्योंकि देश की बहुसंख्यक जनता किसान तथा मजदूरों का शोषण करना इस व्यवस्था का वास्तविक उद्देश्य है। यही कारण है कि किसानों तथा मजदूरों की मुक्ति का मार्ग वह पूॅजीवाद तथा सामन्तवाद के उन्मूलन में देखते थे अतः धन पर आधारित जनतंत्र से अपनी असहमति प्रकट करते हुए जन साधारण को इस पूॅजीवादी जनतंत्र से किसी भी प्रकार की आशा न रखने की चेतावनी देते हुए लिखते है–"यह आशा करना कि पूॅजीपति किसानो की दीन दशा से लाभ उठाना छोड़ देगें, कुत्ते से चमड़ी की रखवाली करने की

आशा करना है। इस खूँखार जानवर से अपनी रक्षा के लिए हमें स्वयं सशस्त्र होना पड़ेगा।"[1]

दीन–दुखी किसानों तथा हताश निराश मजदूरों को आर्थिक शोषण से मुक्ति के लिए अपने साहित्य में वह स्थान–स्थान पर संघर्षरत दिखाई देते है "रंगभूमि" भी उनके इसी संघर्ष की एक कडी है। इसमें प्रेमचंद ने पूँजीपति तथा श्रमिकों के मध्य होने वाले संघर्ष का चित्रण किया है। रंगभूमि गॉव के परम्परागत जीवन में औद्योगीकरण के घुसपैठ की कथा है जो सहकारिता पर आधारित गॉव के सामूहिक जीवन को छिन्न–भिन्न कर देता है। इस उपन्यास का मुख्य पात्र सूरदास इसी विश्रखलित समाज का एक असहाय विपन्न प्राणी है ऑखों से अंधा भी है इतना सब कुछ होने पर भी जीवन की विद्रुपताओं से लड़ने को उसमें अदम्य साहस है भारत के प्रचीन आदर्शो का अनुयायी उच्च मानवीय गुणों से परिपूर्ण पाश्चात्य सभ्यता एवं औद्यौगीकरण का विरोध करने वाला सूरदास अपनी चारित्रिक विशेषताओं के दपर्ण में गॉधीजी का प्रतिरूप दिखाई देता है। उद्योपति जॉन–सेवक सूरदार की ज़मीन पर कारखाना बनाना चाहता है परन्तु सूरदास औद्योगीकरण के लिए अपनी ज़मीन देने को कदापि तैयार नहीं उस जमीन से उसे व्यक्तिगत स्तर पर कोई लाभ नहीं किन्तु गॉव का लाभ उससे अवश्य जुड़ा है कारखाना खुलने से गाँव की सहकारित उसकी सभ्यता नष्ट हो जायेगी। अतः सूरदास यथाशक्ति शहरी सभ्यता के आगमन को रोकने का प्रयास करता है। प्रेमचंद औद्योगिक विकास के विरोधी नहीं थे। लेकिन जो विकास ग्रामवासियों के विनास का कारण बने । प्रेमचंद उसका समर्थन कैसे कर सकते हैं। प्रेमचंद ग्राम जीवन से भावनात्मक रूप से जुडे थे, गॉव के प्रति उनके ह्रदय में बहुत प्रेम था। जॉन सेवक जैसे पूँजीपति अपने स्वार्थ के लिए गॉव को नष्ट कर दें यह बात प्रेमचंद नहीं सह सकते थे वह गॉव में शहरी सभ्यता के इस प्रवेश को रोकना चाहते थे–" रंगभूमि की कथा सूरदास की उस संघर्ष की कथा है जिसमें वह गॉव की संस्कृति को बचाने के लिए जी जान से कोशिश करता है।"[2]

गॉव में महाजनी 'सभ्यता' के प्रवेश से आतंकित सूरदास को गॉव वालों के भविष्य की चिंता है इसीलिए उनसे कहता है–"अभी तक तो तुम्हारे ऊपर भगवान की दया है, अपना–अपना काम करते हो, मगर ऐसे बुरे दिन आ रहे हैं, जब तुम्हें सेवा और टहल करके पेट पालना पड़ेगा जब तुम अपने नौकर नही,

---

[1] कांग्रेस की विधायक योजना 30 अप्रैल 1934 पृ0 333।

[2] प्रेमचंद एक अध्ययन–राजेश्वर गुरू–पृ0 180।

पराये के नौकर हो जाओगें। जब तुममें नीति धरम का निसान भीरू न रहेगा।"[1] जॉन सेवक जमीन की बात करने के लिए कारिन्दे ताहिर अली को गॉव में भेजता है तो समस्त गाँववासी उसका विरोध करते है। ताहिर अली के धमकी देने पर सूरदास चुनौती भरे शब्द में कहता है–-" मेरे जीते जी तो जमीन न मिलेगी हॉ मर जाऊँ तो भले ही मिल जाय।"[2] जॉन सेवक के गॉव में आगमन से पूर्व गॉव का वातावरण बड़ा ही शान्तिपूर्ण सरल और सहज था। पहले सभी गाँव वाले यह चाहते थे कि सूरदास की पुस्तैनी ज़मीन न बिके क्योंकि उस ज़मीन से मुहल्ले भर की गाय भैंस चारा प्राप्त करती थी। पंडा जी के हजारों यात्री कई–कई दिन तक उसी जमीन पर डेरा डाले रहते थे। लेकिन जॉन सेवक भोले–भाले गॉव वासियों को सुनहरे सपने दिखाकर अपने पक्ष में कर लेता है। इस प्रकार अब "सूरदास की लड़ाई दो मोर्चो पर है। एक ओर वह आँधी की तरह आती हुई ओद्योगीकरण और पूँजीवाद की प्रवृत्तियों से लड़ता है, दूसरी ओर स्वार्थ में बावले हो जाते हुए गॉव के लोगों की इर्षालु प्रवृत्तियों से लड़ता है। मानों एक हाथ से वह मशीन के दानव को रोकना चाहता है, दूसरे हाथ से गाँव को अनीति के रास्ते पर चलने से रोकता है।"[3]

सूरदास और जॉन सेवक के मध्य होने वाला संघर्ष वास्तव में हमारे राष्ट्रीय संघर्ष की कथा है–-" रंगभूमि में अन्तर्गत हमारे गॉव की टूटती सामाजिक, सांस्कृतिक जिन्दगी के विविध प्रसंगों को उपस्थित कर लेखक ने इस बात का गहरा अहसास कराया है कि सामंती षडयंत्र एवं पूँजीवादी तिकडम छल–बल से घुस पैठ कर हमारे जीवन को तोड़ रही है। प्रेमचंद ने औद्योगिकता की तुलना में कृषि संस्कृति की जोरदार हिमायत की है। "[4] सूरदास के लाख प्रयास करने के बाद भी मिल बन ही जाती है। और जॉन सेवक का काम चल पड़ता है। लेकिन यहीं से गॉव वालों के लिए नयी–नयी मुसीबतों का प्रारम्भ हो जाता है। सूरदास अधिकारियों से कहता है –-"अब एक अरज आप से भी है साहब। आप पुतलीधर के मंजूरों के लिए घर क्यों नही बनवा देते। ये सारी बस्ती में फैले हुए है और रोज उद्यम मचाते है। हमारे मुहल्ले में किसी ने औरतों को नहीं छेड़ा था, न कभी इतनी चोरियाँ हुई, न कभी धडल्ले से जुआ हुआ न शराबियों का ऐसा हुल्लड रहा। जब तक मजूर लोग यहॉ काम पर नहीं आ जाते। औरतें घरों से पानी भरने नही निकलती। रात को इतना हुल्लड़ होता है

---

[1] रंगभूमि प्रेमचंद पृ0 22।
[2] रंगभूमि प्रेमचंद पृ0 23।
[3] प्रेमचंद एक अध्ययन पृ0 181 राजेश्वर गुरू।
[4] कथाकार प्रेमचंद रामदरश मिश्र पृ0 127।

कि नींद नही आती। किसी को समझाओ, तो लड़ने पर उतारू हो जाता है। "[1] फैक्टरी के मजदूरों के निवास के लिए निर्धनों के झोपडे को नष्ट कर दिया जाता है। सूरदास अपने झोपडे की रक्षा के लिए अपने प्राणों की आहुति दे देता है।

अंग्रेजी शासन की साम्राज्यवादी नीति शोषण और आतंक पर आधारित है इस तथ्य को प्रेमचंद भली–भाँति समझते थे। रंगभूमि में उन्होंने ब्रिटिश सरकार की इस शोषण नीति का यथार्थ चित्रण किया है। औपनिवेशिक शासन में गरीब जनता पर कैसे–कैसे अत्याचार होते हैं और उन्हें करवाता कौन है रियासत के दीवान साहब के शब्दों में देखिये –"सरकार की रक्षा में हम मनमाने कर वसूल करते हैं, मनमाने कानून बनाते हैं, मनमाने दंड देते है, कोई यूं नही कर सकता। यही हमारी कारगुजारी समझी जाती है, इसी के उपलक्ष्य हमको बड़ी–बड़ी उपाधियां मिलती है, पद की उन्नति होती है।"[2] ब्रिटिश शासन में जनता पर किये जाने वाले अत्याचार का एक और उदाहरण देखिये ––"उधर सिपाहियों ने घरों के ताले तोड़ने शुरू किये। कहीं किसी पर मार पड़ती थी, कहीं कोई अपनी चीजे लिए भागा जाता था। चारों ओर शोर मचा हुआ था विचित्र दृश्य था, मानो दिन दहाड़े डाका पड़ रहा हो।"[3] मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण पर आधारित समाज व्यवस्था का प्रेमचंद ने अपने साहित्य में प्रबल विरोध किया है। " वर्तमान व्यवस्था में शोषण के कारण धन इकट्ठा होता है और धन–शोषण बनता है। इसीलिए प्रेमचंद ने जगह–जगह सम्पत्ति की निन्दा की है। इस समाज में सम्पत्ति मनुष्य को बुरे कर्मो की ओर ले जाती है। विचारवान से विचारवान मनुष्य भी सम्पत्ति पाकर अमानवीय हो जाता है।"[4] 'रंगभूमि' में पूँजीवाद और बाजार वाद के विकृत स्वरूप की ठीक–ठीक पहचान का जिस प्रकार प्रेमचंद ने उसके प्रतिरोध का प्रयास किया है वह वास्तव में सराहनीय है।

प्रेमचंद की महत्ता इस बात में है कि उन्होंने जन–साधारण की समस्याओं पर विचार करते समय उनके आर्थिक आधार को कभी अनदेखा नहीं किया बल्कि एक कुशल समाजशास्त्री की भाँति इन समस्याओं मे अन्तर्निहित आर्थिक पक्ष को उजागार करके उनका विवेचना एवं विश्लेषण किया है। उनके उपन्यासों मे आर्थिक वैषम्य के असंख्य दारूण चित्र विद्यमान है जो अनायास ही पाठकों का ध्यान इन समस्याओं के मूल कारणों की ओर केन्द्रित करते है। 'कर्मभूमि' तक

---

[1] रंगभूमि प्रेमचंद पृ0 394।
[2] 'रंगभूमि' प्रेमचंद–पृ0 215।
[3] रंगभूमि, प्रेमचंद–पृ0 218।
[4] प्रेमचंद भारतीय किसान–रामबक्ष–पृ0 260।

आते–आते प्रेमचंद की वर्ग चेतना एवं उनकी वैचारिक विकास की दिशा और भी स्पष्ट हो जाती है। 'कर्मभूमि' की कथा का निर्माण सन् 1929 की विश्वव्यापी मंदी के परिणाम स्वरूप उत्पन्न भारतीय किसानों की आर्थिक विपन्नता की पृष्ठभूमि में हुआ। इस समय किसानों की फसल का मूल्य बहुत की घट गया था। मंदी के कारण किसानों की दशा कितनी दयनीय हो गयी थी। इसका सजीव चित्रण प्रेमचंद ने 'कर्मभूमि' मे किया है "इस साल अनायास ही जिंसों का भाव गिर गया। इतना गिर गया। जितना चालीस साल पहले था। जब भाव तेज था, किसान अपनी उपज बेच बाच कर लगान दे देता था, लेकिन जब दो और तीन की जिन्स एक में बिके तो किसान क्या करे। कहाँ से लगान दे, कहॉ से कर्ज चुकायें। विकट समस्या आ खड़ी हुई, और यह समस्या आ खडी हुई, और यह दशा कुछ ही इलाके की न थी। सारे प्रान्त, सारे देश, यहाँ तक कि सारे संसार में यही मंदी थी। चार सेर गुड़ कोई दस सेर में भी नही पूँछता। आठ सेर का गेहूँ डेढ़ रूपया मन का सन् चार रूपये में। किसानों ने एक–एक दाना बेंच डाला भूसें का एक तिनका भी न रखा; लेकिन यह सब कुछ करने पर भी चौथाई लगान से ज्यादा न अदा कर सके।"[1]

ऐसी स्थिति में किसानो में असंतोष का फैलाना लगान बन्दी पर विचार करना, किसान सभाओं का संगठित होना और किसानों के आन्दोलन के मार्ग को अपनाना स्वभाविक बात थी। अतएव पंजाब में किरती किसान पार्टी के नाम से सन् 1926 में मज़दूर किसान संगठन की स्थापना हुई और इसी समय बम्बई में कामकारी शेतकारी पार्टी के नाम से मजदूर किसान संगठित हुए। सन् 1928 में उत्तर–प्रदेश में मज़दूर किसान पार्टी का जन्म हुआ। इस सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण घटना यह हुई कि इसी वर्ष कलकत्ता में अखिल भारतीय स्तर पर आल इण्डिया वर्क्स एण्ड पेजेंट्स पार्टी की स्थापना सोहम सिंह जोश की अध्यक्षता में हुई। प्रेमचंद जैसा जागरूक लेखक देश में उठने वाली आन्दोलनों की इन लहर से कैसे अनभिज्ञ रह सकते थे। उन्होने कर्मभूमि में इन राष्ट्रीय आन्दोलनों को जीवन्तता प्रदान की है तथा शोषित दलित किसानों के स्वर को मुखरित किया है। प्रेमचन्द एक ओर जहॉ जमीनदारों के अत्याचार तथा शोषण के हथकंडों सेठ साहूकारों कि धनलोलुपता मठाधीश महन्तों की विलासिता पर से पर्दा हटाते है वहीं दूसरी ओर सरकारी तथा नगर पालिका के कर्मचारियों की स्वाधीनता और शिक्षा संस्थानों के आर्थिक नीति का भण्डा फोड़ करवाते है। अपने

---

[1] 'कर्मभूमि '–प्रेमचंद–पृ0 241–242।

युग के प्रत्येक उतार चढाओं पर नजर रखने वाले प्रेमचंद किसानों की समस्याओं से अपने को विलग कैसे रख सकते थे। इस उपन्यास में वे जमींदार कृषक संघर्ष और मंदी के कारण उत्पन्न होने वाली लगान की समस्या को सफलता पूर्वक चित्रित किया है। मंदी के कारण किसानों की दशा दिन प्रतिदिन दयनीय होती जा रही थी। लगान अदा करना उनकी सामर्थ्य के बाहर था। ऊपर से महन्त जमींदार लगान वसूली करने के लिए किसानों पर अत्याचार कर रहे है। स्वामी आत्मानन्द किसानों को इस संकट से उबारने के लिए उन्हे संगठित करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते है। प्रेमचंद लिखते है –''रोज बड़ी–बड़ी किसान सभाओं की खबरे आती थी। जगह–जगह किसान सभाएं बन रही थी।''[1] स्वामी आत्मानन्द और अमरकान्त एक सभा आयोजित करते हैं। जिसमें किसानों की स्थिति पर विचार किया जाता है। भोला चौधरी कहता है –''हमारे ऊपर जो लगान बॅधा हुआ है। अबकी अगर बैल–बछिया बेचकर दे भी दे तो आगे क्या करेगें। –––मै गंगा माता की कसम खाकर कहता हूॅ कि मेरे घर में छटॉक भर भी अन्न नही है, और जब मेरा यह हाल है, तो और सभी का यही हाल होगा। उधर महंत जी के यहॉ वही बहार है। अभी परसों एक हजार साधुओं को आम की पंगत दी गयी। बनारस और लखनऊ से कई डब्बे आमों के आये है। आज सुनते हैं कि मलाई की पंगत है। हम भूखों मरते है, वहॉ मलाई उड़ती है। उस पर हमारा रक्त चूसा जा रहा है।''[2] जबर्दस्ती लगान वसूली की भीषण समस्या का चित्रण करते हुए प्रेमचंद लिखते है '' कितना अन्याय है कि जो बेचारे रोटियों को मुहताज हों, जिनके पास तन ढकने को चीथडे हो, जो बीमारी में एक पैसे की दवा भी न कर सकते हो, जिनके घरों मे दीपक भी न जलते हों, उनसे पूरा लगान वसूल किया जाय। ––– जिनके लड़के पॉच छः बरसे की उम्र से ही मेहनत मजूरी करने लगें, जो ईधन के लिए हार में गोबर चुनते फिरें, उनसे पूरा लगान वसूल करना मानों उनके मुॅह से रोटी का टुकड़ा छीन लेना है, उनकी रक्तहीन देह से खून चूसना है।''[3]

अमर और आत्मानन्द दोनों ही 'कर्मभूमि' के लगान बन्दी आन्दोलन के नेता है। किन्तु दोनों की कार्य–नीति में अन्तर है। स्वामी आत्मानन्द किसानों से कहते है –''महंत को उत्सव मनाने को रूपया चाहिए। हकीमों को बड़ी–बड़ी

---

[1] 'कर्मभूमि'–प्रेमचंद पृ0 300।

[2] 'कर्मभूमि' –प्रेमचंद पृ0 242।

[3] 'कर्मभूमि' –प्रेमचंद पृ0 301।

तलब चाहिए। उनकी तलब में कमीं नहीं हो सकती। तुम मरो या जियों उनकी बला से। वह तुम्हें क्यों छोड़ने लगे। –– आओं, आज हम सब चलकर महन्त जी का मकान और ठाकुर द्वारा घेर लें और जब तक वह लगान बिल्कुल न छोड़ दें, कोई उत्सव न होने दें। "[1] इस प्रकार वह किसानों में उत्तेजना का संचार करते है। किसान अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए बड़ा से बड़ा बलिदान करने के लिए तैयार हो जाते है। लेकिन अमर की कार्यनीति इसका विरोध करती है। वह किसानों को कहता है ––"ठहरो ––जिस रास्तें पर तुम जा रहे हो, वह उद्धार का रास्ता नही है–सर्वनाश का रास्ता है। ––– हम घर को जलाना नही बनाना चाहते हैं। हमें उस घर में रहना है। उसी में जीना है। यह विपत्ति कुछ हमारे ही ऊपर नहीं पड़ी है। सारे देश में यही हाहाकार मचा हुआ है। हमारे नेता इस प्रश्न को हल करने की चेष्टा कर रहे हैं। उन्हीं के साथ हमे भीं चलना है।"[2]

अमरकान्त किसानों को आन्दोंलन का मार्ग त्याग कर अहिंसा का मार्ग अपनाने के लिए कहता है और उन्हें महन्त जी से चलकर फरियाद करने की सलाह देता है, और अपने आत्म सम्मान को त्याग कर स्वयं महन्त आशा रामगिरि से मिलता है। लेकिन अमर की विनम्रता का भी जब जमींदार पर लेश मात्र भी प्रभाव नही पड़ता और किसानों की दशा दिन–प्रतिदिन दयनीय होती जाती है। तब अमरकान्त लगान बन्दी निर्णय लेता है। वह किसानों को एकत्रित करके उन्हें लगान न देने का सुझाव देता है जिसके परिणाम स्वरूप अमर को गिरफ्तार कर लिया जाता है, और लगान बन्दी का यह आन्दोलन सरकार किसान संघर्ष का रूप धारण कर लेता है। इस सम्बन्ध में प्रेमचंद लिखते है––" पुलिस ने उस पहाडी इलाके का घेरा डाल रखा था। सिपाही और सवार चौबिसों घण्टे घूमते रहते थें। पॉच आदमियों से ज्यादा एक जगह जमा न हो सकते थे। शाम को आठ बजे के बाद कोई घर में मेहमान को ठहराने की भी मनाही थी। फौजी कानून जारी कर दिया गया था। कितने ही घर जला दिये गए थे। और उनके रहने वाले टबूड़ो की भॉति वृक्षों के नीचे बाल बच्चे को लिए पडे हुए थे।[3]

सलीम जो इस इलाके का सरकारी अफसर है, उसे मामले की छानबीन करके रिपोर्ट पेश करने का आदेश दिया जाता है। पहले तो किसानों के साथ

---

[1] 'कर्मभूमि' –प्रेमचंद पृ0 243।

[2] 'कर्मभूमि' –प्रेमचंद पृ0 244।

[3] 'कर्मभूमि' –प्रेमचंद पृ0 335।

सख्ती करता है। लेकिन इलाके का दौरा करने के उपरान्त किसानों की विवशता और दुर्दशा देखकर उसके मन में किसानों के प्रति करूणा का भाव उत्पन्न हो जाता है और वह किसानों के पक्ष में रिपोर्ट लिखता है। सरकार जो किसानों के संगठन को अपने सम्राज्यवादी नीति के लिए सबसे बड़ा संकट समझती है उस पर सलीम कि रिपोर्ट का कोई प्रभाव नही पड़ता और मालगुजारी में कोई कटौती नही होती। किसानों का पक्ष लेने के अपराध में सलीम को सरकारी नौकरी से विलग कर दिया जाता है। इसके उपरान्त सलीम आन्दोंलन का संचालन करता है। इन आन्दोलनों का सरकार पर कितनी निर्दयता पूर्वक दमन करती है। 'कर्मभूमि' में इसका जीवन्त उदाहरण देखिए—''नये बंगाली सिविलियन मि0 घोष पुलिस कर्मचारियों के साथ आ पहुँचे और गॉव भर के मवेशियों को कुर्क करने की घोषण कर दी। कुछ कसाई पहले ही से बुला लिए थे। वे सस्ता सौदा खरीदने को तैंयार थे। दम के दम में कांस्टेबिलों ने मवेशियों को खोल—खोल मदरसे के द्वार पर जमा कर दिया।''[1]

लगान बन्दी के इस आन्दोलन का कुछ ठोस निष्कर्ष नहीं निकलता इसका नेतृत्व करने वाले समस्त नेता गिरफ्तार कर लिए जाते है जिन्हें बाद में गर्वनर के आदेश से रिहा कर दिया जाता है। यद्यपि लगान बन्दी आन्दोलन से किसान अपने बांछित लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल रहे तथापि इससे किसानों में जागृति होने वाली चेतना उनके संगठित होने के शुभ संकेत अवश्य मिलते हैं। सुखदा के शब्दों मे—''हमे जो कुछे बलिदान करना पड़ता है उस जागृति को देखते हुए कुछ भी नही है, जो जनता में अंकुरित हो गई है। क्या तुम समझते हो, इन बलिदानों के बिना यह समझौता हो सकता था? [2] प्रेमचंद के इस उपन्यास में आर्थिक मंदी के काल में किसानों की दयनीय आर्थिक स्थति और उससे उत्पन्न समस्याएं पूरी तरह प्रतिबिम्बित हो उठी है।

सारा दिन खेतों में अपने लहू जलाकर अन्न उपजानें वाला किसान जी तोड़ परिश्रम के बाद भी समाज का सबसे दरिद्र वर्ग है। किसानों की दीनता एवं दरिद्रता का जैसा मार्मिक वर्णन प्रेमचंद के कथा साहित्य में मिलता वैसा अन्यत्र कहीं दुलर्भ है। ब्रिटिश उपनिवेशवादी युग में भारतीय किसान की वास्तविक दशा क्या थी ? 'गोदान' के अध्ययन से हम इस प्रश्न का उत्तर भली—भॉति जान

---

[1] 'कर्मभूमि' —प्रेमचंद पृ0 262।

[2] 'कर्मभूमि' —प्रेमचंद पृ0 403।

सकते हैं –" 'गोदान' में ग्रामीण अर्थ–व्यवस्था के महाजाल के लगभग सभी सूत्र, अपनी पूरी बारीकी और व्यापकता, उमेठ, फांस और गॉठ दबाव, और कसाव, क्रिया प्रतिक्रिया और परिणिति के साथ उभार कर प्रदर्शित किये गये हैं। केन्द्रीय जमींदार के फैले हुए 'बावन हाथ' और उनके सहयोगी पटवारी, कानूनगों, कारिन्दें और मुखिया के कारनामें, उनके दक्षिण पार्श्वकर्ता सरकारी अधिकारी कर्मचारी–वर्ग की दुरंगी चालें और बाम पार्श्ववर्ती महाजनों, पुरोहितों की लाग लपेट सबकी महाकाव्यात्मक संहिता उपस्थित करने वाली कोई एक कृति यदि हिंदी मे कोई है तो वह है 'गोदान'। [1] गोदान में प्रेमचंद ने ग्रामीण जीवन के आर्थिक पक्ष को समग्र रूप से प्रस्तुत किया है। इसकी कथा का केन्द्र बिन्दु होरी है। जो भारतीय किसान की प्रतिनिधित्व करता है। अन्य किसानों की भॉति वह भी निर्धनता का मारा है। जो जमींदार साहूकार तथा सरकारी कर्मचारी के शोषण के चक्रव्यूह मेँ फंसा हुआ है। इसके पात्रों की परिस्थिति जन्य विवश्ताएं और मानवीय कमज़ोरियॉ पाठको का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करती है।

अभावों से निरन्तर जूझते हुए होरी जैसे किसानों के दुःख दर्द उनकी आर्थिक विपन्नता और विवशताओं को प्रेमचंद ने बहुत निकट से देखा था। इसी कारण कृषक समाज का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करने में उन्हे वह सफलता प्राप्त हुई। कि इस क्षेत्र में हिन्दी साहित्य का कोई लेखक उनके आस–पास नही दिखाई देता–"गोदान युगीन समाज में पूँजीवाद के बढ़ते हुए प्रभाव के फलस्वरूप सामंतवादी युग मे फलने–फूलने वाली सम्मिलित परिवार की संस्था विखरने लगी थी। विघटन की यह प्रकिया नगरों से लेकर गॉवों तक फैलती जा रही थी। ग्रामीण कृषक परिवारों में हर बटवारे के बाद कृषि योग्य भूमि के छोटे–छोटे हो जाते थे जो उत्पादन की दृष्टि से लाभदायक न थे। होरी के पास केवल चार–पॉच बीघा जमीन रह गयी थी जो उसके परिवार के भरण–पोषण के लिए पर्याप्त न थी। फिर जमींदारो और महाजनों के शोषण के फलस्वरूप एक स्थिति ऐसी आती है कि विवश होकर उसे इस जमीन को बेचना पड़ता है। यह दशा अकेले होरी की नही है वरन् होरी के श्रेणी के सम्पूर्ण कृषक समाज की है जिसका अधिकांश प्रतिकूल परिस्थितियों से विवश होकर किसान से मजदूर बनता है और इस प्रकार दिन–पर–दिन सर्वहारा वर्ग की संख्या बढ़ती चली आती है।"[2] गोदान में किसानों का इसी विवशता का चित्रण किया गया है। कर्ज की समस्या

[1] प्रेमचंद कालीन उपन्यासो में ग्रामीण जीवन–पृ0 84 –पारसनाथ सिंह।

[2] प्रेमचंद : एक मार्क्सवादी मूल्यांकन–जनेश्वर वर्मा–पृ0 306।

'गोदान' का केन्द्र बिन्दु है। यह कर्ज सामन्ती शोषण की मशीन का एक महत्व पूर्ण पुर्जा है जिससे पूँजीवादी व्यस्था ने भी जारी रखा। निर्धनता की कोख से जन्मा कर्ज स्वयं निर्धनता का जन्मदाता है। धार्मिक अन्धविश्वास ग्रामीण समाज की वह कमजोरी है जिसके कारण वह जीवन भर कर्ज के बोझ से मुक्त नही हो पाता। कर्ज एक किसान को किस प्रकार सर्वहारा में परिवर्तित कर देता है होरी के बृतांत से स्पष्ट है।

'गोदान' में महाजनो के कर्ज के बोझ से दबे होरी का परिवार कई दिनों से दानों के लिए तरस रहा है। होरी जब गन्ने के बदले पैसे लेकर मिल से बाहर निकलता है तो झिंगुरी सिंह, नोखे राम इत्यादि महाजनगण उसे भूखे बाज की तरह टूट पड़ते है उससे एक–एक पैसा छीन लेते है। होरी खाली हांथ जब घर वापस लौट आता है, उस समय उसकी तथा घर वालों की दशा को जो मार्मिक चित्रण प्रेमचंद ने किया वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है—" होरी घर पहुँचा तो रूपा पानी लेकर दौडी, सोना चिलम भर लाई, धनिया ने चबेना और नमक लाकर रख दिया और सभी आशा भरी आँखों से उसकी ओर ताकने लगी। झुनिया भी चौखट पर आ खड़ी हुई थी। होरी उदास बैठा था। कैसे मुँह हाथ धोए, कैसे चबेना खाए,। ऐसा लज्जित और ग्लानित था, मानों हत्या करके आया हो। धनिया ने पूँछा —कितने की तोल हुई "एक सौ बीच मिले, पर सब वहीं लुट गए धेला भी न बचा।' धनिया सिर से पॉव तक भस्म हो उठी। मन में ऐसा उद्वेग उठा कि अपने मुँह नोच ले। बोली तुम जैसा घामड़ आदमी भगवान ने क्यों रचा, कहीं मिलते तो उनसे पूँछती। तुम्हारे साथ सारी जिन्दगी तलख हो गई, भगवान मौत भी नही देते कि जंजाल से जान छूटे, उठाकर सारे रूपये बहनोइयों को दे दिये। ———हल में क्या मुझे जोतेगो या आप जुतेगें ? पूस की यह ठंड और किसी की देह पर लत्ता नहीं। ले जाओं सबकों नदी में डुबा दो। सिसक–सिसक कर मरने से तो एक दिन मर जाना फिर भी अच्छा है। कब तक पुआल में घुसकर रात काटेंगे और पुआल में घुस भी लें तो पुवाल खाकर रहा तो न जाएगा। यह कहते–कहते वह मुस्करा पड़ी। इतनी देर में उसके समझ में यह बात आने लगी कि महाजन जब सिर पर सवार हो जाएं और अपने हाथ में रूपये हो और महाजन जानता हो कि इसके पास रूपये हैं, तो आसामी कैसे जान बचा सकता है।"[1]

[1] 'गोदान' प्रेमचंद–पृ0 159–160।

सामन्ती एवं पूँजीवादी शोषण से त्रस्त औपनिवेशिक किसान की दुर्दशा को प्रेमचंद ने होरी के माध्यम से चित्रित किया है। इस प्रकार होरी समाज के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जो शोषण के शिकार है निराश्रित हैं, दाने–दाने के मुहताज है कठिन परिश्रम करने पर भी जिनके भाग्य में भूखों मरना लिखा है जिनका बाल–बाल ऋण से बिंधा हुआ है प्रेमचंद ने विवशता की उस पराकाष्ठा को चित्रित किया जहाँ विद्रोह की कल्पना करना भी कृषकों के लिए कल्पनातीत है। फिर भला होरी विद्रोह कैसे कर सकता है। 'गोदान' प्रेमचंद के कथाशक्ति के विकास का चरम बिन्दु है जिसमें उन्होने कृषक जीवन के यथार्थ को परत–दर–परत उद्‌घाटित किया है। किसानों का शोषण करने वाले दस्ते की कारगुजारियों का वर्णन रामसेवक के माध्यम से इस प्रकार कहते है ––'थाना पुलिस कचहरी अदालत सब हैं हमारी रक्षा के लिए, लेकिन रक्षा कोई नही करता। चारों तरफ लूट है। जो गरीब है बेकस है, उसकी गर्दन काटने के लिए सभी तैयार है।––यहाँ तो जो किसान है, वह सबका नर्मचारा है। पटवारी को नजराना और दस्तूरी न दें तो गॉव में रहना मुश्किल है, जमींदार के चपरासी और कारिन्दे का पेट न भरे, तो निर्वाह न हो। थानेदार और कांस्टेबिल तो जैसे उसके दामाद हो। जब कभी गॉव में उनका दौरा हो जाए, तो किसानों का धर्म है कि उनका आदर सत्कार करना।''[1] इस चौतरफा लूट में किस प्रकार भारतीय गॉव को खोखला करके किसानों को तबाह कर दिया था इस भयावह यथार्थ की कारूणिक प्रस्तुति गोदान में हुई है। इसमें प्रेमचंद ने महाजनी शोषण के साथ–साथ उन सामाजिक जोंकों का भी वर्णन किया है जो कृषकों के लहू से अपनी प्यास बुझाती है वे भॅली–भॉति जान चुके थे कि कानून भी किसानों के साथ न्याय नही कर सकता क्योंकि ''कचहरी, अदालत उसी के साथ है जिसके पास पैसा है।''[2] प्रेमचंद ने अपने लेखन के आरम्भ से ही सामाजिक विसंगतियों तथा आर्थिक वैषम्य से अभिशप्त मानव की पीड़ा को अभिव्यक्ति प्रदान की है।''प्रेमचंद इस बात को स्पष्ट रूप से पहचान रहे थे कि पैसा आज सारी व्यवस्था के केन्द्र में है। यह पहचान ''गोदान'' में सर्वाधिक सघन हुई है। और यह पैसा पारंपरिक मूल्यों संबंधों, धार्मिक विश्वासो और मानवीय सोच से टकराकर व्यक्ति और समाज में अंतविरोध उत्पन्न करता है। किसानों के जीवन

---

[1] ' गोदान ' प्रेमचंद–पृ0 203।

[2] ' गोदान ' प्रेमचंद–पृ0 247।

की चूसने वाली उसके चतुर्दिक व्याप्त अपशक्तियाँ हैं –– जमींदार "रायसाहब" उसका करिन्दा (नोखेराम), पटवारी (पटेश्वरी), साहूकार (मंगरू और दुलारी), गंवई छोटे जमींदार (झिगुरी सिंह), पुरोहित (दातादीन)। ऊपर से ये सभी किसान के हितैषी हैं क्योंकि ये सभी किसान को आड़े समय पर कर्ज देते हैं। ये सभी अपने आप बने हुए किसानों के रहनुमा हैं क्योंकि किसानों के गलत कामों का दंड देते है। इनकी अपने आप बनी हुई पंचायत है जो किसानों के भले बुरे–कामों का फैसला करके उन्हे दंडित करती रहती है। ये सभी अपनी वाणी में देवता है लेकिन आचरण में राक्षस है। इनकी दृष्टि में मूल्य के नाम पर स्वार्थ होता है, पैसा होता है मूल्य और अर्थ का वाणी और आचरण का भयानक अंतर्विरोध इनमें दिखाई पड़ता हैं। यह भी अंतर्विरोध ही है कि ये एक–दूसरें के कटे हुए है किंतु किसानों के शोषण के समय एक हो उठते हैं जैसे उनमें यह गुप्त समझौता हो। मूल्य और आचरण का अंतर्विरोध देखने के लिए रायसाहब का विश्लेषण किया जा सकता है।"[1]

इस उपन्यास में समाज में व्याप्त वर्ग संघर्ष को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है जिसमें एक ओर दरिद्रता का भरा होरी है जिसके तीन लड़के दवा के आभाव में अकाल मृत्यु को प्राप्त हो गए दूसरी ओर किसानों की पैसों से ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले रायसाहब हैं जो बिना किंसी कारण के अपनी दवा में पानी की तहर रूपये खर्च करते है।" गोदान" मे प्रेमचंद ने वर्ग संघर्ष का चित्रण समाजवादी दृष्टिकोण से बड़े ही यथार्थ परक ढंग से किया है। कथानक का निमार्ण विशाल चित्रपट पर हुआ है जो ग्राम से नगर तक फैला हुआ है और जिसमें शोषण सम्बन्धी अनेक समस्याओं को उठाया गया है। पहली समस्या किसानों के शोषण की है जिसकी जड़े सामन्तवादी प्रथा मे है परन्तु जो वर्तमान पूँजीवादी युग मे और भी भयानक और स्पष्ट हो गयी है। समस्या का विश्लेषण करते हुए बतलाया गया है कि किसानों का शोषण तीन प्रकार के लोगों के द्वारा होता है–– जमींदार, साहूकार और धर्माचार्य। जमींदार के शोषण का चित्र होरी और रायसाहब के प्रसंग में तथा साहूकार के शोषण का चित्र दातादीन, पटेश्वरी और झीगुरी के प्रसंग मे किया गया है। धर्माचार्य और प्रतिष्ठित कहे जाने वाले व्यक्ति भी शोषक वर्ग का ही साथ देते है इनके शोषण का ढंग और भी क्रूर और अमानुषिक है। होरी की लाश पड़ी हुई है और पं0 दातादीन "गोदान" के लिए

---

[1] कथाकार प्रेमचंद–सम्पादक रामदरश मिश्र पृ0 155।

हाथ फैलाये खड़े है-----।"[1] गोदान में होरी का बृतांत एक निरीह कृषक की पराजय और निराशय की कथा नहीं वरन् होरी प्रकीक है उन लाखों करोडों भारतीय किसानों का जो अपनी सरलता और निरीहता के कारण हाड़तोड़ परिश्रम के उपरान्त भी कुछ नहीं पाते उनके परिश्रम का फल दूसरे लूट ले जाते है। कृषक जीवन का यह कटु यथार्थ हमारी ऑखें खोलता है हमारी सोई हुई संवेदना को जगाता है, हमारे भीतर एक तरह की बेचैनी पैदा करता है जो इन निरीह प्राणियों के प्रति हमारे ह्रदय में सहानुभूति का संचार करता है।

प्रेमचंद जनता के समस्त दुःखों का एक मात्र निदान सामाजिक न्याय देखते थे। वे आर्थिक विपन्नता को ही सारी विकृतियों को जड़ मानते थे। उनकी दृष्टि में सामाजिक बैषम्य ईश्वर प्रदत्त नही वरन् समाज की ही देन है। उनके ह्रदय में तद्युगीन समाज व्यवस्था तथा शोषकों के प्रति आक्रोश का ज्वालामुखी धधक रहा था जो हर प्रकार के दमन, शोषण और अत्याचार को भस्म कर देना चाहता था। यही कारण है कि गोदान में एक ओर होरी है जो जीवन की असंगतियों तथा विसंगतियों के मध्य डूबता उतरता-बाहर भीतर से टूटता बिखरता समाज, जाति धर्म के जुए मे पिसता हुआ साधारण किसानों की भॉति परिस्थितियों के भॅवर में हिचकोलें खा रहा है सब कुछ चुपचाप सहन कर रहा है तो दूसरी ओर गोबर सरीखा युवा क्रान्तिकारी युवा चरित्र है जिसके ह्रदय में शोषणोन्मुखी परिस्थितियों के प्रति विद्रोह की ज्वाला धधक रही है जो होरी की भॉति शोषक वर्ग के सक्षम नतमस्तक होने के स्थान पर एक स्पष्ट, दृढ़ और एवं सम्भावनाशील विद्रोह प्रस्तुत करता है।

'गोदान' तथा मंगलसूत्र' तक आते-आते -"कांग्रेस आन्दोलन की असफलताओं को देख चुके थे और गॉधी जी की अंहिसावादी, समझौतावादी नीति की निर्बलताओ और सीमाओं से परिचित हो चुके थे। वास्तव में प्रेमचंद जनहित के साधक थे। उनके लिए हिंसा या अहिंसा का प्रश्न इतना महत्वपूर्ण नहीं था जितना एक सच्चे जनवाद की स्थापना का था। जिसके अन्तर्गत देश के किसानों और मजदूरों को जीवन की सुख-सुविधाएं प्राप्त हो सके और उनके शोषण का अन्त हो सके वे किसी वाद या वैचारिक पूर्वाग्रह को लेकर नहीं चल रहे थे। जब गाँधीवादी नीति और नेतृत्व के द्वारा उन्हें इस लक्ष्य की सिद्धि होते हुए दिखाई नही दी तो उनके विचारों में मन्थन उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था।"[2] 'मंगलसूत्र'

---

[1] प्रेमचंद एक मार्क्सवादी मूल्यांकन-डा0 जनेश्वर वर्मा पृ0 97।

[2] प्रेमचंद : एक मार्क्सवादी मूल्यांकन-डा0 जनेश्वर वर्मा पृ0 96।

प्रेमचंद के जीवन के समस्त खट्टे–मीठे अनुभवों का निचोड़ है जिसमें हमें उनकी सारी पूर्व मान्यताए रेत के घरौंदे की भॉति ढ़हती दिखाई देती है। इस उपन्यास में वे एक नई दृष्टि नए तेज के साथ बुर्जुआ सभ्यता का विरोध करते, शोषणवादी व्यवस्था के विरूद्ध लामबंद होते नजर आते है। यह प्रेमचंद के चितंन में आए उस क्रॉन्तिकारी परिवर्तन का प्रतिफल है जो तत्कालीन समाज व्यवस्था के प्रति उनकी असंतुष्टि और घृणा की उपज था। प्रेमचंद का यह वैचारिक परिवर्तन 'मंगलसूत्र' के पात्र देवकुमार के आत्ममंथन में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर है जिसे प्रेमचंद ने इस प्रकार व्यक्त किया है ––"देवता वह है जो न्याय की रक्षा करें और उसके लिए प्राण दे दे। अगर वह जान कर अनजान बनता है वह धर्म से गिरता है और उसकी आँखों में यह कुव्यवस्था खटकती ही नही तो वह अंधा भी है और मूर्ख भी। देवता किसी तरह नहीं। देवताओं ने ही भाग्य, ईश्वर और भक्ति की मिथ्या–धारणाएं फैलाकर इस अनीति को अमर बनाया है। मनुष्य ने अब तक इसका अंत करें दिया होता या समाज का ही अंत कर दिया होता जो इस दशा में जिंदा रहने से कहीं अच्छा होता। नही मनुष्यों में मनुष्य बनना पडेगा।"[1] वस्तुतः यह देवकुमार का आत्ममंथन नही स्वयं प्रेमचंद का आत्म मंथन है। तत्कालीन समाज व्यवस्था के प्रति देवकुमार के मन–मस्तिष्क में जन्म लेने वाली शंकाएं प्रेमचंद की अपनी शंकाऍ है।

'मंगलसूत्र' तद्‌युगीन सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था के प्रति प्रेमचंद के बढ़ते हुए असंतोष का प्रतिबिम्ब है उन्हें भीतर ही भीतर यह बात हर समय कचोटती रहती है कि "जिस व्यवस्था से सारे समाज का उद्धार हो सकता है, वह थोड़े से आदमियों के स्वार्थ के कारण दबी पड़ी हुई है।"[2] अब तक वे इस तथ्य को पूर्ण रूप से समझ चुके थे कि विषमता मूलक समाज की न्याय व्यवस्था भी निष्पक्ष नहीं हो सकती। कानून भी केवल उन लोगों को संरक्षण प्रदान करता है जिनके पास धन है। यह सामाजिक कुव्यवस्था उनके लिए असहनीय हो गयी थी अतः वे उन शक्तियों के विरूद्ध हथियार बंद होने की बात करते है ––" "दरिन्दों के बीच में उनसे लड़ने लिए हथियार बांधना पड़ेगा। उनके पंजों का शिकार बनना देवतापन नहीं जड़ता है।" [3] देवकुमार चालीस वर्षो तक सत्य और अहिंसा की जिस मूर्ति को अपने ह्रदय से लगाए रहे वह जीवन के कठोर यथार्थ की चट्‌टान से टकरा कर चूर–चूर हो जाती है और वह जिस निष्कर्ष पर पहुॅचते

---

[1] मंगलसूत्र व अन्य रचनाएं –पृ0 390।

[2] मंगलसूत्र –पृ0 283 हंस प्रकाशन, प्रेमचंद स्मृति दिवस 1959।

[3] मंगलसूत्र व अन्य रचनाएं–पृ0 390।

है वास्तव में वे प्रेमचंद के व्यक्तिगत अनुभव का सार है जिसे 'मंगलसूत्र' में प्रेमचंद अपनी वसीयत के रूप मे छोड़ गए।

प्रेमचदं समता पर आधारित शोषक और शोषण विहीन एक ऐसे समाज का स्वप्न देखते थे जिसमें सामंतो जमींदारो तथा महाजनों के लिए कहीं कोई स्थान न हो उनके अनुसार --" आर्दश व्यवस्था यह है कि सबके अधिकार बराबर हो कोई जमींदार बनकर कोई महाजन बनकर जनता पर रोब न जमां सके यह ऊँच-नीच का भेद उठ जाए।"[1] इसी कारण अपने कथा साहित्य में प्रेमचंद ने व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकारों एवं उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व का जमकर विरोध किया है। व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार को मान्यता देने वाली उसका पोषण करने वाली औपनिवेशिक सामंती समाज व्यवस्था में मेहनतकश जनता के जीवन की विद्रुपताओं और सामाजिक अन्याय का उन्होने मार्मिक चित्रण किया है। प्रेमचंद एक स्वतन्त्र आत्मनिर्भर, धर्मनिरपेक्ष एवं जनतांत्रिक भारत का सपना देखते थे और इसे साकार करने के लिए उन्होने सम्पूर्ण व्यवस्था के समूल परिवर्तन की आवश्यकता का अनुभव किया था। क्योंकि इसके बिना जनसाधारण की मुक्ति असंभव थी। वे साम्राज्यवाद और उसके सहयोगी देशी सामन्त वाद तथा पूँजीवाद से एक साथ संघर्ष के समर्थक थे क्योंकि उनके अनुसार आर्थिक और सामाजिक स्तर पर देश की जनता की मुक्ति के बिना केवल राजनीति स्तर पर उसकी स्वतन्त्रता व्यर्थ है। प्रेमचंद अपनी साहित्यिक चेतना को जन चेतना के साथ सम्बद्ध करना चाहते थे क्योंकि जन चेतना ही उत्पीड़न अन्याय शोषण तथा सामंतवादी शक्तियों को निर्मूल्य कर सकती है इस बात पर प्रेमंचद का अटूट विश्वास था वह जानते थे कि साहित्य के द्वारा जनचेतना को मुखरित करके इस लक्ष्य को सुगमता पूर्वक प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि संगठित जनशक्ति में उनकी अटूट आस्था थी। वे कहते है "मजदूर और किसान एक होकर जो चाहे कर सकते हैं उनकी शक्ति असीम है और इस शक्ति की एक न एक दिन जीत अवश्य होगी ऐसा उनका विश्वास था। सामाजिक तथा आर्थिक समानता के पक्षधर प्रेमचंद का साहित्य हर उस शक्ति का खुले शब्दों मे विरोधी है जो पूँजीवादी सामंती सड़ी-गली व्यवस्थाओं के पक्ष में होकर देश की एकता तथा अखण्डिता, अमन शान्ति एवं सुख समृद्धि मे बाधक है। प्रेमचंद का साहित्य हर प्रकार के अत्याचार अन्याय शोषण और उत्पीड़न का विरोध करता है। साम्राज्यवादी तथा पूँजीवादी अनीति के विरूद्ध विद्रोह का बिगुल बजाता है।

---

[1] प्रेमचंद-संग्राम नाटक पृ0 62-63।

आर्थिक वैषम्य

जब एक वर्ग स्वार्थ के वशीभूत होकर अन्य वर्गो का शोषण करने लगता है तो ऐसी स्थिति में वर्ग संघर्ष की उत्पत्ति अनिवार्य हो जाती है जिससे मूल में आर्थिक वैषम्य विद्यमान होता है, आर्थिक वैषम्य व्यक्ति तथा समाज दोनों को समान रूप से प्रभावित करता है। भारतवर्ष में आर्थिक वैषम्य के लिए अंग्रेजों की वह कूटनीति उत्तरदायी है जिसके अन्तर्गत एक ओर भारत के औद्योगिक विकास के नाम पर वे जमकर उसका आर्थिक शोषण कर रहे थे वहीं दूसरी ओर उसे सभ्य बनाने का मिथ्या स्वांग भी भर रहे थे। देश में औद्योगिक विकास के नाम पर अनेकानेक कारखाने खुल गये जिसका सबसे महत्वपूर्ण कारण यह था कि अंग्रेजों को भारतीय मजदूर अत्यन्त सस्ते दामों पर उपलब्ध हो जाते थे। भारत को कृषि तथा उद्योग धन्धों के लिए ब्रिटिश सरकार की यह नीति अत्यन्त घातक सिद्ध हुई–"यह ब्रिटिश नीति का ही नतीजा था कि देशी छोटे पैमानों के ग्रामीण उद्योग नष्ट होते गए और ग्रामीण कारीगरों को भूमि पर आश्रित होना पड़ा।"[1] जिसके फलस्वरूप भारतीय कृषि व्यवस्था नष्ट भ्रष्ट हो गई, जिसका दुष्परिणाम देश की जनता को उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम तीन दशकों में पड़ने वाले भयंकर अकाल के रूप में भुगतना पड़ा। अब मिल मालिक और मजदूर जमींदार और किसान की स्थिति, शोषक और शोषित, की हो गई। जैसे–जैसे उत्पादन के साधनों पर शोषक–वर्ग का नियंत्रण स्थापित होता गया देश आर्थिक रूप से उतना ही जर्जर होता गया रजनी पामदत्त ने भारत में साम्राज्यवादी शोषण को तीन युगों में विभाजित किया है "पहला युग व्यापारिक पूँजी का युग है जिसका प्रतिनिधित्व ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने किया इस व्यवस्था का साधारण स्वरूप 18वीं सदी के अन्त तक चला। दूसरा युग औद्योगिक पूँजी का युग है जिसने 19वीं सदी में भारत के शोषण का एक नया आधार कायम किया। तीसरा युग महाजनी पूँजी का, आधुनिक युग है जिसने पुराने अवशेषों पर भारत के शोषण की अपने ढंग की खास प्रणाली विकसित की––"[2]

प्रेमचन्द का युग भारत वर्ष में इसी महाजनी पूँजीवादी व्यवस्था के उद्भव तथा विकास का युग था। जैसे–जैसे –"पूँजीवाद की प्रगाढ़ छाया निरन्तर गति से भारत पर फैलती गई, और इसके फलस्वरूप भारत की जनता का शोषण भी

---

[1] भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास तृतीय खण्ड–ताराचन्द पृ0 49।

[2] 'आज का भारत', रजनीपाम दत्त–पृ0 122–123।

बढ़ता गया -----भारत में पूँजीवादी तथा श्रमिक वर्ग के फलस्वरूप एक अन्य श्रेणी का विकास हुआ, इसे हमें शिक्षित मध्यम श्रेणी कह सकते हैं। कारखानों में यान्त्रिक शक्ति और जटिल मशीनों का संचालन करने के लिए ऐसे शिक्षित शिल्पियों की आवश्यकता थी जो अपने कार्य में पुट हों। नौकर शाही सरकार की एक बड़ी संख्या में बाबू वर्ग की आवश्यकता थी, जो बड़े-बड़े अफसरों का मातहत होता था। लेकिन सरकारी वर्ग का यह बाबू वर्ग बहुत दीन-निरीह और हीन प्राणी था जो आर्थिक विषमता का शिकार हो चुका था।"[1] इस प्रकार ब्रिटिश साम्राज्यवाद की छत्र छाया में ज़हॉ एक ओर निरीह किसानों का निर्मम शोषण हो रहा था वहीं दूसरी ओर बड़े-बड़े पूँजीपति तथा उद्योगपति निर्बल श्रमिकों के शरीर से रक्त की एक-एक बूँद चूस लेने को आतुर हैं. इन्हीं शोषित प्राणियों के बीच मध्यवर्ग भी था जो आर्थिक असमानता के कारण भॉति-भॉति की समस्याओं से जूझ रहा था तात्पर्य यह है कि आर्थिक वैषम्य ने समाज में सर्वत्र असन्तोष व्याप्त कर रखा था।

आर्थिक वैषम्य और असन्तोष की जननी इस आधुनिक सभ्यता के विषय में अपने लेख पुराना 'जमाना' ! नया जमाना में प्रेमचन्द अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं-"---आधुनिक सभ्यता ने विशेष और साधारण में छोटे और बड़े में, धनवान और निर्धन में एक दीवार खड़ी कर दी है।"[2] अपने विचारों को और अधिक स्पष्ट करते हुए इसी प्रसंग में आगे लिखते हैं- " वह शहद और दूध की नदी अपने कब्ज़े में रखना चाहती है और किसी दूसरे को उसका एक घूँट भी नहीं देना चाहती। वह खुद आराम से अपना पेट भरेगी चाहे दुनिया भूखों मरे, खुद हंसेगी चाहे दुनिया खून के ऑसू रोए। ------- उसे अपना अस्तित्व संसार में आवश्यक मालूम होता है। बाकी दुनिया मिट जाए, उसे इसकी परवाह नहीं। सारी मानवीय भावनाएँ सारे नैतिक प्रश्न इस हवस के पुतले के आगे सिर झुका देते हैं।"[3]

प्रेमचंद एक महान साहित्यकार थे उनकी महानता इसमें है कि उन्होंने निरन्तर परिवर्तनशील सामाजिक परिस्थितियों के कड़वे यथार्थ को खुले मन से ग्रहण किया है यही कारण है कि आदर्शवाद, सुधारवाद और वर्ग सहयोग की बातें

---

[1] प्रेमचंद और उनका साहित्य-डा0 शीला गुप्त पृ0 45।

[2] विविध प्रसंग भाग-1 चयन, अमृतराय पृ0 259।

[3] 'पुराना जमाना : नया जमाना ' विविध प्रसंग भाग 1 पृ0 260।

करने वाले प्रेमचंद अपने "महाजनी सभ्यता" शीर्षक लेख तक आते-आते पूर्ण रूप से मार्क्सवादी विचार धारा के पोषक बन जाते हैं यह सत्य है कि "प्रेमचंद ने मार्क्सवाद और उससे सम्बन्धित द्वन्द्वात्मक एवं ऐतिहासिक भौतिकवाद आदि के सिद्धान्तों का विधिवत शास्त्रीय अध्ययन नहीं किया था परन्तु वे उसके क्रियात्मक एवं व्यावहारिक स्वरूप से भली भाँति परिचित थे क्योंकि मार्क्सवाद मूलतः एक व्यावहारिक दर्शन है जिसमें कोरे पुस्तक ज्ञान और चिन्तन मनन की अपेक्षा सामाजिक विकास क्रम के यथार्थ स्वरूप को देखने और समझने वाली सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि की आवश्यकता अधिक होती है और जिसकी प्रेमचंद के पास कमी न थी।"[1] परन्तु यह सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि किसी कलाकार को स्वतः प्राप्त नहीं होती इसके लिए उसे जीवन की प्रतिकूलताओं से संघर्ष करना पड़ता है अपनी इस वैचारिक यात्रा में उसे ऊँचे-नीचे, ऊबड़-खाबड़ तथा पथरीले-कंटीले रास्तों से होकर गुजरना पड़ता है। प्रेमचंद जिस शोषण विहीन समाज का स्वप्न देख रहे थे वह अनुकूल सामाजिक परिस्थितियों में ही साकार हो सकता था। विषमता तथा शोषण पर आधारित सामाजिक व्यवस्था में एक स्वस्थ समाज की कल्पना असम्भव थी इसी कारण प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में जगह-जगह शोषण, अन्याय और अत्याचार के विरूद्ध कड़े शब्दों में विरोध प्रकट किया है। आर्थिक वैषम्य को प्रश्रय देकर समाज को वर्गो में विभक्त करने वाली पूँजीवादी मानसिकता को ' महाजनी सभ्यता' के नाम से सम्बोधित करते हुए इस सभ्यता का आशय स्पष्ट करते हुए अपने लेख 'महाजनी सभ्यता' में लिखते हैं - "इस महाजनी सभ्यता में सारे कामों की गरज -महज पैसा होती है। किसी देश पर राज्य किया जाता है, तो इसलिए कि महाजनों, पूँजीपतियों को ज्यादा से ज्यादा नफा हो। इस दृष्टि से मानों आज दुनिया में महाजनों का ही राज्य है। मनुष्य समाज दो भागों में बँट गया है। बड़ा हिस्सा मरने और खपने वालों का है और बहुत ही छोटा हिस्सा उन लोगों का जो अपनी शक्ति और प्रभाव से बड़े समुदाय को अपने बस में किये हुए हैं। इन्हें इस बड़े भाग के साथ किसी तरह की हमदर्दी नहीं, जरा भी रू रियायत नहीं। उसका अस्तित्व केवल इसलिए है कि अपने मालिकों के लिए पसीना बहाये, खून गिरायें और एक दिन चुपचाप इस दुनिया से बिदा हो जांय।"[2]

---

[1] प्रेमचंद : एक मार्क्सवादी मूल्यांकन पृ0 10।

[2] प्रेमचंद स्मृति-चयन-अमृतराय-पृ0 256-258।

प्रेमचंद उस सामाजिक व्यवस्था को श्रेष्ठ समझते हैं जिससे आर्थिक विभिन्नता न हो, प्रत्येक व्यक्ति को अपने श्रम का उचित पारिश्रमिक मिले कोई भी आर्थिक स्वार्थान्धता के कारण किसी का शोषण करने के लिए स्वतंत्र न हो समाज में आर्थिक वैषम्य जिस दिन मिट जायेगा उस दिन प्रत्येक व्यक्ति के विकास का मार्ग खुल जायेगा कुछ ऐसे ही विचारों की प्रेमचन्द ने 'महाजनी सभ्यता' में अभिव्यक्ति प्रदान की है "जहॉ धन की कमीबेशी के आधार पर असमानता है वहाँ ईर्ष्या, जोर जबरदस्ती, बेईमानी, झूॅठ, मिथ्या अभियोग–आरोप, वेश्यावृत्ति, व्यभिचार और सारी दुनिया की बुराइयॉ अनिवार्य रूप से मौजूद हैं जहॉ धन का आधिक्य नहीं अधिकांश मनुष्य एक ही स्थिति में है वहाँ जलन क्यों हो और जब क्यों हो? सतीत्व विक्रय क्यों हो और व्यभिचार क्यों हो? झूँठे मुकदमें क्यों चलें और चोरी, डांके की वारदातें क्यों हों? ये सारी बुराइयॉ तो दौलत की देन है, पैसे के प्रसाद हैं, महाजनी सभ्यता ने इनकी सृष्टि की है। वहीं इनको पालती है और वही यह भी चाहती है कि जो दलित, पीड़ित और विजित हैं, वे इसे ईश्वरीय विधान समझकर अपनी स्थिति पर सन्तुष्ट रहें। उनकी ओर से तनिक भी विरोध–विद्रोह का भाव दिखाया गया, तो उनका सिर कुचलने के लिए पुलिस है, अदालत है, कालापानी ------- पैसा अपने साथ यह सारी बुराइयॉ लाता है, जिन्होंने दुनियाँ को नरक बना दिया है। इस पैसा पूजा को मिटा दीजिए, सारी बुराइयाँ अपने आप मिट जायेंगी।"[1]

श्रेणीबद्ध समाज की विषमता मूलक व्यवस्था के कारण किस प्रकार समाज का एक बड़ा भाग रात–दिन कड़ा परिश्रम करने के पश्चात भी अभावों से ग्रस्त तथा सामाजिक न्याय से वंचित रहता है इस भयावह यथार्थ से प्रेमचंद पूर्णता अवगत थे इसी कारण आर्थिक असमानता की कोख से जन्में वर्ग संघर्ष के जीते–जागते चित्र प्रस्तुत करने में उन्हें अभूत पूर्व सफलता प्राप्त हुई है। 'रंगभूमि' में औद्योगिक सभ्यता तथा ग्रामीण सभ्यता के मध्य होने वाले संघर्ष को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। उद्योगपति जॉनसेवक और पाण्डेपुर की सूरदास की भूमि को लेकर जो संघर्ष आरम्भ होता है उसकी अन्तिम परिणति उत्पादन पद्धति पर आधारित प्राचीन और नवीन दो सामाजिक व्यवस्थाओं के संघर्ष के रूप में होती है। सूरदास ग्रामीण सभ्यता का प्रतिनिधि पात्र है। वह औद्योगिक सभ्यता का यथाशक्ति विरोध करता है लेकिन इस संघर्ष में उसे पराजित होना पड़ता है। यद्यपि इस उपन्यास में प्रेमचंद ने मज़दूर पूँजीपति संघर्ष की समस्या का कोई

---

[1] प्रेमचंद स्मृति–चयन–अमृतराय–पृ0 262–263।

समाधान प्रस्तुत नहीं किया है परन्तु उन्होंने इस ज्वलन्त समस्या को यथार्थ चित्रण के द्वारा जिस प्रकार पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है वह वास्तव में सराहनीय है। इस उपन्यास में उन्होंने कुंवर भरत सिंह और विनय जैसे पात्रों की सृष्टि करके इस बात के स्पष्ट संकेत दिये हैं कि स्वार्थान्ध सम्पत्तिशाली वर्ग कभी भी जनता के हितों की लड़ाई नहीं लड़ सकता इस वर्ग की कुत्सित मानसिकता का अनावरण डॉ0 गांगुली के माध्यम से इस प्रकार करते हैं–– "अब आप को विदित हुआ होगा कि हम क्यों सम्पत्तिशाली पुरूषों पर भरोसा नहीं करता वे तो अपनी सम्पत्ति का गुलाम है। वे कभी सत्य के समर में नहीं आ सकते। जो सिपाही सोने की ईट गर्दन में बांधकर लड़ने चले वह कभी नहीं लड़ सकता। उसको तो अपने ईट का चिन्ता लगा रहेगा – – – – – अभी हमकों कुछ भ्रम था, पर वह मिट गया कि सम्पत्तिशाली मनुष्य हमारा मदद करने के बदले उल्टा हमको नुक्शान पहुंचाएगा।"[1]

प्रेमचंद जानते थे कि पूँजीवादी व्यवस्था के परिणाम स्वरूप होने–वाले औद्योगिक विकास से मजदूरों और कृष्कों का कल्याण कभी नहीं हो सकता उनकी निर्धनता, विवशता, भूख और बीमारी यथावत बनी हरेगी। उनके श्रम का पूरा पूरा लाभ केवल मुट्ठी भर पूँजीपतियों तक ही सीमित रह जायेगा उनके हिस्से में अभावों के अतिरिक्त कुछ नहीं आयेगा प्रेमचंद की निश्चित धारणा थी कि एक परतंत्र देश की ऐसी शोषण ग्रस्त समाज व्यवस्था में स्वस्थ जनवादी समाज की स्थापना असम्भव अतः वे देश के स्वतंत्रता संघर्ष में अपने साहित्य के माध्यम से एक वीर सेनानी की तरह सम्मिलित हुए। इस प्रसंग में विशेष रूप से उल्लेखनीय बात यह है कि प्रेमचंद आर्थिक स्वतंत्रता के ही वास्तविक स्वतंत्रता मानते थे डॉ0 जनेश्वर वर्मा के अनुसार–" उनकी रचनाओं में जो भी समस्यायें उभरी हैं उनका सम्बन्ध आर्थिक पक्ष से है। देश स्वातंत्र्य की समस्या प्रेमचंद युग की सबसे ज्वलन्त समस्या थी। जिस स्वतंत्रता को प्राप्त करने के लिए देश व्यापी आन्दोलनों का आयोजन किया जा रहा था उसका स्वरूप क्या होगा और वह स्वतंत्रता किसके लिए होगी ? प्रेमचंद जैसे जागरूक साहित्यकार के मन में इस प्रकार के प्रश्नों का उत्पन्न होना स्वभाविक ही था।"[2] वास्तविक स्वतंत्रता का आशय स्पष्ट करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं–"स्वराज्य का अर्थ केवल आर्थिक स्वराज्य है। आज भारत का उद्योग धन्धा पनप उठे, आज भारत के घर–घर में

---

[1] रंगभूमि–प्रेमचंद प0 582–583।

[2] प्रेमचंद एक मार्क्सवादी मूल्यांकन–डा0 जनेश्वर वर्मा पृ0 102।

खाने के लिए दो मुट्ठी अन्न, पहनने के लिए दो गज कपड़ा हो जावे, आज घर–घर में केवल स्वदेशी वस्तु हो, अथक परिश्रम के स्थान पर थोड़ा विश्राम हो, जीवन में कुछ कविता, कुछ स्फूर्ति, कुछ सुख मालूम पड़े तो कौन कल इस बात की चिन्ता करेगा कि भारत की पार्लमेन्ट में अंग्रेज है या हिन्दुस्तानी। जो भी कोई शासक हो शासन का फल चाहिए। आम खाने से काम है पेड़ गिनने से नहीं।"[1] प्रेमचंद ऐसी स्वतंत्रता को निरर्थक समझते थे जिसका लाभ केवल थोड़े से व्यक्तियों तक ही सीमित रहे। अतः आहुति शीर्षक कहानी में रूपमणि के माध्यम से कहते हैं–"अगर स्वराज्य आने पर भी सम्पत्ति का यही प्रमुख बना रहे और पढ़ा लिखा समाज यों ही स्वार्थान्ध बना रहे तो मैं कहूँगी' ऐसे स्वराज्य का न आना ही अच्छा है, अंग्रेजी महाजनों को धन लोलुपता और शिक्षितों का स्वहित ही हमें पीसे डाल रहा है। जिन बुराइयों को दूर करने के लिए आज हम प्राणों को हथेली पर लिएँ हुए हैं, उन्ही बुराइयों को क्या प्रजा इसलिए सिर चढ़ाएगी कि वे स्वदेशी हैं? कम से कम मेरे लिए तो यह स्वराज्य का अर्थ नहीं है कि जान की जगह गोविन्द बैठा दिया जाए। मैं समाज में ऐसी व्यवस्था देखना चाहती हूँ जहॉ कम से कम विषमता को आश्रय मिले।"[2]

अपने अन्तिम उपन्यास 'मंगलसूत्र' में विषमता ग्रस्त समाज की विसंगतियों और असंगतियों की व्याख्या करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं–"क्यों एक आदमी जिन्दगी भर बड़ी से बड़ी मेहनत करके भी भूखों मरता है और दूसरा आदमी हाथ पॉव न हिलाने पर भी फूलों की सेज पर सोता है। यह सर्वात्म है या घोर अनात्म? – – – सबको समान अवसर कहा है ? बाजार लगा हुआ है। जो चाहे वहाँ से अपनी इच्छा की चीज खरीद सकता है। मगर खरीदेगा तो वही जिसके पास पैसे हैं और जब सबके पास पैसे नहीं हैं तो सबका बराबर अधिकार कैसे माना जाय।"[3] आगे लिखते हैं–"एक गरीब आदमी किसी खेत से बालें नोच कर खा लेता है, कानून उसे सजा देता है। दूसरा आदमी दिन दहाड़े दूसरों को लूटता है और उसे पदवी मिलती है, सम्मान मिलता है। कुछ आदमी तरह–'तरह के हंथियार बांधकर आते हैं और निरीह, दुर्बल मजदूरों पर आतंक जमाकर अपना गुलाम बना लेते हैं। लगान और टैक्स और महसूल कितने ही नामों से उसे लूटना शुरू करते हैं, और आप लम्बा–लम्बा वेतन उड़ाते हैं, शिकार खेलते हैं,

---

[1] विविध प्रसंग भाग–2 चयन अमृतराय पृ0 153।

[2] 'आहुति ' –प्रेमचंद रचनावली खण्ड 14 पृ0 390।

[3] प्रेमचंद–मंगलसूत्र व अन्य रचनाएं, पृ0 390।

नाचते हैं, रंग–रेलियाँ मनाते हैं। यही है ईश्वर का रचा हुआ संसार ? यही न्याय है ?"[1] लोक हित की भावना से ओत–प्रोत मानवतावादी प्रेमचंद को "समाज की ऐसी व्यवस्था जिसमें कुछ लोग मौज़ करें और अधिक लोग पिसे।"[2] कभी स्वीकार्य नहीं थी। अपने साहित्य के माध्यम से वे ऐसी वैषम्यपूर्ण समाज व्यवस्था का कड़ा विरोध करते हैं कर्मभूमि उपन्यास के पात्र अमर के मुख से ऐसे समाज के प्रति असन्तुष्टि प्रकट करते हुए कहलाते हैं–"एक आदमी दस रूपये में गुजर करता है, दूसरे को दस हजार क्यों चाहिए यह धाँधली उसी वक्त तक जब तक जनता की ऑखे बन्द हैं।"[3] प्रेमचंद का कथा साहित्य आर्थिक वैषम्य की छवियों से परिपूर्ण है आर्थिक विपन्नता से घिरे हुए नग्न–अर्धनग्न, भूखें, प्यासे, मृत्यु के मुख में पड़े जीवन को जीवन कहने के लिए तरसते असंख्य निरीह प्राणियों की हृदय द्रावक कथा सन्निहित है।

---

[1] प्रेमचंद–मंगलसूत्र व अन्य रचनाएं, पृ0 390।

[2] गोदान–प्रेमचंद–पृ0 56।

[3] ' कर्मभूमि ' प्रेमचंद–पृ0 105।

किसान जीवन की समस्याएँ –

प्रेमचन्द की जीवन यात्रा का आरम्भ गांव से होता है–"उनका जन्म किसानों में हुआ, किसानों में ही वे बढ़े–पले। गांव में उनका मकान था और बाप–दादा से विरासत में मिली हुई थोड़ी सी जमीन थी जिससे वे ग्रामीण व्यवस्था के साथ मानसिक तौर पर बँधे हुए थे। स्वयं निम्न मध्यवर्ग के व्यक्ति थे। गरीबी में दिन गुजारे थे। इसलिए दरिद्रता के कारण मानव हृदय की भावनाओं तथा साधारण से साधारण आकॉक्षाओं को मिट्टी में मिलते, कुलबुलाते और घुट–घुट कर मरते देखा था।"[1] यद्यपि कृषि उनका व्यवसाय नहीं था, तथापि उनके भीतर एक किसान की आत्मा निवास करती थी, जो कृषकों की दीन–हीन दशा पर तड़पती थी। उन्हें इन भोले भाले दरिद्र किसानों से आत्मिक प्रेम था यही कारण है कि "किसान उनके रचनात्मक सरोकारों में प्रधान बनकर सामने आया। अपनी कहानियों तथा उपन्यासों में उन्होंने ग्रामीण जीवन और अपने जीवन–संदर्भो को, घर परिवार और उसके बाहर के तमाम आयामों पर, जितनी बारीकी और जितनी विशदता से, साथ ही जिस प्रामाणिकता के साथ उभारा है, वैसा हिन्दीं में अन्य रचनाकार नहीं कर सके। किसान प्रेमचन्द के यहॉ अपने समूचे जीवन संदर्भो में, अपने सारे हर्षोल्लास, दुख–दाह और ताप–भास के साथ मौजूद हैं।"[2]

प्रेमचन्द ने जिन किसानों को अपने कथा संसार का अंग बनाया है वे अत्यन्त निर्धन हैं जिन्हें जी तोड़ परिश्रम के बाद भी दाने को तरसना पड़ता है, जिनके बीबी–बच्चे रातों को अधिकतर, भूखे सोते हैं, जो जीवन भर जमींदार के शोषण से त्रस्त रहते हैं और महाजनों के ऋण का बोझ जिन्हें अपनी अन्तिम श्वांस तक ढोना पड़ता है जो अपने बच्चों को विरासत में महाजनों की गुलामी छोड़ जाते हैं जिन्हें दिन–दिन भर बेगार करनी पड़ती है और मजदूरी करने पर विवश होना पड़ता है–" प्रेमचन्द के चिन्तन के मूल में किसान की हित–कामना है। अतः वे जिस किसी भी समस्या पर विचार करते हैं, उसकी पृष्ठभूमि में कही न कहीं किसान होता है। स्वाधीनता आन्दोलन पर लिख रहे हों या साहित्यिक समस्याओं पर सामाजिक रूढ़ियों के बारे में विचार कर रहे हों–बिना किसान के उनका काम नहीं चलता। इसके अलावां उन्होंने अलग से भी किसानों की अपनी

---

[1] प्रेमचंद : जीवन कला और कृतित्व–हंस राज रहबर–पृ0 242।

[2] कहानीकार प्रेमचंद–शिवकुमार मिश्र–पृ0 33।

समस्याओं पर विचार व्यक्त किये हैं। 'किसानों का कर्जा' की समस्या हो, या महाजनों की समस्या हो, अकाल, महामारी, लगान वृद्धि आदि समस्याओं पर उन्होंने सहानुभूति पूर्वक विचार किया है। किसानों के कर्जे की सूद दर तय की जानी चाहिए, उन्हें जमींदारी के अत्याचार से बचाया जाना चाहिए, सरकारी लगान में मंदी–तेजी के अनुसार कमी–बेशी होनी चाहिए, उन्हें धार्मिक रूढ़ियों से मुक्त करना चाहिए।"[1]

अंग्रेजों ने प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था जो कृषि और उद्योगों पर आधारित भी उनका समूल नाश कर दिया। प्राचीन औद्योगिक नगरों को उजाड़ डाला जिससे नगरवासी भी रोजी–रोटी की तलाश में गॉव में बसने लगे जिसके परिणाम स्वरूप गॉव का आर्थिक सन्तुलन बिगड़ गया। एक ओर तो कृषि पर निरन्तर बोझ बढ़ता गया दूसरी ओर कृषि के विकास के लिए उचित साधनों के आभाव में कृषि की उन्नति रूक गई–अंग्रेजों ने भूमि की जो नयी व्यवस्था की उसके अन्तर्गत एक निश्चित राशि लगान के रूप में ली जाने लगी। लगान की वसूली के लिए अंग्रेजों ने जिन जमींदारों को नियुक्त किया था वे किसानों से बड़ी निर्दयता पूर्वक लगान वसूल करते थे। उन्हें लगान के रूप में एक निश्चित रकम चाहिए थी चाहे फसल हो या न हो किसान किस तरह रूपयों का प्रबन्ध करते हैं, इससे उन्हें कोई सरोकार नहीं था।

"जमीन की नई व्यवस्था में खेत खरीदे, बेचे और रेहन रखे जाने लगे, चरागाहें और जंगल सरकार के हो गये। लगान की नई व्यवस्था ने किसानों को निरन्तर अधिकाधिक कर्ज़दार बना दिया। गॉव के हस्तोद्योगों के ह्रास के बाद जमीन और खेती की ओर ये बेकार हस्तोद्योगी दौड़े। ज़मीन पर बोझा बढ़ा, फलस्वरूप ज़मीन अधिकाधिक छोटे टुकड़ों में बंटने लगी और कृषिकारों की आय घटने लगी। किसान गरीब होने लगे। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दलालों के शोषण ने इसमें मदद की। गरीबी के कारण वे लगान देने में असमर्थ हो गये और रोज की आवश्यकता की चीजें सरकारी चुंगी के कारण वे साहूकारों से कर्ज लेने दौड़े और साहूकारों ने परिस्थिति का पूरा–पूरा फायदा उठाया। कड़े ब्याज की दर के कारण किसान निरन्तर अधिकाधिक कर्जदार होता गया और एक दिन कर्ज न पटा सकने के कारण बेदखल कर दिया गया। ज़मीन खेत जोतने वाले किसान के हाथों से मालगुजार, जमींदार और साहूकारों के हाथों में पहुंच गई।"[2] एक

---

[1] प्रेमचंद और भारतीय किसान–डा0 रामबक्ष पृ0 115।

[2] प्रेमचंद–एक अध्ययन–राजेश्वर गुरू–पृ0 109।

प्रकार से अंग्रेजों की लगान प्रथा भोले–भाले किसानों के लूटने का माध्यम बन गई थी। किसान अपनी निर्धनता के कारण लगान चुकाने तथा अपनी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए महाजनों की शरण में जाने के लिए विवश हो जाते थे, और महाजन उनकी विवशता का पूरा–पूरा लाभ उठाते हुए मनमाना ब्याज लेकर ही उन्हें ऋण देता था। प्रेमचन्द अपने लेख महाजनी सभ्यता में लिखते हैं–"इस महाजनी सभ्यता में सारे कामों की गरज पैसा है। किसी देश पर राज्य किया जाता है तो इसलिए कि महाजनों और पूँजीपतियों को ज्यादा से ज्यादा नफ़ा हो। इस दृष्टि से आज दुनिया में महाजनों का ही राज्य है। मानव समाज दो भागों में बंट गया है, बड़ा तो हिस्सा उन लोगों का है जो अपनी शक्ति और प्रभाव से बड़े सम्प्रदाय को अपने वश में किये हुए हैं। उन्हें उस बड़े भाग के साथ किसी प्रकार की हमदर्दी नहीं जरा रूरियायत नहीं। उनका अस्तित्व केवल इसलिए है कि अपने मालिकों के लिए पसीना बहायें खून भी गिरायें और एक दिन चुपचाप इस दुनिया से बिदा हो जाएं।"[1]

भारत में जितने भी व्यवसाय हैं उन सब में सबसे अधिक लाभकारी व्यवसाय लेन–देन का है। सामान्यतः ब्याज की दर 25 रूपये सालाना है। केवल गिनती के व्यवसाय ऐसे हैं जिनमें 15 रूपये सैकड़े से अधिक मुनाफ़ा हो यही कारण है कि अंग्रेजों के शासन–काल में हमारे देश में महाजनी का व्यवसाय दिन–प्रतिदिन उन्नति कर रहा था। देश का प्रत्येक वर्ग चाहे वह भी किसी व्यवसाय से सम्बन्धित हो वकील डाक्टर सरकारी कर्मचारी जमींदार ब्राम्हण इत्यादि अपनी जमा पूँजी इसी धंधों में लगाते थे। इनका धंधा केवल ग्रामीण निम्न श्रेणी के लोगों के बल पर चलता था धनीवर्ग से उनकी दाल नहीं गलने वाली थी। गाँव के भोले–भाले कृषक महाजनों के ऋण के कपट जाल में आसानी से फँस जाते थे। महाजन इन अनपढ़ गँवार लोगों से मन माना ब्याज वसूल करते थे–"गोदान में कृषक समाज का संघर्ष महाजनों से दिखाया गया है। 'गोदान' में जमींदार तो एक ही हैं पर महाजन तो तीन है। सहुआइन अलग, मगरू अलग और दातादीन महाजन अलग ये तीनों महाजन कृषक समाज को जोंक की भाँति चूसे ले रहे हैं। पाँच वर्ष पूर्व मंगरू से होरी ने साठ रूपया बैल खरीदने के लिए उधार लिए। साठ वह अदा कर चुका था फिर भी साठ रूपया बाकी ही रह गए इसी प्रकार पंण्डित दातादीन से तीस रूपये आलू बोने को लिए और धीरे–धीरे वह रकम तीन सौ हो गई। दुलारी सहुआइन पर से ही उठा ले जाते और फिर

---

[1] प्रभात (ग्वालियर) 6 अक्टूबर 1925–पृ0 8।

भी वह ब्याज का कर्ज़दार बना ही रहता है। होरी का जीवन ब्याज देते–देते ही बीत जाता है। परन्तु फिर भी वह ऋण के बोझ से उन्मुक्त नहीं हो पाता। यही देखकर उसका गोबर शहर जाकर मजदूरी करने लगता है। कुछ दिनों कमाने के बाद गोबर घर लौटा। सब महाजनों को आशा बंधी पर गोबर की कमाई जलते हुए तवे में पड़ी हुई तेल की बूँद के समान समाप्त हो गई। होरी के रूप में किसानों के जीवन का यही क्रम है कि वह महाजन से उधार लेकर जमींदार को लगान देता है और अपनी कमाई वह लॉक पर से महाजन को दे देता है। किसान फिर भी भूखा का भूखा बना रहता है, चाहे वह जितना क्यों न पैदा करे।"[1]

प्रेमचन्द युगों–युगों से दमन के चक्र में पिसते चले आ रहे किसानों की दयनीय आर्थिक दशा का वर्णन 'वरदान' में 'कमला' के नाम विरजन के पत्र के अन्तर्गत अत्यन्त मार्मिक ढंग से करते हैं–"टूटे–फूठै फूस के झोपड़े मिट्टी की दीवारें, घरों के सामने कूड़े करकट के ढेर, कीचड़ में लिपटी हुई भैंसे, दुर्बल गायें – – – मनुष्यों को देखों तो उनकी शोचनीय दशा है। – – – वे विपत्ति की मूर्तियॉ और दरिद्रता के जीवित चित्र हैं। किसी के शरीर पर एक बेफटा वस्त्र नहीं है। और कैसे भाग्यहीन कि रात–दिन पसीना बहाने पर भी कभी भर–पेट रोटियॉ नहीं मिलतीं।"[2]

'कर्मभूमि' में भी किसानों की निरीहितता के हृदय स्पर्शी चित्र दुष्टिगोचर होते हैं–, "सलीम बोला – मैं समझता था कि देहातियों के पास अनाज की बखारे भरी होंगी, लेकिन यहॉ तो किसी घर में अनाज के मटके तक न थे। – – – और महाजन और अमले इन्हीं गरीबों को चूसते हैं? मैं कहता हूँ, उन लोगों को इन बेचारों पर दया नहीं आती?।"[3] "अमरकान्त ने करूण स्वर में कहा–मुझे तो उस आदमी की सूरत नहीं भूलती, जो छः महीने से बीमार पड़ा था और एक पैसे की दवा न ली थी। इस दशा में ज़मींदार ने लगान की डिग्री करा ली और जो कुछ घर में था, नीलाम करा लिया। बैल तक बिकवा लिये। ऐसे अन्यायी संसार की नियन्ता कोई चेतन शक्ति है, मुझे तो इसमें सन्देह हो रहा है।"[4]

---

[1] प्रेमचंद–त्रिलोकी नरायण दिक्षित–पृ0 116–117।

[2] वरदान–प्रेमचंद–पृ0 89।

[3] 'कर्मभूमि'–प्रेमचंद पृ0 26।

[4] 'कर्मभूमि'–प्रेमचंद पृ0 28।

"सलीम ने हर एक गॉव का दौरा करके असामियों की आर्थिक दशा की जाँच करना शुरू की। अब उसे मालूम हुआ कि उनकी दशा उससे कहीं हीन है, जितनी वह समझे बैठा था। पैदावार का मूल्य लागत और लगान से कहीं कम था। खाने–कपड़े की भी गुंजाइश न थी, दूसरे खर्चो का क्या जिक्र। ऐसा कोई विरला किसान ही था, जिसका सिर ऋण के नीचे न दबा हो। – – – उनसे पूरी लगान वसूल करना, मानों उनके मुंह से रोटी का टुकड़ा छीन लेना है, उनकी रक्तहीन देह से खून चूसना है।"[1]

प्रेमचन्द ने गोदान के होरी के चरित्र में भारत के लाखों किसानों की दुर्दशा को प्रतिबिम्बित किया है–"एक तो जाड़े की रात, दूसरी माघ की वर्षा। मौत का सा सन्नाटा छाया हुआ, होरी भोजन करके पुनिया के मटर के खेत की मेड़ पर अपनी मड़ैया में लेटा हुआ था। चाहता था, शीत को भूल जाए और सो रहे, लेकिन तार–तार कम्बल, फटी हुई मिर्जई और सीत के झोंको से गीली पुआल, इतने शत्रुओं के सम्मुख आने का नींद में साहस न था। आज तमाखू भी न मिला कि उसी से मन बहलाता। उपला सुलगा था, पर शीत में वह भी बुझ गया। बेवाय फटे पैरों को पेट में डालकर हाथों को जांघों के बीच में दबाकर और कम्बल में मुंह छिपाकर अपनी ही गर्म सांसों से अपने को गर्म करने की चेष्टा कर रहा था। कम्बल तो उसके जन्म से भी पहले का है। बचपन में अपने बाप के साथ वह इसी में सोता था, जवानी में गोबर को लेकर इसी कम्बल में उसके जाड़े कटे थे और बुढ़ापे में आज वही बूढ़ा कम्बल उसका साथी है, पर अब वह भोजन को चबाने वाला दांत नहीं, दुखने वाला दांत है। जीवन में ऐसा तो कोई दिन ही नहीं आया कि लगान और महाजन को देकर कभी कुछ बचा हो।"[2]

यूँ तो भारतीय किसानों का समस्त जीवन नाना प्रकार की समस्याओं से आच्छादित रहता है परन्तु ऋण की समस्या उनके लिए ऐसा चक्रव्यूह है जिसे वह जीवन के अन्तिम क्षण तक नहीं तोड़ पाते प्रेमचन्द के शब्दों में–"कर्ज वह मेहमान है, जो एकबार आकर जाने का नाम नहीं लेता।"[3] किसान एक बार ऋण ले ले तो उसके इस अपराध का दण्ड उसके बाल–बच्चे पीढ़ी दर पीढ़ी भोगते हैं

---

[1] 'कर्मभूमि' प्रेमचंद पृ0 307।

[2] 'गोदान' प्रेमचंद–पृ0 158।

[3] 'गोदान प्रेमचंद–पृ0 338।

और लाख प्रयास करने पर भी महाजन के चंगुल से मुक्त नहीं हो पाते–"फसल में सब कुछ खलिहान पर तौल देने पर भी अभी उस पर कोई सौ रूपये सूद के बढ़ते जाते थे। मंगरू शाह से आज पांच साल हुए बैल के साठ रूपये लिये थे। उसमें साठ दे चुका था, पर यह साठ रूपये ज्यों के त्यों बने हुए थे। दातादीन पंडित से तीस रूपये लेकर आलू बोए। आलू तो चोर खोद ले गये और उन तीस के इन तीस बरसों में सौ हो गये थे। दुलारी विधवा सहुवाइन थी, जो गॉव में नोन, तेल, तम्बाकू की दुकान रखे हुए थी। बंटवारे के समय उससे चालीस रूपये लेकर भाइयों को देना पड़ा था। उसके भी लगभग सौ रूपये हो गये थे, क्योंकि आने रूपये का ब्याज था। लगान के भी ओर पचीस रूपये बाकी पड़े हुए थे और दशहरे के दिन शगुन के रूपयों का भी कोई प्रबन्ध करना था। जिन्दगी के दो बड़े–बड़े काम सिर पर सवार थे, गोबर और सोना का विवाह। – – – यह विपत्ति अकेलें उसी के सिर पर न थी। प्रायः सभी किसानों का यही हाल था। अधिकांश की दशा तो इससे भी बदतर थी।"[1]

लगान और ऋण के कारण किसान दोहरे शोषण का शिकार होता था। एक ओर महाजन उसके खून के प्यासे बने रहते थे, दूसरी ओर जमींदार और उसके सहयोगी जिनमें पुलिस न्यायालय सरकारी अधिकारी अहलकार कारिन्दे माल के हुक्काम चपरासी सभी किसान के जान के दुश्मन बने रहते थे। वे किसी न किसी बहाने किसानों को अपने कपट जाल में फंसाने में सफल हो जाते थे–"सुक्खू चौधरी ने कभी कोकीन का सेवन नहीं किया था, उसकी सूरत नहीं देखी थी, उसका नाम नहीं सुना था, उसके घर में एक तोला कोकीन बरामद हुई। फिर क्या था, मुकद्मा तैयार हो गया। माल निकलने की देर थी हिरासत में आ गए।"[2]

"गाँव में महाजनी का काम पटेश्वरी नाम के पटवारी भी करते है। वह न जमींदार हैं न जमींदार के कारिन्दे "पर पटवारी होने के नाते खेत बेगार में जुतवाते थे, सिंचाई बेगार में करवाते थे और असामियों को एक दूसरे से लड़ा कर रकमें मारते थे। सारा गॉव उनसे कॉपता था। गरीबों को दस–दस, पाँच–पाँच कर्ज देकर उन्होंने कई हजार की सम्पत्ति बना ली थी। फसल की चीजें असामियों से लेकर कचेहरी और पुलिस के अमलों की भेंट करते थे।"

---

[1] 'गोदान' –प्रेमचंद पृ0 –45–46।

[2] 'प्रेमाश्रम' प्रेमचंद पृ0–262।

(गोदान, पृ0 120–21) यहाँ सरकारी तंत्र महाजनी शोषण तंत्र से मिलकर एकाकार हो गया। सरकारी कर्मचारी महाजन बनता है तो वह किसान को अन्य महाजनों से अधिक आतंकित करता है। पटेश्वरी कर्जदार शोभा को याद दिलाते हैं, ''मैं जमींदार या महाजन का नौकर नहीं हूँ, सरकार बहादुर का नौकर हूँ, जिसका दुनिया भर में राज है और जो तुम्हारे महान और जमींदार दोनों का मालिक है।'' (गोदान पृ0 189)। पटेश्वरी से बड़ा अफसर है थानेदार। होरी की गाय को जहर देकर हीरा भाग गया। दरोगा ने हीरा के घर की तलाशी लेने की धमकी देकर होरी से कुछ रकम ऐंठनी चाही। बीच में पटेश्वरी और अन्य महाजनों को हिस्सा चाहिए। पटेश्वरी दरोगा से कहते हैं, ''जब ऐसा ही कोई अवसर आ जाता है, – – हम भी कुछ पा जाते हैं।'' (गोदान पृ0 115) पटेश्वरी गाँव के चार मुखियों अर्थात् महाजनों की सिफारिश करना नहीं भूलते। होरी, झिंगुरी सिंह से तीस रूपये उधार लेता है और दरोगा को भेंट करने चलता है, पर धनिया ने सारा खेल चौपट कर दिया। ''यहाँ तो बाँट–बखरा होने वाला था, सभी के मुंह मीठे होते। ये हत्यारे गॉव के मुखिया हैं, गरीबों का खून चूसने वाले। सूद–ब्याज, डेढ़ी–सवाई, नज़र–नज़राना, घूस–घास जैसे भी हो, गरीबों को लूटो। उस पर सुराज चाहिए। जेहल आने से सुराज न मिलेगा। सुराज मिलेगा धरम से, न्याय से।'' (गोदान पृ0 116)''[1]

वास्तव में किसानों की समस्त समस्याओं का उद्गम स्थल उनकी दयनीय आर्थिक दशा है, परन्तु उनकी दरिद्रता ––''उनकी (किसानों की) दरिद्रता का उत्तरदायित्व उन पर नहीं, बल्कि उन परिस्थितियों पर है, जिनके अधीन उनका जीवन व्यतीत होता है और यह परिस्थितियाँ क्या हैं। आपस की फूट स्वार्थपरता और एक ऐसी संस्था का विकास जो उनके पाँव की बेड़ी बनी हुई है। लेकिन जरा और विचार कीजिए तो तीनों टहनियाँ एक ही शाखा से फूटी हुई प्रतीत होंगी और यह वही संस्था है, जिसका अस्तित्व कृषकों के रक्त पर अवलम्बित है।''[2] यह संस्था अंग्रेजों द्वारा स्थापित वह शासन प्रणाली है जिसमें शोषण के माध्यम से वे इस देश में अपने साम्राज्य को सुदृढ़ कर सकें। प्रेमचन्द इस वास्तविकता से भली–भॉति परिचित थे। 'प्रेमाश्रम' में मनोहर के शब्दों में इस ओर संकेत करते हैं––''कैसी बातें कहते हो दादा ? यह सब मिली भगत है। हाकिम का इशारा न हो तो मज़ाल है कि कोई लश्करी पराई चीज पर हाथ डाल सके।

[1] प्रेमचंद और उनका युग–डा0 रामविलास शर्मा–पृ0 229–230।

[2] प्रेमाश्रम प्रेमचंद पृ0 310।

सब कुछ हाकिमों की मर्ज़ी से होता है, और उनकी मर्ज़ी क्यों न होगी ? सेत का माल किसको बुरा लगता?।"[1] प्रेमशंकर के शब्दों में न्याय और पुलिस की इस प्रकार आलोचना करते हैं––"सच्चे न्याय की आशा तो तभी हो सकती है, जब वकीलों को अदालत स्वयं नियुक्त करें। अदालत भी राजनैतिक भावों और अन्य दुस्संस्कारों से मुक्त हो। मेरे विचार में गवर्नमेन्ट को पुलिस में सुयोग्य और सच्चरित्र आदमी छाँट–छाँट कर रखने चाहिए। अभी तक इस विभाग में सच्चारित्रता पर जरा भी ध्यान नहीं दिया गया। वही लोग भरती किये जाते हैं, जो जनता, को दबा सकें, उन पर रोष जमा सकें न्याय का विचार नहीं किया जाता है।"[2] आगे कहते हैं––"किसी विषय का सत्यासत्य निर्णय करने के लिए आवश्यक है कि साक्षियों पर निष्पक्ष भाव से विचार किया जाय और उनके आधार पर कोई धारणा स्थिर की जाय, लेकिन पुलिस के अधिकारी वर्ग ठीक उल्टे चलते हैं। वे पैंहले एक धारणा स्थिर कर लेते हैं और तब उसको सिद्ध करने के लिए साक्षियों और प्रमाणों की तलाश करते हैं। स्पष्ट है कि ऐसी दशा में वे कार्य से कारण की ओर चलते हैं और अपनी मनोनीत धारणा में कोई संशोधन करने के बदले प्रमाणों को ही तोड़ मरोड़ कर अपनी कल्पनाओं के साँचे में ढाल देते हैं। यह उल्टी चाल क्यों चली जाती है, इसका अनुमान करना कठिन है, पर प्रस्तुत अभियोग में कठिन नहीं। एक समूह जितना भार संभाल सकता है, उतना एक व्यक्ति के लिए असाध्य है।"[3]

शिक्षा और अज्ञानता के कारण किसानों के चरित्र में कुछ दुर्बलतायें भी पाई जाती हैं। उनकी अज्ञानता उन्हें अंधविश्वासी, धर्म भीरू, भाग्यवादी और रूढ़ परम्पराओं का दास बना देती है। वरदान में ग्रामीण जनता के अंधविश्वास की एक झलक देखिए "यहाँ किम्बदन्ती है कि गड्ढे में चुड़ैल नहाने आया करती है और वे अकारण राह चलने वालों से छेड़छाड़ किया करती है। इसी प्रकार द्वार पर एक पीपल का पेड़ है। वह भूतों का आवास हैं। गड्ढे को भय नहीं है परन्तु इस पीपल का त्रास सारे गाँव के हृदय पर ऐसा छाया हुआ है कि सूर्यास्त ही से मार्ग बन्द हो जाता है। बालक और स्त्रियाँ तो उधर पैर नहीं रखते। – – – इनके अतिरिक्त सैकड़ों भूत चुड़ैल दीख पड़ती हैं। लोगों ने इनके स्वभाव पहचान लिये हैं। किसी भूत के विषय में कहा जाता है कि वह सिर पर चढ़ता है तो

---

[1] प्रेमाश्रम–प्रेमचंद–पृ0 63।

[2] प्रेमाश्रम–प्रेमचंद–पृ0 581।

[3] प्रेमाश्रम–प्रेमचंद–पृ0 582।

महीनों नहीं उतरता और कोई दो एक पूजा लेकर अलग हो जाता है। – – यहॉ तक सुना गया है कि चुड़ैलें भोजन पानी मांगने भी आया करती हैं। उनकी साड़ियॉ प्रायः बगुले के पंख की भॉति उज्जवल होती है और वे बातें कुछ–कुछ नाक से करती हैं। – – – उन स्त्रियों पर उनके आक्रमण का भय रहता है, जो बनाव श्रंगार किये रंगीन वस्त्र पहिने अकेली उनकी दृष्टि में पड़ जायें।''[1]

रंगभूमि में भी प्रेमचन्द ग्रामीण के अंधविश्वासों का वर्णन करते हैं। उनकी इस दुर्बलता का लाभ उठाते हुए जैनब, जमुना को डराती है––''अन्य स्त्रियों की भॉति वह भी थाना, पुलिस, कचहरी और दरबार की अपेक्षा भूत–पिशाचों से ज्यादा डरी रहती थी। पास पड़ोस में पिशाच–लीला देखने के अवसर आये दिन मिलते ही रहते थे। मुल्लाओं के यन्त्र–मन्त्र कहीं ज्यादा लागू होते हैं, यह भी मानती थी। जैनव बेगम ने उसकी पिशाच भीरूता को लक्षित करके अपनी विषय चातुरी का परिचय दिया। जमुना भयभीत होकर बोली, ''नहीं बेगम साहब, आपको भी भगवान ने बाल–बच्चे दिये हैं, ऐसे जुलुम न कीजिए नहीं तो मर जाऊँगी।''[2]

पूर्वजन्मवाद भी अंध विश्वास का ही एक रूप है। किसान पूर्वजन्म में शत–प्रतिशत आस्था रखता है। गोदान में होरी अपने पुत्र गोबर से कहता है––''यह बात नहीं है बेटा, छोट–बड़े भगवान के घर से बनकर आते हैं। सम्पत्ति बड़ी तपस्या से मिलती है। उन्होंने पूर्वजन्म से जैसी कर्म किये थे, उसका आनन्द भोग रहे हैं। हमने कुछ नहीं संचा, तो भोगें क्या?।''[3]

किसानों की इन चारित्रिक दुर्बलताओं के लिए बहुत वह परिस्थितियॉं उत्तरदायी हैं जिनके अन्तर्गत वह जीवन व्यतीत करता है। शताब्दियों के शोषण और युगों–युगों से चले आ रहे दमन चक्र ने उनके सोंचने समझने की शक्ति और उनके साहस का नाश कर डाला। प्रेमचन्द होरी के रूप में किसानों की डरपोक मनोवृत्ति का परिचय देते हैं––''यह इसी मिलते–जुलते रहने का परशाद है कि अब तक जान बची हुई है। नहीं तो कहीं पता न लगता कि किधर गये। गॉंव में इतने आदमी तो हैं, किस पर बेदखली नहीं आई ? किस पर कुड़की नहीं

---

[1] 'वरदान'–प्रेमचंद–पृ0 60।

[2] 'रंगभूमि'–प्रेमचंद (भाग 1,) पृ0 165।

[3] 'रंगभूमि'–प्रेमचंद (भाग 1,) पृ0 204।

आयी? जब दूसरों के पावों तले अपनी गर्दन दबी हुई है, तो उन पावों को सहलाने में ही कुशलता है ।"[1]

"गोदान भारतीय रूढ़िवाद पर कड़ा प्रहार है। रूढ़ियों को पालने वाले वहीं जमींदार और महाजन हैं जिनकी पीठ पर अंग्रेज सरकार का हाथ है। अंग्रेजी राज में रूढ़ियों के बंधन और कठोर हो गये हैं, कारण यह है कि इन बंधनों से ऊपर वालों को लाभ होता है। वे सब मिलकर रस्सी खींचते हैं और धर्मभीरू किसान को निरन्तर कसते जाते हैं। दातादीन ने धमकाया "अगर मैं ब्राम्हण हूँ, तो अपने पूरे दो सौ रूपये लेकर दिखा दूँगा।" गोबर चुपचाप बैठा रहा, "मगर होरी के पेट में धर्म की क्रान्ति मची हुई थी। अगर ठाकुर या बनिये के रूपये होते तो उसे ज्यादा चिन्ता न होती, लेकिन ब्राह्मण के रूप। उसकी एक पाई भी दब गयी, तो हड्डी तोड़कर निकलेगी। भगवान न करें कि ब्राम्हमण का कोप किसी पर गिरे। बंस में कोई चिल्लू भर पानी देने वाला घर में दिया जलाने वाला भी नहीं रहता। उसका धर्मभीरू मन त्रस्त हो उठीं" (गोदान, पृ० सं० 224)। दातादीन महाजनी का धंधा करते हैं, जिसका पुराने ब्राह्मण धर्म से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। वर्ण–'व्यवस्था का आर्थिक आधार नष्ट हो चुका है, फिर भी पुराने संस्कार बने हुए हैं। नए शोषक उससे लाभ उठाते हैं। गोदान में होरी जहाँ भी रूढ़ियों के प्रभाव से गलत काम करता है, कोई न कोई उसकी आलोचना करके उसे सही रास्ता बताने वाला जरूर रहता है, वह उस पर न चले, वह अलग बात है। यहाँ गोबर कहता है, "तुम्हीं लोगों ने तो इन सबों का मिजाज बिगाड दिया है। तीस रूपये दिये, अब दो सौ रूपये लेगा, और डॉट ऊपर से बतायेगा और तुमसे मजूरी करायेगा और काम कराते कराते मार डालेगा।" दातादीन का मजूर बनकर होरी जब काम करते–करते बेहोश होकर गिर पड़ता है तब गोबर की बात न मानते और रूढ़ियों से बंधे रहने का फल प्रत्यक्ष हो जाता है।"[2]

किसानों का सबसे बड़ा शोषण धर्म के नाम पर होता है। धर्म की वास्तविकता को जाने बिना भारतीय किसान बाह्य आड़म्बर में पड़ा रह जाता है। क्योंकि उसकी परिस्थितियाँ केवल शिक्षा के प्रकाश से वंचित नहीं करती, अपितु, उसे सोंचने तक का अवसर नहीं प्रदान करती गोदान में धर्म के उस विकृत रूप का चित्रण किया है, जिसमें मुक्ति और पुण्य की कामना में एक भोला–भाला किसान सुजान स्वयं भूखा रहकर अपने खून पसीने की कमाई पाखण्डी साधू

---

[1] गोदान–प्रेमचंद–पृ० 3।

[2] प्रेमचंद और उनका युग–राम विलास शर्मा पृ० 233।

महन्तों पर लुटा देता है–"कई वर्षो से उनके खेतों में कंचन बरस रहा है, तीन वर्षो से उसके खेतों में ऊख बहुत अच्छी पैदा हुई, इधर गुड़ का भाव भी तेज हो गया। बस फिर क्या हाथ में दो ढाई हजार रूपया आते ही उसकी मनोवृत्ति धर्म की ओर झुक गई। दान दक्षिणा होने लगा। साधु संतों के आसन जम गये और गांजा, भांग तथा चरस उड़ने लगी। ढोलक और मंजीरों पर रात के पिछले पहर तक संगत जमने लगी। हाकिम और महाजन भी आ आकर उसके द्वार की शोभा बढ़ा जाते। घर में सेरों दूध होता है पर सुजान महतो के गले एक भी बूंद नहीं जाता सब आगन्तुकों की सेवा और पुण्य लाभ करने में लग जाता है। बड़ी–बड़ी तोंद वाले मुसन्डे साधु–महन्त और हाकिम उसकी कमाई पर गुलछर्रे उड़ाते हैं और सुजान महतो धन–धान्य से पूर्ण अपने घर में भी भूँखे ही रह जाते हैं। पर सुजान को इसके कारण न पश्चाताप है न खेद वरन् उल्टे ही वह पूण्यार्जन करने के कारण फूला नहीं समाता उसे विश्वास है कि इस लोक में भले ही वह दीन–हीन भूखा बना रहे परन्तु परलोक तो उसका सुधर गया।"[1]

इस प्रकार किसानों का शोषण करने में उनकी धर्म भीरूता भी मुख्य भूमिका निभाती है–"होरी विकृत धार्मिक समस्या के आधार पर ही व्यवहारिक पक्ष में शोषित है। होरी अपनी धार्मिक भावना, रूढ़ि प्रियता और मुक्ति लाभ की आकांक्षा के कारण ही जीवन पर्यन्त ऋण से मुक्त न हो सका। हिन्दू समाज की परम्परागत धर्म भावना के विकृत रूप का भी गोदान में बड़ा स्पष्ट चित्रण हुआ है। हिन्दू समाज में प्रातः काल गाय के दर्शन करना पुण्य–लाभ का एक साधन माना गया है। परन्तु यह भावना होरी के लिए घातक बन जाती है। एक धर्म को साधने के पीछे उसे अनेक अधर्मो का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है। यहाँ प्रेमचंद ने धर्म के लिए अधर्म पूर्ण कार्यों को करने की विडम्बना का उपहास किया है। धर्म के यहीं रूप अधिकतर भारतीय जनता के लिए घातक सिद्ध हो रहे हैं। अन्ततोगत्वा होरी, भोला के यहॉ से गाय उधार पर ले आता है और इस प्रकार जीवन में उसकी एक इच्छा पूर्ण हुई परन्तु वह भी किंचित काल के लिए। आगे चलकर इसी कर्ज के कारण उसे नई–नई विपत्तियों का सामना करना पड़ता है।"[2]

प्रेमचंद को दरिद्रता और शोषण से पीड़ित किसानों से सच्ची सहानुभूति थी। वे औरों की भाँति किसानों को मूर्ख और कमज़ोर नहीं समझते थे उन्हें इस

---

[1] प्रेमचंद–त्रिलोकी नरायण दिक्षित–पृ0 30।

[2] प्रेमचंद–त्रिलोकी नरायण–दिक्षित–पृ0 31।

बात का अच्छी तरह अन्दाज़ा था कि हमारे देश के किसान दूसरे देश के किसानों की अपेक्षा अधिक परिश्रमी हैं और अपने काम में दक्ष भी हैं। उन्होंने किसानों की निर्धनता का कारण जान लिया था। प्रेमशंकर के मनोभावों के रूप में प्रेमाश्रम में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त करते हैं––"प्रेमशंकर मन में कहा करते थे कि मैं किसानों को शायद ही कोई ऐसी बात–बता सकता हूँ, जिसका उन्हें ज्ञान न हो। मेहनती तो उनसे अधिक दुनिया भर में कोई न होगा। किफ़ायत–संयम और ग्रहस्थ के बारे में भी वे सब कुछ जानते हैं। उनकी दरिद्रता की ज़िम्मेदारी उन पर नहीं, बल्कि उन हालात पर है जिनके तहत उन्हें अपना जीवन बिताना पड़ता है। वह परिस्थितियाँ क्या हैं? आपस की फूट, स्वार्थ और वर्तमान सामाजिक व्यवस्था जो उन्हें मजबूती से जकड़े हुए है। लेकिन जरा ज्यादा विचार करने पर मालूम हो जाएगा – यह तीनों टहनियाँ एक ही बड़ी टहनी से निकली हैं और यह टहनी वह व्यवस्था है जो किसानों के खून पर कायम है।"[1]

प्रेमचंद जानते थे कि किसानों को जमींदारों के शोषण से जब तक मुक्ति नहीं प्राप्त होती तब तक उनकी समस्याओं का समाधान नहीं हो पाता –– क्योंकि–"बेचारे एक तो गरीब ऋण के बोझ से लदे हुए, दूसरे मूर्ख, न कायदा जाने न कानून। महन्त जी जितना चाहे इज़ाफा करें, जब चाहे बेदखल करें, किसी में बोलने का साहस न था। अक्सर खेतों का लगान इतना बढ़ गया था कि सारी उपज लगान के बराबर भी न पहुंचती थी, किन्तु लोग भाग्य को रोकर भूखे–नंगे रहकर, कुत्तों की मौत मरकर, खेत जोतते थे। – – किसानों ने एक –एक दाना बेंच डाला, भूसे का एक तिनका भी न रखा, लेकिन यह सब कुछ करने पर भी चौथाई लगान से ज्यादा न अदा कर सके और ठाकुर द्वारे में वहीं उत्सव थे, वही जल–बिहार थे।"[2]

अपने उपन्यासों में किसानों की समस्याओं पर प्रकाश डालने मात्र से प्रेमचंद संतुष्ट नहीं होते अपितु वे उनके निराकरण का भी निरन्तर प्रयास करते रहते हैं और इसके लिए सबसे पहला उपाय शोषकवर्ग के नाश के रूप में सुझाते हैं जिस हेतु वे किसानों की नयीपीढ़ी के मन में शोषण तथा अत्याचार के विरूद्ध –विद्रोह का भाव उत्पन्न करते हैं। प्रेमाश्रम के बलराज तथा मनोहर प्रेमचंद के ऐसे ही विद्रोही पात्र हैं जो अत्यन्त निर्भीकता पूर्वक जमींदारों की तानाशाही को अस्वीकार करते हुए उनके अन्याय तथा अनाचार के विरूद्ध अपना विरोध दर्ज कराते हैं।

---

[1] प्रेमाश्रम–प्रेमचंद–पृ0 306–308।

[2] कर्मभूमि–प्रेमचंद–पृ0–296–98।

जमींदारों महाजनों की शोषण प्रवृत्ति–

अंग्रेजों के भारत आगमन से पूर्व यहाँ की आर्थिक व्यवस्था कृषि पर निर्भर थी तथा ग्राम्य व्यवस्था कृषि और उद्योगों पर आधारित थी। इस सम्बन्ध में कार्लमार्क्स का कथन है–''साधारण से साधारण गॉव में संयुक्त कृषि होती थी और धान्य का आपस में बंटवारा हो जाता था। साथ–साथ प्रत्येक परिवार में सहायक उद्योग के रूप में कातने बुनने का काम होता था।''[1]

परन्तु अंग्रेजों ने भारत की इस प्राचीन ग्रामीण व्यवस्था को नष्ट कर दिया और गाँव में होने वाले उद्योगों का नाश कर दिया–''ग्राम व्यवस्था का आधार कृषि और उद्योगों के मिले–जुले रूप पर था। लेकिन अंग्रेज आगन्तुकों ने भारतीय करघे और चरखे को टुकड़े–टुकड़े कर दिया और यह घटना एशिया में सबसे बड़ी सामाजिक क्रान्ति बनकर आई और इस क्रान्ति ने प्राचीन औद्योगिक नगर खत्म कर दिये, जिससे नगरों के लोग भी आ–आकर गाँवों में बसने लगे और इस प्रकार गाँव का आर्थिक संतुलन खत्म हो गया। कृषि पर बोझ बढ़ता गया और निरन्तर बढ़ता चला जा रहा है। फिर निर्दयता पूर्वक अधिकतम लगान की वसूली और बदले में कृषि के विकास और उन्नति के लिए साधनों की उपलब्धि न होने के कारण कृषि के उन्निति रूक गई। यहाँ यह याद रखना चाहिए कि पहले उपज का निश्चित हिस्सा लगान के रूप में दिया जाता था, अब निश्चित रकम ली जाने लगी जो उपज से अधिक होती थी और जिसमें किसी छूट की गुंजाइश नहीं रहती थी। लगान की वसूली बहुत निर्दयता पूर्वक होती थी। [2]

प्राचीन समय में भूमि पर गाँव का सामूहिक अधिकार होता था। शासक को भूमि के उत्पादन का एक निश्चित भाग दिया जाता था। जो भूमि की उपज के अनुसार घटता बढ़ता रहता था। अंग्रेजों ने अपने आर्थिक एवं राजनीतिक हितों को ध्यान में रखते हुए इस प्राचीन व्यवस्था को समाप्त कर दिया और उसके स्थान पर एक निश्चित नकद रकम मालगुजारी के रूप में लेना प्रारम्भ किया और इसके लिए उन्होंने जमीदारों के रूप में एक नए वर्ग का निर्माण किया। ब्रिटिश सरकार ने अपनी सहूलियत के लिए किसानों से लगान वसूल करने के लिए

---

[1] मार्क्स एंजिल्स : सेलेक्टेड वर्क्स पृ0 317।

[2] प्रेमचंद एक अध्ययन–राजेश्वर गुरू पृ0 94।

जमींदार नियुक्त किये यह भी उनके शोषण का एक हिस्सा था। उन्होंने जमींदारों को यह अधिकार दे रखा था कि वह अपनी इच्छा अनुसार लगान को घटा–बढ़ा सकते थे। जमींदार तो खुद शहरों मे जाकर बसता था और गांव से लगान वसूल करने के लिए कारिन्दे नियुक्त करता था। अतः वह किसानों की समस्या से भली भाँति परिचित नहीं हो पाता था। गाँव में जमींदार के कर्मचारी स्वयं को जमींदार से कम नहीं मानते थे। 'सेवासदन' उपन्यास में प्रेमचन्द ने जमींदार शोषण की जीती–जागती नृशंसता को चित्रित किया है। इस उपन्यास के जमींदार रामदास अपनी स्वार्थ सिद्धी के लिए अपने खेतिहरों पर प्रत्येक हल के पीछे पॉच रूपये का चंदा लगा देता है। बूढ़े चेतू अहीर के न करने पर परिणामतः–" एक दिन कई महात्मा चेतू को पकड़ लाये। ठाकुर द्वारे के सामने उस पर मार पड़ने लगी। चेतू भी बिगड़ा। हॉथ तो बँधे हुए थे, मुँह से लात–घूसों का जवाब देता रहा और जब तक जबाबँ बन्द न हो गयी, चुप न हुआ। इतना कष्ट देकर भी ठाकुर जी को सन्तोष न हुआ उसी रात को उसके प्राण हर लिये।"[1]

"प्रेमाश्रम' एक ऐसा उपन्यास है जिसमें कृषक–जीवन और उसकी समस्याओं का विस्तार के साथ चित्रण किया गया है। प्रेमचंद युगीन समाज में कृषक जीवन की सबसे महत्वपूर्ण समस्या जमींदारी शोषण की थी। यदि ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो इस जमींदारी प्रथा को मध्ययुगीन सामंतवादी व्यवस्था का ह्रासोन्मुख अवशेष कहा जा सकता है।"[2] प्रेमाश्रम हिन्दी साहित्य का वह प्रथम उपन्यास है जिसमें जमींदारी शोषण का विशद चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में जमींदार राय कमलानंद के निर्मम अत्याचार का वर्णन करते हुए उनकी पुत्री विद्या कहती है–"उस साल जब अकाल पड़ा और प्लेग भी फैला तब हम लोग इलाके पर गये। – – –"उन दिनों बाबूजी की निर्दयता देखकर मेरे रोयें खड़े हो जाते थे। असामियों से रूपये न मिलते तो वह चिढ़कर असामियों पर गुस्सा उतारते। सौ–सौ मनुष्यों को एक पंक्ति में खड़ा करके हण्टर से मारने लगते। बेचारे तड़प–तड़प कर रह जाते, पर उन्हें तनिक भी दया न आती थी।"[3]

---

[1] सेवासदन–प्रेमचंद पृ0 8।

[2] प्रेमचंद : एक मार्क्सवादी मूल्यांकन–डा0 जनेश्वर वर्मा पृ0 167–168।

[3] प्रेमाश्रम–प्रेमचंद पृ0–86।

गौस खाँ की हत्या के प्रसंग में जब सारे गॉव पर विपत्ति आती है उनकी फसल सूख जाती है। ऐसी स्थिति में वह लगान कैसे दे सकते हैं लेकिन ज्ञानशंकर तो जैसे घात लगाकर बैठा था। अतः "अन्त में ज्ञान शंकर ने बेदखली दायर करने की ठान ली। इसी की देर थी, नालिश हो गयी, किन्तु गॉव में रूपयों का बन्दोबस्त न हो सका। उज्रदारी करने वाला भी कोई न निकला।"[1] एक अन्य जमींदार राय कमलानन्द प्लेग और अकाल के दिनों में भी—"नाच रंग में लीन रहते हैं और इसके लिए निर्धन असामियों से रूपया वसूल करते हैं। रूपया न मिलने पर वे असामियों को हंटरों से पीटते हैं।"[2]

'कायाकल्प' के रचनाकाल के समय देश में देशी रियासतें और जमींदारियॉ भी ब्रिटिश शासन के इसारों में चल रही थी। "कायाकल्प" में पुर्नजन्म और अलौकिकता के आवरण में छिपी हुई वर्ग संघर्ष की कथा भी देखी जा सकती है जिसमें एक ओर शोषणजीवी जमींदारों, उनकी रानियों और कारिन्दों की कथा है तो दूसरी ओर संघर्षशील किसान जनता की कथा अंकित की गयी है।"[3] प्रेमचंद ने 'कायाकल्प' में जमींदारों की कान्तिहीन मनोदशा का वर्णन किया है। उन्होंने जमींदारों की विलास पूर्ण गाथा एवं प्रजा के प्रति निरंकुशता पूर्ण व्यवहार और निर्दयता पूर्वक व्यवहार में लाई जाने वाली शोषण नीति का यथार्थ चित्रण किया है। यह ताल्लुकेदार कैसे एक ओर चुपड़ी बातें करते हैं, दूसरी ओर प्रजा का आर्थिक शोषण करने में नहीं चूकते।

इसकी कथा जगदीशपुर की विधवा नारी देवप्रिया से आरम्भ होती है——"रानी देवप्रिया का जीवन केवल दो शब्दों में समाप्त हो जाता था— विनोद और विलास। इस वृद्धावस्था में भी उनकी वृत्ति अणुमात्र भी कम न हुई थी। — — — — — रियासत उनके भोग—विकास का साधन मात्र थी। प्रजा को क्या कष्ट होता है, उन पर कैसे कैसे अत्याचार होते हैं, सूखे—झूरे की विपत्ति क्यों कर उनका सर्वनाश कर देती हैं, इन बातों की ओर कभी उनका ध्यान न जाता था। उन्हें जिस समय जितने धन की जरूरत हो, उतना तुरन्त देना मैनेजर का काम था। वह ऋण लेकर दे, चोरी करे या प्रजा का गला काटे, इससे उन्हें कोई प्रयोजन न था।"[4] रानी देवप्रिया के उपरान्त उनके देवर कूँवर विशाल सिंह को

---

[1] प्रेमाश्रम—प्रेमचंद—पृ० 262।

[2] प्रेमाश्रम—प्रेमचंद—पृ० 86।

[3] प्रेमचंद : एक मार्क्सवादी मूल्यांकन—डा० जनेश्वर शर्मा पृ० 237।

[4] 'कायाकल्प' प्रेमचंद—पृ० 54—55।

रियासत का माली नियुक्त किया जाता है। रानी देवप्रिया और विशाल सिंह की प्रजा वत्सलता केवल शब्दों तक सीमित है। राजतिलक समारोह के लिए रूपयों की जब आवश्यकता पड़ती है। तो दिवान जी के कहने पर कि हल पीछे 10 रूपये बैठा देने से लगभग 5 लाख प्राप्त हो सकते हैं तो किसानों के प्रति केवल शब्दों के माध्यम से हमदर्दी व्यक्त करते हुए किसानों को कष्ट देने वाले इस प्रस्ताव को यह कहते हुए स्वीकार कर लेते हैं––''अगर आप लोगों का विचार है कि किसी को कष्ट न होगा और लोग खुशी से मदद देंगे तो आप अपनी जिम्मेदारी पर यह काम कर सकते हैं। मेरे कानों तक कोई शिकायत न आये। – – – बस इतना ख्याल रखिए कि किसी को कष्ट न होने पाये।''[1]

ज़ागीरदार तो कृषक का शोषण करते ही हैं, उनके कारिन्दे भी किसानों को लूटने खसोटने में कोई कसर नहीं उठा रखते इसका वास्तविक स्वरूप 'कायाकल्प' में दृष्टिगोरचर होता है। राजा विशाल सिंह की सहमति पाने के बाद उनके कारिन्दे किसानों के साथ कैसी निर्दयता का व्यवहार करते हैं देखिए–''हुक्म मिलने की देर थी। कर्मचारियों के हाथ तो खुजला रहे थे। वसूली का हुक्म पाते ही बाग–बाग हो गये। फिर तो वह अंधेरे मचा कि सारे इलाके में कुहराम पड़ गया।–––––– चारों तरफ लूट खसोट हो रही थी। गालियाँ और ठोंक–पीट तो साधारण बात थी। किसी के बैल खोल लिए जाते थे, किसी की गाय छीन ली जाती थी, कितनों ही के खेत कटवा लिये गये। बे–दखली और इजाफे की धमकियाँ दी जाती थी। जिसने खुशी से दिये, उसका तो 10रू0 ही में गला छुटा। जिसने हीले–हवाले किये, कानून बधारा उसे 10रू0 के बदले 20 रू0, 30रू, 40रू0 देने पड़े।''[2]

किसानों के शोषण को ये वर्ग अपना जन्म सिद्ध अधिकार मानते हैं। जब चक्रधर और समिति के अन्य कार्यकर्ता कारिन्दो का विरोध करते हैं, तो मुंशी जी चक्रधर से कहते हैं–''तुम कहाँ तक उन पर हाँथ रखते फिरोगे? चौकीदार से लेकर बड़े हाकिम तक सभी उनके दुश्मन हैं। मान लो, हमने छोड़ दिया, मगर थानेदार हैं, पटवारी हैं, कानूनगो हैं, माल के हुक्काम हैं। सभी उनकी जान के गाहक हैं।''[3] प्रजा वत्सलता का ढोंग करने वाले राजा विशाल सिंह का वास्तविक रूप उस समय सामने आता है जब चक्रधर उनसे उनके कर्मचारियों की शिकायत

---

[1] 'कायाकल्प' प्रेमचंद–पृ0 105।

[2] 'कायाकल्प' प्रेमचंद–पृ0 106।

[3] 'कायाकल्प' प्रेमचंद–पृ0 107।

करता है राजा साहब कहते हैं–"मेरे पास तो आज तक कोई आसामी शिकायत करने नहीं आया। जब उनको कोई शिकायत नहीं है तो आप उनकी तरफ से क्यों वकालत कर रहे हैं? – – – मैं अपने कर्मचारियों से अलग कुछ नहीं हूँ।"[1]

यह वही राजा विशाल सिंह हैं जो रानी देवप्रिया की रियासत प्राप्त करने से पहले अपने आपको प्रजाहितैषी कहा करते थे यहॉ तक कि बेगार की चर्चा सुनकर उनकी ऑखों में ऑसू आ जाते थे। परन्तु रियासत मिलते ही प्रजा वत्सलता का यह ढोंग समाप्त हो जाता है और उनका वर्गीय चरित्र उभरकर सामने आ जाता है। वे अपने तिलकोत्सव के समय बिना भोजन दिये हुए चमारों से बेगार कराते हैं। भोजन माँगने पर उन्हें पिटवाते हैं। काम छोड़कर बाड़े से बाहर जाने नहीं देते। उनके नेता चक्रधर पर बन्दूक के कुंदे से घातक प्रहार करते हैं। हड़ताली मजदूरों की विद्रोह भावना को कुचलने के लिए अपने सिपाहियों को उन पर गोली चलाने का आदेश देते हैं। यह है सामन्ती व्यवस्था के अवशेष देशी राजाओं और जमींदारों का वास्तविक चरित्र।

'गोदान' में प्रेमचन्द ने किसान–जमींदार समस्या का विशुद्ध यथार्थ रूप पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। इसमें जमींदारों की अमानुषिकता एवं किसानों के दुःख की मार्मिक कथा है जो परिणाम है उस सत्य का जिसका प्रेमचंद जीवन भर सामना करते आये हैं। जमीदारों और महाजनों के शोषण के परिणाम स्वरूप दरिद्रता की उस चरम सीमा तक पहुंच जाता है कि अपने पूर्वजों की जमींन जिससे वह पुत्रवत प्रेम करता है उसे भी बेचना पड़ता है और एक स्वाभिमानी किसान परिस्थितियों के वशीभूत होकर मज़दूर बनकर दूसरों की गुलामी का जुऑ अपने गले में डालता है इस सत्य का यथार्थ निरूपण गोदान में हुआ है "गोदान' में किसानों के शोषण का रूप ही दूसरा है। यहॉ सीधे–सीधे रायसाहब के कारिन्दे होरी का घर लूटने नहीं पहुंचते। लेकिन उसका घर लुट जरूर जाता है। यहाँ अंग्रेजी राज के कचहरी कानून सीधे–सीधे उसकी ज़मीन छीनने नहीं पहुंचते। लेकिन जमीन छिन जरूर जाती है। होरी के विरोधी बडे सर्तक है। वे ऐसा काम करने में झिझकते हैं जिससे होरी दस–पॉच को इकट्ठा करके उनका मुकाबला करने को तैयार हो जाए। वह उनके चंगुल में फॅसकर तिल–तिल कर मरता है लेकिन समझ नहीं पाता कि यह सब क्यों हो रहा है। वह तकदीर को

---

[1] 'कायाकल्प' प्रेमचंद–पृ0 106।

दोष देकर रह जाता है,: समझता है, यह सब भाग्य का खेल है, मनुष्य का इसमें कोई बस नहीं।"[1]

गोदान में प्रेमचन्द जमींदार रायसाहब अमरपाल का परिचय इस प्रकार कराते हैं, "पिछले सत्याग्रह संग्राम में रायसाहब ने बड़ा यश कमाया था। कौंसिल की मेम्बरी छोड़कर जेल चले गये थे, तब से उनके इलाके के असामियों के साथ कोई खास रियायत की जाती हो या, डॉड और बेगार की कड़ाई कुछ कम हो, मगर यह सारी बदनामी मुखतारों के सिर जाती थी। रायसाहब की कीर्ति पर कोई कलंक न लग सकता था। वह बेचारे भी तो उसी व्यवसाय के गुलाम थे। जाबते का काम तो जैसे होता चला आया है, वैसा ही होगा। रायसाहब की सज्जनता उस पर कोई असर न डाल सकती थी, इसलिए आमदनी और अधिकार में जौ भर की भी कमी न होने पर भी उनका यश मानों बढ़ गया था। असामियों से वह हँसकर बोल लेते थे। यही क्या कम है। सिंह का काम तो शिकार करना है, अगर वह गरजने और गुर्राने के बदले मीठी बोली बोल सकता, तो उसे घर बैठे मनमाना शिकार मिल जाता। शिकार की खोज में उसे जंगल में न भटकना पड़ता।"[2]

प्रेमचन्द ने रायसाहब के चरित्र में तत्कालीन जमींदार वर्ग की शोषण वृत्ति को उसकी सम्पूर्ण वर्गगत विशेषताओं के साथ अत्यन्त कुशलता पूर्वक प्रस्तुत किया है तथा उनके सामाजिक आड़म्बर का आड़म्बर किया है। प्रेमचन्द कहते हैं–"शोषक तो वह अब भी हैं लेकिन अब वह गुर्राकर, गरजकर अपना शिकार नहीं करता, गांधी टोपी लगाकर, जेल जाकर बेचारे गरीब, अपढ़, असामियों के हृदय को प्रभावित करके अपना काम करता है। रायसाहब जेल जाकर जनता के श्रृद्धा पात्र बने रहते हैं और नज़रे और डालियॉ भेजकर सरकार के कृपा पात्र रायसाहब राष्ट्रवादी होने पर भी हुक्काम से मेल–जोल बनाये रखते हैं।"[3] इससे स्पष्ट है कि रायसाहब की देशभक्ति जनता में लोकप्रियता प्राप्त करने का आड़म्बर मात्र है। एक ओर तो वे कहते हैं– –"और ये रूपये (जिनसे रायसाहब का वैभव विलास सजता है) तमुसे और तुम्हारे भाईयों से वसूल किये जाते हैं,

---

[1] प्रेमचंद और उनका युग–डा0 राम विलाश शर्मा–पृ0 97–98।

[2] गोदान–प्रेमचंद–पृ0 13।

[3] गोदान–प्रेमचंद–पृ0 13।

भाले की नोंक पर। मुझे तो यही आश्चर्य होता है कि क्यों तुम्हारी आहों का दावानल हमें भस्म नहीं कर डालता। मगर नहीं, आश्चर्य करने की कोई बात नहीं। भस्म होने में तो बहुत देर नहीं लगती – – – – हम जौ–जौ और अंगुल–अंगुल और पौर–पौर भस्म हो रहे हैं। उस हाहाकार से बचने के लिए हम पुलिस की हुक्काम की, अदालत की, वकील की शरण लेते हैं। – – – – – – – – दुनिया समझती है हम सुखी हैं– – – – – लेकिन जिसकी आत्मा में बल नहीं अभिमान नहीं, वह और चाहे कुछ हो, आदमी नहीं है, –––––मुफ्त खोरी ने हमें अपंग बना दिया है। हमें अपने पूरूषार्थ पर लेशमात्र भी विश्वास नहीं, केवल अफसरों के सामने दुम हिला हिलाकर किसी तरह उनके कृपापात्र बने रहना और उनकी सहायता से अपनी प्रजा पर आतंक ज़माना ही हमारा उद्यम है। पिछलगुओं की खुशामद ने हमें इतना अभिमानी और तुनुकमिजाज बना दिया है कि हममें शीलै और विनय और सेवा का लोप हो गया है। मै तो कभी–कभी सोंचता हूँ कि अगर सरकार हमारे इलाके छीन कर हमें अपनी रोजी के लिए मेहनत करना सिखा दे, तो हमारे साथ महान उपकार करे और यह तो निश्चित है कि अब सरकार भी हमारी रक्षा न करेगी। हमसे अब उसका कोई स्वार्थ नहीं निकलता। लक्षण कह रहे हैं कि बहुत जल्द हमारे वर्ग की हस्ती मिट जाने वाली है। मैं उस दिन का स्वागत करने को बैठा हूँ। ईश्वर वह दिन जल्द लाये वह हमारे उद्धार का दिन होगा। हम परिस्थितियों के शिकार बने हुए हैं। यह परिस्थिति ही हमारा सर्वनाश कर रही है और जब तक सम्पत्ति की यह बेड़ी हमारे पैरों से न निकलेगी, जब तक यह अभिशाप हमारे सिर पर मंडराता रहेगा, हम मानवता का वह पद न पा सकेंगे, जिस पर पहुंचना ही जीवन का अन्तिम लक्ष्य है।''[1]

वहीं दूसरी ओर जब उनका चपरासी आकर कहता है कि बेगारों ने काम बंद कर दिया है तो रायसाहब की सारी मानवता धरी की धरी रह जाती है वे क्रोध पूर्वक कहते हैं – –''चलो मैं इन दुष्टों को ठीक करता हूँ जब कभी खाने को नहीं दिया, तो आज यह नयी बात क्यों ? एक आने रोज के हिसाब से मज़दूरी मिलेगी जो हमेशा मिलती रही है और इस मजदूरी पर उन्हें काम करना होगा, सीधे करें या टेढ़े।''[2] रायसाहब के शब्दों और व्यवहार के भेद पर प्रकाश डालकर प्रेमचन्द ने उस सभ्यता की आम कमजोरी की तरफ इशारा किया है जिसका आधार दूसरों की मेहनत है। रायसाहब होरी नहीं हैं कि दो चार बातों में

---

[1] गोदान–प्रेमचंद–पृ0 16–17।

[2] गोदान–प्रेमचंद–पृ0 17।

परास्त हो जाएँ। अपने वातावरण, विकास की मंजिलों और दूसरे के श्रम पर मोटे होने पर लानत भेजने के बारे में वह एक लम्बा व्याख्यान देते हैं जिससे मामूली आदमी प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। लेकिन मेहता जी भी गोबर नहीं हैं– हालांकि गोबर नाम से ही गोबर है, वैसे हैं काफी चतुर–और वह एक ही वाक्य में रायसाहब के व्याख्यान की धज्जियाँ उड़ा देता है– –"आपकी ज़बान में जितनी बुद्धि है, काश उसकी आधी भी मस्तिष्क में होती।"[1]

ज़मीदारों के वादे कितने झूंठे और दावे कितने खोखले होते हैं गोदान में इसका यथातथ्य चित्रण है। रायसाहब के व्यवहार में किसानों के प्रति उदारता और सहृदयता कहीं भी दृष्टि गोचर नहीं होती आरम्भ से अन्त तक वह केवल अपना हित साधने में ही लगे रहते हैं। वह किसानों के खून–पसीने की कमाई का अपनी झूंठी मान मर्यादा के प्रदर्शन के लिए अपव्यय करते रहते हैं – – "राय साहब क्रो अपना राजसी ठाट निभाने के लिए वही असामियों पर इजाफा और बेदखली और नज़राना करना और लेना पड़ता था, जिससे उन्हें घृणा थी। वह प्रजा को कष्ट न देना चाहते थे। उनकी दशा पर उन्हें दया आती थी, लेकिन अपनी जरूरतों से हैरान थे।"[2]

प्रेमचंद जमींदारों के सम्बन्ध में अपने विचार अपने पात्र राय कमलानन्द के शब्दों के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त करते हैं – – "यह ज़ायदाद नहीं है, इसे रियासत कहना भूल है, यह निरी बदला ली है। इस भूमि पर मेरा क्या अधिकार है। मैने इसे बाहुबल से नहीं लिया। नवाबों के जमाने में किसी सूबेदार ने इलाके की आमदनी वसूल करने के लिए मेरे दादा को नियुक्त किया था। मेरे पिता पर भी नवाबों की बड़ी कृपा दृष्टि रही। इसके बाद अंग्रेजों का जमाना आया और यह अधिकार पिता जी के हाथ से निकल गया। लेकिन राजद्रोह के समय पिता जी ने तन–मन से अंग्रेजों की सहायता की। शक्ति स्थापित होने पर हमें वही पुराना अधिकार फिर मिल गया। यही इस रियासत की हकीकत है।"[3]

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि प्रेमचन्द अंग्रेजों और जमींदारों के पारस्परिक सम्बन्ध से कितनी अच्छी तरह से परचित थे इस बात का प्रमाण उनके उपर्युक्त उपन्यासों से प्राप्त होता है। किसान जो कि भूमि का वास्तविक स्वामी और अन्य दाता है उसे अंग्रेजी साम्राज्यवाद और जमींदारी व्यवस्था के गठबन्धन ने कैसे उससे उसी की ज़मीन छीन कर बंधुआ मज़दूर बनने और भूखों

---

[1] प्रेमचंद और उनका युग–डा० राम विलास शर्मा पृ० 102।

[2] गोदान–प्रेमचंद–पृ० 439।

[3] गोदान–प्रेमचंद–पृ० 418।

मरने में विवश कर दिया प्रेमचन्द ने इस सत्य का यथातथ्य अनावरण उपरोक्त उपन्यासों में किया है।

मानव जीवन में अर्थ की महत्ता:–

रोटी कपड़ा और मकान मानव जाति की मूलभूत आवश्यकतायें हैं जिनकी पूर्ति धन के द्वारा की जाती है। जीवन को सुचारू रूप से चलाने के लिए प्रत्येक मनुष्य को पैसों की आवश्यकता है। धन के अभाव में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति न कर सकने के कारण व्यक्ति दुःखी रहता है। दर–दर की ठोकरें खाता है। अतः धनोपार्जन प्रत्येक मनुष्य के जीवन का प्रथम लक्ष्य होता है। कोई भी व्यक्ति यह दावा नहीं कर सकता कि अपने दैनिक उपयोग की समस्त वस्तुएँ वह स्वयं बना सकता है, – – "जिसके पास घी है वह तेल के लिए दूसरों का मुँह देखता है, जिसके पास चावल है वह कपड़े के लिए। इसी तरह प्रायः हर आदमी को, किसी–न–किसी चीज के लिए, औरों पर जरूर अवलम्ब करना पड़ता है क्योंकि मनुष्य को संसार में रहकर इतनी व्यावहारिक चींजें दरकार होती हैं कि वह उन सब को नहीं पैदा कर सकता। जो जुलाहा कपड़े तैयार करता है वह अपने मतलब भर के लिए कपड़े रखकर बाकी के बदले नमक, तेल, लकड़ी और अनाज आदि का संग्रह करता है। जो किसान गेहूँ, चना, जौ आदि पैदा करता है, वह अपने खेत की पैदावार के बदले हल, फाल, नमक, तेल, मिर्च, मसाला और कपड़े प्राप्त करता है।"[1] कहने का तात्पर्य यह है कि जो एक या दो वस्तुएँ पैदा करता है उसे कई वस्तुएं बाजार से खरीदनी पड़ती है। आज का मानव अपनी आवश्यकता पूर्ति हेतु बाजार पर इतना अधिक निर्भर हो गया है कि हर समय उसे पैसे की आवश्यकता होती है। पैसा ही उसके जनम–मरण का साथी बन गया है। अतएव "सब रूपये को चाहते हैं। सब द्रव्य की अभिलाषा रखते हैं। इसका कारण यह है कि रूपया–पैसा एक प्रकार का टिकिया या हुक्मनामा है जिसके प्रभाव से आदमी को खाने, पीने, पहनने, ओढ़ने आदि की सामग्री आसानी से प्राप्त हो सकती है। इसी से सब लोग रूपये का इतना आदर करते हैं। सभ्य समाज के प्रत्येक आदमी को, जो रूपये की इतनी चाह रहती है, उसका यही कारण है कि उसकी बदौलत उनकी आवश्यकताएँ दूर हो सकती हैं।"[2] जिसके

---

[1] सम्पत्ति शास्त्र–ले0 आचार्य महावीर प्रसाद द्विवदी पृ 26।

[2] सम्पत्ति शास्त्र–ले0 आचार्य महावीर प्रसाद द्विवदी पृ 85।

पास पैसा है वह सुख पूर्वक एक सम्माननीय जीवन व्यतीत करता है और जिसके पास नहीं है वह हताश होकर मारा–मारा फिरता है सभ्य कहलाने वाला हमारा यह समाज ऐसे निरीह प्राणियों की बात तक नहीं पूंछता।

सभ्यता के विकास के साथ–साथ संसार में अर्थ का महत्व भी बढ़ता गया क्योंकि "– – – सभ्यता का संचार होते ही सम्पत्ति की जरूरत पैदा हो जाती है। सभ्यता और सम्पत्ति का दृढ़ सम्बन्ध है। सभ्यता का जो अभाव था आवश्यकता की मॉ कहना चाहिए। सभ्यता की प्राप्ति होते ही मनुष्य को नयी–नयी चीजें पाने की इच्छा होती है। उसकी जरूरतें बढ़ जाती हैं – – – – – – –अच्छे–अच्छे मकान बनाने, अच्छे–अच्छे कपड़े पहनने, अच्छे से अच्छा भोजन करने की वासना की उत्पादक सभ्यता ही है। जो जाति जितनी अधिक सभ्य है जरूरतें भी उसकी उतनी ही प्रबल हैं–– वासनाऍं भी उसकी इतनी ही अधिक ऊँची हैं।"[1] वर्तमान सभ्यता पैसा पर आधारित है जो व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से जितना सम्पन्न है, संसार में वह उतना ही अधिक शक्तिशाली तथा सभ्य समझा जाता है। आधुनिक सभ्यता का मापदण्ड बहुत कुछ अर्थ पर आधारित है। आज के भौतिकवादी युग में सच्चाई, ईमानदारी अथवा मनुष्य के अन्य चारित्रिक एवं नैतिक गुणों का कोई महत्व नहीं है। समाज में जिसमें पास धन सम्पत्ति है और जो ऐश्वर्य पूर्ण जीवन व्यतीत करता है प्रायः सभ्य समझा जाता है उसके चरित्र में कितने ही दोष क्यों न हो पैसा उसके समस्त अवगुणों को ढंक लेता है। समाज में असन्तोष तथा संघर्ष इसीलिए व्याप्त है कि सभी सभ्य बनना चाहते हैं सुखी जीवन व्यतीत करना चाहते हैं इसके लिए उन्हें पैसे की आवश्यकता है।

प्रेमचन्द अर्थ पर आधारित इस सभ्यता को महाजनी सभ्यता की संज्ञा से अभिहित करते हैं और समाज पर पड़ने वाले इसके दुष्प्रभावों का वर्णन करते हुए लिखते हैं–"धन–लोभ ने मानव भावों को पूर्ण रूप से अपने अधीन कर लिया है। कुलीनता और शराफत, गुण और कमाल की कसौटी पैसा और केवल पैसा है। जिसके पास पैसा है, वह देवता स्वरूप है, उसका अन्तः करण कितना ही काला क्यों न हो। साहित्य, संगीत और कला सभी धन की देहली पर माथा टेकने वालों में हैं। यह हवा इतनी जहरीली हो गई है कि इसमें जीवित रहना कठिन होता जा रहा है। डॉक्टर और हकीम हैं कि बिना लम्बी फीस लिए बात ही नहीं करता। वकील और बैरिस्टर हैं कि मिनटों को अशर्फियों से तौलता है। गुण और

---

[1] सम्पत्ति शास्त्र–ले0 आचार्य महावीर प्रसाद द्विवदी पृ 41।

योग्यता की सफलता उसके आर्थिक मूल्य के हिसाब से मानी जा रही है। मौलवी साहब और पण्डित जी भी पैसे वालो के बिना पैसे के गुलाम हैं। अखबार उन्हीं का राग अलापते हैं। इस पैसे ने आदमी के दिलो–दिमाग पर इतना कब्जा जमा लिया है कि उसके राज्य पर किसी और से भी आक्रमण करना कठिन दिखाई देता है। वह दया और स्नेह, सच्चाई और सौजन्य का पुतला मनुष्य दया–ममता शून्य जड़ यन्त्र बनकर रह गया है। इस महाजनी सभ्यता ने नये–नये नीति नियम गढ़ लिये हैं जिन पर आज समाज की व्यवस्था चल रही है। उनमें से एक यह है कि समय ही धन है।"[1] यह अर्थ मूलक सभ्यता किस प्रकार परिवार और समाज के व्यक्तियों और वर्गों के भावात्मक सम्बन्धों का रूप परिवर्तित करके एक सुविधावादी भौतिक सम्बन्ध निर्मित करने का काम करती है। तथा अर्थ का दबाव कैसे पति–पत्नी, बाप–बेटे के भावात्मक सम्बन्धों को ही नहीं प्रभावित करता बल्कि समाज में प्रचलित नैतिकतावादी धारणाओं पर भी कुठाराघात करता है। इस तथ्य से प्रेमचन्द पूर्णतः अवगत थे। अपने उपन्यास 'मंगलसूत्र' के पात्र संतकुमार के विषय में कहते हैं–"उनके लिए लोक या परलोक में जो कुछ था वह सम्पत्ति थी। यहीं से उनके जीवन की प्रेरण मिलती थी। सम्पत्ति के मुकाबले में स्त्री या पुत्र की भी उनके निगाह में कोई हकीकत न थी।"[2] समाज की ऐसी दूषित मानसिकता ने धन के महत्व को आवश्यकता से अधिक बढ़ा दिया है आज प्रत्येक व्यक्ति धन प्राप्ति के लिए छल प्रपंच, झूँठ, रिश्वत खोरी, दगाबाजी और बेईमानी के नये–नये उपाय खोजता रहता है। यही कारण है कि प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में धन, के बढ़ते हुए प्रभाव की कटु आलोचना करते हुए स्थान–स्थान पर यह दिखाया है कि किस प्रकार धन मनुष्य की मनुष्यता को समाप्त करके उसे पाषाण ह्रदय और संवेदनहीन बना रहा है। गोदान के पात्र मिर्जा खुर्शीद के माध्यम से कहते हैं–" मैं जानता हूँ दौलत से आराम और तकल्लुफ के कितने सामान जमा किये जा सकते हैं मगर यह भी जानता हूँ कि दौलत इन्सान को कितना खुदगर्ज बना देती है, कितना ऐश–पसंद, कितना मक्कार, कितना बगैरत।"[3]

'कर्मभूमि' में पूँजीवादी मानसिकता को जन्म देने वाली आधुनिक शिक्षा प्रणाली के दोषों का वर्णन करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं– – "हमारे कालेजों और

---

[1] प्रेमचंद स्मृति स्नेह के फूल–चयन अमृतराय–पृ0 258।

[2] मंगलसूत्र प्रेमचंद पृ0 20।

[3] गोदान–प्रेमचंद पृ0 141।

स्कूलों में जिस तत्परता से फीस वसूल की जाती है, शायद माल गुजारी भी उतनी सख्ती से वसूल नहीं की जाती। बड़े कठोर नियम हैं। – – -- ऐसे कठोर नियमों का उद्देश्य इसके सिवा और क्या हो सकता है कि गरीबों के लड़के स्कूल छोड़कर भाग जाएँ। वही हृदयहीन दफ्तरी शासन जो अन्य विभागों में है हमारे शिक्षालयों में भी हैं। वह किसी के साथ रियायत नहीं करता। – – – – हमारे शिक्षालयों में नरमी को घुसने नहीं दिया जाता। वहॉ स्थायी रूप से मार्शल लॉ का व्यवहार होता है। कचहरियों में पैसे का राज है, यहॉ उससे कहीं कठोर कहीं निर्दय। देर से आइये तो जुर्माना, किताबें न खरीद सकें तो जुर्माना, कोई अपराध हो जाये तो जुर्माना शिक्षालय क्या है जुर्मानालय है। यही हमारी पश्चिमी शिक्षा का आदर्श है जिसकी तारीफों के पुल बॉधे जाते हैं। यदि ऐसे शिक्षालयों से पैसे पर जान देने वाले, पैसे के लिए गरीबों का गला घोंटने वाले पैसे के लिए अपनी आत्मा को बेंच देने वाले छात्र निकलते हैं तो आश्चर्य क्या है।"[1] इसी उपन्यास का नायक अमरकान्त कहता है– "एक साधारण आदमी को साल भर में पचास रूपये से ज्यादा नहीं मिलते हमारे अध्यापकों को पचास रूपये रोज चाहिए। – – – यह अध्यापक हैं जो किसी अंश में भी एक मामूली व्यापारी या राज्य कर्मचारी से पीछे नहीं। उनमें भी वही दम्भ, वहीं धन मद, वही अधिकार मद है। हमारे शिक्षालय क्या राज्य के विभाग हैं और हमारे अध्यापक उसी राज्य के अंग हैं ये खुद अन्धकार में पड़े हुए हैं प्रकाश क्या फैलायेंगे। वे आप अपने मनों विकारों के कैदी हैं। आप अपनी इच्छाओं के गुलाम हैं और आपने शिष्यों को भी उसी कैद और गुलामी में डालते हैं।"[2]

विज्ञान के बढ़ते हुए प्रभाव तथा वैज्ञानिक उपकरणों ने हमारे जीवन में सुख की सम्भावनाओं को तो बढ़ावा दिया ही है साथ ही साथ धन का महत्व भी बढ़ा दिया है। पूँजीवादी मानसिकता ने जिसमें और भी वृद्धि कर दी है। आज के इस भौतिकतावादी संसार ने जिसके पास पैसा है वह सब कुछ खरीद सकता है। रूप, यौवन, शरीर यहाँ तक कि आत्मा भी पैसे की इस दुनिया में पैसा ही भगवान है। सर्वत्र पैसे का ही साम्राज्य है व्यक्ति को न चाहते हुए भी पैसे की गुलामी करनी पड़ती है। 'कर्मभूमि' में लाला समरकान्त अपने आदर्शवादी पुत्र अमरकान्त को व्यवहारिकता का पाठ–पढ़ाते हुए कहते हैं – " तो फिर कौन

---

[1] कर्मभूमि–प्रेमचंद पृ0 1।

[2] कर्मभूमि–प्रेमचंद पृ0 90।

रोजगार करोगे कौन रोजगार है जिसमें आत्मा की हत्या न हो। लेन–देन, सूद–बट्टा, अनाज कपड़ा, तेल घी सभी रोजगारों में दांव घात है। जो दांव घाते समझता है वह नफा उठाता है जो नहीं समझता उसका–दीवाला पिट जाता है। मुझे कोई ऐसा रोजगार बता दो जिसमें झूँठ न बोलना पड़े। इतने बड़े–बड़े हाकिम हैं बताओ कौन घूस नहीं लेता। एक सीधी–सी नकल लेने जाओ तो एक रूपया लग जाता है। – – – कौन वकील है जो झूंठे गवाह नहीं बनाता। लीडरों में कौन है जो चंदे के रूपयों में नोंच खसोट न करता हो।''[1] अर्थाभाव के कारण व्यक्ति को अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु अपना मान सम्मान अपना स्वाभिमान खोना पड़ता है।

''भौतिकावादी दृष्टि में जीवन–मूल्यों का निर्माता अर्थ है। आर्थिक सम्बन्ध ही हमारे समाज में तरह–तरह के निर्णय कर रहे हैं। उत्पादन के साधनों के आधार पर समाज के सम्बन्ध बन रहे हैं और इन सम्बन्धों के आधार पर ही हमारी सभ्यता संस्कृति विकसित हो रही है।''[2] पैसा व्यक्ति के जीवन की दिशा और दशा दोनों बदल सकता है। अतः हम कह सकते हैं कि अर्थ मानव के सर्वांगीण विकास की कुंजी है। इस दृष्टि से मानव जीवन में अर्थ की महत्ता स्वयं सिद्ध है।

---

[1] कर्मभूमि–प्रेमचंद पृ0 41–42।

[2] कथाकार प्रेमचंद–स0 राम दरश मिश्र पृ0 10।

कृषि की दुर्व्यवस्थाएं:-

प्राचीन काल से सोने की चिड़िया के नाम से विश्व में विख्यात हमारा भारत देश अपनी आर्थिक समृद्धि शीलता एवं सम्पन्नता के कारण सदैव ही अन्य राष्ट्रों की ऑखों में खटकता रहा है, साथ-ही-साथ अपनी सुन्दरता तथा कलात्मकता के कारण विदेशियों के आकर्षण का केन्द्र भी रहा है--- " सन् 1498 ई0 मे सर्वप्रथम पुर्तगाल निवासी वास्कोडिगामा कालीकट में उतरा। इसके पश्चात् डच, डेन, फ्रॉसीसी तथा अंग्रेज इत्यादि योरोप निवासियों ने भारत में आना प्रारम्भ कर दिया। यह जातियॉं हमारे देश में मुख्यता ब्यापारिक उद्देश्यों की पूर्ति ही के लिए आई थी, किन्तु कालान्तर में पारस्परिक संघर्ष के कारण एक-एक करके इनका पतन होता गया, और अन्त में अग्रेजों ने भारत में अपने साम्राज्य की स्थापना कर ली। ॲग्रेजों से पूर्व अन्य शासकों ने भारतीय अर्थ-व्यवस्था में कोई विशेष परिवर्तन उत्पन्न होनें नहीं दिया और देश का सामान्य आर्थिक जीवन प्रायः हस्तक्षेप से मुक्त (Undisturbed) ही रहा।"[1] परन्तु अंग्रेजो की साम्राज्यवादी शोषण नीति में भारत की आत्म निर्भर अर्थ व्यवस्था को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। प्राचीन काल से ही हमारा देश कृषि प्रधान रहा है देश में अधिकॉंश जनता गॉव में निवास करती थी, जिनका मुख्य व्यवसाय कृषि था, परन्तु कृषि ही लोगों की जीविका का एक मात्र साधन हो ऐसा नहीं था लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में विविध प्रकार के छोटे-छोटे उद्योग भी प्रचलित थे जिनके द्वारा अनेकानेक ग्रामीण जनता का जीवन निर्वाह सुचारू रूप से होता था उदाहरणार्थ कोई खेतों में मज़दूरी करता था, कोई लुहार का कार्य करता था, कुछ लोग बढ़ईगीरी का कार्य करते थे, तो कुछ मोची का और कुछ लोग कुम्हार का कार्य करके अपनी जीविका चलाते थे। अंग्रेजो के भारत आगमन का उद्देश्य केवल व्यापारिक नही वरन् यहॉं वे शासन करने की नियति से आये थे। किसी भी देश पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिये सर्वप्रथम उसकी अर्थ व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करना अनिवार्य होता है, अतः अंग्रेजों ने अपने साम्राज्य के सुदृढ़िकरण के लिये भारत की आर्थिक व्यवस्था को विश्रृंखलित करने की जो नीति अपनायी उसने यहॉं के ग्रामीण उद्योग का सर्वनाश कर डाला जिसके कारण असंख्य कारीगर बेरोजगार हो गए उनके भूखों मरने की नौबत आ गयी। ऐसे में विवश होकर उन्हें कृषि कार्य का आश्रय लेना पड़ा। इस विषय में रामदीन

---

[1] भारतीय अर्थशास्त्र एवं आर्थिक विकास-डा0 जगदीश नरायण निगम पृ0 121-122।

गुप्त लिखते है–" सन् 1891 में खेती पर निर्भर लोगों की संख्या– 66.1 प्रतिशत थी जो 1901 में 61.5 प्रतिशत, 1911 में 62.2 प्रतिशत, 1921 में 63.0 प्रतिशत और 1931 में 75.0 प्रतिशत हो गयी खेती पर इस अप्रत्याशित दबाव का कारण यह हुआ कि किसान की आय घटने लगी और फलतः उन पर ऋण का बोझ बढ़ने लगा।"[1] जो भारतीय कृषि की पिछड़ी अवस्था के प्रमुख कारणों में से एक है। श्री बोल्फ के विचार में " देश महाजन के चंगुल में है। ऋण के बन्धन ही खेती को जकड़े हुये है।"[2] कृषि के इतनी पिछड़ी दशा में होते हुये भी गॉव की लगभग 80 प्रतिशत जनता कृषि पर अवलम्बित है, क्योंकि " भारत वर्ष में कृषि इसलिए ही नही की जाती कि इससे जीविका का उपार्जन हो और इसके द्वारा आर्थिक सहायता मिल सके, किन्तु इसलिये की जाती है कि कोई अन्य धन्धा उपलब्ध नहीं है। 1929–33 की विश्वव्यापी मन्दी का प्रभाव तो कृषक पर यहॉ तक पड़ा था कि भूमि से जो कुछ भी उपज वह प्राप्त करता था वह उस मूल्य में भी नही पाती थी जितना की वह उसके उत्पादन में व्यय करता था। इसके फलस्वरूप अनेक कृषक अपनी भूमि को छोड़ना पसन्द करते थे। फिर भी न छोड़ सके क्योंकि उनके पास कोई अन्य धन्धा नही जिसे कर सकें। अतः भारतीय कृषि एक अत्यन्त आशाहीन धंधा बन गई थी।"[3]

कृषि की दुर्व्यवस्था के लिए उपरोक्त कारण तो मुख्य रूप से उत्तरदायी है ही इसके अतिरिक्त यदि गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाये तो ज्ञान होगा कि हमारी कृषि प्रणाली में कुछ ऐसे दोष पाए जाते है, जो कृषि के दुर्दशा के लिए उत्तरदायी है। हमारे देश का कृषक वर्ग प्रकृति पर अत्यन्त निर्भर रहता है भारतीय कृषि को मानसून का जुआ कहा जाता है यदि मानसून ठीक है और वर्षा उचित मात्रा में होती है तो फसल भी फलती–फूलती है। वर्षा न होने के स्थिति में सूखा पड़ने के कारण खेत के खेत नष्ट हो जाते है और दुर्भिक्ष का संकट उत्पन्न हो जाता है। यद्यपि गाँवों की अधिकाँश भूमि खेती के लिए प्रयुक्त होती है, तथापि उसके अनुपात में उपज बहुत कम होती है। इसके प्रमुख कारणों पर प्रकाश डालते हुए डॉ0 सोहन लाल लिखते है —" इसका प्रमुख कारण भूमि की उर्वराशक्ति का ह्रास होना, अतिवृष्टि एवं अनावृष्टि, प्राकृतिक प्रकोप निकृष्ट बैल,

---

[1] प्रेमचंद और गाँधीवाद–रामदीन गुप्त पृ0 128।

[2] को ऑपरेशन इन इंण्डिया पृ0 31।

[3] भारतीय कृषि एवं उनकी समस्याएं–डा0 सोहन लाल गुप्त पृ0 31।

बीज और यंत्र खेतों का अंतर्विभाजन अपखण्ड एवं बिखरे हुए होना और कृषक का निर्धन तथा निरक्षर होना है।"[1] प्रेमचन्द युगीन ग्रामीण जीवन के आर्थिक पक्ष की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि गॉव के अधिकॉश निवासी उदरपूर्ति के लिये कृषि पर आश्रित थे। कृषि के प्रति लोगों के मन में विशेष आस्था थी। वह कृषकों की मर्यादा के द्योतक थी। उसके बिना किसान का जीवन अपूर्ण था। वह किसानों के जीवन की अभिन्न अंग थी। परन्तु इस कृषि कार्य से उन्हें इतनी आय भी नहीं होती थी कि वह अपने दैनिक जीवन की आवश्यकताएं पूरी कर सकें। हाड़–तोड़ परिश्रम के उपरान्त भी किसी को भरपेट भोजन नहीं मिलता खेती में कुछ नही रह गया मज़दूरी भी नहीं पड़ती।[2]

किसानों के शुभेच्छु प्रेमचन्द कृषि तथा कृषकों की इस दुरवस्था के विषय में लिखते है––" भारतीय किसानों की इस समय जैसी दयनीय दशा है, उसे कोई शब्दों में अंकित नहीं कर सकता उनकी दुर्दशा को ये स्वयं जानते है–– या उनका भगवान जानता है। ज़मींदार को समय पर मालगुजारी चाहिए, सरकार को समय पर लगान चाहिए, खाने के लिये दो मुट्ठी अन्न चाहिए, पहनने के लिए एक चीथड़ा चाहिए, चाहिए सब कुछ पर एक तुषार तथा अतिवृष्टि फ़सल को चौपट कर रही है, एक और ऑधी उनके रहे सहे खेत को भी भ्रष्ट कर रही है–– दूसरी ओर रोग, प्लेग, हैजा, शीतला, उनके नोजवानों को हरी–भरी तथा लहलहाती जवानी में उसी तरह लहलहाता खेत अभी छः दिन पूर्व के पत्थर वाले से जल गया।"[3] एक अन्य स्थान पर लिखते है– " काश्तकार इसलिए तबाह है कि उसकी खेती में न काफी उपज है न जिसका अच्छा दाम है और उस पर एक न एक दैवी बाधा सदैव उसके पीछे पड़ी रहती है।"[4] कृषि के पिछड़ेपन का एक कारण यह भी है कि भारतीय कृषक अपने पुराने ढंग से कृषि कार्य को सम्पादित करता है। वैज्ञानिक प्रणाली से वह सर्वथा अनभिज्ञ है इसका मुख्य कारण उसकी निरक्षरता एवं निर्धनता है, शिक्षा के अभाव में नवीन अविष्कारों का न तो उसे ज्ञान ही हो जाता है न हि अपने निर्धनता के कारण उसमें सीखने तथा आगे बढ़ने का उत्साह ही रह जाता है जीवन की दुराशा उसे भाग्यवादी

---

[1] भारतीय कृषि एवं उनकी समस्याएं–डा0 सोहन लाल गुप्त पृ0 32।

[2] गोदान–प्रेमचंद पृ0 21।

प्रेमाश्रम–प्रेमचंद पृ0 46।

[3] विविध प्रसंग भाग 2–प्रेमचंद पृ0 490।

[4] विविध प्रसंग भाग 2–प्रेमचंद पृ0 509।

बना देती है। भारतीय कृषकों की दशा इस दिशा में अत्यन्त दयनीय है जिसके लिए प्रेमचन्द सरकार के उदासीनतापूर्ण व्यवहार को दोषी ठहराते हैं। इस विषय में अपने (हट–भागे किसान) शीर्षक निबन्ध में लिखते है–– आज तक किसी ने किसानों की दशा की ओर ध्यान नहीं दिया और उनकी दशा आज भी वैसी है, जो पहले थी। उनके खेती के औजार, साधन, कृषि विधि कर्ज, दरिद्रता सब कुछ पूर्ववत् है।–––– जब किसान भूखों मर रहा है तो वह दुर्बल और रूग्ण होगा खेती मे ज्यादा मेहनत न कर सकेगा और इसलिए पैदावार भी अच्छी न होगी।"[1] इसी निबन्ध में आगे लिखते है––" खेती की पैदावार बढ़ाने की ओर भी अभी तक काफी ध्यान नही दिया गया। सरकार ने अभी तक केवल प्रदर्शन और प्रचार के अन्दर रहना ही उपयुक्त समझता है। अच्छे औजारों, अच्छे बीजों, अच्छी खादों का केवल दिखा देना ही काफी नही है। सौ में दो किसान इस प्रदर्शन से फ़ायदा उठा सकते हैं। जिनको भोजन का ठिकाना नही है, जो नाक तक ऋण के नीचे दबा हुआ है, उससे यह आशा नहीं की जा सकती कि वह नयी तरह के बीज या औज़ार या खाद खरीदेगा। उसे तो पुरानी लीक से जौ भर हटना भी दुस्साहस मालूम होता है। उसमें कोई परीक्षा करने की, किसी नयी परीक्षा का जोखिम उठाने की सामर्थ्य नही है। उसे तो लागत के दामों यह चीजें किस्तवार अदायगी की शर्त पर दी जानी चाहिए। सरकार के पास इन कामों के लिये हमेशा धन का अभाव रहता है। हमारे विचार में इससे ज़्यादा जरूरी सरकार के लिये कोई काम ही नही है।"[2]

भारत में भूमि पर अत्यधिक भार है। जनसंख्या की अधिकता के कारण खेतों के बिना खाद डाले, बिना विश्राम दिये फसले उत्पन्न की जाती है। इसका परिणाम यह हुआ है कि भूमि की उपज दिनो–दिन कम होती जाती है। हमारे देश में जनसंख्या में तो निरन्तर वृद्धि होती रही है परन्तु औद्योगिक रोजगार और कृषि की दशा लगभग स्थिर रही है या उस अनुपात में उसमें वृद्धि नहीं हुयी है, जिसके परिणाम स्वरूप प्रतिव्यक्ति कृषि का भाग क्रमशः कम होता रहा है। जनसंख्या की अधिकता से भूमि की मॉग बढ़ी और वह छोटे–छोटे टुकड़ों में विभक्त होती चली गयी। हमारे देश में प्राचीनकाल से हिन्दुओं तथा मुसलमानों

---

[1] विविध प्रसंग भाग 2–प्रेमचंद पृ0 487–488।

[2] विविध प्रसंग भाग 2–प्रेमचंद 488।

दोनों के यहाँ उत्तराधिकार के नियमानुसार एक व्यक्ति के मृत्यु के पश्चात् सभी उत्तराधिकारियों में भूमि के समान्य रूप से विभाजन की प्रथा चली आ रही है। जिसके परिणाम स्वरूप खेतों का अन्तर विभाजन नही होता वरन इसका खण्डन भी होता चला जाता है। भारतीय कृषि की दुर्व्यवस्था के समस्त कारणों में संयुक्त परिवार प्रथा का विघटन भी एक महत्वपूर्ण कारण है इस प्रथा के विघटित होने से जहाँ तक एक ओर व्यक्तिगत स्वार्थ तथा ईर्ष्या–द्वेष को प्रोत्साहन मिलावटी दूसरी ओर संयुक्त कृषि की पद्धति नष्ट हो गयी। अतः भूमि के बटवारे के लिये झगड़े बढ़े और खेत छोटे–छोटे खण्डों में विभाजित होकर अलाभकारी होते चले गये। खेतों के छोट–छोटे टुकड़ों में बटे होने तथा बिखरे होने के कारण किसानों को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है उन पर प्रकाश डालते हुये प्रेमचन्द लिखते है––" हमारे किसानों को जहाँ और कितनी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है, वहाँ उनके खेतों का दूर–दूर और गाँव की भिन्न दिशाओं में होना एक बहुत बड़ी बाँधा है। अधिकतर किसानों के पास दो ढाई बीघे से ज्यादा नहीं होता, और उसमें भी पाँच बिस्से गाँव के पूर्व है, तो दस विस्वे गाँव के पश्चिम, दस बिस्वे उत्तर, तो पाँच बिस्वे दक्खिन। पाँच बिस्वे को जोतकर इसे हल बैल लिये मील भर चलना पड़ता है। तब कही दूसरा खेत मिलता है। सिचाई निराई, बुआई सभी क्रियाओं में यही हाल होता है। इस तरह उसका बहुत सा समय नष्ट हो जाता है। न वह कुएँ बनवा सकता है, न बाड़े खीच सकता है, न फसल की रखवाली कर सकता है।"[1]

भारत में कृषि के पिछड़ेपन का एक बहुत बड़ा कारण वर्षा की अनिश्चितता तो है ही इसके साथ ही साथ बाढ़, ओला और आँधी आदि दैवी विपत्तियाँ भी है, जो खेती को बहुत क्षति पहुँचाती है।[2] " कीड़े से भी फसल का अकसर बहुत नुक़सान होता है। कभी लाही आती है, कभी माही, कभी गेरूई, कभी पतिंगें। कभी दीमक का जोर होता है, कभी कींड़ो का ।"[3] इन दैवी आपदाओं के कारण फसलों कों बहुत क्षति पहुँचती है। ऐसी दशा में कोई अन्य

---

[1] विविध प्रसंग भाग 2–प्रेमचंद पृ0 485।

[2] गोदान प्रेमचंद पृ0 223।

[3] विविध प्रसंग भाग 2–प्रेमचंद पृ0 488–489।

सहारा न देख कृषकों का महाजनों से ऋण लेने पर विवश होना पड़ता है। इस विषय में डा0 सुभद्रा का कथन है–" दैविक–भौतिक आपदाएं तो खेती को नष्ट–भ्रष्ट करने के लिए बनी ही है इसके साथ स्वयं कृषक भी कुछ अपनी स्वाभाविक मानवीय दुर्बलताएं होती है जो उपज की आय को देखते–देखते समाप्त कर डालती है। पत्नी के लिए आभूषण बनवाना उसके लिए आवश्यक है। बिरादरी को भोज–भात देना और तीर्थ–यात्रा करना उसके कर्तव्य की परिधि में आ जाते है। हरे–भरे खेतों को देख उसे 'ताव' आ जाता है। अपने खेतों पर ही उसकी आशा टिकी रहती है। इसी आधार पर वह ऋण लेता है चाहे उसकी आशा निर्मूल ही सिद्ध हो।"[1]

कृषि की दुर्दशा के लिए उत्तरदायी इन समस्त कारणों में लगान का एक महत्वपूर्ण स्थान है। प्रेमचंद युग आते–आते कृषकों की इस समस्या ने अत्यन्त विकराल रूप–धारण कर लिया था। लगान की एक दर सुनिश्चित होती थी जिसमें किसी प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं होता था चाहे फसल दैविक या भौतिक आपदाओं के कारण नष्ट हो जाएं अथवा जीन्स का भाव कितना ही गिर जाएं लगान पूर्व निर्धारित दर के अनुसार ही उगाही जाती थी। परिणाम स्वरूप लगान की रकम इतनी बढ़ जाती थी कि उपज का मूल्य उस सीमा तक नही पहुँच पाता था। [2] कृषक वर्ग जीवकोपार्जन के लिए जिस खेती पर आश्रित था वह ऋण के बन्धनों से जकड़ी हुई थी कम उपज के कारण आय भी कम होती थी और इस अल्प आय पर महाजन जमींदार तथा उनके प्यादें घात लगाए बैठे रहते थे उनकी लूट–खसोट से जो बचता उससे कृषकों के परिवार का भरण पोषण अत्यन्त कठिनाई पूर्वक होता था, यह एक तरह से अन्याय ही था कि जिनकों न भरपेट भोजन मिले, न तन ढांकने को भरपूर वस्त्र, उनसे भी लगान लिया जाता था। [3] देहात में जन्म लेने के कारण प्रेमचंद कृषको से भावात्मक स्तर पर जुडे थे। वे कृषको के सच्चे हितैषी थे तथा उनकी दशा में सुधार करना चाहते थे, उनके आर्थिक दुर्दशा पर वे निरन्तर विचार किया करते थे। गहन–चिन्तन और मनन के उपरान्त 'किसानों का कर्जा' शीर्षक लेख में लिखते है —" आज भारत के किसान इतनें तबाह क्यूँ है ? इसलिए कि जबसे अंग्रेजी शासन

---

[1] प्रेमचंद साहित्य में ग्राम्य जीवन–डा0 सुभद्रा पृ0 69।

[2] कर्मभूमि–प्रेमचंद पृ0 –313–115, 293–294।

[3] कर्मभूमि–प्रेमचंद पृ0 366।

शुरू हुआ, यानि आज के ड़ेढ सौ वर्ष पहले से विदेशी हुकूमत ने सदैव किसानों के हितों की उपेक्षा की और जमींदारों कि हितों का समर्थन किया ——— किसानों की कष्ट—कहानी इस डेढ़ सौ वर्ष के अंग्रेजी शासन ने ज्यों की त्यों बनी हुई है। उन आभागों पर पुलिस का जमींदार—तालूकेदार का, सेठ साहूकार का संक्षेप में हरेक अधिकारी का जुल्म ज्यों का त्यौं जारी है।"[1]

ग्रामीण अर्थ व्यवस्था का गहनता पूर्वक निरीक्षण करने के पश्चात प्रेमचंद इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार किए बिना किसानों की समस्याओं का निदान संभव नहीं और ऐसा तभी हो सकता है जब कृषि की दशा में सुधार हो इसीलिए उन्होनें अपने साहित्य में भारतीय कृषकों की दैयनीय दशा क़ा चित्रण करते हुए उन कारणों पर प्रकाश डाला है जो कृषि की दुर्व्यवस्था के लिए उत्तरदायी है। 'प्रेमाश्रम' और 'गोदान' तो कृषक जीवन का महाकाब्य तो है ही। 'कर्मभूमि' में भी कृषक जीवन की वास्तविकता का मार्मिक चित्रण किया हैं इनके अतिरिक्त 'बरदान', 'सेवासदन' तथा 'कायाकल्प' मे भी प्रासंगिक रूप से ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित समस्याओं पर प्रकाश डाला है। 'गोदान' में कृषकों की कृषि सम्बन्धी कठिनाइयों का वर्णन करते हुए प्रेमचंद एक स्थान पर लिखते हैं ——" मगर जब चौमासा आ गया और वर्षा न हई तो समस्या अत्यन्त जटिल हो गयी। सावन का महीना आ गया था और बगुले उठ रहे थे। कुओं का पानी भी सूख गया था और ऊख ताप से जली जा रही थी। नदी से थोडा पानी मिलता था मगर उसके पीछे आये, दिन लाठियाँ निकलती थी। यहॉ तक कि नदी ने भी जबाब दे दिया। "[2] जैसा कि कहा जा चुका है भारत में कृषि करने का ढंग पुराना है अतः किसान मशीनों के स्थान पर दुर्बल बैलों से खेती करता है अच्छे चारे के आभाव में जुताई में प्रयुक्त होने वाले यह बैल इतने निर्बल होते है कि उनमें अधिक श्रम करने की सामर्थ्य ही नही होती और वे खेत जोतते—जोतते बीच में ही दम तोड़ देते है और कृषकों के सम्मुख विकट परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। कृषक वर्ग की इस विवशता को प्रेमचंद ने गोदान में होरी के माध्यम से व्यक्त किया है। भोला गाय के बदले जब होरी के बैल खोल ले जाता है तो उसे यह चिन्ता खाए जाती है कि ——" बैलों के

---

[1] विविध प्रसंग—भाग 2 प्रेमचंद पृ0 493।

[2] गोदान, प्रेमचंद पृ0 154।

बिना खेती कैसे हो गॉव में बोआई शुरू हो गई। कार्तिक के महीने में किसान के बैल मर जाए तो उसके दोनो हाथ कट जाते है। होरी के दोनों हाथ कट गये थे और सब लोगो के खेतो में हल चल रहे थे। बीज डाले जा रहे थे। कही–कहीं गीत की ताने सुनाई देती थी। होरी के खेत किसी अनाथ अबला के घर की भॉति सूने पड़े थे।[1]

कभी–कभी कृषक के खेत का आधार इतना छोटा–होता है कि जुताई के समय वह अपने बैलों को मोड़ भी नही सकता। ऐसी स्थिति में बैलो के स्थान पर उसे फावडे से ही काम चलाना पड़ता है। इसके अतिरिक्त खेतों के अलग–अलग स्थान पर होने के कारण किसान उनकी समुचित देख भाल नहीं कर पाता और उचित देख–रेख के आभाव में फसलें पशुओं द्वारा नष्ट हो जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे देश में खेत इतने अधिक छोटे और विखरे हुए है कि एक व्यक्ति के द्वारा उसकी देखभाल सम्भव नहीं है। संक्षेप में हम कह सकते है कि भारतीय कृषि में अनेक ऐसे दोष पाये जाते है कि जिसके कारण उसकी दशा में स्थाई सुधार नहीं हो पाता और कृषि एक अलाभकारी व्यवसाय बन जाती हैं प्रति एकड़ उपज कम हो जाती है अथवा प्रति एकड लागत व्यय अधिक हो जाता है। कृषक अपने श्रम तथा पूँजी का पूर्ण रूप से लाभ नहीं उठा पाता।

---

[1] गोदान, प्रेमचंद पृ0 442।

निर्धनता एवं संयुक्त परिवार का अन्त

हमारा भारत वर्ष गॉवों का देश है क्योंकि यहॉ की लगभग 88 प्रतिशत जनसंख्या गॉवों में निवास करती है जिसमें से तकरीबन 65 प्रतिशत लोगो का जीवन कृषि पर अवलम्बित है। गांधी के कथनानुसार 'वास्तविक भारत की जानकारी कलकत्ता और बम्बई जैसे विशाल नगरों को देखने से नही हो सकती। यदि किसी को भारतवर्ष का सच्चा रूप देखना हो तो उसे गॉव की ओर जाना चाहिए।' गॉवों में रहने वाली अधिकांश जनता अपनी दरिद्रता, ऋणग्रसता, अशिक्षा, अज्ञानता, तथा अंधविश्वासों के कारण पशुतुल्य जीवन व्यतीत करती है। हमारे गॉवों की दशा अत्यन्त दयनीय है परन्तु इतिहास साक्षी है कि देश के राजनैतिक तथा आर्थिक पतन से पूर्व हमारी ग्राम्य संस्था अत्यन्त समृद्धिशाली आत्मनिर्भर तथा प्रभावशाली थी। देश के अधिकतर गॉव स्वावलम्बी थे ---"कोई जमाना था, जब गॉव के लोग अपने डील-डौल, बल पौरुष के लिए मशहूर थे। जब गावों में दूध-घी की इफरात थी। जब गॉव के लोग दीर्घजीवी होते थें जब देहात की जलवायु स्वास्थ्यकर और पोषक थी, लेकिन आज आप किसी गाँव में निकल जाइए, आपको खोजने से भी हष्ट-पुष्ट आदमी न मिलेगा, न किसी की देह पर मॉस है न कपड़ा। मानों चलते-फिरते कंकाल हो। और तो और उन्हें रहने को स्थान नही है। उनके द्वारों पर खडे होने तक की जगह नहीं, नीची दीवारो पर रक्खी हुई फूस की झोपड़ियों के अन्दर वह उसका परिवार भूसा, लकड़ी, गाय बैल सब के सब पड़े हुए जीवन के दिन काट रहे है।"[1] भारतीय ग्रामों की इस दुर्शदा के मूल में स्थिति कारणों पर प्रकाश डालते हुए नवल किशोर सिंह लिखते है --" यह देश धनी है मगर इसकी संतानें निर्धन ऐसा क्यों ? इसके मूल में कुछ न कुद भयंकर त्रुटियां अवश्य विद्यमान है। उन्हीं के कारण यहाँ की जनता की ऐसी दीन हीन अवस्था है। भारत वर्ष को प्रकृति ने अनेक प्रकार की सम्पदा देने में कंजूसी नहीं की है। फिर भी यहॉ की जनता के सामने भुखमरी, बेकारी, औद्योगिक पिछडेपन इत्यादि की अनेक समस्याएं है। हमारे पास तरह-तरह के खनिज पदार्थ, विभिन्न प्रकार की जलवायु, उपजाऊ मिट्टी तथा शक्ति के अपार साधन विद्यमान है, मगर इनकी प्रचुरता के बीच भी यहॉ की जनता निर्धनता से त्रस्त है --- इस विराधात्मक कहावत या हमारी सम्पन्न्ता के बीच निर्धनता के कई कारण है उनमें सर्वाधिक मुख्य यह है कि ब्रिटिश सरकार ने इसके आर्थिक विकास पर काफी ध्यान नही दिया जो एक

---

[1] विविध प्रसंग भाग 2-प्रेमचंद 486।

विदेशी सरकार के लिए स्वाभाविक ही है।"[1] इसे और स्पष्ट करते हुए लिखते है ––" दुर्भाग्य वश हमारा देश लगभग 150–200 वर्षो से अंग्रेजी साम्राज्यवाद की सत्ता के अन्तर्गत रहा जिस अवधि में हम अपनी सम्पूर्ण ख्याति खो बैठे। अंग्रेजी मशीन बनी वस्तुओं की प्रतियोगिता तथा अंग्रेजों की स्वार्थी एवं त्रुटिपूर्ण अर्थनीति ने हमारे प्रचीन कुटीर उद्योगों को विनष्ट कर दिया। अपने राज्य काल मे उन्होंने जितनी भी अर्थनीति का निमार्ण किया उन सबों के पीछे उनका अपना स्वार्थ छिपा था। धीरे–धीरे हमारे उद्योग विनष्ट हो गये और उनके उद्योग पनपते गये। हम कृषि प्रधान हो गये और वे उद्योग प्रधान। हमारे देश कच्चे मालो से इंग्लैण्ड के उद्योगों का भरण–पोषण होने लगा। इस प्रकार हमारे किसानों की मेहनत पर उनके उद्योग पनपते रहे भारतवर्ष सदियों से राजनीतिक गुलामी की जंजीर में जकड़ा था। इसके कई भयंकर कुपरिणाम हुए। उनमें हमारे देश का आर्थिक शोषण सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है।"[2]

अंग्रेजों के आर्थिक शोषण के कारण जब देश के उद्योग धंधों का विनाश हुआ तो लाखों करोड़ो की संख्या में बेकार हुए कारीगरों के पास जीवन निर्वाह हेतु कृषि कार्य ही एक मात्र विकल्प रह गया, इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि खेती और उद्योग धन्धों में जो संतुलन स्थापित था वह बिगड़ गया खेती ही लोगों के जीवन यापन का एक मात्र साधन बन गई एक तो जो करोड़ो लोग उद्योग धंधों में लगे हुये थे वे खेती करने लगे दूसरे जनसंख्या की वृद्धि का भार भी कृषि पर आ पड़ा देश में अकाल पड़ गया। अंग्रेजी शासन से पूर्व किसान अपनी भूमि का स्वामी होता था वह अपनी उपज का छटवा भाग राज्य को लगान के रूप में देता था। अंग्रेंजो ने प्रचीन समय से चली आ रही इस व्यवस्था के स्थान पर भूमि का एक नीवन व्यवस्था लागू की जिसके अनुसार अब लगान नगद रकम के रूप में वसूल किया जाने लगा। किसानों का आर्थिक शोषण करने के लिए उन्होंने जमींदार वर्ग को खड़ा कर दिया। किसान भूमि हीन होकर जमींदार के असामी बन गए। विदेशी शासकों का समर्थन प्राप्त कर यह वर्ग किसानो से मनमाना लगान, नजराना तथा बेगार लेने लगा। जिसके कारण कृषकों की आर्थिक दशा दिन–प्रतिदिन दयनीय होती चली गई। उपनिवेशवादी समाज व्यवस्था में सर्वाधिक उत्पीड़ित तथा शोषित वर्ग कृषकों का है। प्रेमचंद इस तथ्य

---

[1] भारतीय अर्थशास्त्र–नवल किशोर सिंह पृ0 6–7।

[2] भारतीय अर्थशास्त्र–नवल किशोर सिंह पृ0 5–6।

से भली–भॉति अवगत थे। साम्राज्यवादी शोषण प्रक्रिया का वर्णन करते हुए 'कृषक जीवन के महाकाब्य 'गोदान' में एक स्थान पर लिखते है ––– "यहाँ तो जो किसान सबका नरम चारा है पटवारी को नज़राना और दस्तूरी न दे , तो गॉव में रहना मुश्किल। जमींदार के चपरासी और कारिंदों का पेट न भरे तो निबाह न हो। थानेदार और कानिसिटिबल तो जैसे उसके दामाद है। जब उनका दौरा गॉव मे हो जाय, किसानों का धरम है, वह उनका आदर–सत्कार करे, नगर नयाज़ दें, नही एक रिपोर्ट में गाँव का गाँव बँध जाय। कभी कानूनगो आते है, कभी तहसीलदार, कभी डिप्टी, कभी जण्ट, कभी कलक्टर, कभी कमिश्नर। किसान को उनके सामने हाथ बाँधे हाजिर रहना चाहिए। उनके लिए रसद–चारे, अंडे–मुर्गी, दूध–घी का इन्तजाम करना चाहिए।–––––एक डाक्टर कुओं में दवाई डालने के लिए आने लगा है। एक दूसरा डाक्टर कभी–कभी आकर ढोरो को देखता है, लड़कों का इम्तिहान लेने वाला इन्सपिट्टर है, न जाने किस–किस महकमें के अफसर है, नहर के अलग, जंगल के अलग, ताड़ी सराब के अलग, गॉव–सुधार के अलग खेती–विभाग के अलग। कहॉ तक गिनाऊॅ। पादडी आ जाता है तो उसे भी रसद देना पड़ता है, नहीं शिकायत कर दे। और जो कहो कि इतने महकमों और इतने अफसरों से किसान का कुछ उपकार होता है, तो नाम को नही। कभी जमींदार ने गॉव पर हल पीछे दो–दो रूपये चन्दा लगाया। किसी बडे अफसर की दावत की थी। किसानों ने देने से इन्कार कर दिया। बस, उसने सारे गॉव पर जाफा कर दिया। हाकिम भी जमींदार ही का पच्छ करते है। यह नहीं सोचते किसान भी आदमी हैं, उनके भी बाल–बच्चे है, उनकी भी इज्जत–आबरू है।"[1]

यही नही ब्रिटिश शासन ने ग्राम्य पंचायतों को भी नष्ट कर दिया। सारा कार्य आदालातों द्वारा सम्पादित होने लगा। पंचायतों का ह्रास होने से गॉव में भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिला। महाजन तथा साहूकार ग्रामीण जनता से मनमाना सूद लेने तथा अनेक प्रकार से उनका शोषण करने लगे। परिणाम स्वरूप किसानों तथा ग्रामवासियों की दशा अत्यन्त सोचनीय हो गई इस विषय मे रजनीपाम दत्त का कथन है –––" किसानों की एक बहुत बड़ी संख्या के पास न तो ज़मीन है न बीज है, न मवेशी है और न अपनी जरूरत की चीजे खरीदने के लिए पैसा हैं इसके साथ ही बार–बार रोग के आक्रमण के कारण अनेक स्वस्थ व्यक्ति पूरी

---

[1] गोदान पृ0 353।

तरह अक्षम हो गए है।"[1] अपने हाड़तोड़ परिश्रम से दूसरों को धन–धान्य से भरने वाले इन निर्धन किसानों को कभी भरपेट भोजन नहीं मिलता। जब उसके पास खाने के तक का ठिकाना नहीं है तो उसे अपने तन ढॉकने के कपड़े कहाँ से मिले और बीमारी में दवा आदि के पैसे वह कहाँ से लाए यही कारण है कि किसी भी दैवी विपत्ति अथवा महामारी मे मरने वालें में इन गरीबों की संख्या अधिक होती है। प्रेमचंद के जीवन का अधिकांश समय निर्धनता एवं आभावों की चक्की में बुरी तरह पिस रहे किसानों के मध्य व्यतीत हुआ था। अतः इन निरीह प्राणियों के जीवन का कोई भी पक्ष प्रेमचंद की दृष्टि से कोई ओझल नहीं था। अपने उपन्यास 'प्रेमाश्रम' में वे कृषकों की दीनता का अत्यन्त मार्मिक चित्रण इन शब्दों में करते है ---" चारो ओर तबाही छायी हुई थी। ऐसा बिरला ही कोई घर था जिसमें धातु के बर्तन दिखाई देते हों। कितने घरों में लोहे के तवे तक न थे। मिट्टी के बर्तनों को छोड़कर झोपड़े मे और कुछ दिखाई न देता था। न ओढ़ना, न बिछौना, यहॉ तक कि बहुत से घरों में खाटें तक न थीं। और वे घर ही क्या थे ? एक–एक, दो–दो छोटी कोठरियां थी। एक मनुष्य के लिए, एक पशुओं के लिए। उसी एक कोठरी में खाना सोना, बैठना-- सब कुछ होता था। जो किसान बहुत सम्पन्न समझे जाते थे उनके बदन पर साबित कपडे न थे। उन्हे भी एक जून चबेना पर ही काटना पड़ता था। वे भी ऋण के बोझ से दबे हुए थे। कितने ही ऐसे गाँव थे जहाँ दूध तक न मयस्कर होता था। [2] "अपनी अमर कृति गोदान में समस्त कृषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र होरी की अन्तहीन दरिद्रता और विवशता का वर्णन उसी के शब्दो में इस प्रकार करते है----"अनाज तो सब का सब खलिहान में ही तुल गया। जमींदार ने अपना लिया, महाजन ने अपना लिया --- जमींदार तो एक ही है मगर महाजन तीन–तीन है, सहुआइन, मॅगरू, अलग और दातादीन पण्डित अलग किसी का ब्याज भी पूरा न चुका। जमींदार के भी आधे रूपये बाकी पड़ गये सहुआइन से फिर रूपये उधार लिये तो काम चला सब तरह किफ़ायत करके देख लिया भैया, कुछ नही होता। हमारा जन्म इसीलिए हुआ है कि अपना रक्त बहाए और बड़ों का घर भरें।"[3] अपनी दरिद्रता के कारण ही डाँड के रूपये भरने के लिए "होरी अपने घर को अस्सी रूपये पर झिंगुरी सिंह के हाथ गिरों रख रहा था। डाँड के रूपये का इसके सिवा वह और

---

[1] आज का भारत रजनी पामदत्त–281।

[2] प्रेमाश्रम–प्रेमचंद पृ0 433।

[3] गोदान–प्रेमचंद–पृ0 29।

कोई प्रबन्ध न कर सकता था।[1] "इसी आर्थिक दबाव के चलते होरी जीवन के अन्तिम वर्षो में अपनी बेटी रूपा को बेचने तथा उसका विवाह अधेड़ विधुर से करने पर विवश हो जाता है। उसकी मनोदशा का वर्णन करते हुए प्रेमचंद कहते है --- "होरी ने रूपये लिए तो उसका हाथ काँप रहा था। उसका सिर ऊपर न उठ सका, मुँह से एक शब्द न निकला, जैसे अपमान के अथाह गढ्ढे में गिर पड़ा है और गिरता चला जाता है। आज तीस साल तक जीवन में लड़ते रहने के बाद वह परास्त हुआ है और ऐसा परास्त हुआ है कि मानों उसको नगर के द्वार पर खडा कर दिया गया है और जो आता है, उसके मुँह पर थूक देता है। वह चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा है भाइयों, मै दया का पात्र हूँ, मैने नही जाना जेठ की लू कैसे होती है, और माघ की वर्षा कैसी होती है। इस देह को चीरकर देखों, इसमें कितना प्राण रह गया है, कितना जख्मों से चूर, कितना ठोकरों से कुचला हुआ। उससे पूछों, कभी तूने विश्राम के दर्शन किये, कभी तू छॉह में बैठा। उस पर यह अपमान ! और वह अब भी जीता है, कायर, लोभी, अधम, उसका सारा विश्वास जो अगाध होकर स्थूल और अन्धा हो गया था, मानों टूट-टूट कर उड़ गया है।"[2] गॉव किसी भी देश के आर्थिक विकास के मेरूदण्ड हुआ करते है। जिस देश के गाँव पिछड़ी दशा में हो उसका विकास भला कैसे सम्भव है हमारे देश के ग्रामों की आर्थिक स्थिति किसी से छिपी नहीं है। कर्मभूमि में अमर, सलीम तथा कालेज के कुछ अन्य छात्र डाक्टर शान्ति कुमार के साथ देहातों की आर्थिक दशा का निरीक्षण करने जाते हैं देहातों से लौटते समय अमर, सलीम तथा डाक्टर शान्ति कुमार में जो वार्तालाप होता है, उससे किसानों की आर्थिक दुर्दशा का परिचय प्राप्त होता है,

" अमर नें कहा-मैने कभी अनुमान न किया था कि हमारे कृषकों की दशा इतनी निराशजनक है।

सलीम बोला-तालाब के किनारे वह जो चार-पॉच घर मल्लाहों के थे, उनमें तो लोहे के दो एक बर्तन के सिवा कुछ था ही नही। मैं समझता था देहातियों के पास अनाज की बखारे भरी होगी, लेकिन यहॉ तो किसी घर में अनाज के मटके तक न थे।

---

[1] गोदान-प्रेमचंद-पृ0 131।

[2] गोदान-प्रेमचंद पृ0 555-556।

शान्ति कुमार बोले – सभी किसान इतने गरीब नहीं होते। बड़े किसानों के घर में बखारें भी होती है, लेकिन ऐसे किसान गाँव में दो चार से ज्यादा नहीं होते।

अमरकान्त ने विरोध किया– मुझे तो इन गॉवों में एक भी ऐसा किसान न मिला। और महाजन और अमले इन्हीं गरीबों को चूसते हैं।"[1]

कर्मभूमि में ही चमारों की बस्ती के किसान लगान चुकाने से इन्कार कर देते है।

सलीम, इस इलाके का सरकारी अफसर है। लाला समरकान्त की प्रेरणा से वह प्रत्येक गॉव का दौरा करके किसानों की आर्थिक दशा की जाँच करता है और तब उसे अनुभव होता है कि" उनकी दशा उससे कहीं हीन है, जितनी वह समझे बैठा था। पैदावार का मूल्य लागत और लगान से कहीं कम था। खाने कपड़े की भी गुंजाइश न थी, दूसरे खर्चो का क्या जिक्र ऐसा कोई बिरला ही किसान था जिसका ऋण के नीचे न दबा हो।"[2] अपनी आर्थिक दुर्व्यवस्था के कारण देश के अधिकांश कृषक तथा मज़दूर जीवन की मूलभूत आवश्यताएं भी पूर्ण नहीं कर पाते प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से पूरे देश की भोजन तथा वस्त्र आदि की आवश्यकांओं की पूर्ति करने वाले इन ग्रामीणों को खाने के लिए मोटा–झोटा अन्न तथा सोने के लिए घास–फूस का बिछौना ही मिलता आया है।

गाँव जो हमारे देश की आत्मा है उनके विकास की और ब्रिटिश शासकों ने कभी ध्यान नही दिया। यद्यपि स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् ग्राम विकास सम्बन्धी अनेक योजनाएँ बनी परन्तु वे सुचारू रूप से कार्यान्वित न हो सकी गॉवों की अपेक्षा शहरों में रोजगार की दृष्टि से स्वास्थ की दृष्टि से शिक्षा की दृष्टि से अधिक सुविधाएँ उपलब्ध भी उन्होंने ग्रामीण जनता को अपनी ओर आकृष्ट किया ग्राम संस्था ऐसी कांतिहीन तथा निर्जीव हो गई कि गाँव का कोई भी प्राणी जो कुछ थोड़ी शिक्षा ग्रहण कर लेता। थोड़ा सी भी धन एकत्र कर लेता वह गॉव छोड़कर शहर में बस जाता। इस प्रकार की पूँजी पौरूष तथा मस्तिष्क बाहर जाने

---

[1] कर्मभूमि–प्रेमचंद पृ0 36–37।

[2] 'कर्मभूमि ' प्रेमचंद पृ0 359।

लगे इस निष्कासन के कारण गाँवों में रूढिवादिता, कुरीतियों, कलह तथा ईर्ष्याद्विष को बढावा दिया। पारस्परिक सौहार्द की जगह व्यक्तिगत स्वार्थ ने लेली जिससे सदियों से चली आ रही संयुक्त परिवार प्रथा की नींव हिलाकर रख दी।

संयुक्त परिवार का तात्पर्य एक-एक ऐसे परिवार से है जहाँ बहुत से सदस्य जैसे दादा-दीदी, माता-पिता, पति-पत्नी, चाचा-चाची, भाई-बहन सम्मिलित रूप से रहते है। सबसे बुजुर्ग पुरूष सदस्य परिवार का मुखिया अथवा प्रबन्ध होता है जिसके कमाने वाले सभी सदस्य अपनी आय सौप देतें है और वह उस धन से पूरे परिवार का भरण-पोषण करता है।--"प्राचीन भारत में संयुक्त परिवार सम्पूर्ण सामाजिक ढॉचे का केन्द्र होता था। इस प्रथा के अनुसार परिवार के सदस्यों में अनुशासन, त्याग, आज्ञा पालन, आदर की भावना जागृत होती थी और स्वार्थ परता का हतोत्साहन होता था। यह परिवार के सदस्यों के लिए एक प्रकार के सामाजिक वर्ग में का काम करता था। अनाथ, बृद्ध असहाय तथा विधवाओं की भली-भॉति देख भाल की जाती थी।"[1] ग्रामीण व्यवस्था के सर्वथा अनुकूल होने के कारण ग्रामीण समाज के सभी वर्गों में यह प्रथा अत्यन्त लोकप्रिय हो गयी धीरे-धीरे सभी ने इसे अपना लिया। इस प्रकार संयुक्त परिवार प्रणाली सम्पूर्ण सामाजिक ढांचें का आधार स्तम्भ बन गई। परन्तु --" आधुनिक युग में अभिनव औद्यौगिक राष्ट्रीय आर्थिक प्रणाली ने ग्रामीण सीमबद्ध तथा कृषि प्रधान आर्थिक व्यवस्था का स्थान ग्रहण कर लिया, जिसके परिणाम स्वरूप संयुक्त परिवार के सम्मुख नई आर्थिक समस्याएँ और सुविधाएँ उपस्थिति हुई। इस परिवर्तन से यह स्वाभाविक ही था कि संयुक्त-परिवार, आर्थिक व्यवस्था का सामाजिक संगठन था अपना नया रूप धारण करता। इसके अतिरिक्त आधुनिक भारत में व्यक्तिवाद को प्रमुखता मिलने से परम्परागत रीति-रिवाजों तथा रूढ़ियों का निर्वाह संस्कृति द्वारा सम्भव हो सका, क्योंकि आधुनिक शिक्षा के प्रभाव से उसकी संकीर्णता नष्ट होकर व्यापक दृष्टिकोण को अपनाने लगी। ऐसी स्थिति में उसका निर्वाह व्यक्ति ही कर सकता था, परिवार द्वारा सम्भव न था। फलतः नवीन आर्थिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों में कोटुम्बिक व्यवस्था में परिवर्तन होना अस्वाभाविक न था। यह परिवर्तन की क्रिया-संक्रमण स्थिति उन्नीसवी-बीसवी शताब्दी तक चलती रही। समाजशास्त्री इसे संयुक्त परिवार के विघटन की संज्ञा देते है।"[2]

---

[1] भारतीय अर्थशास्त्र एवं आर्थिक विकास -डॉ0 जगदीश नारायण निगम-पृ0 62।

[2] भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतना-डॉ0 बैजनाथ प्रसाद शुक्ल, पृ0 64।

"प्रेमचंद युग में भारतीय परिवार, संयुक्त परिवार प्रणाली पर आधारित तो थे, लेकिन अशिक्षा, पुराने रीति–रिवाज रूढ़ियों अंधविश्वास, और अनेक बुराइयां परिवारों में गहराई तक अपनी जड़े जमाये हुई थी। पाश्चात्य सभ्यता, शिक्षा, समाज, सुधार आंदोलनों का प्रभाव भी बढ़ता जा रहा था। परिणामतः परिवारों में नई–पुरानी विचार धाराओं का टकराव भी स्वभाविक था। यह टकराव परिवारिक कलह में परिवर्तन होता जा रहा था। सास–बहू की लड़ाई, पिता–पुत्र की लड़ाई, भाई–भाई का वैमनस्य, बहिन–बहिन की ईर्ष्या आदि ऐसे तथ्य थे, जो नित नये ये पारिवारिक कलहों को जन्म दे रहे थे।"[1] फलतः प्रेमचंद युगीन भारतीय समाज में संयुक्त परिवार प्रथा गॉवों तथा नगरों में समान रूप से छिन्न–भिन्न हो रही थी यह सत्य है कि बदलती हुई आर्थिक परिस्थितियों में संयुक्त परिवार प्रणाली शहरी जीवन के लिए उपयुक्त नहीं रह गयी। परन्तु ग्रामीण जीवन मे कृषि कार्य हेतु संयुक्त प्रयत्नों के महत्व को नकारा नही जा सकता। डॉ0 सुभद्रा के अनुसार–" ग्रामीण अर्थ–व्यवस्था में संयुक्त परिवारों का महत्व था। संयुक्त परिवार–प्रथा लोगों को बिना किसी हानि की संभावना के निःस्वार्थ रूप से परिश्रम करना सिखाती थी। इस प्रथा से प्रत्येक को कम से कम जीवन निर्वाह का आश्वासन मिल जाता था जो आर्थिक उन्नति के लिए प्राथमिक महत्व की बात थी। उपभोग के क्षेत्र में संयुक्त–परिवार मे बहुत बचत हो जाती और बड़े–बड़े परिवारों का अपेक्षाकृत कम आय में ही सुगमता से काम चल जाता था। क्योंकि घर में आवश्यक सामान और चीजों पर दोहरे खर्च की आवश्यकता नही होती थी। संयुक्त परिवार में सम्पत्ति का अच्छे प्रयोग संभव था और भूमि को बहुत अधिक उपविभाजन और उपखण्ड से बचाया जा सकता था। इन विशेषताओं के उपरान्त भी संयुक्त परिवार प्रथा टूट रही थी।" [2] जिसका ग्रामीण अर्थ व्यवस्था के लिए घातक सिद्ध होना स्वाभाविक था।

प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों तथा कहानियों के माध्यम से ग्रामीण जीवन पर संयुक्त परिवार के विघटन के कारण पड़ने वाले दुष्प्रभावों पर प्रकाश डाला है। अपनी 'अलग्योझा' कहानी तथा 'गोदान' उपन्यास में उन्होंने ग्रामीण समाज में 'अलग्योझा' की तीव्रता से बढ़ते हुए संक्रमण को रेखांकित किया। 'अलग्योझा' कहानी में रग्घू की पत्नी मुलिया उसके संयुक्त–परिवार के विघटन का कारण बनती है। अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् रग्घू सौतेले भाइयों का पुत्रवत पालन

---

[1] प्रेमचंद परम्परा की कहानियों में पारिवारिक एवं सामाजिक चित्रण, डाँ0 राजेन्द्र कुमार शर्मा, पृ0 170।

[2] प्रेमचंद साहित्य में ग्राम्य जीवन–डाँ0 सुभद्रा–पृ0 83।

करता है। अपने सद्व्यवहार से वह अपनी विमाता पन्ना के ह्रदय में भी स्थान बना लेता है –– परन्तु मुलिया के आने के बाद रग्घू के घर की शान्ति कलह मे परिवर्तित होने लगती है क्योंकि मुलिया पन्ना के साथ रहने को कदापि तैयार नहीं है मुलिया की इस हट के परिणाम स्वरूप रग्घू के परिवार के दो टुकड़े हो जाते है अलग होने के उपरान्त रग्घू के भाई अपनी खेती तो सँभाल लेते है परन्तु रग्घू में अब इतनी सामर्थ्य नहीं कि वह अपनी खेती अकेले कर पाता, क्योंकि–––" खेती पसीने की वस्तु है। खेतों की जैसी सेवा होनी चाहिए, वह उससे न हो पाती। फिर फसल कहाँ से आती। कुछ ऋण भी हो गया था। यह चिन्ता और भी मारे डालती। चाहिए तो यह था कि अब उसे आराम मिलता, इतने दिनों के निरन्तर परिश्रम के बाद सिर का बोझ कुछ हलका होता, किन्तु मुलिया की स्वार्थ परता और अदूर दर्शिता ने लहराती हुई खेती उज़ाड दी। –––– अब तो चिन्ता भारी दिन–दिन बढ़ता जाता था।"[1] जिसके परिणाम स्वरूप एक दिन रग्घू इस संसार से विदा हो जाता है। मुलिया अकेली रह जाती है वह टूट तो चुकी है परन्तु झुकना नहीं जानती परन्तु पन्ना के सज्जनता पूर्ण व्यवहार और उसके स्नेहाग्रह के कारण वह सास तथा देवरों के साथ रहने को राजी हो जाती है इस प्रकार रग्घू का टूटा परिवार उसकी मृत्यु के पश्चात् ही सही पुनः जुड़ जाता है। इस प्रकार इस कहानी के माध्यम से प्रेमचंद यह संदेश देना चाहते है कि संयुक्त परिवारों का विघटन ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए अत्यन्त विनाशकारी है अतः संयुक्त परिवार को स्थापित रखने में ही ग्रामीण जीवन का कल्याण है। 'गोदान' मे भी प्रेमचंद ने कुछ इसी तरह के संकेत किये है मालती जब मेहता के संग होरी के गाँव जाती है तो उसे इस बात का अनुभव होता है कि गॉव में संयुक्त परिवार प्रथा का अंत होता जा रहा है आपसी ईर्ष्या तथा द्वेष के कारण गॉव के कोई भी दो भाई एक साथ नही रहतें।[2] इस उपन्यास में प्रेमचंद ने इस तथ्य की ओर संकेत किया है कि ग्रामीण जीवन की दुर्व्यवस्था तथा दीनता के प्रमुख कारणों में संयुक्त परिवार का विघटन भी एक महत्वपूर्ण कारण है जिसके परिणाम स्वरूप खेती छोटे–छोटे टुकड़े मे विभक्त होकर कृषकों के लिए एक लाभ–हीन व्यवसाय बनकर रह जाती है। रामबक्ष के कथनानुसार –––" किसान के लिए परिवार उत्पादन का केन्द्र भी होता है। किसान के परिवारिक सम्बन्ध उत्पादन के सम्बन्ध भी होते है। उत्पादन कर्म में सारा परिवार एक साथ लगता

[1] अलग्योझा, मानसरोवर–भाग–1 पृ0 28।

[2] गोदान–प्रेमचंद पृ0 311।

है। इसलिए किसान बिना परिवार के नही रह सकता----किसान अपनी चेतना से संयुक्त परिवार का पक्षपाती होता है। प्रेमचंद ने दिखाया है कि नयी व्यवस्था के दबाव से यह संयुक्त परिवार टूट रहा है और इस टूटते हुए संयुक्त परिवार को बचाने के लिए किसान अथक प्रयास कर रहा है। इसमे कभी वह सफल होता है और कभी असफल होता है। संयुक्त परिवार को बचाने के इस संघर्ष में किसान में अपनी सामर्थ्य और इच्छा शक्ति के सहारे सफल होता है और ऐतिहासिक परिस्थितियों के दबाव से असफल होता है संयुक्त परिवार के बिखर जाने के बाद भी किसान उन सम्बन्धों को मानता और निबाहता रहता है तात्पर्य यह है कि संयुक्त परिवार के विघटन के बाद भी चेतना के स्तर पर किसान संयुक्त परिवार में ही रहना चाहता है। इस तरह प्रेमचंद साहित्य में भारतीय किसान के परिवार का वह संक्रमण काल अभिव्यक्ति हुआ है, जब संयुक्त परिवार में विघटन तीव्र हो गया था। इस विघटन कालीन संयुक्त परिवार मे सदस्यों के आपसी सम्बन्धो के ताने-बाने, तनाव, अंतः संघर्ष अन्तर्विरोध और टूटन की अभिव्यक्ति प्रेमचंद की रचनाओं में हुई है ।"[1]

प्रेमचंद युगीन समाज में पूँजीवाद के बढ़ते हुए कदमों ने सामंतवादी युग में फलने-फूलने वाली सम्मिलित परिवार प्रथा को रौंदकर रख दिया वह सम्मिलित परिवार प्रणाली जो केवल एक संस्था नही वरन् मानवीय सम्बन्धों को स्थापित्व प्रदान करने वाली एक महत्वपूर्ण कड़ी है। प्रेमचंद ने संयुक्त परिवारों के विघटन का मर्मस्पर्शी चित्रण करते हुए इस ओर संकेत किया है कि विघटन की यह प्रक्रिया उच्च, मध्य तथा निम्न सभी वर्गो में समान रूप से फैलती जा रही है। इस विषय में सरोज प्रसाद का मत है----"पश्चिमी सभ्यता और शिक्षा प्रसार के साथ-साथ व्यक्ति-चेतना को इतना कुछ महत्व मिल जाता है कि संयुक्त परिवार की संस्था छिन्न-भिन्न होन लगती, देहातों मे पश्चिमी सभ्यता और शिक्षा का प्रत्यक्ष प्रभाव नही पड़ता किन्तु, वहॉ भी अलग्योझे की समस्या खडी हो गयी है। बात यह है कि भूमि पर आश्रितों की संख्या को भार बढ़ता जा रहा था और शोषकों के शोषण के कारण दोनो जून रोटी का भी हिसाब नही रह गया था अर्थात जीवन संघर्ष बढ़ गया था। ऐसी स्थिति में स्नेह सौहार्द के भाव को टूटना ही था।"[2] प्रेमाश्रम में प्रेमचंद ने इस तथ्य को रेखांकित किया है कि पश्चात्य सभ्यता से प्रभावित हमारा युवा वर्ग व्यक्तिगत हितों पर ही बल देता अतः संयुक्त

---

[1] प्रेमचंद और भारतीय किसान रामबक्ष पृ0 221-222।

[2] प्रेमचंद के उपन्यासो में समसामयिक परिस्थितियों का प्रतिफलन--डॉ0 सरोज प्रसाद पृ0 303।

परिवार में उसकी तनिक भी आस्था नहीं है इस उपन्यास में ज्ञानशंकर के वैयक्तिक के कारण ही उसका संयुक्त परिवार टूटकर बिखर जाता है, स्वार्थान्ध ज्ञानशंकर के विषय में प्रेमचंद लिखते है ----''ज्ञानशंकर दम्भ और द्वेष के आवेग में बहने लगे। एक नौकर चचा का काम करता तो दूसरे का खामखाह अपने किसी न किसी काम में उलझा रखते । इसी फेर में पड़े रहते कि चचा के आठ प्राणियों पर जितना व्यय होता है, उतना मेरे तीन प्राणियो पर हो, भोजन करने जाते तो बहुत सा खाना जूठा करके छोड देते।---- यहॉ तक कि प्रभाशंकर डाक्टर के यहाँ से कोइ दवा लाते तो आप भी उतनी ही मूल्य की औषधि अवश्य लाते, चाहे उसे फेंक ही क्यो न दें।[1]

इसके विपरीत लाला प्रभाशंकर जैसे पुरानी पीढ़ी के लोग अपने परिवार को खण्डित होने से बचाने के लिए यथा सम्भव प्रयत्न करते है यही कारण है कि प्रभाशंकर अपने भतीजे ज्ञानशंकर के अलग हो जाने पर भी संयुक्त परिवार की मर्यादा का निर्वाह करते हुए होली के अवसर पर अपने परिवार के साथ ज्ञानशंकर के परिवार के लिए भी कपड़े लाते है यही नही प्रेमशंकर को हिरासत से मुक्त कराने के लिए वे अपनी जायदाद तक गिरवी रख देते है और अपने इस कृत्य पर उन्हे कोई पछतावा नहीं था वरन् ''उनका ह्रदय ऐसा प्रफुल्लित था जैसे कोई बालक मेला देखने जा रहा हो। इस कल्पना से ही उनका कलेजा उछला पड़ता था कि भैया मेरी भक्ति पर कितने मुग्ध हो रहे होगें।''[2]

अपने उपन्यासों तथा कहानियों में संयुक्त परिवार के विघटन की समस्यों का उद्‌घाटन करते समय प्रेमचंद उन परिस्थितियों पर भी प्रकाश डालते है जिनके कारण संयुक्त परिवार टूटता चला जा रहा है। गोदान में प्रेमचंद ने दिखलाया है कि जहाँ परिवार में चार-छः व्यक्ति रहते है वहॉ छोटी-छोटी बातों पर परस्पर मतभेद और कलह होना स्वाभाविक है और प्रायः यही मत वैभिन्न और पारिवारिक कलह संयुक्त परिवार के विभाजन का कारण बनती है। इसी कारण होरी भी यही सोचता है कि दोनो भाईयों की बहुओं के आने से परिवार में उत्पन्न द्वेष के कारण अलग्योझा हुआ अर्थात स्त्रियों की संकुचित दृष्टि भी संयुक्त परिवार के विघटन का एक महत्वपूर्ण कारण बनती है इसके अतिरिक्त असमान श्रम विभाजन भी संयुक्त परिवार के विघटन के लिए उत्तरदायी है। 'शंखनाद'

---

[1] प्रेमाश्रम-प्रेमचंद पृ0 24।

[2] प्रेमाश्रम-प्रेमचंद पृ0-23।

कहानी में प्रेमचंद ने इस ओर संकेत किया है। चौधरी भानुदत्त के दो लड़के तो काम करते हैं परन्तु छोटा पुत्र गुमान किसी प्रकार का कोई परिश्रम नही करता और मस्त होकर घूमता है। उसके निठल्लेपन का भुगतान उसकी पत्नी को चुकाना पड़ता है ---"मेहनत के घर के जितने काम होते, वे उसी के सिर थोपे जाते। उपले पाथती, कुएं से पानी लाती, आटा पीसती और तिस पर भी जेठानियॉ सीधे मुँह बात न करती, वाक्य बाणों से छेदा करती।"[1] गुमान का भाई बितान संकोच वश खुद तो उसे कुछ नहीं कह पाता परन्तु उसकी पत्नी जब अलग्योझा की बात करती है तो उसे अच्छा लगता है।

आर्थिक परिस्थितियॉ भी संयुक्त परिवार के विघटन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। आर्थिक तंगी के कारण भी व्यक्ति संयुक्त परिवार की मर्यादाओं का पालन करने मे असफल हो जाता है। 'रंगभूमि' में 'ताहिर अली' के परिवार कें माध्यम से प्रेमचंद ने इस तथ्य को उजागर किया है। ताहिर अली जॉन सेवक की चमड़े की आढ़त में गुमाश्ता है उसे तीस रूपया मासिक वेतन मिलता है। इस सीमित आय की तुलना में उसका परिवार बहुत बड़ा है जिसमे उसकी पत्नी तथा दो बच्चों के अतिरिक्त दो विमाताऍ एवं तीन सौतेले भाई भी है। ताहिर अली को इतने बड़े कुटुम्ब का पालन करने में विविध प्रकार की कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। अपने सौतेले भाई माहिर अली की शिक्षा के लिए उसे अपनी पत्नी के गहने तक बेचने पड़ते है। विमाताओं के पास पैसे होते हुए भी वे उसकी कोई सहायत नही करती। ताहिर अली अपने वेतन का आधा भाग हर महीने अपने भाई माहिर अली को भेज देता है, जिसके कारण कभी-कभी उसके यहॉ भोजन तक नही पाता इतनी कम आय में उसके लिए परिवार का पालन करना कठिन हो जाता है। आर्थिक तंगी उसे, सरकारी रोकड़ से रूपया निकालने को विवश कर देती है जिसके कारण उसे जेल जाना पड़ता है। ताहिर अली के पीछे उसकी पत्नी तथा बच्चों को उसकी विमाताऍ तथा माहिर अली किसी प्रकार का कोई आश्रय नही देते। वह भाई जिसके कारण ताहिर अली को जेल जाना पड़ता है वही उसे 'खानपान में दाग लगाने वाला' कहकर उसकी भर्त्सना करता है। अपनी विमाताओं तथा माहिर अली के इस दुर्व्यवहार से क्षुब्ध होकर ताहिर अली सोचता है कि --" वे सारी तकलीफें, सारी कुरबानियॉ, सारी तपस्याऍ बेकार हो गयी। क्या इसी दिन के लिए मैने इतनी मुसीबतें झेली थी ? इसी दिन के लिए अपने खून से खानपान के पेड़ को सींचा था ? यही कड़ुवे फल खाने के लिए ?

---

[1] शंखनाद मानसरोवर-भाग-6 पृ0 166।

आखिर मै जेल ही क्यों गया था ? मेरी आमदनी मेरे बाल बच्चों की परवरिश के लिए काफी थी। मैने जान दी खानदान के लिए ।"[1] और संयुक्त परिवार पर से उसका विश्वास उठ जाता है। इस प्रकार ताहिर अली के प्रसंग के द्वारा प्रेमचंद उन आर्थिक कारणो पर प्रकाश डालते है जो संयुक्त परिवारों को व्यक्तिवादी परिवार में परिणत करने के लिए उत्तरदायी है।

जिस प्रकार एक सिक्के के दो पहलू होते है उसी प्रकार परिवार के सदस्यों को एकता के सूत्र में पिरोने वाली विभिन्न गुणों से युक्त इस प्रथा में कुछ दोष भी पाये जाते है यथा संयुक्त परिवार में रहने वाला व्यक्ति यह जानता है वह जितना भी कमायेगा उसका केवल एक निर्धारित अंश ही उसे प्राप्त होगा इसी कारण उसमें और अधिक धनोपार्जन करने के उत्साह का लोप हो जाता है जिसके कारण वह आलसी तथा अकर्मण्य बन जाता है। संयुक्त परिवार पद्धति में व्यय वैयक्तिक न होकर सामूहिक होता है अतः विभिन्न अवसरों तथा पारिवारिक समारोहों में परिवार से सदस्य बेधड़क होकर धन का अपव्यय करते हैं जिसके कारण परिवार ऋणग्रस्त हो जाता है। संयुक्त परिवारो में बच्चों के लालन–पालन का उत्तरदायित्व प्रत्यक्ष रूप से माता पिता पर न होने के कारण वे परिवार नियोजन की ओर कभी ध्यान नहीं देते जिससे बच्चों की संख्या में वृद्धि होती जाती है जो परिवार तथा राष्ट्र दोनों के लिए हानिकारक है। संयुक्त परिवार में रहने के कारण बिना अधिक श्रम किये व्यक्ति आरामदायक जीवन व्यतीत करता है और वह इस सुहावने वातावरण को छोड़कर अत्यन्त कहीं जाना और अधिक श्रम करना पसंद नहीं करता चाहे उसे उन्नति के कितने ही अवसर क्यों न प्राप्त हो व्यक्ति की यह भावना परिवार के साथ–साथ देश के विकास में भी बाधक है। यद्यपि ग्रामीण अर्थ व्यवस्था के सर्वथा अनुकूल होने के कारण प्रेमचंद संयुक्त परिवार प्रथा के समर्थक थे दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि इस प्रथा से उन्हें मोह था तथापि इस प्रथा के दोषों का जैसा विशद चित्रण उन्हांने अपने साहित्य में किया है वैसा अन्य किसी साहित्यकार के यहाँ दुर्लभ है। अपनी कहानी आत्माराम में महादेव सुनार के लड़कों के निकम्मेपन को रेखांकित करके प्रेमचंद यह दर्शाना चाहते है कि यह संयुक्त परिवार प्रणाली का दोष है कि लोग आत्मनिर्भर बनने के बजाय परोपजीवी बन कर रह जाते है। 'गोदान' मे भी राय साहब अमरपाल सिंह के संयुक्त परिवार के वृतान्त के द्वारा उन्होंने इसी तथ्य पर प्रकाश डाला है। रायसाहब के मौसेरे–फुफेरे भाई उनकी जमींदारी के बल पर

---

[1] रंगभूमि–गोदान पृ0 406।

मौज कर रहें है उन्हें राय साहब की कोई चिन्ता नही है इस पर भी राय साहब संयुक्त परिवार की मर्यादा का पालन कर रहें है निर्मला में भी संयुक्त परिवार के इसी दोष का निरूपण करते हुए वकील उदय भानु लाल के निठल्ले भाई–भतीजों के सम्बन्ध में लिखते है ––"जब खिलाने–वाला ही न रहा तो खाने वाले कैसे पड़े रहते ? जिनका दावा था कि हम पानी की जगह खून बहाने वालों में है वे ऐसा सरपट भागे कि पीछे फिर कर भी न देखा।" [1] परिवारिक भावना का चित्रण करते समय प्रेमचंद संयुक्त परिवारों में व्याप्त बुराइयों एवं समस्याओं पर प्रकाश अवश्य डालते है परन्तु इसका उद्देश्य संयुक्त–परिवार प्रणाली के दोष गिनवाना मात्र कदापि नहीं है वरन् वे इन दोषो पर प्रहार करके उन्हें दूर करना चाहते है जिससे भारतीय परिवारों के पारम्परिक रूप को स्थायित्व प्राप्त हो।

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर कहा जा सकता है कि संयुक्त परिवार व्यवस्था वैज्ञानिक तथा औद्योगिक प्रगति के इस आधुनिक युग में व्यावहारिक दृष्टि से अनुपयोगी है। इस नूतन युग के प्रगतिशील मानव ने रूढ़िगत मान्यताओं के बंधनों से स्यवं को मुक्त करा लिया है धीरे–धीरे सामाजिक मान्यताऍं बदलती जा रही है इस परिवर्तन के साथ ही भारतीय संयुक्त परिवार की परम्परागत अवधारणा में भी परिर्वतन आया है। नौकरी पेशे की वृद्धि, औद्योगिक विकास, जनसंख्या की अधिकता शहरीकरण तथा उसके परिणाम स्वरूप उत्पन्न आवास की समस्या, निर्धनता, पारस्परिक कलह, नारी जागरूकता, नई–शिक्षा एवं पश्चात्य सभ्यता के सम्मिलित प्रभाव से वैयक्तिक स्वार्थो के प्राबल्य के कारण संयुक्त परिवार विघटित तो हो गये है परन्तु परस्पर स्नेह सूत्र अभी समाप्त नहीं हुए है इसलिए वे टूटकर भी संतुष्ट नहीं है, बल्कि उस टूटने की स्थिति के लिए बार–बार पश्चाताप करते है। स्वार्थान्धता, पारस्परिक वैमनस्य, ईर्ष्या द्वेष की भावना परिवार के टुकड़े तो कर सकती है परन्तु दिलो के नही। नैतिकता, धर्म आध्यात्मिक तथा आत्मिक सुख तथा मानवीय मूल्यों में दृढ आस्था एवं विश्वास रखने वाले भारतीय परिवार आज भी, वैवाहिक, सम्बन्धों, सन्तानोत्पत्ति, लालन–पालन, आत्म संरक्षण, माता–पिता, भाई–बहन, पुत्र–पुत्री, बहू आदि के सम्बन्धों में प्रेम, सौहार्द, स्नेह, कर्तव्य बोध, ममता तथा त्याग की भावना एवं पारस्परिक सहयोग को प्रमुखता देते हैं।

---

[1] निर्मला–प्रेमचंद–पृ0 38।

अध्याय– 4

"प्रेमचंद के उपन्यासों में राजनीतिक चेतना"–

अध्याय–4

" प्रेमचंद के उपन्यासों में राजनीतिक चेतना"–

1– राजनीति और साहित्य

2– राष्ट्रीय और राजनीतिक चेतना का उदय

3– महायुद्ध और भारतीय राजनीतिक चेतना

4– गाँधीवादी नीति और कांग्रेसी सरकार

5– शासक वर्ग द्वारा शोषण एवं संघर्ष सामंत और जमीदार

6– प्रेमचंद के उपन्यासों में राजनीतिक चेतना का स्वरूप

1–राजनीति और साहित्य–

राजनीति मानव समाज का अभिन्न अंग है समाज तथा व्यक्ति के विकास में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। "मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है'। इस कथन में प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तु द्वारा अभिव्यक्त उस कथन को भी सम्मिश्रित कर दिया जाय तो यह कहा जा सकता है कि मानव सामाजिक प्राणी होने के साथ–साथ एक राजनीतिक प्राणी भी है। समाज यदि मानव का चरण है। तो राजनीतिक उसका मस्तिष्क दोनो की संगति में ही जीवन की गति सम्भव है। आधुनिक युग के मनुष्य के जीवन के विभिन्न रूप, धर्म, दर्शन, विज्ञान कला–साहित्य और राजनीतिक आदि परस्पर इतने संगुफित है कि उन्हे अलग–अलग नही किया जा सकता।"[1] साहित्यकार को भी अपने समाज का दृष्टा एवं सृष्ढा माना गया है। सच्चा साहित्यकार जिस मिट्टी में जन्म लेता है जिस परिवेश में पलकर बड़ा होता है। उस युग के राजनीतिक वातावरण से उसका व्यक्तित्व प्रभावित होता है। इसकी पुष्टि हमें उसके साहित्य में ही देखने को मिलती है। क्योंकि सच्चा साहित्यकार वही है जिसकी साहित्यिक कृतियों में युग की झाँकी प्रस्फुटित होती है। "साहित्य और राजनीति दोनो का सीधा सम्बन्ध जीवन से है, और जीवन को खंड–खंड करके उसका समुचित एवं वस्तुपरक मुल्यांकन नही किया जा सकता। जिस प्रकार किसी युग के धर्म, दर्शन, राजनीति आदि को हम उस युग के समग्र सामाजिक जीवन से पृथक करके स्वयं–संपूर्ण (Complete in itself) सत्ता (Entity) के रूप में नही देखते, उसी प्रकार कला या साहित्य को भी हम सामाजिक यथार्थ से विच्छिन्न करके नही देख सकते।"[2] किसी भी साहित्यकार के निर्माण और विकास में युगीन वातावरण और परिस्थितियों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। जो साहित्य रचना के लिए प्रेरणा प्रदान करती है। कोई भी साहित्यकार अपने युगीन प्रभाव से स्वयं को तटस्थ रखने का कितना ही प्रयास क्यों न करे उसके वातावरण का प्रभाव उसकी रचनाओं पर किसी न किसी रूप में अवश्य पड़ता है। अर्थात राजनीतिक आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियां साहित्यकार को अवश्य प्रभावित करती है। संसार में घटित होने वाली घटनाएं जहां एक ओर जन–साधारण को प्रभावित करती है उससे कहीं अधिक एक साहित्यकार को प्रभावित करती है। क्योंकि साधारण व्यक्ति की अपेक्षा साहित्यकार कहीं अधिक चेतना सम्पन्न और

---

[1] हिन्दी उपन्यास–स्वातन्त्रय संघर्ष के विविध आयामा–डी0 डी0 तिवारी पृ0–68

[2] प्रेमचंद और गाँधीवादी–रामदीन गुप्त–पृ0 54।

विचारवान होता है। जिसके कारण वह अपने युग की छोटी–बड़ी घटनाओ से प्रेरणा लेकर साहित्य की रचना करता है। यही कारण है कि साहित्यकार युग–चेतना से तटस्थ नही रह सकता। जिस प्रकार युगीन–परिस्थितियाँ साहित्य को प्रभावित करता है। अतः साहित्य समाज तथा राजनीति में गहरा सम्बन्ध है और साहित्यकार इन तीनो को एक सूत्र में बांधने वाली कड़ी है। फास्ट महोदय के अनुसार "राजनीति सामाजिक यथार्थ का सबसे महत्वपूर्ण घटक है। साहित्य का राजनीति से विच्छेद उतना ही असंगत है जितना अर्थ का स्वयं उसके शब्दों से ।"[1]

साहित्यकार एक सामाजिक प्राणी होता है और समाज में रहते हुए वह स्वयं को सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन धाराओ से विलग नही रख सकता। अतएव तत्तकैालीन सामाजिक किया–कलापो और राजनीतिक हलचलों का प्रतिबिम्ब उसकी रचनाओ में दृष्टिगोचर होता है।" साहित्य जीवन की आत्म–अनात्म भावनाओ से पूर्ण वह सफल अभिव्यक्ति है जो मानव–समाज के लिए हितकारी होता है। संप्रेषणीयता से मुक्त यह अभिव्यक्ति रसात्मक होती है और मस्तिष्क पर प्रभाव डालकर जीवन की सत्यता और कृत्रिमता को उजागर करके सहृद्य को आनन्द प्रदान करती है। साहित्य अपनी विधिक विधाओ कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, आलोचना, निबन्ध आदि से व्यावहारिक ज्ञान के साथ–साथ हित–सम्पादन करता है। जो समाज जितना ही सुसंस्कृति एवं सभ्य होता है, उसका साहित्य उतना ही श्रेष्ठ प्रभावपूर्ण तथा प्रतिभा सम्पन्न होता है। समाज ने जिस प्रकार करवटें बदलीं, कभी उठा और कभी सोचा और कभी ठोकरे खाने के बाद फिर संघर्ष में लग गये, उस सबका अलग–अलग चित्र ही हमारे पिछले साहित्य में भरा पडा है। "[2] जिस प्रकार साहित्य और समाज का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है उसी प्रकार साहित्य और राजनीतिक भी एक दूसरे से किसी न किसी रूप में सम्बद्ध है। साहित्य की भाँति ही राजनीति भी हमारे सामाजिक तथा पारिवारिक जीवन से लेकर हमारी अर्थव्यवस्था सांस्कृतिक विकास एवं मानवीय मूल्यों तक को निश्चित रूप से प्रभावित करती है। अतः हम कह सकते है कि यदि साहित्य मानव–जीवन और मानव–समाज का मार्ग दर्शन करता है तो उसे राजनीति से अलग करके नही देखा जा सकता है। आज के सन्दर्भ मे तो

---

[1] Since the politics is a most important factro of the social reality the divorce of art from politics would be as absured as the divorce of art from words them selves."
Howard Fast, Literuture and Reality (London: 1955) , P. 88

[2] उपन्यासकार–प्रेमचंद–समाजशास्त्रीय अध्ययन–डॉ0 राजकुमारी गुगलानी पु0 संख्या 31–32।

साहित्य और राजनीतिक का सम्बन्ध और भी महत्वपूर्ण हो गया है। अज्ञेय के अनुसार साहित्य और राजनीतिक का एक–दूसरे से प्रभावित होना अनिवार्य है उनके इस पारस्परिक आदान–प्रदान को रोका नही जा सकता साथ ही वह यह भी स्वीकार करते है कि –" साहित्य और राजनीति का असर एक–दूसरे पर होने से रोका भी नही जा सकता, चाहे राजनीति का युग हो चाहे साहित्य का। नीत्शे 'साहित्यिक' था लेकिन आधुनिक राजनीति पर उसके प्रभाव की उपेक्षा नही हो सकती।

लेनिन को कोई भी साहित्यिक नही कहता, फिर भी आधुनिक साहित्य पर उसकी गहरी छाप है। "[1]

साहित्य और राजनीति का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह बात तो तय है परन्तु इस विषय में सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि साहित्यकार का राजनीति से क्या सम्बन्ध है। साहित्यकार तथा राजनीति के पारस्परिक सम्बन्ध की व्याख्या करते हुए डी0 डी0 तिवारी लिखते है–" जो व्यवस्था समाज के विकास में सहायक होती है उसे समाज नीति और जो राज्य का विकास करती है उसे राजनीति कहा जाता है। राज्य की उत्पत्ति का कारण स्वयं समाज की अपनी आवश्यकता रही है। जिसने एक शासन–व्यवस्था का निर्माण किया। जब कभी शासनतंत्र के प्रमुख जनता की इच्छा के विरूद्ध समाज को अपने राजदंड से हांकने का प्रयत्न किया तब–तब उसे समूल उखाडने की चेष्टा में जन आन्दोलनो का जन्म हुआ है। उस जन आन्दोलन का एक सैनिक साहित्यकार भी है जो अपने साहित्यिक पांच जन्य द्वारा समाज को संघर्ष के लिए तैयार करता है। प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक नीत्शे (Nictzsche) यद्यपि साहित्यकार था परन्तु उसके राजनीतिक दार्शनिक प्रभाव की उपेक्षा संभव नही है। रूसी क्रान्ति का महान् नेता लेनिन राजनीतिक तथा फिर भी आधुनिक साहित्य पर उसकी गहन छाप है। टाल्सटाय, बोलतेर और रूसों के विचारो के प्रतिबिम्ब ने नवीन इतिहास का निर्माण किया है।"[2] साहित्यकार किसी राजनीतिक दल का सदस्य हुए बिना अपने लेखन द्वारा समाज की विकास प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेते हुए देश की राजनीति में महत्वपूर्ण योगदान देता है। इस प्रकार सामाजिक–क्रांति में साहित्यकार एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है अपने साहित्य के माध्यम से

---

[1] त्रिशंकु–अज्ञेय, पृ0 74 (बनारस 1945)

[2] हिन्दी उपन्यास–स्वातंत्रय संघर्ष के विविध आयाम–डी0 डी0 तिवारी–पृ0 68

जन-मानस को उद्वेलित कर शोषक-शक्तियों के विरूद्ध संघर्ष करने के लिए प्रेरित करता हैं। " पिछले दो-तीन शताब्दियों में जितनी भी राजनीतिक क्रान्तियां हुई है उन सब के मूल में साहित्य अथवा साहित्यकार रहे है। जर्मनी में नाजीवाद के प्रणेता गोयबेल्स....................फ्राँस की क्रान्ति के प्राणदाता रूसो तथा रूसी साम्यवादी क्रान्ति के मार्ग प्रशस्तकर्ता मैक्सिमगोर्की तथा उनके सहयोगी थे।"[1] साहित्यकार की इस विलक्षण प्रतिभा से शासक वर्ग सदैव भयाक्रान्त रहा है। यदि ऐसा न होता तो साहित्यकार को उसके पथ से विचलित करने के लिए प्रत्येंक युग मे तरह-तरह के षड़यन्त्र न रचे जाते। "कला और साहित्य की शक्ति का बोध व्यवस्था को भी है। इसलिए जनवादी मूल्यों में आस्था रखने वाले और उनके लिए संघर्ष करने वाले लेखकों और संस्कृति कर्मियों के विरूद्ध दमन की योजना बनाने वाला शासक-वर्ग बड़े पैमाने पर लेखको को खरीदने के प्रयत्न में भी लगा है। उसके सक्रिय प्रोत्साहन से व्यवस्था से जुड़े हुए तथा प्रतिक्रिया वादी लेखक बडे ही सुनियोजित ढंग से अपने को पुनर्संगठित कर रहे है और जनाकांक्षाओं को प्रतिबिंबित करने वाले तथा उनके लिए संघर्ष करने वाले लेखकों को भी आज तरह-तरह के संरक्षणों, प्रलोभनो तथा पुरस्कारों से गुमराह करने की कोशिश कर रहे है।"[2]

जिस प्रकार साहित्य राजनीति को प्रभावित करता है उसी प्रकार साहित्य पर राजनीति के प्रभाव की उपेक्षा नही की जा सकती क्योंकि समाज का जितना सम्बन्ध साहित्य से होता है उतना ही वहाँ की राजनीति से भी होता है। "आधुनिक युग में राजनीति ने कुछ ऐसा सर्बव्यापी रूप धारण कर लिया है कि जीवन के प्रति और स्वयं अपनी कला के प्रति ईमानदारी रखने वाला कोई भी साहित्यकार चाहते हुए भी राजनीति के प्रभाव से अछूता नही रह सकता। आधुनिक मानव के जीवन के विभिन्न रूप-धर्म, दर्शन, विज्ञान, कला, साहित्य राजनीति इत्यादि परस्पर इतने अधिक गुथे हुए है कि उन्हे अलग-अलग नही किया जा सकता।"[3]

साहित्य पर राजनीति का प्रभाव मुख्यतः दो रूपों में दृष्टिगोचर होता है। पहला वह रूप साहित्यकार किसी विशेष राजनीतिक विचार धारा से इस सीमा तक प्रभावित होता है कि उसका अनुयायी बनकर अपनी रचनाओ के माध्यम से

---

[1] प्रेमचंद के साहित्य सिद्धान्त-नरेन्द्र कोहली-पृष्ठ सं0 60।

[2] साहित्य के बुनियादी सरोकार-कर्ण सिंह चौहान-पृ0 172।

[3] मार्क्सवाद और साहित्य : महेन्द्रचन्द्रराय पृ0 235 प्रथमं0 सं 1957

उसका प्रचार करने लगता है। जिसके कारण उसकी रचनाएँ अपनी साहित्यिक महत्व खोकर केवल प्रचारवादी रचना बनकर रह जाती है और वह साहित्यकार न होकर प्रचारक मात्र बनकर रह जाता है। द्वितीय कोटि वह है जहां रचनाकार किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह से तटस्थ रहकर अपने युग और वातावरण की हलचलों और करवटों को सूक्ष्म निरीक्षण करते हुए अपने मन में पैदा होने वाले भावो और अपने मस्तिष्क में उठने वाले विचारो के आधार पर पूरी निष्ठा के साथ अपने साहित्य में उसका चित्रण करता है और ऐसा साहित्य ही सच्चे अर्थो में साहित्य कहलाने योग्य है। क्योंकि साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। युग और समाज का पारखी ऐसा कुशल साहित्यकार अपने समय की राजनीतिक घटनाओ से अलग–अलग कैसे रह सकता है। युगदृष्टा साहित्यकार प्रेमचंद साहित्य और राजनीतिको दो प्रथक अथवा विरोधी इकाइयां नहीं मानते थे। उनका सम्पूर्ण साहित्य इस बात का प्रमाण है कि –"राजनीतिक दल–विशेष के सिद्धान्तो तथा स्वार्थो अंधानुयायी और अंध समर्थक बने बिना भी साहित्य राजनीति को प्रचुर मात्रा में प्रभावित कर सकता है। वे यह मानते थे कि समाज में होने वाली क्रान्तियों, आन्दोलनो एवं हलचलों से बेखबर तथा समाज के दुःख–सुख से अप्रभावित रहते हुए अपने ही कल्पना–लोक में विहार करने वाले साहित्य के लिए, अमीरो और सेठ–साहूकारो का याचक बनकर जीवन–यापन करने वाले साहित्यकारो के लिए इस दुनियां में कोई जगह नही है।"[1] शिवकुमार मिश्र के कथनानुसार "प्रेमचंद हिन्दी के पहले उपन्यासकार है जिन्होने अपनी रचना के द्वारा हमें साहित्य और समाज एवं साहित्य और राजनीति के रिश्ते को समझने में मदद दी है, उसे अपने रचना कर्म के माध्यम से तयकर दिया है। साहित्य और राजनीति के रिश्तो को लेकर परम्परा से राजनीति के अपने प्रभाव और प्रखरता से घबराने वाले बहुत से लोग कुछ इस प्रकार की मान्यताओ को लेकर सामने आते रहे है। गोया राजनीति हमारे सामाजिक जीवन की वस्तु भले हो साहित्य से उसका सम्पर्क साहित्य को और कला की अपनी इयन्ता को खत्म कर देने वाला हो। साहित्य और कला की पवित्रता और विशुद्धता के प्रति अतिरिक्त रूप से चिन्ताशील ये लोग राजनीति को, साहित्य को दूषितकर देने वाली चीज मानते है और साहित्य में सामाजिक जीवन के चित्रण की तो इजाजद देते है, परन्तुं हमारे सामाजिक

---

[1] साहित्य का उद्देश्य–प्रेमचंद–पृ0 15

जीवन से अभिन्न राजनीति को साहित्य से कतई दूर रखना चाहते है। प्रेमचंद राजनीति और साहित्य के रिश्ते को बखूबी समझते थे।"[1]

साहित्य की तरक्की पर समाज और राजनीति को निर्भर मानने वाले प्रेमचंद साहित्य–समाज और राजनीति को एक कडी के रूप में देखते थे वह इन तीनों को एक ही मार्ग को पथिक समझते थे। शिवरानी देबी के इस प्रश्न पर–"तो यह क्या जरूरी है कि तीनो को साथ लेकर चला जाए ?" प्रेमचंद उत्तर देते है–" इन तीनो का उद्वेश्य ही जो एक है। साहित्य इन तीनो चीजों की उत्पत्ति के लिए एक बीज का काम देता है। साहित्य और समाज तथा राजनीति का संबन्ध बिल्कुल अटल हैं। समाज आदमियो के समूह को ही तो कहते है। समाज में जो हानि–लाभ तथा सुख–दुख है, वह आदमियों पर ही होता है ना राजनीति में जो सुख–दुख होता है, वह भी आदमियो पर ही पड़ता है। साहित्य से लोगो को विकास मिलता है, साहित्य से आदमी की भावनाएँ अच्छी और बुरी बनती है। इन्ही भावनाओं को लेकर आदमी जीता है और इन सब तीनो चीजो की उत्पत्ति का कारण आदमी ही है।"[2]

प्रेमचंद साहित्य को राजनीति का पथ–प्रदर्शक उसके आगे चलने वाली सच्चाई मानते थे। भारतीय साहित्य परिषद के नागपुर अधिवेशन में प्रस्ताव पारित हुआ उसमें इस बात पर बल दिया गया कि–"देश के साहित्यकारो से हमारी यह आशा है कि वे साबित कर दिखाये कि साहित्य की जड़ जिन्दगी में और जिन्दगी की जड परिवर्तन में। जिन्दा और सच्चा साहित्य वही है जो समाज को बदलना चाहता है, ऊँची मंजिलों की तरफ ले जाता है और दुनियां को सबके रहने के योग्य बनाने की कामना करता है। हमें विश्वास है कि हमारे देश के साहित्यकार जीवन और साहित्य में अलगाव की खाई को काटकर, साहित्य को इन्कलाब का संदेशवाहक बनायेगें।"[3] इस प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करने वालों में जवाहर लाल नेहरू, आचार्य नरेन्द्रदेव, मौलवी अब्दुलहक, अख्तर हुसैन रायपुरी आदि गणमान्य व्यक्तियों में प्रेमचंद भी सम्मिलित थे। प्रेमचंद ने अपने कथा साहित्य में असंख्य सामाजिक एवं राजनीतिक स्थितियों में गतिशील

---

[1] प्रेमचंद के आयाम–ए अरबिन्दाक्षन–पृष्ठ–21।

[2] प्रेमचंद–घर में : शिवरानी देबी प्रेमचंद पृष्ठ–69–70।

[3] विशाल भारत–जुलाई 1936 में प्रकाशित।

आन्दोलित व्यक्तियों और दलो का द्वन्द्व चित्रित करके साहित्य की भूमिका को सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया से सम्बद्ध करते हुए समाज व्यक्ति एवं राजनीतिक चिन्तन की रूढ़ि तथा खड़ी–गली मान्यताओं पर खुलकर प्रहार किया। प्रेमचंद की साहित्य सृष्टि का केन्द्र बिन्दु मनुष्य तथा उसकी मनुष्यता है वही उनका मुख्य सरोकार है और वही समाज और राजनीति की भी धुरी है। इसीलिए वे साहित्य को समाज और राजनीति से वैचारिक स्तर पर सम्बद्ध मानते थे। वस्तुतः राजनीति मानव समाज की सबसे बडी वास्तविकता है, सबसे बडा सत्य है। अतः राजनीति से दूर रहकर कोई साहित्यकार अपनी कृति में समाज की वास्तविकता का यथार्थ–चित्रण नही कर सकता। यदि साहित्यकार राजनीति को साहित्य और कला के दायरे में रचनाशीलता के अभिन्न अंग के रूप में रचना की अपनी मांग और सर्तों के अनुसार लाता है तो उसका साहित्य धारदार और पैना तो होता ही है साथ ही साथ वह राजनीति के अपने असर को भी मनोवांछित रूप से जनमानस तक पहुंचा सकता है। एक निष्ठावान और यथार्थवादी रचनाकार राजनीति के चित्रणमात्र से सन्तुष्टि नही होता वह उस पर टिप्पणी भी करता है और राजनीतिक रूपी चक्रव्यूह में परत दर परत छिपे यथार्थ को सामने लाकर उसे जनता के हित में नियोजित करने के लिए तथा कथित राजनीतिको पर दबाव भी बना सकता है। प्रेमचंद के उपन्यास इस तथ्य के साक्षी है। ' गबन ' का पात्र देबीदीन खटिक देश के नेताओ के विषय जो विचार व्यक्त करता है वह सद्युगीन यथार्थ को खोलकर रख देता है। प्रेमचंद की रचना साहित्य और राजनीति के अंतः सम्बन्धों को उसके सही रूप में प्रस्तुत नही करती वरन् साहित्य में राजनीति के कलात्मक रूपांतरण का उदाहरण भी प्रस्तुत करती है।

राष्ट्रीय और राजनीतिक चेतना का उदयः—

ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत भारत की जनता चतुर्दिक शोषण से बेहाल थी। सरकारी सेवा में लगा अधिकारी वर्ग, सेना, पुलिस, कानून, अदालतें, जमींदार, महाजन इन सभी ने भारतीय जन–जीवन को घुन की तरह खोखला कर रखा था। औपनिवेशिक शासन के शोषण के जुए तले कसमसाती भारतीय जनता ने साम्राज्यवादी अत्याचारो के विरूद्व अपना प्रथम विद्रोह 1857 के आन्दोलन के रूप में दर्ज कराया। 1857 का यह विद्रोह कोई अप्रत्याशित घटना नही थी वरन् यह जनता के उस संघर्ष की चरम परिणति थी जिसका बीज 1757 में ब्रिटिश शासन के आरम्भ से ही पड़ गया थां यद्यपि अपनी कतिपय दुर्बलताओं के कारण यह विद्रोह सफल न हो सका तथापि भविष्य मे चलाए जाने वाले राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों के लिए यह प्रेरणा स्रोत बन गया।

19वीं शताब्दी, का भारतीय समाज अंग्रेजो की दासता से अभिशप्त था ही इसके अतिरिक्त समाज की रूढ़ परंपराओ तथा धार्मिक अंधविश्वास जनता के सामाजिक तथा आर्थिक शोषण का हथियार बने हुए थे। तरह–तरह के सामाजिक प्रतिबंध, धार्मिक कट्टरता, अंधविश्वास, सामाजिक असमानता तथा ऊँच–नीच की भावना ने समाज को टुकड़ो में बांट कर उसे जड़ी भूत कर रखा था। ऐसे पतनोन्मुख समाज की जनता में एक छोटी सी टुकडी उन चिन्तनशील प्राणियों की भी थी जिनका ह्दय अपने देशवासियों की दुर्दशा से बहुंत अधिक चिन्तित तथा व्यथित था अतः देश के इन चेतना सम्पन्न व्यक्तियों ने समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने के लिए सुधारवादी आंदोलनो का सूत्रपात किया। भारत में सामाजिक सुधार की इस परम्परा का प्रारम्भ राजा राममोहन राय से होता है तत्पश्चात् स्वामी दयादन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस् स्वामी विवेकानन्द, स्वामीरामतीर्थ, लोकमान्य तिलक, श्रीमती एनीबेसेन्ट, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, तथा महात्मागांधी जैसी महान विभूतियो ने समाज सुधार के निरन्तर प्रयास किए और देश के निराश–हताश जनता के ह्दय में जीवन के प्रति एक नयी आशा जगाई। इन सुधारवादी आन्दोलनो ने देश की राष्ट्रीय तथा राजनीतिक चेतना के विकास में सहायता प्रदान की क्योंकि–"इन सामाजिक–धार्मिक आंदोलनो के जरिए जो सांस्कृतिक वैचारिक संघर्ष चला, उसने राष्ट्रीय चेतना को जन्म देने और उसके विकास में बहुत महत्वपूर्ण योगदान किया क्योकि सुरूआती दौर में इसने जो बौद्विक और सांस्कृतिक जागरूकता पैदा की, उससे लोगो को भविष्य के प्रति नई दृष्टि मिली।"[1]

---

[1] भारत का स्वतंत्रता संघर्ष–बिपिन चन्द्र–पृ0 54।

1857 के बिद्रोह के तुरन्त बाद से भारत वासियों में राजनीति चेतना के अंकुर फूटने लगे थे। "1870 के दशक के अंत में और 1880 के दशक के शुरू मे भारतीय जनता राजनीतिक तौर पर काफी जागरूक हो चुकी थीं।........................ 1875 से 1885 के दौरान भारत में जो नई राजनीतिक चेतना पनपी, वह मुख्यतः युवा वर्ग की देन थी। ये युवा ज्यादा लड़ाकू और राष्ट्रवादी थे। इनमे से अधिक अधिसंख्य इन्ही 10 वर्षो के भीतर राजनीतिक में आए थें। ....1876 में बंगाल के युवा राष्ट्रवादियों ने सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और आनंद मोहन बोस के नेतृत्व में 'इंडियन एसोसिएशन ' का गठन किया। मद्रास के युवा नेताओ–एम0 वी0 राघव चेरियार, जी सुब्रहमण्यम अय्यर, पी0 आनंद चारलू आदि ने 1884 में ' मद्रास महाजन सभा ' का गठन किया। बम्बई में युवा राष्ट्रवादी बुद्धिजीवी नेता के0 टी0 तेलंग और फिरोज शाह मेंहता राजनीतिक मतभेदों के कारण पुराने नेताओ दादा भाई क्राम जी और दिनशा पेटिट से अलग हो गए और 1885 में ' बांबे प्रेसीडेंसी एसोसिएशन ' का गठन किया।.................इन वर्षों के दौरान देश में एक नई राजनीतिक चेतना अंगडाई लेने लगी थी। नए राजनीतिक जीवन की उत्पत्ति का संदेश मिलने लगा थां। " [1] इसप्रकार 19 वीं शताब्दी के दौर से आरम्भ होने वाली राष्ट्रीय व राजनीतिक जाग्रति की गति क्रमशः बढती हुई दिखाई देती है जिसकी प्रतिकिया में उपरोक्त राजनीतिक संगठनों का जन्म होता है। जिनके अध्ययन से भली–भाँति अनुमान लगाया जा सकता है कि भारतीय जन–मानस ब्रिटिश साम्राज्य के खूनी पंजो से मुक्ति प्राप्त करने के लिए किस प्रकार अपने विचारो को क्रियात्मक रूप देने का प्रयास कर रहा था। अंग्रेजी सरकार के हितों को दृष्टिगत रखते हुए लार्ड मैकाले ने भारतीयों के लिए जिस शैक्षिक पाठ्यक्रम का चयन किया था उसका एक मात्र उद्वेश्य यह था कि इस शिक्षा के द्वारा भारतीयों के एक ऐसे वर्ग का निर्माण किया जाए जो सरकारी कार्यो को सुचारू रूप से चलाने में सहायक सिद्व हो सके, साथ ही साथ उनकी संस्कृति की जडें भारत में स्वतन्त्रता पूर्वक दृढ़ हो सकें। अंग्रेज सरकार की इस कूटिनीति से ब्रिटिश साम्राज्य के तो निश्चित रूप से तो लाभ पहुँचा ही भारतीयो के हित में भी इसके कुछ सकारात्मक परिणाम निकले इस शिक्षा के फलस्वरूप भारत में बुद्धिजीवियों का एक ऐसा वर्ग उभरकार सामने आया जिसने जनता को जाग्रति का संदेश दिया। नवीन शिक्षा की ज्योति ने भारतवासियों को अपने अधिकारो के प्रति जागरूक करके उनके लिए संघर्ष करना सिखाया। " शिक्षित

---

[1] भारत का स्वतंत्रता संघर्ष–बिपिन चन्द्र–पृ0 38–39।

भारतीयो का पाश्चात्य शिक्षा से जीवन क्षितिज विस्तृत हुआ और वे उस प्राप्त पाश्चात्य साहित्यिक ज्ञान को भारतीय भाषाओं के माध्यम से भारत में प्रचारित करने लगे। क्योंकि सन् 1858 के बाद भारत में छापे खानो की संख्या तेजी से बढ़ी। सन् 1860 तक समाचारपत्रों की संख्या 644 हो गई थी। भारत मे जो राष्ट्रीय आन्दोलन हुआ उसके पीछे प्रेस और पाश्चात्य शिक्षा का विशेष हाथ था। जन–जागरण को जगाने में समाचार पत्रों की भूमिका बडी ही महत्वपूर्ण थी। इनके माध्यम से ' प्रतिक्रियावादी शासन की गतिविधि, विचार स्वातंत्र्य पर अंकुश, नयायाधिकरण की प्रथा का अन्त (Trial of Jury) भयंकर प्लेग, स्थानीय शासन के अत्याचार, जाति, वर्ण, धर्म आदि अनेक अत्याचारो की मार्मिक कहानी जनता के सामने आने लगी।''[1]

जनता को राष्ट्रीय मुद्दों तथा सवालो से जोडने के लिए '' उस समय सबसे पहला राजनीतिक कार्यक्रम यही था कि जनता का राजनीतिकरण किया जाए, राजनीतिक चेतना का प्रचार–प्रसार किया जाए, अपने अधिकारो के प्रति लोगो को शिक्षित किया जाए और राष्ट्रीय विचार धारा का प्रसार किया जाए। चूँकि उस समय भारतीय जनता के पास न कोई संगठन था और न कोई संगठित राजनीतिक कार्यक्रम सामने था, इसीलिए प्रेस ही उस समय एक ऐसा हथियार था, जिसके जरिए जनता को राजनीतिक रूप से शिक्षित–प्रशिक्षित किया जा सकता था और एक राष्ट्रीय विचार धारा का बिरवा रोपा जा सकता था।'[2] उस समय समाचार पत्र लोगो को केवल राजनीतिक स्तर पर जागरूक नही कर रहे थे अपितु उन्हे राजनीतिक भागीदारी की शिक्षा भी दे रहे थें। राष्ट्रीय तथा राजनीतिक चेतना के संवाहक इन समाचार पत्रो में जी0 सुब्रहमण्यम अय्यर के संपादन में ' द हिंदू ' और ' स्वदेशमित्रम ' बाल गंगाधर तिलक के संपादन में ' केसरी और मराठा ' सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के संपादन में ' बंगाली ' शिशिर कुमार और मोती लाल घोष के संपादन में ' अमृत बाजार पत्रिका, ' गोपालकृष्ण गोखले के संपादन में ' सुधारक, एन0 एन0 सेन के संपादन में ' 'इंडियन मिरर,' 'दादाभाई नौरोजी के संपादन में 'हिंदुस्तानी' और 'एडवोकेट आफ इंडिया और पंजाब में ' द ट्रिल्यून ' व ' अखबार–ए–आम' तथा बंगाल में इंद्रप्रकाश,' बंग निवासी और ' साधारणी ' आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जो तद्युगीन

---

[1] हिन्दी उपन्यास : स्वातंत्रय संघर्ष के विविध आयाम–डॉ0 डी0 डी0 तिवारी–पृ0 20–21।

[2] भारत का स्वतंत्रता संघर्ष–बिपिन चंद्र–पृ0 64।

भारतीय राजनीति पर पूरी तरह से छाप रहे–'' इन अखबारो में आमतौर पर सभी बड़े राजनीतिक मुद्दों, सवालो और विवादो को उठाया जाता था। इन अखबारो ने सशक्त विपक्ष की भूमिका भी निभाई। आम तौर पर सभी सरकारी नीतियों और कानूनों का वे जमकर विरोध करते। उस समय भारतीय प्रेस का एक ही उद्देश्य था–विरोध, विरोध और विरोध लेकिन यह विरोध छिछले स्तर का नही होता था, बल्कि अखबार सभी मुद्दों को गहराई और बारीकी से और बड़ी जिम्मेदारी के साथ विश्लेषित करते थे।''[1] राजनीतिक चेतना फ़ैलाने वाले, लोगो में राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार करने वाले, ब्रिटिश सरकार के शोषण तंत्र और अत्याचारो की पोल खोलने वाले इन समाचार पत्रों पर ब्रिटिश सरकार का दमन चक्र चलना स्वभाविक था जिसके अन्तर्गत 1878 ई0 वर्नाकुलर प्रेस ऐक्ट लागू करके भाषाई अखबारो पर अंकुश लगा दिया गया। इस एक्ट के द्वारा यह प्रावधान किया गया कि किसी अखबार में यदि राजद्रोहात्मक समाग्री प्रकाशित की गई अथवा सरकारी आज्ञा का उल्लंघन किया गया तो उस समाचार पत्र तथा उसके प्रेस को सरकार जब्त कर लेगी–'' भारतीय राष्ट्रवादियों ने इन कानून का जमकर विरोध किया। इस मुद्दे को लेकर कलकत्ता के टाउनहाल में एक विशाल सार्वजनिक सभा हुई। किसी सार्वजनिक मुद्दे को लेकर यह पहला बडा विरोध–प्रदर्शन था। इस कानून के खिलाफ भारतीय प्रेस और दूसरे अन्य संगठनो ने भी संघर्ष छेड़ा, फलस्वरूप 1881 में लार्ड रिपन ने यह कानून वापस ले लिया।''[2]

इस प्रकार भारत की जन–चेतना धीरे–धीरे उन्नति के मंजिले तय करती हुई आगे बढ रही थी। नई शिक्षा और भारत के क्रांतिकारी जन–मानस ने राष्ट्रीयता की नवीन कल्पना का निर्माण कर लिया था और विदेशी सत्ता के अधिकार आर्थिक तथा सांस्कृतिक शोषण की अनुभूति आम होने लगी थी। 1883 में इंडियन एसोसिएशन कलकत्ता ने अखिल भारतीय राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया। जिसकी अध्यक्षता आनन्द मोहन बोस ने की। उन्होने अपने अध्यक्षीय भाषण में इस सम्मेलन को एक राष्ट्रीय संसद की संज्ञा दी। यह समस्त घटनाक्रम इस बात का द्योतक है कि देश में किसी अखिल भारतीय संगठन की आवश्यकता कितनी तीव्रता से अनुभव की जा रही थी। क्योकि भारतीय राजनीति में सक्रिय भूमिका निभाने वाला बुद्धिजीवी वर्ग संकीर्ण हितों की अपेक्षा राष्ट्रीय

---

[1] भारत का स्वतंत्रता संघर्ष–बिपिन चंद्र–पृ0 65–66।

[2] भारत का स्वतंत्रता संघर्ष–विपिन चन्द्र–पृष्ठ 68।

हितों के लिए राष्ट्रीय स्तर पर संघर्ष करने को आतुर थे उसके इस प्रयास को दिसम्बर 1885 ई0 में कांग्रेस की स्थापना के रूप में सफलता मिली। जिसकी स्थापना करने में 72 राजनीतिक कार्य कर्ताओ के साथ एक सेवा निवृत्त अंग्रेज अधिकारी ए0 ओ0 ह्यूम ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।" कांग्रेस की स्थापना, 1885 से पहले के कुछ वर्षो से देश में चल रहे राजनीतिक कार्यकलाप और गतिविधियो की स्वाभाविक परिणति थी। उस समय तक देश की राजनीतिक परिणति ऐसी बन गई थी कि यह जरूरी हो गया था कि कुछ बुनियादी काम और लक्ष्य तय किए जाएं और उनके लिए संघर्ष शुरू किया जाए। इन लक्ष्यों को हासिल करने के लिए यह जरूरी था कि देश के राजनीतिक कार्यकर्ता मंच पर आएं। अखिल भारतीय आधार पर गठित कोई एक संगठन ही ऐसा मंच प्रदान कर सकता था। ये सभी लक्ष्य एक–दूसरे से जुड़े थे और एक–दूसरे पर आधारित थे और इन्हे तभी हासिल किया जा सकता था, जब राष्ट्रीय स्तर पर कोई कोशिश शुरू की जाती।"[1]

ब्रिटिश प्रशासक और उनके हितैषियों की यह धारणा थी कि भारत स्वाधीन नही हो सकता क्योंकि वह एक राष्ट्र न होकर भिन्न–भिन्न धर्मो तथा असंख्य जातियों का समूह है अतः देश की आजादी के लिए राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओ के सम्मुख सबसे बडा लक्ष्य यह था कि भारतीय जनता को एक सूत्र मे बांधकर भारत को एक राष्ट्र के रूप में कैसे जोड़ा जाए। वे जानते थे कि इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सबसे बडी आवश्यकता जनता को जागरूक करने की है उनमें राजनीतिक चेतना पैदा करने की है। इस दिशा में कांग्रेसी नेताओं का सबसे पहला कदम था जन–साधारण को राजनीतिक दृष्टि से शिक्षित बनाना तथा उन्हें संगठित करके एक स्पष्ट जनमत तैयार करना क्योंकि संगठित जनशक्ति किसी भी देश के राजनीतिक आन्दोलन के सफलता का आधार है अतः राष्ट्रवादी नेताओ का सबसे बडा लक्ष्य यह था कि जनता में राजनीतिक चेतना पैदा की जाए और उसे राजनीतिक रूप से शिक्षित की जाएं। " राजनीतिक चेतना जगाने और जनमत तैयार करने का काम सबसे पहले शिक्षित तबके से शुरू किया गया, उसके वाद बाकी तबको में। इसका तात्कालिक उद्वेश्य, जनता को लगातार राजनीतिक गतिविधियों में शरीक करना था। वे जनता की तात्कालिक कठिनाइयों को दूर करने के लिए किसी संघर्ष में फॅसना नही चाहते थे। अपने समय की सबसे सशक्त सत्ता के खिलाफ एक संगठित राजनीतिक

---

[1] भारत का स्वतंत्रता संघर्ष–बिपिन चन्द्र–पृ0 40।

विरोध को जन्म देने के लिए अपने अंदर आत्मविश्वास और दृढ़ता पैदा करनी थी।"[1]

राष्ट्रीय मुक्ति के लिए अत्यन्त कठोर तथा कठिन पड़ाओं को अपने फौलादी इरादों के बल पर तय करने वाला राष्ट्रीय स्वाधीनता का यह आन्दोलन सन् 1907 ई0 में दो दलो में विभाजित हो गया। एक दल को तो नरम तथा दूसरे को गरम दल की संज्ञा दी गई। दोनों की कार्य प्रणाली भिन्न थी। नरम दल के नेता शान्ति तथा सद्भावना एवं समझौते से अपनी मांगे सरकार से, गरम दल के सबसे बडे नेता पथ प्रर्दशक बालगंगाधर तिलक थे। उनके अतिरिक्त लाला राजपतराय, अरविन्द घोष, विपिन चन्द्र पाल, इत्यादि थें जो सरकार से निर्णायक युद्ध करने पर तत्तपर थे। नरम दली नेता गोखले का प्रयास वर्तमान संविधान में सुधार तक ही सीमित था जबकि तिलक उसका पुनः निर्माण करना चाहते थे। गोखले जैसे गरम दली नेताओ का ध्यान समाज सुधार पर था। जबकि गरम दल नेता तिलक के लिए सबसे अहम मुद्दा स्वराज्य प्राप्त था क्योंकि वह जानते थे कि अंग्रेज शासक समाज सुधारक की बात करके स्वराज्य प्राप्ति के प्रश्न को दबाना चाहते है तिलक के नज़दीक सबसे महत्वपूर्ण था राजनीतिक दासता से मुक्ति पाना स्वाराज्य प्राप्त करना। स्वाधीनता की प्रखर होती आवाज को वह समाज सुधारक के शोर तले दबाना नही चाहते थे अंग्रेज शासको की इस कूटिनीति को तिलक जान चुके थे गोखले और तिलक के मध्य संघर्ष का मुख्य कारण यही था। तिलक ने भारतीय राजनीति को एक नया स्वर देते हुए जनता को जाग्रत तथा संगठित करने के उद्वेश्य से गणपति उत्सव तथा शिवाजी उत्सव को सार्वजनिक अनुष्ठान को रूप देकर उनका रिस्ता राष्ट्रीय आन्दोलन से जोड़ दिया। देश में जैसे-जैसे राष्ट्रीय जाग्रति और राष्ट्र-प्रेम की भावना बढ़ती गयी वैसे-वैसे ब्रिटिश सरकार की दमन कारी नीतियां भी कठोर होती गयी। 1902 से 1905 के मध्य बंगाल में बहुत सी गुप्त समितियों का गठन हुआ राष्ट्रीय चेतना के इस उफान से भयभीत होकर लार्ड कर्जन ने बंगाल को दो टुकडो में विभक्त करने का प्रस्ताव रखा। जिसने भारतीयो के मन में दबी हुई आक्रोश एवं विद्रोह के चिनगारी को प्रचण्ड़ ज्वाला का रूप दे दिया। बंगाल विभाजन की योजना भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन पर एक सुनियोजित आक्रमण था अतः राजनीतिक जागरण का सबसे बडा प्रदर्शन बंग-भंग के निर्णय के प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ। जिसने स्वदेशी आन्दोलन को जन्म दिया। " इस आन्दोलन से भारतीय आन्दोलन

---

[1] भारत का स्वतंत्रता संघर्ष-बिपिन चन्द्र-पृ0 42।

को बहुत बल मिला और देश में एक सशक्त आन्दोलन छिड़ गया। बंगाल व देश के अन्य हिस्सो के ग्रामीण व शहरी छात्र, युवक, महिलायें पहली बार सक्रिय राजनीति में आयें।"[1] इस आन्दोलन में युवा वर्ग और विद्यार्थी विशेष रूप से सम्मिलित थे जिन्होने ने अपने प्राण हथेली पर लेकर '(बंग–भंग') आन्दोलन में भाग लिया बंगाल में विदेशी वस्तुएँ के बहिष्कार और स्वदेशी की सफलता से सबसे अधिक लाभ उन स्थानीय शिल्पियों को पहुँचा जो एक लम्बे समय से बेकारी के कारण भूख और गरीबी से जूझ रहे थे। अतः यह वर्ग भी ब्रिटिश शासन के विरूद्ध होने वाले प्रदर्शनो में पूरे उत्साह के साथ सम्मिलित हो गया सरकार ने बंग–भंग आन्दोलन को बर्बरता पूर्वक कुचलने का हर सम्भव प्रयास किया परन्तु इसने और तीव्रता पकडं ली और भारत के जन–जन तक राष्ट्रीय तथा राजनीतिक चेतना के प्रकाश को पहुंचाया। तद्‌युगीन भारतीय जनमानस को रूस जैसे शक्ति शाली देश पर जापान जैसे छोटे देश की विजय जैसी घटना ने बहुत प्रभावित किया। " जापानी विजय के वीरतापूर्ण समाचार से सम्पूर्ण भारत विद्युत प्रकाश की भांति जगमगा उठा। एक नवीन प्रेरणा पराधीन भारतीय जनो को मिलने लगी कि यदि जापान जैसा छोटा विशाल बलशाली रूस को पराजय के मुख में ढ़केल सकता है तो भारत भी अपनी पराधीनता की श्रृंखलाओ को काटकर मुक्ति पा सकता हैं। जापान–विजय भारत के गांव–गांव में चर्चा का विषय बन गयी। "[2]

प्रथम विश्व युद्ध (1914) के परिणाम स्वरूप उत्पन्न आर्थिक कठिनाइयों ने जन आक्रोश और भडका दिया। बढी हुई मंहगाई ने गांवो तथा शहरो में रहने वाले श्रमिको शिल्पियों, मध्यवर्ग तथा निम्न मध्यवर्ग के लोगों का जीवन दूभर कर रखा था। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक आपदाओ तथा सूखा, महामारी तथा प्लेग इत्यादि ने विशेष कर ग्रामीणों के जीवन को संकट में डाल रखा था। इस प्रकार क्या शहर क्या नगर क्या गांव सर्वत्र ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध लोगो के ह्दय में असन्तोष की ज्वाला विद्यमान थी क्योंकि महायुद्ध के समाप्ति पर भारतीय जनता ब्रिटिश सरकार से यह अपेक्षा कर रही थी कि सरकार उनके हित में कुछ करेगी। परन्तु हुआ इसके विपरीत जनता को रौलेट एक्ट, जँलिया वाला बाग हत्याकांड और पंजाब मार्शल लॉ जैसे नृशंष्य, कृत्यों को झेलना पडा। अब तक भारतीयों को पूर्णविश्वास हो चुका था कि अंग्रेजो से उन्हे दमन–दलों और

[1] भारत का स्वतंत्रता संघर्ष--विपिन चन्द्र पृ0 84।

[2] हिन्दी उपन्यास : स्वातंत्रय संघर्ष के विविध आयाम–डी0 डी0 तिवारी–पृ0 38।

अत्याचार के सिवाय कुछ नही मिलेगा। " ब्रिटिश सरकार के प्रति पैदा हुआ यह आत्मविश्वास धीरे–धीरे विदेशी सरकार के प्रति राजनीतिक विरोध की शक्ल लेने लगा था। आर्थिक आन्दोलन के दौरान राष्ट्रवादी नेताओं ने हर महत्वपूर्ण आर्थिक मुद्दे को देश की राजनीतिक गुलामी के सवाल से जोड़ा। इस तरह एक–एक कर सभी मुद्दों को उठाते हुए उन्होने भारतीयो के दिल–दिमाक में यह बात बैठा दी कि चूँकि ब्रिटिश सरकार का प्रशासन ' महज शोषण का हथियार हो,' इसीलिए भारतीय हितो के अनुकूल नीतियां और कार्यक्रम तभी मुमकिन है, जब राजनीतिक सत्ता और प्रशासन पूरी तरह भारतीयो के नियंत्रण में ही हो।"[1] 1914 ई0 में जेल से रिहा होने के बाद लोकमान्य तिलक ने राष्ट्रीय जागरण का कार्य फिर शुरू कर दिया। अप्रैल 1916 ई0 में तिलक ने बेल गांव में हुए प्रान्तीय सम्मेलन में, ' होमरूल लीग' के गठन की घोषणा कर दी। उन्होने पूरे महाराष्ट्र का दौरा किया तथा होमरूल आन्दोलन का खूब प्रचार करते हुए जनता को उसके उद्द्वेश्यो के विषय मे बताया। उन्होने "श्री–मती एनीबेसेन्ट के सहयोग से होमरूल आन्दोलन का श्री गणेश किया......................होमरूल आन्दोलन का प्रचार भारत के कोने–कोने में हुआ और लन्दन में इसकी शाखा स्थापित की गई। इस आन्दोलन ने राजनीतिक नेताओ को एकता के लिए प्रेरित किया क्योंकि एकता के अभाव में स्वशासन की मांग करना बहरे के आगे ढोल पीटना मात्र था। इसी एकता की आवश्यकता में ' लखनऊ ' समझौते को जन्म दिया। फलतः कांग्रेस और ' मुस्लिम लीग ' मे पुनः गठबन्धन हो गया।"[2]

'स्वाराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।' लोकमान्य तिलक की इस सिंह गर्जना ने राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन को एक नये पथ की ओर मोड दिया। " होमरूल आन्दोलन ने ....भावी राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए जुझारू योद्धा तैयार किये। महात्मा गांधी के नेतृत्व में यही जुझारू आन्दोलनकारी आजादी की मशाल लेकर आगे बढे। होमरूल आन्दोलन ने उत्तर–प्रदेश, गुजराज, सिंध, मद्रास, मध्यप्रान्त तथा बेरार जैसे अनेक नये क्षेत्रो को राष्ट्रीय आन्दोलन में शामिल किया। "[3]

---

[1] भारत का स्वतंत्रता संग्राम–विपिन चन्द्र–पृ0 62।

[2] हिन्दी उपन्यास स्वतंत्रता संघर्ष के विविध आयाम । डॉ0 डी0 डी0 तिवारी पृ0 41।

[3] भारत का स्वतंत्रता संघर्ष–विपिन चन्द्र पृ0 122।

1917 ई0 की रूसी क्रान्ति ने समुचित विश्व के साथ–साथ भारत को भी प्रभावित किया। रूसी सर्वहारा वर्ग के क्रान्ति से मजदूरों के काया पलट के समाचार ने भारत के मज़दूर वर्ग मे भी चेतना का संचार किया। अब वह शोषण का अर्थ समझने लग गया था तथा उसे अपने शोषण का ज्ञान होने लगा। यह वह समय था ज़ब देश में बड़ी तेजी से राष्ट्रीय जागृति पैदा हो रही थीं। मार्क्सवादी विचार धारा जोर पकड़ने लगी थी। भारत मे भी बोल्शेबिज्म् क्रान्ति के परिणाम स्वरूप बुद्धिजीवियों का एक नवीन–वर्ग उभर कर सामने आ रहा था। भारत का मजदूर वर्ग समाजवाद को वैचारिक क्रान्ति को अस्त के रूप में अपना रहा था। रूसी क्रान्ति ने भारत को साम्यवादी विचारों से परिचित ही नही कराया अपितु उसे व्यवहार में लाने की प्रेरणा भी दी। अतः कम्युनिष्ट पार्टी जिसकी स्थापना कुछ ही समय पहले हुई थी उसने हैदराबाद कांग्रेस के अवसर पर एक घोषणा पत्र प्रकाशित किया जिसमें कहा गया था–' क्रान्ति से भारत की जड़े हिल रही है और अगर कांग्रेस उसका नेतृत्व करना चाहती है तो उसे केवल प्रदर्शनों तथा क्रतिम आवेश और उत्साह पर भरोसा नही करना चाहिए उसे चाहिए कि मज़दूर–सभाओ की मांगों को तुरन्त अपनी मांग बना ले उसे चाहिए कि किसान सभाओं का जो कार्यक्रम है उसे अपना कार्यक्रम बना ले और बहुत जल्द उसका समय आयेगा कि कोई भी बाधा कांग्रेस का मार्ग नही रोक सकेगी। उसके साथ प्रजा की अमोध शक्ति होगी जो पूरी–पूरी सजगता से अपने हितों के लिए लड़ रहे होंगे। "[1]

18 मार्च 1919 ई0 को ब्रिटिश न्यायाधीश रौलट ने आतंकवादी गतिविधियों के दमन के बहाने भारतीय स्वतन्त्र–संघर्ष को कुचलने के लिए क्रान्तिकारियों को गिरफ्तार करने के लिए तथा कैद करने के लिए प्रान्तीय गर्वनरों को वाइसराय को विस्तृत अधिकार देने की अनुशंसा कर दी तो गांधी जी ने इसके विरूद्ध देश व्यापि आन्दोलन का आह्वान किया। गांधी जी ने समस्त भारतीयों से अनुरोध किया कि वह हड़ताल करे जिसकी प्रतिक्रिया गांधी जी के अनुमान के अनुरूप हुई। अतएव गिरफ्तारियों में तीव्रता उत्पन्न हुई। 10 अप्रैल को जब सत्यपाल और डा0 किचलू को गिरफ्तार किया गया तो उसके विरोध में 13 अप्रैल को ' जँलिया वाला बाग ' में भारतीयों ने एक विशाल सभा की जहाँ लाखो की संख्या में लोग उपस्थित थे। जनरल डायर ने निहत्थे भारतीयो पर गोली के सोलह सौ राउन्ड

---

[1] इंण्डिया टूडे–रजनीपाम दत्त, पृ0 514।

चलाये। जिससे हजारो लोगो की जाने गयी । सारे देश में प्रतिरोध की ज्वाला भड़क उठी। सदियो से तिरस्कार तथा अपमान सहन करने वाले भारतीयों को झकझोर कर जगाने में इस कानून की महत्वपूर्ण भूमिका प्रतिरोध के रूप में रही हैं। ब्रिटिश शासन के राजनीतिक, धार्मिक, तथा जातीय बहिष्कार के लिये महात्मा गांधी ने पहली अगस्त 1920 को असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया। असहयोग का अलख जगाते हुए गांधी जी सारे देश में घूम रहे थे जिससे प्रभावित हो लोग सरकारी नौकरी छोड़ रहे थे, वकालत का त्याग कर रहे थे, नये–नये राष्ट्रीय पाठशालाएं स्थापित हो रही थी विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करते हुए जगह–जगह विदेशी कपड़ो की होली जलाई जा रही थी शराब की दुकानों पर धरने दिये जा रहे थे। जागृति को इस लहर से गांव भी अछूते नही थे। "इसी आन्दोलन ने पहली बार देश की जनता को इकट्ठा किया। अब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पर कोई यह आरोप नही लगा सकता था कि वह कुछ मुट्ठी भर लोगों का प्रतिनिधित्व करती है अब इसके साथ किसान, मजदूर, दस्तकार, व्यापारी, व्यवसायिक, कर्मचारी, पुरूष, महिलायें, बच्चे, बूढे सभी लोग थे। पूरे देश में कही कोई ऐसी जगह नही थी, जहां इस आन्दोलन का असर न पडा हो। बात दीगर है कि कहीं असर तेज था, कहीं कम।" [1] यद्यपि 1921 ई0 से 1926 ई0 तक कांग्रेस की राजनीतिक दशा उदासीनता पूर्ण रही तथापि देश में प्रजा का उत्साह तथा आक्रोश दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था। एक ओर अहिंसात्मक प्रदर्शन थे तो दूसरी ओर विद्रोहात्मक कार्यवाहियां अपने उत्कर्ष में थी। ब्रिटिश सरकार जनता के बढ़ते हुए उत्साह एवं आक्रोश से परेशान थी। राष्ट्रीय जन–जागरण को कुचलने में अपने को असमर्थ पाकर राजनीतिक असंतोष को शान्त करने के लिए साइमन कमीशन का गठ़न किया गया। जिसमें जनता की आत्मनिर्णय के मांग का कोई उल्लेख न था और न ही इस कमीशन में कोई भारतीय सम्मिलित था। अतः भारतीय जनता का उद्वेलित होना स्वाभाविक था इसके विरूद्ध समूचे देश में विरोध प्रदर्शन करते हुए साइमन वापस जाओ के नारे लगाये गये। जहां–जहां कमीशन गया वहां–वहां उसका काले झंडो से स्वागत हुआ। भारत की सभी राजनीतिक पार्टियो ने कमीशन का बहिष्कार जुलूस और हडतालो [2] द्वारा

1–भारत का स्वतंत्रता संघर्ष–विपिन चन्द्र पृ0 143।

[2] प्रोसीडिंग्ज : भारत सरकार ग्रह–विभाग, राजनीतिक गोपनीय पत्रावली संख्या 130/1929।

किया। ब्रिटिश सरकार के विरोध की यह उर्जा मजदूरों तथा किसानों में उत्पन्न हो रही थी जिसके परिणाम स्वरूप मजदूरों और किसानों की सभायें संगठित होकर अपने अधिकारों एवं माँगों के लिए संघर्ष कर रही थी। 1926 और 1927 ई0 में भारत में जगह–जगह ट्रेड यूनियने बनने लगी। साइमन कमीशन के विरूद्ध मज़दूर स्त्रियों ने भी प्रदर्शन किये। देश मे हड़तालो की संख्या बहुत बढ़ गयी।

इस प्रकार भारत के राष्ट्रवादी नेताओं तथा महान राष्ट्रभक्तों ने ब्रिटिश सरकार के निष्ठुरता को उजागर करने के लिए लगभग प्रत्येक सरकारी नीति तथा प्रस्ताव की आलोचना एवं विरोध करने तथा बुनियादी आर्थिक मुद्दों विशेषकर वित्त से सम्बन्धित सवालों को उठाकर अपने शाहस तथा तर्कक्षमता एवं निर्भीक आलोच्नना के द्वारा उन्होनें ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध एक ऐसा अभियान चलाया जिसके माध्यम से विदेशी सत्ता को समाप्त करने के लिए देश वासियों के ह्दय में उसके प्रति विरोध की भावना उत्पन्न करके उन्हे राष्ट्रीय तथा राजनीतिक तौर से जागरूक बनाया। देश की स्वाधीनता के लिए इन नेताओं तथा राष्ट्रभक्तों ने जो प्रयत्न किये उसने विदेशी सत्ता को दिखा दिया कि भारत की वह जनता जिसे वे मूर्ख, असहाय तथा निर्बल समझते है वह भी राष्ट्रवादी राजनीति की वाहक हो सकती है। हमारे देश के महान जनता अपने त्याग और बलिदान के द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि देश की स्वतंत्रता की जितनी चिन्ता पढ़े लिखे तथा बुद्धि जीवी वर्ग को है उतनी ही उन्हें भी है। राष्ट्रीय आन्दोलनों ने देश के हर नागरिक को आज़ादी के लिए लड़ना सिखाया इन आन्दोलनों की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि इन्होंने जनता को आधुनिक राजनीति से परिचित कराया उनके भीतर आज़ादी की ललक पैदा की।

महायुद्ध और भारतीय राजनीतिक चेतना–

सन् 1914 ई0 में जर्मनी के साथ अंग्रेजो का जो युद्ध आरम्भ हुआ वह विश्व इतिहास में प्रथम महासमर के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस महायुद्ध में भाग लेने वाले मित्र राष्ट्रों ने अपना उद्देश्य व्यक्त करते हुए यह दावा किया था कि वे संसार में स्वतन्त्रता और स्वशासन के अधिकार के अक्षुण्य बनाए रखने के लिए युद्ध कर रहे थे। [1] इस युद्ध के कारणों पर प्रकाश डालते हुए मन्मथ नाथ गुप्त लिखते हैं " योरोप में लड़ाई के बादल बहुत दिनो से छा रहे थे। बात यह है कि यद्यपि जर्मन पूंजीवाद कार्य क्षेत्र में देर से उतरा था पर उन्नीसवीं सदी के अन्त तक वह सबसे आगे बढ़े हुए ब्रिटिश पूंजीवाद के साथ एक कतार में आ चुका था, और बीसवीं सदी के प्रारम्भ मे वह यंत्र निर्माण आदि जो सबसे उन्नत उद्योग धन्धें है, उनमें उसने ब्रिटिश पूँजीवाद को हरा दिया था। अब तो वह अपने में इतनी शक्ति का अनुभव कर रहा था कि उसने सीधा–सीधा यह मांग रखना शुरू किया कि यदि दूसरो के पास उपनिवेश है, तो उसके पास भी उपनिवेश होने चाहिये। साथ ही वह नौ सेना तथा रणतरियों के क्षेत्र में बढने लगां। यह तना–तनी बढ़ती गई, और पहली बार 1905 में फिर 1911 में लड़ाई बच गई, अन्त में जुलाई 1914 में यह लड़ाई छिड़ ही गई। आस्ट्रिया हंगरी के युवराज फर्डिनेन्ड का सेराजेवों में मारा जाना तो एक उपलक्ष्य मात्र था। असली कारण बहुत पुराने थे। " [2]

भारत के राष्ट्रवादी नेताओ ने इस उम्मीद पर युद्ध में ब्रिटिश सरकार को समर्थन देने का फैसला किया था कि युद्ध में सहयोग के बदले ब्रिटेन भारत वासियों के लिए कुछ आर्थिक तथा राजनीतिक रियायतें प्रदान करेगा जिससे कि भारत स्वशासन के पथ पर तेजी से अग्रसर हो सकेगा साथ ही उन्हें यह भी आशा थी कि ब्रिटेन भारत में भी उस लोकतांत्रिक प्रणाली को लागू करेगा जिसकी रक्षा का दावा करते हुए वह स्वयं तथा उसके सहयोगी मित्र राष्ट्र युद्ध में भाग लेने की बात कर रहे थे। कैसर की सेना जब अंग्रेजों पर भारी पड़ने लगी तो हिंदुस्तान से लार्ड हार्डिंग ने भारतीय सेना को युद्ध के लिए फ्लान्डर्स–रणक्षेत्र

---

[1] We Fight for the liberty the self-government and the unclictated development of all peaples. No people must be forced under sovereignty under which if does not wish to live.

-Declaration of American President.
Woodro Wilson.

[2] राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास मन्यशनाथ गुप्त -पृ0 281।

में पहुंचा दिया। कांग्रेस ने भी अपने प्रस्तावों के द्वारा सरकार को सहयोग देने का आश्वासन दिया। युद्ध की समाप्ति पर कांग्रेस के दिल्ली–अधिवेशन में ब्रिटिश सम्राट को बधाई–संदेश भी भेजा गया। उन दिनों कांग्रेस पर ब्रिटिश सरकार की विशेष कृपा थी। लाला लाजपतराय, मिस्टर जिन्ना, और श्री सत्येन्द्र प्रसाद सिन्हा सरीखे कांग्रेसी नेताओ ने एक पत्र लिखकर भारत मंत्री को यह बिदित कराया था कि भारत के देशी नरेश और जनता ब्रिटिश सरकार को सहायता देने के लिए कृत संकल्प है। [1] इस समय गांधी जी ने भी अंग्रेज सरकार को पूर्ण समर्थन दिया। लेकिन देश की स्वाधीनता का प्रश्न इन नेताओ के मन–मस्तिष्क में पूर्ववत गूंज रहा था।

कांग्रेस नेताओ ने यह भी मांग की कि 25 अगस्त सन् 1911 को ब्रिटिश सरकार ने भारत में जिस प्रादेशिक स्वतंत्रता को लागू करने का जो वादा किया था उसे तत्काल निभाए। भारत की जनता इस युद्ध को लेकर इतनी उत्साहित नही थी तो इसलिए क्योंकि कहीं न कहीं उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि अंग्रेज सरकार की विपत्तियों में भारत की मुक्ति का संकेत निहित है। इस विषय में जवाहर लाल नेहरू अपनी आत्मकथा में लिखते है–" वफ़ादारी की मुखर अभिव्यक्तियों के बावजूद ब्रिटिश उद्वेश्यों के प्रति सहानुभूति कम ही थी। जब जर्मनी की जीत होती तो इससे नरमपंथी और उग्र दोनों तरह के लोगो को संतोष होता। इसका कारण जर्मनी से प्रेम नही था, बल्कि अपने शासको का पराभव देखने की इच्छा थी तिलक जो कि 1914 में छः वर्षो के कारावास से मुक्त होकर वापस आए थे उन्हीं की प्रेरणा से देशवासी अंग्रेजों की स्थिति का लाभ उठाना चाहते थें। केवल गांधी जी थे जिन्होने अंग्रेजो के विपत्ति का लाभ उठाना नही समझा वह बिना किसी शर्त के युद्ध के समय ब्रिटेन का समर्थन कर रहे थे।

युद्ध के दौरान अंग्रेजो के सम्मुख एक और कठिनाई खडी हो गई वह यह कि मुसलमानो का उपयोग वे अब तक लोकतंत्र की मांग का विरोध करने के लिए करते थे वे ही, अब सरकार का विरोध कर रहे थे। क्योंकि प्रथम विश्वयुद्ध में मुसलमानों का सहयाग प्राप्त करने के लिए अंग्रेजों ने तुर्की के प्रति उदार

---

[1] The Princes and the people of India will readily and wilingly cooperate to the best of their ability and afford apportunities of seeuring that end by placing the resources of their country at this maijesty's disposal for a speady victory for the empire.

India Today: Rajni Palm Dutt P. 275

रवैया अपनाने का वादा किया था जिससे वे बाद में फिर गए। उनके जो नेता टर्की के प्रति खुलकर सहानुभूति व्यक्त कर रहे थे उन्हे कारागार में डाल दिया गया। मौलाना अबुलकलाम आजाद, मौलाना मोहम्मदअली को बिना मुकद्मा चलाए नजर बन्द कर दिया गया। मुस्लिमलीग अंग्रेजों के इशारों पर नाचने से इंकार कर दिया वह कांग्रेस के साथ मिलकर राजनीतिक सुधारों की संयुक्त मांग कर रही थी। राष्ट्रीय नेता इस बात का अनुभव कर रहे थे कि देश के राजनीतिक विकास के लिए हिन्दू–मुस्लिम एकता की आवश्यकता थी परन्तु अंग्रेजों की कुटिनीति ने हिन्दुओ तथा मुसलमानों के मन में जो दूरी पैदा कर दी थी उसका तय हो पाना सरल नही था। किन्तु संयोग से एक ऐसी घटना हो गयी जिसने इस दुष्कर कार को सहज बना दिया–" ब्रिटेन ने मिश्र को हथिया कर भारत के मुसलमानों की भावना पर बडी जबर्दस्त ठेस पहुंचायी। मोरक्को के सम्बन्ध में फ्राँस के साथ ब्रिटेन के समझौते और पर्शिया के सम्बन्ध में रूस के साथ उसकी सन्धि ने यह बता दिया कि अंग्रेज मुसलमानों के सच्चे हितचिंतक नही है। सन् 1911 में इटली ने जब त्रिपोली पर आक्रमण किया तब अंग्रजों ने इटली का पक्ष लिया था यह घटना भारत के मुसलमानों की अंग्रेजों के प्रति भक्ति के सामने प्रश्न सूचक चिन्ह होकर आई। देश के नेताओं ने मुसलमानों की इस परिवर्तित मन स्थिति का देश के हित में लाभ उठाने का विचार किया। केन्द्रीय धारा–सभा के 19 सदस्यों ने जो खरीदा उपस्थित किया था उसमें मुसलमानो के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्र स्थिर करने का प्रस्ताव किया गया था। सन् 1909 से ही कांग्रेस इस प्रकार की मांग का विरोध कर रही थी। किन्तु देश की ऐकता का ख्याल करके कांग्रेस ने 19 सदस्यों के खरीदे को प्रायः स्वीकार कर लिया। कांग्रेस के इस निर्णय के औचित्य में शंका करते हुए ....साधारण जन–समाज में हिन्दू–मुस्लिम समझौते से आन्द का एक बार ज्वार उमड़ पडा। ब्रिटिश सरकार भौंचक रह गई। उसके हाथ से एक बडी बात निकल गई थी।"[1]

तिलक को अंग्रेजों की नीयत पर तनिक भी विश्वास न था। अपने वांछित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए वह अंग्रेजों के विरूद्ध एक विशेष कौमी नारे के साथ युद्धघोष करने के पक्ष में थे। तिलक ने बम्बई तथा मध्यप्रदेश को अपना कार्यक्षेत्र बनाया और देश के अन्य भाग में स्वराज्य का संदेश देने का दायित्व श्रीमती एनीबेसेन्ट ने संभाला होमरूल की मांग को न्यायोचित ठहराते हुए उन्होंने कहा कि स्वाधीनता प्रत्येक राष्ट्र का जन्म सिद्ध अधिकार हैं। अंग्रेज उस समय

---

[1] प्रेमचन्द के उपन्यासो में समसामयिक परिस्थितियों का प्रतिफलन, डॉ0 सरोज प्रसाद पृ0 42–43

शासन सुधार के लिए उठने वाली हर आवाज को यह कहकर खामोश करा देते थे कि युद्ध के समय शासन सुधार की बात नही की जा सकती जबकि इसी महायुद्ध काल में आयरलैन्ड का होमरूल बिल ब्रिटिश पार्लियामेंन्ट के सम्मुख प्रस्तुत हुआ था उस समय किसी ने इस बात पर आपत्ति नही जताई थी भारत में इस बात पर कड़ा विरोध जताते हुए कहा गया कि जब दुनिया में राष्ट्र महायुद्ध में अपनी–स्वाधीनता के लिए लड रहे हो ऐसे में भारत को अपनी आज़ादी की मांग करने से रोकना अंग्रेजों की धूर्तता है। तिलक के द्वारा चलाए गए आन्दोलन " होमरूल की आवाज देश के सुदूर कानो तक फैल गई और सर्वत्र होमरूल लीगो की स्थापना हो गई थी।" [1] इस आन्दोलन के प्रभाव से भारतीयों के हदय में बलवती होती स्वराज्य की भावना को कुचलने के लिए ब्रिटिश सरकार का दमन चक्र भी खूब चला। जिसके विषय मे तिलक ने कहा था–"अब होमरूल आन्दोलन जंगल में आग की तरह फैलेगा। सरकारी दमन बिद्रोह की आग को और भडकायेगा।" प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति पर देश की स्वाधीनता के लिए संघर्ष करने वाली जो एक नई पीढ़ी तैयार हो रही थी उसे होमरूल आन्दोलन कारियों ने ही तैयार किया था।

" भारत में जाग्रति की जो लहर आई थी वह अंग्रेजी शिक्षा, जनतंत्र विषयक ब्रिटिश आदर्श और रूस पर जापान की विजय से प्रेरित थी। लार्ड मिन्टो को बातचीत के क्रम में श्रीमती बेसेन्ट ने यह तथ्य बहुत स्पष्ट ढंग से समझा भी दिया था। इस जाग्रति के थोडे और कारण थे जिनकी ओर श्रीमती बेसेन्ट ने अपने कांग्रेस अध्यक्ष पदीय भाषण में इशारा किया था। वे समझती थी कि आधुनिक विज्ञान के विकास ने बौद्धिक गुलामी के आल–जाल को तोड़ दिया है। इन्साइक्लोपीडिया की रचना ने ज्ञान का एक विस्तीर्ण सागर, मनुष्य के सामने, लहरा दिया। रूसी और टामस पैनी की रचनाओं ने मनुष्य जाति को एक नई ही चेतना दी थी। जापान में होने वाला परिवर्तन और रूस के मुकाबले उसके पराक्रम का प्रदर्शन चीन में मन्चूवंश का पराभव और चीनी गणराज्य की स्थापना ये कुछ ऐसे ही महत्वपूर्ण प्रेरक तथ्य है जिनसे स्वतंत्रताकांक्षी भारतीय लोकमानस् अप्रभावित नहीं रह सका। ब्रिटेन ने अपनी साम्राज्यलिप्सा में जागरण की इस बाढ़ के आगे बांध–बांधना चाहा। उसने पार्शिया के उत्थान में बाधा और अपने ही समान दूसरे साम्राज्य–लिप्सु रूस के साथ साँठ–गाँठ करके अपना प्रभाव–क्षेत्र स्थिर कर लिया। इधर रूस में स्थिर–परिवर्तन हुआ और जारशाही का अन्त हो

---

[1] कांग्रेस का इतिहास भाग 1–पट्टाभि सीता रामैय्या–पृ0 108।

गया। रूस की क्रान्ति ने स्थिति को ऐसा मोड़ दिया जिसका हिसाब नही लगाया जा सकता। भारत ने उत्साह के साथ देखा कि बात की बात में रूस की जारशाही समाप्त हो गई और चीनी राजाओं के स्वेच्छाचार का भी अन्त हो गया। उसके सामने ही वह छोटा सा देश जापान भी था जिसने रूस की विशाल शक्ति के साथ संघर्ष किया, विजयपाई और एशिया के राष्ट्रों को यह बताया कि यूरोप की बड़ी से बड़ी शक्तियों को भी युद्ध–क्षेत्र में पराजित किया जा सकता है। यदि भारत ने इस प्रेरणाओं से प्रेरित होकर ब्रिटिश–सिंह की परवाह न करके स्वराज्य की मांग प्रस्तुत की तो वह स्वाभाविक ही था।" [1] इस विषय में रजनी पामदत्त का कथन उल्लेखनीय है। उनके कथनानुसार–"प्रथम विश्वयुद्ध ने साम्राज्यवाद के समूचे ढांचे पर स्थाई और जबरदस्त प्रहार किया तथा 1917 और इसके बाद के वर्षो में विश्वभर में क्रांति की एक लहर चल पड़ी जिसके परिणाम स्वरूप भारत में भी विद्रोह के रूप में जनानदोलनों का सूत्रपात हुआ।"[2]

महायुद्ध के समय शासक वर्ग की ओर से प्रजातंत्र की रक्षा स्वतंत्रता तथा समानता एवं आत्म निर्णय जैसे सिद्धान्तों को निरंतर दोहराए जाने के कारण भारत वासियों के हदय में आशा की जो ज्योति जगी थी वह युद्ध की समाप्ति पर बुझ गई युद्धोपरान्त भी भारत की दशा पूर्ववत बनी रही। महासमर में युद्ध सामग्री खाद्यान्न तथा कच्चेमाल पर होने वाले व्यय का सारा भार भारत को बहन करना पड़ा जिसके विनाशकारी प्रभाव ने भारतीय जनता की कमर तोडकर रख दी जिस भारत की सैन्य शक्ति तथा धन के बलबूते पर ब्रिटिश सरकार को युद्ध में विजय प्राप्त हुई थी उसी–" भारत के लिए प्रथम विश्वयुद्ध का रिक्त या आर्थिक दिवालियापन काठ की वैसाखियां, लाखों विधवाएं और अनाथ बच्चे, खोखली प्रशंसा, निरर्थक वाह–वाही कतिपय उपाधियाँ और थोडे से परमवीर चक्र।"[3] 1918 ई0 में जब दिल्ली कांग्रेस में स्वशासन की माँग को दोहराया गया तो उसका जवाब में रौलट बिल के रूप में सामने आया जिसके द्वारा ब्रिटिश सरकार ने भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष की भावना को धूल–धूसरित करने का पूरा प्रबन्ध किया था। देश भर में इस बिल का तीव्र विरोध किया गया गांधी जी ने यह घोषणा कर दी कि यदि रौलट बिल पास किया गया तो वे सत्याग्रह आन्दोलन छेड़ देंगे गांधी

---

[1] प्रेमचंद के उपन्यासों में समसामयिक परिस्थितियो का प्रतिफलन–डॉ0 सरोज प्रसाद पृ0–44–45

[2] आज का भारत–रजनीपामदत्त–पृ0 342।

[3] -ए हिस्ट्री ऑफ गॉर्डन टाइम्स-ईश्वरी प्रसाद–पृ0 38।

जी के इस निर्णय का जनता ने खुलकर स्वागत किया वस्तुतः यही से भारतीय राजनीति में एक नये युग का आरम्भ होता है जिसे गांधी युग के नाम से पुकारा जाता है। सत्याग्रह का यह प्रयोग नया नही था इसकी शक्ति का अनुभव गांधी जी को इससे पूर्व खेड़ा तथा चम्पारन में हो चुका था। 18 मार्च को रौलट बिल कानून के रूप मे देश के सामने आया। इस ' 'काले कानून' के विरोध में देश व्यापी हड़ताल का आह्वान किया गया गांधीजी ने इस विरोध प्रदर्शन की एक तिथि निशिचित कर दी परन्तु जनता के धैर्य का बांध टूट चुका था। अतः निर्धारित तिथि के पूर्व ही 13 अप्रैल 1919 को अमृतसर के जँलिया वाला बाग में एक विशाल जनसभा हुई जहां जनरल डायर ने निहत्थी जनता पर गोली चलवाकर ब्रिटिश सरकार की निरंकुशता तथा पाषाण ह्रदयता को संसार के सामने उजागर कर दिया। जँलिया वाला बाग हत्याकांड ने समस्त देश वासियों के साथ गांधीजी को भी झकझोर कर रख दिया। अब तक के इस बात को समझ चुके थे कि अंग्रेज सरकार के साथ किसी प्रकार के समझौते की आशा करना व्यर्थ है और ब्रिटिश सरकार के साथ किसी भी प्रकार का सहयोग करना पाप है।[1]

पंजाब देश का वह क्षेत्र था जँहा से ब्रिटिश सरकार को अपनी रक्षा हेतु फौजी मिलते थे। इस दृष्टि से पंजाब में राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रसार अंग्रेज सैनिको के हित में घातक था। इसीलिए जहां तक संभव होता ब्रिटिश शासक पंजाब को आंदोलन के प्रभाव से बचाते 14 अप्रैल सन् 1919 ई0 को लार्ड चेम्स फोर्ड ने घोषणा की कि अंग्रेज सरकार पंजाब के आंदोलन के दमन में अपनी पूर्ण शक्ति लगा देगी। इसीवर्ष ही मान्टेगू चेम्सफोर्ड योजना सामने आई जो वास्तव में अंग्रेजों के कूटिनीति का ही हिस्सा थी। इस योजना द्वारा भारतीयों को कोई नया अधिकार नही प्रदान किया गया। इस समय देश का राजनीतिक घटना क्रम बड़ी तीब्रता से गतिमान था। कांग्रेस की लोकप्रियता ने उसे जन–साधारण की संस्था बना दिया था तथा गांधी जी के नेतृत्व में चलाए जाने वाले आन्दोलन में जन आन्दोलन का रूप धारण कर लिया था। सितम्बर 1919 ई0 में वाइसराय ने पंजाब के उपद्रवों की जांच के लिए हण्टर कमीशन की नियुक्ति की 28 मई सन् 1920 को हण्टर कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई जो पूरी पक्षपात पर आधारित

[1] दि लास्ट इयर्स ऑफ ब्रिटिश इण्डिया–माइकेल एडवर्ड्स पृ0 44।

थी। जँलियावाला बाग के नरसंहार और खिलाफ़त के प्रति ब्रिटिश सरकार के अन्याय से हिन्दू–मुसलमान सभी स्तब्ध थे। 10 मार्च 1920 ई0 को अपने घोषण पत्र के द्वारा गांधी जी ने पहली बार खिलाफत के प्रश्न को सम्मिलित करते हुए असहयोग आन्दोलन का संकेत दिया। आन्दोलन की तो तैयारी आरम्भ हो गई थी परन्तु उसकी कोई स्पष्ट रूप रेखा उभर कर सामने नही आ पाई थी जिसके कारण तिलक के मन में असंतोष व्याप्त था किन्तु फिर भी उन्होने गांधी जी को यह आश्वासन दिया कि वे कोई विरोधी कार्यवाही नही करेगे और यदि समस्त देश वासियो ने इस आन्दोलन में उनका साथ दिया तो वह भी उनका साथ देंगे।

महायुद्ध के समय ब्रिटिश सरकार ने मुसलमानों का विश्वास जीतने के लिए उन्हें जो आश्वासन दिया था उसका खोखलांपन युद्ध की समाप्ति के बाद मुसलमानों के सामने पूरी तरह खुलकर सामने आ गया। पहले तो अंग्रेज यह कह रहे थे कि वे तुर्की को एशिया माइनर और थ्रेस के समृद्धि द्वीपों से वंचित करने के लिए युद्ध नही कर रहे हैं किन्तु बाद में अपनी कही हुई बात से मुकरते हुए उन्होंने तुर्की को इन दोनों स्थानों से तो वंचित किया ही साथ ही अस्थाई सन्धि के शर्तो के अनुसार तुर्की को अपने जजीर तुल अरब जिसमें मेसोपोटामिया, अरबिस्तान सीरिया, फिलस्तीन आदि प्रदेश सम्मिलित थे, वंचित होना पडा।[1] भारतीय मुसलमान अंग्रेजों के धोखा–धड़ी से बहुत क्षुब्ध हुए। कुछ प्रमुख कांग्रेसी तथा खिलाफती नेताओ ने अमृतसर में एकत्र होकर गांधीजी के नेतृत्व में खिलाफत आन्दोलन चलाने का संकल्प लिया।[2] इस खिलाफत आन्दोलन द्वारा कांग्रेस तो मुसलमानो के निकट आई ही गांधीजी को भी असहयोग आन्दोलन के लिए मुसलमानो की सहानुभूति तथा सहयोग प्राप्त हुआ। सितम्बर 1920 ई0 में कांग्रेस के कलकत्ता में आयोजित होने वाले विशेष अधिवेशन में अहिंसक असहयोग का प्रस्ताव रखा गया। " उसी वर्ष नागपुर में कांग्रेस के वाचिक अधिवेशन में कलकत्ता के विशेष अधिवेशन द्वारा प्रस्तुत अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन के प्रस्ताव के लगभग एक मत से स्वीकार कर लिया गया। कांग्रेस का उद्वेश्य ' साम्राज्य के भीतर स्वायन्त शासन ' से बदलकर ' शान्तिपूर्ण एवं बैधानिक तरीकों से स्वराज्य की प्राप्ति ' घोषित किया गया। "[3] असहयोग

---

[1] कांग्रेस का इतिहास–भाग 1 पट्टाभि सीता रमैय्या पृ0 149।

[2] कांग्रेस का इतिहास–भाग 1 पट्टाभि सीता रमैय्या पृ0 149।

[3] प्रेमचंद और गांधीवाद–रामदीन गुप्त, पृ0 113।

आन्दोलन कार्यक्रम के अन्तर्गत उपाधियाँ तथा प्रशस्ति पत्र लौटाना सरकारी उत्सवों, सरकारी अदालतों, स्कूल–कालेजों और विदेशी समानों का खुलकर बहिष्कार करना सविनय अवज्ञा की नीति अपनाते हुए कर अदा न करना चरखे और करघे को प्रोत्साहन देना हिन्दू तथा मुसलमानों के मध्य साम्प्रदायिक सौहार्द को बढ़ावा देना तथा अस्पृश्यता निवारण पर बल देना इत्यादि सम्मिलित थे।

पहली अगस्त 1920 को आरम्भ होने वाले इस आन्दोलन की लोकप्रियता उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई–" कांग्रेस द्वारा इसको अपनाने के फलस्वरूप असहयोग आंदोलन में नई उर्जा भरी। जनवरी 1921 से पूरे देश में आंदोलन की लोकप्रियता बढ़ने लगी। गांधीजी ने खिलाफत नेता अली भाइयों के साथ पूरे देश का दौरा किया, सैकड़ो सभाओ में भाषण दिए और राजनीतिक कार्यकर्ताओ से मुलाकात की, उनसे बातचीत की। पहले महीने में ही हजारो छात्रों ने (एक आंकडे के अनुसार 90,000) सरकारी स्कूलों और कॉलेजों को छोड़ दिया और राष्ट्रीय स्कूलो और कालेजों में भरती हो गए। उस समय देश में 800 राष्ट्रीय स्कूल और कालेज थे। शिक्षा का बहिष्कार पश्चिम बंगाल में सबसे अधिक सफल रहा। कलकत्ता के विद्यार्थियो ने राज्यव्यापी हड़ताल की। उनकी मांग थी कि स्कूलों के प्रबंधक सरकार से अपना रिश्ता तोडें। सी० आर दास ने इस आंदोलन को बहुत प्रोत्साहित किया और सुभाष चंद्र बोस ' नेशलन कालेज ' (कलकत्ता) के प्रधानाचार्य बन गए। पंजाब में भी बडे पैमाने पर शिक्षा का बहिष्कार किया गया। ....बहिष्कार आंदोलन में सबसे अधिक सफल था–विदेशी कपडों के बहिष्कार का कार्यक्रम। कार्यकर्ता घर–घर जाकर विदेशी कपड़े इकट्ठे करते, स्थानीय लोग एक जगह इकट्ठे होते और इन कपड़ो की होली जलाई जाती।...................... विदेशी कपड़े बेचने वाली दुकानो पर धरना भी बहिष्कार आंदोलन में शामिल था।"[1] पं० मोती लाल नेहरू, चितरंजन दास, सी० राजगोपालचारी, विट्ठल भाई पटेल, सरदार बल्लभ भाई पटेल, श्री निवास आयंगर, राजेन्द्र प्रसाद, ब्रज किशोर प्रसाद, सुभाषचन्द्र बोस, हकीम अजमल खाँ, मौलाना शौकत अली, मौलाना मुहम्मद अली, अबुलकलाम आज़ाद, लाला लाजपतराय, डॉ० खान साहब, बादशाह खान, जवाहर लाल नेहरू, सरोज़िनी नायडू, कमला देबी चट्टोपाध्याय आदि भिन्न–भिन्न व्यक्ति–जीवन के भिन्न–भिन्न क्षेत्रों से गांधीजी के इस असहयोग–आन्दोलन में भाग लेने पहुंचे। बंग–भंग आन्दोलन के साथ चलाए जाने

---

[1] भारत का स्वतंत्रता संघर्ष–बिपिल चन्द्र–पृ० 136–137।

वाले स्वदेशी आन्दोंलन को गांधीजी के असहयोग ने गति तथा उर्जा प्रदान की। विलायती और मिलो में बने कपडो को त्याग कर कांग्रेस के बड़े–बड़े नेताओं ने भी खादी पहनना आरम्भ किया।

इस प्रकार सन् 1921 से भारतीय राजनीति में एक ऐसे युग का प्रारम्भ होता है जिसका मूल स्वर विद्रोह था। जिसके द्वारा देश में याचिकाओं प्रार्थनाओं एवं प्रस्तावों के स्थान पर आत्म निर्भरतां एवं आत्म विश्वास की भावना का उदय होता है [1] ब्रटिश सरकार ने जन–जाग्रति के इस तूफान को रोकने के लिए कोई कसर उठा नही रखी। किन्तु दमन कितना कठोर क्यों न हो किसी राष्ट्र की स्वातंन्य कामना के उफ़नते हुए समुद्र पर बांध नही बांध सकता। कुछ समय के लिए दबा भले ही दे। "1919 में जनता में असन्तोष की जो क्रान्तिकारी लहर उठी थी वह 1920 और 1921 में भी बराबर आगे बढती रही।"[2] उस समय भारतीय उद्योग पतियों के बीच जो राजनीतिक चेतना फैली उसका मुख्य कारण यह था कि युद्ध काल में इस पूर्ण वर्ग को शासकों के हाथों भीषण परिणाम भुगतना पडा था। ब्रिटिश सरकार ने उनकी जड़ पर भी प्रहार किया था। ऐसे में अपने हितो की रक्षा हेतु राजनीति में उतरना उनके लिए आवश्यक हो गया था अतः वे अधिक से अधिक रातनीति तथा आर्थिक अधिकार पाने के लिए ब्रिटिश शासन का विरोध कर रहे थे। भारतीय उद्योगपति जानते थे कि युद्धोपरांत छिड़ने वाले व्यावसायिक संघर्ष में अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि देश में स्वशासन हो जिससे विदेशी हितों की अपेक्षा स्वदेशी हितो का संरक्षण हो सके। ब्रिटिश बैंकों के प्रति अंग्रेजों की पक्षपात पूर्ण नीति के दुष्प्रभाव ही भारतीय उद्योग धन्धों पर पड़ रहे थे। इसी कारण भारतीय उद्योगपति देश की स्वतंत्र आर्थिक नीति के इच्छुक थे जिसका निर्धारण स्वराज्य के अभाव में सम्भव नही था।

महायुद्ध के परिणाम स्वरूप उत्पन्न आर्थिक संकट की मार सबसे अधिक किसानों को झेलनी पड़ी। ब्रिटिश सरकार के शोषण एवं अत्याचार ने उन्हें विद्रोह करने पर विवश कर दिया। भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में अपनी सहभागिता निभाने में किसान वर्ग भी देश के अन्य वर्गो से पीछे नही था। " उत्तर–प्रदेश

---

[1] कांग्रेस का इतिहास–भाग 1 पट्टाभि सीता रमैय्या पृ0 183।

[2] आज का भारत–रजनीपामदत्त पृष्ठ–349।

और मलाबार के किसान आंदोलन भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की राजनीति से किसी न किसी रूप में जुड़े हुए थे। उत्तर–प्रदेश में, शुरू में इस आन्दोलन को होमरूल लीग आंदोलन ने हवा दी और बाद में असहयोग और खिलाफत आंदोलन ने । अवध में 1921 के शुरू के महीने में, जब किसानो का संघर्ष काफी जोरो पर था। मलावार में भी यही स्थिति थी। खिलाफत आंदोलन और किसान आंदोलन एक–दूसरे से इस तरह मिल गए थे कि उनमें भी भेद कर पाना मुश्किल था। लेकिन दोनों स्थानों पर किसानों द्वारा हिंसा का रास्ता अख़्तियार करने से किसान आंदोलन राष्ट्रीय आंदोलन से अलग हो गया। राष्ट्रवादी नेताओं ने किसानो से बार–बार अपीलें की कि वे हिंसा का रास्ता अख़्तियार न करे।"[1]

ब्रिटिश सरकार की अन्याय तथा अत्याचार पूर्ण नीतियों पर जनवरी 1922 ई0 में सर्वदलीय सम्मेलन की अपील तथा वाइसराय को लिखे गए गांधीजी के पत्र का भी जब कोई प्रभाव नही पड़ा तो फरवरी 1922 ई0 को गांधी जी ने लार्ड रिडिंग को लिखा कि यदि सरकार अपनी नीति में परिवर्तन करते हुए नागरिक स्वतंत्रता बहाल नही करेगी तथा राजनीतिक कैदियों को रिहा नही करेगी तो वह सबिनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ करेंगे गांधी जी के घोषणा से देश भर में एक उत्तेजना फैल गई। गांधी जी ने जनता से शान्ति तथा अनुशासन बनाए रखने की अपील की परन्तु ऐसा हो न सका और बारदोली ताल्लुका (सूरत) से आरम्भ होने वाला यह आन्दोलन गांधी जी की आज्ञा के पहले ही गुण्टूर में कर बंदी आन्दोलन के रूप छिड गया इसके अतिरिक्त चौरा–चौरी नामक स्थान पर उत्तेज़ित भीड़ ने एक पुलिस चौकी में आग लगा दी। इस हिंसात्मक कृत्य से दुखी होकर गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया। अपनी असफलता के बावजूद भी " यह आन्दोलन ब्रिटिश उपनिवेश वाद और साम्राज्यवाद के विरूद्ध एक जबरदस्त मोर्चा था। इस आन्दोलन ने दुनिया को यह दिखा दिया कि भारत में भेड़–बकरे नही बसते कांग्रेस अब वैसी नही रह गई थी जैसी रिपन को दिखी थी और जिसकी वे बड़ी आसानी उपेक्षा कर सकते थे।"[2] मजदूर तथा किसान वर्ग में उभर रही चेतना के परिणाम स्वरूप महायुद्ध के उपरान्त मजदूरों तथा किसानों के ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध संघर्ष में तीव्रता

---

[1] भारत का स्वतंत्रता संघर्ष–विपिन चन्द्र–पृ0 151।

[2] प्रेमचंद के उपन्यासो मं परिस्थितियों का प्रतिफलन–डॉ0 सरोज प्रसाद–पृ0 61।

ग्रहण कर ली। मजदूर वर्ग ने उत्पन्न जाग्रति के नतीजे में देश के लगभग सभी औद्योगिक केन्द्रो में ट्रेड यूनियनों की स्थापना हुई। नवम्बर 1921 में फ्रिंस आफ बेल्स के भारत आगमन पर जब कांग्रेस ने देश व्यापी बहिष्कार का आह्वान किया तो मजदूर वर्ग ने भी पूरे उत्साह से भाग लिया। " बंबई की सूती कपडो के फैक्टरियाँ बंद रही और लगभग 140,000 मज़दूर सड़को और गलियों में निकल पड़े, दंगा किया और उन पारसियों और ब्रिटिश लोगों पर आक्रमण किया जो बेल्स के राजकुमार के स्वागत के लिए गए थे। इस घटना–संकुल वर्षों में जिस चेतना और प्रेरणा ने मजदूरों को प्रभावित किया और राष्ट्रीय आंदोलन की लहर तथा मजदूरों की आकांक्षाएँ एक–दूसरे के अनुरूप बने, उनकी सबसे अच्छी अभिव्यक्ति अर्जुन आत्माराम आल्वे के शब्दो में हुई है जो बंबई के सूती कपडा मिल में मजदूरी करते थे और वे पढ़े–लिखे थे। बाद में चलकर वे मज़दूर आंदोलन में बहुत बडी हस्ती बने : जिस समय हमारा संघर्ष..................चल रहा था, देश में राजनीतिक आंदोलन का नगाडा बज रहा था, कांग्रेस ने बहुत बड़ा आंदोलन शुरू किया जिसमे भारत के लिए स्वशासन की माँग रखी गई। उस समय हम मज़दूर लोग स्वराज्य का अर्थ सिर्फ इतना समझते थे कि हमारे कर्जे समाप्त हो जाएंगे, सूदखोरों द्वारा दमन खत्म हो जाएगा, हमारी मजदूरी बढ़ेगी, मालिको द्वारा दमन, उनके मुक्के लात–घूँसे कानून बनाकर रोक दिए जाएंगे और इस प्रकार हम मजदूरो को दी जाने वाली यातना का अंत हो जाएगा। हम मज़दूरो के मन में ये और इसी तरह के अन्य विचार उठा करते थे और बहुत सारे मजदूरों ने, जिनमें मै खुद भी था असहयोग आंदोलन के दौरान स्वयं–सेवक के रूप में अपना नाम दर्ज कराया।"[1]

8 नवम्बर सन् 1927 को तत्तकालीन भारत मंत्री लार्ड बरकेन हेड ने भारत में उत्तरदायी शासन स्थापित करने हेतु साइमन कमीशन की नियुक्ति की घोषणा की इस कमीशन मे किसी भी भारतीय सदस्य को सम्मिलित नहीं किया गया अतः इसे लेकर भारतीयों में रोष उत्पन्न होना स्वाभाविक था। कांग्रेस ने कमीशन का पूर्ण बहिष्कार करने का निश्चय किया फरवरी 1928 ई0 में जब कमीशन भारत आया तो उसके विरोध में सर्वत्र काले झंडे दिखाए गए तथा साइमन वापस जाओ के नारे लगाए गए। जगह–जगह पुलिस ने विरोध प्रदर्शन करने वालो पर

---

[1] भारत का स्वतंत्रता संघर्ष–बिपिन चन्द्र–पृ0 164।

लाठियाँ बरसाई लाहौर में प्रदर्शन कारियों के नेता लाला लाजपतराय को लॉठी चार्ज में गम्भीर चोटें आई जिसके कारण बाद में उनका देहान्त हो गया। पं0 गोबिन्द बल्लभ पन्त, तथा पं0 जवाहर लाल नेहरू जैसे नेता भी पुलिस की बर्बरता के शिकार हुए। साइमन कमीशन के विरूद्ध प्रदर्शन करने वालो के साथ जिस कठ़ोरता का व्यवहार ब्रिटिश सरकार ने किया उसमें अंग्रेजो की प्रति घृणा के भावों को और भी बढ़ावा दिया।

सन् 1929 के लाहौर अधिवेशन में कांग्रेस ने अपना लक्ष्य वैधानिक उपायों द्वारा औपनिवेशिक स्वराज्य के स्थान पर शान्तिपूर्ण तथा उचित उपायों से पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति घोषित किया। 26 जनवरी सन् 1930 को सारे देश में स्वराज्य दिवस, मनाया गया। इसी वर्ष 12 मार्च को गांधी जी ने नमक कानून भंग करने के लिए डाँड़ी की ओर प्रस्थान किया और 6 अप्रैल 1930 ई0 को डाँड़ी मे नमक कानून तोड़कर सविनय अवज्ञा द्वारा गांधी जी ने देश के स्वाधीनता संग्राम को एक नयी दिशा प्रदान की। कुछ ही दिनों में यह आन्दोलन जनता में इतना लोकप्रिय हो गया। इसने जनता में ऐसा उत्साह भर दिया कि लोग निड़रता पूर्वक कानून तोडने, शराब और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करने में बढ़ चढ़कर भाग लेने लगे। इस सम्बन्ध में दुकानों पर पिकेटिन्ग करने में महिलाएं विशेष उत्साह का प्रदर्शन कर रही थी और बडे अनुशासन पूर्वक सत्याग्रह में भाग ले रही थी। आजादी के दीवानो के इस उत्साह को कुचलने के लिए ब्रिटिश सरकार ने अपना दमन–चक्र और तेजी से चलाया नये–नये दमनकारी कानून बनाए गए पुलिस तथा फौजियों को सत्याग्राहियों पर हर प्रकार के अत्याचार की खुली छूट दे दी गई। राष्ट्रीय समाचार पत्रों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। कांग्रेस को एक अबैधानिक संगठन घोषित कर दिया गया। लाखों की संख्या में गिरफ्तारी होने लगी परन्तु जनता के साहस एवं उत्साह में लेश मात्र भी कमी नही हुई। सफलतापूर्वक बड़े स्तर पर सरकारी स्कूलों तथा कॉलेजों का बहिष्कार किया गया और हजारों की संख्या में देश के लोगों ने सरकारी नौकरियों से त्याग पत्र दे दिया। " यह ऐसा आंदोलन था जो राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में आम जनता की भागीदारी की दृष्टि से बेमिसाल था। [1]

---

[1] – भारत का स्वतंत्रता संघर्ष–बिपिन चन्द्र–पृ0 212।

इस प्रकार सन् 1930 के बाद भारतीय जनता के चिन्तन में मौलिक परिवर्तन के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगते है। जनता के दिल मे उठने वाली स्वाधीनता की भावना को दयानात्मक उपायों द्वारा कुछ समय के लिए तो दबाया जा सकता है किन्तु हमेशा के लिए नही। जनता के क्रोध को शान्त करने के लिए ब्रिटिश संसद में भारत सरकार अधिनियम 1935 पारित कर देश को प्रान्तीय स्वशासन का अधिकार प्रदान किया। इस अधिनियम के अनुसार आम चुनाव की घोषणा की गई। फरवरी 1937 में होने वाले चुनाव में कांग्रेस ने बढ़–चढ़कर भाग लिया। जिसमें कांग्रेस का चुनाव प्रसार अत्यन्त प्रभावशाली रहा कांग्रेस ने अपने घोषणा पत्र के द्वारा 1935 के अधिनियम को पूर्ण रूप से नकारते हुए नागरिक स्वतंत्रता की बहाली, जेल में बंद राजनीतिक कैदियों की रिहाई, अस्पृश्यता निवारण, कृषि–व्यवस्था में परिवर्तन लगान में उचित छूट, किसानो को ऋण के बोझ से मुक्ति देने तथा मज़दूरों को संगठन निर्माण एवं हड़ताले करने के अधिकार देने के वादे किए गए थें। कांग्रेस के प्रयत्नो के परिणामस्वरूप जनता में पुनः राजनीतिक चेतना का संचार हुआ। कांग्रेस चुनाव में विजयी हुई। बंगाल, असम, उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत, पंजाब और सिंध को छोडकर शेष सभी प्रांतो में उसे विशाल बहुमत प्राप्त हुआ और कांग्रेस ने पद भार ग्रहण करते हुए प्रान्तीय स्वशासन की बागडोर सभाली।

गाँधीवादी नीति और कांग्रेसी सरकारः–

भारतीय राजनीति में गांधीजी का आगमन सन् 1916 ई0 के अन्तिम दिनों में हुआ जो भारतीय इतिहास की एक महान घटना है जिसमें केवल देश की राजनीति को ही प्रभावित नही किया वरन् गांधी जी के रूप में भारतीय जनता को एक ऐसी मशाल मिली जिसके प्रकाश में वह निरन्तर आगे बढ़ती रही और अन्ततः अपने लक्ष्य को प्राप्त किया। " मध्यम वर्ग से आने वाले महात्मा गांधी जी ने भारत के और संसार के इतिहास में अपना स्थान ही नही बनाया उसे बदल भी डाला। साधारण बालक की तरह वह बडे हुए। गलतियाँ की, पढने और बैरिस्टरी पास करने विलायत गये। बैरिस्टर भी बने, वकालत भी की, कमाया भी, पर पश्चिम ने उनकी आंखे खोल दी। फिर भी अगर दक्षिण अफ्रीका नही जाते तो एक सफल बैरिस्टर भले ही हो जाते, राष्ट्रपिता की बागडोर संभालने वाले गांधी शायद ही बनते। धार्मिक भावनाएं भले ही उन्हें अपने माता–पिता से मिली हो पर राजनैतिक व सामाजिक कार्यो और प्रगति के लिए उन्हें दक्षिण अफ्रीका के बारे में प्रारम्भिक वर्षों का ही आभारी रहना होगा। ....दक्षिणी अफ्रीका में गोरे, काले का भेद तथा अत्याचारों ने उन्हें राजनीति की ओर धकेल दिया। व्यक्तिगत अपमान ने उन्हें जातीय, वर्णीय और राष्ट्रीय अपमान के प्रति सचेत और जाग्रत किया। उनका अपमान गांधी नाम के व्यक्ति का नही गुलाम हिन्दुस्तान में रहने वाले एक काले–आदमी का अपमान था। इस राष्ट्रीय अपमान को बर्दाश्त न करने और दृढता से विरोध में ही सविनय अवज्ञा–भंग के बीज छिपे थे। वहां काले आदमियों की हालत यहां के हरिजनो से बढ़कर थी। खुद उन्होने उस दुख को भोगा था।"[1] अतः उन्होने दक्षिण अफ्रीका में तिरस्कृत भारतीयों के मानवोचित अधिकारों के लिए सत्य की एक लम्बी लड़ाई लड़ी जिसमे विजय प्राप्त करने के पश्चात्य गांधी जी भारत लौटे एक दो वर्ष उन्होने देश की परिस्थितियों को जांचा–परखा तत्पश्चात वह इस निर्णय पर पहुंचे कि इस समय पराधीनता का अभिप्राय झेल रहे भारत–वासियों की मुक्ति ही राष्ट्र धर्म है और सबसे बडा' मानव धर्म ' है इसके लिए सबसे पहले उन्होने आश्रम की स्थापना करके अपना लक्ष्य तथा कार्यकम निर्धारित किया। " बखानिया के शासन को देश से हटाना आसान न था कि बापू के आने से पहले ही महान देश प्रेमी पुरूष दादा भाई नौरोजी से शुरू करके स्वातंन्य मंत्रदाता लोकमान्य बालगंगाधर तिलक के समय

---

[1] गांधी, व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव–सं0 डॉ0 एस0 राधाकृष्णन पृ0 473

में देश में स्वाधीनता की भूख जग चुकी थी। अनेक देश भक्तों ने हिंसात्मक ढंग से अंग्रेजों को भगाने का प्रयास किया। बुद्धिजीवी समाज में आज़ादी की भावना उत्पन्न हो चुकी थी ऐसे राष्ट्रभक्त पैदा हो चुके थे जो देश में विदेशी शासन का रहना राष्ट्र का अपमान समझते थे। बापू देश की स्थिति को देखकर कांग्रेस में दाखिल हो गए, दाखिल क्या हुए यानि कांग्रेस को जीवन मिला। उसका कार्यक्रम बदला देश को आत्मनिर्भरता का सबक मिला।.........बापू की बात ने देश में चमत्कार कर दिखाया............देखत–देखते सारा राष्ट्र उठ़ खड़ा हुआ।''[1]

गांधी जी न्याय सत्य तथा अहिंसा के द्वारा सदियों से चले आ रहे शोषण को समाप्त करके एक आदर्श सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था स्थापित करना चाहते थे। इनके द्वारा वे अपने जीवन के अन्तिम लक्ष्य अर्थात समता पर आधारित रामराज को प्राप्त करना चाहते थे। गांधीजी के सिद्धान्त भारतीय कर्मवाद तथा गीता के निष्काम कर्म पर आधारित है। गांधी जी के अनुसार–''किसी भी कार्य के लिए साधनों का पवित्र होना उतना ही आवश्यक है जितना कि साध्य का पवित्र होना। अशुद्ध साधन का परिणाम अशुद्ध होता है। असत्य के आधार पर कोई सत्य तक नही पहुँच सकता है।''[2] देश की स्वाधीनता के लिए गांधीजी ने नीति अपनाई उन नीतियों में विचार करने के पूर्व गांधी जी के सिद्धान्तो का उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है क्योंकि इनको जाने बिना गांधीवादी नीतियों को समझ पाना सम्भव नही है। गांधीजी के सिद्धान्तो का सार संक्षेप निम्नवत है।

एकादश ब्रत–गांधीजी ने जिन ग्यारह ब्रतों को अपने जीवन में महत्वपूर्ण स्थान दिया था वे इस प्रकार है–सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अस्तेय, अपरिग्रह, अभय, अस्पृश्यता निवारण, शरीरश्रम, सर्वधर्म सम्भाव तथा स्वदेशी। इन ग्यारह ब्रतो में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह यह पांच शाश्वतनियम है, जिन्हें वेदो में पंचविधयम् की संज्ञा दी गई हैं। इन पांच ब्रतो के अतिरिक्त शरीर श्रम, अस्वाद, अभय, सर्वधर्मसम्भाव, स्वदेशी तथा अस्पृश्यता निवारण–छः नये ब्रत है जो आध्यात्मिक मूल्यों के लिए आवश्यक माने गए हैं उन समस्त ब्रतो

---

[1] गांधी, व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव–सं0 डॉ0 एस0 राधाकृष्णन पृ0 159

[2] –'हरिजन' 13 अप्रैल 1947–पृ0 232।

में सत्य और अहिंसा दो मौलिक ब्रत है। शेष सभी अहिंसा के ही परिणाम या नियम है।[1]

सत्यः—गांधी जी के जीवन दर्शन का आधार स्तम्भ है। गांधीजी ईश्वर को एकमात्र अंतिम सत्ता और विश्व का सत्य मानते है। गांधी जी के लिए ईश्वर और सत्य दो भिन्न वस्तुएं नही अपितु शब्दो दो और वस्तु एक है। ईश्वर सत्य है के स्थान पर सत्य ही ईश्वर है ऐसा कहकर गांधीजी ने हमारा ध्यान शास्त्रों में वर्णित " "ईशावास्य मिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत" इस कथन की ओर आकर्षित किया जिसका अर्थ है संसार में केवल ईश्वर है दूसरी कोई सत्ता नही। गांधी जी का सत्य केवल वाणी तक ही सीमित नही अपितु वह विचार तथा आचरण द्वारा भी सत्य की साधना है।[2] गांधी जी की सत्य साधना में धर्म, नैतिकता तथा आध्यात्मिता तीनों का समावेश है। जिसके लिए निःस्वार्थ जीवन तथा तपस्या को गांधी जी अनिवार्य मानते हैं। सत्य के मार्ग पर चलना सरल नहीं है। इस मार्ग पर चलने के लिए निरन्तर अभ्यास तथा विषय वासना से अनाशक्ति आवश्यक है। सत्य के साधक का मार्ग है। केवल सत्य ही विजयी होता है ऐसा गांधी जी का दृढ़ विश्वास था क्योंकि ' सत्य ' का अर्थ है ' अस्तित्व ' अर्थात जो है और असत्य का अर्थ है ' अनस्तित्व ' अर्थात जो नही है। निष्कर्षतः ' जो नही है ' उसकी विजय हो ही नही सकती।[3]

अहिंसा—भारतीय धर्म एवं दर्शन की अति प्राचीन विशेषता है जिसके अनुसार मन, वचन, कर्म से किसी को कष्ट न देना ही अहिंसा है जो कि अहिंसा का निषेधात्मक स्वरूप है परन्तु भगवान बुद्ध की मैत्री एवं करूणा तथा इसाई धर्म को प्रेम अहिंसा के सकारात्मक पहलू है। गांधी जी की अहिंसा व्यवहारिक अहिंसा थी जिसका व्यक्तिगत जीवन में ही नही वरन् सामाजिक जीवन में भी उन्होंने व्यवहारिक प्रयोग करके दिखाया। गांधी जी हत्या को ही नहीं शोषण को भी हिंसा ही मानते है। गांधी जी समाज परिवर्तन के लिए सशस्त्र क्रांति के स्थान पर बैचारिक क्रान्ति को आवश्यक मानते हैं। अपनी बात मनवाने के लिए शक्ति प्रयोग

---

[1] गांधीवाद को विनोबा की देन –डॉ0 दशरथ सिंह–पृ0 228।

[2] गांधी साहित्य भाग 5 धर्मनीति पृ0 118।

[3] गांधी साहित्य भाग 5–पृ0 120 (प्रथम संस्करण 1950)

को पशुबल की संज्ञा देते हुए आत्मबल प्रयोग का समर्थन करते है। गांधी जी के अनुसार सत्य, अहिंसा और प्रेम के साथ अहिंसात्मक आन्दोलन करके शोषक के मन में मानव के प्रति प्रेमभाव एवं मानवता के प्रति उसके नैतिक कर्तब्यों को जाग्रत किया जा सकता है। उसे अपने विशेष अधिकारों सत्वों एवं शोषक नीति का परित्याग करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। अहिंसा का अर्थ कायरता कदापि नही है। कायरता और अहिंसा में उतना ही विरोध है जितना दक्षिणी और उत्तरी ध्रुव में, आग और पानी में।[1] " गांधी जी अहिंसा को वीरों का धर्म मानते है कायरो का नही। उन्होने इस बात की स्पष्ट घोषणा की थी कि कायरता और हिंसा में किसी एक को चुनने का प्रश्न उठने पर वे हिंसा को चुनने की ही सलाह देंगे। [2] गांधीजी ने महावीर और बुद्ध की व्यक्तिगत अहिंसा को एक सामूहिक हथियार बनाकर उसे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्यक्ति व राष्ट्र दोनो के लिए प्रतिपादित किया। गांधीजी की अहिंसा केवल व्यक्तिगत आचरण के उपदेश तक सीमित नही थी उनकी अहिंसा वह दिव्य अस्त्र थी जिसका प्रयोग उन्होने राजनीतिक क्षेत्र में अपने देश को विदेशी शासकों की दासता के पाश से मुक्त कराने के महान तथा पवित्र ध्येय की प्राप्ति के लिए किया साथ ही साथ सामाजिक की वैषम्य, ईर्ष्या द्वेष तथा वैमनस्य के उन्मूलन में भी उन्होंने अपने इस अलौकिक अन्त का सफल तथा व्यापक प्रयोग किया। गांधीजी की अहिंसा निष्क्रिय अथवा सैद्धान्तिक न होकर सक्रिय एवं व्यवहारिक अहिंसा थी भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास इस बात का साक्षी है।

सत्याग्रहः—अन्याय के विरूद्ध किया जाने वाला यह संघर्ष है। जिसमें सात्विक तथा अहिंसात्मक ब्रह्मास्त्र के द्वारा विरोध का नाश किया जाता है विरोधी का नहीं। सत्य पर आग्रह पूर्वक आचरण तथा अधर्म का सत्यादि साधनों द्वारा आग्रह पूर्वक विरोध की सत्याग्रह है। [3] गांधीजी के अनुसार सत्याग्रह बलवान का अस्त्र है निर्धन की कायरता को छिपाने का अस्त्र नही यह ऐसा अमोध अस्त्र है जिसका वार कभी खाली नही जाता। इस सम्बन्ध में कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी '

---

[1] हरिजन 4 नवम्बर 1993 पृ0 31।

[2] हरिजन 4 नवम्बर 1993 पृ0 31।

[3] गांधी विचार दोहन—महात्मा गाँधी पृ0 33।

2. गांधी व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव—डॉ0 एस0 राधाकृष्णन पृ0 489।

गांधीजी का मार्ग ' नामक लेख में लिखते है–'' गांधीजी के अहिंसक सत्याग्रह के अस्त्र दुर्बलता से नही, बल्कि शक्ति की भावना से हुआ। सन् 1920 में गांधीजी ने लिखा, ''अन्यायकर्ता की इच्छा के सामने चुपचाप झुक जाने का नाम असिंक सत्याग्रह नही हैं। इसके विपरीत सत्याग्रही अपनी पूरी आत्मिक शक्ति से अत्याचारी की इच्छा का मुकाबला करता है।.............मै भारत को अहिंसा का मार्ग अपनाने को इसलिए नही कहता कि वह कमजोर है। मै चाहता हूं कि वह अपनी शक्ति और बल को पहचानकर अहिंसा का प्रयोग करे।''[1] प्रेम और अहिंसा पर आधारित होने के कारण सत्याग्रह में अविनय के लिए कोई स्थान नही है, क्योंकि अविनय के साथ हिंसा का प्रवेश लगभग निश्चित हैं गांधीजी के अनुसार सत्याग्रही का अविनयी होना दूध में जहर पड़ने के समान है विनय का अर्थ है विरोधी के प्रति भी मन में आदर रखना, सरलभाव, उसके हित की इच्छा और तद्नुसार व्यवहार। सत्याग्रही का आग्रह अर्थात उसके द्वारा अत्याचारी का विरोध उसकी सत्यनिष्ठा से प्रेरित होता है किसी व्यक्तिगत द्वेष भावना से नही। [2] गांधी जी के मतानुसार अहिंसक साधनो द्वारा सत्य के लिए साधना ही सत्याग्रह है। [3] सत्याग्रह के अन्तर्गत अधर्म पर धर्म से, हिंसा पर अहिंसा से, असत्य पर सत्य से द्वेष पर प्रेम से तथा पशुबल पर आत्मबल से विजय प्राप्त करने और विरोधी की मानवता को जाग्रत करने का प्रयास किया जाता है। किसी को दबा देने की अपेक्षा उसका मत परिवर्तन कर देना ज्यादा अच्छा है। [4] ऐसा सत्याग्रही का विश्वास होता है। गांधीजी की धारणा थी कि पतित से पतित एवं कुटिल से कुटिल व्यक्ति के मन मे कोमल भावनाएं विद्यमान होती है। जिन्हें प्रेम पूर्ण व्यावहार, निष्काम सेवा, शुद्ध आचरण आदि शुभ–साधनो के द्वारा ह्दय में जागृत किया जा सकता है जिसके जागृत हो जाने पर अपराधी या पापी अपने कृत्य पर पश्चाताप प्रकट करते हुए प्रायश्चित करने की चेष्टा करता है। इसी को गांधीजी के ह्दय परिवर्तन के सिद्धान्त के रूप में जाना जाता है। '' ह्दय परिवर्तन केवल वैयक्तिक जीवन के परिवर्तन की प्रणाली ही नही है, बल्कि समूह का भी परिवर्तन इस प्रक्रिया के द्वारा होता है। इस प्रणाली द्वारा असमानता में आमूल परिवर्तन, शान्ति, अहिंसा प्रेम तथा आत्मपीड़न के द्वारा लाया जा सकता है जिसे सत्याग्रही

---

1. गांधी विचार दोहन–महात्मा गाँधी पृ0 70।

2. सर्वोदय तत्व दर्शन–गांधीजी पृ0 128।

3. सत्याग्रह मीमांसा–पृ0 52 प्र0 सं0 1949 सत्ता साहित्य मण्डल।

4-- गांधी दर्शन विविध आयाम, अलका अग्रवाल, शिखा अग्रवाल, पृ0 84।

प्रणाली भी कह सकते है। सत्याग्रह ह्दय परिवर्तन की एक प्रक्रिया है।"[1] सत्याग्रह के कई रूप हो सकते है जैसे समझाना, बुझाना उपवास, असहयोग, सविनयअवज्ञा, करबन्दी, धरना आदि सत्याग्रह व्यवस्था परिवर्तन के लिए किया जाने वाला वह अहिंसक सामूहिक आन्दोलन है जिसका प्रयोग गांधीजी ने राष्ट्रीय आन्दोलन के संचालन में किया था यह राष्ट्र को गांधी जी की मौलिक देन है।

अपरिग्रह—वास्तव में अस्तेय का ही एक अंग है जिसके अन्तर्गत अपनी आवश्यकताओं से अधिक वस्तुओं का संचय निषद्ध है और यदि कोई व्यक्ति ऐसा करता है तो वह एक प्रकार से चोरी करता है क्योंकि ऐसा करने से दूसरों का हिस्सा छीनता है। भारतीय–दर्शन की विशेषता का द्योतक यह सिद्धान्त भौतिक सम्पत्ति से असम्बद्धता रखते हुए धन संचयन के सिद्धान्त को नकारता है। इस विषय में उपनिषद् में एक स्थान पर कहा गया है किसी को भी वही वस्तुएं स्वीकार करनी चाहिए जो कि उसका नियतांश है, और दूसरे के नियतांश को स्वीकार नही करना चाहिए। इसी प्रकार गीता में भी कहा गया है " मनुष्य के लिए वही उनका न्याय है जो उनकी भूख शान्त करने के लिए नियत है जो भी इस उक्ति से अधिक प्राप्त करता है वह चोर है उसे सजा मिलनी चाहिए।" यदि केवल आवश्यकताओ को स्वेच्छा से सीमित करने की दुष्टि से देखा जाए तो यह एक नकारात्मक सिद्धान्त है। लेकिन गांधी जी ने इसे एक सकारात्मक सिद्धान्त के रूप में स्वीकार किया है उनका विचार है कि व्यक्ति को स्वामित्व में आवश्यकतानुसार कमी करनी चाहिए और शेष बचे स्वामित्व को दूसरे के कल्याणार्थ उपयोग में लाना चाहिए। गांधी जी के अनुसार यह आय अथवा सम्पत्ति के असमान वितरण की कम करने का अहिंसात्मक उपाय है जो व्यक्ति में विद्यमान लालच की भावना का उन्मूलन करके समानता को जन्म देता है। गांधी जी के अपरिग्रह का सिद्धान्त गीता पर आधारित है। इस विषय में गांधीजी का कथन है–"मेरे लिए गीता व्यवहार की मार्ग निर्देशिका है अपरिग्रह और समभाव जैसे शब्दों से मुझे प्रेरणा मिली है। गांधी जी के अनुसार धन संचय शोषण व हिंसा के बिना सम्भव नही है अतः यह अधर्म तथा पाप है जिससे व्यक्ति को मुक्त हो जाना चाहिए। गांधी जी ने सादा जीवन तथा मूल्यभूत आवश्यकताओं की पूर्ति पर ही अपने सिद्धान्तो की आधार शिला रखी है यही भावना उनके ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त में भी सन्निहित है। जिसके अनुसार " अमीर व्यक्ति को अपनी सम्पत्ति से अधिकार छोड देना चाहिए, अपनी आधार भूत

आवश्यकताओं की पूर्ति के पश्चात, शेष सभी सम्पत्ति का प्रयोग समाज के लिए ट्रस्टी की तरह करना चाहिए।" [1] गांधीजी कहते है "मै गीता के प्रकाश में प्रतिशब्द को अच्छी तरह समझता हूँ। गीता में वर्णित अस्तेय का अर्थ है जो भी मोच्क्ष प्राप्त करना चाहते है उन्हे ट्रस्टी की तरह व्यवहार करना चाहिए। तथा स्वामित्व में अपना स्वयं का एक कण भी नही मानना चाहिए।"गांधीजी का ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त धन संचय की बात को पूरी तरह नकारता है क्योकि धन संचय हिंसात्मक साधनों के बिना सम्भव नही है। [2] वह पूंजीपतियों से स्वत्व भाव तथा लोक को छोड़ने को कहते सम्पत्ति तथा स्वामित्व को नहीं इस प्रकार गांधी जी पूंजीपति वर्ग से घृणा करके उसे समाप्त करने की बात नही करते अपितु वह उस व्यवस्था को समाप्ति की कामना करते है जो पूंजीपति के निर्माण में सहायक हो उनका कहना था "जमीदारो वा पूंजीपतियों की समाप्ति की आवश्यकता नही है वरन वर्तमान स्थिति के पूंजीश्रम सम्बन्धों के स्वस्थ व पवित्र रूप में रूपान्तरण की आवश्यकता है।"[3] गांधीवादी नीतियो के विषय में किया गया उपरोक्त विवेचन गांधीजी के जीवन–दर्शन के केवल सैद्धान्तिक पक्ष को दर्शाता है। गांधीजीवाद के व्यवहारिक पक्ष का उल्लेख किए बना गांधीवादी नीतियों का यह वर्णन अधूरा रह जाएगा। गांधीजी की नीतियां केवल सत्य, अहिंसा आदि सैद्धान्तिक तथा वैचारिक प्रश्नों तक ही सीमित नही है बल्कि उनमें हमारे दैनिक जीवन की राजनीतिक सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक समस्याओं का निदान भी निहित है। गांधीवादी नीतियों के व्यवहारिक पक्ष में जिन तत्वों का समावेश है वे इस प्रकार है।

'स्वदेशी'– गीता के स्वधर्म पर आधारित होते हुए भी यह सिद्धान्त भारतीय समाज को गांधीजी के नितान्त मौलिक तथा उपयोगी देन है। अपने संकुचित अर्थ में स्वदेशी का तात्पर्य विदेशी वस्तुओं की प्रतियोगिता में स्वदेश में बनी वस्तुओं को बढावा देना, परन्तु यह तो स्वदेशी रूपी वृक्ष की एक शाखा मात्र है। गांधीजी के अनुसार–"जो चर्खे द्वारा जैसे–तैसे सूत कातकर खादी पहन–पहनाकर स्वदेशी–धर्म का पूर्ण व मान्य रखते है वे महामोह में डूबे हुऐ हैं। खादी सामाजिक स्वदेशी की पहली सीढी है, इस स्वदेशी धर्म की पर सीमा नही है।"[4] अपितु

---

1 हरिजन 25 अगस्त 1940।

2. हरिजन 16 फरवरी 1947 पृ0 25

1. N.K. Bose Selection from ghandhi P.157-158।

2.- गांधी साहित्य भाग–5 पृ0 173

3. गांधी साहित्य भाग–5 पृ0 170

"अपने पास रहने वालो की सेवा में ओतप्रोत हुए रहना स्वदेशी धर्म है।"[1] इस प्रकार गांधीजी का 'स्वदेशी व्रत केवल देशाभिमान के विचार से नही उपजा है, बल्कि धर्म के विचार में से उपजा है। समग्र विश्व के साथ बन्धुत्व की भावना के लिए हमारा प्रयत्न होते हुए भी, जिन पड़ोसियो के बीच हमारा जीवन दिन–रात गुजरता है अनेक विषयों में जिनके साथ हमारे सम्बन्ध जुड़े हुए है और जुड़ते रहते हैं, उन्हीं के साथ हमारा पहला व्यवहार होना उचित है। ऐसे धर्म युक्त व्यवहार की अवगणना करके विश्वबन्धुत्व की सिद्धि नहीं हो सकती केवल दिखावा भी होता है।"[2] गांधी जी के स्वदेशी सिद्धान्त में 'बशुधैवकुटुम्बकम' की भावना निहिति है जो देश सेवा के साथ–साथ विश्वप्रेम का भी सन्देश देती है। अपने इसी सिद्धान्त द्वारा गांधीजी ने अंग्रेजी शासन काल में मृत्यप्राय हो चुके देशी ग्रामोद्योगों को एक नया जीवन प्रदान किया। अहिंसा तथा प्रेम का पर्याय गांधी जी का यह व्रत लोग, ईर्ष्या, घृणा, प्रतिस्पर्धा आदि दोषों से रहित है।

गांधीजी देश की वर्तमान समाज व्यवस्था से सन्तुष्ट नही थे उन्होने देश की दोषपूर्ण समाज व्यवस्था में सुधार लाने तथा उसके पुनः निर्माणार्थ एक अठारह सूत्रीय रचनात्मक कार्यक्रम तैयार किया जिसे वे अपने सत्याग्रह आन्दोलन का एक महत्वपूर्ण अंग मानते थे जिसे व्यवहार में लाना प्रत्येक सत्याग्रही के लिए आवश्यक था। डॉ0 पट्टाभि सीता रमैय्या के अनुसार गांधी जी के यह रचनात्मक कार्यक्रम गांधीवाद की सम्पूर्ण तकनीक का प्रकट रूप या क्रियात्मक रूप में परिणत अहिंसा है। [3] गांधी जी ने अठारह सूत्रीय कार्यक्रम में जिन रचनात्मक कार्यों को सम्मलित किया था वे निम्नवत है।

1– साम्प्रदायिक एकता
2– अस्पृश्यता निवारण
3– मद्यपान निषेध
4– खादी
5– दूसरे ग्रामोद्योग
6– ग्रामों की सफाई
7– नई या बुनियादी तालीम
8– प्रौढ शिक्षा
9– स्त्रियों की उन्नति

---

[2] गांधी विचार दोहान–पृ0 23
2. गांधी और गांधीवाद–माग 2 पृ0 84–85।

10– स्वास्थ और सफाई की शिक्षा
11– मात्र भाषा प्रेम
12– राष्ट्र भाषा प्रेम
13– आर्थिक समानता
14–15–16– किसानो ' मजदूरो ' और विद्यार्थियो ' का संगठन
17– आदिवासियों की सेवा
18– कोढियों की सेवा

गाँधीजी ने गांवो को इकाई मानकर एक नई समाज व्यवस्था का निर्माण करने के लिए यह कार्यक्रम रखा था परन्तु यह कार्यक्रम अन्तिम व पूर्ण नही था आवश्यकता पड़ने पर परिस्थितियों के अनुसार इसमें नये कार्यक्रमो को भी जोड़ा जा सकता था। इन कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिए स्वयं सेवकों का संगठन भी किया गया था। "गाँधीजी भारतीय समाज को सच्चे अर्थ में स्वतन्त्र बनाना चाहते थे, इसीलिए अपने रचनात्मक कार्यक्रम के बीच में उन्होने चरखा, अस्पृश्यता निवारण और साम्प्रदायिक एकता को हमेशा रखा था। स्वतंत्रता उस समय तक केवल मजाक है, जब तक कि लोग भूखें मरे, नंगे रहे और असहय पीड़ा से सूखते रहे। चरखा जन साधारण को गरीबी, अज्ञान, बीमारी और गंदगी से मुक्ति दिलाने में सहायता करेगा। लाखों व्यक्ति यदि अपने पर लादे गये आलस्य को दूर नही कर सकते तो राजनैतिक स्वाधीनता का उनके लिए कोई मूल्य नही।"[1]

गांधीजी का आर्थिक जीवन–दर्शन भी अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और शरीरश्रम और स्वदेशी पर ही आधारित है, गाँधीजी के विषय में यह भ्रांति व्याप्त है कि वे पूर्णतयः यंत्र विरोधी थे जब कि वास्तविकता यह है कि वे मशीनों के बिना सोचे–समझें प्रयोग के विरूद्ध थे। इस विषय में वे स्वयं कहते हैं–" जब मै यह जानता हूँ कि यह शरीर स्वयं यंत्रो का एक नाजुक समूह है, तब मैं मशीन के खिलाफ कैसे हो सकता हूँ। चरखा एक मशीन है। छोटी सी खरिका (दांत–कुरेदिनी) भी एक मशीन है अतः मै तो मशीन के लिए पागल बनने की वृत्तिका विरोधी हूं, स्वयं मशीन का नही। यह पागलपन उनके कथानानुसार श्रम–शक्ति के बचाने के लिए है। लोग इस श्रम–शक्ति को बचाने की धुन में यहां तक आगे बढ जाते है कि हजारों लोग बेकार होकर खुली सडकों पर भूखों मरने लगते है। मै समय और श्रम दोनो की बचत करना चाहता हूँ, लेकिन मानव–जाति के किसी एक अंश के लिए नही वरन् सबके लिए। मै चाहता हूं कि

[1] प्रस्तावना, गाँधी व्यक्तित्व, विचार और प्रभाव–डॉ0 एस0 राधा कृष्णन,

पूंजी का संचय कुछ हाथों में न होकर, सब हाथो मे हो। मशीन आज केवल कुछ व्यक्तियों का लाखों लोगो की पीठ पर सवार होने में सहायता पहुंचाती है। सबके पीछे मेहनत बचाने की कल्याण–भावना नही, वरन् लालच हैं। अपनी समस्त शक्ति के साथ वस्तुओं की इस व्यवस्था के विरोध में मै लड़ रहा हूँ। मशीनों को मनुष्य की हड्डियों को चूसने का काम नहीं करने देना है। बिजली द्वारा संचालित कारखानों का राष्ट्रीयकरण अथवा राजनियंत्रण होना चाहिए। इस कार्य में सबसे अधिक ध्यान मनुष्य का रहना चाहिए।"[1]

महात्मा गांधी ने देश की राजनीत में जिस समय पदार्पण किया भारत के स्वतंत्रता संग्राम रूपी समुद्र में नरम तथा गरम दलरूपी दो धाराओं की टकराहट थी जिसने समुद्र की लहरों के वेग को क्षीण कर दिया थां। जिसके कारण वह जन साधारण तक व्यापक रूप से नही पहुंच पा रही थी। तद्युगीन नेताओं की आवाज जनता के कानो तक ठीक प्रकार से नही पहुंच पा रही थी। ऐसे समय में महात्मागांधी वह प्रथम नेता थे जिन्होने रोती कलपती पराधीनता के दंश से कलपती भारतीय जनता के मन में आशा के नए द्वीप जलाए। जिस समय (1915 ई0) में "गाँधी जी दक्षिण अफ्रीका से भारत आए, उस समय देश की राजनीति निम्नतम बिन्दु पर थी। देश भक्तों के सामने केवल दो मार्ग खुले थे। या तो गोखले की विचार धारा का अनुसरण करके वैधानिक चलाये या आतंकवादियों का साथ दें जो हिंसा के द्वारा आज़ादी हासिल करना चाहते थे। गांधीजी ने एक तीसरा मार्ग लोगों के सामने रखा। यह अहिंसात्मक साधनो द्वारा रामराज्य की स्थापना का मार्ग था। आरम्भ में तत्कालीन नेताओ ने गांधी जी की कल्पना को स्वप्नलोक की कल्पना समझा। अनेक नेताओं ने उसका खुला मज़ाक उड़ाया। उन्होने सोचा कि यह एक धार्मिक किन्तु अव्यावहारिक आदमी की सनक है। किन्तु गांधी जी ने अहिंसक समाज अर्थात रामराज्य की स्थापना के लिए जिस अनुशासन की शिक्षा दी, उसकी सामर्थ्य की कसौटी उन अनेक आन्दोलनो द्वारा हुई जिनका सूत्रपात और संचालन गांधी जी ने किया था।"[2] बिपिन चन्द्र अपने पुस्तक भारत का स्वतंत्रता संघर्ष में लिखते हैं–

---

[1] गांधी व्यक्तित्व विचार और प्रभाव' की प्रस्तावना से उद्वधृत।

[2] – गांधी व्यक्तित्व विचार और अप्रभाव डॉ0 एस0 राधाकृष्णन पृ0 488।

3.. 'भारत का स्वतंत्रता संघर्ष'–बिपिन चन्द्र पृ0 408।

"अहिंसा को गांधीजी ने सिद्धांत के तौर पर स्वीकार किया था, लेकिन उनके अधिकांश समकालीन कांग्रेसी नेताओ के लिए मसलन चित्तरंजन दास, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, मौलाना आजाद, सरदार पटेल, आचार्य नरेन्द्र देव आदि यह नीति थी। इस रूप में तथा राजनीतिक कार्यवाही एवं आचरण के स्तर पर अहिंसा राष्ट्रीय कांग्रेस की समग्र रणनीति का एक महत्वपूर्ण अंग थी।"[1]

राजनीति की प्रत्येक लहर का सदुपयोग करने की गांधीजी में अद्‌भुद क्षमता थी। देश की परिस्थितियों को देखते हुए वे समझ रहे थे कि अब समय आ गया है कि अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों का मुकाबला करने के लिए सक्रिय कदम उठाए जाएं। अतः 1920 ई0 में गांधीजी ने खिलाफत कमेटी को अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध असहयोग आन्दोलन आरम्भ करने की सलाह दी। कांग्रेस जो उस समय देश की सबसे बडी राजनीतिक संस्था थी उसे भी यह विश्वास हो चला था कि संबैधानिक उपायों से देश का उद्वार नही होने वाला अतएव अंग्रेज सरकार की नीतियों से क्षुब्ध कांग्रेस भी महात्मा गांधी जी कें असहयोग आन्दोलन का मार्ग अपनाने को तत्पर हो गई सितम्बर सन् 1920 को कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में कई नेताओं के विरोध के बावजूद असहयोग आन्दोलन को स्वीकृत प्रदान करते हुए कांग्रेस ने इसे अपना आन्दोलन मान लिया। कलकत्ता अधिवेशन में ही गांधी जी ने खिलाफत लीग को कांग्रेस में सम्मलित कर लिया था। मौलाना मोहम्मद अली तथा शौकत अली कांग्रेसी नेता बन गए। नए कार्यक्रमों के क्रियान्वय के लिए गांधी जी ने कांग्रेस के क्रियात्मक स्वरूप में परिवर्तन करते हुए जो नया संविधान तैयार किया उसमें कांग्रेस के उद्देश्यो के साथ–साथ उसके चरित्र को भी काफी कुछ परिवर्तित कर दिया। " अब कांग्रेस के रोजमर्रा के काम को देखने के लिए 15 सदस्यीय कार्यकारिणी गठित की गई।.................गांधी जी जानते थे कि किसी आंदोलन को लम्बे समय तक चलाने के लिए कोई ऐसी कमेटी होनी चाहिए, जो साल भर सारा काम काज देखती रहे। स्थानीय स्तर पर कार्यक्रमों को अमली जामा पहनाने के लिए प्रदेश कांग्रेस समितियों का गठन किया गया। इनका गठन भाषाई आधार पर किया गया, जिससे इनमें स्थानीय लोगों की ज्यादा से ज्यादा भागीदारी हों। इसके बाद कांग्रेस ने गांवो कस्बों तक पहुंचने का लक्ष्य बनाया। गांवों और कस्बो में भी कांग्रेस समितियां गठित की

गई। सदस्यता फीस चार आना साल भर कर दी गई जिसमें गरीब लोग भी सदस्य बन सकें। इस तरह कांग्रेस संगठन का दायरा भी बढ़ा और उसका विकेद्रीकरण भी हुआ।...............मार्च 1921 में विजयवाडा में कांग्रेस सम्मेलन हुआ। कार्यकर्ताओं को आदेश दिया गया कि वे अगले तीन महीने तक अपना सारा ध्यान कोष इकट्ठा करने, सदस्य बनाने और चरखा बांटने पर दें। सदस्यता का लक्ष्य एक करोड रखा गया था। यह लक्ष्य तो पूरा नही हुआ, लेकिन सदस्य संख्या 50 लाख तक पहुंचा दी गई। ' तिलक स्वराज फंड ' अपने लक्ष्य से भी आगे निकल गया। एक करोड़ से ज्यादा रूपये इकट्टे कर लिए गये। चरखे और खादी का खूब प्रचार हुआ। खादी तो राष्ट्रीय आंदोलन की प्रतीक बन गई।'' [1] इस विषय में रजनी पामदत्त अपनी पुस्तक ' आज का भारत ' में लिखते है–'' गांधी द्वारा शुरू किए गए नए कार्यक्रम और नीति से राष्ट्रीय कांग्रेस ने एक बहुत बडा कदम उठाया। अब कांग्रेस एक ऐसी राजनीतिक पार्टी बन गई थी जो राष्ट्रीय स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध जनसंघर्ष का नेतृत्व करने को उठ खड़ी हुई थी। यहां से प्रगति करते–करते कांग्रेस इस स्थिति जिसे देखकर प्रारम्भिक दिनों के उग्रराष्ट्रवादी भी हैरान हो गए। तक पहुंच गई कि वह राष्ट्रीय आन्दोलन का मुख्य केन्द्र बिंदु बन गई।''[2] असहयोग आन्दोलन गांधी जी का एक ऐसा कार्यक्रम था जिसके द्वारा वे नरम तथा गरम दल, दोनों के बीच की खॉई को पाटने में सफल हुए थे अहिंसा के नरमदल वाले खुश हो गए तो साम्राज्य विरोधी जन आन्दोंलन के आह्वान गरमदल को उत्साह से भर दिया। कांग्रेसी नेताओं ने आन्दोलन को शक्तिशाली बनाने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में आरम्भ करने का निश्चय किया क्योंकि यह आन्दोलन केवल शहरी मध्यवर्ग तक ही सीमित था। गांव जहां भारत की अधिकतम जनसंख्या निवास करती थी राष्ट्रीय आन्दोलन की लहर से अछूते थे। गांव में आन्दोलंन को सफल बनाने के लिए एक बन्दी को सामूहिक सत्ताग्रह का अंग बनाया गया आगे चलकर जनता के सामूहिक सत्याग्रह ने अत्यन्त विकराल रूप धारण कर लिया जिसकी चरम परिणति चौरी–चौरा की हिंसात्मक घटना के रूप में हुई। जिससे

---

[1] –'भारत का स्वतंत्रता संघर्ष'–बिपिन चन्द्र पृ0 136–137।

[2] ' आज का भारत ' रजनीपाम दत्त–पृ0 35।

2. सुभाष चंद्रबोस 'दि इंडियन स्ट्रगल, पृ0 90।

क्षुब्ध होकर गांधीजी ने आन्दोलन को स्थगित कर दिया। गांधी जी के इस निर्णय में देश की जनता के साथ–साथ कांग्रेस को भी निराशा तथा कुंठा से भर दिया।" जिस समय जनता में उत्साह और जोश उबला पड़ रहा था ठीक उसी वक्त पीछे हटने का आदेश देना संपूर्ण राष्ट्र के लिए महान दुर्घटना थी। महात्मा गांधी के प्रमुख सहयोगियो देश बन्धुदास पंडित, मोतीलाल नेहरू और लाला लाजपतराय ने ये सब जेल में थे, आम जनता की ही तरह इस फैसले पर गहरा असंतोष व्यक्त किया।"[1] उस समय दिल्ली के कांग्रेस महासमिति के अधिवेशन में गांधीजी के प्रति विरोध तथा अविश्वास की भावना का हल्का सा प्रर्दशन हुआ आपसी मत–भेद के कारण कांग्रेस के भीतर दो वर्ग बन गए वह वर्ग जो गांधी जी का समर्थक था अपरिवर्तन वादी कहलाया तथा गांधीजी के विरोधी वर्ग को परिवर्तन वादी की संज्ञा दी गई। परिवर्तन वादी का प्रतिनिधित्व मोतीलाल नेहरू तथा आर0 सी0 दास आदि कर रहे थे। " उन्हे कांग्रेस के अन्दर रहते हुए ही चुनाव लड़ने और संसदीय स्तर पर नई विधान सभाओं में संघर्ष चलाने के लिए एक नई पार्टी का गठन किया। इस पार्टी का नाम स्वराज्य पार्टी रखा गया।"[2] 1925 तक ' स्वराज्य पार्टी ' ने अपरिवर्तन वादियां से बहुमत पा लिया। कांग्रेस का नियंत्रण इसके हांथों में आ गया ऐसे में गांधीजी तथा उनके अनुयायी कुछ समय के लिए राजनीति से तटस्थ होकर रचनात्मक कार्यक्रमो चरखा नशाबन्दी, अछूतोधार में लग गए कांग्रेस आन्दोलनों की असफलता तथा गांधीवादी नेतृत्व से निराश अनेकानेक साम्राज्य विरोधी तरूण समाजवाद के उग्रवादी चिन्तन की ओर झुके। मई–1934 ई0 में समाजवादी विचारधारा रखने वाले कांग्रेसियों ने (कांग्रेस समाजवादी दल) के नाम से कांग्रेस के अन्दर एक नवीन संगठन की स्थापना की कांग्रेस ने समाज वादी दल की बढ़ती हुई संख्या और प्रभाव को देखते हुए गांधीजी ने कांग्रेस से अवकाश ग्रहण करने का फैसला लिया। "1934 के शरद में गांधी ने कांग्रेस की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया, उनका काम फिलहाल पूरा हो चुका था। कांग्रेस से अलग होते हुए उन्होने एक वक्तव्य दिया–जिसमें उन्होने बताया कि, मुझमे और अनेक कांग्रेसियों में मतभेद है और वह बढता ही जा रहा है।' यह स्पष्ट था कि 'कांग्रेसियों के बहुमत' के लिए 'अहिंसा' कोई बुनियादी धर्म नही था बल्कि यह एक 'नीति'। कांग्रेस में

---

1. –'आज का भारत' रजनीपाम दत्त, पृ0 362।

समाजवादी लोगों की संख्या बढ़ रही थी और उनका प्रभाव भी बढ़ रहा था। 'यदि कांग्रेस में उनका प्रभुत्व कायम हो गया जिसकी काफी संभावना है तो मै कांग्रेस में नही रह सकता।'' [1] गांधीजी के इस निर्णय को लेकर कांग्रेस की भीतर तीखी बहस छिड़ गई। अक्टूबर में बम्बई में होने वाले अखिल भारतीय अधिवेशन में गांधीजी से अपने निर्णय पर पुनर्विचार करने का बार–बार अनुरोध किया गया। इसी अधिवेशन में यह प्रस्ताव के द्वारा गांधीजी के नेतृत्व में विश्वास व्यक्त किया गया। परन्तु गांधी जी ने अपने फैसले पर अटल रहे। कांग्रेस से अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् गांधीजी ने विवादास्पद राजनीतिक विषयों पर सार्वजनिक रूप से टिप्पणी करना बन्द कर दिया। परन्तु 'हरिजन' में प्रकाशित होने वाले लेखों जिनका विषय अधिकतर खादी ग्रामाद्योग, अस्पृश्यता, सफाई, गोरक्षा, गर्भनिरोध इत्यादि हुआ करते थे जिनका राजनीति से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध न होते हुए भी गांधीजी कांग्रेसजनों के राजनीतिक जीवन पर प्रभाव डाल रहे थे। इस प्रकार कह सकते हैं कि यद्यपि गांधी जी की नीतियों से कांग्रेस का मतभेद बना रहा तथापि उनकी इन नीतियों मे नैतिक साधनों द्वारा अन्याय का प्रतिरोध करने की, जन–चेतना जाग्रति करने की, जनता को निर्भर बनाने की, जो अद्‌भुद क्षमता थी उसके कारण कांग्रेस पर गांधीजी की नीतियों का प्रभाव किसी न किसी रूप में अन्त तक कायम रहा।

---

[1] आज का भारत' रजनीपाम दत्त, पृ0 388।

शासक वर्ग द्वारा शोषण एवं संघर्ष सामंत और जमींदार –

ब्रिटिश साम्राज्यवाद की निरंकुशता सत्ता के अन्तर्गत भारत की जनता का किस प्रकार निर्मम शोषण किया गया इस विषय पर पिछले अध्याय में विस्तृत चर्चा हो चुकी है अतः यहाँ उसका सिंहावलोकन करते हुए शासक वर्ग द्वारा किए गये शोषण के विरूद्ध जनता द्वारा किए जाने वाले संघर्षो का विस्तार पूर्वक वर्णन करना अधिक समीचीन होगा।

ब्रिटिश सरकार के कठोर तथा निर्मम शासनकाल में भारत की असहाय पराधीन जनता राजाओं, जमींदारों, साहूकारों, सामंतों, धर्मगुरूओं भ्रष्ट पदाधिकारियों के चतुर्मुखी शोषण से त्रस्त थी एक ओर भारत की बहुसंख्यक ग्रामीण जनता निर्धनता, भूख, अकाल महामारी से बेहाल थी दूसरी ओर करों के बोझ ने उनको जीना दूभर कर रखा था। भारत की जनता का शोषण तथा दमन करने मे अंग्रेजी शासन को जिन वर्गो ने भरपूर सहयोग दिया उनमें भारतीय सामंत तथा जमींदार वर्ग विशेष रूप से उल्लेखनीय है ––" अंग्रेजों ने भारत वर्ष के बिखरे हुए सामंतों को नष्ट कर अपना राज्य स्थापित किया था। सन् 1857 की क्रान्ति – जिसे स्वतंत्रता–संग्राम की प्रथम चेतना मानी जा सकती है– इन्हीं सामन्तो ने नेतृत्व मे जनता द्वारा लड़ा जाने वाला संग्राम था, परन्तु भारतीयों को असफलता मिली। इस आन्दोंलन के बाद ज़मींदारो के पैर उखड गये तथा अंग्रेजों के साहस ने जबाव दे दिया। फलतः अंग्रेजों ने शेष सामंती राज्यों को छेडना उचित नही समझा। यद्यपि इन राज्यों की निगरानी एवं नियंत्रण के लिए अंग्रेजी सरकार ने राजनैतिक एजेन्ट नियुक्त कर दिये तथापि सामंतों का कुछ न कुछ स्वतंत्र अस्तित्व बना रहा। " [1]

बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक काल में जब भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन जोर पकडने लगा तो अंग्रेजों ने यहॉ अपने पैर–जमाए रखने के लिए देशी राजाओं, सामंतों तथा जमीदारों के स्वत्व को संरक्षण प्रदान करने की कूटनीति अपना कर उन्हें अपना हितैसी बना लिया। इन जमींदारों तथा ताल्लुकेदारों को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए ब्रिटिस सरकार की कृपा दृष्टि की आवश्यकता थी जिसे प्राप्त करने के लिए उन्होंने अंग्रेजी सरकार के अत्याचार तथा दमन नीति में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया और उनके इशारे पर मनमाने ढंग से जनता का निर्दय शोषण किया– " अंग्रेजों के उपनिवेश वादी शोषण का कहर

---

[1]भगवती चरण शर्मा के उपन्यासो में युग चेतना बैजनाथ प्रसाद पृ0 177।

खेतिहर मजदूरों की ही रह गई।"[1] इस प्रकार गॉव के अधिकांश किसान दोहरे शोषण के चक्की में पिसकर तबाह हो गए उनकी विपन्नता ने उन्हें मजदूर बनने पर विवश कर दिया। औद्योगिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था में इन ग्रामीण मजदूरों को नगरों में काम मिलना सम्भव न था अतः विवशता वश उन्हें गॉव मे ही मज़दूरी करनी पड़ी। कालान्तर में औद्योगीकरण के विकास के परिणाम स्वरूप देश में भारी संख्या में नये-नये कल कारखाने खुले और भारत का आधुनिक मजदूर वर्ग अस्तित्व में आया। इन कल कारखानों की स्थापना के साथ ही पूँजीपतियों द्वारा मजदूर वर्ग का शोषण प्रारम्भ हुआ अर्थात औद्योगीकरण के विकास के समानान्तर मजदूर वर्ग की समस्याएँ बढती गई और उनकी स्थिति दिन प्रतिदिन दयनीय होती गई। इस प्रकार हम देखते है कि ब्रिटिश शासन काल में किसानों तथा मजदूरों का भयंकर शोषण क्रमशः जमींदारों और पूँजीपतियों द्वारा हो रहा था। इस आन्तरिक शोषण के अतिरिक्त इन निरीह प्राणियों का विदेशी शासकों द्वारा बाह्य शोषण भी कम न था। औपनिवेशिक शासन में प्रतिपल बढ़ते शोषण के थमने के कोई आसार दिखाई नही दे रहे थे। इन बाह्यान्तरिक शोषण से मुक्ति पाने के लिए शोषितों ने विद्रोह का सहारा लिया -"विदेशी हुकूमत और भारतीय शोषकों के खिलाफ 19वीं सदी में ही किसान कसमसाने लगे थे और कई बार उन्होने विद्रोह व आन्दोलन का भी रास्ता पकड़ा। "[2]

1860-61 में बंगाल का नील आन्दोंलन किसानों के नेतृत्व में चलने वाला सबसे बड़ा तथा सबसे जुझारू संघर्ष था जो जमींदारों, उपनिवेशवादियों और अंग्रेज निलहे पूँजीवादी जमींदारों के विरूद्ध 1860 से 63 ई0 तक का जयन्तिया विद्रोह और 1860 से 1880 तक चलने वाला कूकियों का बिद्रोह इस विषय में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सरकारी कर्मचारियों व सामंतो एवं जमींदारों को लूटने वाला यह विद्रोही किसान आर्थिक तंगी से जूझ रही प्रजा की सहायता किया करते थे। इस प्रकार के किसान विद्रोह देश के अन्य भागों में भी 1900 ई0 तक होते रहे। किसानों के असन्तोष से उपजे इन असंगठित विद्रोहो को आन्दोलन का रूप देने में बीसवीं सदी के राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जिसके परिणाम स्वरूप बीसवीं सदी के दूसरे तथा तीसरे दशक में

---

[1] भारत का स्वतंत्रता संग्राम-विपिन चन्द्र पृ0 19।

[2] भारत का स्वतंत्रता संघर्ष-विपिन चन्द्र पृ0 145।

किसान सभा आन्दोंलन, मलाबर का मापिल्ला विद्रोह और गुजरात में बारदोली सत्याग्रह जैसे किसानों के तीन महत्वपूर्ण संघर्षों का जन्म हुआ।

ब्रिटिस सरकार द्वारा 1856 ई0 में अवध पर अधिपत्य करने के पश्चात वहाँ के ताल्लुकेदारों तथा जमींदारों द्वारा किसानों का बर्बरता पूर्वक शोषण किया जाने लगा। वे निस्सहाय किसानों से, मन चाहा लगान वसूल करते नज़र–नज़राने लेते और जब जी में आता उन्हें उनकी जमीनों से बेदखल कर देते। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात मँहगाई का प्रकोप झेल रहे कृषकों को शोषण और अत्याचार की इस पराकाष्ठा ने संघर्ष की ओर उन्मुख किया। इन संघर्षोन्मुख किसानों को संगठित करने का कार्य सबसे पहले होमरूल लीग आन्दोंलन के कार्य कर्ताओं ने किया जो उस समय अवध में बडे पैमाने पर सक्रिय थें गौरीशकर मिश्र, इंद्रनारायण द्विवेदी और मदनमोहन मालवीय आदि ने फरवरी 1918 में उ0प्र0 किसान सभा का गठन करके बडी संख्या में किसानों को संगठित करने का प्रयास किया। दिसम्बर 1918 में दिल्ली मे होने वाले कांग्रेस अधिवेशन में उत्तर–प्रदेश के किसानों की भारी संख्या में उपस्थिति इस बात की द्योतक है कि 'किसानों को जागरूक बनाने में कितनी सफल हुई थी। " 1919 कें अंतिम दिनों में किसानों का संगठित विद्रोह खुलकर सामने आया। प्रतापगढ़ जिले की एक जागीर में 'नाई–धोबीबंद' सामाजिक बहिष्कार संगठित कार्यवाही की पहली घटना थी। 1920 की ग्रीष्म ऋतु से एक ओर जहाँ राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक गति विधियाँ जोर पकड़ने लगी वही अवध की तालुकेदारी में ग्राम पंचायतों के नेतृत्व में किसान बैठको का सिलसिला शुरू हो गया। झिंगुरी सिंह और दुर्गा पाल सिंह ने इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। लेकिन जल्दी ही आन्दोलन में एक नया चेहरा उभरा– बाबा रामचंद्र, जिन्होने आंदोलन की बागडोर ही नही संभाली, बल्कि उसे और मजबूत और जुझारू बनाया।"[1] महाराष्ट्र के एक ब्राह्मण परिवार में जन्मे बाबा रामचन्द्र में संगठन की अद्‌भुत क्षमता थी 1920 के मध्य में वे एक किसान नेता के रूप में तेजी से उभरे और अवध के किसानों को संगठित करना आरम्भ किया।

28 अगस्त 1920 को बाबा रामचंद्र तथा 32 अन्य किसानों को चोरी के झूठे आरोप में गिरफ्तार करके ताल्लुकेदारों ने जोर पकड़े किसान आंदोलन का दमन करने का प्रयत्न किया परन्तु किसानों की संगठित शक्ति के आगे उन्हे

---

[1] भारत का स्वतंत्रता संघर्ष–विपिन चन्द्र पृ0 146।

सफलता नहीं मिली किसानों के जबर्दस्त विरोध को देखते हुए सरकार ने चोरी के झूठे मामले को खारिज करते हुए जमींदारों को अपने बर्ताव में परिवर्तन लाने पर दबाव डाला। इस छोटी सी सफलता ने किसानों में एक नई उर्जा भर दी।

17 अक्टूबर 1920 को असहयोग आन्दोंलन कारियों ने 'अवध किसान सभा' के नाम से एक नया संगठन स्थापित किया जिसमें अवध प्रांत की समस्त नवनिर्मित सभाओं को मिला दिया गया। बाजारों मकानों खेतों को लूटना तथा पुलिस के साथ संघर्ष करना यह किसानों की मुख्य विद्रोही कार्यवाहियॉ थी। किसानों की इन संघर्षशील गतिविधियों के प्रमुख केन्द्र रायबरेली, फैजाबाद और सुल्तानपुर थे। इसी बीच अंग्रेज सरकार ने अवध मालगुजारी अधिनियम के द्वारा आन्दोंलन को तोड़ने का प्रयास किया। किसानों से 50 प्रतिशत ज्यादा लगान वसूल किया जा रहा था। जमींदार के करिन्दे उन पर भॉति–भॉति के अत्याचार कर रहे थे जिसके परिणाम स्वरूप 'एका आन्दोलन' नाम से किसानों ने अपना संगठित प्रतिरोध प्रदर्शित किया इस नये संगठन का श्रेय कांग्रेस तथा खिलाफत नेताओं को जाता है। "एका आन्दोंलन ने थोड़े ही समय में अपनी अलग जड़े जमा ली आन्दोलन का नेतृत्व पिछ्डी ज़ातियों के मदारी पासी व अन्य नेताओं के हाथ में चला गया – ऐसे लोगो के हाथ में, जो कांग्रेस और खिलाफत नेताओं के अनुशासित और अंहिसक आंदोलन के सिद्धान्त के प्रति पूरी तरह से प्रतिबद्ध नही थे। इसका नतीजा यह हुआ कि राष्ट्रवादी नेता आंदोलन से अलग–अलग पड़ गये और आंदोलन ने एक दूसरी राह पकड़ ली। चौरी–चौरा कांड के बाद, जब गॉधीजी ने असहयोग आंदोलन वापस ले लिया, तब भी किसानों का यह आंदोलन चलता ही रहा। यह आंदोलन पहले के 'किसान सभा' आंदोलन से एक मायने में और अलग था। किसान आंदोलन मूलतः काश्तकारों का आंदोलन था। इसमें जमीदार नही थे, पर 'एका आंदोलन' में छोटे मोटे जमींदार भी शामिल थे, ऐसे जमींदार जो बड़े हुए लगान के बोझ से परेशान और सरकार से नाराज थे। लेकिन सरकार ने दमन के बल पर मार्च 1922 के आते–आते इस आंदोलन को भी खत्मकर दिया।"[1]

माप्पिला विद्रोह अगस्त 1921 ई0 में मलाबार जिले में होने वाला किसानों का विद्रोह दूसरे किसी भी किसान संघर्ष की तुलना में अधिक व्यापक आन्दोलन था। अप्रैल 1920 में मंजेरी में हुए मलाबार जिला कांग्रेस सम्मेलन ने किसानों के

---

[1] भारत का स्वतंत्रता संघर्ष–विपिन चन्द्र पृ0 148।

इस आन्दोलन के लिए पृष्ठभूमि का कार्य किया। इस सम्मेलन में किसानों की जायज मागों का समर्थन करते हुए ज़मीदार–किसान सम्बन्धों निर्धारण हेतु कानून बनाने की मांग की इस सम्मेलन के बाद सर्वप्रथम कोसी कांड मे कृषकों के एक संगठन की स्थापना की गई तत्पश्चात जिले में अन्य स्थानों पर भी कृषक संगठन बनाए गए। इन संगठनों में किसानों की जायज़ मॉगे उठाई जाती थी। इस आन्दोलन का मूलाधार : मापिल्ला काश्तकार थे। मापिल्ला विद्रोह के समानान्तर ही खिलाफत आंदोलन भी जोर पकड़ता जा रहा था। कालान्तर में यह दोनों आन्दोंलन एक–दूसरे में इस तरह समाहित हो गए कि उनमें भेद करना कठिन हो गया क्योंकि खिलाफत आन्दोंलन तथा काश्तकारों की बैठकों में भाग लेने वाले नेता एवं श्रोतागण समान थे–"खिलाफत और काश्तकारों के इस आन्दोलन के दिन–ब–दिन जोर पकड़ने से ॲग्रेजी हुकूमत बौखला गई। गॉधीजी, शौकत अली और मौलाना आज़ाद ने इन इलाकों का दौरा किया और इन आन्दोलनों का समर्थन किया था, जिससे सरकार घबरा गई थी। 15 फरवरी 1921 को सरकार ने निषेधाज्ञा लागू कर खिलाफत आंदोलन से संबंधित किसी भी तरह की बैठक पर प्रतिबंध लगा दिया। सरकार का तर्क था कि इस तरह की बैठकों के माध्यम से मापिल्लाओं को सरकार व हिंदू जमींदारों के खिलाफ भड़काया जाएगा। 18 फरवरी को खिलाफ़त आंदोलन तथा कांग्रेस के सभी वरिष्ठ नेताओं, याकूब हसन, यू0 गोपाल मेमन, पी मोइद्दीन कोया और के0 माधवन नायर को गिरफ़्तार कर लिया गया। इसका नतीजा यह हुआ कि आंदोलन का नेतृत्व स्थानीय मापिल्ला नेताओं के हाथ में चला गया। "[1]

अंग्रेज सरकार की दमनकारी नीतियों से क्षुब्ध मापिल्ला प्रत्यक्ष रूप से संघर्ष करने पर उतर आए। 20 अगस्त 1921 को एरनाड़ तालुके के मजिस्ट्रेट ने अलीमुसलियार को जो कि खिलाफ़त आन्दोंलन के एक प्रमुख नेता तथा स्थानीय मुसलमानों के धर्मगुरू थे गिरफ्तार करने के लिए निरूरांगड़ी की मस्जिद पर छापा मारा परन्तु उसे सफलता नहीं मिली जिसकी भरपाई उसने खिलाफत आन्दोंलन के तीन अन्य कार्यकर्ताओं को गिरफ्तारी के द्वारा की। पवित्र मस्ज़िद पर अंग्रेजी छापे के समाचार के साथ–साथ उसे नष्ट करने को भी अफ़वाह फैल गई जिसे सुनकर कोट्टाकाल, पारप्पा, नागड़ी आदि स्थानों से मापिल्ला तिरूरांगडी में एकत्र होकर गिरफ़्तार खिलाफत कार्यकर्ताओं की रिहाई की मॉग करते हुए शांतिपूर्वक विरोध प्रकट किया जिसका उत्तर पुलिस ने निहत्थी भीड़

[1] भारत का स्वतंत्रता संघर्ष–विपिन चन्द्र पृ0 149।

पर गोलिंयॉ बरसाकर दिया जिसमें काफ़ी लोग मारे मापिल्लाओं ने भी हिंसा का प्रत्युत्तर हिंसा से देते हुए सरकारी खज़ाने को लूटा सरकारी कार्यालयों को क्षति पहुँचाते हुए वहॉ रखे दस्तावेजों को आग के हवाले कर दिया। मापिल्ला विद्रोहियों ने केवल निर्दयी जमींदारों, और सरकारी कार्यालयों एवं विदेशी बागान मालिकों को ही हानि पहुँचाई निर्धन हिन्दू तथा उदार जमींदार उनके निशाने पर नही थे। हिन्दूओं को परेशान करने वाला विद्रोही दण्ड का भागीदार होता। ''लेकिन जैसे ही अंग्रेजी हुकूमत ने सैनिक शासन (मार्शल लॉ) की घोषण की और दमन का चक्र तेज हुआ, विद्रोह का चरित्र बदल गया। अंग्रेजी हुकूमत ने तमाम हिंदुओं को जबरदस्ती अपना साथ देने को कहा और कुछ हिंदू अपने आप खुले तौर पर हुकूमत का साथ देने लगे। इसका नतीज़ा यह हुआ कि माप्पिलाओं में पहले से ही सुलगती हिन्दू विरोधी भावना भड़क उठी। ———————जैसे–जैसे सत्ता का दमन बढ़ता गया, हिन्दुओं पर हमला उनकी हत्या और जबरन धर्म परिवर्तन की घटनाए बढ़ने लगी। जो संघर्ष सत्ता और जमींदारों के खिलाफ शुरू हुआ था, उसमें अब सांप्रदायिक रंग भी घुल गया।'[1] हिंसात्मक कार्यवाहियों के कारण अहिंसक असहयोग आन्दोंलनकारी मापिल्लाओं से पहले ही सम्बन्ध विच्छेद कर लिया था ऊपर से साम्प्रदायिकता ने मापिल्लाओं को बिल्कुल अकेला कर दिया। जिसका लाभ उठाते हुए सरकार ने 1921 तक इस विद्रोह का निर्ममताः पूर्वक दमन कर दिया जिसके कारण मापिल्ला पूरी तरह टूट गये और बाद में होने वाले किसान आन्दोलन मे वे सम्मिलित नही हुए।

सन् 1928 में गुजरात के सूरत जिले के बारदोली ताल्लुके में होने वाला किसानों का लगान बंदी आन्दोलन वस्तुतः गॉधी जी के असहयोग आन्दोंलन से ही उपजा था। 1922 में यहीं से शुरू होने वाला असहयोग आन्दोलन चौरी–चौरा कांड के कारण आरम्भ न हो सका परन्तु 1922 से ही बारदोली ज़ोरदार राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बन गया। इस ताल्लुके की 60 प्रतिशत जनसंख्या अछूतों तथा आदिवासियों की थी जिन्हे कालिपराज (अश्वेतजन) की संज्ञा दी गई थी। सूदखोर, महाजन, तथा जमींदार इन निर्धन कालिपराजों का आर्थिक तथा यौन–शोषण कर रहे थे। 1922 में ही गॉधी जी के सलाह पर बारदोली कांग्रेसी कार्यकर्ताओं ने इन आदिवासियों के लिए पूरे ताल्लुके में स्थान–स्थान पर आश्रम खोले जिनके माध्यम से इन पिछड़े लोगों में शिक्षा का

---

[1] भारत का स्वतंत्रता संघर्ष–विपिन चन्द्र पृ0 150।

प्रसार तथा अन्य कार्य करके कांग्रेस ने इनके मध्य अपना एक मज़बूत आधार बना लिया कांग्रेस के यह कार्यकर्ता भूमिधर किसानों के बीच भी सक्रिय थे।

जनवरी 1926 में लगान की दरों में होने वाली 30 फीसदी वृद्धि के विरोध में किसानों की बैठक आयोजित की गई। मार्च 1927 में भीम भाई नाई नाइक और शिवदासानी के नेतृत्व में किसानों का एक प्रतिनिधि मंडल बम्बई सरकार के राजस्व विभाग के प्रमुख अधिकारी से मिला जुलाई 1927 में सरकार ने लगान की दर घटाकर 21.97 प्रतिशत कर दी। किसान इस नाम मात्र की कटौती से संतुष्ट नही थे। कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने सरकार पर दबाव डालने के लिए लगान न देने की सलाह दी। कादोद संभाग के बामनों गॉव में 60 गॉवों के प्रतिनिधियों की बैठक हुई जिसमें बल्लभ भाई पटेल का आंदोलन का नेतृत्व करने के लिए आमन्त्रित किया गया --" सरदार बल्लभ भाई पटेल ने पूरे तालुके को 13 कार्यकर्ता शिविरों (छावनियों) में बॉट दिया और प्रत्येक शिविर के संचालन के लिए एक-एक अनुभवी नेता तैनात किया गया। प्रांन्त के विभिन्न हिस्सों के लगभग 100 राजनीतिक कार्यकर्ता और 1500 स्वयंसेवी जिनमें ज्यादातर छात्र थे, इस आंदोंलन की सेना थे। एक प्रकाशन विभाग भी बनाया गया, जहॉ से राज बारदूली सत्याग्रह-पत्रिका' का प्रकाशन होता था, जिसमें बड़ी ही सरल सुबोध और व्यंग्य पूर्ण शैली में लेख लिखे जाते थे। नेताओं के भाषण और किसानों की संपत्ति की कुर्की (जब्ती) की तसवीरें भी छापी जाती थी। स्वयं सेवक इस पत्रिका को तालुके के हर हिस्से तक पहुँचाते। आंदोलन का अपना खुफिया विभाग भी था। इसका काम यह पता लगाना था कि कहीं कोई लगान तो नहीं दे रहा है और यदि दे रहा है या देने का मन बना रहा है, तो उसे रोका जाता था। यह विभाग यह भी पता लगाता था कि सरकार अब क्या करने जा रही है, किसकी संपत्ति जब्त करने वाली है। जैसे ही पता चलता, संबद्ध व्यक्ति को खबर कर दी जाती। कभी उसे होशियार रहने को कहा जाता और कभी-कभी पड़ोस की बड़ौदा रियासत में भेज दिया जाता।"[1] लोगों का उत्साह वर्धन करने के लिए उनमें जागरूकता लाने के विभिन्न प्रकार के कदम उठाए गए स्थान-स्थान पर बैठके हुई भाषण दिये गये तथा पर्चे बॉटे गए। बारदोली के आन्दोलन कारियों ने चोरी छिपे लगान अदा करने वाले को सामाजिक बहिष्कार की घमकी दी। जाति से निष्कासित किये जाने के भय ने सरकारी भय पर विजय प्राप्त कर ली अब लोग खुलकर आन्दोंलन का समर्थन करने लगे। आन्दोंलन कारियों के सरकारी

---

[1] भारत का स्वतंत्रता संघर्ष-विपिन चन्द्र पृ0 154-155।

अधिकारियों के सामाजिक बहिष्कार का आह्वान करने के कारण उन्हें वाहन, खाद्य सामग्री तथा अन्य वस्तुओं को अभाव झेलना पड़ रहा था जिसके चलते इन अधिकारियों को सरकारी काम–काज के साथ–साथ दैनिक कार्यों को सम्पादित करने में कठिनाई का सामना करना पड़ा रहा था।

सरदार पटेल तथा उनके सहयोगियों के प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप सरकार समर्थन नरमपंथी भी किसानों के समर्थक हो गये। 'सर्वेन्ट आफ इण्डिया सोसायटी जो कि नरम पंथियों की एक संख्या थी उसने कांग्रेस नेताओं के अनुरोध पर किसानों की तमाम शिकायतों की जॉच करते हुए जो रिपोर्ट प्रस्तुत की उसने नरम पंथियों के बचे खुचे नेताओं को भी किसान आन्दोंलन का हिमायती बना दिया।

जनता में सरकार विरोधी भावना बलवती होती जा रही थी। विरोध प्रदर्शनों तथा जनसभाओं का क्रम जारी था। अगस्त 1928 को गॉधी जी के बारदोली पहुॅचने का उद्‌देश्य था कि यदि सरकार पटेल को गिरप्तार किया गया तो आंदोलन की कमान को अपने हाथों में ले ले, सरकार के पास अब कोई विकल्प नही बचा था विवश होकर उसे यह मानना पड़ा कि बढ़े हुए लगान की वसूली पर जोर नहीं दिया जायेगा इसके साथ ही साथ एक न्यायिक अधिकारी बूमफील्ड और एक राजस्व अधिकारी मैक्सबेल ने सारे मामले की जॉच की और अपनी रपट में लिखा कि 30 प्रतिशत लगान बढोत्तरी गलत थी। इसे घटाकर 6. 03 प्रतिशत कर दिया गया। लन्दन में प्रकाशित 'न्यू स्टेट्‌समैन ने 5 मई 1929 के अपने अंक में लिखा : " जॉच समिति की रिपोर्ट सरकार के मुॅह पर तमाचा है––––– इसके दूरगामी परिणाम होगें–––।"[1]

भारत में औद्योगीकरण के विकास के साथ ही मज़दूरों के शोषण की जो प्रक्रिया आरम्भ हुई संघर्ष की ओर उन्मुख होनें लगा 19वीं सदी के आठवें दशक से ही उनमें वर्ग चेतना तथा राष्ट्रीय भावना के अंकुर फूटने लगे रजनीपामदत्त ने प्रथम मज़दूर हड़ताल का उल्लेख अपनी पुस्तक " आज के भारत" में किया है जो 1877 ई0 नागपुर की इंप्रेस मिल के मजदूरों ने मज़दूरी बृद्धि के लिए किया था। [2] रजनीपामदत्त के अनुसार " 1882 से लेकर 1890 के बीच बम्बई और

---

[1] 'भारत का स्वतंत्रता संघर्ष विपिन चंद्र पृ0 156।
2, आज का भारत–रजनी पामदत्त–पृ0 40।
3 'आज का भारत' रजनी पामदत्त पृ0 410।

मद्रास प्रेसी डेंसी में हुई 25 हडतालों का उल्लेख मिलता है।" [1] मजदूरों की यह हड़ताले असफल थी क्योंकि इनका कोई ठोस परिणाम नही निकला परन्तु इन हडतालो से मजदूर वर्ग की उभरती चेतना तथा सजग आक्रोश का सहजता पूर्वक अनुमान लगाया जा सकता है जिसमें औद्योगीकरण के विकास एवं पूँजीपतियों के शोषण के साथ–साथ प्रतिपल वृद्धि होती गई –– "1905–1909 के दौरान राष्ट्रीय आंदोलन की जुझारू लहर के समानान्तर मज़दूर आंदोलन ने भी उल्लेखनीय प्रगति की। इन वर्षों के स्वरूप का पता इससे ही चल जाता है कि काम के घंटे बढाने के विरोध में बम्बई के मिल मजदूरों ने हड़ताल की, रेल कर्मचारियों ने खासतौर से ईस्टर्न की बंगाल स्टेट रेलवे कर्मचारियों ने कई बार गंभीर हड़तालें की, रेल के कारखाने में हडतालें हुई और कलकत्ता के गर्वनमेंट प्रेस में वहॉ के कर्मचारियों ने हड़ताल की। हड़तालों की यह लहर अपनी चरम सीमा पर उस समय पहुँच गई जब 1908 में तिलक को छः वर्षो की सज़ा दिए जाने के विरोध में बम्बई के मजदूरों ने छः दिनों की सार्वजनिक राजनीतिक हड़ताल कर दी।"[2] रूस में सर्वहारा वर्ग की विजय ने भारतीय मजदूरों में भी एक नयी उमंग एक नई उर्जा भर दी अब वे पूँजीपति वर्ग के शोषण को समाप्त करने के लिए कटिबद्ध हो गये।

1920 में इंडियन ट्रेड यूनियन कांग्रेस (एटक) की स्थापना मज़दूर आन्दोंलन के इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण घटना थी। अक्टूबर 1920 बम्बई में इसका पहला अधिवेशन हुआ जिसकी अध्यक्षता लालालाजपत राय ने की। वस्तुतः लाला लाजपत राय यह पहले व्यक्ति थे जिन्होनें साम्राज्यवाद से पूँजीवाद के गठ़जोड़ को भली भाँति समझा था और इनके शोषण से सर्वहारा वर्ग को मुक्त दिलाने का एक मात्र उपाय मजदूरों की संगठित शक्ति में खोजा था। लाला लाजपत राय के अतिरिक्त कुछ अन्य राष्ट्रवादी नेता जिनका एटक से करीबी सम्बन्ध था उनमें चितरंजन दास, सी0एफ0 एंड्रूज,जे0एम0 सेंन गुप्त, सुभाष चन्द्र बोस, जवाहरलाल नहेरू आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय है देश की " बदली हुई परिस्थिति के प्रति मजदूर वर्ग ने अत्यंत शानदार तरीके से प्रतिक्रिया व्यक्त की। 1920 में यूनियनों की संख्या 125 थी जिनमें 2,50,000 सदस्य थे और इनमें से अधिकांश युनियनों की रचना 1919–20 के दौरान हुई थी। देश की प्रमुख राजनीतिक घटनाओं में मजदूरों की भागीदार काफी उल्लेखनीय थी। पंजाब में

---

[2] आज का भारत रजनी पामदत्त पृ0 412।

2.भारत का स्वतंत्रता संघर्ष–विपिन चन्द्र–पृ0 163।

दमन और गॉधी जी की गिरफ़्तारी के बाद 1919 में अहमदाबाद और गुजरात के अन्य भागों में मजदूर–वर्ग ने हड़ताल कर दी, आन्दोलन किया और प्रदर्शन भी किया। अहमदाबाद में सरकारी भवनों में आग लगा दी गई, रेलों को पटरी से उतारा गया तथा टेलीग्राफ के तार काट दिये गए। दमन चक्र जिसमें 28 लोग मारे गये और 123 घायल हुए। मजदूरों के आन्दोलन के कारण कलकत्ता और बम्बई भी हिल गए।"[1]

सन् 1926 ई0 में देश में कम्यूनिष्ट पार्टी की स्थापना हुई और इसके सदस्य मजदूरों के बीच काम करने लगे। 1927 के आरम्भिक दिनों ट्रेड़ युनियन आंदोलन कम्यूनिस्टों का प्रभाव नाम मात्र को था वस्तु 1928 के अंत तक इसने अपनी स्थिति सदृढ़ कर ली और इसकी सदस्य संख्या 324 से बढ़कर 54,000 हो गई, रेलवे मजदूरों जूट मिलों में काम करने वाले मजदूरों के साथ–साथ नगर पालिकाओं कागज मिलों आदि में काम करने वालों के बीच भी बंगाल और बम्बई में कम्युनिस्टों का प्रभाव फैला। 1928 के ट्रेड़ युनियन कांग्रेस के झरिया अधिवेशन तक एटक में कम्युनिस्टों के साथ वाम पंथियों की स्थिति काफी सुदृढ़ हो चुकी थी –––– "1927 में पहली बार बंबई में 1 मई, मई दिवस के रूप में मनाया गया और इसे मजदूर दिवस का नाम दिया गया यह इस बात का प्रतीक था कि भारत के मज़दूर आंदोलन के इतिहास में उस नए युग का सूत्रपात हो चुका है जब वह अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर आंदोलन के एक सजग अंग के रूप में काम करेगा।" [2] नवम्बर 1927 में अखिल भारतीय ट्रेड युनियन कांग्रेस ने साइमन कमीशन के बहिष्कार का निर्णय लिया। 3 फरवरी 1928 को इस कमीशन के भारत आने पर विरोध प्रदर्शनों का जो सिलसिला शुरू हुआ उसमें मज़दूर वर्ग ने बढ़कर हिस्सा लिया– "मजदूर वर्ग में बढ़ती हुई उग्रता और राजनीतिक में उनकी सक्रियता से भयभीत होकर, खास तौर से राष्ट्रवादियों और वामपंथियों के बीच बढ़ती हुई निकटता से भयभीत होकर सरकार ने मज़दूर वर्ग के आंदोलन पर दुतरफ़ा आक्रमण शुरू कर दिया। एक ओर इसने दमनकारी कानून बनाए, जैसे पब्लिक सेफ़्टी ऐक्ट तथा ट्रेड़ डिस्प्यूट ऐक्ट और लगभग एक बार में ही मज़दूर आंदोलन में सक्रिय सभी क्रांतिकारी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया था और, उनके खिलाफ़ षड्यन्त्र का मुकदमा चलाया गया, जिसे 'मेरठ षड्यंत्र केस' के नाम से जाना जाता है। दूसरी ओर कुछ रियायतें देकर मज़दूर आंदोलन के एक बड़े

---

[2] आज का भारत रजनी पामदत्त पृ0 420।

हिस्से को सरकार ने तोड़ने की कोशिश की और इसमें उसे सफलता भी मिली, इसके उग्र हिस्से को संविधानवादी और संगठनवादी मोड़ दे दिया गया।"[1]

सरकार की इन दमनकारी नीतियों से मज़दूर आंदोलन को बहुत आघात पहुँचा जिसका कारण 1930 से 1936 तक की काल अवधि में मज़दूर आंदोलन में शिथिलता आ गई फलतः 1932–34 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन में मजूदरों ने भाग नही लिया परन्तु " चुनावों में राष्ट्रीय कांग्रेस की विजय तथा प्रांतों में कांग्रेस मंत्री मण्डल बनने के साथ–साथ ट्रेड युनियन गतिविधियों की एक नई लहर उमड़ी जिसका नतीजा यह हुआ कि 1937–38 में हड़तालों का जबरदस्त सिलसिला शुरू हुआ।"[2] कांग्रेस सरकारों के अन्तर्गत प्राप्त होने वाली नागरिक स्वतंत्रता तथा कांग्रेस मंत्रियों द्वारा मजदूरों का समर्थन करने के कारण ट्रेड युनियन आंदोलन को भरपूर समर्थन मिला जिसके परिणाम स्वरूप इस काल में होने वाली अधिकांश हड़तालें सफल रहीं।

इस प्रकार सन् 1939 के पश्चात् मज़दूर वर्ग में व्यापक चेतना दृष्टिगोचर होती है जिसके एक ओर जहाँ वे अपने वर्गीय हितों की रक्षा के लिए पूँजीपतियों के शोषण के विरूद्ध विद्रोह करते हैं वहीं दूसरी ओर देश के राजनीतिक आंदोलनों में भाग लेते हुए स्वतंत्रता प्राप्ति में हाथ बटाते हैं। मजदूरों तथा किसानों द्वारा चलाये गए समस्त आन्दोलन भारतीय जनता की उभरती हुई वर्गीय चेतना तथा राष्ट्रीय जागरण के प्रतीक है जो भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन और भारत के एक राष्ट्र के रूप में स्थापित होने के प्रक्रिया से अविभाज्य रूप से जुड़े हैं। यह आन्दोलन इस बात का द्योतक है कि अब तक भारत की बहुसंख्यक जनता को इस सत्य का ज्ञान हो चुका था कि अनुनय–विनय के मार्ग के पर चलकर शोषण तथा दासता के क्रूर दमन चक्र से त्राण पाना सम्भव नहीं है इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता है संगठित संघर्ष की क्योंकि जागरूक चेतना ने उन्हें इस बात का बोध करा दिया था कि स्वराज्य में ही उनका कल्याण निहित है। इसी कारण ब्रिटिस सरकार के दमन चक्र को एक चुनौती के रूप में स्वीकार करते हुए भारत का कृषक तथा श्रमिक समुदाय देश के स्वाधीनता संघर्ष में दूसरे वर्गों से अणुमात्र भी पीछे नही रहा। भारत की किसान तथा मजदूर जनता के इन संघर्षों ने राष्ट्रीय आन्दोलनों में जो महत्वपूर्ण भूमिका निभाई उसे कभी भी विषमित नही किया जा सकता।

---

[1] भारत का स्वतंत्रता संघर्ष ' विपिन चन्द्र–पृ0 166।
2.' आज का भारत ' रजनी पामदत्त पृ0–433।

'प्रेमचंद के उपन्यासों में राजनीतिक चेतना का स्वरूप'——

समाज, साहित्य, व्यक्ति और राजनीति परस्पर एक-दूसरे से सम्बद्ध होते हैं। उनका यह सम्बन्ध अटूट होता है। साहित्यकार अपनी रचना को आकार देने के लिए समाज से सामग्री जुटाता है अर्थात साहित्यकार अपने युगीन वातावरण का गहनता पूर्वक अध्ययन करते हुए उनसे भावों तथा विचारों को आत्मसात करते हुए उन्हें साहित्य के ढ़ाचे में ढालता है अतः किसी भी साहित्यिक रचना में कोई न कोई राजनीतिक तत्व किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान होता है। क्योंकि समाज, व्यक्ति, राजनीति यह सभी साहित्य के प्रेरणास्रोत हैं। इन सबको जीवन की अमूल्य निधि समझकर साहित्य अपने अन्दर सहेज कर रखता है। प्रेमचंद साहित्य, समाज, एवं राजनीति के इस अटूट रिश्ते को भली-भाँति समझते थे उनके कथनानुसार —— "साहित्य समाज तथा राजनीति का सम्बन्ध अटल है। समाज आदमियों के समूह को ही तो कहते हैं। समाज में जो हानि-लाभ तथा सुख-दुख होता है, वह आदमियों पर ही पड़ता है। साहित्य से लोगों को विकास मिलता है। साहित्य से आदमी की भावनाएँ अच्छी और बुरी बनती है। इन्हीं भावनाओं को लेकर आदमी जीता है।" [1] प्रेमचंद साहित्य में समाज राजनीति और साहित्य का एक अपूर्व सामंजस परिलक्षित होता है। वस्तुतः प्रेमचंद वह पहले कथाकार हैं जिन्होंने साहित्य समाज तथा राजनीति के जटिल अन्तः सम्बन्धों को समझना जन-साधारण के लिए सहज बनाया साथ ही जीवन के वास्तविक धरातल पर उतर कर युगीन सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं एवं तद्जन्य संघर्ष को प्रस्तुत करके साहित्य के लिए एक ठोस भूमिका का निर्माण किया।

बीसवी शताब्दी विनाशकारी विश्वयुद्ध, लाल क्रान्ति, बोल्शेविक क्रान्ति, अफ्रो एशियाई देशों का राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन, इस शताब्दी की ऐसी राजनीतिक घटनाएँ जिनके प्रभाव से शायद ही कोई अछूता रहा हो। फिर प्रेमचंद जैसे सजग विचाकर, गंभीर चिंतक गहन सामाजिक सरोकार युक्त तथा राजनीतिक चेतना सम्पन्न साहित्यकार की अनदेखी कैसे कर सकता है। प्रेमचंद के उपन्यासों में तद्युगीन राजनीतिक हलचलें किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान है। " प्रेमचंद के हिन्दी साहित्य क्षेत्र में प्रवेश करते ही जँलिया वाला बाग की लोमहर्षक घटना घटी। फलतः अंग्रेजी शासन में विरूद्ध जनान्दोलन व्यापक स्तर पर प्रारम्भ हुआ। राजनीतिक क्षेत्र में असाधारण सरगर्मी व्याप्त हो

---

[1] प्रेमचंद घर में--श्रीमती शिवरानी देबी-पृ0 91।

गई। अंग्रेजी सत्ता के विरूद्ध जनता ने बगावत प्रारम्भ किया। " [1] संक्रान्ति यह काल प्रेमचंद की साहित्यिक पृष्ठभूमि है। उस समय राजनीतिक प्रभाव के कारण देश की जनता में जो चेतना उत्पन्न हो रही थी वह प्रेमचंद साहित्य में पूरी तरह साकार हो उठी है। साहित्य को राजनीति के आगे मशाल दिखाती चलने वाली सच्चाई कहने वाले प्रेमचंद का कथा साहित्य तद्‌युगीन भारतीय राजनीतिक चेतना से अनुप्राणित है। प्रेमचंद के मतानुसार —" राजनैतिक पराधीनता की लौह श्रंखलाओं में आबद्ध समाज या देश उन्नतिशील नही हो सकता। समाज की अनेक समस्याएँ विदेशी दासता से मुक्त हुए बिना हल नहीं हो सकती। प्रेमचंद ने इसी युगीन राजनीति का वर्णन अपने उपन्यासों में किया है। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनैतिक प्रश्न स्वभावतः सम्बद्ध होते है।"[2]

प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों के माध्यम से अनेक आर्थिक एवं राजनीतिक प्रश्नों को लेकर चलाए जाने वाले राष्ट्रीय आन्दोलनों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। 1920 ई0 में जब गाँधी जी ने राष्ट्रीय आन्दोलन के नेतृत्व की बागड़ोर संभाल कर ब्रिटिस सम्राज्य के विरूद्ध असहयोग आंदोलन छेड़ा तो स्वाधीनता के लिए व्याकुल भारतीय जनता ने इस आन्दोंलन का हार्दिक स्वागत किया और धीरे–धीरे गाँधी जी के इस आन्दोंलन ने व्यापक जन–आन्दोलन का रूप धारण कर लिया। भारतीय जन–मानस पूरी तरह गाँधी जी के रंग में रंग गया। भारतीय साहित्य विशेषकर हिंदी साहित्य भी स्वयं को गाँधी जी के प्रभाव से विलग न रख सका ऐसे में प्रेमचंद जैसे सजग कथाकार तथा सहृदय देशभक्त का गाँधी के विचारों उनकी प्रणालियों से प्रभावित होना स्वभाविक था। इस बात को स्वीकार करते हुए उन्होंने स्वयं लिखा है " मै दुनिया में महात्मा गाँधी को सबसे बड़ा मानता हूँ। उनका उद्‌देश्य भी यही है कि मजदूर और काश्तकार सुखी हों। वह उन लोगों को जगाने के लिए आन्दोंलन मचा रहे हैं। मै लिख करके उनको उत्साह दे रहा हूँ। महात्मा गाँधी हिन्दू–मुसलमानों की एकता चाहते है। मै भी हिन्दी और उर्दू को मिलाकर के हिन्दुस्तानी बनाना चाहता है।"[3] राजनीति समस्याओं की विशद व्याख्या करने वाली उनकी प्रथम कृति " प्रेमाश्रम' में गाँधी जी के प्रभाव को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त उनके रंगभूमि, कायाकल्प तथा 'कर्मभूमि' उपन्यासों में भी गाँधीवादी प्रभाव की छटा सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है।

[1] प्रेमचंद तथा साहित्य समीक्षा तथा मूल्यांकन–डॉ धर्मध्वज त्रिपाठी पृ0 75–76।

2, उपन्यासकार प्रेमचंद–सुभाषिनी शर्मा–पृ0 122।

[3] 'प्रेमाश्रम प्रेमचंद–पृ0 43।

हिन्दी उपन्यासों में पहली बार औपनिवेशिक व्यवस्था में ग्राम्य जीवन के विशद चित्रण का श्रेय प्रेमचंद के उपन्यास 'प्रेमाश्रम' को जाता है यह विश्व की दो महान घटनाओं रूसी क्रान्ति तथा प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् लिखा गया वह उपन्यास है जिसमें प्रेमचंद ने साम्राज्यवादी शोषण तंत्र के समस्त – अवयवों जमींदार कारिन्दे, कचहरी, कानून, पुलिस तथा दूसरे सरकारी अमलों को चित्रित किया है। 'प्रेमाश्रम' में नायक के रूप में लखनपुर नामक गॉव के कृषक विकसित होती अपनी समस्त प्रतिरोध तथा संर्घष क्षमता के साथ मौजूद है वही दूसरी ओर खलनायक के रूप में जमींदार ज्ञानशंकर और उसका सम्पूर्ण शोषण तंत्र अपने पूरे दल–बल के साथ भारत में औपनिवेशिक व्यवस्था को फलने–फूलने में सहायता प्रदान करता है। 'प्रेमाश्रम' का प्रेरणास्रोत गॉधी जी के रचनात्मक कार्यक्रमों के अन्तर्गत चलाये गए कृषक आन्दोंलन विशेषकर खेड़ा का लगान बन्दी आन्दोंलन है सन् 1918 में अकाल के कारण खेड़ा के किसान भूखों मर रहे थे ऐसे में लगान अदा करना उनकी सामर्थ्य के बाहर था उन्होंने सरकार से लगान माफ करने की प्रार्थना की जिसका सरकार पर कोई असर नहीं हुआ। 'प्रेमाश्रम' में मनोहर तथा कादिर के संवाद में उसी लगान माफ़ी के ज्वर प्रतिध्वनि होते हैं मनोहर कहता है––" जब उस देश के किसान राज का बंदोबस्त कर लेते हैं तो हम लोग लाट साहब से अपना रोना भी न रो सकेंगें ?" कादिर –– " तहसीलदार साहब के सामने तो मुँह खुलता नही, लाट साहब से फरियाद कौन करेगा।" [1] खेड़ा के किसानों पर नौकरशाही ने जो कहर बरपाया था लखनपुर के किसान उसकी मुँह बोलती तसवीर है गौस खाँ की निर्ममता वास्तव में ब्रिटिश सरकार के अत्याचार की द्योतक है गौस खॉ के शब्दों में –– " इसीलिए मुझे इन बेबसों पर सभी तरह की सख्तियाँ करनी पड़ती है। कहीं मुकदमें खड़े कर दिए, कहीं बेगार में फंसा दिया, कहीं आपस में लड़ा दिया। कानून कानून का हुक्म है कि आदमियों को लगान देते ही पाई–पाई की रसीद दी जाय, लेकिन मै सिर्फ उन्हीं लोगों को रसीद देता हूँ जो जरा चालाक है। छोटे सरकार का बकाया पर इतना जोर है कि एक पाई भी बाकी रहे तो नालिश कर दो। "[2] सरकार की हठधर्मिता के विरोध में महात्मागाँधी ने खेड़ा के किसानों के सत्याग्रह करने की सलाह दी। लखनपुर के किसान भी अत्याचार के विरोध में सत्याग्रह करते हैं जिसके दमन के लिए किसी को चौपाल के सामने धूप में खड़ा कर दिया जाता है। किसी की मुश्कें कसकर पिटवाई होती दीन नारियों के साथ

---

[1] प्रेमाश्रम प्रेमचंद–पृ0 43।

[2] रंगभूमि प्रेमचंद पृ0 119–120।

पाशविक व्यवहार किया जाता ? किसी की चूड़ियॉ तोड़ी जाती किसी के जूड़े नोचे जाते है'' परन्तु अन्त में जिस प्रकार खेड़ा सत्याग्रहियों की जीत होती है उसी प्रकार 'प्रेमाश्रम' के किसानों का लगान बंदी आन्दोलन भी सफल होता है। जिसे प्रेमचंद इन शब्दों में व्यक्त करते हैं ---'' अचानक उसे द्वार पर हलचल सुनाई दी खिड़की से झांका तो नीचे सैकड़ों आदमियों की भीड़ दिखाई दी। इतने में महरी ने आकर कहा, बहू जी लखनपुर के जितने आदमी कैद हुए थे वह सब छूट आये हैं द्वार पर खड़े बाबूजी को आर्शिवाद दे रहे हैं। जरा-सुनो, वह बुड्ढा दाढीवाला कह रहा है, अल्लाह बाबू प्रेमशंकर को कयामत तक सलामत रखे।''[1]

अपने युग की सामाजिक तथा राजनीतिक हलचलों के प्रति अत्यन्त जागरूक तथा संवेनदशील साहित्यकार होने के नाते प्रेमचंद राष्ट्रीय आन्दोलन से पूर्णतः प्रभावित् थे। उनकी राजनीतिक चेतना पर गॉधीवादी प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। अपने उपन्यास यात्रा के आरम्भ से लेकर अन्त तक प्रेमचंद भारतीय राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन से किसी न किसी रूप में सम्बद्ध रहे। गॉधीवाद का बाइबिल कहे जाने वाले अपने उपन्यास " 'रंगभूमि' में प्रेमचंद ने तद्युगीन राजनीतिक संदर्भो को विस्तार पूर्वक अंकित किया है। इस उपन्यास में गॉधीवाद के प्रतीक सूरदास के संघर्ष के माध्यम से उन्होंने गॉधीवाद के व्यावहारिक पक्ष की विवेचना की है। गॉधीवादी सूर का कथन है --हम तो खेल खेलते हैं। जीत हार तो भगवान के हाथ है। " बस नियत ठीक होनी चाहिए ---- सभी चाहते हैं कि हमारी जीत हो, लेकिन जीत एक की ही होती है तो इससे हारने वाले हिम्मत हार जाते हैं ? वे फिर खेलते है। कभी न कभी उनकी जीत होती है। ''[2] सूरदास का संघर्ष औपनिवेशक पूंजीवादी व्यवस्था में शोषित उत्पीड़न भारतीय जनता के संर्घष को दर्शाता है --'' इसके अतिरिक्त 'रंगभमि' में नौकरशाही का स्वेच्छाचार, सत्याग्रह आन्दोलन का दमन, देशी रियासतों में व्याप्त भ्रष्टाचार, नारी-जागरण, बैधानिक आन्दोलन में अनास्था, असहयोग आन्दोलन की वापसी से उत्पन्न निराशा (जो स्वर्गीय चित्तरंजन दास के मत में अन्तिम दिनों उत्पन्न हुई थी, उसकी सूर के भावों के द्वारा अभिव्यक्ति आदि अनेक अन्य राजनीतिक घटनाओं को लेकर राष्ट्रीय आन्दोंलन का यत्र-तत्र सुन्दर अंकन किया गया है। '' [3]

---

[1] 'प्रेमाश्रम' प्रेमचंद-पृ0 230।

2 रंगभूमि प्रेमचंद पृ0 543

[3] हिन्दी उपन्यास स्वतंत्रसंघर्ष के विविध आयाम प्रो0 डी0 डी0 तिवारी पृ0 76।

अहिंसात्मक नीति पर दृढ़ आस्था रखते हुए भी प्रेमचंद निरीह जनता पर होने वाले अत्याचार के विरोध में देश मे ज्वालामुखी के समान पकने वाले क्रान्तिकारी आतंकवाद के प्रति उदासीन नहीं रह पाये। 'रंगभूमि' में काकोरी–कांड की प्रतिछवि को भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है इसके पात्र वीरपाल का उद्देश्य भी आतंकवादियों के उद्देश्य के सामान ही नौकरशाही उत्पीड़न से जन–साधारण की मुक्ति है 'रंगभूमि' में तद्युगीन आतंकवादी गतिविधियों का अनुमान सोफिया के इस कथन से लगाया जा सकता है–– " पुलिस से बचने के लिए ही मैने रास्ते में गाड़ी को रोककर सवार होने की व्यवस्था की। " देशी रियासतों में अंग्रेज रेजीडेन्ट के माध्यम से देश की जनता का बर्पाय जाने वाले कहर का प्रेमचंद ने अत्यन्त मर्मस्पर्शी चर्चा किया है। –– " उदयपुर के महाराज दीवान साहब आदि सब अंग्रेजी शासन की कठपुतिलियां हैं जिनका न कोई व्यक्तित्व है, न शासन में दखल। इन्हीं सबकी उदासीनता से चारों ओर भ्रष्टाचार पनपता है। वीरपाल सिंह जैसे मुखिया को डाकू बनना पड़ता है। वीरपाल सिंह में भयंकर उग्रता एवं हिंसा है। उसके नाम से शासन थर्राता है। प्रेमचंद ने राजनीतिक जीवन के विभिन्न पात्रों एवं घटनावलियों के सहारे अंग्रेजी साम्राज्यवाद, देशी–विदेशी पूंजीवाद एवं सामंतवाद की नकली आदर्शोन्मुखता का पर्दाफाश किया है तथा जनमानस में उभर रहे वास्तविक द्वंद को पहचाना है। [1]" इस प्रकार 'रंगभूमि' में जान सेवक उदयपुर के दीवान साहब, राजा साहब, छतारी के राजा महेन्द्र कुमार, राष्ट्रवादी कुँवर भरतसिंह, पॉलिटिकल एजेन्ट क्लार्क, लोक नेता विनय, डाकू वीरपाल सिंह तथा डॉ0 गांगुली इत्यादि के माध्यम से विभिन क्रिया–कलापों, घटनावालियों तथा विभिन्न अवसरों पर हुई पारस्परिक बातचीत के द्वारा तत्कालीन राजनीतिक हलचलों का यथार्थ चित्रण किया है।

हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक तथा राजनीतिक द्वंद्व की विस्तृत तथा कलात्मक प्रस्तुति की जो परम्परा प्रेमचंद ने प्रारम्भ की उसे देखते हुए उनका उपन्यास 'कायाकल्प' उनकी इस यर्थाथवादी परम्परा का अतिक्रमण करता नज़र आता है क्योंकि यह उपन्यास अलौकिक तथा विचित्रता पूर्ण घटना प्रसंगों से परिपूर्ण है और इसमें वे सामाजिक तथा राजनीतिक यर्थाथ के प्रति उदासीन दिखाई देते है।–– " कायाकल्प" (1926) में प्रेमचंद ने यद्यपि अलौकिक तथा अतिमाननीय तत्वों की संयोजना की है परन्तु वह असहयोग आन्दोंलन के उपरान्त कांग्रेस–खिलाफ़त आन्दोंलन की ऐक्य की धुरी के विघटन से उत्पन्न

[1] कथाकार प्रेमचंद–संपादक राम दरस मिश्र–ज्ञानचन्द्र गुप्त पृ0 130।

हिन्दू–मुसलमान समस्या का चित्रांकन भुला न पाये। असहयोग आन्दोलन की वापसी से भारत में मायूसी का वातावरण छा गया था। हिन्दू और मुसलमान मंदिर–मस्ज़िद गाय और गाजे–बाजे को लेकर एक दूसरे के रक्त से अपने करों को रंगीन करने लगे थे। आये दिन के किसी न किसी हिन्दू–मुस्लिम दंगा होना एक साधारण बात हो चली थी।"[1] पूँजीपतियों के आर्थिक स्वार्थ सामाजिक–राजनीतिक समस्याओं को किस प्रकार साम्प्रदायिकता का रूप दे देते है, इसका चित्रण प्रेमचंद के उपन्यासों में मिलता है। ' कायाकल्प' में प्रेमचंद ने भारत के "स्वाधीनता आन्दोलन की पृष्ठभूमि में ब्रिटिश राज के जन विरोधी साम्राज्यवादी भूमिका को पूरी तरह उजागार किया है। साम्राज्यवाद विरोधी चेतना के विकास में उन्होंने साम्प्रदायिक सहयोग और सद्भाव के महत्व को कदाचित पहली बार इतनी गम्भीरता पूर्वक समझा और हिन्दू मुसलमान के साझा कार्यभार की अनिवार्यतौं को रेखाकिंत किया।"[2] जन साधारण साम्प्रदायिक वैमनस्य की भावना प्रायः नही होती। साम्प्रदायिकता की आग को भडकाने वालों में अधिकतर– राजनीतिज्ञ, सेठ साहूकार और धर्म के नाम पर व्यापार करने वाले ही होते हैं प्रेमचंद इसको भली–भाँति जानते थे। साथ ही वे ब्रिटिश सरकार के उन हथकण्डों से भी अच्छी तरह परिचित थे जो आंग्लशासक, भारत के स्वातंत्र्य संघर्ष को कमज़ोर करने के लिए हिन्दू तथा मुसलमानों की साम्प्रदायिक भावनाओं को भड़का कर उन्हें एक–दूसरे का शत्रु बनाए रखने के लिए अपनाते थे ताकि देश की जनता साम्प्रदायिक झगड़ों में पड़कर देश की वास्तविक समस्या को भूल जाएं। " स्वाधीनता आंदोलन की उग्रता और साम्प्रदायिक विद्वेष वस्तुतः एक ही सिक्के के दो पहलू थे। जब–जब और जैसे–जैसे स्वाधीनता आंदोलन एक व्यापक जन आंदोलन का रूप लेता दिखाई देता है, ब्रिटिश सरकार साम्प्रदायिक उन्मादद्वारा उसे कमजोर करने की कोशिश करती है। वही कारण है कि साम्प्रदायिकता प्रेमचंद के समूचे रचनाकाल में, एक केन्द्रीय समस्या के रूप में उपस्थित देखी जा सकती है।"[3] 'कायाकल्प' में एक स्थान पर लिखते है " दोनो कौमों में कुछ लोग ऐसे है, जिनकी इज्जत और सख्त दोनों को लड़ाते रहने पर ही कायम है। बस, वह एक न एक शिगूफा छोड़ा करते है।"[4] अंग्रेजों की कुटिल नीति के परिणाम स्वरूप 1925 ई0 को पश्चात् देश के विभिन्न भागों में साम्प्रदायिकता की आग भड़क उठी। स्थान–स्थान हत्या, आगज़नी तथा बलात्कार

---

[1] हिन्दी उपन्यास स्वतंत्रता संघर्ष के विविध आयाम डी0 डी0 तिवारी पृ0 76–77।

[2] हिन्दी : उपन्यास सार्थक की पहचान–मधुरेश पृ0 67।

[3] हिन्दी : उपन्यास सार्थक की पहचान–मधुरेश पृ0 57।

4, कायाकल्प प्रेमचंद पृ0 427।

जैसे अमानुषिक घटनाएँ–घटित हुई तद्‌युगीन भारत की इस ज्वलन्त समस्या का चित्रण उन्होने अपने उपन्यासों में विशेषरूप से 'कायाकल्प' में किया है।

प्रेमचंद अपने युग के सामाजिक तथा राजनीतिक सन्दर्भों से बहुत गहराई तक जुड़े थे और उनकें प्रति वे अत्यन्त सर्तक तथा संमवेदनशील थे ये और बात है कि वे अपने लेखन के आरम्भिक काल में प्रेमचंद कि राजनीतिक दृष्टि इतनी प्रखर नही थीं इसी कारण वे मूलगामी समस्याओं के अव्यवहारिक हल प्रस्तुत करते दिखाई देते हैं किन्तु––"ज्यौं–ज्यौं उनकी चिन्ताओं का दायरा बढता गया उनकी दृष्टि लगातार व्यापक होती गई समाज और राजनीति के जटिल अन्तः सम्बन्धों पर धीरे–धीरे उनकी पकड़ मजबूत और गहरी होती गई उनकी चेतना एक विकासशील प्रक्रिया का नमूना है जिसका मूलभूत स्वर समाज के दलित–शोषित जन के प्रति उनकी गहरी सहानुभूति थी जिसके माध्यम से वह जटिल राजनीतिक तानों–बानों को और उनके सामाजिक स्वरूप को सही दिशा में विश्लेषित कर पाए। धीरे–धीरे राष्ट्रीय आन्दोलनो का, उसके बुर्जुआ नेतृत्व का, तथा विकसित हो रही विभिन्न सामाजिक़ राजनीति शक्तियों का स्वरूप उनके सामने स्पष्ट होता गया। उसके साथ ही साथ क्रमिक विकास की प्रक्रिया, उनके सामने देश के स्वाराज्य के भावी स्वरूप को भी स्पष्ट करती रही ।"[1] इस दृष्टि से 'गबन' प्रेमचंद का एक महत्वपूर्ण उपन्यास है जिसकी कथा का प्रारम्भ तो मध्यम वर्गीय परिवार से सम्बन्धित सामाजिक समस्या से होता है परन्तु समापन राष्ट्रीयता की भावना पर होता है। प्रेमचंद ने अपनी राजनीतिक विचार धारा को 'गबन' में प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्ति किया है।

सामंती चरित्र के पाशविक स्वरूप से प्रेमचंद पूर्णतः परिचित थे। शोषक और अत्याचारी शक्तियों और प्रवृत्तियों की गहरी पहचान उन्हें थी। अतः उनके द्वारा सत्ता पर अधिकार करने के बाद किसान तथा सर्बहारा पर किये जाने वाले अत्याचारों से जनवादी कथाकार प्रेमचंद का चिन्तित होना स्वाभाविक था। अपनी इसी चिन्ता को वे देवीदीन के माध्यम से व्यक्त करते हुए कहते है––" साहब, सच बताओं, जब तुम सुराज का नाम लेते हो, उसका कौन से रूप आपकी ऑखों के सामने आता है ? तुम भी बड़ी–बडी तलब लोगे, तुम भी अंग्रेजों की तरह बंगलों में रहोगे, पहाड़ों की हवा खाओगे, अंग्रेजी ठाठ बनाए घूमोंगे, इस सुराज

---

[1] प्रेमचंद के आयाम ए0 अरविंदाक्षन पृ0 41–42।
2, गबन प्रेमचंद पृ0 152।

से देश का क्या कल्याण होगा ?"[1] वह पूँछता है " तो सुराज मिलने पर दस–दस पॉच–पॉच हजार के अफ़सर नहीं रहोगें ? वकीलों की लूट नहीं रहेगी? पुलिस की लूट बंद हो जायगी ?"[2] देवीदीन के इन प्रश्नों में स्वराज को लेकर प्रेमचंद के मन में उठने वाली शंका को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त पूँजीवादी शोषण नौकरशाही की बर्बतरता एवं अत्याचार तथा पुलिस महकमें में भ्रष्टाचार के वर्णन की दृष्टि से यह उपन्यास एक ऐतिहासिक दस्तावेज का दर्जा रखता है–– " गबन का रचना काल उत्तर–भारत में क्रांतिकारी गतिविधियों की दृष्टि से विशेष महत्व रखता है। मेरठ और लाहौर षड़यन्त्र केस चल रहे थे। इसी काल खंड में भगत सिंह ने असेंबली में बम फेंककर सोते हुए देश को जगाने की सफल कोशिश की थी। प्रशासन तत्रं और न्यायपालिका इन देश भक्त युवकों को 'डाकू' के रूप में प्रचारित करके या तो उन्हें फर्जी मुठभेड़ों में मार रहा था। या झूठी गवाहियों द्वारा जेल और फॉसी के निर्णय सुना रहा था। इनके प्रति देवीदीन की कटुता एक सहृदय देशभक्त और इमानदार आदमी की स्वतः स्फूर्त प्रतिक्रिया के रूप में अंकित है। देवीदीन निम्न मध्यवर्ग का एक ऐसा पात्र है जो अपने अनुभव और बलिदान से काफी कुछ सीखता है। उसका एक मात्र युवा पुत्र इसी देशभक्ति के अपराध में पुलिस के निर्मम और क्रूर उत्पीड़न का शिकार हो चुका है। इसी कारण, अनुभव के इस ताप में तपकर ही वह राष्ट्रीय नेताओं और कांग्रेस के वर्ग–चरित्र को इतने पारदर्शी रूप में पहचान सका है। 'जान' की जगह 'गोविन्द को गद्दी पर बिठा देने से ही देश की स्वाधीनता की लड़ाई पूरी नहीं हो जाती है। देवीदीन की कटुता और आलोचना में सच का एक ऐसा तेज है जिसकी चमक क्रमशः बढ़ती गई है।"[3] 'गबन' प्रेमचंद के दृष्टिकोण में आने वाले क्रान्किारी परिवर्तन का द्योतक है इस उपन्यास में पहली बार गॉधीवादी सीमाओं के अतिक्रमण का प्रयास करते है जिसके अन्तर्गत वे गॉधीवादी आन्दोलन की सफलता के बाद की परिस्थितियों पर प्रश्न चिन्ह लगाते हुए आतंकवादियों की उग्र तथा अहिंसात्मक गतिविधियों का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से समर्थन करते दिखाई देते है।

'प्रेमाश्रम' तथा 'रंगभूमि' की भॉति 'कर्मभूमि' भी प्रेमचंद की एक महत्वपूर्ण राजनीतिक औपन्यासिक रचना है। इस उपन्यास में लेखक ने राष्ट्रव्यापी आर्थिक

---

3 गबन प्रेमचंद पृ0 153।

[3] हिन्दी उपन्यास की सार्थक पहचान–मधुरेश–पृ0 61।

मंदी तथा महात्मा गॉधी के नेतृत्व में चलने वाले राष्ट्रीय आन्दोंलन का विशद चित्रण किया है। इसके अतिरिक्त " महात्मा गॉधी के रचनात्मक कार्यक्रम से अनेक तत्वों –अछूतोंद्धार कृषक–उत्थान, नारी–जागरण, हिन्द–मुस्लिम एकता आदि को उपन्यासकार ने ग्रहण किया है। 'कर्मभूमि' में मंदिर–प्रवेश सत्याग्रह गॉधीवादी आन्दोलन की ही देन है। "[1] इस उपन्यास में भारत के स्वातंत्रय संघर्ष का यर्थाथ चित्रण मिलता है। रामविलाश शर्मा के अनुसार––"यह उपन्यास एक सैलाब की तरह तमाम जनता को अपने अंदर समेट लेता है। विद्यार्थी, किसान, अछूत, स्त्रियॉ, व्यापारी शिक्षक, मज़दूर–सभी इस प्रवाह के बढ़े चलते है। 'प्रेमाश्रम' के किसान अब अकेले नही है। उनकी लड़ाई के साथ–साथ तमाम जनता अपनी आजादी की लड़ाई में आगे बढ रही है। आंदोलन में जनता के नए नेता पैदा होते है, लाठी–चार्ज होते है, गोलियॉ चलती है, लेकिन लोग अपनी सफ़ें मजबूत करते हुए आगे बढ़ते है।"[2]

'कर्मभूमि' में हरिद्वार की ग्रामीण कथा का आधार लगान बन्दी आन्दोलन है जो वास्तव में असहयोग परक सत्याग्रह आन्दोलन की ही प्रतीक है। लगान बन्दी–आन्दोलन के परिणाम स्वरूप किसान और जमींदार के सम्बन्धों में उत्पन्न तनाव तथा तद्जन्य संघर्ष को हम उस प्रसंग में देख सकते है जब स्वामी आत्मानंद बलात् जमींदार महंत के ठाकुर द्वारे को घेर कर अपनी मांग मनवाना चाहता है वह कहता है —" तो आओ, आज हम सब चलकर महन्त जी का मकान और ठाकुर द्वारा घेर ले जब तक वह लगान बिल्कुल न छोंड़ दे, कोई उत्सव न होने दे।" बहुत सी आवाजें आई "हम लोग तैयार है।"[3] परन्तु इसका गॉधीवादी पात्र अमर कान्त शान्ति तथा समझौता द्वारा इस समस्या को सुलझाना चाहता है वह कहता है––"अगर धैर्य से काम लोगे तो सब कुछ हो जायेगा हुल्लड़ मचाओगें तो कुछ न होगा। उल्टे और डंडे पडेंगें।"[4] इसी उपन्यास में सलीम के नेतृत्व में चलने वाले उग्र आन्दोलन को प्रस्तुत करके हिंसा के समर्थन में सलीम के माध्यम से उन्होंने जो तर्क दिया है वह भी कुछ कम प्रभावी नही। सलीम कहता है " लगान हम दे नही सकते। वह लोग कहते है, हम लेकर

---

[1] हिन्दी उपन्यास : स्वतंत्रय संघर्ष के विविध आयाम डी0 डी0 तिवारी पृ0 77।

2, प्रेमचंद और उनका युग –रामविलाश शर्मा–पृ0 85।

3 कर्मभूमि–प्रेमचंद–पृ0 290।

[4] कर्मभूमि–प्रेमचंद–पृ0 302।

छोड़ेगें। क्यों अपना सब कुछ कुर्क हो जाने दें ? अगर हम कुछ कहते है तो हमारे ऊपर गोलियॉं चलती हैं। नही बोलते तो तबाह हो जाते है। फिर दूसरा कौन सा रास्ता है ? हम जितना ही दबते जाते है। उतना वह शेर होते हैं। मरने वाला बेकार दिलों में रहम पैदा कर सकता है, लेकिन मारने वाला खौफ पैदा कर सकता है, जो रहम से कहीं ज्यादा असर डालने वाली चीज है।"[1] जमींदार, किसान संघर्ष के इस हिंसात्मक पक्ष को इतने प्रभावशाली ढ़ंग से इसलिए प्रस्तुत करते है क्योंकि इस हिंसा के लिए वे किसानों को नही वरन सरकार को ही उत्तरदायी मानते है।

उपरोक्त राष्ट्रीय समस्याओं के अतिरिक्त प्रेमचंद ने 'कर्मभूमि' में नारी जागरण को सुखदा, सकीना, पठानिन, नैना, मुन्नी, सलोनी, और रेणुका देवी आदि विभिन्न नारी पात्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। 'कर्मभूमि' मे विभिन्न सामाजिक वर्गो और स्तरों के ऐसे अनेक नारी पात्र है जो घर परिवार के प्रति अपने दायित्यों का निर्वाह करते हुए घर की चहार दीवारी से निकल कर राष्ट्रीय हित के सवालों में अपनी व्यापक हिस्सेदारी निभाते हुए तद्‌युगीन नारी समाज में उत्पन्न राष्ट्रीय चेतना का प्रमाण देते हैं।

प्रेमचंद ने अपने अधिकतर उपन्यासों में शोषितों को गॉधीवादी सिद्धान्तों का पालन करते ही दिखाया है। इसके बावजूद भी यह कहना कदापि उचित न होगा कि प्रेमचंद की राजनीतिक विचारधारा पूर्ण रूप से गॉधीवादी है वे स्वयं कहते है -- " मै गॉधीवादी नही हूॅं केवल गॉंधी जी के चेंज आफ हार्ट में विश्वास करता हूॅं। जहॉं कहीं उनमें तथा गॉधी जी में वैचारिक मतभेद उत्पन्न होता है वे गाधीजी की मान्यताओं से असहमति व्यक्त करते हुए गॉधीवादी सीमा का अतिक्रमण करते भी दिखाई देते है। अपने लेखन के अंतिम पड़ाव तक आते आते-- "उनका यह विश्वास दृढ हो चला था कि अब सीधे बनने से काम नही चलेगा। शोषित जितना दबते जायेगें उतने ही ज्यादा दबाए जायेगें इसलिए यह आवश्यक है क़ि परिस्थितियों कों इस तरह ढाल दे जिससे शोषक उनको कुचलने की सोच ही न सके।"[2] असरारे मआबिद से लेकर गोदान तक का सफर वस्तुतः प्रेमचंद की अन्तर्दृष्टि की विकास यात्रा है गोदान तक आते-आते प्रेमचंद इस सत्य से पूरी तरह रूबरू हो जाते हैं कि जीवन भर अथक परिश्रम करने के

---

[1] कर्मभूमि-प्रेमचंद-पृ0 372।

[2] उपन्यासकार प्रेमचंद-सुभाषिनी शर्मा पृ0 123।

उपरान्त भी होरी द्वार पर गाय बाधनें की अपनी छोटी सी इच्छा पूरी नहीं कर पाता। तो केवल इसलिए कि वह रायसाहब, लाला पटवारी नोखेराम, पंडित, दातादीन, दुलारी, सहुआइन, झिंगुरी सिहं जैसे शोंषकों के "पैरो को सहलाने में ही जीवन की कुशल समझता था व दरिन्दों के बीच लड़ने के लिए हथियार बॉधना उसे नही आता था। होरी के जीवन की यही त्रासदी प्रेमचंद कों एक नया दृष्टिबोध एक नई चिन्तन क्षमता प्रदान करती है। 'गोदान' के प्रकाशन से पूर्व तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन की वापसी के बाद सन् 1935 में ब्रिटिश सरकार ने 'गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट' के अन्तर्गत प्रान्तीय विधान सभाओं के लिए चुनावों की व्यवस्था की थी। सविनय अवज्ञा आन्दोंलन गॉधी–इर्विन समझौते की भूलभूलैयां मे चक्कर खाकर रह गया था। असहयोग आन्दोलन की वापसी की भॉति देश में गंभीर प्रतिक्रिया हुई। गॉधी जी ने राजनीति से सन्यास की घोषणा कर दी थी। उत्तर–भारत मे सशक्त कृषक आन्दोलन चला था परन्तु फिर भी भारतीय किसान की दशा में विशेष वांछित परिवर्तन नही आया। चम्पारन, सत्याग्रह, खेड़ा–सत्याग्रह, बारदोली–सत्याग्रह तथा लगानबंदी–सत्याग्रह के बाद भी किसान शोषण की चक्की में निरन्तर पिस रहा था। प्रेमचंद जिन्होंने किसान के हल की मूठ देखी थी, बैल की चाल परखी थी, को एक निराशा और विषाद की दशा में डाल दिया था। 'गोदान' (1936) के माध्यम से प्रेमचंद ने भारतीय ग्रामीण अर्थ व्यवस्था, कृषकों की शोचनीय दशा, सामन्तवादी शोषण आदि का चित्रण कर भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को नया रूप देने का प्रयत्न किया है।"[1]

गोदान में प्रेमचंद ने वैसे तो सविस्तार वर्णन नहीं किया है परन्तु उन शोषक वर्गों का विस्तृत चित्रण किया है जो निरीह जनता को चारों ओर से चूस रहे थे इस उपन्यास में शोषक वर्गो की कूटनीतियों के चित्रण के द्वारा यह बताना चाहते हैं कि स्वतंत्रता के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा यही है। गोदान में शोषक शक्तियों के केन्द्र में रायसाहब अमरपाल सिंह हैं जो जमींदार होने के साथ–साथ साम्राज्यवाद सरकार का अभिकर्ता भी है। इसके अतिरिक्त जमींदार रायसाहब अमरसिंह होने के साथ–साथ पिछले सत्याग्रह संग्राम का सेनानी भी देश के आह्वान पर कौंसिल की मेंबरी त्यागकर वह जेल भी गया था।"[2] रायसाहब का चरित्र तद्युगीन उन कांग्रेसी नेताओं से समानता रखता है जो जनता का कष्ट

---

[1]हिन्दी उपन्यास स्ववतंत्रतासंघर्ष के विविध आयाम डी0 डी0 तिवारी–पृ0 83।

[2] गोदान प्रेमचंद पृ0 13।

दूर करने के लिए नही वरन अपना स्वार्थ सिद्ध के लिए कांग्रेस में सम्मिलित हुए थे।

सन् 1934 में भारतीय समाजवादी दल की स्थापना के साथ ही लोगों का झुकाव समाजवाद की ओर होने लगा था ऐसे में प्रेमचंद जैसे प्रगतिशील लेखक समाजवादी विचार धारा का प्रभाव पड़ना स्वभाविक था। गोदान में समाजवादी चेतना के युगीन प्रभाव की छाप स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। शक्कर मिल के मजदूरों का आन्दोलन समकालीन समाजवादी विचारों के प्रभाव को प्रकट करता है।

मंगलसूत्र वस्तुतः प्रेमचंद के मोह भंग की प्रस्तुति है अपनी इस अंतिम कृति में जनता का शोषण तथा उत्पीड़िन उनके लिए असह हो जाता है और वह सघर्ष की अग्निवार्यता को स्वीकार करते हैं तथा हथियार उठाने की बात करते हुए कहते हैं--"दरिन्दों के बीच में उनसे लड़ने के लिए हथियार उठाना पड़ेगा। उनके पंजों का शिकार बनना देवतापन नही जड़ता है।"[1] प्रेमचंद भाग्यवादी या नियतिवादी तो कभी नही रहे, लेकिन मनुष्य के अन्दर के 'सत्' पर उनका विश्वास अड़िग था। लेकिन जीवन की तमाम व्यक्तिगत और सामाजिक सच्ची और तीखी अनुभूतियों ने उनके इस विश्वास तो तहस-नहस कर दिया। 'प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर 'सत्' रहता है और उसे हम अपने सत् के प्रभाव से जागृत कर सकते है," उनकी यह मान्यता खण्ड-खण्ड़ हो गई। 'गोदान' के राय साहब के प्रति भी उनकी जो सहानुभूति थी, अब वह नहीं रही, अब तो वे ऐसे लोगो से लड़ने के लिए हथियार बॉधने' की सलाह देने लगे हैं और कहने लगे है 'हॉ' देवता हमेशा रहे है, और हमेशा रहेगें। उन्हें अब भी संसार धर्म और नीति पर चलता हुआ नजर आता है। वे अपने जीवन की आहुति देकर संसार से विदा हो जाते है। लेकिन, उन्हें देवता क्यों कहो ? कायर कहों स्वार्थी कहो, आत्मसेवी कहो। देवता वह है जो न्याय की रक्षा करे और उसके लिए प्राण दे दे।--- अगर उसकी ऑखों में यह दुर्व्यवस्था खटकती नहीं तो वह अन्धा भी है और मूर्ख भी, देवता किसी तरह नही।"[2]

गोदान और महाजनी सभ्यता तथा अपनी अन्तिम दौर की कहानी कफ़न में प्रेमचंद जिस व्यापक मोहभंग की ओर संकेत करते दिखाई देते हैं उसके

---

[1] मंगलसूत्र, प्रेमचंद स्मृति पृ0 293।

[2] हिन्दुस्तानी पृ0 60।

आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ' मंगलसूत्र के इन चार अध्यायों में वे अपनी इसी रचना दृष्टि का विकास करते हैं 'मंगलसूत्र' किसान वर्ग की कहानी न होकर भारतीय मध्यवर्ग की कहानी है जिसके पात्र देवकुमार होरी की भॉति समान मर्यादा के नाम पर किसी को अपने शोषण की छूट नही देते। अपितु अपने अधिकार के लिए देवकुमार सेठ गिरधरदास के विरूद्ध मुकद्मा दायर करने का निर्णय करते हैं और जिस कानून के बूते वह जमीन वापस न करने की धमकी देता है। देवकुमार उसी कानून को हथियार बनाकर सिन्हा और संतकुमार की सहायता से सेठ गिरधर दास से अपनी जमींन वापस लेने की धमकी देते है और इस प्रकार देवकुमार दरिन्दों बीच लड़ने के लिए हथियार बॉधने के सिद्धान्त को व्यवहारिक रूप प्रदान करते है। इस विषय में राजेश्वर गुरू का कथन है –"

उनके भीतर का गॉधी या तो सो गया है या उसकी मूर्ति अब उनके मन्दिर मे नहीं रह गई है। वे मानव के मन को दया धर्म या नीति से जीत सकने को सम्भव नही मानते गॉधी जी की तरह जिन्हें वे अब तक ट्रस्टी समझते रहे हैं, आज उनसे लड़ने के लिए हथियार बॉधने का उपक्रम कर रहे है।"[1] कहना न होगा कि मंगलसूत्र तक आते–आते प्रेमचंद समझौतावादी नहीं रह गए थे। उन्हें ईट का जबाब पत्थर से देना आ गया था। 'मंगलसूत्र' में प्रेमचंद की सारी पूर्वमान्यताएं चटाचट टूटती नजर आती है। मंगलसूत्र के प्रथम अध्याय में देवकुमार, संतकुमार और सिन्हा के बातचीत करने तक, प्रेमचंद पुराने मापदण्डों और मोहों के शिकार है,' लेकिन चौथे अध्याय के उत्तरार्द्ध में देवकुमार एक नये दृष्टि तेज से सम्पन्न बुर्जुआ सभ्यता के विरोधी शोषणवादी व्यवस्था के खिलाफ़ कमर कस कर लड़ने वाले के रूप में प्रकट होते हैं'। उनका मोह भंग हो चुका होता है और यह मोहभंग आज के दल बदलुओं का मोहभंग नहीं था, इसके मूल में एक बैज्ञानिक चिंतन–बोध था।"[2] अब तक प्रेमचंद के दृष्टिकोण मे इतना जबरदस्त क्रांतिकारी परिवर्तन आ गया था कि वे इस पूरी की पूरी व्यवस्था को बदल डालने की बात सोचते है " बस हो तो संसार की सारी व्यवस्था बदल डालें।[3] इस प्रकार 'मंगलसूत्र' में कल्याण का एक अभिनव क्रांतिमार्ग प्रस्तुत करना चाहते हैं जिससे हमारे देश में सेठ, साहूकार, जमींदार, आदि शोषक न रहे।

---

[1] प्रेमचंद एक अध्यन राजेश्वर गुरू पृ0 249।

[2] हिन्दुस्तानी पृ0 70।

[3] मंगलसूत्र प्रेमचंद पृ0 44।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन के अनुसार कह सकते हैं कि प्रेमचंद के उपन्यास तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का ऐसा दपर्ण है जिसमें एक ओर जहाँ स्वाधीनता आन्दोलन के फलस्वरूप उत्पन्न राजनैतिक चेतना दृष्टिगोचर होती है वहीं दूसरी ओर ब्रिट्रिश सरकार की नीति एवं औपनिवेशक शासन व्यवस्था में व्याप्त अनैतिकता, अन्याय तथा अत्याचार पूरी वास्तविकता के साथ प्रतिबिम्बित हो उठे है। प्रेमचंद देश की पराधीनता के समूचे यथार्थ को अपने उपन्यासों में उसके बहुआयामी कोणों एवं समस्त अन्तर्विरोधों एवं जटिलताओं के साथ चित्रित करते हैं। विदेशी सत्ता से देश की मुक्ति की समस्या को प्रेमचंद केवल भावानात्मक अथवा राष्ट्रप्रेम के स्तर पर नही वरन् देश की बहुसंख्य जनता के आर्थिक शोषण तथा दमन से जोड़ कर देखते हैं। इसीलिए वे दीन हीन प्राणियों निरीह दैन्य किसान और मजदूरों को आर्थिक शोषण से मुक्ति दिलाने के लिए अपना स्वर मुखारित करते हैं। औपनिवेशिक शासन की कुटिल तथा अत्याचार पूर्ण नीति का चित्रण करने में वे कही कोई समझौता नहीं करते यदि प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध होने वाले स्वातन्त्र संघर्ष का खुला चित्रण नहीं किया तो केवल इसलिए कि ऐसा करने से उन्हें अंग्रेज सरकार के कोप का भाजन बनना पड़ता जिससे उनके उस संघर्ष में गतिरोध उत्पन्न होता जो वह अपने देश के लाखों करोड़ों जनता के लिए अपनी लेखनी के माध्यम से कर रहे थे परन्तु सरकार के कोप से अपना बचाव करते हुए भी उन्होंने देश के स्वतंत्र्य संघर्ष का प्रतिकात्मक रूप में पूरी इमानदारी से चित्रण किया है देशी राजाओं ताल्लुकेदारों महाजनों पूँजीपतियों सरकारी अमलों चापलूसों बुद्धजीवियों पाश्चात्य सभ्यता अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली तथा न्यायपालिका आदि का विरोध वस्तुतः ब्रिटिश सरकार का विरोध है।

अध्याय– 5

"प्रेमचंद के उपन्यासों में सांस्कृतिक चेतना–"

–पंचम अध्याय–

"प्रेमचंद के उपन्यासाों में सांस्कृतिक चेतना–"

1. संस्कृति शब्द अर्थ और महत्व–
2. संस्कृति का स्वरूप संस्कृति का क्षेत्र और अभिव्यक्ति के उपादान–
3. संस्कृति और सभ्यता–
4. साहित्य और संस्कृति
5. प्रेमचंद के उपन्यासों में चित्रित सांस्कृति तत्वो का मूल्यांकन–

संस्कृति शब्द का अर्थ और महत्व–

मनुष्य एक सामाजिक जीव है। समाज मे रहते हुए अपनी उन्नति और समृद्धि के लिए वह निरन्तर प्रयत्नशील रहता है परन्तु उसका यह प्रयत्न व्यक्तिगत न होकर सामूहिक होता है। मानव के इन्हीं सामूहिक प्रयासों के परिणाम स्वरूप विभिन्न राजनीतिक तथा सामाजिक संस्थाओं का जन्म होता है जिनके द्वारा राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि सामाजिक विज्ञानों की उत्पत्ति होती है। जिनका भली प्रकार विकास करके मनुष्यं अपने जीवन को सभ्य एवं सुसंस्कृत बनाने का उद्यम करता है। जीवन को सुखी, समृद्ध तथा कल्याण कारी बनाने के लिए मानव द्वारा किये जाने वाले इन प्रयत्नों का नाम संस्कृत है क्योंकि संस्कृति का शाब्दिक अर्थ ही है उत्तम बनाना। वर्तमान समय में संस्कृति शब्द का प्रयोग विस्तृत रूप एवं अनेक अर्थो में होने लगा है। संस्कृति शब्द 'सम्' उपसर्ग के साथ ''हुकुम'' करणे धातु से क्तिन प्रत्यय और ''सम्युपुपेभ्यः करोतीभूषणे'' ''समवायेच''[1] नियम सुडागम करने पर निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ संस्कार, शुद्धता या परिष्कृत करना होता है। श्री ब्रहमानन्द सरस्वती के अनुसार 'संस्कृति'शब्द 'कृ' धातु से भूषण अर्थ में 'सुट् का आगम करने पर बना है, जिसका अर्थ है। भूषण भूत सम्यक् कृति या चेष्टा। अतः जिन चेष्टाओं द्वारा मनुष्य अपने जीवन के समस्त क्षेत्रों में उन्नति करता हुआ सुख–शांति प्राप्त करता है, वे ही संस्कृति कही जा सकती है, अथवा मनुष्य के लौकिक–पारलौकिक सर्वाभ्युदय के अनुकूल आचार–विचारों को 'संस्कृति' कहा जा सकता है।''[2]

डॉ0 रामशकल पाण्डेय के मत के अनुरूप–परम्परा से प्राप्त विचार, मूल्य, कला, शिल्प, वस्तु, तथा आढ़त संस्कृति के अंग है। आदर्शो मूल्यों, स्थापनाओं एवं मान्यताओं का समूह संस्कृति है संस्कृति के अनुसार ही किसी समाज की जीवन शैली का निर्माण होता है। इस दृष्टि से संस्कृति सामाजिक व्यवहार का एक पैटर्न है, अनेक प्रकार की शिक्षा द्वारा प्राप्त गुणों का समुदाय है, मन और आत्मा की संतुष्टि के लिए किए जाने वाले प्रयासों का समवाय है, जीवन की पूर्णता का अध्ययन है, जीवन को परिष्कृत और सर्वोत्कृष्ट बनाने के लिए मूल्यों का अनुसन्धान है, अभिव्यक्ति की आन्तरिक शक्ति है और सभ्यता की आर्दश सखी

---

[1] पाणिनी अष्टाध्यायी, 6 (1) 136–38।

[2] कल्याण हिन्दू संस्कृति अंक, जनवरी 1950, पृ0 24।

है।"[1] देवराज के अनुसार वैसे तो संस्कृति शब्द का अर्थ बड़ा अनिश्चित है।" नृ–विज्ञान में संस्कृति का अर्थ 'समस्त सीखा हुआ व्यवहार" होता है, अर्थात वे सब बाते जो हम समाज के सदस्य के होने के नाते सीखते हैं। इस अर्थ में संस्कृति शब्द परम्परा का पर्याय है।"[2] डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेजी के अनुसार––" सभ्यता का आन्तरिक प्रभाव संस्कृति है।" सभ्यता समाज की बाहय व्यवस्थाओं का नाम है, संस्कृति व्यक्ति के अन्तर के विकास का। "[3] राष्ट्रकवि श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते है––"संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमे हम जन्म लेते है। इसलिए जिस समाज में हम पैदा हुए है अथवा जिस समाज से मिलकर हम जी रहे हैं उसकी संस्कृति हमारी संस्कृति हैं यद्यपि अपने जीवन में जों संस्कार जमा करते हैं, वह भी हमारी संस्कृति का अँग बन जाता है और मरने के बाद हम अन्य वस्तुओं के साथ अपनी संस्कृति की विरासत भी अपने सन्तानों के लिए छोड़ जाते हैं। इसलिए संस्कृति वह चीज मानी जाती हैं, जो हमारे सारे जीवन को व्यापे हुए है तथा जिसकी रचना और विकास में अनेक सदियों के अनुभवों का हाथ हैं'। यही नही बल्कि संस्कृति हमारा पीछा जन्म जन्मान्तर तक करती है।'[4]' संस्कृति मानव जीवन का एक ऐसा समृद्ध विकास है जिससे उसके व्यवहार और रचना के अनेक रूप समाहित किये जाते है।"[5] डॉ0 उमाकान्त के शब्दों में संस्कृति शब्द "कृ"' धातु में सम् उपसर्ग तथा "क्तिन्" प्रत्यय लगाकर बना है। अतः इसका अर्थ है– सम्यक्कृति अथवा शुभ चेष्टा या श्रेष्ठकर कर्म।"[6]

कुछ कोश ग्रंथों में इस पर विचार किया गया हैं और संस्कृति शब्द को –"संस्कृ" धातु और 'क्तिन" प्रत्यय से व्युत्पन्न माना गया है। इसके अनुसार इसे सजना–संवरना पवित्र करना, मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित करना, शिक्षित बनाना, सभ्य बनाना, वस्त्र लंकार से सुसज्जित करना आदि अर्थों का बाहक माना गया है।"[7]

---

[1] साहित्य परिचय–शिक्षा और भारतीय संस्कृति विशेषॉक, सम्पादकीय, पृ0 16।

[2] भारतीय संस्कृति–देवराज पृ0 19।

[3] विचार और वितर्क पृ0 181।

[4] संस्कृति के चार अध्याय–रामधारी सिंह दिनकर पृ 653।

[5] प्रेमचंद के कहानियों में ग्राम्य जीवन का चित्रण–सरोज गौड़ पृ0 157।

[6] मैथलीशरण गुप्त–कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता, पृ0 384।

[7] भारतीय संस्कृति और सांस्कृतिक चेतना–डा0 राम खेलावन पाण्डेय पृ0 8।

डा0 हरिश्चन्द्र वर्मा ने संस्कृति को तीन अर्थों में लिया है–संस्कार, संस्कृत, और संस्कृति। संस्कार उन पवित्र और उदान्त विचारों एवं कार्यो के सूचक है, जो जीवन को व्यवस्थित बनाते है और सद्‌गति प्रदान करते है। यही संस्कार के स्वरूप पर तनिक ध्यान देने से यह स्पष्ट अनुभव होता है कि संस्कार शोधन या परिष्कार करने की एक विशेष पद्धति (व्यवस्था) है जिसे इस पद्धति द्वारा परिष्कृति कर दिया गया है, वह 'संस्कृत' है और परिष्कार करने की प्रेरणा शक्ति ही 'संस्कृति' है। संस्कृति ऐसी भूषण भूत परिष्कृत कृति है जो जीवन को समग्र रूप में परिष्कृत करने की प्रेरणा प्रदान करती है। मानव के उदात्त विचार और कार्य ही उसे प्रेरक शक्ति के रूप में है। इस आधार पर 'संस्कृति' उन उदात्त विचारों और पवित्र कार्यो की श्रृंखला को कहते है जो किसी देश या जाति के जीवन को गति प्रदान करतें है।"[1] प्रो0 ई0 बी0 टायलर के शब्दो में––"संस्कृति वह जटिल समग्रता है जिनमें ज्ञान विश्वास, कला, आचार कानून प्रथा तथा ऐसी ही अन्य क्षमताओं और आदतों का समावेश रहता है, जिन्हे मनुष्य समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त करता है।"[2] पिडिगंटन के अनुसार––"संस्कृति उन भौतिक तथा बौद्धिक साधनों या उपकरणों का सम्पूर्ण योग है जिनके द्वारा मानव अपनी प्राण शास्त्रीय एवं सामाजिक आवश्यकताओं की संतुष्टि करता है तथा अपने आपकों पर्यावरण के अनुकूल बनाता है।"[3] यजुर्वेद में भी संस्कृति को एक ऐसी सृष्टि माना गया है, [4] जो विश्व में वरण करने योग्य [5] ' अथवा विश्व का उन्नयन [6] करने वाली है। प्राचीन भारतीय वाड्मय में संस्कृति शब्द बहुत कम प्रयोग में आया है इसलिए कुछ लोगों का विचार है कि संस्कृति शब्द अंग्रेजी के 'कलचर' की अर्थ संगति पर गढ़ा है। वस्तुतः इस शब्द का प्रयोग बहुत पुराना है। प्रारम्भिक दौर में इसे कृषि तथा पशुपालन का सूचक माना जाता था। 18वीं शताब्दी के अन्त तक यह शब्द अर्थ संकोच और अर्थ विस्तार के विविध स्वरूपों

---

[1] निराला काव्य का सांस्कृतिक पक्ष (लेख) सप्तसिंधु पृ0 39।

[2] भारतीय संस्कृति के मूल आधार –कमलेश भरतद्वाज पृ0 2।

[3] भारतीय संस्कृति के मूल आधार –कमलेश भरतद्वाज पृ0 2।

[4] सा0 प्रथमा संस्कृति विश्वधारा –यजुर्वेद, 7/14

[5] डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल, वारधारा पृ0 10।

[6] पृथ्वी कुमार अग्रवाल, भारतीय संस्कृति की रूपरेखा–पृ0 1–2

से गुजरा। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दो तीन दशकों में यह आधुनिक अर्थ सन्दर्भ के रूढ़ होने लगा।

'संस्कृति' अंग्रेजी के 'कल्चर' का पर्याय है। 'कल्चर' शब्द 'कल्टीवेशन' का समानार्थी है।[1] कल्टीवेशन का अर्थ कृषि कर्म के साथ 'उन्नति'[2] और संवर्धन से भी है।[3] पृथ्वी कुमार अग्रवाल ने इस मानवता के अर्थ में लिया है 'संस्कृति' शब्द 'कल्चर' का पर्याय माना जाता है, जिसका प्राचीन मूल लैटिन के शब्द 'कुल्तुस' में मिलता है जिसके पर्यायवाची शब्द 'हुमैनिटिस' का अर्थ 'मानवता' अर्थात मानवीय कृतियों का बोधक है।"[4] कल्चर में जो धातु है वही 'एग्रीकल्चर' में भी है। जिसका अर्थ है --सुधारना या उत्पन्न करना। इस दृष्टि से वे समस्त मानवी कृतियों जिन्हें मानव ने सुधार कर नवीन रूप दिया है अथवा संस्कार करके उत्पन्न की है संस्कृति के अन्तर्गत मानी जाएँगी। मानव की यह सुधार करने या उत्पन्न करने की क्षमता ही उसे अन्य प्राणियों से अलग करती है। अपनी इसी विशेषता के कारण वह समस्त प्राणी जगत में पहचाना जाता है। मानवेत्तर जीवधारियों–पशुओं और पक्षियों का समूचा बौध प्रवृत्ति–मूलक (Instinctive) होता है। उनकी रचना क्षमता भी प्रवृत्ति मूलक होने के कारण रूढ़ और आवृत्तिमयी होती है। यही कारण है कि वे अपनी मूलभूत रचना–क्षमता में विकास नही कर पाते। इसका कारण यह है कि जहॉ अन्य प्राणियों के संस्कार क्षण–विशेष में अर्थ क्रियात्मक और अस्थिर होते है वहॉ मानवीय संस्कार व्यवस्थित एवं स्थायी होते है।[5] सृष्टि से प्रारम्भ से इस मुक्ति के लिए प्रयत्नशील मानव के सतत् प्रयासों के परिणाम ही संस्कृति के रूप में चरितार्थ होते है।

विभिन्न विद्वानों के अभिमत से परिचित होने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि संस्कृति का क्षेत्र इतना विशद व्यापक एवं जटिल है कि उसकी

---

[1] डा0 पी0 के0 आचार्य –ग्लोरियस ऑफ इण्डिया, इन्ट्रोडक्शन–द्वितीय संस्करण।

[2] डा0 रघुवीर कम्प्रिहेन्सिव इंगलिश–हिन्दी डिक्शनरी, पृ 417।

[3] वी0 एस0 आप्टे, स्टुडेन्टस इंगलिश संस्कृत डिक्शनरी, पृ0 89।

[4] भारतीय संस्कृति की रूपरेखा पृथ्वी कुमार अग्रवाल, 2

[5] यशदेव शल्य, संस्कृति मानव कृतित्व की व्याख्या पृ0 1, 2

कोई सर्वग्राही परिभाषा देना दुर्लभ है। प्रत्येक भाषा में संस्कृति विषय पर विस्तृत लेखन कार्य हुआ है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक लेखक की अपनी खुद की सोच होती है और वह अपने देश के इतिहास एवं विशेषता को विशेषरूप से अभिव्यक्ति करना अपना नैतिक कर्तव्य समझता है। देश हो या जाति प्रत्येक की अपनी पहचान होती है जो उसके इतिहास में प्रविष्ट होकर कर्म प्रेरणा के रूप में कार्य करती है। मनुष्य अपने चिन्तन के द्वारा जीवन को एक रस सुन्दर और सुखद बनाने के लिए जो प्रयत्न करता है उसका परिणाम ही संस्कृति है। " संस्कृति वह जीवन पद्धति है जिसकी स्थापना मानव व्यक्ति तथा समूह के रूप में करता है, वह उन अविष्कारों का संग्रह है जिनकी खोज मानव ने अपने जीवन को सफल बनाने के लिए की है। अपनी आत्मा और प्रकृति पर विजय प्राप्त करके ही व्यक्ति उन्नत हो सका है।"[1] अतः हम कह सकते है कि' संस्कृति' अनगिनत व्यक्तियों के सामूहिक एवं अथक प्रयत्नों के परिणाम स्परूप प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की वह क्रमबध्य प्रक्रिया है जो कई संततियों तक निरन्तर चलती रहती है। इस प्रकार संस्कृति किसी युग विशेष का उपज न होकर युगों–युगों से मानव समाज के सामूहिक प्रयत्नों का प्रतिफल है जो प्रसारवादी तथा संप्रेषणशील होने के कारण प्रतीकों के माध्यम से एक पीढी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानान्तरित होती रहती है।

---

[1] भारतीय संस्कृति का विकाश–डा0 कालूराम शर्मा पृ0 3

संस्कृति का स्वरूप संस्कृति का क्षेत्र और अभिव्यक्ति के उपदान –

मनुष्य एक चिन्तन शील एवं विवेकी प्राणी है। प्रकृति के द्वारा उपहार स्वरूप मानव को एक ऐसी शक्ति प्राप्त हैं। जो उसे अन्य जीवों से पृथक और उच्च स्थान दिलाती है। प्रकृति के रहस्यपूर्ण तत्वों और शक्तियों का ज्ञान प्राप्त कर मनुष्य ने सभ्यता के क्षेत्र में जो उन्नति की है, उसका कारण उसकी बुद्धि ही है। "सभ्यता मनुष्य की कतिपय क्रियाओं से उत्पन्न होने वाली चीजों का नाम है इसके विपरीत संस्कृति मानवीय क्रियाओं का कोई कार्य नही है मनुष्य की कुछ क्रियाएँ ही संस्कृति है। संस्कृति मनुष्य के उन व्यापारों तथा अभिव्यक्तियों का नाम है जिन्हे वह साध्य के रूप में महत्वपूर्ण मानता है।"[1] मनुष्य समाज का एक अंग है वह सामूहिक रूप से अपनी प्रगति और समृद्धि के लिए निरन्तर प्रयास करता रहता है। समाज में रहने वाले अन्य लोगों के साथ उसके सम्बन्ध कैसे हो इस पर विवेकँ पूर्वक चिन्तन करता है। " संस्कृति और समाज एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से संश्लिष्ट है। सांस्कृतिक विकास सामूहिक प्रयत्नों के परिणाम हुआ करते है। यही कारण है कि संस्कृति का विकास मन्थरगति से होता है। संस्कृति परम्परागत आचार–विचार और भौगौलिक परिवेश से प्रभावित हुए बिना नही रह सकती है। यद्यपि परम्परागत उदात्त विचार धाराओं का युगानुकूल संस्कार होता रहता है तथापि संस्कृति नूतन नही है, क्योंकि संस्कृति का अस्तित्व नूतन और पुरातन अनुभूतियों के संस्कारों द्वारा निर्मित समुदाय के दृष्टिकोण मे निहित है। संस्कृति हमारे दैनिक व्यवहारों में कला मे, साहित्य में, मनोरंजन और आनन्द में पाये जाने वाले रहन–सहन और विचारों की अन्तर्निहित प्रवृत्ति का प्रकाशन है। "[2] समाज शास्त्रीय दृष्टिकोण से ––" संस्कृति का उद्‌गम सामाजिक है और समाज की इकाई व संस्कार का केन्द्र मनुष्य है अतः मनुष्य ही संस्कृति का निर्माता है और संस्कृति मनुष्य को उसके स्वः निर्माण की प्रकिया में समाजिकता की व्यापकता एवं गहराई को नापने के लिए तैयार करती है।"[3]

मनुष्य एक ओर बाहरी जगत का संस्कार करके अथवा प्रकृति पर विजयोपरान्त उसमें परिवर्तन करने के लिए प्रयासरत रहा है, और दूसरी तरफ वह अपनी आत्मा का संस्कार करने में निरन्तर लगा रहा। "मानव ने बैडौल

---

[1] भारतीय संस्कृति डा0 देवराज पृ0 सं0 165।

[2] मैकाइवर एण्ड पेज–सोसाइटी पृ0 449।

[3] संस्कृति एवं सभ्यता भारतीय दृष्टिकोंण–बृज बिहारी निगम पृ0 35।

पाषाण या संगमरमर को तराशकर सुन्दर मूर्तियों या अन्य वस्तुओं का निर्माण किया है। यह क्रिया बाह्य विश्व का संस्कार है, जिसे संस्कृति का भौतिक स्वरूप कहा जाता है किन्तु मानव–निर्मित पाषाण या संगमरमर की मूर्ति या अन्य वस्तुओं में जो सौन्दर्य और कला की श्रेष्ठ भावनाएँ तथा हस्त–कौशल अभिव्यक्त होता है, वह संस्कृति का आध्यात्मिक अंग है। मनुष्य के जिन क्रिया–कलापों में बाह्य विश्व के संस्कार एवं परिवर्तन की प्रधानता होती है उसे नैतिक संस्कृति भी कहा जा सकता है। कृषि, पशु–पालन, भवन निमार्ण, यन्त्र–निमार्ण, विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन आदि भौतिक संस्कृति है इसमें बाह्य विश्व की भौतिक प्रगति की प्रधानता है। आध्यात्मिक संस्कृति में मानव की प्रकृति और आत्मा का संस्कार एवं सुधार की प्रधानता होती है। संस्कृति के इस आध्यात्मिक अंश में धर्म, नीति विधि–विधान, विधाएँ कला–कौशल, साहित्य मानव के समस्त सद्गुण और शिष्टाचार निहित है। संस्कृति के भौतिक तथा आध्यात्मिक अंग एक ही अखण्ड वस्तु के स्वरूप हैं। भौतिक व्यवहार संस्कृति की नींव है तथा मानसिक और आध्यात्मिक व्यवहार उस नींव पर खड़ा हुआ भव्य भवन है। संस्कृति के भौतिक एवं आध्यात्मिक स्वरूप एक–दूसरे पर निर्भर होते है।"[1]

संस्कृति का विकास आदान–प्रदान के विचार पर निर्भर करता है, क्योंकि व्यक्ति के व्यक्तिगत व्यवहार संस्कृति का अंग नही बन पाते, जब उन्हे दूसरों के द्वारा ग्राह्य कर लिया जाता है तो वह संस्कृति में ग्रहीत हो जाते है। संस्कृति व्यवहारों का समूह मात्र नहीं वरन व्यवहारों का अन्योन्याश्रित होकर एक बहुत मज़बूत व्यवस्था मे ढल जाना हैं। आपस का सम्पर्क ही संस्कृति के विकास के प्रमुख साधन है। संस्कृति की जीवन्तता पारिस्परिक सम्पर्कों पर ही निर्भर होती है। डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में ––" हमे किसी सिद्धान्त का त्याग इसलिए नहीं करना चाहिए कि वह अभारतीय है। हमें विदेशी सिद्धान्त भी गुणों की कसौटी पर ग्रहण करने चाहिए।"[2] कवि एवं विचारक 'रवीन्द्र बाबू' का कहना है ––" जीवन का संसार जीवित माध्यम से ही सम्भव है, और संस्कृति में मन का जीवन है। यह केवल मनुष्यों के पारस्परिक आदान–प्रदान और विचार विनिमय द्वारा फैल सकती है। संस्कृति विकासशील है और जीवन के विकास शील होने के साथ ही परिवर्द्धित और परिवर्तित होती है।"[3] आशय यह है कि

---

[1] भारतीय संस्कृति का विकास डा0 कालू राम शर्मा पृ0 4।

[2] विचार और वितर्क पृ0 125।

[3] विश्व मानवता की ओर–रवीन्द्रनाथ ठाकुर –अनृ0 इलाचन्द्रजोशी–पृ0 198।

जीवन के क्रिया–कलापों और घात–प्रतिघातों का जीवन्त स्वरूप मानव के मन को जिस सम्पूर्ण उद्देश्य की ओर प्रेरित करता है, उसे संस्कृति कहा जाता है।

'संस्कृति' शब्द से मानव–मस्तिष्क पर एक सुसंगठित श्रेष्ठ और प्रेम छाया विस्तृत क्षेत्र को आत्मसात करते हुए खिंच जाती है। मनुष्य ने विवाह के उपरान्त ही परिवार और समुदाय का निर्माण किया जिसका सम्बन्ध सामजिक, राजनीतिक, धार्मिक दार्शनिक, साहित्यिक, एवं कलागत जीवन के विभिन्न रूपों से है। सामाजिक सम्बन्धों को विस्तृत रूप देने के लिए अपने नज़दीक के रिश्तों में विवाह करना अपवाद समझा। पारिवारिक विस्तार ही कुल, जाति राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुँच गया। सांस्कृतिक विकास सामाजिक व्यवस्था के साथ–साथ होता रहा। आज राजनीति संस्था का विकास ऐसे चरमोत्कर्ष पर है कि मनुष्य किसी न किसी शासन नियम से बंधा हुआ है। मानव ने बौद्धिक चेतना की श्रेष्ठता के कारण जिस विषय को सामाजिक विकास के लिए श्रेष्ठ समझा ग्रहण कर लिया। मनोंरजन, आनन्दानुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए साहित्य–कला को उत्पन्न किया और आत्मा की संतुष्टि के लिए धर्म का प्रादुर्भाव किया ये सभी संस्कृति के संस्कार जन्य अंग है।

भारतीय दर्शन के अनुसार 'संस्कृति के पॉच अवयव–कर्म दर्शन, इतिहास, वर्ण तथा रीति–रिवाज है।"[1] मनीषी सन्त अरविन्द ने समन्वयवादी और उदात्त दृष्टिकोण अपनाते हुए भारतीय संस्कृति को जिस प्रकार व्याख्यायित किया है वह विशिष्ट है ––" भारत धर्म परायण देश रहा है। आरम्भ से ही व्यक्ति के समक्ष कुछ जीवन के ऐसे महत् उद्देश्य प्रस्तुत रहे है जिनका वह दर्शन के माध्यम से समाधान ढूंढने के लिए तत्पर पाया गया है। इस प्रकार इस चिन्तन धारा में ये दोनों (धर्म और दर्शन) अन्योन्याश्रित सिद्ध हुए है। इसी के युगपत सम्बन्ध ने भारतीय संस्कृति को स्थायी भी बनाया है। [2] बाबूगुलाब राय "संस्कृति को विस्तृत क्षेत्र मानते हुए उसके अन्तर्गत साहित्य संगीत कला, दर्शन, धर्म, लोकवर्ता तथा राजनीति का समावेश करते है।"[3] स्पष्टतः कह सकते है कि संस्कृति की अभिव्यक्ति इतिहास, समाज, संगठन, राजनीति, धर्म, दर्शन, शिक्षा, कला और

---

[1]कल्याण हिन्दू संस्कृति विशेषांक, पृ0 76।

[2] हिन्दी उपन्यास : सांस्कृतिक एवं मानववादी चेतना –डा0 सच्चिदानन्द राय पृ0 27।

[3] डा0 गलाब राय भारतीय संस्कृति की रूपरेखा, आत्म निवेदन, पृ0 1।

साहित्य में होती है। संस्कृति अपने व्यक्त के साधनो के कारण ही अविरल गति से प्रवाहमान है। सारसापेक्षता में हम कह सकते है कि ––" संस्कृति वस्तु–जगत के उन पहलुओं की जीवन्त एवं शक्ति पूर्ण चेतना है जो उपयोगी न होते हुए भी अर्थवान होते है, लाभदायक न रहते हुए भी महत्व रखते है। इस प्रकार की चेतना से सम्पन्न होकर मनुष्य अपने को वस्तु–जगत की परतन्त्रता के क्रम के क्रम से मुक्त कर लेता है और उसका प्रवेश मूल्यों के जगत में हो जाता है, जहॉ मुक्ति अथवा स्वतंत्रता का साम्राज्य है।"[1] डॉ0 सरनाम सिंह शर्मा का कथन है ––" सभ्यताओं का विकास और विनाश हो सकता है, धर्मो का उत्थान पतन हो सकता है पर संस्कृति की मौलिक रूप चिरन्तर और चिर स्थायी है।" [2] मूलतः संस्कृति सभ्यता दोनों में बहुत अन्तर है, किन्तु एक–दूसरे के विगैर जीवित रह ही नही सकते है, क्योंकि किसी सांस्कृतिक पहलू के विकास में उस देश की सभ्यता की छाया देखी जा सकती है। संस्कृति और सभ्यता के अन्तर को स्पष्ट करने के लिए दोनो का तुलनात्मक अध्ययन समीचीन होगा।

---

[1] संस्कृति का दार्शनिक विवेचन–देवराज पृ0 176।

[2] डा0 सरनाम सिंह शर्मा –साहित्य सिद्धान्त और समीक्षा, पृ0 2।

संस्कृति और सभ्यता –

संस्कृति एवं सभ्यता इन दोनों शब्दो का प्रयोग विश्व की अनेक भाषाओं में एक साथ होता आया है ये दोनों शब्द प्रायः संस्कारों के अर्थ में प्रयुक्त होते है जिसके कारण भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और यह मान लिया जाता है ये दोनों शब्द समानार्थी है ''भारतीय भाषाओं मे दोनों शब्दों का प्रयोग होता रहा है। संस्कृति शब्द यजुर्वेद में विद्या सुशिक्षा जनित नीति अर्थात विद्या एवं शिक्षा से संस्कारित हमारे कर्म के अर्थ में किया है।[1] सभ्य शब्द कालिदास के रघुवंश। –55 एवं कुमार संभव VII--29 में प्रस्तुत हुआ है। सभा में बैठने का तरीका हमारे सामाजिक व्यवहार का एक सुसंस्कृत रूप 'सम्भव' होगा। कालिदास ने 'सभ्य' शब्द संयमी मुनियों के लिए किया है जिन्होने इंद्रिय निग्रह प्राप्त कर लिया है। [2] इसका आशय यह है कि 'सभ्यता' शब्द प्रशंसा–मूलक है जो कि संस्कारित विचार एवं व्यवहार के लिए प्रयुक्त होता है। उर्दू में भी दो शब्द 'तमद्दुन' एवं 'तहजीब' प्रचलित है जो बहुधा पर्याय की तरह प्रयुक्त होते है। अंग्रेजी में भी 'सिविलाईजेशन' एवं 'कल्चर' शब्दों का प्रयोग होता है, कई बार एक ही अर्थ में और कई बार भिन्न अर्थो में। यही प्रवृत्ति आज भी प्रचलित है। टाईलर भी इस मत के समर्थक है कि सभ्यता एवं संस्कृति पर्यायवाची शब्द हैं। [3] हर्स्कोविट्स मानते है कि 'संस्कृति' के लिए एक शब्द है 'परम्परा' और दूसरा 'सभ्यता'। दोनों शब्द समानार्थक है। [4]

उपरोक्त मतो के विपरीत कुछ समाजविज्ञानी संस्कृति तथा सभ्यता को समानार्थी नही मानते उनके अनुसार ये दोनो शब्द विशिष्ट समाजिक स्थितियों के परिचायक हैं। उदाहरणार्थ हुमायूँ कबीर का मत है कि सभ्यता के आधार पर ही संस्कृति का निर्माण होता है। संस्कृति का जन्म हमारे अस्तित्व की समस्या का हल सभ्यता के द्वारा खोज लिए जाने के पश्चात् होता है। जब मनुष्य अपनी आवश्यकताओं से मुक्ति पा लेता है तब उसका ध्यान संस्कृति की ओर जाता है। इसी प्रकार मैकाइवर अपनी पुस्तक में सभ्यता एव संस्कृति को बिल्कुल भिन्न मानते हैं। उनके अनुसार ''सभ्यता यांत्रिक प्रगति की परिचायक हैं जब कि

---

[1] सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा **Vii-14**

[2] रघुवंश तस्मयशभ्यः : सभार्या य गोटत्रे गुप्ततगेन्द्रियाः

[3] टाइलर, डी० ई० प्रिमीटिव्ह कल्चर, भाग 3 पृ० 1(जानमरे, लंदन 1903)।

[4] मैन एण्ड हिज वर्क्स पृ० 17 (अल्फैड ए नाफ 1949)।

संस्कृति का क्षेत्र हमारी आभ्यांतरिक प्रेरणाएँ हैं। मूल्यो शैलियों भवात्मक संबंधो रहस्यानुभूतियों एवं बौद्विक चमत्कारों का अध्ययन संस्कृति के क्षेत्र मे आता है।"[1] ओस्वाल्ड स्पेंलर यद्यपि सभ्यता तथा संस्कृति शब्दों का प्रयोग अलग अलग अर्थों में ! तथापि वे इन दोनों शब्दों की समुचित परिभाषाएँ नही दे सके हैं परन्तु उनके मतानुसार सभ्यता किसी संस्कृति की चरम अवस्था होती है। प्रत्येक संस्कृति की अपनी सभ्यता होती है। सभ्यता किसी संस्कृति की कृतिम अवस्था उसकी बाह्रय अभिव्यक्ति है।

प्राचीन काल में भले ही संस्कृति और सभ्यता एक ही अर्थ में प्रयोग में आते रहे हों परन्तु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में दोनों को पृथक–पृथक रूप में देखा जाता है। संस्कृति और सभ्यता एक दूसरे पर निर्भर रहते हुए भी अपना विशिष्ट एवं मौलिक अर्थ रखते हैं डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार ––" सभ्यता समाज की बाह्रय व्यवस्थाओं का नाम है, तो संस्कृति व्यक्ति के विकास का।"[2] सभ्यता शब्द 'सभ्य' शब्द से बना है जो कि सभा में 'यत्' प्रत्यय लगने से बनता है।"[3] प्राचीन काल में सभा के योग्य संस्कृत एवं शिष्ट व्यक्ति को सभ्य कहा जाता था। आधुनिक युग में सभ्यता से तात्पर्य उन आविष्कारों उत्पादन के साधनों एवं सामाजिक, राजनैतिक संस्थाओं से समझना चाहिए, जिनके द्वारा मनुष्य की जीवन यात्रा सरल हो जाती है। इसके विपरीत मानव व्यक्तित्व और जीवन को संस्कृति कहा जाता है।[4]

इस पृथ्वी पर मानव रूप में अवतरित प्रत्येक प्राणी की तीन मूलभत आवश्यकताएँ है रोटी, कपड़ा, और मकान जिनकी पूर्ति के लिए वह आदिकाल से प्रयासरत रहा है। उसका यह प्रयास सूदूर अतीत से प्रारम्भ हुआ जब उसने पत्थर से हथियार और औजार बनाना सीखा तब से लेकर आज तक आधुनिक हवाई ज़हाज, रेल डाक तार, लोहे और कपड़े के विशाल कारखानों के रूप में अनवरत रूप से उसका यह प्रयत्न आज भी जारी है।

---

[1] सोसायटी (हिन्दी संस्करण, रतन प्रकाशन, आगरा 1964) पृ0 469।

[2] डा0 हजारी प्रसाद द्विवेदी–विचार और वितर्क पृ0 123।

[3] सम्पादक–चतुर्वेदी द्वारिका प्रसाद शर्मा–संस्कृति शब्दार्थ और स्तुभ पृ0 1170।

[4] सम्पादक डा0 धीरेन्द्र वर्मा हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1 पृ0 868।

सभ्यता तथा संस्कृति मनुष्य के इन्ही सृजनात्मक प्रयासों का प्रतिफलन है इस दृष्टि से कह सकते है कि संस्कृति तथा सभ्यता दोनों मानव के सतत प्रयत्नों तथा रचनात्मक क्रियाओं की वह उपलब्धियाँ है जिसके द्वारा मानव अस्तित्व की रक्षा तथा प्रसार होता है। संस्कृति का सम्बन्ध मूल्य चेतना से होता है जबकि सभ्यता का सम्बन्ध उपयोगिता से। डॉ0 देवराज के अनुसार "सभ्यता तथा संस्कृति दोनों मनुष्य की सृजनात्मक क्रिया के परिणाम हैं। जब यह क्रिया उपयोगी लक्ष्य की ओर गतिमान होती है तब सभ्यता का जन्म होता है, और जब वह मूल्य चेतना को प्रबुद्ध करने की ओर अग्रसर होती है, तब संस्कृति का उदय होता है।"[1] सभ्यता वह साधन अथवा उपकरण है जिसके द्वारा मनुष्य अपनी नैसर्गिक क्षुधाओं एवं जैवी प्रकृति की माँग से पूरा करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि --" वे सब कला कौशल के तंत्र और तरीके से जिनके द्वारा मनुष्य अपनी मूल क्षुधाओं तथा जरूरतों को सरलता पूर्वक पूरा करता है सभ्यता कहलाती है।"[2] परन्तु संसार के समस्त जीवधारियों में श्रेष्ठ मानव जाति का केवल उपयोगिता से सरोकार रखते हुए महज उन वस्तुओं की चिन्ता करना जिनसे उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है सर्वथा अनुचित है क्योंकि इतना तो पशु भी कर लेता है, मानव और पशु में यहीं तो अन्तर है। पशु अपनी वर्तमान क्षुधाओं की पूर्ति करके संतुष्ट हो जाता है उसे अपने भावी जीवन की कोई चिंता नहीं होती परन्तु श्रेष्ठ मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति मात्र से संतुष्ट नही रह पाता। वह सदैव ऐसी कार्यो-क्रियाओं में संलग्न रहता है जो उपयोगी न होते हुए भी उसके अस्तित्व को विस्तृत तथा समृद्ध बनाने वाली होती है। संस्कृति मानव की ऐसी ही क्रियाओं को कहते हैं--" हम कह सकते है कि सभ्यता मनुष्य की कतिपय क्रियाओं से उत्पन्न होने वाली चीजों का नाम है इसके विपरीत संस्कृति मनुष्य के उन व्यापारों तथा अभिव्यक्तियों का नाम है जिन्हें वह साध्य के रूप में महत्वपूर्ण मानता है। मानव-जीवन अपने को तरह-तरह की क्रियाओं में अभिव्यक्ति करता है। संस्कृति मानवीय जीवन अथवा जीवन क्रिया के उन क्षणों का समुदाय है जो स्वयं अपने में महत्वपूर्ण समझे जाते है। कहा जा सकता है कि हमारा समस्त जीवन बाहर की वस्तुओं से सम्बन्ध स्थापित करने में रूपाकार पाता है। जिसे हम सभ्य जीवन कहते है उसमें हमारा सम्बन्ध उन वस्तुओं से स्थापित होता है जो हमारे लिए उपयोगी है। इसके विपरीत

---

[1] संस्कृति का दार्शनिक विवेचन-डा0 देवराज पृ0 177।

[2] संस्कृति का दार्शनिक विवेचन-डा0 देवराज पृ0 160।

सांस्कृतिक जीवन हम उसे कहेगें जिसमें हमारा सम्बन्ध अनुपयोगी किन्तु अर्थपूर्ण वास्तविकताओं में स्थापित होता है।"[1] प्रकृति प्रदत्त पदार्थो तथा शक्तियों का उपयोग कर मानव भौतिक क्षेत्र में जो उन्नति करता है उसे सभ्यता कहते है जबकि संस्कृति नाम है उन विशिष्ट शक्तियों एवं विशेषताओं का, जिनके द्वारा वह जीवन को श्रेष्ठ तथा समृद्ध बनाता है।

मानव चेतना में अन्तनिर्हित मूल्य तथा आर्दश संस्कृति के द्योतक है और सभ्यता का सम्बन्ध उन आदर्शों और मूल्यों का पालन करने वाले सह साधनों से है। इस प्रकार संस्कृति तथा सभ्यता परस्पर साध्य तथा साधन के रूप में सम्बन्धित है। जिस प्रकार साध्य को साधन से अलग नहीं किया जा सकता ठीक उसी प्रकार संस्कृति को सभ्यता से पृथक नही किया जा सकता। संस्कृति से सभ्यता उसी प्रकार सम्बद्ध है जिस प्रकार शरीर से आत्मा। जिस प्रकार शरीर के बिना आत्मा का अवतरण सम्भव नहीं उसी प्रकार सभ्यता के ज्ञान के अभाव में संस्कृति को समझ पाना असम्भव है। डॉ0 गोविन्द चन्द पाण्डेय के अनुसार –"संस्कृति समाज की अन्तश्चेतना है और सभ्यता उसकी बहिरभिव्यक्ति।"[2] अंग्रेजी की एक सुविख्यात कहावत के अनुसार यह तथ्य प्रस्तुत किया जाता है कि सभ्यता वह वस्तु है जो हमारे पास है और संस्कृति वह गुण है जो उसमें व्याप्त है।[3] कहने का आशय यह है कि भौतिक वस्तुएँ सभ्यता की उपादान है, परन्तु इन वस्तुओं का सही अर्थो में उपयोग संस्कृति का उपस्यकारक है।

यद्यपि सभ्यता और संस्कृति अन्योन्याश्रित है तथापि जहाँ सभ्यता हो वहाँ संस्कृति भी हो ऐसा जरूरी नही इसके विपरीत जहाँ संस्कृति है वहाँ सभ्यता का निवास होना अवश्यम्भावी है–– "संस्कृति संस्कारों का अक्षय कोष है जो विभिन्न रूपों में परिवर्तित होकर भी नष्ट नहीं होती। परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप सभ्यता का अनुसरण सरलता से किया जा सकता है। संस्कृति विचार है जिसके द्वारा हम जीवन की समस्याओं के बारे में चिन्तन–मनन कर निर्णयात्मक स्थिति पर जाते है और सभ्यता निष्कर्ष को कियात्मक रूप देती है।"[4] सभ्यता की सामग्रियों का सम्बन्ध शरीर से होता है जो शरीर के साथ छूट जाता है परन्तु

[1] संस्कृति का दार्शनिक विवेचन–डा0 देवराज पृ0 165।

[2] साहित्य और संस्कृति डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल पृ0 2।

[3] हमारी संस्कृति एकता पृ0 1।

[4] श्री मधुकर मुनि, जैन संस्कृति : एक विश्लेषण पृ0 5।

संस्कृति शरीर नही आत्मा का गुण है जिसका प्रभाव आत्मा के साथ जन्म जन्मान्तर तक चलता रहता है।"[1] संस्कृति व्यापक है और सभ्यता संकोचशील, संस्कृति के मूल्यतत्व परिवर्तन से ऊपर है और सभ्यता परिवर्तनशील है। रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार--" संस्कृति सभ्यता की अपेक्षा महीन चीज होती है। यह सभ्यता के भीतर उसी तरह व्याप्त रहती है, जैसे दूध में मक्खन या फूलों में सुगन्ध।"[2] निष्कर्ष रूप में कह सकते है कि संस्कृति और सभ्यता दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू है। दोनों का भविष्य तभी तक उज्वल रहता है जब तक जीवन रूपी सिक्के के ये दोनों पहलू एक दूसरे से अभिन्न रूप से जुडे रहते है क्योंकि –"संस्कृति का उत्थान या पतन सभ्यता को प्रभावित करता है और सभ्यता की उन्नति या अवनति संस्कृति को प्रभावित करती है। जब तक सभ्यता, संस्कृति के संस्पर्श से संचरण करती है तभी तक वह मानव की जीवन–यात्रा को सुगम बनाने में योग देती है, किन्तु जब वह भौतिक प्रगति के व्यामोह में संस्कृति से दूर हटकर अग्रसर होने की चेष्टा करती है। तब वह मानव को पथ भ्रष्ट ही करती है। ज्ञान–विज्ञान की शिल्प वाणिज्य की कला–कारीगरी अथवा प्रावैधिक चाहे जिस प्रकार की शिक्षा मनुष्य को दी जाये, संस्कृति के संस्पर्श से जब तक मनुष्यत्व को, उसके नैतिक सद्गुणों को जाग्रत नहीं किया जायेगा तब तक मानवता का उद्बोधन उसमें नहीं हो सकता और न वह अपने जीवन में किसी उच्चादर्श से अनुप्राणित हो सकता है।"[3] प्रत्येक संस्कृति जब विकासात्मक सीढ़ियों को बॉध जाती है तब वह एक ऐसे केन्द्र में पहुँचती है जहॉ उसका रूप बौद्धिक तथा आध्यात्मिक होता है। संस्कृति एक सूक्ष्म तत्व एवं सभ्यता स्थूल तत्व है। पहले का सम्बन्ध आत्मा से है तथा दूसरे का सम्बन्ध भौतिक शरीर मात्र से। इसलिए संस्कृति का विनाश आसानी से सम्भव नही परन्तु सभ्यता का विनाश सम्भव है। संस्कृति का प्रादुर्भाव दुबारा सम्भव नहीं है अपितु आत्मा की तरह अजन्मी है और सभ्यता युग के अनुरूप रूप धारण किया करती है।

---

[1] हमारी सांस्कृतिक एकता पृ0 4।

[2] रामधारी सिंह दिनकर संस्कृति के चार अध्याय पृ0 652।

[3] डा0 जगन्नाथ प्रसाद मिश्र, भारतीय संस्कृति (लेख) कल्याण, पृ0 259।

साहित्य और संस्कृति –

मानव जीवन की रागात्मक अनुभूतियों की कलात्मक अभिव्यक्ति का नाम साहित्य है। जिसमें जीवन के भावात्मक तथा सोन्दर्यात्मक–दोनो पक्ष उद्‌घाटित होते है। मानव समाज की समष्टिगत चेतना का प्रतिफल होने के कारण सामाजिक भावनाएँ ही साहित्य के पोषक खाद्य है, इसीलिए साहित्य अपने देश की संस्कृति एवं संस्कारों से ओत–प्रोत होता है। साहित्य अपने युगीन परिवेश की अन्तश्चेतना के सूक्ष्म संगठन का प्रतीक तो होता ही है। वह जीवन की मान्यताओं, नौतिक मूल्यों, सौन्दर्य बोध, अभिरूचि संस्कार आदि के आदर्शों पर अवलम्बित होता है। देवेन्द्र मुनि शास्त्री के अनुसार–" ज्ञान राशि के संचित कोश का नाम साहित्य है जिसके चिंतन, मनन और परिशीलन से आध्यात्मिक व बौद्धिक विकास होता है—— मानव समाज का जो हित चिन्तन है वह साहित्य है चाहे वह गद्य में हो या पद्य में।"[1]

संस्कृति शब्द की उत्पत्ति संस्कार शब्द से हुई है जिसका मूल अर्थ है सुधारना या परिष्कार करना। मानव समाज को संस्कृत करने की क्रिया ही संस्कृति है जो मानव के उदान्त विचारों का विकास करके उसे पवित्र कार्यों की ओर उन्मुख करते हुए जीवन को समग्र रूप में परिष्कृत करने की प्रेरणा प्रदान करती है। "संस्कृति और कृषि शब्द समानार्थक है। कृषि शब्द से संस्कृति शब्द अधिक व्यापक है और विशुद्धि का प्रतीक है। कृषि का उद्‌देश्य है भूमि की विकृति को दूर कर लहलहाती खेती को उत्पन्न करना। सर्वप्रथम कृषक भूमि को साफ करता है। एक सदृश बनाता है, पत्थर आदि को हटाता है, घास–फूस अलग कर भूमि को साफ करता है, खाद ड़ालकर भूमि को उस योग्य बनाता है कि बीज उसमें अच्छी तरह से पनप सकें। संस्कृति में भी यही किया जाता है। मानसिक, वाचिक और कायिक विकृतियाँ दूर की जाती है। विकारों को हटाकर विचारों का विकास किया जाता है। वह संस्कार व्यक्ति से प्रारम्भ होकर परिवार, समाज, राष्ट्र और सम्पूर्ण विश्व में परिव्याप्त हो जाता है। व्यक्ति परिवार, समाज, राष्ट्र का संस्कार करना ही संस्कृति है। संस्कृति का प्रयोजन मानव जीवन है, मानव जीवन को ही सुसंस्कृत बनाया जाता है।"[2] इस दृष्टि से साहित्य तथा संस्कृति संश्लिष्ट हैं। सृष्टि के आरम्भ में मानव अपनी इच्छाओं तथा

---

[1] साहित्य और संस्कृति–देवेन्द्र मुनिशास्त्री–'भूमिका' से उद्वघृत।

[2] साहित्य और संस्कृति–देवेन्द्र मुनिशास्त्री–पृ0 182।

आवश्यकताओं का अपने हाव–भाव तथा संकेतों के माध्यम से अभिव्यक्ति करता था। कालान्तर में जिसने भाषा का रूप धारण कर लिया प्रत्येक भाषा में उस भाषा को बोलने वालों के विचार, मान्यताऍ, मानसिक तथा भावनात्मक क्रियाएँ सन्निहित होती है दूसरे शब्दों में कह सकते है कि भाषा संस्कृति की निर्मात्री है भाषा संस्कृति का वह दुर्ग है जहाँ किसी भी समाज के सांस्कृतिक तत्व सुरक्षित रहते है और साहित्य भाषा के माध्यम से रचित, वह सौन्दर्य या आर्कषण युक्त रचना है जिसके अर्थ बोध से सामान्य व्यक्ति को आनन्द की अनुभूति होती है।[1]

संस्कृति की भाँति साहित्य भी ''कुसंस्कारों के स्थान पर सुसंस्कार उत्पन्न करता है जीवन में विविध रसों की सृष्टि करता है। आनंद का सृजन करता है। 'सत्य शिव सुन्दरम् से जीवन को चमकाता है। ''[2] एक साहित्यकार अपनी कृतियों के माध्यम से समाज में मानव चेतना के आलोक को वितरित कर लोक जीवन को बाह्य तथा आन्तरिक रूप से सुसंस्कृति सुरूचि पूर्ण तथा सम्पन्न बनाने में सहायता करता है और संस्कृति का उद्देश्य भी मानव प्रेम, लोक जीवन की एकता, जीवन सौन्दर्य का सदुपयोग तथा विश्वमानवता निर्माण करना है। ''संस्कृति ही मनुष्य के सौन्दर्य बोध तथा अन्य ऐन्द्रिय बोधों को मानवीय बनाती है उन्हे जीवित रखती है। वह मनुष्य को निरंतर मनुष्य एक अच्छा मनुष्य बनाए रहती है और सही मनुष्य यही प्रशस्त और परिष्कृत मानवीय इन्द्रिय बोध साहित्य तथा कलाओं में प्रतिबिम्बित होता है और सहृदयो द्वारा सराहा जाता है ––––– जनता की परिमार्जित संस्कृति अभिरूचि उनके अपने रचनाकारों के माध्यम से साहित्य तथा कलाओं का एक संसार रचती है।''[3] इस आधार पर कह सकते है कि ''दर्शन, धर्म, साहित्य, जीवन और कला के क्षेत्र में मनुष्य की समस्त कृतियॉ और रचनाऍ उसकी संस्कृति है।[4]

धर्म, अध्यात्मवाद, ललित कलाऍ, ज्ञान–विज्ञान, विविध विधाऍ, नीति, विधि–विधान जीवन प्रणालियॉ आदि यह समस्त क्रियाएँ और कार्य संस्कृति के ही अन्तर्गत आते हैं जिन्होंने मानव के सामाजिक और आर्थिक जीवन को साहित्य के

---

[1] साहित्य का आकर्षण शक्ति,–डा0 गणपतिचन्द्र गुप्त, पृ0 3।

[2] 'भूमिका'–साहित्य और संस्कृति–देवेन्द्रमुनि शास्त्री।

[3] दर्शन, साहित्य और समाज,–शिवकुमार मिश्र पृ0 19।

[4] 'भूमिका' साहित्य और संस्कृति–वासुदेव शरण अग्रवाल–1।

साँचे में ढाला है। इस प्रकार साहित्य के निर्माण में संस्कृति के अनेक तत्वों ने योग दिया है और समय-समय पर इसमें अनेक श्रेष्ठ सांस्कृतिक तत्वों का समावेश होता रहा है। "साहित्य में कवियों लेखक के व्यक्तिगत तथा सामाजिक अनुभवों दार्शनिक या आध्यात्मिक विचारों प्रेम-भावना और सौन्दर्य-बोध आदि की अभिव्यक्ति होती है। इन सबके साथ संस्कृति का गहन सम्बन्ध है, क्योंकि संस्कृति चेतना तथा चिन्तन की प्रतीक मूलक कृतियों में ही प्रकाश पाती है।"[1] इसी बात को और अधिक स्पष्ट करते हुए देवेन्द्र मुनि शास्त्री अपनी पुस्तक साहित्य और संस्कृति में लिखते हैं -"संस्कृति एक ऐसा विराट तत्व है जिसमें सभी कुछ समाविष्ट हो जाता है। मानव जीवन के ज्ञान, भाव और कर्म से तीन पक्ष हैं जिसे दूसरे शब्दों में बुद्धि हृदय और व्यवहार कहा जा सकता है। इन तीनों तत्वों का जब पूर्ण सामंजस्य होता है तब संस्कृति होती है --संस्कृति में, धर्म भी है, दर्शन भी है, विज्ञान भी है और कला भी है। यदि एक शब्द में कहा जाय तो संस्कृति जीवन का सार है। --धर्म, दर्शन, साहित्य और कला ये सभी तत्व मानव जीवन के विकास के श्रेष्ठफल है। --बौद्धिक प्यास को शान्त करने हेतु जो कार्य मानव करता है वे कार्य सांस्कृतिक कार्य कहलाते है। मानव अपनी बुद्धि से विचार और कर्म के क्षेत्र में जो सृजन करता है वह संस्कृति है।[2]

संस्कृति मनुष्य के मानसिक विकास के विभिन्न पहलुओं द्वारा उद्‌घाटित होती है तथा कला या साहित्य का काम है मानव जीवन को उसके विभिन्न पक्षों में समग्रता पूर्वक उद्‌घाटित तथा रूपायित करना। "साहित्य तथा संस्कृति के स्थायी मूल्यों को हम इस आयाम पर भी पाते है। 'इंद्रियबोध की भाँति मनुष्य का भाव जगत भी उसके लंबे सामाजिक विकास क्रम की देन है। इंद्रियबोध के साथ इस भावजगत का सहज संबन्ध होता है। मनुष्य की भावसत्ता ऐंद्रियज्ञान के साथ ही जन्म लेती है। यह भाव जगत इंद्रियबोध की तुलना में तो कम, किन्तु मनुष्य के विचार तुलना में बहुत व्यापक होता है। --- प्रेम, दया, क्रोध, घृणा, लज्जा आदि-आदि भाव मनुष्य में दीर्घकाल से हैं और अपनी समूची व्याप्ति के साथ रहेगें भी। साहित्य की व्यापकता का, दर्शन और विज्ञान आदि की तुलना में उसके स्थाई प्रभाव का, कारण यह भी है कि साहित्य तथा कलाओं का संबंध मनुष्य के भावों से होता है। समाज के विकास क्रम में जैसे-जैसे मनुष्य का इंद्रियबोध विकसित होता जाता है, उसका भावजगत् भी समृद्ध होता जाता है।

---

[1] भारतीय संस्कृति-डा0 देवरार-पृ0 26।

[2] साहित्य और संस्कृति-देवेन्द्रमुनि शास्त्री-पृ0 183।

--- मनुष्य का यह संपन्न भाव जगत उसकी विकासशील सांस्कृतिक चेतना का परिचायक है।" [1] कठोर से कठोर व्यक्ति के ह्रदय में जीवन के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करके उसे मनुष्यता के वास्तविक लक्ष्य तक ले जाने का संकल्प, दूसरे मनुष्यों के दुखों की अनुभूति करा सकने वाली संवेदना का विकास तथा ऐसे दृढ़ संकल्पी आदर्श चरित्रों की सृष्टि जो मनुष्यता का पथ–प्रदर्शन कर सके ऐसे महान लक्ष्य की प्राप्ति ही साहित्य का उद्देश्य है। इस दृष्टि से साहित्य संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है साहित्य मनुष्य को उसके जीवन लक्ष्य और संस्कृति के प्रति जागरूक बनाकर उसे मनुष्यता की ओर प्रेरित करता।

साहित्य तथा संस्कृति सदैव अन्योन्याश्रित रहे है। जब–जब सांस्कृतिक एंव सामाजिक चेतना में बदलाव आया है तब–तब साहित्य में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए है। ज्ञान विज्ञान के विकास के चलते मानव के दृष्टिकोण और उसकी सांस्कृतिक चेतना तेजी से परिवर्तित हुए है और यह परिवर्तन साहित्य के रूप में प्रतिबिम्बित होते देखा गया है। क्योंकि "युग और व्यवस्थाओं के बदलने के साथ हमारी साहित्यिक और सांस्कृतिक अभिरूचियाँ हमारी मान्यताएं, हमारे विचार–बदलते है, और उनके अनुरूप साहित्य और संस्कृति का भी नया रूप सामने आता है जो उनकी गतिशीलता उनकी जीवंतता और उनकी शक्ति का परिचायक है किन्तु ऐसा नहीं है कि उनके भीतर जो स्थायी तत्व है समाप्त हो जाते है। साहित्य तथा संस्कृति की हर युगानुरूप आकृति अपने भीतर पिछली युगों के जीवंत रूपों को आत्मसात किए रहती है। यही साहित्य तथा संस्कृति की निरंतरता है।"[2]

साहित्यकार समाज में ही जन्म लेता है और समाज दफ़न हो जाता है और उसकी सांस्कृतिक चेतना से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में अनुप्राणित भी होता है। सांस्कृतिक परिस्थितियाँ लेखक को पर्याप्त मात्रा में प्रभावित करके उसे साहित्य रचना के लिए उत्प्रेरित करती है। समाज के रीति–रिवाज रहन–सहन, गतिविधि धर्म सम्प्रदाय तथा जाति की समस्याएँ किसी न किसी रूप में उसके साहित्य में प्रतिबिम्बित हो उठती है। कबीर, तुलसी, निराला, प्रेमचंद, प्रसाद, पन्त आदि की साहित्यिक कृतियाँ इस बात की द्योतक है कि लेखक की विचार प्रक्रिया के निर्माण में संस्कृति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है --" कबीर, तुलसी

---

[1] दर्शन, साहित्य और समाज–शिवकुमार मिश्र पृ0 20।

[2] दर्शन, साहित्य और समाज–शिवकुमार मिश्र–पृ0 17।

से लेकर भारतेन्दु, निराला तक हिन्दी साहित्य में सर्वत्र संस्कृति की अनुगूँज है।"[1] महान साहित्यकार अपने साहित्य में अपनी संस्कृति को संजोता ही नही बल्कि अपनी लेखनी और कला कौशल के माध्यम से भव्य रूप देकर उसे विश्वव्यापी भी बना देता है –" भक्तों तथा संतों के काव्य में ऐसा क्या है जो उसे आज भी जनता की धरोहर बनाए हुए है। उसमें रूप वैचित्रय नही है, अलंकारों की छटा नही है, शिल्प का चमत्कार नही है, किन्तु उसमें सामाजिक जीवन के लम्बे विकास क्रम में अर्जित और निरन्तर समृद्ध होता हुआ परिष्कृत मानवीय भावों का ऐसा सागर जरूर लहरा रहा है जो चमत्कृति के अभाव में भी हमें पूरी तरह अपने में लीन कर लेता है क्योंकि भावजगत अपेक्षाकृति अपरिवर्तन शील है यही कारण है कि करूणा, प्रेम, वात्सल्य, उत्साह आदि भावों से समन्वित यह काव्य इतना जीवन्त है। तभी बाल्मीक, कालिदास, भवभूति आदि–आदि कवि आज़ भी हमें उतने ही प्राणवान प्रतीत होते हैं जितने वे पहले थे।"[2]

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि साहित्य तथा संस्कृति एक–दूसरे के पूरक है। यदि साहित्य संस्कृति के विकास में दिशा निर्देशक की भूमिका निभाता है तथा संस्कृति को एक सूत्र में बांधने का कार्य करता है तो संस्कृति भी सोए हुए साहित्यकार को जगाकर उसे साहित्य रचना के लिए प्रेरित करती है। किसी भी देश की संस्कृति उसके साहित्य में अभिव्यक्ति होती है। साहित्यकार के विचारों पर उसकी संस्कृति का प्रभाव पड़ना अवश्य सम्भावी होता है जिनका साहित्यकार के व्यक्तित्व के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान होता है। उसके व्यक्तित्व की समस्त विशेषताएँ साहित्य में मूर्तिमान होती है। साहित्यकार किसी भी देश की संस्कृति का सच्चा प्रतिनिधि होता है। किसी भी देश अथवा राष्ट्र की संस्कृति का ठीक–ठीक मूल्यांकन वहाँ के साहित्य के माध्यम से हो सकता है। सांस्कृतिक धरोहर साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त होकर अमर हो जाती है और अपने साथ–साथ साहित्य को भी अमरत्व प्रदान करती है।

---

[1] प्रेमचंद : विचार धारा और साहित्य–बालकृष्ण पाण्डेय पृ0 12।

[2] दर्शन, साहित्य और समाज, शिवकुमार मिश्र–पृ0 20।

प्रेमचंद के उपन्यासों मे चित्रित सांस्कृतिक तत्वों का मूल्यॉकन–

कोई भी लेखक अपने समाज के सांस्कृतिक तत्वों को जितनी गहराई के साथ अपने साहित्य में अवशोषित कर अपने कला कौशल तथा प्रतिभा के बल पर जितने सशक्त रूप से अभिव्यक्त प्रदान करता है वह निश्चित रूप से उसके गहन सांस्कृति चेतना का द्योतक है ––" किसी भी महान लेखक की जड़े समाज की सांस्कृतिक धरोहर में गहराई से ज़मी होती है। अपनी प्रतिभा से नव–निर्माण करते समय जितनी शक्तिमत्ता के साथ वह इन सांस्कृतिक उत्सों से जीवन शक्ति खींच लेगा उसी अनुपात में महानता का आयाम उसके कृतित्व में जुड़ता जाएगा। यह सांस्कृतिक धरोहर लेखक के राजनैतिक विचारों, सामाजिक मान्यताओं और अन्य बैचारिक सारणियों से अधिक शक्तिशाली एवं अधिक स्थायी होती है और उसके लेखन की सामाजिक उपयोगिता एवं चिरकालिकता का सम्बन्ध सांस्कृतिक चेतना से अधिक होता है।"[1] प्रेमचंद साहित्य में जो आर्दशपरक मूल्य–दृष्टि, सामाजिक प्रतिबद्धता और नैतिक आग्रह प्रकट होता है वह उनकी गहन सांस्कृतिक चेतना का परिणाम है। भारतीयता के परम उपासक प्रेमचंद की भारतीय संस्कृति तथा प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों में अटूट आस्था थी जो उनके जीवन के आरम्भिक काल से लेकर अन्त तक बनी रही। भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी यह श्रद्धा तथा आस्था उनके उपन्यासों तथा कहानियों में अनेक स्थानों पर दृष्टिगोचर होती है। उनके अधिकतर पात्रों में प्रेम, दया, सेवा, परोपकार, आत्मसम्मान, बलिदान, क्षमा आदि भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ विद्यमान है। प्रेमचंद के पात्र विशुद्ध रूप से भारतीय समाज सभ्यता तथा संस्कृति से जुडे है।

मध्यकाल से भारत की सांस्कृतिक परम्परा के विनाश की जो प्रक्रिया प्रारम्भ हुई थी प्रेमचंद युग तक आते–आते वह अपने चरम बिन्दु को प्राप्त हो गई। हिन्दू धर्म की रूढ़िवादिता के कारण समाज व्यर्थ के नियमों एवं बंधनों में जकड़कर जड़ता को प्राप्त हो चुका था जो हमारे सांस्कृतिक एवं सामाजिक मूल्यों में गिरावट का प्रमुख कारण बना समाज को पतन के इस गर्त से बाहर निकालने के लिए धार्मिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों मे परिवर्तन लाना उस युग की मॉग थी। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए समस्त भारत में धर्म तथा समाज सुधार आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ जिनका वर्णन किया जा चुका है। इन आन्दोलनों ने समाज पर अपना व्यापक प्रभाव डालते हुए देश की सामाजिक व्यवस्था में काफी

---

[1] प्रेमचंद के आयाम–ए अरविंदाक्षन–पृ0 50।

परिवर्तन किया। प्रेमचंद जिस समय लेखन कार्य प्रारम्भ किया उस समय देश में आर्य समाज, बह्मसमाज रामकृष्ण मिशन तथा थियोसोफिकल सोसायटी जैसी प्रभावशाली सुधारवादी संस्थाएँ कार्यरत थी और समाज में विधवा विवाह का समर्थन, बाल विवाह का विरोध, दहेज तथा पर्दा प्रथा का विरोध नारी जाग्रति हेतु स्त्री शिक्षा पर बालिका विद्यालयों की स्थापना अस्पृश्यता तथा मद्यपान का विरोध, धार्मिक पाखंडों पर से परदा उठाने जैसे रचनात्मक कार्यक्रम चलाए जा रहे थे। युगीन चेतना सम्पन्न साहित्यकार प्रेमचंद उनके प्रभाव से अछूते न रह सके। अपने साहित्य के माध्यम से उन्होने सांस्कृतिक पुर्नजागरण एवं सामाजिक परिष्करण के इस पुनीत प्रयास में भाग लिया।

प्रेमचंद ने सनातन धर्म की रूढ़िवादिता एवं कुरूपता का अत्यन्त सूक्ष्म अवलोकन किया था। वे इस बात से पूर्णतः परिचित थे कि मानव के सांस्कृतिक तथा नैतिक मूल्यों के विघटन का सबसे बड़ा कारण है धर्म को ढ़ाल बनाकर किये जाने वाले अनैतिक कार्य। पड़े–पुरोहित धर्म की आड़ मे किस प्रकार भोली–भाली जनता का आर्थिक शोषण करते है इस सत्य को सर्वप्रथम अपने छोटे से उपन्यास 'देवस्थान रहस्य' में उजागर किया है जिसमें उन्होने यह दिखाया है कि जन साधारण पर धर्म गुरूओं तथा मिथ्याड़म्बरों का कितना गहरा प्रभाव था। धर्म के अधिष्ठाताओं की कपटलीला का वर्णन करते हुए प्रेमचंद लिखते है –"यह जो आप महन्त जी के माथे पर लाल निशान देख रहे है, यह चन्दन के निशान नहीं बल्कि इस बात को सिद्ध कर रहे है कि हजरत ने न्याय और धर्म का खून कर ड़ाला है। आप जो इनके गले में मोहन माला देख रहे है, असल में लोभ का फंदा है जो आपको खूब कसकर जकड़े हुए है।"[1] इसके अतिरिक्त 'कर्मभूमि' 'सेवासदन' तथा 'गोदान में भी उन्होंने इस विषय को सशक्त रूप से उठाया है। धर्म के नाम पर होने वाले छल– प्रपंच तथा मिथ्या आडम्बर से शुद्ध प्रेमचंद अपने–रोष को 'कर्मभूमि' में अमरकान्त के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त करते है ––" वह अब क्रान्ति में ही देश का उद्धार समझता है––ऐसी क्रान्ति में, जो सर्वव्यापक हो, जो जीवन को मिथ्यादर्शों का, झूठे सिद्धान्तों का, परिपाटियों का अन्त कर दे, जो एक नये युग का प्रवर्तक हो, एक नई सृष्टि खड़ी कर दे, जो मिट्टी के असंख्य देवताओं को तोड–तोड़कर चकनाचूर कर दे।, जो मनुष्य को धन और धर्म के आधार पर टिकने वाले राज्य के पंजे से मुक्त कर दे।" [2] धर्म के शोषण का यर्थाथ–चित्रण उन्होंने 'सेवासदन' में भी किया है

---

[1] मंगलाचरण –देवास्थान रहस्य, पृ0 5।
[2] कर्मभूमि प्रेमचदं पृ0 95।

जहां महन्तराम दास बांकेबिहारी के नाम पर जनता का शोषण करता है।[1] महन्त रामदास यज्ञ के नाम पर प्रतिहल पॉच रूपये चन्दा वसूल करता है। धर्म भीरू किसान पॉच रूपये दे देते है इसके लिए भले ही कितनों की हैण्ड्नोट ही क्यों न लिखना पड़े।[2] "सेवासदन में ठाकुरवाड़ी के भगवान के आगे वेश्या का नाच होता है और वह भी रामनवमी के दिन, भगवान के जन्मोत्सव के क्रम में। प्रेमचन्द इस दृश्य को प्रस्तुत कर हमें यह सोचने के लिए विवश करते हैं कि ऐसे देवस्थान देवालय है या वेश्यालय ? मन्दिर में भोलीबाई का नाच देखकर सुमन के हृदय पर बज्र सा आघात होता है। उसने सुन रखा था कि धन वेश्या के चरणों में नत हुआ करता है लेकिन आज वह देख रही है कि धन ही नही धर्म भी वेश्या भोलीबाई के चरणों में नत है।"[3] इस प्रकार प्रेमचंद हिन्दू–धर्म में व्याप्त विकृतियों के प्रति घृणा के भाव जागृति करने का प्रयास करते है।

हमारे देश में सामाजिक जीवन का मार्ग दर्शन करने वाले संगठनों का अभाव रहा है। यही कारण है कि धर्म सामाजिक जीवन को नियंत्रित करने का कार्य करता रहा है। प्रेमचंद इस तथ्य से भली भॉति अवगत थे। वे जानते थे कि धार्मिक विकृतियों को दूर किये बिना सामाजिक दोष का निवारण सम्भव नहीं। "प्रेमचंद प्रथम उपन्यासकार थे जिन्होने धर्म के नाम पर चलते हुए पाखंड, पोपलीला, अंधविश्वास तथा विचारमूल्य रूढ़ियों–परम्पराओं पर कसकर प्रहार करने की हिम्मत की। समाज सुधार के लिए ही उन्होने धर्म के विशुद्ध रूप को अपने कथा साहित्य में स्पष्ट करने का सराहनीय प्रयत्न किया है, क्योंकि वे अच्छी तरह जानते थे कि धार्मिक मान्यताऍ ही समाज –व्यवस्था का ढाँचा खड़ा करने में महत्वपूर्ण भाग अदा करती है। इस दृष्टि से प्रेमचंद के उपन्यासों में एक प्रकार की ताजगी, नवीन विचार धारा प्रगतिशील दृष्टिकोण तथा कान्तिकारी स्वर सर्वत्र उपलब्ध होता है, जो पाठकों के दिलों दिमाग में नई चेतना का संचार करता है। हिन्दू समाज की कुरीतियों तथा अंधविश्वासों को दूर करने में उनके कथा साहित्य का योगदान अभूतपूर्व है।"[4] प्रेमचंद के धर्म सम्बन्धी मान्यताएँ उनके साहित्य में यत्र–तत्र प्रकट हुई हैं। बाह्य आड़म्बर, कर्मकाण्ड और पाखण्ड को वे

---

[1] सेवासदन प्रेमचंद पृ0 8।

[2] सेवासदन प्रेमचंद पृ0 9।

[3] सेवासदन प्रेमचंद पृ0 28–29।

[4] प्रेमचंद के उपन्यासो में सांस्कृतिक चेतना–नित्यानन्द पटेल पृ0 125–126।

धर्म नहीं मानते थे। धर्म के प्रति उनका दृष्टिकोण एक समालोचक का था। उनके अनुसार जो मनुष्य में मानवीय गुणों का विकास करे सच्चा धर्म वही है। अश्पृश्यता को जो कि हिन्दू समाज के माथे का कलंक है प्रेमचंद ने सबसे पहले 'कर्मभूमि' में व्यापक स्तर पर उठाते हुए अछूतोद्धार की और समाज का ध्यान आकृष्ट किया है। इस उपन्यास में छुआछूत की घृणित व्यवस्था के विरूद्ध जमकर अपना विरोध प्रकट किया है। 'कर्मभूमि' में अमरकान्त कहता है --- "मैं जाति–पाति नही मानता मातजी जो सच्चा है वह चमार भी हो, तो आदर के योग्य है जो दगाबाज लम्पट है तो वह ब्राहमण भी हो तो आदर के योग्य नही।"[1] गोदान में सिलिया चमारिन तथा ब्राहमण मातादीन के प्रसंग द्वारा जात–पात को लेकर शादी विवाह के सम्बन्ध में लगाए गए धार्मिक प्रतिबन्ध के नतीजे में उत्पन्न समस्या का चित्रण करते हुए सिलिया तथा मातादीन के अवैध सम्बन्ध को दाम्पत्य का रूप देकर प्रेमचन्द ने समस्या का समाधान भी प्रस्तुत किया है। धर्म एवं समाज के प्रति स्वः सुधार एवं मानवतावादी दृष्टिकोण रखने वाले प्रेमचंद सिलिया के पिता के द्वारा समाज के तथा कथित ठेकेदारों को चुनौती देते हुए कहते है--" तुम हमें ब्राहमण नहीं बना सकते मुदा हम तुम्हे चमार बना सकते है हमें ब्राहमण बना दों, हमारी सारी बिरादरी बनने को तैयार है। जब यह सामरथ नहीं है तो फिर तुम भी चमार बनों। हमारे साथ खाओं पिओं हमारे साथ उठों बैठो। हमारी इज्जत लेते हो तो अपना धरम हमें दो। "[2] अपने उपन्यासों में प्रेमचंद जी ने दलित जातियों की आर्थिक दरिद्रता के चित्रण के साथ ही समाज से सदियों से बहिष्कृत होने के कारण उनमें घर करके बैठी हुई बहुत सी बुराइयों तथा अस्वच्छता, झूठबोलना, चोरी करना शराब पीना गाली गलौज करना अशिक्षा संस्कार हीनता आदि का भी दिग्दर्शन कराया है तथा उन्हें दूर करने की आवश्यकता की अनुभूति एवं चेतना का भी समुचित संकेत किया है।

भारतीय संस्कृति के अनुसार विवाह एक धार्मिक संस्कार है इस ओर संकेत करते हुए 'प्रेमाश्रम' की गायत्री कहती है " जिस पुरूष के साथ विवाह हो गया है उसके साथ निर्वाह करना प्रत्येक कर्मनिष्ट नारी का धर्म है। विवाह स्त्री पुरूष के अस्तित्व को संयुक्त कर देता है। उनकी आत्माएँ एक–दूसरे में समाविष्ट हो जाती है।"[3] भारतीय नारी संस्कृति के अनुसार विवाह को एक अटूट

---

[1] कर्मभूमि प्रेमचंद पृ0 122।

[2] गोदान प्रेमचंद पृ0 214।

[3] गोदान प्रेमचंद पृ0 214।

बन्धन माना जाता है। प्रेमचंद विवाह को एक सामाजिक तथा धार्मिक समझौता मानते थे। किन्तु उम्र की दृष्टि से अनमेल विवाह कन्या की पसन्द न पसन्द की परवाह बिना ही उसे जैसे–तैसे के पल्ले बाँध देना वे नारी जाति पर भयंकर अन्याय तथा अत्याचार समझते थे। प्रेमचंद ने अनमेल–विवाह के दुष्परिणामों का 'वरदान' 'प्रतिज्ञा' 'निर्मला' 'सेवासदन' कायाकल्प' 'कर्मभूमि' 'गोदान' आदि उपन्यासों में अत्यन्त मार्मिक तथा प्रभावशाली ढंग से चित्रण किया है। सम्भवतः इसका सबसे बड़ा कारण यह रहा है कि अनमेल विवाह की त्रासदी को उन्होनें अपने निजी जीवन में भोगा था। 'सेवासदन' की भोलीबाई अपने वेश्या बनने के लिए अनमेल विवाह को उत्तरदायी ठहराती हुई कहती है ––" यह सब उसी जिहालत का नतीजा है। मंरे माँ बाप ने भी मुझे एक बुडढे मियां के गले बॉध दिया था। उसके यहाँ दौलत थी और सब तरह का आराम था लेकिन उसकी सूरत से मुझें नफरत थी। मैने किसी तरह छः महीने तो काटे आखिर निकल खडी हुई।"[1] इसके अतिरिक्त इस समस्या को बार–बार चित्रित करने के पीछे प्रेमचंद का उद्देश्य इस कुप्रथा को दूर करके दाम्पत्य जीवन को मधुर तथा सुखमय बनाकर समाज और व्यक्ति का अभ्युदय निश्रयस सिद्ध करना ही प्रतीक होता है। अनमेल विवाह की समस्या के समाधन हेतु वे 'कर्मभूमि' में सुखदा के माध्यम से तलाक की बात उठाते हुए कहते हैं ' तलाक की प्रथा यहाँ हो जाने दो फिर मालूम होगा कि हमारा जीवन कितना सुखी है। प्रेमचंद देख रहे थे कि पश्चमी देशों में अनमेल विवाह की समस्या के निवारण के रूप में तलाक को स्वीकृत किया गया है परन्तु इसका कोई सन्तोष जनक परिणाम निकलना तो दूर इन देशों में तलाक के बढ़ते हुए चलन मे स्वयं एक गम्भीर समस्या का रूप धारण कर लिया। शायद इसी कारण 'कर्मभूमि' तथा 'गोदान' में तलाक को लेकर प्रेमचंद का दृष्टिकोण विरोधाभाषी है। 'गोदान' में प्रेमचंद प्रो0 मेहता के माध्यम से कहते है––" विवाह को मै सामाजिक समझौता समझता हूँ और उसे तोड़ने का अधिकार न पुरूष को है न स्त्री को। समझौता करने से पहले आप स्वाधीन हैं समझौता होने के बाद आपके हाथ कट जाते हैं।[2]

सयुंक्त परिवार प्रथा भारतीय समाज तथा संस्कृति की एक ऐसी विशेषता रही है जो जनता विशेषकर ग्रामीणों के लिए बहुत उपयोगी थी क्योंकि इसके

---

[1] सेवासदन प्रेमचंद पृ0 58।

[2] गोदान प्रेमचंद पृ0 52।

कारण खेतों का छोटें–छोटे टुकडो में विभाजन होने से तो बचता ही था साथ ही मिलजुल कर रहने से बड़े से बड़े परिवार का भरण पोषण भी सुचारू रूप से होता था। एक संयुक्त परिवार का सदस्य होने के कारण प्रेमचंद भारतीय समाज की इस प्रथा में बड़ी आस्था रखते थे इसके अतिरिक्त वे भारतीय संस्कृति मूल्यों के सजग प्रहरी होने के कारण संयुक्त परिवार प्रथा के प्रबल समर्थक थे जिसके पीछे सामाजिक संरक्षण की भावना निहित थी। प्रेमचंद के समय में पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव स्वरूप संयुक्त परिवारों में विघटन की प्रक्रिया तीव्र हो गयी थी। प्रेमचंद ने इस तथ्य को अपने उपन्यासों में बड़े दुखः के साथ रेखांकित किया हैं। साथ इस प्रथा को कायम रखने के लिए उन्होंने अपने साहित्य में भरसक प्रयास भी किया है। संयुक्त परिवारों में भाईयों के बीच परस्पर प्रेम तथा आत्मीयता का उदाहरण 'प्रेमाश्रम' में लाला प्रभांशकर तथा जटाशंकर के द्वारा प्रस्तुत करते हुए इस प्रकार उनकी प्रशंसा की है " दोनो भाइयों में इतना प्रेम था कि उनके बीच में कभी कटुवाक्यों की नौबत न आई थी। स्त्रियों में तू–तू मै–मैं होती थी, किन्तु भाईयों पर इसका असर न पड़ता था। प्रभाशंकर स्वयं कितना भी कष्ट उठाएँ (क्योंकि घर का सारा प्रबन्ध उन्हीं के हाथ में था, उनके बड़े भाई जटाशंकर तो गीता और भागवत के पठन–पाठन में व्यस्त रहते थे। अपने भाई से कभी भूलकर भी शिकायत न करते। जटाशंकर भी उनके किसी काम में हस्तक्षेप न करते थे।"[1] व्यक्तिवाद पर आधारित पारिवारिक प्रणाली को प्रेमचंद समाज के लिए अहितकर मानते है। संयुक्त परिवार को तोड़कर 'प्रेमाश्रम' का पात्र ज्ञानशंकर अपने सगे भाई प्रेमशंकर का हिस्सा भी हड़प कर लेता है उसके इस अन्याय पूर्ण कृत्य के लिए भी प्रेमचंद पाश्चात्य संस्कृति तथा शिक्षा को दोष देते हुए प्रभाशंकर के मुख से कहलाते है ––" उससे क्या कहूँ सुने भी ? वह पश्चिमी सभ्यता का मारा हुआ है जो लड़के को बालिग होते ही माता–पिता से अलग कर देती है। उसने वह शिक्षा पाई है जिसका मूलतत्व स्थाई है। उसमें अब दया विनय, सौजन्य कुछ भी नहीं रहा। वह अब केवल अपनी इच्छाओं का इंद्रियों का दास है।"[2] गोदान में भी प्रेमचंद ने होरी के परिवार के माध्यम से संयुक्त परिवारों के विघटन के दुष्परिणामों पर प्रकाश डाला है –' जब होरी, हीरा, और शोभा एक साथ रहते थे तो घर में सम्पन्नता थी। उसके द्वार पर चार जोड़ी बैल बाँधे रहते थे। होरी ने भी एक सभ्य महाजनी की थी।"[3] लेकिन

---

[1] प्रेमाश्रम–प्रेमचंद पृ0 7।

[2] प्रेमाश्रम प्रेमचंद पृ0 324।

[3] गोदान प्रेमचंद परि0 8 पृ0 149।

बटवाँरा होने से तीनों की स्थिति बदल गयी। —— जब से अलग्योझा हो गया है सबके घर में केवल एक ही समय रोटी बनती है।"[1] अलग्योझा होने के तीन वर्ष के अन्दर ही होरी–हीरा और शोभा पर लगभग चार–चार सौ रूपये ऋण हो गए।'[2]

वस्तुतः प्रेमचंद का यह सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी संक्रान्ति काल था। उस समय तक देश में अंग्रेजी राज्य का पूर्ण वर्चस्व कायम हो चुका था। अंग्रेजों का प्रभुत्व राजनीतिक क्षेत्र में तो था ही इसके अतिरिक्त उनकी सांस्कृतिक प्रभुता का प्रभाव ही समाज पर समान रूप से पड़ा रहा था। नई शिक्षा के माध्यम से भारतीय पाश्चात्य संस्कृति को बड़ी तीव्रता से ग्रहण कर रहे थे। पाश्चात्य संस्कृति के इस संकमण ने मध्यमवर्गीय जनता को सबसे अधिक प्रभावित किया। पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से देश की युवा पीढी नवीन सांस्कृतिक मूल्यों को ग्रहण करने के पश्चात्य पुराने सांस्कृतिक मूल्यों को घृणा की दृष्टि से देखने लगी थी। पाश्चात्य सभ्यता से संक्रमित शिक्षित वर्ग नये सांस्कृतिक मूल्यों के साथ स्वयं को जोड़ने में गर्व का अनुभव करते थे। इस सांस्कृतिक अन्तर विरोध के चलते भारतीय समाज अनेक विसंगतियों तथा दोषां का शिकार हो गया व्यक्तिगत स्वार्थ तथा मिथ्याड़ाम्बर की भावना ने भारतीय समाज को जर्जर कर दिया था। "प्रेमचंद भारतीयता के परम उपासक थे और इसीलिए उन्होंने तुलसीदास आदि के समान भारतीय संस्कृति का सर्वत्र योगदान किया है तथा पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव से बढ़ते हुए भौतिकवाद का विरोध किया है। उनके विचार में प्रगतिशीलता का अर्थ भौतिकता की ओर बढ़ना नही है बल्कि मानवता की ओर बढ़ना हैं और मानवता की ओर बढ़ने में भारतीय संस्कृति जितनी हमारी सहायता करती है उतना पाश्चात्य संस्कृति नही कर सकती।"[3] प्रेमचंद इस बात पर खेद व्यक्त करते है कि " हम अपनी पुरानी संस्कृति को भूल बैठे है। वह आत्मप्रधान संस्कृति थी। जब तक ईश्वर की दया नहीं होगी उसका पुनर्विकास न होगा और जब तक उसका पुनर्विकास न होगा, हम लोग कुछ नहीं कर सकते।"[4]

---

[1] गोदान प्रेमचंद परि0 3 पृ0 31।

[2] गोदान प्रेमचंद परि0 49–50।

[3] उपन्यास सम्राट प्रेमचंद –रतनचंद्र शर्मा पृ0 ख (दो शब्दो मे) पृ0 सं0 सन् 1955।

[4] कर्मभूमि प्रेमचंद भाग–5 परि0 10 पृ0 399 चतुर्थ सं0 1962।

अतिथि सत्कार धर्म भारतीय संस्कृति की एक प्रधान विशेषता रही परन्तु पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव ने भारतीयों को इस सराहनीय गुण आतिथ्य सत्कार धर्म से किस प्रकार विमुख कर दिया इस कटु यथार्थ को 'प्रेमाश्रम' में उच्च शिक्षाप्राप्त ज्ञानशंकर की मनोंवृत्ति के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं जो अपने चाचा की मेहमान नवाजी की आदत को कोसते हुए कहता है "आपने लाखों की ज़ायदाद भोग–विलास में उड़ा दी। सदा अतिथि सत्कार और मर्यादा (कुल प्रतिष्ठा) रक्षा पर जान देते रहे। अगर इस उत्साह का एक अंश भी अधिकारी वर्ग के सेवा सत्कार में समर्पण करते तो आज मैं, डिप्टी कलक्टर होता। खाने वाले खा–खाकर चल दिये। अब उन्हें याद भी नही रहा कि आपने उन्हें कभी खिलाया था।"[1] ज्ञानशंकर अपने चाचा प्रभाशंकर की आतिथ्य भावना को हानि कारक तथा आत्मघाती बताते हुए कहता है। "आपके घर में चाहे उपवास होता हो, किन्तु कोई मेहमान आ जाये तो आप ऋण लेकर उसका सत्कार करेगें। मै ऐसे मेहमान को दूर से ही प्रणाम करूँगा ––– आपके यहाँ वे जाडे में मेहमान लोग प्रायः बिना ओढ़ना विछौना लिए चले आते है। आप स्वयं जाड़ा खाते है, पर मेहमानों के ओढ़ने बिछौने का प्रबन्ध अवश्य करते है। मेरे लिए यह अवस्था दुस्सह है। ––– मै तो इसे सर्वदा अनुचित समझता हूँ कि कोई असमय और बिना पूर्व सूचना के मेरे घर आए, चाहे वह मेरा भाई ही क्यों न हो। आपके यहाँ नित्य दो–चार निठल्ले नातेदार पड़े खाट तोड़ा किये , पर आपने कभी इशारे से भी उनकी अवहेलना नही की। लेकिन वह प्रथा अब काल विरुद्ध हो गयी।"[2] ज्ञानशंकर के इन शब्दों के द्वारा भली–भाँति अनुमान लगाया जा सकता है कि पश्चिमी सभ्यता का मारा शिक्षित युवा वर्ग किस सीमा तक अपनी संस्कृति को न केवल विस्मृत कर बैठा था बल्कि उसे हेय दृष्टि से देखने लगा था। प्रेमचंद इस युवा पीढ़ी की इस मनोवृत्ति से बहुत आहत थे क्योंकि उनके अनुसार "अतिथि सत्कार आदिकाल से भारतवर्ष के निवासियों का एक प्रधान और सराहनीय गुण है। अभ्यागतों का आदर–सम्मान करने में हम अद्वितीय है। हम इसी से संसार में मनुष्य कहलाने योग्य है। हम सब कुछ खो बैठे है, किन्तु जिस दिन हममें यह गुण शेष न रहेगा वह दिन हिन्दू–जाति के लज्जा, अपमान और मृत्यु का दिन होगा।"[3] अतिथ्य सत्कार को गॉव के लोग अपने धर्म का हिस्सा समझ कर उसका पालन करते है उनकी इस भावना को प्रेमचंद ने गबन में

---

[1] प्रेमाश्रम प्रेमचंद पृ0 10।

[2] प्रेमाश्रम प्रेमचंद पृ0 57–58।

[3] ममता (मानसरोवर, भाग 5) प्रेमचंद।

जालपा के माध्यम से व्यक्त किया है —" खटिक हो या चमार हों, लेकिन हमसे और तुमसे सौ गुने अच्छे है। एक परदेशी आदमी को छः महीने अपने घर में ठहराया, खिलाया, पिलाया। हममे है इतनी हिम्मत ? यहाँ तो कोई मेहमान आ जाता है, तो वह भारी हो जाता है। अगर यह नीच है, तो हम उससे कहीं नीच हैं।"[1]

भारतीय संस्कृति में परोपकार अर्थात दूसरों को सुख पहुँचानें की भावना को धन्य समझा गया है जब कि पश्चिमी सभ्यता के अनुसार अपना पेट भरने तथा अपने हित की चिन्ता करने में ही जीवन की सार्थकता है भारतीय तथा पश्चिमी संस्कृति के इस अन्तर को स्पष्ट करते हुए प्रभाशंकर अपने भतीजे ज्ञानशंकर से कहता है —" तुम फिर न और छोड़े ; कुर्सी और मेज ; आईने और तस्वीरों पर जान देते हो। तुम चाहते हो कि हम अच्छे से अच्छा खाये, अच्छे से पहने, लेकिन खाने पहनने से दूसरों को क्या सुख होगा। तुम्हारे धन और सम्पत्ति से दूसरे क्या लाभ उठायेंगे ? हमने भोग–विलास में जीवन नही बिताया है। वह कुल मर्यादा की रक्षा थी। विलासिता यह है, जिससे पीछे तुम उन्मत्त हो। तुमको बस अपने पेट भरने की, अपने शौक की, अपने विलास की धुन है।" [2] इसी प्रकार भारतीय संस्कृति के द्योतक परोपकार की भावना को 'रंगभूमि' में सूरदास के माध्यम से चित्रित किया है एक अंधा भिखारी होने पर भी सूरदास अपने हित की अपेक्षा बस्ती वालो के लाभ को महत्व देता है। जॉन सेवक सिगरेट का कारखाना बनाने के लिए उसकी ज़मीन–ऊँची कीमत पर खरीदना चाहता है परन्तु वह इसके लिए तैयार नही क्योंकि अपनी जमीन सूरे ने बस्ती के जानवरों के चरने के लिए छोड़ रखी है। सूरदास दूसरों की सेवा सहायता करने के लिए सदैव तत्पर रहता है।

'समन्वयवाद' का सिद्धान्त अति प्रचीन काल से भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग रहा है। भारतीय संस्कृति की इस विशेषता से प्रेमचंद आदि से अंत तक प्रभावित दिखाई देते है। सर्वहारा वर्ग की दुर्दशा तथा उत्पीड़न के लिए सामाजिक असन्तुल को सबसे अधिक उत्तरदायी मानते हुए प्रेमचंद समाज को समन्वय अथवा सन्तुलन का मार्ग अपनाने की प्रेरणा देते है। सर्वहारा तथा शोषित जनता के प्रति सहानुभूति तथा मानवीय संवेदना उनके साहित्य में सर्वत्र विद्यमान

---

[1] गबन प्रेमचंद पृ0 208।
[2] प्रेमाश्रम–प्रेमचंद–पृ0 10।

है। प्रचीन भारतीय संस्कृति एवं नवीन जीवनादर्श के कारण ही प्रेमचंद का झुकाव साम्यवाद की ओर हुआ। 28 फरवरी सन् 1934 ई0 के जागरण की सम्पादकीय टिप्पणी साम्यवाद के प्रति प्रेमचंद के दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करती है जिसमें वे लिखते है ––"साम्यवाद का विरोध वही तो करता है जो दूसरों से ज्यादा सुख भोगना चाहता है, जो दूसरों को अपने अधीन रखना चाहता है। जो अपने को भी दूसरे के बराबर भी समझता है, जो अपने में कोई सुर्खाव का पर लगा हुआ नही देखता, जो समदर्शी है उसे साम्यवाद से विरोध क्यों होने लगा। "[1] 'कर्मभूमि' में वर्तमान समाज व्यवस्था के प्रति क्षोभव्यक्त करते हुए अमरकांत के माध्यम से कहते है "––––– एक आदमी पंखे की हवा खाए और खस खाने मे बैठे, और दूसरा आदमी दोपहर की धूप में तपे, यह न न्याय है न धर्म यह धाँधली है।"[2] गोदान तथा मंगलसूत्र में इस सामाजिक असंन्तुलन के प्रति उन्होने तीव्र आक्रोश व्यक्त किया है मंगलसूत्र के साधुकुमार को इतने गरीबों के मध्य धनी होता स्वार्थान्धता प्रतीत होती है।" [3] प्रेमचंद समता पर आधारित एक ऐसी समाज व्यवस्था के इच्छुक थे जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति के समान अवसर प्राप्त हो। भारतीय संस्कृति प्राचीन काल से ही धार्मिक दृष्टि से उदार तथा सहिष्णु रही है। जिसके केन्द्र में वसुधैवकुटुम्बकम् की भावना विद्यमान रही है। हमारे देश में सदैव अन्य धर्मों के प्रति आदर की भावना अपनाई गयी है। भारतीय संस्कृति के अनन्य भक्त प्रेमचंद के उपन्यासों में धार्मिक सहिष्णुता तथा हिन्दू–मुस्लिम एकता का जो चित्रण हुआ है "...... उसमे भी उनके अर्जित संस्कारों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उनके पूर्वजों का सम्बन्ध मुगल दरबार से था और इसीलिए वे इस्लामी संस्कृति हिन्दू संस्कृति से अभिन्न मानते थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रेमचंद के उदार, धार्मिक दृष्टि के निर्धारण में इस्लामी संस्कृति का यह पूर्व संस्कार अत्यन्त सहायक सिद्ध हुआ। इसीलिए प्रेमचंद जाति –पाँति एवं मज़हबी मामले में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करते थे।"[4] 'कायाकल्प' उपन्यास में प्रेमचंद हिन्दू–मुस्लिम दंगों के परिणाम स्वरूप उस समय की दैनीय सम्प्रदायिक परिस्थितियों को उजागर किया है। साम्प्रदायिकता के विषय मे अपनी निर्भीक तथा अन्तर भेदनी दृष्टि का परिचय देते हुए कहते है कि

[1] जागरण–28 फरवरी 1934।

[2] 'कर्मभूमि' प्रेमचंद पृ0 126।

[3] ' मंगलसूत्र ' प्रेमचंद पृ0 25।

[4] हिन्दी उपन्यास–सांस्कृतिक एवं मानवतावादी चेतना पृ0 296।

"---संघर्ष की अस्वाभाविक परिस्थितियों के लिए कोई तीसरी ताकत जिम्मेदार है, जिसके हाथ में कुछ स्वार्थ के पुतले खेलने के लिए हमेशा तैयार रहते है। इसी अस्वाभाविक परिस्थिति से मुक्त का मार्ग इन्सानियत का आग्रह है।"[1] आगे प्रेमचंद साम्प्रदायिक घृणा को मानव प्रेम से जीतने का प्रयास करते हुए चक्रधर के माध्यम से कहते है--" मै तो नीति को ही धर्म समझता हूँ, और सभी सम्प्रदायों की नीति एक सी है--- बुरे हिन्दू से अच्छा मुसलमान उतना ही अच्छा है, जितना बुरे मुसलमान से अच्छा हिन्दू।"[2] साम्प्रदायिक वैमनस्य के लिए प्रेमचंद नेताओं को दोषी ठहराते है साथ ही वे ऐसे इतिहास का बहिष्कार भी करते है जिसमें हिन्दू-मुसलमान के पारस्परिक द्वेष की गाथा है।

आत्मा की चेतनता और शक्ति पर प्रेमचंद की दृढ़ आस्था थी। इस सम्बन्ध में डॉ० त्रिलोकी नारायण दीक्षित का कथन है--" प्रेमचंद को आत्मा की चेतना में अटल विश्वास है। उनकी दृष्टि में मानव हृदय का विकसित रूप ही आत्मा है। सुशिक्षा, सुसंस्कार के द्वारा आत्मा में चेतनता सजीव रहती है और जब आत्मा चेतन है तो फिर अविवेक पर विवेक असत्य पर सत्य, अज्ञान पर ज्ञान सदैव विजयी होता है। मानव सद्बुद्धि के प्रेरित कर्तव्य भावना के प्रति जागरूक रहता है। प्रेमचंद को आत्मा की इस चेतना का बड़ा भरोसा और विश्वास था। उनके उपन्यासों में अनेक ऐसे पात्र अभिव्यक्त हुए हैं जिनकी आत्म चेतना और हृदय की विशालता विपरीत गामी और निम्नगामी प्रवृत्तियों पर विजय पाने के लिए बल और साहस देती है। सूरदास, अमरकान्त, सलीम, होरी, बलराज आदि ऐसे पात्रों में स्मरणीय है। इन पात्रों में सभी वर्ग के व्यक्ति आ जाते है। सूरदास अशिक्षित और ग्रामीण है परन्तु उसका प्राणत्व आदि किसे नहीं प्रभावित करता है। इसलिए अपने साहित्य में प्रेमचंद ने जीवन के लिए आत्मा की चेतना पर जोर दिया है।"[3] कायाकल्प में प्रेमचंद आत्मा की आवाज के अनुरूप कार्य करने की सलाह देते हुए कहते हैं--" आत्मा कुछ न कुछ जरूर कहती है, अगर उससे पूँछा जाए। कोई माने या न माने यह उसका अख्तियार है। तुम्हारी आत्मा भी अवश्य तुम्हे सलाह दे रही होगी और उसकी सलाह मानना तुम्हारा धर्म है।"[4]

---

[1] कायाकल्प-प्रेमचंद-पृ० 102

[2] कायाकल्प प्रेमचंद पृ० 102।

[3] प्रेमचंद डा० त्रिलोकी नरायण दिक्षित पृ० 19-20 प्र० सं० 1952।

[4] कायाकल्प-प्रेमचंद परि० 20 पृ० 154।

भौतिक शरीर को क्षण भंगुर मानने वाले प्रेमचंद का आत्मा के अमरत्व पर पूर्ण विश्वास था।

भारतीय संस्कृति में आवागमन अथवा पुर्नजन्मवाद को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। 'कायाकल्प' में प्रेमचंद इस सिद्धान्त पर सर्मथन करते हुए लिखते हैं–– " आत्माएँ एक जन्म का अधूरा काम पूरा करने के लिए फिर उसी घर में जन्म लेती है।' इसी प्रकार उन्होने रंगभूमि में भी सूरदास के माध्यम से पुनर्जन्मवाद के सिद्धान्त में अपना विश्वास व्यक्त किया है ––'भगवान अन्यायी नही है, मेरे पूर्वजन्म की कमाई ही ऐसी थी। जैसे करम किए है, वैसे भोग रहा हूँ।"[1] भारतीय संस्कृति के मूल मंत्र आध्यात्मिकता में प्रेमचंद की पूर्ण आस्था थी। पुनर्जन्मवाद सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति इस जीवन में जैसा कार्य करेगा उसे वैसे फल की प्राप्ति होगी। यदि वह अपने कर्म का फल इस जीवन में उसे नहीं प्राप्त होता तो उसका परिणाम आगामी जीवन में प्राप्त होता है। व्यक्ति को सत्कर्मो द्वारा ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। प्रेमचंद रंगभूमि मे इस सत्य को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि ––" मेरा विश्वास है कि मेरी मुक्ति अगर भक्ति हो सकती है, तो मेरे कर्मो से होगी।"[2]

अंग्रेजी हुकूमत ने हमारे देश में औद्यौगिक सभ्यता को आश्रय दिया। इसी के चलते हमारे देश में पाश्चात्य संस्कृति का आगमन हुआ। अंग्रेजों ने हमारी संस्कृति को दबाने के लिए पाश्चात्य् संस्कृति को खूब प्रोत्साहन दिया। प्रेमचंद अंग्रेजी सभ्यता तथा पाश्चात्य संस्कृति का विरोध इसलिए करते है क्योंकि उसने भारतीय संस्कृति पर कुठाराघात किया है। अतः वह भारतीय सभ्यता की रक्षा का आहवान करते हुए लिखते हैं––" हमारी सभ्यता कहती है अपनी जरूरतों को मत बढ़ावे, पश्चिमी सभ्यता का आदर्श है अपनी जरूरतों को खूब बढावें हमारी सभ्यता कृषि प्रधान थी बहुत सी बुराईयों से हमारी रक्षा करती थी। पश्चिमी सभ्यता व्यवसाय प्रधान है जहॉ हम सारे बन्धनों से मुक्त होकर दुराचरण में पड़ जाते हैं। हमारी सभ्यता में सम्मिलित कुटुम्ब एक–प्रधान अंग था, पश्चिमी सभ्यता में परिवार का अर्थ है स्त्री और पुरूष। हमारी सभ्यता का आधार संघर्ष है। यदि हम अपनी संस्कृति को खो बैठे तो हमारा अंत हो जाएगा।"[3] औद्योगीकरण के

---

[1] रंगभूमि प्रेमचंद परि0 3 पृ0 14।

[2] रंगभूमि प्रेमचंद परि0 3 पृ0 38।

[3] विविध प्रसंग –भाग 3 पृ0 193।

फलस्वरूप भारतीय संस्कृति पर पड़ने वाले पाश्चात्य सभ्यता के दुष्परिणामों से प्रेमचंद बहुत चिन्तित थे। उन्हे इसके बढ़ते हुए प्रभाव से अनैतिकता वृद्धि की आशंका थी। 'रंगभूमि' में सूरदास के माध्यम से उन्होने औद्योगिक सभ्यता का जम कर विरोध किया है। सूरदास का अनुमान है कि कल कारखानों के खुल जाने से गाँव के नैतिक मूल्य नष्ट हो जायेगें जिससे समाज में भ्रष्टाचार और व्यभिचार को सामाज में बढ़ावा मिलेगा और गाँव की मर्यादा शेष न रह जायेगी। इस विषय में सूरदास का कथन है --"सरकार बहुत ठीक कहते है, मुहल्ले की रौनक जरूर बढ़ जायगी, राज़गारी से लोगों को फायदा भी खूब होगा। लेकिन जहाँ यह रौनक बढ़ेगी, वहॉ ताड़ी शराब का भी तो परचार बढ़ जायगा, कसबियाँ भी तो आकर बस जायेंगी, परदेशी आदमी हमारी बहू-बेटियों को घूरेंगें। कितना अधरम होगा। दिहात के किसान अपना काम छोड़कर मजूरी के लालच से दौड़ेगे, यहॉ बुरी-बुरी बातें सीखेंगें और बुरे आचरण अपने गॉव में फैलायेगें। देहात की लड़कियाँ बहुएँ मजूरी करने जायेगी और यहाँ पैसे के लोभ में अपना धरम बिगाडेगी यही रौनक शहरों में है। वही यहाँ हो जायगी।"[1] सूरदास की यह आशंका निराधार नही थी पांडेपुर में कारखाना स्थापित होने से वहॉ पान, मिठाई, अन्न, गुड़, घी, साग सब्जी तथा अन्य खाद्य सामग्री के साथ मादक द्रव्य की दुकाने भी खुल गई बाहर से आकर गॉव में मज़दूरी करने वाले मजदूरों को लोक लाज का भय नही था दिनभर काम करने के पश्चात रात को ताड़ी पीते है और जुआ खेलते है। इन बुरे व्यसनों तथा व्यभिचार ने गॉव के पवित्र वातावरण को भ्रष्ट कर दिया। गॉव की युवा पीढ़ी को जुआ खेलने, नशा तथा चोरी करने की लत पड़ी गई। जो उनके चारित्रिक पतन का कारण बनी। एक दिन घीसू, मिठुआ और विद्याधर ने असहाय सुभागी की आबरू लूटने की योजना बनाई परन्तु वे पकडे गए। परिणाम स्वरूप विद्याधर और घीसू को जेल हो गई।[2] इसके अतिरिक्त प्रेमाश्रम तथा गोदान में भी प्रेमचंद ने औद्योगिक सभ्यता की व्यावहारिक विकृतियों पर प्रकाश डाला है। औद्योगिक सभ्यता में " धन के आगे स्त्री, संतान, मित्र, सगे-सम्बन्धी सब तुच्छ हो जाते है। उदाहरण के लिए धन की मृग मरीचिका के पीछे भागने के कारण भावात्मक एकता के आभाव में 'प्रेमाश्रम' के ज्ञानशंकर 'कर्मभूमि' के लाला समरकांत और मनीराम, 'रंगभूमि' के जान सेवक गोदान के मि0 खन्ना का पारिवारिक जीवन सुखी नही रह सका।"[3]

---

[1] रंगभूमि प्रेमचंद पृ0 24।

[2] रंगभूमि प्रेमचंद पृ0 472-475, 480।

[3] प्रेमचंद एवं समकालीन भारतीय उपन्यासकार-डा0 (श्रीमती) कलावती प्रकाश पृ0 296।

औद्योगिक संस्कृति हमारे देश के लिए कितनी घातक है प्रेमचंद इस खतरे की ओर प्रेमाश्रम में ही इसके संकेत करते हुए सावधान रहने के लिए चेतावनी देते हैं प्रेमाश्रम के रायसाहब कमलानन्द का मानना है कि औद्योगिक सभ्यता धनवानों को और अधिक धनवान बनाती है जनता का उससे कोई लाभ नही पहुँचता। इस सम्बन्ध में एक कम्पनी के एजेन्ट से वे कहते है कि निस्संदेह आप कई हजार कुलियों को काम पर लगाकर उन्हे आवास, वस्त्र, भोजन, दवा–दारू आदि की सुविधाएँ प्रदान कर बेहतर जीवन–जीने का अवसर प्रदान करेगें –– " पर यह मजदूर अधिकांश किसान ही होगें और मै किसानों को कुली बनाने का कट्टर विरोधी हूँ। मै नहीं चाहता कि वे लोभ के वश में अपने बाल–बच्चों को छोड़कर कंपनी की छावनियों में जाकर रहे और अपना आचरण भ्रष्ट करे। अपने गॉव में उनकी एक विशेष स्थिति होती है। उनमें आत्मप्रतिष्ठा का भाव जागृत रहता है। बिरादरी का भय उन्हे कुमार्ग से बचाता है।"[1] इसी प्रकार गोदान में प्रेमचंद दिखाते है, कि गोबर जब से गॉव से आकर शहर में शक्कर मिल में काम करना आरम्भ किया वह प्रातः काम पर चला जाता और शाम को जब लौटता तो शरीर थकान से चूर हो जाता गॉव मे भी खेतों में काम करते समय उसे कम श्रम नही करना पड़ता था परन्तु वहॉ के शुद्ध वातावरण में वह संगी साथियों से हॅसता–बोलता था उसे थकान का एहसास तक नही होता था। परन्तु मिल मे मशीनों के कोलाहल मालिकों की डाट तथा निरंन्तर श्रम के बोझ तले दबे मज़दूर अपनी थकान को मिटाने के लिए शराब अथवा ताड़ी का आश्रय लेते थे। गोबर भी इससे अछूता नही रह पाया। दिन भर काम करने के पश्चात जब देर रात वह शराब के नशे में धुत्त घर लौटता तो झुनिया और उसमें बात–बात पर तू–तू मै होती और नौबत मार–पीट तक आ जाती। अधिकतर श्रमिकों के घर की यही कहानी थी।"[2] इस प्रकार एक विचारक तथा लेखक के रूप में प्रेमचंद स्थितियों का मूल्यांकन करते है। वे इतिहास की गतिशीलता से परिचित है उसे अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति प्रदान करते है। वे बदली हुई परिस्थितियों के यथार्थ को स्वीकार करते है वे जानते है कि सांस्कृतिक संक्रमण का रोना रोया नही जा सकता पर अपने साहित्य के माध्यम से प्रेमचंद इसी नयी संस्कृति के संकटों की ओर संकेत करते हुए चेतावनी देते हैं।

---

[1] प्रेमाश्रम प्रेमचंद पृ0 89

[2] गोदान प्रेमचंद पृ0 280।

पाश्चात्य चितंन एवं जीवन शैली भारतीय संस्कृति पर प्रहार करते हुए उसके उदान्त सिद्धान्तों को क्षति पहुँचा रही है प्रेमचंद इस सत्य को भली–भाँति जानते थे। अतः अपनी बहुमूल्य सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा हेतु उन्होने अपने कथा साहित्य में तद्युगीन भारतीय समाज के आचार–व्यवहार तीज–त्योंहारों, भिन्न–भिन्न प्रकार के कुसंस्कारों, कुरीतियों एवं अंधविश्वासों का विस्तार पूर्वक वर्णन करते हुए पाठक के सोये हुए मस्तिष्क को जगाकर उसे इनके विषय में स्वतन्त्र रूप से सोचने पर विवश किया। "प्रेमचंद ने युगीन समस्याओं को वास्तविक रूप में देखा और सच्चाई के साथ अपने उपन्यासों में उन्हे चित्रित भी किया किन्तु वे अपने संस्कारगत नैतिक मूल्यों की उपेक्षा नही कर सके जो उन्हे पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त थे' प्रेमचंद के सामने उनके युग का इतिहास खुला हुआ था। भारतीय संस्कृति की विशेषता अपनी गरिमा को भूल चुकी थी और आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विषमता से समाज में विघटन वादी तत्वों को निरन्तर बढ़ावा मिल रहा था। प्रेमचंद ने भारत के विघटित समाज के जर्जर मूल्यों की जहाँ उपेक्षा की और भौतिकता का दम्भ करने वालों के खोखलेपन को सामने रखा वहीं अपनी संस्कृति के सार तत्व को भी उजागर किया।"[1] इस प्रकार अपने साहित्य के माध्यम से प्रेमचंद ने एक सच्चे रचनाकार के दायित्व का पूर्णरूप से निर्वाह करते हुए भारतीय संस्कृति के उच्चादर्शो तथा मानवीय जीवन मूल्यों की विशद अभिव्यंजना की है।

---

[1] हिन्दी उपन्यास–सांस्कृतिक एवं मानववादी चेतना पृ0 293।

अध्याय– 6

प्रेमचंद के उपन्यासों में दार्शनिक चेतना–

अध्याय—षष्ट

प्रेमचंद के उपन्यासों में दार्शनिक चेतना—

1— उपन्यास साहित्य और दर्शन का सम्बन्ध

2— नियति शब्द की व्युत्पत्ति एवं अवधारणा

3— प्रेमचंद का जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोंण—

4— प्रेमचंद के उपन्यास साहित्य में नियति वादी दार्शनिक चेतना का स्वरूप

उपन्यास साहित्य और दर्शन का सम्बन्ध–

उपन्यास साहित्य और दर्शन के सम्बन्ध को समझने के लिए दर्शन शब्द के अर्थ को जानना आवश्यक होता है। मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है जिज्ञासा मानव का एक अति विशिष्ट गुण है जिसकी सर्वोत्तम परिणत है ज्ञान। दर्शन के लिए अंग्रेजी में philosophy शब्द का प्रयोग होता है जो philo और Sophia इन दो शब्दों के योग से बना है जिसका अर्थ है, ज्ञान के प्रति प्रेम इस प्रकार व्यत्पत्ति की दृष्टि से दर्शन का सम्बन्ध ज्ञान से है। दर्शन शब्द दृश्य धातु से बना है जिसका अर्थ है देखना। परन्तु केवल इन्द्रिय जन्य निरीक्षण ही दर्शन नहीं है अर्न्तदृष्टि द्वारा अनुभूत ज्ञान भी दर्शन ही है जिसका चरम लक्ष्य शाश्वत सत्य की प्राप्ति है क्योंकि–मनुष्य की इच्छा अनन्त और जिज्ञासा असीम है। उसका जीवन प्रश्नों का जीवन है। अनेकानेक प्रश्नों के समाधान के लिए वह सतत! प्रयत्नशील रहता है। मूलतः मनुष्य की प्रवृत्ति बहिर्मुखी है, इसीलिए उसकी दृष्टि सर्वप्रथम प्रकृति के स्थूल वैभव विलास पर टिकी है। उससे वह स्थूल सुख–भोग की सामग्री ग्रहण करता है, किन्तु प्रकृति और मानव–मन स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ने लगता है। वह जिज्ञासा करता है–हम कौन है ? क्या हैं? कहाँ हैं ? कहाँ से आये हैं ? हमारे चारों ओर फैली हुई प्रकृति का वास्तविक स्वरूप क्या हैं ? उसकी उत्पत्ति कहाँ से हुई ? उसका कर्ता कौन है ? वह स्वयं चेतन है अथवा अचेतन ? यह प्रपंच (लीला–विलास) किसका हैं ? किसके लिये हैं ? यदि ब्रम्हा अथवा आत्मा (अयमात्मा ब्रम्हा) ही समस्त जगत् का मूल तत्व है तो पुनः प्रश्न उठता है– वह ब्रम्हा क्या हैं ? जगत् से उसका सम्बन्ध क्या हैं ? जीव क्या हैं ? प्रकृति और परमात्मा के साथ उसका क्या लगाव हैं ? उक्त प्रश्नो के आधार–स्वरूप बाहय सौन्दर्य पर टिकी हुई उसकी दृष्टि धीरे–धीरे अन्तर्मुखी होने लगती है और वह प्रकृति के बाह्यान्तर से चिरन्तर सत्य को पालने के लिए व्यग्र हो उठता है।"[1] और अपने इन प्रश्नों का उत्तर बुद्धि के द्वारा तर्कों के आधार पर समझने का प्रयास करता है अर्थात सृष्टि के रहस्यों को जानने की चेष्टा करता है। मानव द्वारा प्रकृति में निहित चिरन्तर सत्य की खोज करने की यह प्रकिया दर्शन कहलाती है। जिसने बुद्धि के सहारे विश्व के वैषम्य में सामंजस्य स्थापित कर सत्य तक पहुँचने का प्रयत्न किया जाता है।

---

[1] छायावादः काव्य का दर्शन–डॉ0 हरनारायण सिंह पृ0–19–20।

मानव के मन मस्तिष्क में चलने वाली जिज्ञासा और उत्सुक्ता की आँधी को केवल दर्शन के द्वारा शांत क्रिया जा सकता हैं क्योंकि मनुष्य कि ".............. ....समस्याओं, प्रश्नों व जिज्ञासाओं की समुचित व्याख्या करना ही दर्शन का प्रमुख लक्ष्य है।"[1] दर्शन मानव के व्यक्तिगत तथा सामूहिक जीवन दोनों से ही घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है– " दर्शनशास्त का सम्बन्ध मानव जीवन के सामाजिक और राजनीतिक पक्षों से भी सम्बन्धित हैं। वह सामाजिक और राजनीतिक मूल्यों की स्थापना करता है, विभिन्न सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं के स्वरूप उनके कार्यों आदि का भी आलोचनात्मक ओर विश्लेषणात्मक मूल्यांकन करता है। दर्शन–दर्शनशास्त्र आदर्श नैतिक मानव के निर्माण के लिए मानदण्ड की ही स्थापना नहीं करता है। अपितु आदर्श समाज और आदर्श राज्य के मानदण्डों की स्थापना करता है।"[2] हमारे जीवन में प्रायः ऐसे अवसर आते हैं जब हमे शुभ–अशुभ नैतिक–अनैतिक उचित–अनुचित, भद्र–अभद्र, सत्य–असत्य के मध्य अन्तर करने के लिए दुविधा की स्थिति से जूझना पड़ता हैं। इसी प्रकार वस्तुओं कें मूल्य उनकी गुणवक्ता तथा उपयोगिता के निर्धारण हेतु द्वन्द्व की स्थिति से गुज़रना पड़ता है। दर्शन उचित मानदण्डों तथा लक्ष्यों की खोज करने तथा उनकी स्थापना करने में हमारा मार्गदर्शन करता हैं। "दर्शन मानव जीवन के व्यक्तिगत उत्कर्ष का दिशा निर्देश नियत करने, साथ ही साथ सामूहिक, सामुदायिक व सामाजिक जीवन के परिचालन, मूल्यों, आदर्शो और मानदण्डों का भी निर्धारण करता है। आदर्श समाज के स्वरूप व इसके मूल्यों की स्थापना के साथ–साथ दर्शन आदर्श राज्य के स्वरूप और राजनीतिक मूल्यों का भी निर्धारण करता हैं।"[3]

विचार प्राचुर्य और वैबिध्य दर्शन की महत्वपूर्ण विशेषता है। जीव जगत का ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं दर्शन ने जिसकी उपेक्षा की हो। "दार्शनिक को इसीलिए सम्पूर्ण 'काल' और सम्पूर्ण 'सत्ता का द्रष्टा' कहा गया है कि उसकी दृष्टि सर्वाभिनिवेशी होती है, कि वह सतह को ही न देखकर सतह के पार भी देखता है, केवल अपने युग के संदर्भों और प्रश्नों के प्रति सजग न रहकर भविष्य के प्रश्नों का भी समाधान करता है, जिसके विचार सर्वग्रासी अमानवीयता के खिलाफ

---

[1] समाज दर्शन का परिचय–शिवभानु सिंह पृ0–24।

[2] समाज दर्शन का परिचय–शिवभानु सिंह पृ0–24।

[3] समाज दर्शन का परिचय–शिवभानु सिंह पृ0–25।

एक धारदार हथियार के रूप में चमकते हैं और जो जीवन के निगूढ़ प्रश्नों के सार्थक उत्तर खोज़कर विराट विश्व में माननीव जीवन को नई अर्थवत्ता तक, उसके वास्तविक प्राप्य तक पहुँचता है।"[1] दर्शन केवल एक विचार प्रणाली नही अपितु एक जीवन प्रणाली है। " दर्शन मानव जीवन की पूर्ण अभिव्यक्ति है जो सत्य के अन्वेषण के दुर्गम मार्ग में मानव का मार्ग दर्शन करता है तथा सत्य की अनुभूति में सहायक सिद्ध होता है।"[2] दर्शन की भांति साहित्य भी जीवन की सच्चाइयों का दर्पण है। "साहित्य मानवीय मस्तिष्क के सबसे तेजस अंश की वाणी, मानवीय क्षमता का सबसे अधिक निखरा हुआ सौन्दर्यमय प्रतिफलन है, और साहित्यकार भी समाज का एक जाग्रत प्रबुद्ध सदस्य है। वह दृष्टा भी हो सकता है, अतीत, वर्तमान तथा भविष्य तीनों इकाइयों के सूत्र अपने हाथों में संभालने वाला तथा युगजीवन की धधकती हुई आग की लपटों के बीच भी, बिना आंच लगें, प्रशस्त तथा उच्चतर भूमियों की ओर ले जाने वाला, यदि उसकी सर्जन क्षमतांए उसकी दृष्टि, उसका मानस, वह उर्जा, वह बोध और वह संवेदना पा सके जिसने भारत ही नहीं, विश्व भर में, शताब्दियों से अनेक दृष्टा कलाकारों को जन्म दिया है। उन कलाकारों को, जिन्होनें हमारी मनुष्यता को सदैव ही जाग्रत संदर्भ दिए हैं, नई अर्थवत्ता दी है, इस धरती को मनुष्य के लिए सही अर्थो में जीने योग्य और हमें अपनी सारी मानवीयता के साथ उससे संबद्ध हो सकने की विशिष्टता दी हैं।"[3]

साहित्य में दर्शन प्रकृति मनुष्य और इतिहास की आन्तरिक संगति को स्पष्ट करता है। दर्शन तथा साहित्य में "............................ परस्पर विरोधाभास है, परन्तु विरोध नहीं है। साहित्यिक गल्प विधा का सर्जक–कथाकार–एक ओर तो वह कल्पना के भव्य महल का कारीगर है और दूसरी ओर मनीषी, चिंतक, विचारक एवं दार्शनिक है। परन्तु दर्शन परक चिन्तन उसका एक दार्शनिक से भिन्न हुआ करता है। दार्शनिक जहां सत्य का उद्घाटन शास्त्रीय मानदण्डों से करने का प्रयास करता है, कथाकार वही शास्त्रीय कसौटी से विलग अपने स्वानुभूत जीवन की अभिव्यक्ति करता है। यह स्वानुभूत जीवन उसके साहित्य का दर्शन बन जाता है जिसे जीवन–दर्शन भी कहते हैं। इस जीवन–दर्शन को हम

---

[1] दर्शन साहित्य और समाज–शिवकुमार मिश्र पृ0–1।

[2] समाज दर्शन का परिचय–शिवभानु सिंह पृ0–26।

[3] दर्शन साहित्य और समाज–शिवकुमार मिश्र पृ0–11।

दार्शनिक चेतना की संज्ञा से अभिहित करते हैं, क्योंकि साहित्य में उसकी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति होती है।"[1]

उपन्यास आधुनिक साहित्य की वह सशक्त विद्या है जिसकी उत्पत्ति जीवन सत्यों को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए ही हुई हैं। "..........उपन्यास अपने मूल में यर्थाथवादी है। जब हम कहते हैं कि उपन्यास आधुनिक युग का महाकाव्य है तो इसका अर्थ यह होता है कि जैसे महाकाव्य में जगत जीवन की विराटता अपने समस्त वैविध्य गहरे भावबोध, विशिष्ट दर्शन, मानव व मूल्य और प्रश्नों के साथ अंकित होती है उसी प्रकार उपन्यास में भी। लेकिन महाकाव्य का माध्यम पद्य है और उपन्यास का गद्य।"[2] इस दृष्टि से उपन्यास तथा दर्शन की विशिष्टताओं में परस्पर पर्याप्त साम्य दृष्टिगोचन होता है। यदि दर्शन विचारों आदर्शों चिन्तन प्रक्रियाओं का संगठित रूप है तो उपन्यास इन्हीं प्रक्रियाओं की सशक्त अभिव्यक्ति – "उपन्यासकार और दार्शनिक दोनों मंगलमयी भावना से अनुप्राणित होकर जीवन की समीक्षा करते हैं, जीवन का एकचित्र चित्रित करते हैं। उपन्यास में मानव मन की प्रतिच्छवियों एवं जीवन–दर्शन के यथार्थ स्वरूप की अभिव्यंजना होती है। साहित्य जीवन–जगत् की व्याख्या करता है तो दर्शन जीवन के चिन्तन रूप का सहज विश्लेषण।"[3] इस प्रकार दोनों का उद्देश्य जीवन सत्य को उद्घाटित करना हैं।

जैसा कि कहा जा चुका है कि उपन्यास का विषय जीवन और जगत है। जीवन की मार्मिक अभिव्यक्ति उसी दशा में सम्भव है जब हमारा हृदय विशाल, उदार एवं पवित्र हो। हमारे विचारों तथा भागों को परिष्कृत करने का बहुत कुछ श्रेय दर्शन को जाता है– "दर्शन एक ऐसा आध्यात्मिक ज्ञान है जो आत्मा–रूपी इन्द्रिय के समक्ष सम्पूर्ण रूप में प्रकट होता है। यह आत्म दृष्टि, जो वहीं सम्भव है जहाँ दर्शनशास्त्र का अस्तित्व है, एक सच्चे दार्शनिक की स्पष्ट पहचान है। इस प्रकार दर्शनशास्त्र के विषय में उच्चतम विजय उन्हीं व्यक्तियों को प्राप्त हो सकती है जिन्होंने अन्दर आत्मा की पवित्रता को प्राप्त कर लिया है। इस पवित्रता का आधार है अनुभव की प्रगाढ़ स्वीकृति जो केवल उसी अवस्था में साक्षात् हो सकती है जब मनुष्य को अन्तर्निहित उस शक्ति की उपलिब्ध हो, जिसके द्वारा वह न केवल जीवन का निरीक्षण ही अपितु, पूर्ण तथा ज्ञान प्राप्त कर सकें। इस

---

[1] भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना–डॉ0 बैजनाथ प्रसाद शुक्ल पृ0–227–228।

[2] हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा–रामदरश मिश्र–पृ0–17।

[3] भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना–डॉ0 बैजनाथ प्रसाद शुक्ल पृ0–328

अन्तरतम निकास से ही दार्शनिक हमारे सामने जीवन के सत्य को प्रकट करता है।"[1] इस दृष्टि से भी दर्शन तथा उपन्यास परस्पर साम्य रखते हैं क्योंकि अन्तस्तम विकास के अभाव में उपन्यासकार भी यथार्थ शक्ति की अभिव्यक्ति करने में असमर्थ है। साहित्य का विकास मानोभावों द्वारा ही होता है–"अन्तर्हृदय अनुभूतियों का केन्द्र होता है और अनुभूतियाँ, जो कि साहित्य का मर्म है उनके प्रकाशन–अभाव में साहित्य–सृजन, नहीं हो सकता अन्य चाहे जो कुछ हो। साहित्यिक विधा में उपन्यास एक ऐसा माध्यम है, जिसका सम्बन्ध जीवन–जगत की यर्थार्थाभिव्यंजना है। अतएव यह लौकिक अलौकिक जीवन की यर्थार्थाभिव्यक्ति करने वाले दर्शन–शास्त्र सें सर्वथा संश्लिष्ट भी नहीं रह सकता और असंपृक्त भी। तात्पर्य यह है कि बुद्धि और भावना दोनों तटों को संस्पर्श करती हुई औपन्यासिक सरिता प्रावहमान है।"[2]

सत्य* के प्रति अडिग निष्ठा तथा ज्ञान की अनुपम पिपासा यथार्थवादी उपन्यासकारों की आधार भूत विशेषता है। उन्हें विश्वास है कि व्यक्ति ही समाज की मूलभूत इकाई है अतः समाज का उत्थान और पतन विकास और ह्रास व्यक्ति निरपेक्ष नहीं हो सकता। समाज के सत्य को जानने के लिए जीवन का अनुसंधान करना होगा व्यक्ति के सत्य को खगालना होगा। इस प्रकार "यथार्थवाद वाह्य जगत की भौतिक सत्ताा को स्वीकार करने वाला दर्शन है, और 'यथार्थवाद' की कला चेतना भी इसी दार्शनिक विचार की देन है। यथार्थवादी जीवन दृष्टि तथा कला दृष्टि का विकास विज्ञान द्वारा अनुमूलित और पुष्ट है। चूँकि विज्ञान स्वतः अपनी अनंत संभावनाओं के साथ आज विकासशील है, अतः उससे नया आलोक प्राप्त करते हुए 'यथार्थवाद' की विकास यात्रा भी अबाध गति से जारी रहेगी।"[3] यथार्थवादी उपन्यासकार अपने दार्शनिक चिन्तन द्वारा यथास्थिति में प्रश्न पैदा करके तर्क और विचार के आलोड़न के माध्यम से छिपी हुई वास्तविकताओं का उद्‌घाटन करता हैं।

दर्शन में प्रतिबद्धता संज्ञान क्रिया के निश्चय बोधात्मक परिणामों को स्पष्ट करती है जबकि साहित्य में प्रतिबद्धता का सम्बन्ध संभावित समगता और विचारधारत्मक विश्व दृष्टि से होता है जिसमें यथार्थवाद निरन्तर संचरण शील रहता है। यथार्थवादी रचनाकार समाज में घटित होने वाली घटनाओं का मूल

---

[1] भारतीय दर्शन– ले0डॉ0 राधाकृष्णन–पृ0 38–39।

[2] भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना–डॉ0 बैजनाथ प्रसाद शुक्ल पृ0–329

[3] दर्शन साहित्य और समाज–शिवकुमार मिश्र पृ0–45।

दर्शक नहीं होता। वह उन्हें प्रभावित करता है उसके पास एक ठोस विश्व दृष्टि होती है। दार्शनिक तथा साहित्यकार दोनों ही अपने–अपने क्षेत्र के स्वतन्त्र चिंतक होते है। हाँ इतना आवश्य है कि जिस शक्ति को दार्शनिक तर्कों के द्वारा निरूपित करता है कवि अथवा उपन्यासकार उसी सत्य को भावना तथा संवेदना के द्वारा सहज ही हृदय में स्थापित कर देता है। श्रेष्ठ उपन्यास की रचना हेतु उपन्यासकार का दार्शनिक दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है क्योंकि इसके अभाव में उच्च कोटि के उपन्यास की सृष्टि नहीं हो सकती। "उपन्यास भाव प्रधान भी होता है और विचार–प्रधान भी। उपन्यासकार भावानुभूतियों के सहारे अपने विचारों की कथात्मक अभिव्यक्ति करता है। कवि दर्शन को सहज रूप में ग्रहण कर सकता है, प्रधानरूप में नहीं, पर उपन्यासकार अपने उपन्यासों मे पात्रों के सहारे कथा–प्रवाह में जीवन के बाह्याभ्यांतरिक पक्षों की अभिव्यंजना सहज ही करने में सक्षम होता है। उपन्यासकार का लक्ष्य जहाँ मनोरंजन करना प्रधान होता है और ज्ञान तथा सत्य की अभिव्यक्ति आनषंगिक वहीं दार्शनिक केवल चिरन्तन सत्य की खोज ही अपना प्रेय एवं श्रेय मानता है। दोनों के प्रेरणा स्रोत तो भिन्न अवश्य हैं परन्तु सत्य जिस तक पहुँचता है–वह एक है। वस्तुतः दर्शन सृष्टि के नाना रहस्यों को उद्घाटित करता है, वहीं उपन्यास में, उपन्यासकार की अन्तर्दृष्टि द्वारा विश्व के विविध रूपों की झांकी अंकित होती है। अस्तु जिस उपन्यासकार की कृतियों में दोनों का समन्वय होता है, वह रचना सर्वश्रेष्ठ होती है। श्रेष्ठ उपन्यासों में आदर्श कल्पना एवं जीवन के सच्चे दर्शन का समावेश होता है।"[1]

कहना न होगा कि उपन्यास और दर्शन में परस्पर विरोधाभास होते हुए भी दोनो एक दूसरे के विरोधी नहीं हैं। उपन्यास का केन्द्र बिन्दु मानव जीवन है और दार्शनिक अनुशीलन का प्रमुख विषय भी मानव जीवन ही हैं। वह जीवन जो केवल वर्तमान समय और युग तक सीमित नहीं है वरन वह अपने सम्पूर्ण इतिहास में प्रतिफलित ओर प्रसरित है। मनुष्य के इसी इतिहास क्रम में विकसित सांस्कृतिक जीवन उसकी गति और दिशा ही दार्शनिक जिज्ञांसा का प्रमुख विषय है। उपन्यास एक कला है उपन्यासकार दार्शनिक की भाँति शुष्क तर्कों के माध्यम से जीवन सत्य की व्याख्या नहीं करता बल्कि अपनी अनुभूति के आधार पर पात्रों के माध्यम से उसे सरस अभिव्यक्ति प्रदान करता है। अतः निष्कर्ष रूप में कह सकते है कि जिस प्रकार समाज के बिना साहित्य की रचना असम्भव है ठीक उसी प्रकार दर्शन के बिना साहित्य का अस्तित्व अकल्पनीय है। दर्शन के बिना साहित्य निराधार है।

---

[1] भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना–डॉ0 बैजनाथ प्रसाद शुक्ल पृ0–329

नियति शब्द की व्युत्पत्ति एवं अवधारणा–

भाग्य के अर्थ मे प्रयुक्त होने वाले नियति शब्द को अधिकांशतः ईश्वरेच्छा के रूप मे ग्रहण किया जाता है। शब्द कल्पद्रुम मे नियतित शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार बतायी गयी है। "नियम्यते आत्मा अनेनेति नियतिः।"[1] अर्थात आत्मा की नियमिका शक्ति नियति' है 'योगवाशिष्ठ' में विश्व की नियामिका शक्ति के रूप में नियति के विराट स्वरूप को व्याख्यायित किया गया है। 'योगवाशिष्ठ' के अनुसार सर्वत्र समरूप में स्थित जो व्यापक ब्रह्म की सत्ता है, उसी का नाम नियति है। वही कार्यकारण के नियम्य और नियामक होने पर उसका कोई कारण अवश्य होता है। इसी नियम का नाम नियति है, वही कारण आदि की नियामकता है और वही कार्य आदि की नियंम्यता भी हैं। [2] वेदों में इसी दैवी विधान को ऋत कहा गया है और इसके गोप्ता को वरूण। वैशेषिक दार्शनिकों ने इस ऋत या दैवी विधान को ही अदृष्ट कहा और माना कि उसी अदृष्ठ के कारण मौलिक परमाणुओं में गति आती है, जिसके फलस्परूप वे संसार की रचना करते है और यहीं अदृष्ट मनुष्यों के जीवन का भी नियन्ता हैं। [3] अर्थात् अदृष्ट की एक अपरिवर्तनशील नियमावली का नाम नियति है इस संसार मे व्यक्ति स्वंय कुछ नही करता वरन् वह किसी अदृश्य शक्ति की प्रेरणा से एक पूर्वनिश्चित डगर पर चलता है और इसमें किसी प्रकार का कोई परिवर्तन लाना सम्भव नहीं। इस प्रकार नियति की सम्पूर्ण ब्रहमांड की स्थिति, विस्तार, सामर्थ्य, विवेक रचना, जन्म और अर्थ क्रिया–कारितादि में हेतुता से महासत्ता, महाचिति, महाशक्ति, महादृष्टि, महाक्रिया, महाउद्भव और महास्पंद गति आदि नामों से कही गयी हैं। [4] रूद्रि आदि देवता भी नियति का उल्लंघन नही कर सकते। माधव और हर के समान सर्वज्ञ और बहुत ज्ञानी होने पर भी नियति के नियमों का कोई व्यक्ति क्रम

---

[1] शब्द कल्पद्रुम खण्ड 2, पृ0 886

[2] यथास्थित ब्रहात्वं सत्ता नियति रूच्यते।
सा विनेतु विंनेत्वं सा विनेय विनेयता।।
योगवाशिष्ठ,प्रकरण 2, सर्ग 10, श्लोक 1

[3] हिन्दी साहित्य कोश भाग–2 धीरेन्द्र वर्मा– पृ0 240।

[4] महासन्तैति कथिता महाचित रिति स्मृता।
महाशक्तिरिति ख्याता महादृष्टिरिति स्थिता।।
–––योगवाशिष्ठ, प्रकरण 3, सर्ग 62, श्लोक–10

नहीं कर सकता।[1] रूद्र से लेकर छोटे–से–छोटे तृण पर्यत नियति का ही वियमन व्यापार सर्वत्र दिखलाई पड़ता है। इस नियमन के कारण इसे नियति कहा गया है।[2] इस प्रकार हम देखते है कि योगवाशिष्ठ में विश्व की नियामिका शक्ति के रूप में नियति की विराट कल्पना मिलती है जिसके अनुशासन को मानव से लेकर देवता तक स्वीकार करते हैं।

शैवदर्शन के अनुसार 'परम शिव' ही अपनी ईच्छा से संकुचित होकर नियति के रूप में स्वयं अभिव्यक्ति होता है। सम्पूर्ण ब्रह्माण पर शासन करने वाली उस पर नियंत्रण रखने वाली नियति की शक्ति असीम है। संसार मे जो कुछ भी उत्कृष्ट, निकृष्ट भला–बुरा घटित हो रहा है वह सब नियति के कारण ही है। नियति ही मनुष्य की समस्त इच्छाओं की प्रेरक शक्ति है। मानव–मन मे उत्पन्न व्यापकता अथवा संकीर्णता के भाव नियति की प्रेरणा के ही परिणाम है। सुख–दुख, वियोग तथा मिलन नियति की इच्छा के ही प्रतिफल है।

नियति के सम्बन्ध में उल्लिखित उपरोक्त तथ्यों को ध्यान रखते हुए कह कसते है कि नियति शब्द का प्रयोग अति–प्राचीनकाल से भाग्य, दैव, भागधेय, भवितत्यता, दैष्टिकता, प्रारब्ध, कर्म और ईश्वररेच्छा के पर्याय के रूप में होता रहा हैं।[3] अमरकोश में भी नियति शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त है।[4] प्रवृत्ति निमित्त अर्थ को दृष्टिगत रखते हुए नियति शब्द के पर्यायों की अलग–अलग व्याख्या करना समीचीन होगा। जो इस प्रकार है।

---

[1] महाकियेति गदिता महोद्भव इति स्मृता।
महास्पन्द इति प्रौढ़ा महात्मैकत योदिता।
———योगवाशिष्ठ, प्रकरण 3, सर्ग 62, श्लोक–11
नशक्यते लंघ यितुमपि रूद्रादि बुद्धिभिः।
सर्ववोऽपि बहुज्ञोऽपि माधवोऽपि हरोऽपि च।।
जो———योगवाशिष्ठ, प्रकरण 3, सर्ग 62, श्लोक–26

[2] आम हारूद्रपर्यतं मिदमित्ययिति स्थितेः
आतृणापद् मजस्पन्दं नियमान्नियति : स्मृता।।
———योगवाशिष्ठ, प्रकरण 6, सर्ग 36, श्लोक–21

[3] भाग्य के ही अपर पर्याय दैव,विधि, नियति, ईश्वरेच्छा, भवितव्यता और प्रारब्ध हैं–
हिन्दी साहित्य कोश (धीरेन्द्र वर्मा) पृ0 540

[4] 'दैवदिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिविधिः।
हेतुनाकरणं बीजं निदानेत्वादिकारणम्।
अमरकोश, कालवर्ग, काण्ड 1, श्लोक 28

'भाग्य'–भाग्य मानव जीवन में घटित होने वाली घटनाओं की वह संचालन शक्ति है जिसका प्रभाव व्यक्ति तथा समाज पर पड़ना अवश्यंम्भावी है। यह एक ऐसी अदृश्य शक्ति है जिसका किसी को ज्ञान नहीं होता जिस पर किसी का कोई वश नहीं चलता जो अपरिवर्तनीय है संसार में जो कुछ भी होता है या हो सकता है वह भाग्यानुसार ही होता हैं।[1] उसकी अपनी ही एक गति है उसका अपना एक क्रम है उसे कोई नहीं समझ सकता। इसी कारण इसे अदृष्ट की संज्ञा से अभीहित किया गया है। ईश्वरवादी दर्शनों में इसको ईश्वरेच्छा माना गया है और इसका काम एक मात्र मनुष्य तथा अन्य जीवों के कर्मो का निर्धारण करने वाला तत्व निश्चित किया गया है। ईश्वर को ऊछृंखल, निर्विवेक तथा अन्धाधुन्ध न्याय करने वाला माना गया। वह अपने इच्छानुसार ही लोगों या जीवों का फल देता है और कर्म करवाता है।[2] इस्लाम, ईसाई तथा यहूदी धर्मो के अनुसार भाग्य ईश्वरेच्छा का ही दूसरा नाम है। उस ईश्वर की जो सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी तथा सर्वज्ञ है। उसकी सत्ता सर्वोपरि है उसका आधिपत्य ब्रहमाण्ड के समस्त भौतिक नियमों पर स्थायी तथा अन्नत है। वही संसार की समस्त शक्तियों का संचालन करता है। मनुष्य के जीवन में घटित होने वाली प्रत्येक घटना का सूत्रधार भी वही है। "भाग्य ईश्वर की रहस्यमयी इच्छा या शक्ति है। इसे कोई जान नहीं सकता। इसका होना अवश्यम्भावी रहता है। वह किसी के द्वारा टाला नहीं जा सकता। यही वास्तव मे सब कुछ करता है, मनुष्य या अन्य जीव इसके हाथ मे कठपुतली है।"[3]

'रामचरितमानस्' में भी भाग्य को विधि का अटल विधान मानते हुए ईश्वरेच्छा के अर्थ में ही इसका प्रयोग किया गया हैं–

"हंसि बोले रघुबंस कुमारा। विधि कर लिखा को मेटन हारा।[4]

होइहिसोई जो राम रचि राखा। कोइ करि तरक बढ़ावई साखा।।[5]

भावी बस प्रतीति उर आई। पूछ रानि पुनि सपय देवाई।।[1]"

---

[1] हिन्दी साहित्य कोश– भाग–2 धीरेन्द्र वर्मा पृ0 540।

[2] हिन्दी साहित्य कोश– धीरेन्द्र वर्मा भाग–2 पृ0 540।

[3] हिन्दी साहित्य कोश– धीरेन्द्र वर्मा भाग–2 पृ0 540।

[4] रामचरित मानसः किष्कंधा काण्ड–सतीमोह।

[5] रामचरित मानसः बालकाण्ड सतीमोह।

'महाभारत में कतिपय स्थानों पर भाग्य की महिमा वर्णित है। धर्मराज युधिष्ठिर को भाग्य की चरम सत्ता पर पूर्ण विश्वास् है। उसके अनुसार ''भाग्यहीन पुरूष बलवान् होने पर भी धन प्राप्त नहीं कर सकता और जो भाग्यवान् है वह बालक और दुर्बल होने पर भी पर्याप्त धन प्राप्त कर लेता है।'' [2] भीष्मपितामह, ययति, धृतराष्ट्र आदि सभी भाग्य के आगे विवश हो जाते है। इस प्रकार प्रायः सभी ईश्वरवादियों ने भाग्य को ईश्वरेच्छा स्वीकार्य किया है। इस भाग्यवादी मान्यता ने सभी गुणों में चिन्तन पर पर्याप्त प्रभाव डाला है।

'दैव'—व्युत्पत्ति के दृष्टि से दैव शब्द का अर्थ है देवता से सम्बन्धी। [3] नालन्दा विशाल शब्द सागर मे देवशब्द का आशय है ''देवता सम्बन्धी, देवता का किया हुआ, प्रारब्ध, भाग्य आदि।''[4] पुराणों में भाग्य के अर्थ में देव की महत्ता का वर्णन है। ब्रह्मवैवर्त पुराण के अनुसार जन्म, कर्म, अशुभ सभी दैव के अधीन है। यही नहीं सारा संसार एकमात्र दैवाधीन है। इस कारण दैव से अधिक और कोई बल नहीं है। [5] मत्स्यपुराण मे भी दैव की महिमा का बखान किया गया है। मनु के यह पूछने पर कि दैव और पुरूषार्थ में कौन श्रेष्ठतर है, मत्स्य ने कहा कि 'दैव' ही पुरूषकार से श्रेष्ठ है। [6] ''भगवतगीता के अनुसार प्रत्येक क्रिया के पाँच कारण होते हैं—अधिष्ठान, कर्ता, करण, चेष्टा, और दैव। दैवकारण का वह भाग है जो मनुष्य के उद्योग से संबद्ध नही। दैववाद के अनुसार यह अंश क्रिया का सम्पूर्ण कारण है, मनुष्य भी कर्ता नहीं करण ही हैं, हमारा सारा जीवन भाग्यवश व्यतीत होता है।''[7]

बाल्मीकी रामायण मे भी दैव का स्तुति—गान किया गया है। दैव की असीम शक्ति का वर्णन करते हुए भगवान राम, लक्ष्मण से कहते हैं—

---

[1] रामचरित मानस—अयोध्या काण्ड।

[2] नाभागधेयः प्राप्नोति धनंसुबलवानपि—महाभारत, अनु0प0अ0 163, पृ0 323
भागधेयन्वित स्त्वर्थान्कृशो बालश्य विन्दति।

[3] देवस्येदं देवं अण् (तस्पदम् प्र0 4—3—120)

[4] नालन्दा विशाल शब्द सागर पु0 620।

[5] हिन्दी विश्वकोश—नगेन्द्र बसु—भाग 10 पृ0 692।

[6] हिन्दी विश्वकोश—नगेन्द्र बसु—भाग 10 पृ0 692।

[7] हिन्दी विश्वकोश—डॉ0 सम्पूर्णानन्द—पृ0 124।

कश्चिद्दैवेन सौमित्रे योद्धुमुत्सहते पुमान्।
यस्य न ग्रहणं किंचित्कर्मणोन्यत्र दृश्यते।[1]

अर्थात– जिसका ग्रहण कर्मफल भोग के अतिरिक्त अन्य किसी साधन से नहीं हो सकता, उस दैव से कोई भी मनुष्य संघर्ष नहीं कर सकता।

भाग्य के सम्मुख बड़े–से–बड़े पुरूषार्थ को व्यर्थ बताते हुए भगवान राम कहते हैं–

ऋषयोत्युग्रतपसो दैवेनाभि प्रपीडिताः।
उत्सृज्य नियमास्तीव्रान्भ्रंश्यन्ते काममन्युभिः।[2]

अर्थात् उग्र तप वाले ऋषि भी दैव से पीड़ित होकर कठोर नियमों का परित्याग कर काम और क्रोध के कारण पतनाभिमुख हो जाते हैं। इसी प्रकार बालि के वध के पश्चात् शोक संतप्त तारा को सांत्वना देते हुए दैव की महत्ता का बोध कराते हुए कहते हैं–

त्रयो हि लोका विहितं विधानं नातिक्रमन्ते वशगाहि तस्य।
प्रीति परां प्रात्यसि तां तथैव पुत्रस्तु से प्राप्स्यति यौव राज्यम्।[3]

अर्थात्– तीनो लोक विधि–विधान के वशीभूत है और उसका अतिक्रमण करने मे सर्वथा असमर्थ है। तुमकों पुनः वैसी ही प्रसन्नता प्राप्त होगी और तुम्हारा पुत्र यौवराज्य को प्राप्त करेगा।

दैव की महिमा गान से महाभारत भी भरा पड़ा है। वस्तुतः दैव अथवा भाग्य की महत्ता का वर्णन महाभारत में रामायण से अधिक हुआ है। इसके समस्त पात्रों ने दैव के महात्म्य को स्वीकारा है जिनमें युधिष्ठिर नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वे पूर्णरूप से भाग्यवादी हैं। मृत्यु को सर्वथा देवाधीन मानकर वे कहते हैं–

नाप्राप्तकालों म्रियते विद्धः शरश तैरति।
तृणाग्रेणापि संपृष्टः प्राप्तकालो न जीवंति।[4]

---

[1] बाल्मीकी रामायण–अयो0 कां0 22–21।

[2] बाल्मीकी रामायण–अयो0 कां0 22–23।

[3] बाल्मीकी रामायण–कि0कां0, 23–43।

[4] महाभारत, अनु0पं0, अध्याय 163।

अर्थात–जिस मनुष्य का काल (मृत्यु नहीं आया है वह सैकड़ों बाणों से विद्ध होते हुए भी नहीं मरता, किन्तु काल आ जाने पर तृण के अग्रभाग से स्पर्श करने पर भी मर जाता हैं।

इस प्रकार हम देखते है कि पुराणों, रामायण, महाभारत, और गीता में भी दैव अथवा भाग्य की महत्ता वर्णित हैं।

'अदृष्ट'– इस शब्द का प्रयोग प्रायः भाग्य अथवा प्रारब्ध के अर्थ में होता है किन्तु इस अदृष्ट के सम्बन्ध में वैशेषिकों की दार्शनिक कल्पना अद्भुत हैं। उन्होनें अदृष्ट को इस प्रकार व्याख्यायित किया है। अयस्कान्त मणि की ओर सूर्य की स्वाभाविक गति, [1] वृक्षों के भीतर रस का नीचे से ऊपर चढ़ना, [2] अग्नि की लपटों का ऊपर उठाना, वायु की तिरछी गति अदृष्यजन्य है।, वैशेषिकों के मतानुसार–विश्व का निर्माण चार प्रकार के परमाणुओं से हुआ है जो क्रमशः इस प्रकार हैं–पृथ्वी के परमाणु, जल के परमाणु, वायु के परमाणु और अग्नि के परमाणु। जब यह परमाणु संयुक्त होते हैं तो वस्तुओं का निर्माण होता है और जब इनमें विच्छेद होता है तो वस्तुओं का नाश होता है। परन्तु इन दोनों की अवस्थाओं में गति की आवश्यकता होती है और यह परमाणु अचेतन तथा निष्क्रिय होते हैं अतः इनको गति प्रदान करने का कार्य जीवात्माओं का अदृष्ट करता है। इस विषय में "प्राचीन वैशेषिक–दर्शन के अनुसार जीवात्माओं का अदृष्ट ही परमाणुओं को गति प्रदान करता है। बाद के वैशेषिक दर्शन के अनुसार परमाणुओं में गति की उत्पत्ति ईश्वर स्वयं करता है। ईश्वर की इच्छा से ही सृष्टि और प्रलय होता है। किसी वस्तु के निर्माण में दो प्रकार के कारणों की आवश्यकता होती है–उपादान कारण और निमित्त कारण। विश्व का उपादान कारण चार प्रकार के परमाणुओं को माना जाता हैं। विश्व का निमित्त कारण ईश्वर को कहा जाता है। ईश्वर को विश्व का निमित्त कारण इसलिए कहा जाता है कि वह जीवों को उनके अदृष्ट के अनुसार कर्मफल का भोग कराने के लिए परमाणुओं में क्रिया प्रवर्तित करता हैं।" [3]

---

[1] मणिगमनं सच्यभिसमित्य दृष्ट कारणम्। (वै0सूत्र 5–1–15)

[2] वृक्षाभिसर्पमेणित्यदृष्टवारितम्। (वी,5–2–7)।

[3] भारतीय दर्शन की रूपरेखा–प्रो0 हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा–पृ0 223

'कर्म'–कर्म का अर्थ है आचरण ''वह जो किया जाए, कार्य , काम,......... भाग्य, प्रारब्ध।''[1] जन साधारण 'कर्म' शब्द का प्रयोग क्रिया के अर्थ में भी करते हैं।

कर्म के द्वारा मनुष्य परमात्मा की सृष्टि के विधान का पालन करता है, विश्व का सृष्टि कर्ता परमात्मा सदैव अपनी सृष्टि की रक्षा करता है। ईश्वर स्वयं कर्मठ है। इसीलिए ईश्वर तक पहँचने के लिए कर्म मार्ग पर चलना अत्यावश्यक है कर्म के विषय में गीताकार का स्पष्ट मत है कि मनुष्य अपनी जीवन के एक क्षण के लिए भी पूर्णतः निष्क्रिय नहीं रह सकता, शरीर का अस्तित्व बनाए रखने के लिए किसी न किसी प्रकार कर्म करना अनिवार्य है। सत्व, रजस, और तमस् इन तीन गुणों से परिपूर्ण मानव–प्रकृति उसे प्रतिक्षण उसे कोई न कोई कर्म करने के लिए प्रेरित करती रहती हैं।

तत्व दर्शन के कर्ममार्ग के नैतिक सिद्धात में मनुष्य को कर्म क्यों करना चाहिए ? इस विषय में कई साक्ष्य प्रस्तुत किये हैं।

यथा–

1– बिना कर्म किये कोई स्वातन्त्रय–लाभ नहीं कर सकता। कर्म–संन्यास से संन्यास की सिद्धि नहीं मिल सकती (3/4)।

2– कोई क्षणमात्र भी अकर्मी नहीं हो सकता। सभी अपने प्राकृतिक गुणों से नियोजित होकर कर्म अवश्य करेंगे (3/5–,3)।

3. शरीर यात्रा भी बिना कर्म किए नहीं हो सकती' (3/8)।

4. कर्म सृष्टि का नियम है। जो इस नियम का उल्लंधन करे, वह व्यर्थ जीता है (3/16)।

5. लोक–संग्रह (समाज की सुरक्षा) के लिए भी कर्म करना आवश्यक है (3/20)

6. यदि कोई अकर्मी, निष्कर्मी हो जाय, तो अन्य लोग उसका अनुसरण करके निष्कर्मी हो जायेंगे। इस प्रकार जब सभी अकर्मी बन जायेंगे तो समाज का सत्यानाश ही हो जायगा। इसको बचाने के लिए स्ययं परमात्मा भी कर्म करता है मनुष्य की बात ही क्या ? (3/21–24)।

---

[1] नालन्दा विशाल शब्द सागर, पृ0 210।

'कर्म' मे आस्था रखने वालों की निश्चित धारणा है कि इस धरती पर कोई बिना परिश्रम किये ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करता है और कोई कड़ी मेहनत के बाद भी भूखों मरता है। संसार मे व्याप्त इस विषमता का कारण कर्म ही है, भाग्य नहीं अर्थात किसी की वर्तमान दशा उसके पूर्वकृत कर्मों के शुभाशुभ कर्मों का ही प्रतिफल होती है। 'कर्म' सम्बन्धी इसी मान्यता ने 'कर्मवाद' तथा पुर्नजन्मवाद को जन्म दिया। ''कर्मवाद के अनुसार विधि 'प्रतिनियत' कमै 'कफलद' है अर्थात वह व्यक्तियों को उनके कर्म के अनुसार ही फल देती है। पर चूँकि इस लोक मे सत्कर्मी दुःखी और दुष्कर्मी सुखी देखें गये है और कर्मफल को अटल मानना रीति के लिए आवश्यक है, इसलिए कर्म मे कई प्रकार माने गये और जन्मान्तरवाद की कल्पना की गयी। इस लोक में जो सुख या दुःख पाता है, वह वस्तुतः अपने पूर्वजन्म के कर्म के अनुसार उसको पाता है। यह उसका प्रारब्ध कर्म है। इस लोक में कियें गये अपने कर्मों का फल भोगने के लिए उसे पुर्नजन्म लेना पड़ेगा।'' [1]

'कर्मवाद'की उत्पत्ति के विषय में हिन्दी विश्वकोश की यह पंक्तियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं–''कर्मवाद की प्रथम अनुभूति वैदिक यज्ञ के विधान में होती है। वैदिक विश्वास के अनुसार यदि यज्ञ का विधिवत् संपादन किया जाए तो उससे एक अदृश्य शक्ति उत्पन्न होती है। इसे 'अदृष्ट' अथवा 'अपूर्ण कहते है। यही उचित अवसर आने पर यज्ञ के वांछित फल को उत्पन्न करती है। इस प्रकार यज्ञ का फल मनुष्य को अवश्य प्राप्त होता है। इस कर्म और फल के सम्बन्ध की सार्वभौम नियम के रूप में अभिव्यक्ति सर्वप्रथम ऋग्वेद के 'ऋत' के सिद्धान्त में मिलती है।'' [2] इस प्रकार कह सकते हैं कि कर्मवाद का मूल स्रोत ऋग्वेद का ऋतवादी सिद्धान्त ही हैं।

बुद्धिवादी मीमांसकों ने कर्म को मानव जीवन का सब से बड़ा चमत्कार स्वीकार करते हुए 'कर्म' सिद्धान्त का पूर्णरूप से समर्थन किया है उनके अनुसार मनुष्य को अपने कर्मों के अनुरूप ही भाग्य की उपलब्धि होती है, कर्म का दूसरा नाम पुरूषार्थ है और भाग्य पुरूषार्थ के अधीन है।

---

[1] हिन्दी साहित्य कोश भाग–2 धीरेन्द्र वर्मा– पृ0 540।

[2] हिन्दी विश्व कोश (ना0प्र0स0) भाग–2, पृ0 368।

गीता में श्रीकृष्ण निरन्तर कर्म करने का आदेश देते हैं। वस्तुतः गीता का मुख्य उपदेश कर्मयोग ही है। भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से किसी भी स्थिति में कर्मों का त्याग करने के लिए न कहकर सभी स्थितियों में केवल कर्म–फलासक्ति का त्याग, करने की बात कहते हुए उसे निष्काम कर्म का अर्थ है' कर्म को बिना किसी फल की अभिलाषा से करना कर्मफल की इच्छा का त्याग करने वाला ही वास्तविक त्यागी है। अतः श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं–

कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेतु कदाचन।
मा कर्मफल हेतुर्भूमाते संगोऽस्वत कर्माणि।।

'कर्म में ही तेरा अधिकार हो, फल में कभी नहीं, तुम कर्म–फल का हेतु भी मत बनों। अकर्मण्यता में तुम्हारी आसक्ति न हो)।

महाभारत में भी अनेक स्थलों पर कर्म की महत्ता का वर्णन किया। कर्म से प्राणी बॉधा जाता है और विद्या से उसका छुटकारा हो जाता है। [1] कर्म की पकड़ इतनी गहरी है कि उससे जन्म जन्मान्तर में भी छुटकारा नहीं मिलता, पूर्व की सृष्टि में प्राणी ने जो–जो कर्म किये होंगे, ठीक वे ही कर्म उसे फिर–फिर यथा पूर्वक प्राप्त होते रहते हैं।[2] शान्ति पर्व में भीष्म युधिष्ठिर से कहते हैं, हे राजन्, यदि यह देख पड़े कि किसी व्यक्ति को उसके पाप–कर्मो का फल नहीं मिला, तो समझना चाहिए कि वह फल उसके पुत्रों, पौत्रों और प्रपौत्रों को भोगना पड़ेगा। [3]

वस्तुतः भारतीय दर्शनों में अधिकांश दर्शनों का प्रमुख स्वर कर्मवाद रहा है। ''वेदों से लेकर आज तक भारतीय संस्कृति मे कर्मवाद को किसी न किसी रूप में माना गया है।'' [4] इस प्रकार कह सकते हैं कि हमारे देश में जहॉ एक ओर भाग्यवादी भावना का प्राचुर्य था, वहीं दूसरी ओर कर्मवाद भी व्यापक रूप से

---

[1] कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया तु प्रमुच्यते–महाभारत, शान्ति पु0 240–7

[2] येषां ये यानि कर्माणि प्राक्सृष्टयां प्रतिषेदिरे, तान्येवप्रतिपद्यन्ते।
सृज्यमानः पुनः पुनः। वही, 231–48

[3] पापं कर्म कृतं किंचिद्यति तस्मिन्न दृश्यते, नृपते तस्य पुत्रेषु
पौत्रेष्वपि च नप्तृषु। वही, 129–21

[4] हिन्दी साहित्य कोश–धीरेन्द्र वर्मा–पृ0 541।

प्रचलित था। ''पहले भाग्यवाद का सिद्धान्त बना या कर्मवाद का, मतभेद हो सकता है, पर भाग्यवाद, कर्मवाद से सरल है। अतः लगता है कि पहले वैदिक ऋषियों ने दैववाद या भाग्यवाद की ही ओर दृष्टि दौड़ायी। फिर जब यज्ञों का बोल–बाला हुआ तो इसको कर्मवाद मे बदल दिया गया, पर यहाँ सत्कर्म सिर्फ यज्ञ ही समझे गये।.. इस प्रकार यद्यपि कर्म के बाहरी रूप का परिवर्तन हुआ, तो भी कर्मवाद कर्म विपाक का आभ्यन्तर सम्बन्ध अक्षुण्ण रहा । स्मृति और पुराण के युगों में कर्मवाद को ईश्वर के साथ सम्बन्धित कर दिया गया। फिर तब से लेकर कभी भाग्यवाद अधिक मान्य रहा, तो कभी कर्मवाद।'' [1] हिन्दी साहित्य के भक्त कवियों ने भाग्यवाद और कर्मवाद से ईश्वर भक्ति की प्रेरणा ग्रहण करते हुए मानव जीवन को बहुमूल्य बताया है तथा उसके सदुपयोग पर बल दिया है। इन सन्त कवियों के यहाँ भाग्यवाद तथा कर्मवाद की विस्तृत अभिव्यक्ति हुई हैं। इस प्रकार ऋग्वेद से लेकर आधुनिक साहित्य तक भारतीय नियति वाद की सुधीर्घ परम्परा दृष्टिगोचर होती है। अतः कहा जा सकता है कि नियति का प्रयोग भारतीय वॉङमय में वैदिक काल से लेकर अब तक प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे होता आया हैं।

---

[1] हिन्दी साहित्य कोश–धीरेन्द्र वर्मा–पृ0 541।

प्रेमचंद का जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण–

लेखक या रचनाकार अपने लिए जिस जीवन दृष्टि का निर्माण करता है उसकी सृष्टि शून्य में नहीं होती और न ही वह उसे स्वतः प्राप्त होने वाली वस्तु है। इस जीवन दृष्टि का निर्माण उसके स्वाभाव तथा विचारों के आधार पर होता है। साहित्यकार के जीवन सम्बन्धी मत विचार उसके व्यक्तिगत तथा सामाजिक अनुभवों का निचोड़ होते हैं जिनमें उसके जन्म से लेकर मृत्यु तक घटित होने वाली घटनाएँ, उसकी शिक्षा दीक्षा, संस्कृति, धर्म, वंश, जाति तथा वर्गगत संस्कार इत्यादि तत्वों का समावेश होता है। किसी भी रचनाकार की जीवन दृष्टि के निर्माण में युगीन सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक वातावरण, पूर्व और वर्तमान के साहित्यकारों तथा उसके अपने व्यक्तिगत एवं व्यक्तिगत जीववनानुभवों का प्रभाव न्यूनाधिक रूप से पड़ना अवश्यम्भावी है और यही प्रभाव तथा अनुभव अंतिम सत्य के रूप में प्रष्फुटित हो रचनात्मक कृति का जन्म देते हैं–साहित्यकार सामान्य मनुष्य से अधिक संवेदनशील, विवेकवान और प्रतिभ होता है इसलिए उससे यह उम्मीद की जाती है कि वह न केवल अपने जीवन को एक सुनिश्चित विचारधारा के अनुकूल जीयेगा। वरन समाज को भी एक संतुलित एवं व्यवस्थित जीवन दृष्टि देगा। इस दृष्टि से मुंशी प्रेमचन्द को एक महान साहित्यकार होने का गौरव प्राप्त है क्योंकि उन्होंने हमारे भारतीय जीवन को उस समय एक व्यवस्थित, आदर्शवादी, व्यावहारिक एवं प्रगतिशील जीवन दृष्टि दी जब ईर्ष्या, द्वेष और स्वार्थपरता का जहर फैलाने वाली पश्चमी सभ्यता उसको धुन की तहर चाट रही थी। [1]

किसी भी साहित्यकार के जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण में केवल सामाजिक तथा राजनीतिक विचारों का ही समावेश नहीं होता वरन् उसमें इतिहास, दर्शन, सौन्दर्य, शासन, समाज के विभिन्न वर्गों के आपसी सम्बन्ध प्रकृति की अवधारणा से सम्बन्धित विचार भी सम्मिलित होते हैं जीवन के विविध पक्ष एक सजग रचनाकार को चिन्तन मनन के लिए आमंत्रित करते हैं। जो उसकी जीवन दृष्टि के निर्माण में सहायक होते हैं परन्तु यह प्रक्रिया अत्यन्त जटिल होती है इसके लिए लेखक को कड़ा संघर्ष करना पड़ता है। प्रेमचंद ने भी–"................अपनी जीवन दृष्टि के निमार्ण और विकास के लिए अथक प्रश्रिम और संघर्ष किया है।

---

[1] प्रेमचंद व्यक्तित्व और रचना दृष्टि संपादक दयानंद पाण्डेय –पृ0 96।

अपने युग में प्रचलित तमाम विचार धाराओं और दर्शनों से संघर्ष करते हुए उन्होंने जीवन–जीने के कुछ मानदंड निकाले हैं। प्रेमचंद के पास ....अच्दे जीवन की एक संगत परिकल्पना है। इस परिकल्पना के आधार पर ही उन्होंने समकालीन जीवन की आलोचना की है। इस आलोचना से उनकी जीवन दृष्टि के कुछ प्रतिमान निकलते हैं। इन्हीं प्रतिमानों के आधार पर हम उनकी जीवन दृष्टि को परिभाषित कर सकते हैं। उन्होंने अपनी–जीवन दृष्टि के निर्माण के लिए जो संघर्ष किया है, उसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति उनके साहित्य में बहुत कम हुई है। उन्होंने अपने जीवन मूल्यों के अनुसार जीवन यथार्थ को चित्रित किया है। उस चित्रित जीवन यथार्थ के विश्लेषण के माध्यम से ही उनकी जीवन दृष्टि को समझा जा सकता हैं।" [1]

प्रेमचंद, साहित्यकार थे दार्शनिक नहीं इसी कारण सृष्टि की उत्पत्ति एवं विकास की उन्होंने व्यवस्थित तथा सुसंगत व्याख्या नहीं की परन्तु उन्होंने सृष्टि रचना के संदर्भ में प्रचलित धार्मिक मान्यताओं का खंडन अवश्य किया है। जो उनके वैचारिक साहस का प्रतीक है किन्तु यह भी सत्य है कि उनके अधिकतर पात्र इस विषय में पारम्परिक विचार धारा में ही आस्था प्रकट करते हैं और उनसे अपने समस्त वैचारिक अन्तर्विरोध के उपरांत भी प्रेमचंद इन पात्रों को पूरी सहानुभति के साथ अपने कथा साहित्य में प्रस्तुत करते हैं। सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रेमचंद भौतिकवादी दृष्टिकोण के समर्थक हैं। बिहार में आए भूकम्प के विषय में उन्होंने जो टिप्पणी की वह उनके इसी दृष्टिकोण की द्योतक है जिसमें उन्होंने भूकम्प को मनुष्य के पापों का परिणाम बताने वालों की कटु आलोचना करते हुए लिखा है–"यदि आस्तिकता, भूकम्प का कारण पाप बतलाती है, तो यह प्रश्न हो सकता है कि क्या सममुच परमात्मा ने बिहार में वास्तविक पापियों को ही दण्ड दिया हैं ? जितने प्राणी भूकम्प में मरे, क्या वे सभी महान पापी थे ? और यहाँ, इस देश में जो बड़े–बड़े पापाचारी और गरीबों का रक्त चूस जाने वाले बड़ी–बड़ी तोंद वाले, बड़े–बड़े तिलकधारी ढोंगी पड़े हुए हैं, क्या परमात्मा उन्हें नहीं देख पाता? अस्तु यह सब व्यर्थ की बाते हैं। भलीभांति विचार करने पर मालूम हो जाता है कि भूकम्प किसी पाप–पुण्य के कारण नहीं हुआ, यह प्रकृति की एक–लीला है और भूगर्भ की वैज्ञानिक प्रक्रिया का एक परिणाम हैं।" [2] ईश्वर तथा धर्म के नाम पर किये जाने वाले मिथ्याड़म्बरों पर उन्हें तनिक भी आस्था

---

[1] प्रेमचंद और भारतीय किसान–रामबक्ष पृ0–244।

[2] विविध प्रसंग भाग–2 पृ0–233।

नहीं थी। उनका विश्वास था कि–"जो भी आज धर्म के नाम पर हो रहा है, सब अन्ध विश्वास है। यह सब मूर्खों को बहकाने के तरीके हैं।" [1] परन्तु इन बातों से यह आशय ग्रहण करना कि प्रेमचंद धर्म और उसकी शक्ति मे विश्वास नहीं रखते थे, कदापि उचित नहीं होगा। वे धर्म के नाम पर फैले छल–प्रपंच कर्म–काण्डों, मिथ्यांडम्बर आदि के कट्टर विरोधी होते हुए भी धर्म के वास्तविक स्वरूप तथा उसकी शक्ति में पूर्ण विश्वास रखते हैं। अमावस्या की रात्रि कहानी में अपने इस विश्वास को व्यक्त, करते हुए लिखते हैं–"धर्म मे वह शक्ति है जो अन्तःकरण में ओजस्वी विचारों को पैदा करती है। हाँ, इस विचार का कार्य में लाने के लिए एक पवित्र आत्मा को आवश्यकता है। नहीं तो वे ही विचार क्रूर और पापमय हो जाते हैं।" [2]

प्रेमचंद ने अपने साहित्य में धर्म के बाह्य रूप बाह्याचार तथा आड़म्बर का विरोध किया है जिसकी प्रेरणा उन्हें स्वामी दयानन्द सरस्वती से मिली। मूर्ति पूजा दान, व्रत आदि के प्रति उनकी आनास्था उनके दृष्टिकोण पर आर्य समाजी प्रभाव की द्योतक हैं। प्रेमचंद की दृष्टि में कर्तव्य पालन का नाम ही धर्म है गोदान में कहते है–"मैं ब्राहमन नहीं चमार ही रहना चाहता हूँ। जो अपना धरम पाले वही ब्राहमण, जो धरम से मुँह मोड़े वही चमार।" [3] धर्म के वास्तविक तत्वों यथा–त्याग, सेवा, शुद्धाचार, सत्य, अहिंसा और प्रेम का सदैव समर्थन किया तथा उन्हें जीवन मे आत्मसात करने पर बल दिया क्योंकि इन गुणों के निःस्वार्थ पालन को ही वे धर्म समझते हैं। आलोचकगण प्रायः प्रेमचंद की आस्तिकता पर उंगली उठाते हुए उन्हें नास्तिक सिद्ध करने का प्रयास करते हैं–"किन्तु इस विषय पर यदि गम्भीरता से विचार किया तो स्पष्ट ही यह धारणा निर्मूल सिद्ध होगी क्योंकि जहाँ यह बात अक्षरशः सत्य है कि प्रेमचंद जी मिथ्याडम्बरी, ढकोसलों, एवं धर्म के नाम पर होने वाली लूट के विरोधी थे, वहाँ यह भी नितान्त सत्य है कि वे धर्म को मानते थे। यह बात दूसरी है कि उनके धर्म का स्वरूप उसके आन्तरिक रूप तक ही सीमित था। ठीक उसी प्रकार वे ईश्वर के बाह्य रूप, मूर्ति और मूर्ति पूजा के अवश्य विरोधी थे किन्तु ईश्वर के निराकार रूप और उसकी शक्ति में पूर्णतया विश्वास रखते थे।" [4] प्रेमचंद के अनुसार–"ईश्वर बड़ा दयालु हैं———

---

[1] प्रेमचंदः घर में शिवरानी देवी–परि0 44 पृ0 91

[2] 'अमावस्या की रात्रि' (कहानी) परि0 4, मानसरोवर भाग–6 पृ0 215।

[3] गोदान, प्रेमचंद परठि 34 पृ0 518 ग्यारहवाँ संस्करण।

[4] प्रेमचंद के जीवन दर्शन के विधायक तत्व–डॉ कृष्णचन्द्र पाण्डेय पृ0 43

मॉ के पेट मे बच्चे को भोजन पहुँचाता है। यह दुनिया ही उसकी रहीमी का आईना है। जिधर ऑखें उठाओं उसकी रहीमी के जलवे। इतने खूनी डाकू यहाँ पड़े हुए हैं, उनके लिए भी आराम का सामान कर दिया। मौका देता है, बार–बार मौका देता है कि अब भी सॅभल जाएँ उसका कौन गुस्सा सहेगा——————। जिस दिन उसे गुस्सा आवेगा, यह दुनिया जहन्नुम को चली जाएगी हमारे तुम्हारे ऊपर वह क्या गुस्सा करेगा। हम चीटीं को पैरों तले पड़ते देखकर किनारे से निकल जाते हैं। उसे कुचलते रहम आता हैं। जिस अल्लाह ने हमको बनाया, जो हमको पालता है, वह हमारे ऊपर कभी गुस्सा कर सकता हैं ? कभी नहीं।'' [1]

प्रेमचंद एकेश्वरवाद में विश्वास रखते है उनकी दृष्टि में ईश्वर–अल्लाह, खुदा, भगवान, राम–रहीम सब एक हैं। [2] वे ईश्वर की निराकार सत्ता में आस्था रखते हैं उसकी शक्ति पर प्रेमचंद का अटल विश्वास है।'' वही सबका पालन हार है ''सारे जहान का खालिक और मालिक है।'' इस प्रकार धर्म के प्रति प्रेमचंद एक समीक्षक का दृष्टिकोण रखते हैं। वह ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं आत्मा की सत्ता पर विश्वास रखते हैं किन्तु ईश्वर के द्वारा व्यक्ति के दैनिक क्रिया–कलापों में होने वाले हस्तक्षेपों को अस्वीकृत करते हैं।

प्रेमचंद मानव जीवन को सबसे अधिक नश्वर कोमल तथा सारहीन मानते है उनकी इस धारणा के पीछे निश्चय ही उनके व्यक्तिगत जीवन में घटित होने वाली घटनाओं का बड़ा हॉथ है। प्रेमचंद का जीवन आरम्भ से अंत तक निराशा विवशता, संघर्ष, अव्यवस्था और अस्थिरता का शिकार रहा हैं। लगभग बारह वर्ष की अल्पायु में ही उन्हें अपनी माता की असमय मृत्यु का दुख भोगना पड़ा किशोरावस्था में ही पिता की छत्र–छाया से भी वंचित हो गए यही नहीं विवाहोपरांत उन्हें अपने हँसते खेलते बच्चे की मृत्यु की असहय वेदना भी सहनी पड़ी। इन कटु अनुभवों नें उनके मन मस्तिष्क में जीवन की नश्वरता के चित्र को और भी गहरा कर दिया। उनकी दृष्टि में जीवन से अधिक नाश्वान और क्षणभंगुर संसार की अन्य कोई वस्तु नहीं। इस विषय में निर्मला में लिखते है– ''जीवन तुमसे ज्यादा असार भी कोई वस्तु है? क्या वह उस दीपक की ही भाँति क्षणभंगुर नहीं है, जो हवा के एक झोके से बुझ जाता है। पानी के एक बुलबुले को देखते

---

[1] 'कर्मभूमि'–प्रेमचंद –भाग–5 परि0–6, पृ0–353।

[2] कायाकल्प–प्रेमचंद परि0 5 पृ0 27–28।

हो, लेकिन उसे टूटते भी कुछ देर लगती है, जीवन में उतना सार भी नहीं। साँस का भरोसा ही क्या ? और इसी नश्वरता पर हम अभिलाषाओं के कितने विशाल भवन बनाते हैं ? नहीं जानते नीचे जाने वाली साँस ऊपर आएगी या नहीं पर सोचते इतनी दूर की हैं, मानों हम अमर हैं।"[1] इसी प्रकार रंगभूमि में संसार की कोमलतम वस्तुओं से जीवन की तुलना करते हुए लिखते हैं 'जीवन सूत्र कितना कोमल हैं। वह क्या पुष्प से कोमल नहीं, जो वायु के झोकें सहता है, और मुरझाता नहीं ? क्या वह लताओं से कोमल नहीं, जो कठोर वृक्षों के झोंके सहती, और लिपटी रहती हैं ? वह क्या पानी के बुलबुलों से कोमल नहीं ? संसार में और कौन सी वस्तु इतनी कोमल, इतनी अस्थिर , इतनी सारहीन है, जिसे एक व्यंग्य, एक कठोर शब्द, एक अन्योंक्ति भी दारूण, असहय घातक है। और इस भित्ति पर कितने विशाल, कितने भव्य, कितने बृहदाकार भवनों का निर्माण किया जाता हैं।" [2] इस प्रकार प्रेमचंद जीवन को क्षणभंगुर तथा कोमल तो मानते हैं परन्तु इसके साथ वह जीवन के भीतर निहित उस शक्ति पर भी अटूट विश्वास करते है जो कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी उसे टूटने नहीं देती और इसी शक्ति मे मानव की उन्नति का रहस्य छिपा है। यही कारण है कि उन्होंने इस संसार को मिथ्या मानकर कभी भी इसकी उपेक्षा नही की बल्कि सामूहिक शक्ति तथा संघर्ष के द्वारा इसे बेहतर बनाने की प्रेरणा दी हैं।

प्रेमचंद जीवन के सहज तथा प्राकृतिक रूप के उपासक है और उसे इसी रूप में व्यतीत करने का समर्थन करते हैं। इस बात को गोदान में मेहता के माध्यम से इन शब्दों मे व्यक्त करते हैं। "मैं प्रकृति का पुजारी हूँ और मनुष्य को उसके प्राकृतिक रूप में देखना चाहता हूँ जो प्रसन्न होकर हँसता है, दुखी होकर रोता हैं और क्रोध में आकर मार डालता हैं। जो दुख और सुख दोनों का दमन करते हैं, जो रोने को कमजोरी और हंसने को हलकापन समझते हैं उनसे मेरा कोई मेल नहीं जीवन मेरे लिए आनन्दमय क्रीड़ा है, सरल, स्वछन्द जहाँ ईर्ष्या और जलन के लिए कोई स्थान नहीं। मै भूत की चिन्ता नहीं करता, भविष्य की परवाह नहीं करता मेरे लिए वर्तमान ही सब कुछ है। भविष्य की चिन्ता हमें कायर बना देती है, भूत का भार हमारी कमर तोड़ देता है। हममें जीवन की शक्ति इतनी कम है कि भूत और भविष्य में फैला देने से वह और भी क्षीण हो जाती है।

---

[1] निर्मला प्रेमचंद–परि0–2, पृ0 16–17।

[2] रंगभूमि–प्रेमचंद, परि0–43, पृ0–541, 14वॉं संस्करण।

हम व्यर्थ का भार अपने ऊपर लादकर, रूढ़ियों और विश्वासों एवं इतिहासों के मलवे के नीचे दबे पड़े हैं। उठने का नाम नहीं लेते।------जहाँ जीवन हैं क्रीड़ा है, चहक है, प्रेम है, वहीं ईश्वर है और जीवन को सुखी-बनाना ही उपासना है, और मोक्ष है। ज्ञानी कहता है, ओंठो पर मुस्कुराहत न आए, ऑखों में ऑसू न आए। मैं कहता हूँ, अगर तुम हॅस नहीं सकते और, रो नहीं सकते तो तुम मनुष्य नहीं हो, पत्थर हो। वह ज्ञान जो मानवता को पीस डाले, ज्ञान नहीं है, कोल्हू हैं।" [1]

प्रेमचंद न तो संसार में युद्ध मानते है और न ही जीवन को संग्राम क्योंकि जीवन को संग्राम मानने के कारण ही मानव जीवन असहज तथा बनावटी होता जा रहा है। ऐसा उनका विश्वास था अतः इस सम्बन्ध में अपने एक लेख में लिखते हैं-"नाश्ता खड़े-खड़े कीजिए, खाना दौड़ते-दौड़ते खाइयें, मित्रों से मिलने का समय नहीं, फालतू बातें सुनने की फुर्सत नहीं मतलब की बात कहिए-साहब, चटपट। समय का एक-एक मिनट अशर्फी हैं। मोती है उसे व्यर्थ नही खो सकते। यह संग्राम की मनोवृत्ति पश्चिम से आई है और बड़े वेग से भारत में फैल रही है।" [2] प्रेमचंद को जीवन का यह असहज तथा कृतिम रूप स्वीकार्य नहीं। उनके लिए जीवन का मैदान है इस संसार को वह रंगभूमि' कह कर परिभाषित करते हैं जहॉ प्रत्येक प्राणी अपनी पारी खेलने आया है। रंगभूमि के सूरदास के जीवनका सिद्धान्त भी यही है वह कहता है-"हम तो खेल खेलते हैं, जीत-हार भगवना के हाथ हैं। वह जैसा उचित जानते हैं। करते हैं, बस नियत ठीक होनी चाहिए।"[3] इसीलिए प्रेमचंद का मानना है कि खेल को खेल की तरह खेलना चाहिए। हॉ यह जरूर है खेल के समय खेलने का मजा भी तभी आता है जब खिलाड़ी की दृष्टि जीत पर लगी हो पर जीत के लिए उसे धांधली नहीं करना चाहिए।' हमारी बड़ी भूल यही है। कि हम खेल की तरह नहीं खेलते, खेल में धॉधली करके कोई जीत ही जाए तो क्या हाथ आएगा। खेलना तो इस तरह कि निगाह जीत पर रहे, पर हार से घबड़ाए नही, ईमान को न छोड़े। जीत कर इतना न इतराए कि अब हार होगी नहीं। यह हार जीत तो जिन्दगी के साथ हैं। [4] प्रेमचंद के अनुसार "सच्चे खिलाड़ी कभी रोते नहीं, बाजी पर बाज़ी हारते हैं,

---

[1] गोदान प्रेमचंद-परि0-18, पृ0 295-96।

[2] विविध प्रसंग-भाग-3-पृ0 87।

[3] रंगभूमि-प्रेमचंद परि0 44, पृ0-549, ।

[4] रंगभूमि प्रेमचंद, परि0-32, पृ0 398।

चोट पर चोट खाते हैं, धक्के पर धक्के सहते हैं, पर मैदान मे डटे रहते हैं, उनकी त्योरियों पर बल नहीं पड़ते। हिम्मत उनका साथ नहीं छोड़ती, दिल पर मालिन्य के छीटें भी नहीं आते न किसी से जलते हैं, न चिढ़तें हैं, खेल मे, रोना कैसा ? खेल हँसने के लिए है, दिल बहलाने के लिए हैं, रोने के लिए नहीं।''[1]

दयानारायण निगम के पुत्र की असमय मृत्यु होने पर उन्हें सांत्वाना देते हुए प्रेमचंद 23 अप्रैल 1923 को एक पत्र में लिखते हैं। ''—————— बच्चे की हसरत नाक मौत एक दिल शिकन हादसा है और उसे बर्दाश्त करने का अगर कोई तरीका है तो यही कि दुनिया को एक तमाशगाह या खेल का मैदान समझ लिया जाए। खेल के मैदान मे वहीं शख्स तारीफ का मुस्तहफ होता है जो जीत से फूलता नहीं, हार से रोता नहीं, जीते तब भी खेलता है, हारे तब भी खेलता है। जीत के बाद यह कोशिश होती है कि हारे नहीं। हार के बाद जीत की आरजू होती है।''[2] जीवन के प्रति इसी आशावादी दृष्टिकोण के कारण प्रेमचंद के पात्र कठिन से कठिन समय में भी केवल परिस्थितियों का रोना नहीं रोते बल्कि धैर्य पूर्वक जीवन की चुनौतियों को सामना करते हैं। 'रंगभूमि' का आदर्शवादी पात्र, सूरदास इसका जीवन्त उदाहरण है जिसका जीवन कष्ट विपन्नता, कठिनाइयों तथा अभाओं से परिपूर्ण है फिर भी वह, उनसे धबराता नहीं वह इस संसार से विरक्ति का भाव उसके मन में नहीं है। वह भीख माँग कर एक–एक पैसे जोड़ता है। दूसरों की भाँति उसके मन में भी अपना घर बसाने की इच्छा है। वह सुभागी जैसी सेवा तथा प्रेम करने वाली स्त्री के साथ जीवन बिताने की इच्छा उसके मन में हैं वह इस सत्य को भली–भाँति जानता है कि संसार का सौन्दर्य मनुष्य की इच्छाओं तथा आकाक्षाओं पर ही आधारित हैं वह कहता है–''संसार इसी माया,–मोह का नाम है——— दुनिया में कौन है जो कहे कि मैं गंगा जल हूँ। जब बड़े–बड़े साधू सन्यासी मोह में फँसे हुए हैं तो हमारी क्या बात है। हमारी भलाही है कि हम खेल की खेल की तरह नही खेलते।''[3]

जैसा कि कहा जा चुका है कि प्रेमचंद जीवन को उसके प्राकृतिक रूप में जीने के पक्ष में थे अतः ब्रह्मचर्य का अप्राकृतिय सिद्धान्त उनके लिए कभी भी ग्राह्य नही था इसके स्थान पर उन्होंने सदैव ग्रहस्थ पारिवारिक जीवन का

---

[1] रंगभूमि प्रेमचंद, परि0–11, पृ0–140।

[2] चिट्ठी पत्री–भाग–1 प्रेमचंद पृ0–133।

[3] रंगभूमि प्रेमचंद परि0–32, पृ0 398,।

समर्थन किया है–"उस युग में दो तरह के लोग परिवार विरोधी थे। एक तो, आधुनिक शिक्षा प्राप्त बुद्धिजीवी और दूसरे आदर्शवादी धार्मिक कार्यकर्ता। बुद्धिजीवियों में गोदान के मेहता और 'कर्मभूमि' के डा0 शान्ति कुमार जैसे लोग हैं। ये एक तरफ तो वैवाहिक जिम्मेदारियों से घबराते हैं, दूसरी तरफ विवाह को आत्मा का बन्धन मानते हैं और इस तरह 'मुक्त' जीना चाहते हैं। धार्मिक नेताओं ने सेवा का एक महान आदर्श उस युग में सामने रखा था। इन्होंने सेवा के लिए बह्मचर्य को अनिवार्य ठहराया। इनके अनुसार सच्ची सेवा करने के लिए मनुष्य को स्वार्थपूर्ण पारिवारिक सम्बन्धों में बद्ध नही होना चाहिए। प्रेमचंद ने ऐसे व्यक्तियों के चरित्र के आन्तरिक खोखलेपन को जगह–जगह उद्घाटित किया है। 'त्यागी का प्रेम' में उन्होंने ऐसे सेवाव्रत धारी युवक के नैतिक अंधः पतन की दास्तान बयान की हैं।"[1] ग्रहस्थ जीवन को सेवामार्ग मे बाधा समझने वालों को मुँह तोड़ जवाब देते हूए 'कर्मभूमि' में वे सुखदा के माध्यम से कहते हैं—क्या विवाहित जीवन मे सेवा–धर्म का पालन असम्भव हैं ? या स्त्री इतनी स्वार्थान्ध होती है कि आपके कामों में बाधा डाले बिना रह ही नही सकती। ग्रहस्थ जितनी सेवा कर सकता हैं, उतनी एकान्त जीवी कभी नहीं कर सकता, क्योंकि वह जीवन के कष्टों का अनुभव नहीं कर सकता।"[2] मनुष्य के व्यक्तित्व के निर्माण तथा विकास में प्रेमचंद परिवार की भूमिका को बहुत अहम मानते हैं इसी कारण वह अपने किसी भी पात्र का परिचय देते समय उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि का चित्रण करना नहीं भूलते जिसके अन्तर्गत वे माता–पिता, बच्चे, भाई–बहन, विमाता तथा अनाथ बच्चों आदि के सम्बन्धों का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं व्यक्ति के जीवन में घर के महत्व को व्याख्यापित करते हुए लिखते हैं–"घर कितनी कोमल, पवित्र, मनोहर स्मृतियों को जागृत कर देता है। यह प्रेम का निवास स्थानहै। प्रेम ने बहुत तपस्या करके यह वरदान पाया हैं।——— यही वह लहर है जो मानव जीवन मात्र को स्थिर रखता है, उसे समुद्र वेगवती लहरों में बहने और चट्टानों से बचाता है। यही वह मंडप है, जो जीवन को समस्त विध्न–बाधाओं से सुरक्षित रखता हैं। इसी कारण प्रेमचंद ग्रहस्थ जीवन की सर्वत्र पैरवी की है।"[3] प्रेमचंद समाज सेवा को तो महत्व देते ही हैं परन्तु उससे पहले वे परिवार सेवा पर विशेष रूप से बल देते हैं क्योंकि उनके अनुसार–"जो अपने

---

[1] प्रेमचंद और भारतीय किसान–रामबक्ष पृ0–258।

[2] कर्मभूमि प्रेमचंद–पृ0–23।

[3] मानसरोवर, भाग–6, पृ0 144।

घरवालों की सेवा न कर सका, वह जाति की सेवा कभी कर ही नहीं सकता घर सेवा की सीढ़ी का पहला डण्डा हैं। इसे छोड़कर तुम ऊपर नही जा सकते।''[1]

मानवता को प्रेमचंद मनुष्य का सबसे बड़ा कर्तव्य मानते हुए कहते हैं–''सिर्फ रूपया कमाना ही आदमी का उद्वेश्य नहीं है। मनुष्यता का ऊपर उठाना और मनुष्य के मन में ऊँचा विचार पैदा करना भी उसका फर्ज है। अगर यह नहीं है, तो आदमी और पशु दोनों बराबर है।''[2] प्रेमचंद कर्म को ही मानव जीवन का उद्देश्य मानते हुए अमरकान्त के माध्यम से कहते हैं– ''दादा आपके घर में मेरा इतना जीवन नष्ट हो गया, अब मैं उसे और नष्ट नहीं करना चाहता। आदमी का जीवन केवल जीने और मर जाने के लिए नहीं होता न धन संचय उसका उद्देश्य है। जिस दिशा में मैं हूँ, वह मेरे लिए असहनीय हो गयी है। मैं एक नये जीवन का सूत्रपात करने जा रहा हूँ, जहाँ मजदूरी लज्जा की वस्तु नहीं। जहाँ स्त्री पति को केवल नीचे नही घसीटती, उसे पतन की ओर नहीं ले जाती, बल्कि उसके जीवन मे आनन्द और प्रकाश का संचार करती हैं। मैं रूढ़ियों और मर्यादाओं का दास बनकर नहीं रहना चाहता। आपके घर में मुझे नित्य बाधाओं का सामना करना पड़ेगा और उसी संघर्ष में मेरा जीवन समाप्त हो जाएगा।''[3] प्रेमचंद जीवन पर्यन्त अर्थाभाव तथा बीमारियों से घिरे–रहे परन्तु कभी भी वे अपने कर्तव्य से विमुख नहीं हुए एक कर्मवीर की भाँति सदैव संघर्ष के पथ पर पूरी दृढ़ता के साथ अग्रसर रहें। उनका विश्वास था कि–''संसार में सफलता का सबसे जागता हुआ मंत्र अपना उद्योग, अध्यवसाय और दृढ़ता है, इसके सिवा और सब मंत्र झूठे हैं।''[4] मानव तथा समाज कल्याण के लिए प्रेमचंद निष्काम कर्म पर बल देते हैं जो उनके जीवन दर्शन का एक महत्वपूर्ण अंग हैं। कर्मभूमि में अपने इस दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि–'' कोई काम सवाब समझ कर नहीं करना चाहिए। दिल को ऐस बनाओं कि काम में उसे वही मज़ा आए जो गाने या खेलने मे आता है। कोई काम इसलिए करना कि उससे नजात मिलेगी रोजगार हैं।''[5] मानव जीवन ही प्रेमचंद की चिंता का मुख्य विषय और

---

[1] कायाकल्प, प्रेमचंद, परि0 16, पृ0 120संस्करण 196।

[2] प्रेमाश्रम

[3] कर्मभूमि–भाग–1 परि0–18 प्रेमचंद पु0 137–चतुर्थ संस्करण।

[4] प्रेमाश्रय–प्रेमचंद परि0 17 पृ0 137

[5] कर्मभूमि प्रेमचंद–परि06, पु0 354 चतुर्थ संस्करण।

उनके साहित्य का केन्द्र बिन्दु है। प्रेमचंद उसे ही सुखमय तथा मंगलमय बनाने की बात करते हैं– "भोग विलास और वासना प्रेम मानव जीवन की उन्नति के मार्ग में सबसे बड़े बाधक हैं। प्रेमचंद जी ने अन्य भारतीय विचारको की ही भाँति इसका कभी भी समर्थन नहीं किया है। यह माया है जो हमें मोह में फँसा कर हमारा जीवन नष्ट कर देती हैं। हमार उद्धार इनसे नहीं बल्कि अपने सुकर्म से हो सकता है और यह सुकर्म है, सेवा और त्याग के मार्ग को अपना कर जनहित के लिए कार्य करना। प्रेमचंद जी के वे सभी पात्र–सुमन, ज्ञानशंकर, राजा विशाल सिंह, मुंशी तोताराम, सेठ धनीराम, पूँजीपति खन्ना इत्यादि–जो भोगसक्ति से पीड़ित हैं, जीवन में अपनी भोग लालसा पर पश्चाताप प्रकट करते हैं। इनमें सुमन एक ऐसी पात्र है जो इस भोग–लालसा के दुष्परिणाम को देखकर तुरन्त ही अपना स्वभाव एवं कर्म बदल कर सेवा मार्ग को अपना लेती है। फलतः उसका उद्धार हो जाता है। किन्तु ज्ञानशंकर, तोताराम आदि इसके भावी दुष्परिणाम से अवगत होकर भी सुधार नही कर पाते, फलतः उन्हें पश्चाताप के कडुवे फल चखने पड़ते हैं। ज्ञानशंकर तो ग्लानि मे डूब मरता हैं। प्रेमचंद जी ने अपने पात्रों मे अपराधी पात्रों को निश्चित रूप से दण्ड दिलाए हैं, किन्तु वे पात्र दण्ड–मुक्त कर दिए गए जिन्होंने आँख खुलते ही सेवा का मार्ग अपना लिया हैं। प्रेमचंद जी इस सेवामार्ग के द्वारा ही मनुष्य की मुक्ति की कल्पना करते हैं।"[1] परन्तु सेवा का यह मार्ग निष्कंटक नहीं अत्यन्त कठिन है इस मार्ग में लोंग मोह तथा कामना रूपी दानव घात लगाए बैठे रहते हैं। जो व्यक्ति को उस मार्ग से च्युत कर देतें हैं। इस सेवा कार्य के लिए त्याग की भावना का होना अनिवार्य है परन्तु यह सेवा तथा त्याग उसी समय लोक कल्याणकारी हो सकते है जब वह निःस्वार्थ भाव से किये जाय क्योंकि–" हम जिनके लिए त्याग करते हैं उनसे किसी बदले की आशा न रखकर भी उनके मन पर शासन करना चाहते हैं, चाहे वह शासन उन्ही के हित के लिए ही हो, यद्यपि उस हित को हम इतना अपना बना लेते है कि वह उनका न होकर हमारा हो जाता हैं। त्याग की मात्रा जितनी ही ज्यादा होती है, यह शासन भावना भी उतनी ही प्रबल होती है और जब सहसा हमें विद्रोह का सामना करना पड़ता है, तो हम क्षुब्ध हो उठते हैं और वह त्याग जैसे प्रतिहिंसा का रूप ले लेता हैं।"[2] प्रेमचंद की निश्चित धारणा है कि निःस्वार्थ सेवा तथा त्याग के द्वारा ही लोक सेवा का कार्य संकल्प, चिन्त की

---

[1] प्रेमचंद के जीवन दर्शन के विधायक तत्व–बालकृष्ण पाण्डेय–पृ0–22

[2] गोदान–प्रेमचंद परि0–31, पृ0 475–476।

एकाग्रता तथा लगन अपेक्षित हैं। मानवता के चरम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उपरोक्त समस्त गुणों के अतिरिक्त व्यक्ति में स्वालम्बन की भावना होना भी अनिवार्य है। अतः प्रेमचंद सादा जीवन तथा स्वावलम्बन पर विशेष बल देते हैं।–"इसी दृष्टि को अपनाने के कारण प्रेमचंद के समस्त आदर्श पात्रों का जीवन सादा ही हैं। ऐसा जीवन प्रेमचंद जी को संभवतः इसलिए पसन्द था, क्योंकि आडम्बर पूर्ण एवं शानदार जीवन व्यतीत करने के लिए अधिक धन की आवश्यकता पड़ती है।"[1] और यही धन शोषण का कारण बनता है। व्यक्ति को बुरे कर्मो की ओर ले जाता हैं। इस तथ्य को इंगित करते हुए लिखते हैं–"मुफ्त का माल उड़ाने वालों को ऐयासी के सिवा सूझेगा क्या ? धन अगर सारी दुनिया का विलास न मोल लेना चाहे तो वह धन ही कैसा।"[2] प्रेमचंद ने उस सम्पत्ति की सर्वत्र निन्दा की है जो भोग विलास के लिए शोषण के द्वारा संचित की गई हो, दूसरों के श्रम पर बलात् अधिकार जमाने वाले उपजीवी वर्ग की उन्होंनें कटु आलोचना की हैं। इस विषय में गोदाम में प्रो0 मेहता के माध्यम से अपने विचारों को व्यक्त करते हुए कहतें हैं कि–" मैं इसे स्वीकार करता हूँ कि किसी को दूसरों के श्रम पर मोटे होने का अधिकार नहीं है। उपजीवी होना घोर लज्जा की बात है। कर्म करना प्राणी मात्र का कर्म है। समाज की ऐसी व्यवस्था, जिसमें कुछ लोग मौज करें और अधिक लोग पिसें, कभी सुखद नहीं हो सकती, पूँजी और शिक्षा जिसे मैं पूँजी ही का एक रूप समझता हूँ, इनका किला जितनी जल्दी टूट जाए, उतना ही अच्छा हैं। जिन्हें पेट की रोटी मुअस्सर नहीं, उनके अफसर और नियोजक दस–दस, पॉच–पॉच हजार फटकारें, यह हास्यास्पद है और लज्जास्पद भी।"[3]

'प्रेमाश्रम का पात्र प्रेमशंकर भी इस सम्बन्ध में कुछ ऐसे ही विचार रखता हैं–"मेरा सिद्धान्त है कि मनुष्य को अपनी मेहनत की कमाई खानी चाहिए। यही प्राकृतिक नियम है। किसी को यह अधिकार नहीं है कि वह दूसरों की कमाई को अपनी जीवन–वृत्ति का आधार बनाए।"[4] 'गोदान' में जमींदार राय साहब

---

[1] प्रेमचंद के जीवन दर्शन के विद्यायक तत्व–डॉ0 बालकृष्ण पाण्डेय–पृ0–26।

[2] मानसरोवर–भाग–2, प्रेमचंद, पृ0–237।

[3] गोदान प्रेमचंद परि0–6, पृ0–77।

[4] गोदान प्रेमचंद परि0–6, पृ0–77।

अमरपाल सिंह के माध्यम से उन्होंने अपने इस सिद्धान्त को प्रस्तुत करते हुए लिखा हैं–"मैं इसे स्वीकार करता हूँ कि किसी को भी दूसरों के श्रम पर मोटें होने का अधिकार नहीं हैं। उपजीवी होना घोर लज्जा की बात हैं। कर्म करना प्राणी मात्र का धर्म हैं। समाज की ऐसी व्यवस्था, जिसमें कुछ लोग मौज मौज करें और अधिक लोग पिसें और खपें कभी सुखद नहीं हो सकती। पूँजी और शिक्षा जिसे मैं पूँजी ही का एक रूप समझता हूँ, इनका किला जितनी जल्दी टूट जाए, उतना ही अच्छा। जिन्हें पेट की रोटी मयस्सर नहीं, उनके अफसर और नियोजक दस–दस, पॉच–पॉच हजार फटकारें, यह हास्यास्पद है और लज्जास्पद भी।"[1]

प्रेमचंद सामाजिक न्याय के प्रबल समर्थक तथा विषमता, अन्याय तथा अत्याचार के कटु आलोचक थे। समाज में व्याप्त वैषम्य को उन्होंने खुलकर भर्त्सना की हैं। अपने साहित्य में समानता को सम्पूर्ण अर्थ में प्रस्तुत करते हुए उन्होंने अछूतों, स्त्रियों तथा सर्वहारा वर्ग के अधिकारों के लिए आवाज़ उठाई है तथा समाज में सभी स्तरों पर समानता के सिद्धान्त का पालन करने की आवश्यकता पर बल दिया हैं। प्रेमचंद अछूत समस्या के प्रत्येक पहलू पर दृष्टिपात करते हुए समाज के प्रत्येक क्षेत्र में उन्हें समान अधिकार तथा समान अवसर दिलाने की बात करते हैं 'कर्मभूमि' मे उन्होंने हरिजनों के मंदिर प्रवेश का प्रश्न उठाकर अछूतों को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में समानता प्रदान करने का समर्थन किया। प्रेमचंद एक ओर जहाँ उनके संस्कारों को सुधारने उनमें अच्छी आदतों तथा शिक्षा का प्रचार करने पर बल दते हैं वहीं उन्हें समान पद अधिकार तथा अवसर दिलाने के लिए ह्रदय से इच्छुक हैं। राजनीति क्षेत्र में सरकार के असीमित अधिकारों की आलोचना करते हुए 'कर्मभूमि' में डॉ0 शान्ति कुमार से कहलाते हैं–"गवर्नमेन्ट कोई जरूरी चीज़ नहीं। पढ़े–लिखे आदमियों ने गरीबों को दबाए रखने के लिए एक संगठन बना लिया है। उसी का नाम गवर्नमेन्ट है। गरीब और अमीर का फर्क मिटा दो और गवर्नमेन्ट का खात्मा हो जाता हैं।"[2] कुछ लोगों के पास अधिकार हो तथा अन्य लोगों को अधिकारों से वंचित रखा जाए समाज की ऐसी व्यवस्था उन्हें कभी भी स्वीकार्य नहीं थी। वर्तमान सरकार जो कि जनता क शोषण के लिए सबसे अधिक उत्तरदायी थी प्रेमचंद उसकी

---

[1] प्रेमाश्रम, प्रेमचंद–परि0–21, पृष्ठ–163।

[2] कर्मभूमि भाग–3 प्रेमचंद –परि0–7, पृष्ठ–226।

समाप्ति में ही जन कल्याण देखते थे वे देश में जनता का राज्य चाहते थे। पूर्ण स्वराज्य कौंसिलों में प्रवेश के द्वारा इस लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती इस बात पर उन्हें तनिक भी भरोसा नहीं था क्योंकि कौसिलों में भी धन के बल पर चुनाव जीत कर उपजीवी वर्ग के लोग ही प्रवेश पाते थे। इस सम्बन्ध में मि0 तन्खा के विचार प्रेमचंद के अपने विचार है–''मुफ्त की बक–बक कौन करे फायदा ही क्या। मुझे अब इस डेमोंक्रेसी में भक्ति नहीं रही। जरा–सा काम और महीनों की बहस। हाँ, जनता की आँखों में धूल झोंकने के लिए अच्छा स्वांग हैं।—–—– मैं तो यह सारा तमाशा देखकर कौंसिल से बेजार हो गया हूँ। मेरा बस चले तो कौंसिलों में आग लगा दूँ। जिसे हम डेमोक्रेसी कहते हैं, वह व्यवहार में बड़े–बड़े व्यापारियों और जमींदारों का राज्य है और कुछ नहीं। चुनाव में वही बाजी ले जाता है, जिसके पास रूपए हैं। रूपए के जोर से उसके लिए सभी सुविधाएँ तैयार हो जाती हैं।''[1] ऐक शोषणबिहीन स्वस्थ तथा कल्याणकारी समाज की स्थापना के लिए प्रेमचंद पूर्ण स्वाधीनता के समर्थक थे।

इसी प्रकार प्रेमचंद समानता तथा न्याय को सामाजिक जीवन विशेषकर स्त्री तथा पुरूष के सम्बन्धों में लागू करने के हिमायती हैं। पुरूष प्रधान समाज में नारी को पुरूष की दासी समझा जाना प्रेमचंद की दृष्टि में वर्तमान समाज व्यवस्था का सबसे बड़ा दोष हैं। स्त्री तथा पुरूष में भेदभाव की प्रकिया बचपन से ही आरम्भ हो जाती है जहाँ लड़के के जन्म पर मिठाइयॉ बॉटी जाती है वहीं लड़की के जन्म पर बधाई देना भी उचित नही समझा जाता लड़के के जन्म पर उत्सव मनाया जाता है लड़की को अभागिन समझकर उसकी उपेक्षा की जाती है लड़की की तुलना में लड़के को कहीं अधिक लाड़ और दुलार से पाला जाता हैं। समाज की दुरंगी नीति को उद्धार कहानी में रेखॉकित करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं–''बेटों की कुचरित्रता कलंक की बात नहीं समझी जाती। लेकिन कन्या का विवाह तो करना ही पड़ेगा, उससे भागकर कहाँ जाएँगें ? अगर विवाह मे विलम्ब हुआ और कन्या के पॉव कहीं ऊँचे–नीचे पड़ गए, तो फिर कुटुम्ब की नाक कट गई, वह पतित हो गया, टाट बाहर कर दिया गया।''[2] स्त्री तथा पुरूष के सम्बन्ध में समाज के दोहरे मापदंड की निंदा करते हुए प्रेमचंद ने नारी मुक्ति की धारणा का स्रोत्रपात किया है। स्त्री शोषण के कारणों में प्रेमचंद धन को भी एक महत्वपूर्ण कारण मानते हैं। क्योंकि ''धनवान वर्ग की कन्याओं की शादी सुयोग्य वर से एवं सुसपन्न परिवार में हो जाती हैं, किन्तु धनहीन परिवार की कन्याएँ

---

[1] गोदान प्रेमचंद, परि0–7, पृष्ठ–137–38।

[2] मानसरोवर भाग–तीन, पृष्ठ–38।

अनमेल–विवाह के कुचक्र मे पड़कर अपना जीवन कुढ़–कुढ़ कर व्यतीत करती हैं। इन सब बुराइयों के दूर होने पर ही मानव समाज सुखी और समृद्ध हो सकता हैं, क्योंकि आखिरकार मानव समाज का आधा हिस्सा नारी समाज का ही तो हैं। इसके लिए उन्होंने सुशिक्षा एवं आर्थिक स्वावलम्बिता पर जोर दिया हैं। साथ ही सुमित्रा (प्रतिज्ञा), सुखदा (कर्मभूमि) आदि नारी पात्रों को नारी अधिकार के प्रति सजग होने और पुरूषों के अत्याचार के प्रति विद्रोह करते हुए दिखाया हैं। ये उनके आदर्श नारी–चरित्र हैं। ऐसी भावनाएँ ही उनकी दृष्टि में नारी को पुरूष के शोषण से मुक्ति प्रदान करा सकती हैं। प्रेमचंद का नारी सम्बन्धी आदर्श और जीवन–दर्शन उनके आदर्श नारी पात्रों के माध्यम से स्पष्ट हो सका हैं। उन आदर्श नारी पात्रों प्रमुख हैं।––सुभागी (सुभागी कहानी की नायिका), सुमित्रा (प्रतिज्ञा), जालपा (गबन) धनिया, सोना और मालती (गोदान) इत्यादि। वे नारी का वास्तविक रूप उसके मातृत्व में देखते हैं।"[1] इस प्रकार नारी को समाज में समानता का अधिकार दिलाने के साथ–साथ प्रेमचंद उसके जीवनादर्शो को भी रेखांकित करते हैं। उनके अनुसार–"––––– नारी केवल माता है और इसके उपरान्त वह जो कुछ है, वह सब मातृत्व का उपक्रम–मात्र है। मातृत्व संसार की सबसे बड़ी साधना, सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान विजय हैं।"[2] स्त्रियों की दशा में सुधार लाने हेतु प्रेमचंद स्त्री को शिक्षित तथा स्वावलम्बी बनाने का सुझाव तो देते हैं। परन्तु इस विषय में भी उनका दृष्टिकोण पाश्चात्य न होकर पूर्ण रूप से भारतीय है वे पाश्चात्य शिक्षा को जीवन नष्ट करने वाली शिक्षा मानते थे। वे पारिवारिक जीवन को सफल तथा सुखमय बनाने के लिए स्त्री पुरूष के अधिकार साम्य की बात करते हैं उसे बर्बाद करने के लिए नहीं।

प्रेम मानव का सर्वश्रेष्ठ गुण है उसकी मनुष्यता का लक्षण है। प्रेमचंद ने मावन के इस गुण के बहुत बड़े समर्थक रहे हैं, उनके अनुसार " प्रेम ह्रदय के समस्त सद्भावों का शान्त स्थिर उद्गार हीन समावेश है। उसमे दया और क्षमा, श्रद्धा और वात्सल्य, साहनुभूति और सम्मान, अनुराग और विराग, अनुग्रह और उपकार सभी मिले होते हैं।–––––– इनमें से कोई एक भाव प्रेम को अंकुरित कर सकता हैं, उसका विकास अन्य भावों के मिलने ही से होता हैं।"[3] परन्तु प्रेमचंद केवल भोग लालसा और काम लिप्सा को प्रेम नही मानते उनके अनुसार शारीरिक रूपाकर्षण से उपजा प्रेम महज वासना है जो क्षणिक होता है। प्रेमचंद ऐसे प्रेम से

---

[1] प्रेमचंद के जीवन–दर्शन के विधायक तत्व–डॉ0कृष्णचन्द्र पाण्डेय पृ.–34।

[2] गोदान प्रेमचंद, परि0–18, पृष्ठ–297।

[3] कायाकल्प–प्रेमचंद परि0–26, पृ0–147।

दूर रहने की बात करते हैं क्योंकि "काम के वश में पड़कर मनुष्य की विद्या, बुद्धि, विवेक सब नष्ट हो जाते हैं। यदि वह नीच प्रकृति है तो मनमाना अत्याचार करके अपनी तृष्णा की पूर्ति करता हैं, यदि विचारशील है तो कपट–नीति से अपना मनोरथ सिद्ध करता हैं।"[1] प्रेम के सम्बन्ध में प्रेमचंद का दृष्टिकोण नितान्त स्वस्थ, स्वच्छ तथा निर्मल है। उनके लिए "प्रेम पवित्र उज्जवल स्वार्थ रहित, सेवामय, वासना रहित वस्तु है। प्रेम वास्तव में ज्ञान हैं, प्रेम से संसारकी सृष्टि हुई है, प्रेम से ही उसका पालन होता है। यह ईश्वरीय प्रेम हैं। मानव प्रेम वह है जो जीव मात्र को एक समझे, जो आत्मा की मादकता को स्वीकार करे, जो प्रत्येक अणु में परमात्मा का स्वरूप देखे, जिसे अनुभूत हो कि प्राणिमात्र एक ही प्रकाश की ज्योति है। प्रेम उसे कहते हैं। प्रेम के शेष जितने रूप हैं स्वार्थमय, पापमय हैं।"[2] इस प्रकार प्रेमचंद स्वस्थ और सामाजिक प्रेम को ही महत्व देते हैं वे प्रेम को स्थायित्व प्रदान करना चाहते हैं और ऐसा केवल सेवा द्वारा ही सम्भव है सेवा जो केवल प्रेम ही नही वरन् जीवन का भी आधार हैं।

प्रेमचंद के जीवन सम्बनधी दृष्टिकोण के विषय में उपर्युक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रेमचंद की जीवन दृष्टि प्रगतिशील एवं व्यवहारिक थी। प्रेमचंद स्वभाव से ही प्रगतिशील थे और ऐसा व्यक्ति मानव जीवन को समाज से अलग करके नहीं देखता वह मनुष्य और समाज के सम्बन्धों को अटूट मानते हुए उनके बीच और भी सुदृढ़ सम्बन्ध की कल्पना करता हैं क्योंकि मानव जीवन तथा सम्बन्धों की व्यवस्था के लिए समाज की साध्य होता हैं। यही कारण है कि प्रेमचंद की दृष्टि व्यक्ति समाज तथा राष्ट्र तक फैली हुई है। प्रेमचंद के जीवन दर्शन का मूल तत्व मानवता है और इसी आधार पर वे जीवन के प्रति किसी मान्यता अथवा सिद्धान्त को ग्रहण करते हैं। एक मानवतावादी लेखक होने के नाते प्रेमचंद ने जीवन में श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों, निष्काम कर्म, सेवा, त्याग, प्रेम, समाज कल्याण और लोकमंगल की भावना को ही महत्व प्रदान की है क्योंकि इन्हीं सात्विक गुणों के द्वारा मानव जीवन पवित्र तथा श्रेष्ठ बन सकता है अपने इसी मानवतावादी दृष्टिकोण के कारण जहाँ वह सुधारवादी हैं वहाँ वह गाँधीवादी हैं किन्तु जहाँ वह क्रॉतिकारी हैं वहाँ साम्यवादी हैं। वरदान से लेकर गोदन तक उनके मानवतावादी दृष्टिकोण का भली भाँति निरूपण हुआ हैं।

---

[1] संग्राम (नाटक) अंक 2, दृश्य–2, पृष्ठ–48।

[2] संग्राम (नाटक) अंक 2, दृश्य–2, पृष्ठ–48।

प्रेमचंद के उपन्यास साहित्य में नियतिवादी दार्शनिक चेतना का स्वरूप–

रचनाकार के व्यक्तिगत जीवनानुभवों पर अवलम्बित सत्य उसका निज का दर्शन होता है जिसे, वह कला के माध्यम से अपनी रचनाओं में उकेरता है। उसके साहित्य का अनुशीलन करते समय विज्ञजिन तथ्यों को खोज निकालते हैं, उन्हें ध्यान में रखते हुए समीक्षात्मक शैली में हम कृतिकार के साहित्य की दार्शनिक चेतना कह सकते हैं। "जिस प्रकार समाज में उत्पन्न होने वाले परविर्तन व्यक्तियों और घटनाओं में प्रकट होते हैं। उसी प्रकार समाज मे उत्पन्न होने वाला प्रत्येक दर्शन भी व्यक्तियों और घटनाओं में उत्पन्न होता हैं। किसी दर्शन और विचार को किसी व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित किया जा सकता हैं, लेकिन वह उसे आकशवाणी के रूप में प्राप्त नहीं होता।"[1] इसके लिए उसे संसार रूपी कुरूक्षेत्र में संघर्षो के झंझावात को झेलते हुए जीवन के कटु अनुभवों से होकर गुज़रना पड़ता है। यही नियम प्रेमचंद पर भी लागू होता है। प्रेमचंद का जीवन संघर्षो की एक लम्बी कहानी हैं– "उन्होंने युग और जीवन दोनों से संघर्ष करते हुए साहित्य की अनमोल रचनाएँ प्रस्तुत की। उनका जीवन दर्शन ही उनके साहित्य का मूल्याँकन कराने में समर्थ हैं। कहा जा सकता है कि उनके जीवन की घटनाओं, विचार एवं दर्शन के आधार पर ही उसकी साहित्य–साधना का मार्ग प्रशस्त हुआ।"[2]

प्रेमचंद एक उच्चकोटि के प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार होने के साथ–साथ महान चिंतक भी थे। उन्होंने मावन जीवन तथा समाज का गहराई से चिन्तन किया था। उनका सारा लेखन ही जीवन के श्रेष्ठ मूल्यों की खोज हैं। प्रेमचंद ने जीवन पर्यन्त कुण्ठाओं, असफलताओं और विड़म्बनाओं का डटकर सामना किया और इसी आधार पर वे एक स्वस्थ जीवन दर्शन के निर्माण के लिए प्रयत्नीशील रहे और श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों तथा जीवन रहस्यों की खोज करते रहें। इस प्रकार उनकी दार्शनिक मान्यताओं के मूल्य में मानववाद की छटा स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। सेवा, त्याग, निष्काम कर्म स्वावलम्बन, प्रेम, समाज तथा लोक मंगल की भावना से उनका सम्पूर्ण साहित्य ओत–प्रोत है। यही कारण है कि मनुष्य की

---

[1] प्रेमचंद जीवन और कृतित्व–हंसराज रहबर पृ0–164–165।

[2] उन्यासकार प्रेमचंद, समाजशास्त्रीय अध्ययन–राजकुमारी गुंगलानी–पृ0–162।

"आत्मोन्नति और सद्वृत्तियो को जाग्रत करने के जितने भी उपाय हो सकते हैं–सम्भव और असम्भव, लौकिक और अलौकिक, नर्म और कठोर, भोंडे और सुन्दर–सभी का प्रेमचंद जी सहारा लेते हैं और प्रेमचंद जी की यह विशेषता है कि उन्हें पूरी निर्ममता के साथ खराद पर चढ़ाकर देखते हैं।"[1]

प्रेमचंद जीवन संघर्ष में ही जीवन की सुन्दरता देखते हैं–" यह भावना कि कमल अग्नि में ही ही खिलता है, जीवन संग्राम में ही मानव की सद्विचारों और उसकी श्रेष्ठतम वृत्तियों का विकास होता हैं, प्रेमचंद जी के साहित्य मे जगह–जगह बिखरी हुई मिलती हैं।"[2] वस्तुतः अपने जीवनादर्शो में प्रेमचंद ने पूर्णतः गॉधीवादी हैं व साम्यवादी वह मूलतः मानवतावादी हैं और उनका यह मानवतावाद भारतीय दर्शन से प्रभावित हैं। " प्रेमचंद मनुष्य को धीरे–धीरे संघर्षो के बीच में से होकर ऊँचे आध्यात्मिक स्तर पर उठा देना चाहते थे। प्रेमचंद भारतीय संस्कृति से अच्छी तरह परिचित थे। वे जानते थे, हमारी संस्कृति का हृदय कहॉ है, और उससे जो जीवन धाराएँ निकलती हैं, वे किस ओर बहती हैं। भारतीय संस्कृति में एक विशेषता यह है कि उसने शरीर से अधिक बल आत्मा पर दिया है, उसका आधार आध्यात्मिक हैं, बौद्धिक नहीं हैं। प्रेमचंद इस बात को जानते थे। इसी कारण उनकी कहानियों में सांस्कृतिक संदेश हैं, जो उनकी रचना पर भारतीयता की छाप लगा देता हैं।"[3] उदाहरण स्वरूप उनकी कहानी 'घमण्ड का पुतला', का एक अंश प्रस्तुत है जिसमें उनके आध्यात्मिक आदर्श की झलक स्पष्ट रूप से देखी जा सकती हैं–"कुंवर सज्जन सिंह खानदानी रईस थे। उनकी वंश परम्परा यहाँ वहाँ टूटती हुई अन्त में किसी महात्मा ऋषि से मिल जाती थी। उन्हें तपस्या और भक्ति और योग का कोई दावा न था, लेकिन इसका गर्व उन्हें अवश्व था कि वे एक ऋषि की सन्तान हैं। ––– बेशक वह आदमी हैं, जो हुकूमत और अखितयार के तुफान में, जड़ से उखड़ जाएगा पर झुकेगा नहीं। ––– (अंत में प्रेमचंद उज्जवल आदर्श उपस्थित करते हैं।) मेरे दोस्त, मैं आज तक तुम्हारी आत्मा के बड़प्पन से बिल्कुल बेखबर था। आज तुमने मेरे हृदय पर उसको अंकित कर दिया कि वैभव और प्रलाप, कमाल और शोहरत यह सब घटित चीजें हैं, भौतिक चीजें हैं। वासनाओं में लिपटें हुए लोग इस योग्य

---

[1] प्रेमचंद और गोर्की–राचीरानी गुर्टू–प0–137।

[2] प्रेमचंद और गोर्की–राचीरानी गुर्टू–10–135।

[3] प्रेमचंद और उनका साहित्य–डॉ0 शीलागुप्त– पृ0–137।

नहीं कि हम उनके सामने भक्ति से सिर झुकाएँ, वैराग्य और परमात्मा से दिल लगाना ही महान गुण है जिनकी ड्योढ़ी पर बड़े–बड़े वैभवशाली और प्रतापी लोगों के सिर भी झुक जाते हैं। यह वह ताकत हैं, जो वैभव और प्रताप को, घंमड़ की शबाब के मतवालों और जड़ाऊ मुकुट को अपने पैरों पर गिरा सकती है। ऐ तपस्या के एकान्त मे बैठने वाली आत्माओं। तुम धन्य हो कि घमंड के पुतले भी तुम्हारे पैरों की धूल को माथे पर चढ़ाते हैं।––– गर्व में भी आत्मिकता को पाया जा सकता है।"[1] यह वाक्य इस ओर संकेत करते हैं कि प्रेमचंद भारतीय संस्कृति की धर्मनिष्ठा और साधना युक्त विश्वासों में आस्था रखते हैं। "यह विश्वास हिन्दी साहित्य को भक्ति रस के अपने पूर्वजों से प्राप्त होता चला आया हैं। कबीर ने संसार को माया माना और जीव को उससे मुक्ति का उपाय सुझाया था। प्रेमचंद के युग में आत्मा के सच्चे ज्ञान का उपदेश गॉधी जी ने धार्मिक प्रवृत्तिँयों को जाग्रत करने में दिया। गॉधी जी के विश्वासानुसार मानव जीवन के वास्तविक उद्‌देश्य की सिद्धि धनोपार्जन से नहीं प्राप्त की जा सकती। प्रेमचंद ने इसी नैतिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया हैं।"[2] क्योंकि धन की लालसा व्यक्ति के चारित्रिक, आत्मिक तथा नैतिक पतन का कारण बनती हैं।

यह सत्य है कि प्रेमचंद ने आध्यात्मिक जीवन की अपेक्षा भौतिक जीवन की वास्तविकता का ही व्यापक रूप में स्पर्श किया हैं परन्तु " प्रेमचंद ने भौतिकता को स्वीकार करते हुए आध्यात्मिकता से हाथ नही धो लिया, वरन इन दोनों सीमाओं के बीच का मार्ग निकालने की चेष्टा की।"[3] प्रेमचंद मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखना चाहते थे। अपने इसी सुधारवादी दृष्टिकोण के कारण उन्होंने वस्तु का यथार्थ चित्रण करते हुए आदर्श उपस्थित करने की चेष्ठा की। मानव समाज के सुधार हेतु ही उन्होंने मानव चरित्र का द्धद्धात्मक रूप में चित्रण किया है। उन्होंने व्यक्ति के भल–बुरे दोनों रूपों का चित्रण करके आत्मरूप को ही विजयी दिखाकर अनात्म भावना की पराजय दिखाई हैं क्योंकि प्रेमचंद का इस बात पर पूर्ण विश्वास था। "मानव चरित्र न बिलकुल श्यामल होता है, न बिलकुल श्वेत। उसमें दोनों ही रंगो का विचित्र सम्मिश्रण होता हैं, किन्तु स्थिति अनुकूल

---

[1] प्रेमचंद–कहानी 'घमंड का पुतला' गुप्तधन, भाग–1 हंस प्रकाशन इला० 1962, पृ०सं०–206।

[2] प्रेमचंद और उनका साहित्य–डॉ० शीलागुप्त– पृ०–106।

[3] प्रेमचंद और उनका साहित्य–डॉ० शीलागुप्त– पृ०–138।

हुई, तो वह ऋषि तुल्य हो जाता है, प्रतिकूल हुई तो नराधम वह अपनी परिस्थितियों का खिलौना मात्र हैं।"[1]

जैसा कि कहा जा चुका है कि प्रेमचंद की आस्तिकता और नास्तिकता पर विचार करते हुए अनेक आलोचकों ने उन्हें नास्तिक सिद्ध करने का प्रयास किया है परन्तु प्रेमचंद साहित्य का गम्भीरता पूर्वक अध्ययन करने पर उनकी यह धारणा निर्मूल्य जान पड़ती है क्योंकि जहाँ उन्होंने धर्म के नाम पर होने वाली लूट धार्मिक ढकोसलों मिथ्याड़म्बरों आदि का अपने साहित्य में अनेक स्थानों पर प्रबल विरोध किया है वहीं ईश्वर के अस्तित्व तथा धर्म के वास्तविक स्वरूप मे अपनी अटूट आस्था व्यक्त की है साथ ही उनके उपन्यासों में अनेक स्थलों पर नियतिवादी दर्शन की अभिव्यक्ति भी हुई हैं। विशेषकर 'कायाकल्प' 'प्रेमाश्रम' तथा 'रंगभूमि' में यत्र-तत्र नियतिवादी दर्शन की झलक स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है। इसके अतिरिक्त उनके अनेक कहांनियॉ यथा 'मूठ', 'प्रारब्ध', 'पूर्व संसार', 'गुप्तधन', 'बलिदान', 'ज्वालामुखी', 'नागपूजा', 'मंत्र', आदि कहानियॉ सनातन विश्वास की अपूर्व झाँकिया उपस्थित करती हैं। 'ईश्वरी न्याय', 'गरीब की हाय', 'आत्माराम', 'दुर्गा का मन्दिर', आदि कहानियॉ भी उनकी आस्तिकता का प्रमाण देती हैं।

प्रेमचंद एक निराकार सर्वशक्तिमान ईश्वर में आस्था रखते हैं और उसकी शक्ति पर उन्हें पूर्ण विश्वास हैं। 'निर्मला' उपन्यास में अपने इसी विश्वास को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं "जीवन की रंगशाला का वह निर्दय सूत्रधार किसी अगम गुप्त स्थान पर बैठा हुआ अपनी जटिल क्रूर क्रीड़ा दिखाता हैं।"[2] प्रेमचंद के अनुसार "संसार ईश्वर का विराट स्वरूप है जिसने संसार को देख लिया उसने ईश्वर के विराट का दर्शन कर लिया।"[3] संसार का कोई भी कार्य ईश्वर की इच्छा के बिना नहीं हो सकता वही संसार के समस्त प्राणियों का भाग्य विधाता है। रंगभूमि में प्रेमचंद कहते हैं "——— हानि, लाभ, जीवन-मरण, जस-अपजस विधि के हाथ है, हम खाली मैदान में खेलने के लिए बनाए गए हैं।"[4] ईश्वर की इच्छा के समक्ष मनुष्य नगण्य हैं। नियति का विधान ऐसा है कि हम जो चाहते है

---

[1] प्रेमाश्रय-प्रेमचंद पृष्ठ-607।

[2] निर्मला-प्रेमचंद परि0-5, पृष्ठ-27-28।

[3] प्रेमाश्रय-प्रेमचंद पृष्ठ-127 हंस प्रकाशन इला0

[4] रंगभूमि-प्रेमचंद पृ.0-543।

वह नहीं कर पाते और जो नही चाहते प्रायः वही घटित हो जाया करता है। 'प्रेमाश्रम में ज्ञानशंकर को इस सत्य से अवगत कराते हुए राम साहब कहते हैं–"तुम इस भ्रम में पड़े हुए हो कि मनुष्य अपने भाग्य का विधाता है। वह सर्वथा मिथ्या है। हम तकदीर के खिलौनें हैं, विधाता नहीं। वह हमें इच्छानुसार नचाया करती हैं।---- तुम्हें आशाओं की असारता का केवल एक स्वरूप दिखाना चाहता हूं। मैने तकदीर की कितनी ही लीलाएँ देखी हैं और स्वयं उसका सताया हुआ हूँ।"[1] इसी उपन्यास की पात्र विद्या से भी प्रेमचंद कुछ इसी तरह की बात कहलाते हैं– "भाग्य में जितना बदा है, उससे अधिक थोड़े ही मिलेगा।"[2] उनका भौतिकवादी पात्र ज्ञानशंकर भी भाग्य की सत्ता तथा ईश्वरी व्यवस्था में विश्वास करते हुए सोचता हैं–" निस्सन्देह इस सफलता के लिए मुझे स्वाँग भरने पड़े हाथ रंगने पड़े, पाप, छल, कपट, सब कुछ करने पड़े', किन्तु अन्धेरे खोह में उतरे बिना अनमोल रत्न कहाँ मिलते हैं ? लेकिन इसे अपने ही कृत्यों का फल समझना मेरी नितान्त भूल है। ईश्वरीय व्यवस्था न होती, तो मेरी चाल कभी सीधी न पड़ती। उस समय तो ऐसा जान पड़ता था, कि पाँसा पट पड़ा, वार खाली गया, लेकिन सौभाग्य से उन्हीं खाली वारो ने, उन्ही उल्टी चालों ने बाजी जिता दी।"[3] एक अन्य स्थान पर ज्ञानशंकर कहता है– "शुभ कार्य सदैव ईश्वर की ओर से होते हैं। यह भी ईश्वरीय इच्छा हैं।"[4] ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करते हुए 'कर्मभूमि' में अमरकान्त का उद्‌गार देखिए– "------ उसने वहीं ईश्वर के चरणों में सिर झुका दिया और अब उसकी आँखों से जो मोती गिरे, वह निषाद के नहीं, उल्लास और गर्व के थे। उसके हृदय में ईश्वर की ऐसी निष्टा का उदय हुआ, मानों वह कुछ नहीं हैं, जो कुछ हैं, ईश्वर की इच्छा हैं, जो कुछ करता है, वहीं करता हैं, वही करता हैं, वही मंगल–मूल और सिद्धियों का दाता हैं।"[5] 'प्रतिज्ञा' का पात्र कमला प्रसाद भी ईश्वर को संसार का नियन्ता मानते हुए कहता है– "सुमित्रा मुझसे रूष्ट है, तो यह ईश्वर की इच्छा है। तुम्हारी मुझ पर कृपा हैं, तो यह ईश्वर की इच्छा है। क्या हमारा और तुम्हारा संयोग ईश्वर की इच्छा के बिना हो सकता है–कभी नहीं, कभी नहीं। यह लीला वह क्यों खेल रहा है, यह हम

---

[1] प्रेमाश्रय–प्रेमचंद पृष्ठ–419।

[2] प्रेमाश्रय–प्रेमचंद पृष्ठ–155।

[3] प्रेमाश्रय–प्रेमचंद पृष्ठ–610।

[4] प्रेमाश्रय–प्रेमचंद पृष्ठ–638।

[5] कर्मभूमि–प्रेमचंद–पृ0–330।

और तुम नहीं समझ सकते पूर्णा। बड़े–बड़े ऋषि–मुनि भी नहीं समझ सकते, पर हो रहा है सब उसी की इच्छा से।''[1]

धन के पुजारियों ने अपने हित को साधने के लिए धर्म का अवलम्ब ग्रहण करके किस प्रकार भोले–भाले लोगों को लूटा प्रेमचंद ने धर्म की आड़ में होने वाले अत्याचार तथा पाश्विकता के चित्र प्रत्यक्ष देखे थे। इसीलिए वें 'कर्मभूमि' में लिखते हैं–''कि आत्मा को भी धर्म ने बॉध रखा है प्रेम को भी जकड़ रखा है यह धर्म नही धर्म का कलंक हैं।''[2] ऐसे धर्म को प्रेमचंद ढ़कोसला और अन्धविश्वास मानते थे। मानवता की सेवा को ही वे सबसे बड़ा धर्म मानते थे ईश्वर के विषय में उनका विश्वास था कि ''ईश्वर मन की एक भावना हैं। उसके लिए मन्दिरों, मस्जिदों या गिरजाघरों की आवश्यकता नहीं वह घट–घट व्यापी हैं, एक–एक अणु में उसकी ज्योति है। वह प्रजा की कमाई पर चैन करने वाला, राजा नहीं।––––– जो लोग ईश्वर भक्ति की धुन में बड़े–बड़े महल बनवाते हैं कि ईश्वर इसमें रहेगा, असीम को चहार दिवारी में बंद करके व्यापक, ईश्वर का अपमान करते हैं और जो लोग उसकी प्रतिमा बनाकर उसका श्रंगार करते हैं, भोग लगाते हैं, विवाह करते हैं, उसके नाम की माला जपते हैं वह तो ईश्वर को खिलौना बनाकर ऐसा पाप करते हैं जिसका कोई प्रायश्चित नहीं।––––ईश्वर की उपासना का केवल एक मार्ग है और वह है मन, वचन और कर्म की शुद्धता अगर ईश्वर इस शुद्धता की प्राप्ति में सहायक है तो शौक से उसका ध्यान कीजिए।''[3] इस प्रकार प्रेमचंद सर्वव्यापकता में विश्वास रखते हैं। ' प्रेमचंद एक यथार्थवादी कलाकार थे। वे जीवन की सच्चाई आँकना चाहते थे तथा जीवन के भ्रमों का खंडन करना चाहते थे।''[4] ऐसे में वे धर्म तथा ईश्वर के नाम पर फैली हुई भ्रांन्तियों को कैसे सहन कर सकते थे। प्रेमचंद का मानना था कि ''धर्म अमीरों की चीज नहीं गरीबों की भी है धर्म ढोग नहीं सिखाता वह दया, धर्म, सेवा और त्याग का दूसरा नाम हैं।''[5] और यह कि ''दुख और सेवा में ईश्वर का वास है,

---

[1] प्रतिज्ञा–प्रेमचंद–पृ0 102।

[2] कर्मभूमि–प्रेमचंद–पृ0–92।

[3] संकलनकर्ता: अमृतराय, विविध प्रसंग, भाग–3 पृ0–154।

[4] प्रेमचंद और उनका युग–रामविलास शर्मा–पृ0–158।

[5] कर्मभूमि–प्रेमचंद–पृ0–202।

उसे पाकर ही व्यक्ति वास्तविक युक्ति और ईश्वर को प्राप्त कर सकेगा।"[1] अतएव मानव के कल्याण तथा मुक्ति की कामना करने वाले प्रेमचंद कहते हैं–"ईश्वर के नाम पर जो प्रत्येक धर्म में स्वांग हो रहा है, उस स्वांग की जड़ खोदना ईश्वर की सच्ची सेवा हैं।"[2] इसी कारण उन्होंने अपने साहित्य में धर्म तथा ईश्वर के वास्तविक स्वरूप की स्थान–स्थान पर व्याख्या की है और अपने उपन्यासों में प्रायः ईश्वर की सर्वज्ञता तथा सर्वव्यापकता चित्रण किया हैं।

मनुष्य अपने को बड़ा सक्षम और सामर्थ्यवान समझता है और सत्ता तथा धन तथा शक्ति के मद में स्वयं को अपने भाग्य का विधाता मानकर अभिमान करने लगता है। इसी अहम और दर्प के बल पर वह प्रकृति तथा नियति की अवहेलना करता रहता हैं। किन्तु इसकी एक परिसीमा हैं, सीमा के समाप्त होते ही प्रकृति या नियति की चट्टान से टकराकर उसका अभिमान उसका दर्प चकना चूर हो जाता है। और विवश होकर उसे विधि के विधान को स्वीकार करना पड़ता है। 'प्रेमाश्रम' के सबसे सबल तथा सक्षम पात्र ज्ञानशंकर को भी इस सत्य का सामना करना पड़ता हैं उसके विषय में प्रेमचंद लिखते हैं– "आज प्रारब्ध ने उन्हें परास्त कर दिया। अब तक उन्होने सदैव प्रारब्ध पर विजय पायी थी। आज पासा पलट गया और ऐसा पलटा कि अब संभलने की कोई आशा न थी अभी एक क्षण पहले उनका भाग्य–भवन जगमगाते हुए दीपकों से प्रदीप्त हो रहा था, पर वायु के एक प्रचण्ड झोंके ने उन दीपकों को बुझा दिया। अब उसके चारों तरफ गहरा, घना, भयावह अँधेरा था। जहाँ कुछ न सूझता था।"[3] वह ज्ञानशंकर जो घमण्ड में चूर होकर अपने सामने सबको तुच्छ समझता है यहाँ तक कि अपने परिवार को तोड़कर रख देता है अन्त मे वह भी नियति के हॉथों की कठपुतली दिखाई देता है वह भाग्य की सत्ता को स्वीकार करते हुए कहता हैं– "मायाशंकर का कसूर नहीं ,प्रेमशंकर का दोष नहीं, यह सब मेरे प्रारब्ध की कूट–लीला है। मैं समझता था, मैं स्वयं अपना विधाता हूँ। विद्वानों ने भी ऐसा ही कहा हैं, पर आज मालूम हुआ कि मैं इसके हाथों का खिलौना था। उसके इशारों पर नाचने वाली कठपुतली था। जैसे बिल्ली चूहे को खेलाती है, जैसे महुआ मछली को खेलाता है, उसी भॉति इसने मुझे अब तक खेलाया। कभी पंजे में धीरे से पकड़ लेता था, कभी छोड़ देता था, जरा देर के लिये उसके पॅजे से छूटकर

---

[1] कर्मभूमि–प्रेमचंद–पृ0 273।

[2] अमृतराय प्रेमचंद स्मृति गंथ हंस प्र0– पृ0–293।

[3] प्रेमाश्रम–प्रेमचंद–पृ0–638।

में सोचता था, उस पर विजय पायी, पर आज इस खेल का अन्त हो गया, बिल्ली ने गर्दन दबा दी मछुए ने बंसी खीच ली। मनुष्य कितना दीन, कितना परवश है। भावी कितनी प्रबल ! कितनी कठोर।''[1]

प्रारब्ध पर किसी का वश नहीं चलता मानव अपनी परिस्थितियों का दास है। विधि की इच्छा के समक्ष प्रत्येक प्राणी विवश है मनुष्य की इच्छाओं का अन्तिम परिणाम दुख हैं। यह धारणा निराशावाद को जन्म देती है। निराशा के इस घोर अन्धकार से बचने के लिए प्रेमचंद गीता के निष्काम कर्म का आश्रय लेते हैं और अपने पात्रों के माध्यम से कर्म का सन्देश देते हैं क्योंकि मानव जीवन जन्म से मृत्यु तक एक निरन्तर कर्म श्रंखला है कर्म से अलग मानव का कोई अस्तित्व नहीं। मृत्यु ही जीवन का परम् सत्य और चरम लक्ष्य है परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि व्यक्ति अकर्मण्य और निराशावादी बन जाए। प्रेमचंद भाग्यवादी न होकर कर्मवादी थे इसी कारण भाग्य का स्थान जीवन में स्वीकार करते हुए भी वे कर्म पर विशेष बल देते हैं।उनका उपन्यास 'कर्मभूमि' कर्म के गौरव को प्रतिपादित करने वाला हैं–जीने का उद्देश्य कर्म है इस उपन्यास का यही सारतत्व हैं। ''प्रेमचंद ने 'कर्मभूमि' मे कर्म का आदर्श विभिन्न माध्यमों से प्रकट किया हैं– 1–शिक्षा, 2–धर्म और धन, 3–अछूतोद्वार, 4–किसान आन्दोलन। 'कर्मभूमि' में शिक्षा, नैतिकता, धर्म, समाज, और राजनीति को लेकर जो समस्याएँ समाधान के लिए उठाई गई हैं, उनसे मनुष्य के जीवन में कर्म महत्व और सौन्दर्य पर प्रकाश पड़ता है। इस दृष्टि से उपन्यास का एक–एक पात्र धनी अथवा निर्धन, उच्च मध्य अथवा निम्न, सभी कर्म के क्षेत्र में पदार्पण करते हैं कोई आगे कोई पीछे और अन्त मे अपने जीवन को सार्थक कर जाते हैं।''[2] 'कर्मभूमि' के नायक अमरकान्त का मत हैं कि–छोटे–बड़े का निर्णय 'कर्म' के आधार पर किया जाना चाहिए, जाति के आधार पर नहीं। जो सच्चा है, वह चमार होने पर भी आदर का तथा जो झूठा लम्पट है, वह ब्राह्मण होने पर भी तिरस्कार का पात्र होना चाहिए।''[3] 'गीता' के निष्काम कर्म के सिद्धान्त पर प्रेमचंद की पूर्ण आस्था है। कर्म बन्धन नहीं है कर्म से फल की आशा करना बन्धन है इस तथ्य का वह पूर्णरूप से समर्थन करते हुए 'कर्मभूमि' में कहते हैं– ''कोई काम सबाव समझ कर

---

[1] प्रेमाश्रम–प्रेमचंद–पृ0–639।

[2] प्रेमचंद और उनका साहित्य–शीलागुप्त–पृ0–115।

[3] कर्मभूमि–प्रेमचंद पृ0–122

नहीं करना चाहिए। दिल को ऐसा बना लो कि काम में उसे वही मजा आवे, जो गाने या खेलने में आता है। कोई काम इसलिए करना कि उससे नजात मिलेगी रोजगार है।"[1] कर्म की व्याख्या करते हुए –श्रीकृष्ण और भावी जगत" नामक लेख में लिखते है–" यथार्थ में जो कर्म किया जाए, जो निष्काम हो, उससे बन्धन नहीं होता। वही सुख और शान्ति का मूल है।––– कर्म मनुष्य के लिए स्वाभाविक क्रिया है ऑखे है तो देखेगा, पॉव है तो चलेगा, पेट है तो खायेगा। कर्म के पूर्ण विनाश की तो कल्पना भी नहीं हो सकती। समाधि भी तो कर्म है। मौन रहना भी कर्म है। सोचना भी कर्म है, नित्य कर्म या निमित्त कर्म, आप कर्म के फंदे से नहीं निकल सकते। फिर कर्म सदैव बन्धन ही क्यों हो। उससे परमार्थ भी तो किया जा सकता है, सेवा भी तो की जा सकती है। तत्व यह निकला कि स्वार्थभाव से कोई कर्म न किया जाए। यहाँ कर्म का आनन्द तो मिलता है, कर्म से उत्पन्न होने वाला दुःख नहीं मिलता। न कोई भद है न द्वेष है। कर्म में पुरूषार्थ भी तो हैं।[2] 'रंगभूमि' के पात्र सूरदास पर गीता के निष्काम, कर्म योग पूर्वजन्म एक कर्मफल पर विश्वास परिणाम की चिन्ता न करते हुए कर्म के लिए कर्म करना इत्यादि तत्वों का पर्याप्त प्रभाव है। सूरदास कहता हैं–"पर अपना क्या बस है। हम तो खेल खेलते हैं जीत हार भगवान के हाथ है।वह जैसा उचित जानते हैं, करते हैं, बस नीयत ठीक होनी चाहिए।"[3] रगंभूमि के पात्र सोफिया भी कर्म में अटूट आस्था रखते हुए कहती है– "––––––मेरा विश्वास है कि मेरी मुक्ति, अगर मुक्ति हो सकती हैं तो मेरे कर्मो से होगी।"[4] जीवन की सार्थकता संघर्ष में ही हैं ऐसा प्रेमचंद का विश्वास था उन्होंने जीवन के प्रति अपने कर्तव्य को पहॅचाना और कर्मयोगी बनकर संघर्ष करने का संदेश अपने देश वासियों को दिया।

आत्मा की चेतनता पर प्रेमचंद को पूर्ण विश्वास हैं। क्योंकि सचेतन आत्मा में ही विवेक, सत अहिंसा, प्रेम और ज्ञान का सहज ही निवास होता है जो अविवेक, असत् हिंसा, घृणा और अज्ञान से मनुष्य की रक्षा करती है। 'प्रेमाश्रम में आत्मा के विषय में रायसाहब के विषय में कहते हैं– "हमारी आत्मा ब्रह्म का

---

[1] कर्मभूमि, भाग–5, परि0–6, पृ0–354।

[2] श्रीकृष्ण और भावी जगत नामक लेख, विविध प्रसंग, भाग–3, पृ0–141 प्र0सं0 सन्–1962।

[3] रंगभूमि–प्रेमचंद, परि0 44, पृष्ठ–549।

[4] रंगभूमि–प्रेमचंद–पृ0–55

ज्योतिस्वरूप है, उसे मैं देश और काल, इच्छाओं और चिन्ताओं से मुक्त रखना चाहता हूँ।"[1] प्रेमचंद के उपन्यासों में अनेक ऐसे पात्र अभिव्यक्त हुए हैं जिनकी आत्मचेतना ह्रदय की विशालता, विपरीत परिस्थितियों में उन्हें बल और साहस प्रदान करती हैं। प्रेमचंद को आत्मा की चेतना पर पूरा भरोसा है इसी कारण वह कहते हैं कि– "जिस प्रकार अवसर पाकर मनुष्य की पाप चेष्टा जाग्रत हो जाती है उसी प्रकार अवसर पाकर उसकी धर्म चेष्टा भी जाग्रत हो जाती हैं।"[2] प्रेमचंद के मतानुसार "सोई हुई आत्मा को जगाने के लिए हमारी भूलें एक प्रकार की दैनिक मंत्रणाएं है जो हमें सदा के लिए सतर्क कर देती हैं।"[3] यह आत्मा की चेतना का ही परिणाम है कि " विपत्ति में हमारा मन अन्तर्मुखी हो जाता है।"[4] और हम अपने पापकर्म पर पश्चताप करते हुए प्रायश्चित की ओर उन्मुख हो जाते है अतः 'कायाकल्प' में प्रेमचंद लिखते हैं– " आत्मा कुछ न कुछ जरूर कहती है अगर उससे पूछा जाए। कोई माने या न माने, यह उसका अख्तियार हैं। तुम्हारी आत्मा भी अवश्य तुम्हें सलाह दे रही होगी और उसकी सलाह मानना तुम्हारा धर्म है।"[5] इसीलिए 'कर्मभूमि' में अमरकान्त कहता है-" मैं भूखों मर जाऊँगा पर आत्मा का गला नहीं घोटूगॉ।"[6] इस प्रकार भौतिक शरीर को निस्सार बताते हुए प्रेमचंद आत्म के अमरता को स्वीकार करते हैं।

प्रेमचंद पर भारतीय अध्यात्मवाद का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है जिसके परिणाम स्वरूप वह पुर्नजन्मवाद के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। प्रेमचंद का विश्वास हैं कि व्यक्ति इस जीवन में जैसा कर्म करेगा उसे वैसा ही फल प्राप्त होगा और यदि इस जीवन में अपने किये कर्मो का फल नहीं प्राप्त कर लेता तो उसका परिणाम अगले जनम में अवश्य भुगतना पड़ता है। इस प्रकार किसी व्यक्ति की मृत्यु उसके पुर्नजन्म की सूचना मात्र है इसी तथ्य को व्यक्त करते हुए कायाकल्प में राजकुमार इन्द्र विक्रमसिंह के शब्दों में इस प्रकार व्यक्त करते हैं–"हॉ प्रिये, मैं तुम्हारा वही चिरसंगी हूँ,जो अपनी प्रेमाभिलाषाओं को लिये

---

[1] प्रेमाश्रम–प्रेमचंद–पृ0–177।

[2] सेवासदन–प्रेमचंद–पृ0–88।

[3] सेवासदन–प्रेमचंद–पृ0–185।

[4] गबन–प्रेमचंद पृ0–135।

[5] कायाकल्प– प्रेमचंद–परि0–20 पृ0–154।

[6] कर्मभूमि– प्रेमचंद पृ0–42।

हुए कुछ दिनों को तुमसे जुदा हो गया था। मुझे तो ऐसा मालुम हो रहा है कि कोई यात्रा करके लौटा आ रहां हूँ। जिसे हम मृत्यु कहते हैं, और जिसके भय से संसार काँपता, वह केवल एक यात्रा हैं।"[1] 'रंगभूमि' का सूरदास भी पुर्नजन्म के सिद्धान्त में विश्वास प्रदर्शित करते हुए कहता हैं– " भगवान अन्यायी नहीं है, मेरे पूर्वजन्म की कमाई ऐसी थी जैसे कर्म किये हैं वैसे फल भोग रहा हूँ।"[2] जब सुभागी उसके चोरी गए रूपयों का भेद उसे बता देती हैं तो सूरदास कहता हैं– "मेरे रूपए थे ही नहीं शायद उस जन्म में मैने गैरों के रूपए चुराए होंगे।"[3] इस प्रकार पुर्नजन्म तथा कर्मफल के सिद्धान्त पर प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में अनेक स्थानों पर आस्था व्यक्त की हैं 'प्रेमाश्रम' में विद्या अपने पति ज्ञानशंकर से कहती हैं– "----- तुम्हारे कारण मेरी यह दुर्दशा हो रही है और अभी न जाने और क्या–क्या होगा। तुम धूर्त हो, न जाने पूर्वजन्म में ऐसा क्या पाप किया था कि तुम्हारें पल्ले पड़ी।"[4] इसी प्रकार 'सेवासदन' की सुमन अपने पति गजाधर से अपने कर्मो के फल की बात करते हुए कहती हैं–"तुम्हारा कोई अपराध नहीं है, जो कुछ हुआ मेरे कर्मो का फल था।"[5] सेवासदन की ही एक पात्र रामप्यारी कहती हैं– "सुन्दरता हमारे पूर्वजन्म के अच्छे कर्मों का फल है लेकिन अपने पुर्वजन्म की कमाई हम इस जन्म में नष्ट कर देते हैं।"[6] प्रेमचंद के कतिपय पात्र पूरी स्थिति में फस कर अपने कर्म की पूर्वजन्म के पाप को, किस्मत को कोसते हैं।

इस प्रकार प्रेमचंद के उपन्यासों में उनका नियतिवादी दार्शनिक चेतना उनके भिन्न–भिन्न पात्रों के माध्यम से विविध रूपों में दृष्टिगोचर होती हैं। यद्यपि जनसाधारण के दुःखों एवं पीड़ाओं को देखकर प्रेमचंद यह कहने पर विवश हो जाते हैं कि "प्राणियों के जन्म–मरण सुख–दुख, पाप–पुण्य मे कोई ईश्वरी विधान नहीं हैं।"[7] और यह कि "इस जगत का नियन्ता कोई नहीं हैं।" यदि " कोई

---

[1] कायाकल्प– प्रेमचंद–पृ0–100

[2] रंगभूमि– प्रेमचंद–परि0–1 पृ0–14।

[3] रंगभूमि– प्रेमचंद–पृ0–219।

[4] प्रेमाश्रम– प्रेमचंद पृ0–474।

[5] सेवासदन– प्रेमचंद–पृ0–202।

[6] सेवासदन– प्रेमचंद–पृ0–257।

[7] गोदाम– प्रेमचंद–पृ0–308।

दयामय भगवान सृष्टि का कर्ता होता तो यह अत्याचार न होता अच्छे सर्व शक्तिमान हों---- अगर तुम्हें इस व्यापार की खबर नहीं है तो फिर सर्वव्यापी क्यों कहलाते हो ?।"[1] प्रेमचंद की नास्तिकता को दर्शाने वाले इन वाक्यों का यदि ध्यान पूर्वक अध्ययन किया जाए तो यह तथ्य स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आ जाएगा कि जब उस सर्वशक्तिमान को वह निर्मम एवं निष्ठुर कहकर पुकारते हैं तो किसी न किसी रूप में उसकी सत्ता को स्वीकारने का भाव निहित होता हैं। इसका सबसे बड़ा कारण है कि आस्तिकता की वह भावना जन्म से उन्हें संस्कार के रूप में मिली थी जिससे वह अन्त तक चाह कर भी स्वयं को मुक्त नहीं करा पाए। 25 जुलाई, 1936 को जब उन्होंने अन्तिम रूप से खाट पकड़ी तब से लेकर मृत्यु पर्यन्त ईश्वर को अनेक बार याद किया। [2] युग-युग से संचित इन्ही संस्कारों के परिणाम स्वरूप ही उनके उपन्यासों में पतितम् पात्रों को भी ईश्वर का स्मरण हो आता है और वह भी नियति की सत्ता में अपनी आस्था व्यक्त करते हैं।

---

[1] कर्मभूमि- प्रेमचंद-पृ0-283।

[2] शिवरानी देवी 'प्रेमचन्द घर में' पृ0-255-265।

अध्याय— 7

प्रेमचंद के उपन्यासों में शिल्पगत चेतना—

सत्तम् अध्याय

प्रेमचंद के उपन्यासों में शिल्पगत चेतना–

सत्तम् अध्याय

प्रेमचंद के उपन्यासों में शिल्पगत चेतना–

1. औपन्यासिक कला के प्रति प्रेमचंद का दृष्टिकोण–
2. प्रेमचंद के उपन्यासों में शिल्पगत चेतना का स्वरूप–
3. प्रेमचंद के कथा शिल्प का वैशिष्ट्य–

क– कथानक

ख– पात्र और चरित्र चित्रण

ग– कथोपकथन

1. औपन्यासिक कला के प्रति प्रेमचंद का दृष्टिकोण–

हिन्दी उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचंद का प्रादुर्भाव एक क्रान्तिकारी परिवर्तन का द्योतक है। एक युग प्रवर्तक साहित्यकार होने के नाते उन्होंने उपन्यास के उद्देश्य पक्ष व कलेवर में परिर्तन करते हुए उसे एक नया रुप प्रदान किया। उन्होंने हिन्दी उपन्यास को जादुई तथा चमत्कारी कल्पना लोक के कारावास से मुक्ति दिलाकर यथार्थ में सुद्दढ़ धरातल पर उसकी स्थापना की। हिन्दी उपन्यास को उसका वास्तविक स्वरुप दिलाने के लिए उन्होंने उपन्यास के विषय तथा लक्ष्य के क्षेत्र में अभूतपूर्व परिवर्तन का सूत्रपात किया। हिन्दी उपन्यास की शिल्प विधि के विकास में उनके योगदान को जानने तथा उनकें उपन्यासों में शिल्पगत चेतना के स्वरुप को समझने के लिए औपन्यासिक कला के प्रति प्रेमचंद के दृष्टिकोण पर दृष्टिपात करना आवश्यक प्रतीत होता है।

उपन्यास को परिभाषित करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं– "मैं उपन्यास को मानव–चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव–चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल–तत्व हैं------ चरित्र सम्बन्धी समानता और विभिन्नता, अभिन्नत्व में भिन्नत्व और विभिन्नत्व में अभिन्नत्व दिखाना उपन्यास का मुख्य कर्तव्य हैं।----- अब यहॉ प्रश्न होता है कि उपन्यासकार को इन चरित्रों का अध्ययन कर ज्ञान. को पाठक के सामने रख देना चाहिए उसमें अपनी तरफ से काट–छॉट कमीवेशी कुछ न करनी चाहिए या किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए चरित्रों में कुछ परिवर्तन भी कर देना चाहिए। यहीं से उपन्यासकार के दो गिरोह हो गए हैं।"[1] उपन्यास विद्या का जन्म मानव जीवन के यथार्थ चित्रण के लिए हुआ है परन्तु इस पृथ्वी पर मानव जीवन संसार के किसी भी अन्य प्राणी की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक परिवर्तनीय तथा गतिशील है। इसी गतिशील तथा परिवर्तन शील प्रवृत्ति के कारण उसकी कोई निश्चित व्याख्या करना उपन्यास साहित्य के लिए नितान्त कठिन है इसीलिए न तो वह पूर्णतः यथार्थवादी हो सकता है और नही पूर्णरुप से आदर्शवादी। आदर्श और यथार्थ की इस समस्या पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने के पश्चात् प्रेमचंद इस निष्कर्ष तक पहूँचते है कि वही उपन्यास उच्चकोटि के समझे जाते हैं जिनमें

---

[1] कुछ विचार– प्रेमचंद पृष्ठ–41

यथार्थ और आदर्श का समन्वय हो गया हो।[1] उपन्यास में आदर्श और यथार्थ के इस संगम को प्रेमचंद 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' कहकर पुकारते हैं। उनके अनुसार आदर्श को सजीव बनाने के लिए ही यथार्थ का उपयोग होना चाहिए।[2]

उपन्यास रुपी भवन के निर्माण के लिए प्रेमचंद जिन सामग्रियों को आवश्यक मानते हैं वे हैं अवलोकन अनुभव, स्वाध्याय, अन्तर्दृष्टि, जिज्ञासा तथा विचार आकलन। एक सफल, उपन्यासकार में अनुभव की तीव्रता का होना अत्यावश्यक है प्रेमचंद के अनुसार "उपन्यास की सफलता के लिए अनुभव सर्वप्रधान मंत्र हैं।"[3] और इस मंत्र की प्राप्ति के लिए प्रेमचंद का परामर्श हैं कि "उपन्यास लेखक को यथा–साध्य नए–नए दृश्यों को देखने और नए–नए अनुभव को प्राप्त करने का कोई अवसर हाथ से न जाने देना चाहिए।"[4] अनुभव के साथ–साथ अनुभूति की तीब्रता पर बल देते हुए प्रेमचंद कहते हैं– "लेखक अपने को कल्पना के द्वारा जितनी ही भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में रख सकता है, उतना ही सफल मनोरथ होता हैं"[5] इस तथ्य को गोस्वामी तुलसीदास का उदाहरण देते हुए इस प्रकार स्पष्ट करते हैं– "तुलसीदास ने पुत्रशोक कितनी सफलता से दिखाया है। विदित है कि उन्हें इस शोक का प्रत्यक्ष अनुभव न था। अपने को शोकातुर वियोगी पिता के स्थान में रखकर उन्होंने इस भावों का अनुभव किया होगा।"[6] प्रेमचंद के मतानुसार उपन्यासकार का प्रधान गुण उसकी सृजन शक्ति है।[7] उपन्यासकार की सृजन शक्ति को प्रेमचंद कल्पना शक्ति का नाम भी देते हैं। लेखक की कल्पना शक्ति के विषय में वे कहते हैं– " अगर उसमें (उपन्यासकार में) यह शक्ति मौजूद है, तो वह ऐसे कितने ही दृश्यों, दशाओं और मनोभावों का चित्रण कर सकता हैं, जितना उसे प्रत्यक्ष अनुभव नहीं हैं। अगर उस शक्ति की कमी हैं, (तो) उसकी रचना में सरसता नहीं आ सकती। ऐसे कितने ही लेखक हैं, जिनमें मानव–चरित्र के रहस्यों का बहुत मनोरंजक सूक्ष्म

---

[1] कुछ विचार– प्रेमचंद पृष्ठ–44।

[2] कुछ विचार– प्रेमचंद पृष्ठ–44।

[3] उपन्यास रचना माधुरी 23 अक्टूबर सन् 1922।

[4] उपन्यास रचना माधुरी 23 अक्टूबर सन् 1922।

[5] उपन्यास रचना माधुरी 23 अक्टूबर सन् 1922।

[6] उपन्यास रचना माधुरी 23 अक्टूबर सन् 1922।

[7] कुछ विचार– प्रेमचंद पृष्ठ–54।

और प्रभाव डालने–वाली शैली में बयान करने की शक्ति मौजूद हैं, लेकिन कल्पना की कमी के कारण वे अपने चरित्रों में जीवन का संचार नही कर सकते।" [1]

उपन्यास रचना में स्वाध्याय कितना सहायक सिद्ध हो सकता हैं इस तथ्य को प्रेमचंद भली–भांति जानते थे परन्तु स्वाध्याय का तात्पर्य यह कदापि नहीं हैं कि "किसी कुशल लेखक के भाव और विचार उड़ा लिए जाये। बल्कि अपने भाव और विचारों की अन्य लेखकों से तुलना की जाय और उससे अच्छी रचना करने के लिए अपने को प्रोत्साहित किया जाए।" [2] स्वाध्याय की उपयोगिता को स्पष्ट करते हुए आगे लिखते हैं– "लेखक को और विशेषकर उपन्यास लेखक को विविध साहित्य का भली–भाँति अध्ययन किये बिना कलम न उठाना चाहिए–––––, यह बात नहीं हैं कि बिना पढ़े कोई उपन्यास नहीं लिख सकता जिन्हें ईश्वर ने प्रतिभा दी है उनके लिए बहुत पढ़ना अनिवार्य नहीं हैं–जिस प्रकार बिना व्याकरण पढ़े हुए चाहे हम शुद्ध लिखें, पर अशुद्धियों से बचने के लिए हमारे पास कोई साधन नहीं रहता, उसी प्रकार तुलना और स्वाध्याय से हमें त्रुटियों का बोध होता हैं। हमारी बुद्धि विकसित होती है और उन साधनों की झलक मिल जाती है जिनके द्वारा किसी बड़े लेखक ने सफलता प्राप्त की।" [3]

प्रेमचंद का मानना है कि उपन्यासकार को जिज्ञासु प्रवृत्ति का होना चाहिए इससे उसके ज्ञान में वृद्धि होती है। उनके अनुसार "लेखक को जिज्ञासा की उतनी ही जरूरत है। जितनी की किसी विद्यार्थी को––– कोई आदमी चाहे वह कितना ही प्रतिभाशाली क्यों न हो सब विद्याओं का ज्ञाता नहीं हो सकता। उसे अगर किसी से कुछ पूछना पड़े तो संकोच क्यों करें ?"[4] कुछ लेखक वृन्द किसी से कुछ पूछना अपना अपमान समझते हैं। इन छोटी–छोटी बातों पर ध्यान न देकर "लेखक को सदैव अपना आदर्श ऊँचा रखना चाहिए। उसके मन में यह धारणा होनी चाहिए कि या तो कुछ लिखूँगा ही नहीं या लिखूँगा तो कोई अच्छी चीज, जिससे बढ़कर इस विषय में फिर जल्द कोई न लिख सके।"[5]

---

[1] कुछ विचार– प्रेमचंद पृष्ठ–55।

[2] उपन्यास रचना माधुरी 23 अक्टूबर सन् 1922।

[3] उपन्यास रचना माधुरी 23 अक्टूबर सन् 1922।

[4] उपन्यास रचना माधुरी 23 अक्टूबर सन् 1922।

[5] उपन्यास रचना माधुरी 23 अक्टूबर सन् 1922।

कथानक को प्रेमचंद उपन्यास का अपरिहार्य अंग मानते हुए उसके विषय में लिखते हैं– "साधारणतः प्लॉट वह कथा है जो उपन्यास पढ़ने के बाद पाठक के हृदय पट पर अंकित हो जाती है। पुराने ढंग की कथाओं में बस प्लॉट ही प्लॉट होता था। उसमें रंग व रोगन की मात्रा न रहती थी। इसलिए वह चित्र इतना भड़कीला न होता था। आजकल पॉच सौ पृष्ठों के उपन्यास की कथा दस पॉच पंक्तियों में ही समाप्त हो जाती है। लेकिन इन्हीं दस, पॉच पंक्तियों के सोचने में उपन्यासकार को जितना मनन और चितंन करना पड़ता है। उतना सारा उपन्यास लिखने में भी नहीं करना पड़ता।---- पर प्लॉट का जल्द या देर में कल्पित कर लेना लेखक की बुद्धि सामर्थ्य पर निर्भर हैं।"[1] उपन्यास की सफलता में उसकी प्रभावोत्पादकता महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। उपन्यास को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए प्लॉट की सरलता आवश्यक हैं– "सरल प्लॉट में बहुत से चरित्रों की कल्पना नहीं करनी पड़ती, इसलिए लेखक का अल्पसंख्यक चरित्रों के भाव, विचार, गुण, दोष आचार व्यवहार को सक्षम रुप से दिखाने का अवसर मिल जाता है। इससे उसके चरित्रों में सजीवता आ जाती है और वह पाठक के हृदय पर अपना अच्छा या बुरा असर छोड़ जाते हैं। पाठको की संतुष्टि तथा उपन्यास में उनकी रुचि बनाए रखने के लिए प्लॉट में मौलिकता का होना जरूरी है–पाठक कहानियों में नए भावों का नए विचारों का नए चरित्रों का दिग्दर्शन चाहते हैं प्लॉट में कुछ न कुछ ताजगी कुछ न कुछ अनोखापन अवश्य होना चाहिए।"[2]

उपन्यास के विषय विस्तार के सम्बन्ध में प्रेमचंद कहते है "उपन्यास का विषय विस्तार मानव–चरित्र से किसी कदर कम नहीं उसका सम्बन्ध अपने चरित्रों के कर्म और विचार उनका देवत्व और पशुत्व, उनके उत्कर्ष और अपकर्ष से है। मनोभावों के विभिन्न रूप और भिन्न–भिन्न दशाओं में उनका मुख्य विकास उपन्यास के मुख्य विषय हैं।"[3] अतः उपन्यास के विषय का चयन करने में उपन्यासकार पूरी तरह स्वच्छन्द है। "अगर आपको इतिहास से प्रेम है, तो आप अपने उपन्यास में गहरे से गहरे ऐतिहासिक तत्वों का निरूपण कर सकते हैं। अगर आपको दर्शन से रुचि है, तो आप उपन्यास में महान् दार्शनिक तत्वों का

---

[1] उपन्यास रचना माधुरी 23 अक्टूबर सन् 1922।

[2] उपन्यास रचना माधुरी 23 अक्टूबर सन् 1922।

[3] प्रेमचंद–कुछ विचार– पृष्ठ–54।

विवेचन कर सकते हैं, अगर आप में कवित्व शक्ति है, तो उपन्यास में उसके लिए भी काफी गुंजाइश है। समाज, नीतिविज्ञान, पुरातत्व, आदि सभी विषयों के लिए उपन्यास में स्थान है।"[1] किन्तु लेखक के लिए इस स्वतन्त्रता में भी कैद छिपी है। अतः प्रेमचंद लिखते है "उपन्यास का विषय विस्तार ही उपन्यासकार को बेड़ियों में जकड़ देता हैं।"[2] क्योंकि स्वच्छन्दता में पथ भ्रष्ट हो जाने की आंशका बढ़ जाती है और यह भय बना रहता है कि उपन्यासकार मार्ग के आकर्षण तथा प्रलोभनों में अपने लक्ष्य को विस्मृत न कर बैठे और अपने ऊँचे पद से गिरकर किसी सामाजिक, राजनीतिक या धार्मिक मत का प्रचारक मात्र बनकर न रह जाए। यह सत्य है कि 'कला अर्थे कला' का सिद्धान्त साहित्य का सबसे ऊँचा आदर्श है और वही साहित्य दीर्घायु हो सकता है जो मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियों का निदर्शन करें। प्रेमचंद इस बात को मानते हैं परन्तु वह यह भी जानते हैं कि "आज कल परिस्थितियॉ इतनी तीव्रगति से बदल रही हैं, इतने नए–नए विचार पैदा हो रहे हैं कि शायद अब कोई लेखक साहित्य के आदर्श को ध्यान में रख ही नहीं सकता। यह बहुत मुश्किल है कि लेखक पर इन परिस्थितियों का असर न पड़े।"[3] साथ ही साथ उनका यह भी कहना है– " जब हम देखते हैं कि हम भाँति–भाँति के राजनीतिक बन्धनों में जकड़े हुए हैं, जिधर निगाह उठती है दुःख और दरिद्रता के भीषण व दृश्य दिखाई देते हैं, विपत्ति का करूण क्रन्दन सुनाई देता है, तो कैसे संभव है कि किसी विचारशील प्राणी का ह्रदय न दहल उठे।"[4] ऐसी स्थिति में प्रेमचंद सांमजस्य का रास्ता अपनाते हुए परामर्श देते हैं "क्यों न कुशल साहित्यकार कोई विचार प्रधान रचना भी इतनी सुन्दरता से करे जिसमें मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियों का संघर्ष निभता रहे ? –––––––(इसके लिए) उपन्यासकार को इसका प्रयत्न अवश्य करना चाहिए कि उसके विचार परोक्ष–रुप से व्यक्त हों। उपन्यास की स्वाभाविकता में उस विचार के समावेश से कोई विध्न न पड़ने पाये, अन्यथा उपन्यास नीरस हो जायगा।"[5]

प्रेमचंद केवल मनोरंजकता को उपन्यास की सफलता नहीं समझते वरन् उससे यह आशा करते हैं कि वह 'मानव–चरित्र पर प्रकाश डाले और उसके

---

[1] कुछ विचार–प्रेमचंद पृष्ठ–54।

[2] कुछ विचार–प्रेमचंद पृष्ठ–54।

[3] कुछ विचार–प्रेमचंद पृष्ठ–45।

[4] कुछ विचार–प्रेमचंद पृष्ठ–46।

[5] कुछ विचार–प्रेमचंद पृष्ठ–46।

रहस्यों को खोलता हुआ मानव जीवन को मंगलमय बनाने में योग दे।"[1] चरित्र चित्रण के विषय में प्रेमचंद का मत है– " साहित्य सत् हो, इस मनोरथ सिद्धको करने के लिए जरूरत है कि उसके चरित्र (पाजिटिव) हों, जो प्रलोभनों के आगे सिर न झुकायें, बल्कि उनको परास्त करें, जो वासनाओं के पंजे में न फॅसे, बल्कि उनका दमन करें, जो किसी विजयी सेनापति की भॉति शत्रुओं का संहार करके विजय–नाद करते हुए निकलें।"[2] परन्तु इसके साथ ही वह यह भी कहते हैं–"चरित्र को उत्कृष्ट और आदर्श बनाने के लिए यह जरुरी नही कि वह निर्दोष हो–महान् से महान् पुरुषों में भी कुछ–न–कुछ कमजोरियॉ होती हैं। चरित्र को सजीव बनाने के लिए उसकी कमजोरियों का दिग्दर्शन कराने से कोई हानि नही होती बल्कि यही कमजोरियॉ उस चरित्र को मनुष्य बना देती हैं।"[3] साहत्यि के उपयोगितावादी पक्ष का समर्थन करते हुए प्रेमचंद कहते हैं "जिस उपन्यास को समाप्त करने के बाद पाठक अपने अन्दर उत्कर्ष का अनुभव करे, उसके सद्भाव जाग उठे, वही सफल उपन्यास हैं।"[4]

औपन्यासिक कला के प्रति प्रेमचंद की उपरोक्त धारणाऍ उनकी अपनी कृतियों में प्रतिफलित होती दिखाई देती हैं। प्रेमचंद के इन विचारों को जानने के पश्चात निश्चितरुप से कहा जा सकता है कि प्रेमचंद के लिए उपन्यास केवल साहित्यक विद्या ही नहीं उद्देश्य भी है अतएव उन्होंने उद्देश्य निष्ठ औपन्यासिक शिल्प का संगठन करते हुए हिन्दी उपन्यास को एक नया आयाम दिया। आधुनिक हिन्दी उपन्यास में जो नवीन प्रवृत्तियॉ दिखाई देती हैं उनका बीच प्रेमचंद ने ही रोपा था। उन्होंने अपने भगीरथ प्रयत्नों के द्वारा हिन्दी उपन्यासों को उनके भावी विकास के लिए विविध धाराओं से युक्त एक ऐसी दिशा प्रदान की जिसने उपन्यास साहित्य रुपी पौधे के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। प्रस्तुतः उपन्यास साहित्य का ये पूर्ण विकसित और परिष्कृत स्वरुप प्रेमचंद के अथक प्रयासों का ही प्रतिफल हैं।

---

[1] कुछ विचार–प्रेमचंद पृष्ठ–38।

[2] कुछ विचार–प्रेमचंद पृष्ठ–45।

[3] कुछ विचार–प्रेमचंद पृष्ठ–44।

[4] कुछ विचार–प्रेमचंद पृष्ठ–71।

2. प्रेमचंद के उपन्यासों में शिल्पगत चेतना का स्वरूप—

उपन्यास आधुनिक युग में साहित्य की सबसे लोकप्रिय तथा सशक्त विद्या हैं क्योंकि इसमें मनोरंजन के साथ जीवन को उसकी बहुआयामी छवि के साथ अभिव्यक्त करने का पूर्ण अवसर होता हैं। इसका कारण यह है कि उपन्यास का स्वरुप इतना विस्तृत है कि उसमें अपने अन्दर सब कुछ समेट लेने की क्षमता होती है। उपन्यास एक ऐसी कला है जिसका एक शिल्प विधान होता है। उपन्यासकार अपनी भावानुभूतियों की तूलिका को शिल्प के इन्हीं रंगो में डुबाकर जीवन के विविध पक्षीय चित्र को उपन्यास के कैनवस पर उकेरता हैं। उपन्यास जीवन का चित्र है,यह सब से पहले हमें अनुभव करना है, तब अपनी रुचि का प्रयोग करना हैं हमें निर्णय करना है कि वस्तुतः जीवन की भॉति यह सत्य विविध तथा विश्वसनीय हैं।[1] शिल्प उपन्यास का अनिवार्य अंग है जिस प्रकार राग–रागनियों के आबद्ध स्वरों की सत्ता स्वतन्त्र होती है तथा उसके अंग भी होते हैं। इसी प्रकार उपन्यास में प्रस्तुत प्रत्येक दृश्य उपन्यास शिल्प का महत्वपूर्ण अंग हैं।

हिन्दी कथा साहित्य मे युगान्तर उपस्थित करने वाले अमर कथाकार प्रेमचंद हिन्दी साहित्य के वह पहले उपन्यासकार हैं जिन्होंने कथा साहित्य के क्षेत्र में सर्वप्रथम नवीन मौलिक व्यवस्थित रुप में शिल्प प्रयोग कार्य को आरम्भ किया। इससे पहले–" प्रेमचंद पूर्ववर्ती उपन्यास साहित्य अद्‌भुत काल्पनिक और भाव प्रधान था।––––– उसकी कोई निर्धारित शिल्प विधि या रुप ऐसा निश्चित नहीं हुई थी, केवल प्रयोग हो रहे थे। ऐसा पहला प्रयोग 'परीक्षा गुरू' के रूप में हमारे सामने आया।––––– इसके पाश्चात् देवकीनन्दन खत्री आए, गोपालराम गहमरी आए और हमें ऐयारी, तिलस्मी, तथा जासूसी उपन्यास देखने को मिले किन्तु ये सब वैचित्यपूर्ण, सनसनी पूर्ण, कौतूहल वर्धक घटनाओं की योजना ही जुटाते रहे, कोई शिल्पगत प्रश्न हल नहीं कर पाए।"[2]

प्रेमचंद हिन्दी साहित्य के एक ऐसे उच्च कोटि के उपन्यासकार हैं जिनसे हिन्दी उपन्यासों में शिल्प के उतरोत्तर विकास का एक नया युग आरम्भ होता है "हिन्दी साहित्य में उपन्यास का वास्तविक स्वरूप पहले पहल प्रेमचंद के उपन्यासों में ही। दिखाई पड़ता है या हिन्दी उपन्यासों का वास्तविक विकास

---

[1] **The Craft of fiction Percy lubbock 1930 P. 9**
[2] हिन्दी–उर्दू उपन्यास शिल्प बदलते परिप्रेक्ष्य–डॉ0 प्रेम भटनागर। पृ0 76

प्रेमचंद से ही मानना चाहिए--- उपन्यास की वास्तविक शक्ति और स्वरूप को सही रूप में पहले-पहल प्रेमचंद ने ही पहचाना।"[1] हिन्दी साहित्य में प्रेमचंद ही वह प्रथम उपन्यासकार हैं जिन्होंने यूरोप के प्रौढ़ उपन्यास साहित्य से हमारा सम्बन्ध जोड़ा। पूर्व प्रेमचंद युग का कथा साहित्य मुख्यतः चमत्कारिता एवं कल्पनाशीलता की भूल-भुलैयों में भटक रहा था। जीवन की सच्चाइयों से उसने मुँह मोड़ रखा था, ऐसे में प्रेमचंद का आविर्भाव हिन्दी कथा साहित्य की एक अभूतपूर्व घटना है। उन्होंने साहित्य को यथार्थ जीवन से सम्बद्ध करके उसे एक नया जीवन दिया।

साहित्य के प्रति सर्वथा नवीन एवं मौलिक विचारों को लेकर आने के कारण उपन्यासों के शिल्पगत स्वरूप में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने का गौरव प्रेमचंद को प्राप्त है। उनकी रचनाओं में इन विचारगत एवं शैलीगत परिवर्तनों को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। राजेश्वर गुरू के कथनानुसार-" प्रेमचंद ने जहाँ हिन्दी उपन्यास को नये-नये विषयों की ओर मोड़ा, वहाँ उन्होंने अपने विभिन्न उपन्यासों की शिल्प-विधि में कुछ न कुछ नवीनता रखी हैं। 'वरदान' से लेकर 'मंगलसूत्र' तक प्रेमचंद अपने उपन्यासों की रचना में निरन्तर प्रगतिशील रहें हैं। उनका प्रत्येक नया उपन्यास अपने पिछले उपन्यास से स्वरूप में भी थोड़ा-बहुत भिन्न है। इसका प्रधान कारण यही है कि प्रेमचंद जहाँ अपने विषय के क्षेत्र में विस्तार करते रहे हैं, वहाँ वे इस विस्तार को उपन्यास की कथावस्तु के रूप में संगठित करते समय उपन्यास के शिल्प-विधान को भी आवश्यकतानुसार परिवर्तित, करते चले हैं।"[2] 'सेवासदन' से 'मंगलसूत्र' तक प्रेमचंद ने शिल्पगत विविध प्रयोग किए हैं। उन्होंने उपन्यासों के नूतन विषय सजीव पात्र स्वभाविक चरित्र-चित्रण, नवीन भाषा शैली, वर्णन की सजीवता, अन्तद्वन्द्व व भाव व्यंजना के मौलिक प्रयोगों द्वारा हिन्दी उपन्यास साहित्य में एक नए युग का सूत्रपात किया।

प्रेमचंद के औपन्यासिक शिल्प पर गम्भीरतापूर्वक विचार करते हुए नलिन विलोचन शर्मा 1954 में 'साहित्य' में अपने एक सम्पादकीय लेख में लिखते हैं- "मेरी दृष्टि में प्रेमचंद की जो देन है वह, साहित्यिक है समाजशास्त्री, या राजनीतिक नहीं। उनकी यह महत्वपूर्ण देन उपन्यास के स्थापत्य से सम्बद्ध है। प्रेमचंद ने उनीसवी शताब्दी के पिछले खेमें के अॅग्रेजी उपन्यासकारों के द्वारा

---

[1] हिन्दी उपन्यास -एक अन्तर्यात्रा-रामदरश मिश्र-पृष्ठ-19-20।

[2] प्रेमचंद एक अध्ययन-राजेश्वर गुरू पृष्ठ-261।

विकसित उपन्यास स्थापत्य को उतना अधिकृत किया जितना उनके समकालीन हिन्दी के दूसरे उपन्यासकार नहीं कर पाए थे।"[1] प्रेमचंद के मन–मस्तिष्क में उपन्यास के एक नए स्वरूप की कल्पना थी जो वस्तुतः योरोपिय उपन्यासों की प्रेरणा का प्रतिफल थी। वास्तव मे हिन्दी मे योरोपीय उपन्यास की यथार्थवादी संरचना को प्रतिष्ठित करने का गौरव प्रेमचंद को प्राप्त है। जिसका सर्वप्रथम प्रयोग 'सेवासदन' में किया हैं। 'सेवासदन' में प्रेमचंद ने सामाजिक समस्याओं को सूक्ष्म–निवेषणी दृष्टि से पहचान कर उन्हें अत्यन्त यथार्थवादी ढंग से चित्रित किया है तथा उनका आदर्शवादी समाधान भी प्रस्तुत किया है। 'सेवासदन' अपने विषय की प्रवर्तक कृतियों में से है इस दृष्टिसे इसका महत्व और भी बढ़ जाता है। प्रेमचंद ने इसकी कथावस्तु निर्माण 'अनमेल विवाह' की समस्या 'वेश्या समस्या', दहेज की समस्या', समाजिक रूढ़िवादिता तथा स्त्री शिक्षा की समस्या को दृष्टिगत रखते हुए किया हैं। समाज की जर्जर व्यवस्था में जिस मौलिक परिवर्तन की बात प्रेमचंद ने इस उपन्यास में उठाई है वह सर्वथा नवीन हैं। इस प्रकार उन्होंने योरोपीय उपन्यास की संरचना को हिन्दी में केवल प्रतिष्ठापित नहीं किया अपितु अपने परवर्ती उपन्यासों में उसका उत्तरोत्तर विकास भी किया जिसे हम 'प्रेमाश्रम' 'रंगभूमि' 'कर्मभूमि' 'गोदान' आदि में स्पष्ट रूप से देख सकते हैं।

प्रेमचंद से पूर्व कथानक को उपन्यास की संरचना का अपरिहार्य अंग माना जाता था। हिन्दी उपन्यासों में कथानक का सुगठित होना उपन्यासों की श्रेष्ठता का द्योतक था। 'सेवासदन' में प्रेमचंद के सामने यही आदर्श था परन्तु शीघ्र ही वे इस तथ्य से अवगत हो जाते हैं कि श्रेष्ठ उपन्यास की एक मात्र कसौटी सुगठित कथानक हो ऐसा अनिवार्य नहीं हैं। मनोरंजन प्रधान उपन्यासों के लिए सुसंगठित कथानक अनिवार्य हो सकता है परन्तु जीवन की विविधता व्यापकता एवं उसके सत्य को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाले उपन्यासों की संरचना के लिए सुसंगठित कथानक हो ऐंसा आवश्यक नहीं हैं। 'सेवासदन' के पश्चात् से ही कथानक को शिथिल करने का प्रयोग प्रेमचंद आरम्भ कर देते हैं जो क्रमशः 'प्रेमाश्रम' से शुरू होकर 'रंगभूमि' 'कायाकल्प' 'कर्मभूमि' और 'गोदान' में स्पष्ट रूप से परलक्षित होता है। विशेष रूप से– "गोदान में तो ग्राम और नगर कथाएँ एक दूसरे में प्रायः असम्बद्ध ही नहीं, समानान्तर रूप से अग्रसर होती है और प्रेमचंद उन्हें जोड़ने का प्रयास नहीं करते।––––– वस्तुतः शिल्प विषय का अनुवर्ती होता है और उसकी सार्थकता विजन के अनुरूप होने में हैं। प्रेमचंद ने इस रचना–व्याकरण को समझा था और इस दिशा में प्रयोग किए थे। इसीलिए

[1] 'साहित्य'–1954 नलिन विलोचन शर्मा

गोदान मे कथानक ही पूर्णता और गठन के लिए न तो विषय या पात्रों को विकृत किया गया है, न ही उपन्यास की संरचना की उपेक्षा की गयी हैं।"[1]

प्रेमचंद के कथानक किसी भी तरह के उलझाव से मुक्त हैं। प्रेमचंद से पूर्व के साहित्यकारों में उपन्यासों में उत्सुक्ता वृद्धि करने के उद्देश्य से कथानक को अनावश्यक रूप से उलझाने की प्रवृत्ति विद्यमान थी। देवकी नन्दन खत्री, रतननाथ सरशार तथा गोपाल राम गहमरी आदि उपन्यासकार इसके उदाहरण हैं केवल मनोरंजन के उद्देश्य से उपन्यास की रचना करने वाले इन कथाकारों का मानना था कि कथानक जितना उलझा हुआ और जटिल होगा उतना ही वे कौतूहल वृद्धि करने मे सफल होंगे। कार्य कारण श्रंखला की उन्हें कोई परवाह न थी। कथानक को इस दोष से मुक्ति दिलाने का श्रेय प्रेमचंद को ही जाता है। प्रेमचंद ने अपने लगभग सभी उपन्यासों की रचना, यथार्थ के ठोस धरातल पर की है उनके कथानक उलझाव रहित हैं।

प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों की सृष्टि में पदार्थ रूप में घटनाओं का प्रयोग कम से कम किया हैं। उन्होंने घटनाओं के स्थान पर सामान्य कार्य व्यापारों और मनोवैज्ञानिक स्थितियों को आधार बनाकर अपने कथानकों की रचना की जो हिन्दी उपन्यास जगत में उपस्थित होने वाले एक क्रान्तिकारी परिवर्तन का द्योतक है।–"इसके पहले के उपन्यासों में, बलवत भूमिहार जैसे कुछेक अपवादों को छोड़कर, या तो घटनाओं की बहुलता होती थी या प्रकृति, नारी सौन्दर्य, विरह, धार्मिक, नैतिक उपदेश आदि से सम्बन्धित वर्णनों की। 'सेवासदन' से ऐसे उपन्यासों की परम्परा का आरम्भ होता है जिनमें घटनाओं का स्थान कार्यव्यापार ले लेते हैं। इसके पूर्व बलवन्त भूमिहार, रामलाल, विमाता आदि कुछ गिने चुने ही उपन्यास हैं, जिनमें घटनाओं के स्थान पर कार्य व्यापारों को रोचक और कौतूहलप्रद बनाने के लिए मनोविज्ञान की सहायता लेना आवश्यक समझा गया हैं। जब तक सामान्य प्रतीत होने वाले कार्यव्यापारों को उनके प्रेरक भावों से सम्बद्ध नहीं किया जाता, उनमें रोचकता पैदा नहीं होती। भावनाओं से जुड़ जाने पर कार्यव्यापारों के मूल में निहित भावनाएँ ही पाठक को जिज्ञासा का विषय बन जाती हैं। 'सेवासदन' में भावनाओं से परिचालित कार्यव्यापार ही उसके स्थापत्य की सामग्री हैं। 'घटनाएँ' 'सेवासदन' में बिलकुल नहीं हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता, पर अपने आगामी उपन्यासों में प्रेमचंद की सतत कोशिश घटनाओं से

---

[1] हिन्दी उपन्यास का इतिहास–प्रो0 गोपाल राय–पृष्ठ–141।

मुक्ति की रही हैं।"[1] वस्तुतः शिल्प की दृष्टि से प्रेमचंद का वैशिष्टय उनके कथा संगठन में नहीं अपितु घटनाओं के स्थान पर पात्रों के कार्य व्यापारों भावों और विचारों के कुशल सयोजन में हैं।

औपन्यासिक शिल्प के क्षेत्र में प्रेमचंद की एक उल्लेखनीय उपलब्धि यह है कि जिन्होंने अपने पूर्ववर्ती उपन्यासकारों की भॉति पाठकों को सम्बोधित करने की परम्परा का परित्याग कर दिया। पूर्ववर्ती उपन्यासों से 'सेवासदन' का एक अन्तर यह है कि कथाकार इसमें पाठकों को सह्रदय पाठक, प्रिय पाठक, रसिक पाठक कहकर सम्बोधित नहीं करता अर्थात किस्सागो पहले की तुलना में अप्रत्यक्ष हो गया है। प्रेमचंद अपने उपन्यासों में पाठको के साथ विद्यमान तो रहते हैं पर उनकी उपस्थिति अप्रत्यक्ष हो जाती है। अपने सम्पूर्ण उपन्यास साहित्य में इक्का–दुक्का स्थानों पर ही प्रत्यक्ष रूप से वे अपनी उपस्थिति दर्ज कराते दिखाई देते हैं। 'सेवासदन' से किस्सागो की विदाई का आरम्भ होता हैं क्योंकि परम्परागत किस्सागो केवल कहानी सुना सकता था, दृश्यों को प्रस्तुत करना उसकी सामर्थ्य से परे था। अधिक से अधिक वह दो पात्रों की संक्षिप्त बातचीत सुना सकता था। हिन्दी कथा साहित्य में एक लम्बे समय तक कथा का यह स्वरूप प्रचलित रहा। यद्यपि लाला श्री निवासदास, बालकृष्ण भट्ट देवकीनन्दन खत्री आदि में अपनी कथाओं में दृश्य निर्माण और कथानक योजना का समावेश किया परन्तु उनके अधिकतर दृश्य पात्रों के संवाद तक ही सीमित होकर रह जाते थे। प्रेमचंद ने कथा के इस परम्परागत स्वरूप से अलग अपने उपन्यासों को एक नया आकार, नया रुप दिया। उन्होंने उन्नीसवी शताब्दी के पाश्चात्य उपन्यासकारों से प्रेरणा ग्रहण करते हुए अपने उपन्यासों में बहुप्रचलित संरचना प्रविधियों दृश्यात्मक और प्रतिदृश्यात्मक का प्रयोग किया। दृश्यात्मक प्रविधि के अन्तर्गत पात्रों की स्वाभाविक और अभिव्यंजना पूर्ण, संवादों के साथ उनकी भाव भंगिमाओं शारीरिक क्रिया–कलापों कार्यव्यापारों और अनुभावों से देखने पर 'सेवासदन' में दृश्य योजना का प्रयोग बहुत कम हुआ हैं। परन्तु इसके पश्चात् अगले ही उपन्यास 'प्रेमाश्रम' में उनकी दृश्य योजना एकदम से ऊँचाई पर पहुँच जाती हैं। यह उपन्यास कथाकार के हस्तक्षेप से पूरी तरह मुक्त है। 'प्रेमाश्रम' के बाद प्रेमचंद के परवर्ती उपन्यासों 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि', 'गोदान' आदि में दृश्यों के निर्माण में नाट्कीय तनाव, विदग्धाता तथा विम्बात्मक, सजीवता में तो तीव्र वृद्धि परिलक्षित होती ही है साथ ही उनमें दृश्यात्मक प्रसंगों का बढ़ता हुआ अनुपात भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता हैं। हॉ इतना आवश्य है कि है कि 'गोदान' के

---

[1] हिन्दी उपन्यास का इतिहास–प्रो0 गोपाल राय–पृष्ठ–130–131।

पूर्ववर्ती रचनाओं में प्रेमचंद के भीतर का कथाकार गतिमान दृश्यों के बीच अचानक टपक पड़ने से स्वयं को रोक नही पाता उदाहरणार्थ रंगभूमि के ग्यारहवें परिच्छेद में एक दृश्य के अन्तर्गत सुभागी, जगधर और सूरदास आपस में बातचीत कर रहे हैं। जगधर सुभागी से कह रहा है कि "जब तक समझता था, भला आदमी है, साथ बैठता था, हँसता–बोलता थ, ताड़ी भी पी लेता था, कुछ ताडी के लालच से नहीं जाता था।––––"[1] जगधर का यह झूठ कथाकार सहन नही कर पाता वह बीच में ही कह उठता हैं :– "क्या कहना आप ऐसे धर्मात्मा तो हैं। निर्मला में कथाकार का इस प्रकार का हस्तक्षेप सबसे अधिक दृष्टिगोचर होता है जिसके दो एक उदाहरण दृष्टब्य हैं निर्मला के दूसरे परिच्छेद में पति–पत्नी के पारिवारिक कलह का अत्यन्त यथार्थ तथा प्रभावी चित्रण है परन्तु कथाकार बीच में यह कहकर "वकील साहब मुकदमें में तो खूब मीन मेख निकालते थे लेकिन स्त्रियों के स्वभाव का उन्हें कुछ यों ही सा ज्ञान था। यही एक ऐसी विद्या है जिसमें आदमीं बूढ़ा होने पर भी कोरा रह जाता हैं।"[2] उसके प्रभाव को हल्का कर देता हैं। इसी प्रकार नवें परिच्छेद के अन्त में चित्रित एक अत्यन्त सजीव दृश्य की सजीवता को अपनी मनोवैज्ञानिक टिप्पणी के द्वारा क्षति पहुँचाता हैं– "मन तेरी गति कितनी विचित्र है, कितनी रहस्य से भरी हुई, कितनी दुर्भेद्य। जहाँ अभी वात्सल्य था वहाँ सन्देह ने फिर आसन जमा लिया।"[3] निर्मला के बाद अन्य उपन्यासों जैसे गबन, कर्मभूमि और गोदान में कथाकार का इस प्रकार का हस्तक्षेप कम से कम होता चला गया। गोदान में तो यह न के बराबर हैं जिसमें कथाकार अपने आप को अप्रत्यक्ष ही रखता है। उपन्यासों की परिदृश्यात्मक प्रविधि के अन्तर्गत कथा कही नहीं, प्रस्तुत की जाती है जिसमें कथाकार अपने को अप्रत्यक्ष रखने का भरसक प्रयास करता हैं 'सेवासदन' से प्रेमचंद इस प्रविधि का प्रयोग करते हैं। सेवासदन में परिदृश्यात्मक प्रविधि की प्रधानता है परन्तु बाद के उपन्यासों में इसकी मात्रा घटाकर दृश्यात्मक तथा परिदृश्यात्मक दोनों प्रविधियों का लगभग संतुलित मात्रा में प्रयोग किया हैं।

उपन्यासों के विषय का चुनाव मानव जीवन से करने के कारण प्रेमचंद ने अपने पात्रों का चयन वास्तविक जगत से करते हुए पात्रों के चरित्र–चित्रण की

---

[1] 'रंगभूमि–प्रेमचंद–पृष्ठ–217।

[2] 'निर्मला'–प्रेमचंद–पृष्ठ–11।

[3] 'निर्मला'–प्रेमचंद–पृष्ठ–71।

एक नवीन प्रणाली अपनायी– "हिन्दी और उर्दू में प्रेमचंद से पहले जो साहित्य रचा जा रहा था उसमें चरित्र–चित्रण पर ध्यान नहीं दिया जाता था। उर्दू में उन दिनों तिलस्में होशरूवा, मीर अम्मन का 'चहार दरवेश' और रत्ननाथ सरशार का 'फसानाए आजाद' बहुत मकबूल थे और हिन्दी में देवकीनन्दन खत्री और गोपालरामगहमरी लोकप्रिय लेखक माने जाते थे। लोग 'चन्द्रकांता संतति' को चटखारे ले लेकर पढ़ते थे। इस कथा–साहित्य में घटना वैचित्रय, कौतूहल–जिज्ञासा और रोमॉस ही सब कुछ था। उपन्यास घटनाओं के आगे बढ़ता था। पात्र लेखक के हाथमें कठपुतलियॉ मात्र थे। लेखक घटनाओं को जैसें चाहे तोड़–मरोड़ डालता था और पात्रों से मनमाना काम करवा लेता था।"[1] परन्तु प्रेमचंद ने कल्पना और रोमॉस के इस मायावी आकर्षण से स्वयं को दूर रखते हुए जन साधारण के जीवन की गहराइयों में उतर कर उनके दुखों उनकी समस्याओं को स्पर्श करकै उन्हें अपने रचनाओं में चित्रित करने का प्रयत्न किया और इसके लिए उन्होंने ऐसे पात्र चुने जो जीवन के विभिन्न पक्षों के प्रतीक हैं– "यह श्रेय प्रेमचंद को प्राप्त है कि उन्होंने जीवन की साधारण घटनाओं को अपनी कहानियों और उपन्यासों का विषय बनाया और हाड़–मॉस के बने हुए जीते–जागते इन्सानों का स्वाभाविक चरित्र–चित्रण किया। इसीलिए उन्हें उर्दू और हिन्दी में पहला यथार्थवादी लेखक माना जाता हैं। प्रेमचंद ने उन्हीं लोगों को अपनी कहानियों और उपन्यासों का पात्र बनाया जिनके सम्पर्क में वे अधिक रहते थे। उनका विश्वास था कि लेखक उन्हीं पात्रों का सफल चरित्र–चित्रण कर सकता है, जिन्हें वह निजी अनुभव से जानता– पहचानता हैं।"[2]

इन पात्रों से हमें आस–पास के जीवन कीं झांकी दिखाई देती है और यह हमें अपने से लगने लगते हैं। प्रेमचंद के कथा संसार में ऐसे सैकड़ो पात्र हैं जो हमारी तरह जीते, महसूस करते सोचते और आचरण करते हैं। प्रेमचंद के कथा संसार की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि उसमें से नायक निरन्तर अपदस्थ होता चला गया है। रंगभूमि का अन्धा भिखारी सूरदास और गोपाल का दरिद्र किसान होरी इसके उदाहरण हैं। जिनमें परम्परागत नायक का प्रतिबिम्ब ढूँढने से भी नहीं मिलता। वस्तुतः प्रेमचंद हिन्दी के वह पहले कथाकार हैं जिन्होंने विश्वसनीय और पाठकों को आत्मीय लगने वाले पात्रों का संसार रचा हैं।

---

[1] प्रेमचंद जीवन कला और कृतित्व–हंसराज रहबर–पृष्ठ–219।

[2] प्रेमचंद जीवन कला और कृतित्व–हंसराज रहबर–पृष्ठ–219।

सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक समस्याओं को अभिव्यक्ति के लिए प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में वर्णनात्मक शिल्प विधि अपनायी हैं। प्रेमचंद वर्णनात्मक शिल्प विधि के प्रणेता है इस विषय में डॉ0 प्रेम भटनागर का कथन हैं "व्यक्ति, समाज, धर्म, राजनीति और आर्थिक विषयों को वर्णनात्मक शिल्प–विधि में मुखरित करने और इसे सशक्त रूप प्रदान करने वाले प्रथम सफल कथाकार प्रेमचंद हैं। वे उपन्यास को अनगढ़ तिलस्म, जासूसी उछल–कूद और भावलोक की रंगीली दुनिया से खींचकर यथार्थ परिस्थितियों और चेतन मन की व्यापक भावनाओं के धरातल पर ले आए। इन्होंने इसे व्यवस्थित रुपाकार (Form) और वर्णनात्मक–शिल्प (Descriptive) प्रदान किया।"[1] प्रेमचंद ने अपनी पहली औपन्यासिक कृति 'प्रेमा' से ही वर्णनात्मक विधि का समुचित रूप से उपयोग करना आरम्भ कर दिया था और अपने रचनात्मक सफर की समाप्ति तक वे इसका प्रयोग करते रहें। "सेवासदन' से 'कायाकल्प' तक के उपन्यासों में आरम्भिक काल की कुछ प्रवृत्तियों के प्रयोग के साथ वर्णनात्मक विधि में कुछ नवीन प्रवृत्तियों का जन्म होता हैं। पात्रों के प्रथम प्रवेश पर, परिवार के मुखिया का औपचारिक परिचय देते समय उसके तथा अन्य पारिवारिक सदस्यों के चरित्र पर भी प्रकाश डाला गया हैं। 'सेवासदन' में कृष्णचन्द्र के परिचय के समय गंगाजली सुमन व शान्ता का, 'प्रेमाश्रम' में प्रभाशंकर के परिवार का परिचय देते समय ज्ञानशंकर का 'रंगभूमि' में जॉनसेवक के परिचय के समय मिसेज सेवक, प्रभुसेवक तथा सोफिया का 'कायाकल्प' मे वज्रधर के परिचय के समय चक्रधर के चरित्र पर भी प्रकाश डाला गया।––– प्रेमचंद ने पात्रों की मनोदशा, विचार, पात्र की बदलती मनस्थिति, उनके मन में उठनें वाले अनेक भावों के वर्णन तथा उनका इच्छानुसार परिवर्तन करने के लिए वर्णनात्मक विधि का उपभोग किया हैं।"[2] इस प्रकार उपन्यासों में वर्णनात्मक विधि के प्रयोग ने पात्रों की शारीरिक संरचना चारित्रिक विशेषताओं एवं उनकी मनोदशाओं तथा प्रतिक्रियाओं की अधिकाधिक अभिव्यंजना में महत्वपूर्ण योगदान दिया हैं।

अपने सभी उपन्यासों में स्त्री–पुरुष पात्रों की परिकल्पना करने के सन्दर्भ में प्रेमचंद ने ऐसी भाषा का प्रयोग किया जो न केवल बोधगम्य है, बल्कि पात्रों के चरित्रोद्घाटन में भी सहायक है। अपनी बात को अधिक से अधिक लोगों तक सरलता एवं जीवंतता के साथ पहुँचाने के लिए प्रेमचंद ने भाषा का प्रयोग एक

---

[1] हिन्दी–उर्दू उपन्यास शिल्प बदलते परिप्रेक्ष्य–डॉ0 प्रेम भटनागर पृष्ठ–72।

[2] प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प विधान–कमल किशोर गोयनका–पृष्ठ–512–513।

सशक्त माध्यम के रुप में किया। अपने साहित्य के द्वारा उन्होंने भारतीय समाज को दिशा दी उसका एक कारण उनकी सहज भाषा भी हैं। उनकी भाषा भारत के आम आदमी की भाषा है। उर्दू और हिन्दी के समन्वय द्वारा उन्होंने भाषा को एक सुन्दर और व्यावहारिक रुप प्रस्तुत किया। " प्रेमचंद की इस भाषा–नीति से, जिसका जन्म 'सेवासदन' से होता है, हिन्दी–उर्दू भाषाओं का परिमार्जित सम्मिश्रण हुआ है और एक ऐसी भाषा का रुप में भी भाषा के कई स्तर मिलते हैं–अरबी–फारसी बहुत अंश, संस्कृत बहुत अंश, अरबी–फारसी व संस्कृत भाषाओं का समतुल्य मिश्रण तथा दोनों ही प्रकार की भाषाओं के तत्सम शब्दों से विहीन साधारण बोलचाल की भाषा के अंश, आदि। 'सेवासदन' से भाषा के ये सभी स्तर उनके उपन्यासों में विद्यमान हैं किन्तु ये सभी प्रवृत्तियों उनके उपन्यासों में प्रमुख नहीं हैं। उनकी प्रमुख और सामान्य प्रवृत्ति है–"हिन्दी–उर्दू के सरल तत्सम शब्दों का समानुपात में सम्मिश्रण जो 'सेवासदन' से –गोदान' तक के सभी उपन्यासों में प्रमुख रुप से विद्यमान हैं।"[1] प्रेमचंद आरम्भ से ही पात्रानुकूल भाषा के पक्षपाती थे इसी कारण उन्होंने ग्रामीण पात्रों से गॉव की भाषा बुलवाई है और शहरी पात्रों से मानक भाषा, अपने मुसलमान पात्रों से अरबी तथा फारसी भाषा का प्रयोग कराके उन्होंने कथा साहित्य प्राण फूक दिये इसी कारण उनकी शैली इतनी सहज तथा सरस हैं।

कहना न होगा कि प्रेमचंद ने साहित्य का श्रेय जीव जगत निर्धारित करते हुए अपनी रचनाओं के द्वारा मानव जीवन का सच्चा प्रतिरुप उपन्यास को प्रदान किया। प्रेमचंद की रचनाओं का मूल प्रेरणा स्रोत आम–आदमी के दुखों की अनुभूति है। क्योंकि इस दुख को इस पीड़ा को उन्होंने न केवल निकट से देखा था। अपितु उसे व्यक्तिगत स्तर पर झेला भी थां इसी पीड़ा भोग ने साहित्य के प्रति उन्हें एक नवीन दृष्टिकोण प्रदान किया जिसकी सहायता से उन्होंने हिन्दी उपन्यासों को विषय तथा शिल्प की दृष्टि सर्वथा नूतन धरातल पर प्रतिष्ठित किया। यह धरातलीय संक्रमण ही हिन्दी उपन्यास साहित्य को प्रेमचंद की महत्वपूर्ण देन हैं। उन्होंने मानव की सामान्य और विशिष्ट परिस्थितियों, मनोवृत्तियों और समस्याओं का चित्रण कर हिन्दी कथा साहित्य को एक यथार्थवादी दिशा और गति प्रदान की। देशकाल एवं युग के अनुकूल ही प्रेमचंद के उपन्यासों में शिल्पगत चेतना विकसित हुई हैं। इस दृष्टि से प्रेमचंद की शिल्पगत विशेषता जो उनकी संरचना में परिलक्षित होती है उसमें स्थिरता या एक रुपता नहीं है वरन् उसमें निरन्तर एक क्रमिक विकास दृष्टिगोचर होता है। जिसे हम 'सेवासदन' से गोदान तक स्पष्ट रुप से देख सकते हैं।

---

[1] प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प विधान–कमल किशोर गोयनका–पृष्ठ–523।

3. प्रेमचंद के कथा शिल्प का वैशिष्ट्य–

क– कथानक

कथानक किसी उपन्यास का वह आधार स्तम्भ है जिस पर उपन्यास रूपी भवन टिका होता है। इस दृष्टि से कथानक उपन्यास का मूल तत्व है। कथानक में भिन्न–भिन्न घटनाओं को संगठित रूप देकर कथा की सृष्टि की जाती है कथानक के विषय में प्रेमचंद का कथन है– "प्लाट कथानक उन घटनाओं को कहते हैं जो उपन्यास के चरित्रों पर घटित हो। लेकिन केवल घटनाओं का वर्णन करने ही से कहानी में मनोरंजकता का गुण नहीं पैदा हो सकता। उन घटनाओं की कल्पना द्वारा ऐसा सजीव बनाना चाहिए कि उनमें वास्तविकता झलकने लगे—–––– साधारणतः प्लाट वह कथा है, जो उपन्यास पढ़ने के बाद साधारण पाठक के हृदय पर अंकित हो जाती है।"[1] प्रेमचंद उपन्यासों को केवल मनोरंजन का साधन न मानकर उसका लक्ष्य मानव–मन का परिष्कार निर्धारित करते हैं और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वे अपने उपन्यासों की कथावस्तु का चुनाव हमारे पारिवारिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन से करते हुए जीवन के विविध पहलुओं और समस्याओं के चित्रण की ओर प्रवृत्त हुए हैं। हंसराज रहबर के कथनानुसार–" प्रेमचंद पहले लेखक थे जिन्होंने अपनी कहानियों और उपन्यासों की सामग्री तत्कालीन जीवन से प्राप्त की और उसे चुस्त भाषा और सुन्दर शैली में कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया। प्रेमचंद युग की वाणी थे। उस समय राजनीति में और समाज–सुधार के आन्दोलन में मनुष्य से बिचारशील और कर्मशील बनने और रूढ़िगत परम्पराओं और अन्धविश्वास को त्यागकर आगे बढ़ने की मॉग की जा रही थी। प्रेमचंद ने इस मॉग को पूरा किया।–––– उन्होंने किताबें पढ़कर लिखने के बजाय अपनी रचनाओं की सामग्री राजनैतिक और सामाजिक आन्दोलनों, अपने निजी जीवन और आस–पास रहने वाले दूसरे लोगों के जीवन से प्राप्त की। प्रेमचंद से पहले के लेखक जीवन को कहानी और कहानी को जीवन बना दिया करते थे। जिस तरह हमारा देश विशाल और विस्तृत है उसी तरह प्रेमचंद के उपन्यासों की रंगभूमि भी विशाल और विस्तृत है और उनकी कहानियॉ विभिन्न विषयों और विभिन्न पात्रों पर लिखी गई हैं।"[2]

---

[1] उपन्यास रचना माधुरी 23 अक्टूबर सन् 1922

[2] प्रेमचंद जीवन कला और कृत्त्वि–हंसराज रहबर–पृष्ठ–252–553।

चूँकि प्रेमचंद की कथावस्तु का आधार हमारा, पारिवारिक सामाजिक और राजनीतिक जीवन है अतएव प्रेमचंद ने मुख्य रूप से सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक समस्याओं को अपने कथानकों का आधार बनाया हैं इसके साथ ही उन्होंने परिवारनिष्ठ कथानकों के कथानक समस्यामूलक होने के साथ–साथ पारिवारिक कथा भी कहते हैं जिसके परिणाम स्वरूप उनके कथानक अधिक हृदयस्पर्शी तथा विश्वसनीय होते हैं। सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियों पर लिखे गए उनके उपन्यास उस युग का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनके उपन्यासों की कथावस्तु में समाज, पात्र, तथा स्थान सभी वास्तविक लगते हैं। "विषय की दृष्टि से प्रेमचंद के उपन्यास तो शुद्ध सामाजिक हैं, या सामाजिक–राजनैतिक और विषय–निर्वाह की दृष्टि से चरित्र–प्रधान और मनोवैज्ञानिक। अगर ध्यान से देखें, तो जान पड़ेगा कि प्रेमचंद ही हिन्दी के पहले कलाकार हैं, जिनकी कृतियों में केवल कथा नहीं मिलती, सही अर्थ में कथावस्तु मिलती हैं। कथा घटनाओं को उनके समय–क्रम के अनुसार कहती चलती हैं, लेकिन कथावस्तु में घटनाओं का कार्यकारण संबंध मिलता है, लेकिन ज्यों–ज्यों प्रेमचंद की कला विकसित होती गई, उनके उपन्यासों में कथावस्तु संयोग की नहीं, कार्यकारण सम्बन्ध को लेकर चली हैं।"[1]

भारतीय समाज की वह विसंगतियॉ और कुरीतियाँ जिन्होंने जन साधारण के जीवन को समस्याओं के भंवर में उलझा रखा था प्रेमचंद की सूक्ष्म और पैनी दृष्टि से ओझल नहीं थी। उनके निदान हेतु प्रेमचंद ने इन कुरीतियों एवं समस्याओं का यथातथ्य चित्रण करते हुए उन्होंने नारी समस्या, दहेज प्रथा, व विवाह सम्बन्धी कुरीतियों, अछूत समस्या आदि को अपने उपन्यासों की कथा का केन्द्र बनाया हैं। उदाहरण के लिए 'प्रतिज्ञा', 'सेवासदन', 'निर्मला' में नारी जीवन की समस्याओं को उपन्यासों की कथावस्तु का आधार बनाया है इसके अतिरिक्त 'प्रेमाश्रम' तथा 'कायाकल्प' में भी किसी न किसी रुप में नारी जीवन की बिड़म्बना को चित्रित किया है। प्रेमचंद ने नारी समस्या के विविध पक्षों को जिस प्रकार से अपने कथानकों का आधार बनाया है उसने उन्हें नारी की असहायता तथा दीनता के चित्रण में अभूतपूर्व सफलता प्रदान की।

अपने कथानकों में आर्थिक समस्या को स्पर्श करते समय प्रेमचंद ने जंमीदारी प्रथा व पूँजीवादी व्यवस्था को आर्थिक समस्या के केन्द्र में रखा हैं।

---

[1] प्रेमचंद का अध्ययन–राजेश्वर गुरू–पृष्ठ–263।

जंमीदारी प्रथा कि जाल में फँसे निर्धन तथा ऋण ग्रस्त किसानों की आर्थिक दुर्व्यवस्था को उन्होंने 'प्रेमाश्रम' तथा 'गोदान' के कथानक का केन्द्र बनाया है 'प्रेमाश्रम' में किसानों के शोषण तथा उन पर होने वाले अत्याचारों का विरादता पूर्वक चित्रण किया है। गोदान में होरी की कथा के माध्यम से उन्होंने भारतीय किसान की आर्थिक दुर्दशा का अत्यन्त यथार्थ परक तथा मार्मिक चित्रण किया हैं। 'रंगभूमि' में पूँजीवादी व्यवस्था की विनाशलीला को चित्रित करते हुए औद्योगीकरण के कारण सूरदास के गॉव पांडेपुर का उजड़ते हुए दिखाया हैं।

सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं के अतिरिक्त राष्ट्रीय एवं राजनीतिक समस्यों को भी केन्द्र में रखकर उन्होंने अपने कथानक की सृष्टि की हैं– ''रास्ट्रीय समस्या मूलक कथानकों में उन्होंने सत्याग्रह आन्दोलन तथा हिन्दू–मुस्लिम ऐक्य को लिया है। उदाहरण के लिए, 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', और 'कर्मभूमि'–इन तीन उपन्यासों में उन्होंने अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन को कथानक का आधार बनाया हैं। 'रंगभूमि' में एक ओर सूरदास के सत्याग्रह आन्दोलन का उल्लेख किया है तो दूसरी ओर उदयपुर रियासत में कुंवर विनय सिंह को सत्याग्रह करते दिखाया गया हैं। अहिंसा और सत्याग्रह के सहारे सूरदास अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक विपक्षियों से टक्कर लेता है। इसी प्रकार, 'कायाकल्प' में गो बध बन्द कराने एवं हिन्दू–मुस्लिम ऐक्य की स्थापना के लिए चक्रधर, अहिंसात्मक उपायों का अवलम्बन करता है। जेल में भी वह अहिंसात्मक उपायों द्वारा कैदियों को शान्त करने में सफल हो जाता है। 'रंगभूमि' तथा 'कायाकल्प' के समान 'कर्मभूमि' में अमरकान्त को किसानों के सत्याग्रह आन्दोलन का नेतृत्व करते दिखाया गया हैं।''[1]

इस प्रकार प्रेमचंद ने देश की सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक समस्याओं को अपने कथानकों का आधार बनाकर तद्युगीन भारतीय समाज का यथार्थ एवं विशद कथानकों के विश्वसनीयता तथा वास्तविकता का रंग देने के लिए प्रेमचंद उसे परिवार निष्ट भी बना देते हैं इसके लिए उन्होंने अपनी सभी उपन्यासों में समस्या के विविध आयामी चित्रण के लिए कथानकों में दो या दो से अधिक परिवारों की कथा को एक साथ प्रस्तुत करते हैं उदाहरणार्थ 'प्रतिज्ञा' में अमृतराय तथा लाला बद्रीनाथ के परिवारों की कहानी हैं। 'सेवासदन' में कृष्णचंद्र तथा पद्‌म सिंह के परिवारों की कथा हैं। 'निर्मला' उपन्यास में निर्मला तथा मुंशी

---

[1] हिन्दी उपन्यास की शिल्प–विधि का विकास–डॉ0 कृष्णा नाग पृष्ठ–84।

तोताराम के परिवारों के अतिरिक्त भालचन्द्र सिन्हा के परिवार की कथा को भी सम्मिलित किया गया हैं। इसी प्रकार प्रेमाश्रम के कथानक में प्रेमचंद ने ज्ञान शंकर के परिवार के साथ उसके ससुर रायकमलानंद के परिवार का वर्णन किया है इसके अतिरिक्त लखनपुर के मनोहर की कथा भी कहीं हैं। "मुख्य परिवारों की कथा के साथ अन्य गौण परिवारों की कथा को जोड़ देने की प्रेमचंद की प्रवृत्ति के हमें सर्वत्र दर्शन होते हैं। इससे वे न केवल वर्णित मुख्य समस्या का निरूपण कर जाते हैं, बल्कि इतर परिवारों की कथा कहकर वे समस्या विशेष के विविध पहलुओं पर प्रकाश डालकर अपने कथानक में वास्तविकता एवं विश्वसनीयता उत्पन्न कर देते हैं। उदाहरणार्थ, 'गबन' में प्रेमचंद ने यद्यपि रमानाथ के परिवार की ही कथा को मुख्य रुप से लिया हैं, परन्तु कथा के गुम्फन के लिए उन्होंने देवीदीन और इन्द्रभूषण के परिवारों का भी उल्लेख किया हैं। इसी प्रकार कर्मभूमि में प्रेमचंद ने अछूत समस्या और लगान बन्दी की समस्या की वास्तविक एवं विश्वसनीय कहानी कहने के लिए लाला समरकान्त और लाला धनीराम, रेणुका और मुन्नी, शलीम और सकीना तथा गुदड चौधरी के परिवारों की कथाऐं भी कही हैं। अन्य उपन्यासों के तरह प्रेमचंद ने 'गोदान' में होरी के परिवार को कथा को मुख्य रूप से लिया है और इसके साथ–साथ राय अमरपाल सिंह, चन्द्रप्रकाश खन्ना, मातादीन, भोला आदि के परिवारों की कथाएँ भी मुख्य कथा के साथ जोड़ दी हैं।"[1]

उपन्यासों का कथानाक सामान्यतः आधिकारिक तथा प्रासंगिक दो भागों में विभक्त होता है अधिकारिक कथा उपन्यास के आरम्भ से अन्त तक चलती है यह उपन्यास का मेरूदंड होती हैं। यद्यपि प्रेमचंद के उपन्यासों की आधिकारिक कथा अविछिन्न रुप से चलती है तथापि उनके उपन्यासों 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प' तथा 'गोदान' इत्यादि में नगर तथा ग्रामीण जीवन की कथा समानान्तर रुप से चलने के कारण यह तय कर पाना कठिन है कि इनमें कौन सी कथा आधिकारिक है और कौन सी प्रासंगिक इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि प्रेमचंद ने अपने कथानकों का आधार भारत के नागरिक तथा ग्रामीण समाज के विभिन्न वर्गो को बनाया है। अतएव उनके कथानक विस्तृत होने के साथ–साथ विविधता से परिपूर्ण है इतना होने पर भी उनमें विखराव नहीं दिखाई देता क्योंकि प्रेमचंद ने अधिकारिक, समानाधिकारी तथा प्रासंगिक कथाओं को एक साथ सूत्रबद्ध करने में अत्यन्त सावधानी बरती हैं यह प्रेमचंद का शिल्प

---

[1] हिन्दी उपन्यास की शिल्प–विधि का विकास–डॉ0 कृष्णा नाग पृष्ठ–84–85।

कौशल है कि अनेक कथा प्रसंगों के बाद भी उपन्यास में कही गतिरोध उत्पन्न नहीं होता उपन्यास की गतिशीलता आरम्भ से अन्त तक बनी रहती उदाहरण स्वरूप– "प्रेमा को ही लीजिए उसमें प्रस्तुत कथा अमृतराय से जुड़ी है और आद्यंत उसकी व्याप्ति हैं। अनेक सहायक कथाओं जैसे 'प्रेमा' और 'पूर्णा' से सम्बद्ध कथा का महत्व ही इसीलिए अधिक हो गया है कि वहाँ अमृतराय की कथा का विकास एकदम सीधा नहीं हैं। उसमें कई मोड़ हैं, परन्तु ये मोड़ ही उसे लक्ष्योन्यमुख बनाते हैं। अमृतराय की देश और जाति की सेवा विषयक प्रतिज्ञा और प्रेमा से विवाह की अस्वीकृति कथा को नये आयामों और नये मोड़ो की ओर ले जाती हैं। प्रतिज्ञा और वैवाहिक अस्वीकृति का नतीजा यह निकलता है कि अनेक घटनाएँ में घटित होती हैं। अमृतराय अन्तर्द्वन्द का शिकार हो जाता है। बद्री प्रसाद का पत्र जो संबंध–विच्छेद के सूत्र लिए है, कथा को एक नई और भिन्न दिशा दें देता है। तत्पश्चात् अमृतराय की कथा 'पूर्णा' से जा जुड़ती हैं। 'पूर्णा' के पति की मृत्यु एक नयी स्थिति पैदा कर देती है। अमृतराय और पूर्णा निकट आ जाते हैं। यह नैकट्य कथा को विकसित करने में सहायक होता हैं। कथांत पूर्णा के आत्महत्या से होता है। किन्तु प्रेमचंद का लक्ष्य इससे पूरा नहीं होता है। अतः पूर्णा की मृत्यु भी कथा विकास को रोक नहीं पाती हैं। यही कारण है कि अमृतराय और बैधब्य का भार ढ़ोती 'प्रेमा' की कथा को प्रेमचंद विवाह के रूप में आगे बढ़ाते हैं। इस तरह जो कथा प्रेमा के विवाह की अस्वीकृत से शुरू हुई थी, उसकी समाप्ति विधवा प्रेमा के रूप में होती हैं।------ घटनाएँ कितनी भी हों, कथा भले ही अनेक मोड़ो से होकर आगे बढ़ी हो किन्तु वह बिखराव की शिकार नहीं हो पाती हैं।"[1] उपरोक्त उद्धरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रेमचंद विविध घ्टना संदर्भो को कार्यकारण सम्बन्ध से प्रस्तुत करने में पूर्णतः निपुण हैं। प्रेमा के परवर्ती अन्य उपन्यास भी इस बात का साक्ष्य प्रस्तुत करतें हैं प्रेमचंद के कथानकों की प्रमुख विशेषता एक यह है कि घटना तंत्र की दृष्टि से उनके उपन्यासों में घटनाएँ कार्य कारण श्रंखला में आबद्ध हैं।

प्रेमचंद के कथानकों की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि वे अपने उपन्यासों में कथा को आदि, मध्य और अन्त के रूप में प्रस्तुत करते हैं वे कथा की रचना एक था राजा, एक भी रानी, के दंग पर न करके पात्रों की चारित्रिक प्रवृत्तियों तथा जीवन सिद्धान्तों से करते हैं। प्रेमचंद कथा का प्रारम्भ परिचयात्मक ढंग से करते हैं और कथा के प्रारम्भ में ही वे मुख्य समस्या का संकेत देते हैं उदाहरणार्थ 'प्रतिज्ञा' में उपन्यास की मुख्य समस्या विधवा विवाह को इंगित करते

---

[1] प्रेमचंद का कथा संसार–बादाम सिंह रावत–पृष्ठ–159–160।

हुए काशी के आर्य समाज–मन्दिर में पंडित अमरनाथ के विधवा–विवाह सम्बन्धी आख्यान का वर्णन किया है– "अरे यह क्या ? कहां तो चारों तरफ हाथ ही हाथ देख पड़ते थे, कहां अब एक हाथ भी नज़र नहीं आता। हमारा युवक–समाज इतना कर्तव्य शून्य इतना साहसहीन हैं ! मगर नहीं–वह देखिए, एक हाथ अभी तक उठा हुआ है। वही एक हाथ युवक मण्डली के ताज की रक्षा कर रहा है। सबकी ऑखे उसी तरफ फिर गयीं। अरे, यह तो बाबू अमृतराय हैं।"[1] इसी प्रकार 'सेवासदन' मे उपन्यास की मुख्य समस्या दहेज प्रथा की ओर कथानक के आरम्भ में ही संकेत करते हुए सुमन के पिता कृष्णचन्द से कहलवाया हैं–"अब तो दो ही उपाय हैं, या तो सुमन को किसी कंगाल के पल्ले बांध दूं या कोई सोने की चिड़िया फंसाऊँ। पहली बात तो होने से रही, बस अब सोने की चिड़िया की खोज में निकलता हूँ। धर्म की मजा चख लिया, अब लोगों को खूब दबाऊंगा, खूब रिश्वतें लूंगा, यही अन्तिम उपाय हैं।"[2] 'गबन' के कथानक का आरम्भ भी इस उपन्यास की केन्द्रीय समस्या आभूषण–लालसा से होता हैं। जालपा की माता, मानकी तथा बिसाती की बातचीत में चन्द्रहार के विषय में जो चर्चा है उससे उपन्यास की मुख्य समस्या का संकेत प्राप्त होता है–"माता ने कहा यह तो बड़ा मंहगा है। चार दिन में इसकी चमक दमक जाती रहेगी। बिसाती ने मार्मिक भाव से हिलाकर कहा– बहूजी, चार दिन में तो बिटिया को असली चन्द्रहार मिल जायेगा।' माता के हृदय पर इस सदहृयता से भरे शब्दों ने चोट की। हार ले लिया गया। बालिका के आनन्द की सीमा न थी। शायद हीरों के हार से भी उसे इतना आनन्द न होता। उसे पहनकर वह सारे गॉव में नाचती फिरी। उनके पास जो बाल सम्पत्ति थी उसमें सबसे मूल्यवान सबसे प्रिय यही बिलौर का हार था।"[3] इसी प्रकार उनके अन्तिम उपन्यास 'गोदान' में इसकी मुख्य समस्या का पूर्वाभास कराते हुए गाय पालने की लालसा को पूर्ण करने में असमर्थ दरिद्र होरी के वृतान्त से उपन्यास की कथा का प्रारम्भ करते हैं–"होरी कदम बढ़ाए चला जाता था। पगडंडी के दोनो ओर ऊख के पौधों की लहराती हुई हरियाली देखकर उसने मन में कहा 'भगवान कहीं गौं से बरखा कर दें और डांडी भी सुभीते से रहे, तो एक गाय जरूर लेगा। देशी गाय तो न दूध दे न उनके बछवे ही किसी काम के हों। बहुत हुआ तो तेली के कोल्हू में चले। नहीं, वह पछाई

---

[1] प्रेमचंद–'प्रतीक्षा' पृष्ठ –4

[2] प्रेमचंद–'सेवासदन' पृष्ठ –7

[3] प्रेमचंद–'गबन' पृष्ठ –2

गाय लेगा। उसकी खूब सेवा करेगा। कुछ नहीं तो चार पॉच सेर दूध होगा। गोबर दूध के लिए तरस–तरस कर रह जाता है। यही उसके जीवन का सबसे बड़ा स्पप्न, सबसे बड़ी साध थी।"[1] इस प्रकार समस्या के संकेत द्वारा कथा के सूत्र का आरम्भ से अपने हाथ में लेते हुए समस्या के उत्तरोत्तर उदघाटन द्वारा कथा का विकास करते जाते हैं। कथानक के प्रारम्भ करनेके उपरोक्त ढंग के अतिरिक्त " प्रेमचंद ने कथा प्रारम्भ करने के लिए एक और विधि भी अपनायी हैं। उन्होंने उपन्यास में वर्णित मुख्य परिवारों की कथा को भी साथ ही साथ कहना प्रारम्भ कर दिया हैं यह कारण है कि उनके सभी उपन्यासों में कथानक के प्रारम्भ में एक या दो परिवारों की सामान्य स्थिति का परिचय मिल जाता हैं। उदाहरणार्थ 'प्रतिज्ञा' में उन्होंने कथा के प्रारम्भ में लाला बदरी प्रसाद के परिवार की कहानी शुरू कर दी है। 'सेवासदन' में कृष्णचन्द्र के परिवार, 'निर्मला' में लाला उदय भानु लाल कीं पारिवारिक कथा को लिया हैं। इसी प्रकार, उन्होंने 'प्रेमाश्रम' और 'रंगभूमि' में क्रमशः जटाशंकर तथा जॉनसेवक के परिवारों की कथा को लेकर कथा का श्रीगणेश किया हैं। 'गबन' में दीनदयाल के परिवार, 'कर्मभूमि' में लाला समरकान्त के परिवार और 'गोदान' में एक साथ होरी तथा रायसाहब अमरपाल सिंह के परिवारों की कहानी को लेकर उपन्यास की कथा का प्रारम्भ किया गया हैं।"[2]

प्रेमचंद ने कथानक के प्रारम्भ में ही उपन्यासों के मुख्य पात्रों से हमारा परिचय करा देते हैं और इन पात्रों के मानोभावों को अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए छोटी–छोटी घटनाओं के मध्य कथानक को परिपक्व और विकसित करते चले जाते हैं। उदाहरण के लिए प्रतिज्ञा में 'अमृतराय' दाननाथ तथा प्रेमा का, सेवासदन में सुमन, गजाधर पाण्डे, कृष्णचन्द्र तथा उमानाथ का निर्मला में उदयभानु लाल, निर्मला , तोताराम आदि का, प्रेमाश्रम में प्रभाशंकर, ज्ञानशंकर, प्रेमशंकर तथा मनोहर का, रंगभूमि में सूरदास, सोफिया, प्रभुसेवक, जानसेवक, गबन में जालपा, रमानाथ, दयानाथ, कर्मभूमि में अमरकान्त, सलीम, नैना और सुखदा, गोदान में होरी, धनिया गोबर तथा अमरपाल सिंह, आदि प्रमुख पात्रों का परिचय कथानक के आरम्भ में ही मिल जाता हैं। कथा को प्रारम्भ करने की उपरोक्त विधियों ने प्रेमचंद के उपन्यासों की कथा के भावी विकास में पूर्ण सहयोग देने को साथ–साथ उन्हें विश्वसनीय भी बना दिया हैं।

---

[1] प्रेमचंद–'गोदान' पृष्ठ –7
[2] हिन्दी उपन्यास की शिल्प–विधि का विकास–डॉ0 कृष्णा नाग पृष्ठ–86।

कथा को आरम्भ करने के पश्चात कथाकार उसके विकास की ओर बढ़ता है तत्पश्चात् कथा का चरम बिन्दु आता है जो कथा का मध्याहन होता है इस भाग में उपन्यासकार मुख्य घटना के विकास के लिए अन्य घटनाओं की योजना, पात्रों के चरित्र अन्तर्द्वन्द आदि का स्पष्टीकरण प्रस्तुत करता हैं। अपने उपन्यासों में–" प्रेमचंद ने कथा का रोचक प्रारम्भ करने के उपरान्त, कथा का विकास की ओर बहुत ध्यान दिया हैं। उन्होंने सहज व स्वाभाविक ढंग से कथा प्रारम्भ करने के बाद, कथा के विकास के स्वाभाविकता बनाये रखने का भरकस प्रयास किया हैं। कथा में स्वाभाविकता के संचार के लिए कथा के अन्तर्गत आने वाली घटनाओं की श्रंखलाबद्ध तथा तर्क सम्मत होना नितान्त आवश्यक हैं, ताकि एक घटना दूसरी घटना को जन्म देकर समूचे कथानक को सुगठित एवं स्वाभाविक बना दें। प्रेमचंद ने भी कथा का विकास करते समय इसे सुगठित एवं स्वाभाविक बनाने की ओर पूरा–पूरा ध्यान दिया है और इसके लिए संकेत, भविष्यवाणी बाधा व निराकरण, समस्या के उत्तरोत्तर उद्‌घाटन जैसी तरह–तरह की विधियाँ अपनायी हैं।"[1]

उदाहरणार्थ प्रेमचंद कथा के विकास के लिए संकेत विधि का प्रयोग करते हुए निर्मला में उदयभानु लाल की मृत्यु का संकेत स्वयं इन शब्दों के माध्यम से दे देते हैं–"पर यह कौन जानता था कि यह सारी लीला विधि के हाथों रची जा रही है। जीवन रंगशाला का यह निर्दय सूत्रधार किसी अगम्य गुप्त स्थान पर बैठा हुआ अपनी जटिल क्रूर क्रीड़ा दिखा रहा हैं। यह कौन जानता था कि नकल असल होने जा रही हैं, अभिनव सत्य का रूप ग्रहण करने वाला हैं।"[2] प्रेमचंद कथा के विकास के लिए संकेत विधि द्वारा भावी घटनाओं का पूर्वाभास कराने के अतिरिक्त भविष्यवाणी द्वारा भी आगे घटित होने वाली घटनाओं का आभास करा देते हैं इन दोनों प्रणालियों में अन्तर है तो बस इतना कि संकेत प्रणाली में कथाकार केवल घटना की संभावना व्यक्त करता है जबकि भविष्यवाणी द्वारा घटना की अनिवार्यता को प्रकट करता है। जिसे हम प्रतिज्ञा के इस उदाहरण द्वारा समझ सकते जिसमें प्रेमचंद पूर्णा के भावी संकट की भविष्यवाणी करते हुए कहते हैं।" आश्रयविहीन अबला के लिए इस समय तिनके का सहारा ही बहुत था, तो वह नौका की कैसे अवहेलना करती, परन्तु वह क्या जानती थी कि वह उसे उबारने वाली नौका नहीं, वरन् एक विचित्र जल- जन्तु है, जो उसकी आत्मा

---

[1] हिन्दी उपन्यास की शिल्प–विधि का विकास–डॉ0 कृष्णा नाग पृष्ठ–87।

[2] 'निर्मला'–प्रेमचंद– पृष्ठ–14

को निगल जायेगा।"[1] प्रेमचंद की यह भविष्यवाणी कमला प्रसाद द्वारा पूर्णा को भ्रष्ट करने की कुचेष्टा का पूर्वाभास कराती हैं।

कथा के विकास के लिए उपरोक्त विधियों के अतिरिक्त प्रेमचंद समस्या के सविस्तार चित्रण की प्रणाली भी अपनाते हैं। उदाहरण के लिए 'सेवासदन' में प्रेमचंद दहेज–प्रथा की समस्या से जुड़े प्रत्येक पक्षों का उद्‌घाटन करते हुए कथा का विकास करते हैं। इसी प्रकार प्रतिज्ञा में विधवा–विवाह की समस्या और उससे सम्बन्धित अन्य पहलुओं का विशद चित्रण करते हुए वह कथा को आगे बढ़ाते हैं। 'गोदान' में कथा के विकास के लिए होरी की भिन्न–भिन्न आर्थिक कठिनाइयों का चित्रण किया है। इस समस्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचंद अपने उपन्यासों में मुख्य समस्याओं की गहराई से पड़ताल करके उनका चित्रण करते हुए सहज तथा स्वभाविक ढंग से कथा को आगे बढ़ाते हैं। इस प्रकार समस्या के विविध पहलुओं के चित्रण द्वारा कथानक के विकास की प्रणाली प्रेमचंद प्रायः अपने सभी उपन्यासों मे अपनाते हैं। प्रेमचंद के कथानकों की एक विशेषता यह भी है कि कथा के विकास में वे निष्पक्ष अथवा तटस्थ रहने की नीति नहीं अपनाते, इसके स्थान पर वह कथा को मनचाहा मोड़ देने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। जिसके कारण उनके उपन्यासों में कथा का विकास अधिक सुव्यवस्थित तथा क्रमबद्ध रूप से हुआ है। इस सम्बन्ध में प्रताप नारायण टंडन का कथन हैं–" प्रेमचंद के उपन्यासों के कथानक विस्तार–क्षेत्र की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। उनकी प्रमुख उल्लेखनीय विशेषता है, उनका सुनिश्चित गति से विकसित होना। उनका ऐसा कोई भी उपन्यास नहीं हैं, जिसमें कथानक बिखर गया हो या उसका विकास किसी निश्चित योजना के अनुसार न हुआ हो।"[2]

प्रेमचंद अपने कथानकों का निर्माण करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखते हैं कि उसमें कहीं भी अरोचकता न आने पाए कथानकों में नवीनता तथा रोचकता का संचार करने के लिए तथा कथा मे उत्सुकता लाने के लिए नाटकीय प्रसंगों तथा कौतुकपूर्ण घटनाओं का आश्रय लेते हैं। उदाहरण के लिए 'सेवासदन' में भामा के मुँह से अपनी बुराई सुनकर सुमन गंगा में आत्महत्या करने निकलती है कि सहसा उसकी भेंट गजाधर से हो जाती हैं।[3] कहाँ तो सुमन जीवन त्यागने जा रही थी कहाँ वह स्वामी गजाधर की प्रेरणा से सेवावृत धारण कर 'सेवासदन'

---

[1] 'प्रतिज्ञा'–प्रेमचंद–पृष्ठ–27

[2] हिन्दी उपन्यास की शिल्प–विधि का विकास–डॉ0 प्रताप नारायण टंडन–289।

[3] 'सेवासदन'–प्रेमचंद– पृष्ठ–238।

की स्थापना में अपना योग देती हैं। इस नाटकीय घटना से कथा में रोचकता तो उत्पन्न होती ही है साथ ही प्रेमचंद कथा को मनचाही दिशा देने का अवसर भी मिल जाता है। इसके अतिरिक्त रंगभूमि में सोफिया को पत्थर लगने पर अचानक विनय आक्रोशित भीड़ के सामने आना।[1] 'कायाकल्प' मे गो बध पर उतारू मुसलमानों के सामने चक्रधर का गाय के साथ अपनी कुर्बानी देने के लिए तैयार हो जाना[2] और उसके कारण गोबध का रूक जाना इस समस्त नाटकीय घटनाओं द्वारा प्रेमचंद ने कथा में उत्सुकता का संचार किया है। इसी प्रकार 'कर्मभूमि' तथा 'गोदान' में भी प्रेमचंद ने नाटकीय प्रसंगों द्वारा कथा मे रोचकता उत्पन्न की हैं। 'मुन्नी द्वारा गोरों की हत्या के नाटकीय प्रसंग[3] माध्यम से प्रेमचंद कथानक की शिथिलता को दूर करते हुए कथा में उत्सुकता पैदा कर देते हैं। 'गोदान' में रायसाहब अमरपाल सिंह के उत्सव में अफ़गान के रूप में मि0 मेहता का सहसा प्रवेंश[4] कथा को रोचक बनाने में सहायक सिद्ध होता हैं।

कथानक को रोचक तथा स्वभाविक बनाने के लिए प्रेमचंद घाट–प्रतिघात का भी सहारा लेते हैं जिससे पाठक की उत्सुकता में तो वृद्धि होती ही साथ ही पात्रों के चरित्र पर भी प्रकाश पड़ता है। प्रेमाश्रम में जिस समय गायत्री मूर्छित होकर कमरे में गिर पड़ती है, और ज्ञान शंकर उसे उठाता है उसी समय ज्ञान शंकर की पत्नी विद्या उन्हें आलिंगनबद्ध देखकर अन्यथा समझ बैठती हैं।[5] इस प्रकार के घात–प्रतिघातो द्वारा प्रेमचंद कथा की रोचकता को बढ़ाते हुए पात्रों की बदलती हुई मनः स्थिति का भी ज्ञान कराते चलते हैं।

कथा में उत्सुकता वृद्धि हेतु प्रेमचंद नाटकीय घटनाओं घात–प्रतिघातों के अतिरिक्त कौतुकपूर्ण घटनाओं की सृष्टि भी करते हैं यथा प्रेमाश्रम में सुक्खु चौधरी के कहने पर जब करतार रूपयों से भरी थैली उठाता है तो सब रूपये ठीकरे बन जाते हैं।[6] कायाकल्प में तो विस्मयकारी तथा कोतुकपूर्ण घटनाओं की पराकाष्ठा दिया है दिखाई देती हैं। इसमें जगदीशपुर की रानी देवप्रिया कायाकल्प, कुँवर महेन्द्र सिंह और यौगिक क्रियाओं में निपुण स्वामी जी (जो पूर्व

---

[1] 'रंगभूमि'–प्रेमचंद– पृष्ठ–301।

[2] 'कायाकल्प'–प्रेमचंद– पृष्ठ–32।

[3] 'कर्मभूमि'–प्रेमचंद– पृष्ठ–52।

[4] 'गोदान'–प्रेमचंद– पृष्ठ–70।

[5] 'प्रेमाश्रम'–प्रेमचंद– पृष्ठ–345।

[6] 'प्रेमाश्रम'–प्रेमचंद– पृष्ठ–365।

जन्म में प्रसिद्ध वैज्ञानिक डार्विन थे) के मिलन तथा चन्द्रभान के निर्माण [1] जैसी अद्‌भुत तथा विलक्षण घटनाओं के माध्यम से प्रेमचंद ने कथा में रोचकता तथा उत्सुकता उत्पन्न की।

कथानक की समाप्ति उपन्यास में विरोध महत्व रखती है क्योंकि पाठक के मानस पर पड़ने वाला यही वह अन्तिम प्रभाव है जो उसके अन्तःकरण को झकझोर कर रख देता है और उपन्यास को निष्कर्ष तक पहुँचा कर उसे पूर्णतः प्रदान करता है। अन्त की दृष्टि से प्रेमचंद के कथानकों का हिन्दी उपन्यास साहित्य में अपना एक विशिष्ठ स्थान हैं। प्रेमचंद ने कुशल सूत्रधार की भॉति कथा के सूत्र को अपने नियंत्रण में रखते हैं और एक सूत्रधार होने के नाते वे अपने उपन्यासों में सर्वत्र उपस्थित होते हैं। उन्होंने कथा के विकास के लिए जिस प्रकार अलग–अलग विधियॉ अपनाई हैं उसी प्रकार कथा को निष्कर्ष तक पहुॅचाने के लिए वे तरह–तरह की विधियॉ अपनाते हैं। जिनमें से एक प्रमुख विधि है पात्रों की मृत्यु, हत्या अथवा आत्महत्या की घटनाओं द्वारा कथा के विस्तार को समेटना इसके अतिरिक्त कथा के फैलाव को सीमित करने की दूसरी प्रणाली के अन्तर्गत कथानकों के लक्ष्य की पूर्ति हेतु वे कथा को अपनी इच्छानुसार एक नया मोड़ देकर उसे सुखान्त अथवा दुखान्त बना देते हैं परन्तु ऐसा करते समय प्रेमचंद कथा के प्रवाह के अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण हो, इस बात का विशेष ध्यान रखते हैं इसीलिए उनके उपन्यासों का अन्त चाहे सुखद हो या दुखद उसमें स्वाभाविकता अवश्य विद्यमान होती हैं। कथा को समेटने के लिए एवं निष्कर्ष तक पहुँचने के लिए उपरोक्त जिन दो विधियों का प्रेमचंद प्रयोग करते हैं उनमें उल्लिखित प्रथम विधि कथा का निष्कर्ष साधने में भी कथाकार की सहायता करती है इस प्रकार जहाँ एक ओर प्रेमचंद मृत्यु हत्या अथवा आत्महत्या द्वारा अनावश्यक पात्रों से मुक्ति पा लेते हैं वहीं अप्रत्य रूप से वे क्योंकि वांछित निष्कर्ष तक पहुँचने में भी सफल हो जाते हैं। 'सेवासदन' में कृष्णचन्द्र 'निर्मला' में मंसाराम, प्रेमाश्रम' में गायत्री और ज्ञानशंकर तथा 'रंगभूमि' मे विनय और सोफिया की आत्महत्या के प्रसंग से यह बात सिद्ध होती है कि कथा को सीमित करने तथा उसे एक निश्चित दिशा प्रदान करने के लिए प्रेमचंद को पात्रों के आत्महत्या का उपाय सर्वोत्तम प्रतीत होता है। इसी प्रकार पात्रों की हत्या तथा मृत्यु द्वारा भी प्रेमचंद अपने अभीष्ट को प्राप्त करते हैं। यथा–'निर्मला' में निर्मला 'रंगभूमि' में राजा महेन्द्र सिंह और सूरदास, 'कायाकल्प' में राजा विशाल सिंह शंखधर,

---

[1] 'कायाकल्प'–प्रेमचंद– पृष्ठ–236–250।

अहिल्या और मुंशी बज्रधर 'गबन' में रत्न और जोहरा तथा 'गोदान' में होरी के मृत्यु के प्रसंगों द्वारा प्रेमचंद कथा के प्रसार को समेटन तथा मनोवांचित निष्कर्ष तक पहुँचने में पूर्णरूप से सफल रहें हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि " प्रेमचंद" ने उपन्यासों की कथा को सुखपूर्ण अथवा दुखपूर्ण अन्त करते समय कथा में यथोचित मोड़ लाने के लिए तद्नुकूल परिस्थितियों तथा उपर्युक्त घटनाओं का सृजन किया हैं। कथा का सुखान्त अथवा दुखान्त होना उनके उपन्यास के लक्ष्य पर निर्भर है। इसीलिए प्रेमचंद ने कथानक का लक्ष्यानुरूप अन्त करने की ओर बहुत ध्यान दिया है। साथ ही उनका यह भी प्रयास रहा है कि कथा का उपसंहार स्वभाविक प्रतीत हो। उनके उपन्यासों में 'प्रतिज्ञा' 'सेवासदन' 'प्रेमाश्रम' 'गबन' और कर्मभूमि सुखान्त है जबकि 'निर्मला' और 'रंगभूमि' 'कायाकल्प' और 'गोदान' दुखान्त हैं।"[1] गोदान का कथानक प्रेमचंद के शिल्पगत वैशिष्ट तथा उनके कथा कौशल का एक महत्वपूर्ण साक्ष्य है जिसमें प्रेमचंद ने कथा रचना के क्षेत्र में एक नवीन प्रयोग किया है गोदान की कथा होरी की पालन की लालसा से आरम्भ होती हैं और उसका अन्त भी उसी अपूर्ण लालसा के लिए हुए होरी के मृत्यु के साथ होता है अर्थात कथा जिस कोण से प्रारम्भ होती है अन्ततः घूम फिरकर उसी कोण पर समाप्त भी होती हैं। इस दृष्टि से 'गोदान' का कथानक सर्वथा मौलिक एवं कलात्मक हैं जो कथारूप के सृजन मे निरन्तर विकास का द्योतक हैं।

प्रेमचंद के कथानकों की उपरोक्त विशेषताओं को दृष्टिगत रखते हुए कह सकते हैं कि प्रेमचंद के कथानक कथा शिल्प की दृष्टि से अनुपम हैं। उनके कथानकों का घटनातंत्र यथार्थ मनोवैज्ञानिक तथा युगानुरूप है उनमें सम्बद्धता मौलिकता स्वाभाविकता, रोचकता आदि गुण मिलते हैं। जिनमें मानवीय अनुभूतियों तथा जीवन व्यापारों की विशद व्याख्या हुई हैं। प्रेमचंद ने विविध प्रयोगों द्वारा कथा शिल्प के विकास में अपना बहुमूल्य योगदान देते हुए हिन्दी के उपन्यास साहित्य को समृद्धि किया हैं।

---

[1] हिन्दी उपन्यास की शिल्प–विधि का विकास–डॉ0 कृष्णा नाग पृष्ठ–98।

ख – पात्र और चरित्र चित्रण –

कोई भी औपन्यासिक कृति चाहे वह वर्णात्मक हो अथवा विश्लेषणात्मक उसमें पात्रों के महत्व की उपेक्षा नही की जा सकी। उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र कहकर परिभाषित करने वाले कथाकार प्रेमचंद ने अपनी कृतियों में से इस महत्व को अक्ष्क्षुण रखते हुए अपने पात्रों पर अपनी इस उक्ति को सार्थक कर दिखाया है। सामान्यतया उपन्यास दो प्रकार के होते है वस्तु प्रधान तथा पात्र प्रधान प्रायः ऐसा देखने में आया है कि जिस उपन्यास में वस्तु विधान को प्रमुखता दी जाती है उसकी पात्र योजना उतनी उत्कृष्ट नहीं होती जितनी पात्र योजना उतनी उत्कृष्ट नहीं होती जितनी चरित्र प्रधान उपन्यासों की। प्रेमचंद उपन्यास मानव मन के परिष्कार का माध्यम मानते हैं। इसी कारण चरित्र–प्रधान उपन्यासों को वरीयता प्रदान करते हुए वे लिखते हैं–" उपन्यासकार की सबसे बड़ी विभूति ऐसे चरित्रों की सृष्टि करना है जो अपने सद्व्यवहार और सद्विचार से पाठक को मोहित कर लें.........................चरित्रों को उत्कृष्ट और आदर्श बनाने के लिए यह जरूरी नहीं कि वह निर्दोष हों।.................चरित्र को सजीव बनाने के लिए उसकी कमजोरियों का दिग्दर्शन कराने से कोई हानि नहीं होती। यही कमजोरियाँ उस चरित्र को मनुष्य बना देती हैं।"[1] प्रेमचंद ने अपने अधिकतर पात्रों का चयन यथार्थ जीवन से किया है इस तथ्य को स्वीकार करते हुए वे स्वयं लिखते हैं–"मेरे अधिकांश पात्र वास्तविक जीवन से लिये गये हैं,.......................... जब तक किसी चरित्र का कुछ आधार वास्तविकता में न हो,'तब तक वह छाया–सा अनिश्चित सा रहता है और उसमें विश्वास पैदा करने की ताकत नहीं आती।"[2] अतएव प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों तथा कहानियों में ऐसे पात्रों की सृष्टि की है जो वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करते हैं।

प्रेमचंद ने जनसाधारण के दुख, दर्द, हर्ष–विषाद कठिनाइयों तथा विपत्तियों को वाणी प्रदान करने के लिए भारतीय समाज के प्रत्येक वर्ग तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से अपने पात्रों का चुनाव किया है। मानव की मानाविध समस्याओं को चित्रित करने के कारण उनके पात्रों के चयन को क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है इस विषय में रणवीर रांग्रा लिखते हैं–"अपने युग की प्रवृत्तियों और पारिवारिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय समस्याओं के चित्रण के लिए प्रेमचंद ने जब जैसी आवश्यकता पड़ी वैसे पात्रों का चयन किया। उनका ध्यान मूलतः शोषित

1
2

वर्ग पर केन्द्रित होने पर भी उनके पात्र–चयन का घेरा इतना व्यापक रहा कि सुपुत्र और कुपुत्र, रखैल और प्रेमिका, वेश्या और पतिव्रता, विधवा और सधवा, माता और विमाता से लेकर किसान और जमींदार, मजदूर और मिल मालिक, क्लर्क और अफ़सर, चाण्डाल और पण्डित, वकील, डाक्टर–प्रोफेसर तक नित्य–प्रति के सम्पर्क में आने वाले सब प्रकार के लोग उनके उपन्यासों में मिल जाते है।"[1] इस प्रकार प्रेमचंद ने समाज के प्रत्येक वर्ग तथा श्रेणी के पात्रों को अपने कथा साहित्य में स्थान दिया है जिनमें उच्च वर्ग के राजा तथा रायसाहबों से लेकर मध्यवर्गीय समाज के सदस्य एवं निम्नवर्ग से सम्बन्ध रखने वाले अछूत इत्यादि सभी सम्मिलित हैं।

समाज का सर्वागीण चित्रण करने के लिए उन्होंने उसके प्रत्येक क्षेत्र से पात्र चुने हैं। जिसके कारण उनके उपन्यासों में पात्रों की एक भारी संख्या–परिलक्षित होती है। नायक–नायिक और खल पात्रों के अतिरिक्त गौण और अनाम पात्रों की एक लम्बी कतार उनके उपन्यासों में दिखाई देती है। उनके आरम्भिक उपन्यासों 'प्रेमा' तथा 'वरदान' में क्रमशः पैसठ तथा पचास प्रेमाश्रम में तथा 'कर्मभूमि' में लगभग अस्सी पात्र, गोदान में पचपन 'कायाकल्प' में पच्चहत्तर, 'रंगभूमि' में सबसे अधिक पात्र है जो संख्या में 100 के लगभग है उनके सबसे कम पात्रों वाले उपन्यास 'निर्मला' में भी पात्रों की संख्या अट्ठाइस से कम नहीं है पात्रों की इस अधिकता के बाद भी प्रेमचंद के कुछ पात्र ऐसे भी हैं जो भीड़ में होते हुए भी अपनी एक अलग पहचान रखते हैं ऐसे ही पात्र पाठक की स्मृतियों में स्थान पाकर अमर हो जाते है। इस प्रकार के पात्रों का सृजन प्रेमचंद के रचना कौशल की एक महत्वपूर्ण विशेषता है।

प्रेमचंद अपने पात्रों की सृष्टि करते समय सर्वप्रथम उनका परिचय देते हैं। परिचय द्वारा पात्रों का सृजन करने का यह ढंग उन्होने प्रायः अपने सभी उपन्यासों में अपनाया है। अपने पात्रों का परिचय देते समय सामान्यतः उन्होने जो विधियाँ अपनाई है वह क्रमशः इस प्रकार है। 1–पात्र के नाम द्वारा 2–आकृति वर्णन द्वारा 3–प्रवृत्ति अथवा स्वभाव वर्णन द्वारा 4–पात्र की सामान्य परिस्थिति की जानकारी द्वारा। साधारणतः, कोई भी उपन्यासकार अपने पात्र का परिचय उसके नाम से ही देता है। पात्रों के नामकरण की दृष्टि से हिन्दी कथा साहित्य में दूर–दूर तक प्रेमचंद का कोई ऐसा प्रतिद्वन्द्वी नहीं दिखायी देता जिसकी तुलना

---

[1] हिन्दी–उपन्यास में चरित्रचित्रण–रणवीर रांग्रा–पृ0 159।

प्रेमचंद से की जा सका। इस विषय में विजय दान देथा का कहना है–"उपन्यास और कथा साहित्य में पात्र होते हैं। पात्रों के नाम होते हैं पर नाम के साथ–पात्र का स्वभाव, उसका आचार–व्यवहार, उसकी रूचि, उसका सम्पूर्ण समाज, उसका वर्ग भेद, उसकी जातीय भिन्यता, उसकी वैयक्तिक विशिष्टता उसके जीवन का स्तर, उसकी शिक्षा संस्कृति, उसकी परम्परागत थाती आदि ये समग्र विशेषताएँ हिंदी के संम्पूर्ण कथा–साहित्य में किसी भी द्वारा कहीं भी चित्रित हो सकी हैं तो इसके लिए एक मात्र आसरा है–मंशी प्रेमचंद ! नाम संस्कार की इस कलात्मक विशिष्टता को ध्यान में रखते हुए यदि समूचे भारत वर्ष में केवल दो ही लेखकों का नाम पेश किया जाए तो शरत् बाबू और प्रेमचंद के सिवाय किसी भी दूसरे जोड़े का चुनाव नही किया जा सकता। अपने साहित्य में तो ले–देकर यें ही एक मात्र ऐसे 'पुरोहित' हैं–जिनके पात्रों के नामकरण में कुछ तथ्य, सार्थकता और संगति का आँभास मिलता है।"[1] अपने पात्रों को नाम प्रदान करते समय प्रेमचंद इस बात का विशेष ध्यान रखते हैं कि पात्रों का नाम पूर्णतः स्वभाविक प्रतीत हो। इसलिए पात्रों का नामकरण करते समय वह उनके वर्ग तथा सामाजिक रहन सहन को दृष्टिगत रखना नहीं भूलते इसीलिए उनके गहरी पात्रों के नाम सुरूचि पूर्ण होते है। यथा चन्द्रप्रकाश खन्ना, श्याम बिहारी, तंखा, पं0 ओंकार नाथ, मिस मालती, सरोज तथा मीनाक्षी इत्यादि वही ग्रामीण पात्रों के नाम में गँवारूपन झलकता है जैसे भैरों, जगधर, दुखरन, भगत, भुग्गी, शिवटहल, बिसेसर, गूदड़, नोखेराम, अलगू बेचन, सिलिया, रूपा, कोदई, सोनी, मुन्नी, सुलोनी, इत्यादि इन पात्रों के नाम इन्हें स्वाभाविकता प्रदान करते हैं। विजय दान देथा का कहना है–" उनके ग्रामीण पात्रों का यदि नाम बदल दिया जाय तो सारी बात ही बदल जाएगी। लगता है कि उन पात्रों का कोई दूसरा नाम हो ही नहीं सकता। और न उनमें नामों वाले पात्रों का चारित्रिक व्यवहार भी कुछ भिन्न प्रकार का हो सकता है। गोदान में होरी का नाम बदल कर शेखर कर दिया जाय तो सारे उपन्यास की संगति ही बिगड़ जाएगी। जो होरी की बातें हैं–वे केवल होरी ही की रहेंगी, शेखर नाम के पीछे वे क्यों कर घसीटी जा सकती है ? धनिया के स्थान पर यदि भूल–चूक से भी सुनीता नाम की कल्पना कर ली जाय तो ऐसा भय बना रहता कि गोदान की सारी कला ही एकदम से ढ़ह पड़ेगी। [2] अपने पात्रों के वर्गानुरूप नामकरण के अन्तर्गत उच्चवर्ग के पात्रों को वे शान्ति कुमार, मनीराम, लाला

---

[1] प्रेमचंद के पात्र–कोमल कोठारी–विजय दान देया पृ0 32

[2] प्रेमचंद के पात्र–संपादक कोमल कोठारी, विजय दान देथा, पृ0 33

समरकान्त, अमरकान्त रेणुका सुखदा तथा नैना सरीखे नाम प्रदान करते हैं वही निम्न वर्ग में गूदड़ चौधरी, मतई, मुरली, खटिक, अलगू कोरी, पयाग, तथा सलोनी काकी जैसे नाम मिलते हैं।

नामकरण द्वारा पात्रों के सृजन के अतिरिक्त प्रेमचंद ने पात्रों की आकृति तथा वेशभूषा द्वारा भी पात्र की सृष्टि की है जिसके द्वारा पाठक उस पात्र के स्वभाव का पर्याप्त अनुमान लगा सकता है। 'गोदान' में गाँव के महाजन झिंगुरी सिंह का परिचय उन्होनें इन शब्दों में दिया है–"झिंगुरी सिंह बैठे दतून कर रहे थे। नाटे, मोटे खल्वाट, काले लम्बी नाक और बड़ी–बड़ी मूँछों वाले आदमी थे बिल्कुल विदूषक जैसे।"[1] 'कर्मभूमि' में अमरकांत की आकृति का वर्णन करते हुए लिखते हैं–"अमरकान्त सॉवले रंग का, छोटा सा दुबला पतला कुमार था। अवस्था बीस की हो गई थी। पर अभी मसें भी न भीगी थी चौदह पन्द्रह साल का किशोर सा लगता था।"[2] इसी प्रकार पात्रों की आकृति एवं वेशभूषा एवं चाल ढाल के द्वारा उसके व्यक्तित्व की वाह्याभ्यांतरिक प्रकृति का परिचय देने की प्रणाली प्रेमचंद ने अपने सभी उपन्यासों में अपनाइ है। गोदान में मिस मालती की आकृति एवं भेष भूषा का वर्णन इस प्रकार किया है। "दूसरी महिलाओं जो ऊंची एंड़ी का जूता पहने हुए हैं और जिनकी मुख छवि पर हँसी फूटी पड़ती है, मिस मालती है। आप इंगलैण्ड से डाक्टरी पढ़ आयी है और अब प्रैक्टिस करती है। ताल्लुकेदारों के महलों में उनका बहुत प्रवेश हैं। आप नवयुग की साक्षात प्रतिमा है। गात कोमल, पर चपलता कूट–कूट कर भरी हुई। झिझक की अच्छी जानकर, आमोद–प्रमोद को जीवन का तत्व समझनें वाली, लुभानें और रिझानें की कला में निपुण, जहाँ आत्मा का स्थान है, वहाँ प्रदर्शन, जहाँ ह्रदय का स्थान है, वहां हाव–भाव, मनोद्गारों पर कठोर निग्रह, जिसमें इच्छा या अभिलाषा का लोप–सा होगा।"[3]

पात्रों के आकृति वर्णन के द्वारा उनके स्वभाव का परिचय देने के साथ–साथ प्रेमचंद स्वभावगत विशेषता के द्वारा इन पात्रों की चारित्रिक प्रवृत्तियों को इंगित करके उनके चरित्र को उभारकर पाठक के सामने लाने में पूर्णरूप से सफल हुए हैं। 'वरदान' के नायक प्रताप के पिता मुंशी शलिगराम का परिचय

---

[1] गोदान–प्रेमचंद–पृ0 106

[2] कर्मभूमि–प्रेमचंद–पृ0 7

[3] गोदान–प्रेमचंद पृ0 56।

इसी प्रकार देते हुए प्रेमचंद लिखते हैं–"यद्यपि प्रकट में वे सामान्य संसारी मनुष्यों की भाँति संसार के क्लेशों से क्लेशित और सुखों से हर्षित दृष्टिगोचर होते थे, तथापि उनका मन सर्वदा उस महान् और आन्दपूर्ण शान्ति का सुख भोग करता था जिस पर दुःख के झोकों और सुख की थपकियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।"[1] प्रतिज्ञा के नायक अमृतराय का चारित्रिक परिचय इन शब्दों में कराते हैं–"अमृतराय सिद्धान्तवादी आदमी थे–बड़े ही संयम–शील, कोई काम–नियम विरूद्ध न करते। जीवन का सद्व्यय कैसे हो, इसका उन्हें सदैव ध्यान रहता था। धुन के पक्के आदमी थे। एक बार कोई निश्चय करके उसे पूरा किये बिना न छोड़ते।"[2] अपने पात्र की स्वभावगत विशेषता का निदर्शन करते समय प्रेमचंद पूरी सतर्कता से काम लेते हैं। 'रंगभूमि' के नायक सूरदास का परिचय इन शब्दों में कराते हैं–"भारतवर्ष में अन्धे आदमियों के लिए न नाम की जरूरत होती है, न काम की। सूरदास उनका बना बनाया नाम है और भीख मांगना बना बनाया काम। उनके गुण और स्वभाव भी जगत प्रसिद्ध हैं–गाने बजाने में विशेष रूचि, हृदय में विशेष अनुराग, अध्यात्म और भक्ति में विशेष–प्रेम उनके स्वाभाविक लक्षण हैं। बाह्य दृष्टि बन्द और अन्तर्दृष्टि खुली हुई।"[3] कृषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र होरी की चारित्रिक विशेषता को इस प्रकार व्यक्त करते हैं–"वृक्षों में फल लगते हैं, उन्हें जनता खाती है, खेती में अनाज होता है वह संसार के काम आता है, गाय के थन में दूध होता है, वह खुद पीने नहीं जाती दूसरे ही पीते हैं, मेघों से वर्षा होती है, उससे पृथ्वी तृप्त होती है। ऐसी संगति में कुत्सित स्वार्थ के लिए कहां स्थान। होरी किसान था और किसी के जलते हुए घर में हाथ सेंकना उसने सीखा ही न था।"[4]

अपने पात्र की चारित्रिक विशेषताओं का दिग्दशंन कराते समय वे उसकी पारिवारिक परिस्थितियों का विस्तार पूर्वक वर्णन करते हैं क्योंकि व्यक्ति और उसकी परिस्थितियों का सम्बन्ध अविच्छिन्न तथा अटूट होता है। व्यक्ति जिन परिस्थितियों में मध्य जीवन यापन करता है उसके अनरूप ही उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है। अतः किसी भी व्यक्ति का समुचित मूल्यांकन उसकी

---

[1] प्रेमचंद–वरदान–पृ० 6।

[2] प्रेमचंद–प्रतिज्ञा–पृ० 6।

[3] रंगभूमि, प्रेमचंद–पृ० 5।

[4] गोदान–प्रेमचंद–पृ० 10

परिस्थितियों के सन्दर्भ में ही किया जा सकता है। प्रेमचंद अपने सभी मुख्य पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं का विश्लेषण करते समय उन सामान्य पारिवारिक परिस्थितियों का परिचय करा देते है जिनके मध्य उनके व्यक्तित्व का विकास हुआ हैं। उदाहरणार्थ 'प्रतिज्ञा' में अमृतराय की पारिवारिक परिस्थितियों का परिचय कराते हुए कहते हैं–"उनकी पहली शादी उस वक्त हुई थी, जब वह कालेज में पढ़ते थे। एक पुत्र भी हुआ था, लेकिन स्त्री और पुत्र दोनों प्रसवकाल ही में संसार से प्रस्थान कर गये। अमृतराय को बहन से बहुत प्रेम था। उन्होंने निश्चय किया कि अब कभी विवाह न करूंगा, लेकिन जब बहन का विवाह हो गया और माता–पिता की एक सप्ताह के अन्दर हैजे से मृत्यु हो गयी, तो अकेला घर दुःखदायी होने लगा।"[1] 'कर्मभूमि' में अमरकान्त की पारिवारिक परिस्थिति का वर्णन इन शब्दों में करते हैं–"अमरकान्त के पिता लाला समरकान्त बड़े उद्योगी पुरूष थे। उनके पिता केवल एक झोपड़ी छोड़कर मरे थे, मगर समरकान्त ने अपने बाहुबल से लाखों की सम्पत्ति जमा कर ली थी। पहले उनकी एक छोटी–सी हल्दी की आढ़त थी। हल्की से गुड़ और चावल की बारी आयी। तीन बरस तक लगातार उनके व्यापार का क्षेत्र बढ़ता ही गया।...........उन्हें आश्चर्य होता था, किसी के रूपये मारे कैसे जाते हैं। ऐसा मेहनती आदमी भी कम होगा। घड़ी रात रहे गंगा स्नान करने चले जाते और सूर्योदय के पहले विश्वनाथ जी के दर्शन करने दुकान पर पहुंच जाते।"[2] इसी प्रकार दरिद्रता के मारे होरी तथा धनिया की दीनता को व्याख्यायित करते हुए गोदान में लिखते हैं–"अपने विवाहित जीवन के इन बीस बरसों में अच्छी तरह अनुभव हो गया था कि चाहे कितनी ही कतर–ब्योंत करो, कितना ही पेट तन काटो, चाहे एक–एक कौड़ी को दांतो से पकड़ो मगर लगान बेबाक होना मुश्किल है।"[3]

पात्रों के परिचय की उपरोक्त विधि द्वारा पात्र की सृष्टि करने के पश्चात प्रेमचंद उनके, चरित्र–चित्रण की ओर उन्मुख होते हैं। प्रेमचंद ने अपने पात्रों का चारित्रिक विकास प्रत्यक्ष तथा परोक्ष इन दो प्रणालियों के द्वारा किया है। प्रत्यक्ष रूप से चरित्र का विकास करते समय प्रेमचंद स्वयं उसके व्यक्तित्व का उद्घाटन करते हैं जबकि परोक्ष प्रणाली में पात्र के आचरण द्वारा उसके चरित्र के विश्लेषित

---

[1] प्रतिज्ञा–प्रेमचंद पृ0 7

[2] प्रेमचंद–कर्मभूमि–पृ0 5

[3] प्रेमचंद–गोदान–पृ0 5

करते हैं। प्रत्यक्ष प्रणाली के अन्तर्गत पात्र का चरित्र–चित्रण प्रेमचंद निम्न लिखित प्रकार से करते हैं (1)स्वभाव वर्णन, 2–मनोदशा वर्णन 3–परस्पर विरोधी पात्रों के चित्रण के द्वारा।

स्वभाव वर्णन प्रणाली के द्वारा पात्रों का चरित्र चित्रण करते समय प्रेमचंद उनके गुणों तथा दोषों को स्थान–स्थान पर उद्घाटित करते चलते हैं। 'सेवासदन' में सुमन तथा उसकी बहन शान्ता की स्वभावगत विशेषताओं द्वारा उनका चरित्र–चित्रण करते हुए लिखते हैं–" बड़ी लड़की सुमन सुन्दर,चंचल और अभिमानिनी थी। छोटी लड़की शान्ता भोली, गम्भीर सुशील थी।"[1] गोदान के जमीदारों पात्र रायसाहब अमरपाल सिंह की चारित्रिक विशेषताओं का वर्णन इन शब्दों में करते हैं–"रायसाहब राष्ट्रवादी होने पर भी हुक्काम से मेल –जोल बनाये रखते थे। उनकी नजरें और डालियाँ और कर्मचारियों की दस्तूरियाँ जैसी की तैसी चली आती थीं। साहित्य और संगीत के प्रेमी थे, ड्रामा के शौकीन अच्छे वक्ता थे, अच्छे लेखक, अच्छे निशाने बाज।"[2] इसी भाँति कायाकल्प में चक्रधर के चारित्रिक गुणों को इन शब्दों में व्याख्यायित किया है–"उन्हें यह हास्यास्पद मालूम होता था कि आदमी केवल पेट पालनें के लिए आधी उम्र पढ़ने में लगा दे। अगर पेट पालना ही जीवन का आदर्श हो तो पढ़ने की जरूरत ही क्या। मजदूर एक अक्षर भी नहीं जानता, फिर भी वह अपना और अपने बालबच्चों का पेट बड़े मजे में पाल लेता हैं।....................वह भूखों मर जाते, लेकिन नौकरी के लिए आवेदन पत्र लेकर कहीं न जाते। विद्याभ्यास के दिनों में भी वह सेवा कार्य में अग्रसर रहा करते थे। और वहाँ तो इसके सिवा उन्हें और कुछ सूझता ही न था।"[3] इस प्रकार प्रेमचंद अपने पात्रों के स्वभाव का स्वयं वर्णन करते हुए उनके गुण तथा दोषों को सामने लाते हैं जिससे इन पात्रों के चरित्र को समझना पाठकों के लिए सरल हो जाता है।

पात्रों की स्वभावगत विशेषताओं के वर्णन द्वारा उनके चरित्र को विश्लेषित करने के, अतिरिक्त, प्रेमचंद ने अपने पात्रों की मनोदशा के वर्णन द्वारा उनके मन–मस्तिष्क में चलने वाली अन्तर्विवादों की आँधी तथा उनके मनोसंग्राम का विश्लेषण करके उनके चरित्र पर प्रकाश डाला है निर्मला में पिता की उम्र के

---

[1] सेवासदन, प्रेमचंद–पृ0 6।

[2] गोदान, प्रेमचंद–पृ0 16।

[3] कायाकल्प–प्रेमचंद–पृ0 8।

व्यक्ति से विवाह होने के उपरान्त निर्मला की जो मनोदशा है उसका वर्णन कुछ इस प्रकार करते हैं–"निर्मला जब वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर आइने के सामने खड़ी होती और उसमें अपने सौंदर्य की सुषमापूर्ण आभा देखती तो उसका हृदय एक सतृष्णा कामना से तड़प उठता था। एस वक्त उसके हृदय में एक ज्वाला–सी उठती। मन में आता उस घर में आग लगा दूँ। अपनी माता पर क्रोध आता, तोताराम पर क्रोध आता।"[1] प्रेमाश्रम में श्रद्धा के मन में उठने वाले विचारों के तूफान को दो इन शब्दों में व्यक्त करते हैं–"जब से उसने सुना था कि प्रेमशंकर घर आ रहे हैं, उसकी दशा उस अपराधी की सी हो रही थी, जिसके सिर पर नंगी तलवार लटक रही हो। उसका हृदय कांप रहा था। कहीं ऊपर न आते हों, कहीं वह आकर मेरे सम्मुख न खड़े हो जायें, मेरे अंग का स्पर्श न कर लें। मर जाना इससे कहीं आसान था ? वह इन्हीं जटिल चिन्ताओं में खड़ी थी कि प्रेमशंकर "उसके सामने आकर खड़े हो गये। श्रद्धा पर अगर बिजली गिर पड़ती, भूमि उसके पैरों के नीचे से सरक जाती अथवा कोई सिंह आकर खड़ा हो जाता तो भी वह इतनी असावधान होकर कमरे में न भाग जाती।"[2] इसी प्रकार 'कायाकल्प' में चक्रधर की मनोदशा का वर्णन करते हुए लिखते हैं–"अब चक्रधर आहल्या से अपने मन की बात कभी न कहते। यह सम्पदा उनका सर्वनाश किये डालती थी। क्या अहल्या यह सुख विलास छोड़कर मेरे साथ चलने पर राजी होगी ? उन्हे रांका होती थी कि कहीं वह इस प्रस्ताव को हंसी में न उड़ा दे या मुझे रूकने के लिए मजबूर न करे। इसी प्रकार के कितने ही प्रश्न चक्रधर के मन में उठते रहते थे और वह किसी भांति अपने कर्तव्य का निश्चय न कर सकते थे। केवल एक बात निश्चित थी, वह इन बन्धनों में पड़कर अपना जीवन नष्ट न करना चाहते थे सम्पत्ति पर अपने सिद्धान्तो को भेंट न कर सकते थे।"[3]

पात्रों की मनोदशा का वर्णन करते समय प्रेमचंद उपमा द्वारा भी पात्र की मन स्थिति का चित्रण करते है निर्मला की दारूण और विवश दशा के चित्रण के लिए इस प्रकार की उपमा का प्रयोग करते हैं। "निर्मला की दशा उस पंखहीन पक्षी की–सी हो रही थी जो सर्प को अपनी ओर आते देखकर उड़ना चाहता है, पर उड़ नहीं सकता, उछलता है और गिर पड़ता है।"[4] 'रगभूमि' में सोफिया

---

[1] प्रेमचंद–निर्मला–पृ0 40

[2] 'प्रेमाश्रम' प्रेमचंद पृ0 123–124

[3] कायाकल्प–प्रेमचंद–पृ0 240–241

[4] निर्मला प्रेमचंद–पृ0 76

आदर्श की आड़ लेकर भावुकता में कहे गए अपने शब्दों पर पश्चताप करते हुए अपने प्रेमी विनय के पत्र को रात के अंधेरे में खोज़ में लगती है परन्तु उसे निराशा ही हाथ लगती है उसकी इस निराश अवस्था पर टिप्पणी करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं। "उसकी दशा उस मनुष्य की सी थी, जो किसी मेले में अपने खोए हुए बंधु को ढूँढ़ता हो, वह चारों ओर आँखे फाड़–फाड़कर देखता है, उसका नाम ले–लेकर जोर–जोर से पुकारता है, उसे भ्रम होता है, वह खड़ा है लपककर उसके पास जाता है और लज्जित होकर लौट आता है। अन्त को निराश होकर जमीन पर बैठ जाता है और रोने लगता है।"[1] इसी प्रकार गबन में रमानाथ जब गंगू जौहरी की दुकान से जालपा के लिए गहने उधार लेकर आता है तो उस समय की उसकी मनः स्थिति को प्रेमचंद इस उपमा द्वारा व्यक्त करते हैं–"यह उस बालक का आनन्द न था जिसने माता से पैसे मांगकर मिठाई ली हो, बल्कि उस बालक का जिसने पैसे चुराकर ली हो। उसे मिठाइयां मीठी तो लगती है, पर दिल कांपता रहता है कि कहीं घर चलने पर मार न पड़ने लगे।"[2] इस प्रकार प्रेमचंद विभिन्न परिस्थितियों में अपने पात्रों की मानसिक दशा का चित्रण करते हुए उनके व्यक्तित्व के आन्तरिक पक्ष को उजागर करते हैं।

पात्रों की मनोदशा के विश्लेषण के अतरिक्त प्रेमचंद परस्पर विरोधी पात्रों का एक साथ चित्रण करके अपने पात्रों के चरित्र को सामने लाते हैं और इस प्रकार वे दो विरोधी पात्रों के स्वभाव में निहित अन्तर को भी स्पष्ट कर देते हैं। 'कर्मभूमि' में लाला समरकान्त और अमरकान्त के स्वभावगत अन्तर को इस प्रकार व्यक्त करते हैं–"लालाजी (समरकान्त) जो काम करते, बेटे की उस से अरूचि होती। वह मलाई के प्रेमी थे, बेटे को मलाई से अरूचि थी। वह पूजापाठ बहुत करते थे, लड़का इसे ढोंग समझता था।"[3] 'प्रतिज्ञा' में कमला प्रसाद तथा सुमित्रा के चारित्रिक अन्तर्विरोध का वर्णन करते हुए उनके चरित्र पर प्रकाश डालते हैं–"सुमित्रा उदार थी, कमला पल्ले सिरे का कृपण। वह वैसे को ठीकरा समझती कमला कौड़ियों को दाँत से पकड़ता...............सुमित्रा में नम्रता, विनय और दया थी, कमला में घमण्ड, उच्छृंखलता और स्वार्थ।"[4]

---

[1] रंगभूमि प्रेमचंद, पृ0 137

[2] गबन–प्रेमचंद, पृ0 59–60

[3] कर्मभूमि–प्रेमचंद–पृ0 6।

[4] 'प्रतिज्ञा'–प्रेमचंद–पृ0 47–48।

प्रेमचंद अपने उपन्यासों में कहीं–कहीं पात्र के मनोभावानुकूल वातावरण का निर्माण करके पात्रों का चरित्र–चित्रण किया है गबन में उन्होंने विरहिणी जालपा की चिन्ता विदग्धमनः स्थिति के अनुरूप वातावरण की सृष्टि की है।''क्वार का महीना लग चुका था। मेघ के जलशून्य टुकड़े कभी–कभी आकाश में दौड़ते नज़र आ जाते थे। जालपा छत पर लेटी हुई उन मेघखण्ड़ों की किलोलें देखा करती। बादल के टुकड़े भाँति–भाँति के रंग बदलते, भाँति–भाँति के रूप भरते। कभी आपस में प्रेम से मिल जाते, कभी रूठ कर अलग–अलग हो जाते, कभी दौड़ने लगते, कभी ठिठक जाते। जालपा सोचती रमानाथ भी कहीं बैठे–बैठे यही मेघ–क्रीड़ा देखते होंगे।''[1] इसी भाँति वेश्या वृत्ति के दल–दल में गिरकर सदन के प्रेमजाल में लिप्त सुमन के चित्त की प्रवृत्ति के अनुरूप वातावरण का इन शब्दों में वर्णन करते हैं–'' रात के दस बज गये थे। शरद ऋतु की सुन्दर चाँदनी छिटकी हुई थी। सुमन खिड़की से नीलवर्ण आकाश की ओर ताक रही थी। उसी प्रकार उसके हृदय में चन्द्ररूपी सुविचार ने विकार रूपी तारागण को ज्योतिहीन कर दिया था।''[2] पात्रों के चरित्र–चित्रण की परोक्ष प्रणाली के अन्तर्गत प्रेमचंद पात्र के आचरण, सम्भाषण, चिन्तन, आत्मविश्लेषण तथा स्वीकारोक्ति द्वारा पात्र के चरित्र पर प्रकाश डालते हैं।

'' प्रेमचंद ने चरित्र–चित्रण की परोक्ष प्रणाली का सहारा लेकर पात्र के आचरण द्वारा उसके चरित्र का चित्रण किया है। 'रंगभूमि' में सूरदास के आचरण द्वारा उन्होनें उसकी परोपकारी तथा न्यायप्रिय वृत्ति का परिचय दिया है। प्रेमचंद ने उसे सरल व सत्यनिष्ठ जीवन व्यतीत करते हुए तथा सच्चे खिलाड़ी की भाँति जीवन का खेल–खेलते हुए चित्रित किया है। अपनी जमीन छिन जाने पर भी सूरदास प्रतिहिंसा का निषेध करता है। उसके हृदय में मैल को स्थान नहीं है, इसीलिए भैरों द्वारा अपमानित होने पर भी वह भैरों द्वारा चुराई गई अपनी जमा पूंजी उसे लौटा देता है। लोक निन्दा की परवाह न कर वह सुभागी को शरण देता है। वह धर्मयुद्ध का सच्चा सिपाही है और इस लड़ाई में धर्म, न्याय, क्षमा, सत्य तथा साहस के शस्त्रों द्वारा सच्चे सिपाही की भाँति लड़ता रहता है। यही बात 'कायाकल्प' के चक्रधर के चरित्र–चित्रण में भी दिखायी पड़ती है। प्रेमचंद ने चक्रधर के आचरण द्वारा उसका सेवामय जीवन चित्रित किया है। सेवा की उस पर ऐसी धुन सवार है कि नौकरी को इसमें बाधक समझकर, वह पिता के लाख

---

[1] 'गबन'–प्रेमचंद पृ0 156–157।

[2] सेवासदन–प्रेमचंद पृ0 77।

कहने पर भी नौकरी करने को तैयार नहीं होता। भोग–विलास, सुख और ऐश्वर्य से उसे चिढ़ है, इसलिए भाग्य के चमत्कार से जब वह राजा विशाल सिंह का दामाद बन जाता है,तब भी भोग–विलास में जीवन खर्च न कर वह समस्त ऐश्वर्य को लातमार कर, दीन दुखियों की सेवा करने के लिए घर से निकल पड़ता है। उसके सेवापरायण, निर्लोभी, त्यागी और निर्भीक जीवन की झांकी देते हुए प्रेमचंद ने उसे कुछ भीड़ के सामने अचल, अहल्या के साथ विवाह करने का वचन पालन करने में अड़िग और अन्त में समस्त वैभव का पसारा छोड़ कर गृह त्याग करते दिखाया है।"[1]

चरित्र–चित्रण की परोक्ष विधि को अपनाते हुए प्रेमचंद के पात्रों के सम्भाषण द्वारा भी चरित्र–चित्रण किया है उदाहरणार्थ रंगभूमि के विभिन्न पात्र सूरदास के चरित्र की प्रशंसा कुछ इस प्रकार करते हैं–"नायकराम राजा महेन्द्र कुमार सिंह से कहते हैं–"हुजूर उस जन्म का कोई बड़ा महात्मा है।" इसके उत्तर में राजा महेन्द्र कुमार कहते हैं–"उस जन्म का नहीं, इस जन्म का महात्मा है।"[2]

क– सूरदास वार्तालाप में राजा साहब को हरा देता है। उसके विचारो में दृढ़ता है।

ठाकुरदीन के मतानुसार–"सूरे को किसी देवता का इष्ट है।"इंदु के शब्दों में–"वह अपनी धुन का पक्का, निर्भीक, निस्प्रह, सत्यनिष्ठ आदमी हैं, किसी से दबना नहीं जानता।"

ख–भैरों के विचार में–"यह आदमी नही साधु है।"[3] इसी प्रकार रंगभूमि का एक प्रसिद्ध पात्र इन्द्रदत्त प्रभुसेवक से सूरदास के विषय में कहता है–"कितना भोला आदमी है। सेवा और त्याग की संदेह मूर्ति होने पर भी गरूर छू तक नही गया, अपने सतकार्य का कुछ मूल्य ही नहीं समझता। परोपकार इसके लिए कोई इच्छित कर्म नहीं रहा उसके चरित्र में मिल गया है। "[4] प्रतिज्ञा में अमृतराय तथा

---

[1] हिन्दी–उपन्यास की शिल्प–विधि का विकास–डॉ0 कृष्णानाग पृ0 109

[2] क–रंगभूमि (भाग–1), पृ0 118।

ख–रंगभूमि (भाग–1), पृ0 129।

[3] रंगभूमि (भाग–1) पृ0 117।

[4] रंगभूमि (भाग–1) पृ0 98।

दाननाथ की पारस्परिक वार्ता के माध्यम से अमृतराय के चरित्र पर प्रकाश ड़ाला है। दाननाथ के समझाने पर अमृतराय प्रत्युत्तर में कहता है–"लेकिन तुम जानते हो, मैने एक बार जो बात ठान ली। अब ब्रह्म भी उतर आयें तो मुझे विचलित नहीं कर सकते। पंड़ित अमरनाथ की युक्ति मेरे मन में बैठ गयी। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि प्रेमा ही नहीं किसी भी कुंवारी कन्या से विवाह करने का अधिकार मुझे नहीं है।"[1] इसी भाँति कर्मभूमि में समरकांत तथा अमरकांत के सम्भाषण द्वारा अमरकान्त का चरित्र–चित्रण किया है–"अमर ने उसी वितण्ड़ भाव से कहा–संसार धन के लिए प्राण दे, मुझे धन की इच्छा नहीं। एक मजूर भी धर्म और आत्मा की रक्षा करते हुए जीवन का निर्वाह कर सकता है। कम से कम मैं अपने जीवन में इसकी परीक्षा करना चाहता हूँ।"[2]

चरित्र–चित्रण की उपरोक्त विधियों के अतिरिक्त प्रेमचंद पात्रों के आत्म विश्लेषण के द्वारा भी उनके चरित्र को उद्‌घाटित किया है। जिसमें पात्र आत्म–विश्लेषण करता हुआ अपने चरित्र की विशेषताओं को प्रकट करता है। उदाहराणार्थ 'रंगभूमि' में अपनी सखी इंदु के दुर्व्यवहार से क्षुब्ध सोफिया रानी जाह्नवी की कठोरता पर रौद्र रूप धारण करते हुए आत्म विश्लेषण के द्वारा स्वयं अपने चरित्र पर प्रकाश डालती है–"मैं अभागिन हूँ, मैंने इन्हें बदनाम किया, अपने कुल को कलंकित किया, अपनी आत्मा की हत्या की, नही तो क्या मुझसे यह पूछा जाता–क्या यहीं सत्य की मीमांसा है ?"[3] कायाकल्प में काल कोठरी में बंद चक्रधर के आत्मविश्लेषण द्वारा उसकी परोपकारी तथा सेवामयी प्रवृत्ति पर प्रकाश ड़ाला हैं–"मैं तो कोई आन्दोलन नहीं कर रहा था। किसी को भड़का नही रहा था। जिन लोगों की प्राण–रक्षा के लिए अपनी जान–जोखिम में ड़ाली, वही मेरे साथ यह सलूक कर रहे हैं.................यदि सेवा करना पाप है तो मैं उस वक्त तक करता रहूँगा, जब तक प्राण रहेंगे। जेल की क्या चिन्ता ? सेवा करने के लिए सभी जगह मौके है। जेल में तो और भी ज्यादा।"[4] चरित्र चित्रण के लिए प्रेमचंद पात्रों की स्वीकारोक्ति द्वारा भी उनके चरित्र पर प्रकाश डालते हैं जिसके अन्तर्गत पात्र अपने दोषों को स्वीकार करते हुए अपने चरित्र को व्याख्यायित

---

[1] प्रतिज्ञा–प्रेमचंद–पृ0 37।

[2] कर्मभूमि–प्रेमचंद–पृ0 11।

[3] रंगभूमि–प्रेमचंद–पृ0 140।

[4] कायाकल्प–प्रेमचंद पृ0 123–124।

करता है। निर्मला में मंसाराम निर्मला के मातृत्व स्नेह को शंका की दृष्टि से देखता है जिस पर बाद में मुझे बहुत आत्मग्लानि होती है। अपनी भूल स्वीकार करते हुए वह कहता है–"आह! मै कितने भ्रम में था। मैं उसके स्नेह को कौशल समझता था। मुझे क्या मालूम था कि उन्हें पिताजी का भ्रम शांत करने के लिए मेरे प्रति इतना कटु–व्यवहार करना पड़ता है। आह ! मैने उन पर कितना अन्याय किया है।"[1] प्रेमाश्रम में रायकमलानंद ज्ञानशंकर को लिखे एक पत्र में भोग–विलास को अपने जीवन की भूल स्वीकार करते हुए लिखते हैं–"मैं भोग–विलास का भक्त था। यहाँ मुझे एक दिव्य आत्मा के सत्संग का सौभाग्य प्राप्त हो गया और अब मुझे यह ज्ञात हो रहा है कि मेरा सारा जीवन नष्ट हो गया है। कभी–कभी भोग के आनन्द में मग्न होकर मैं समझता था, यही आत्मिक शक्ति है, पर अब ज्ञात हो रहा है कि मैं भ्रमजाल में फँसा हुआ था। उस अज्ञान की दशा में अपने को आत्मज्ञानी समझता हुआ मैं संसार से प्रस्थान कर जाता, लेकिन तुमने वैद्य की तलाश में घर से बाहर निकाला और दैव योग से शारीरिक रोगों के वैद्य की जगह मुझे आत्मिक रोगों को वैद्य मिल गया।"[2] इसी प्रकार कायाकल्प में मनोरमा अपनी धन–लोलुपता को स्वीकार करती हुई चक्रधर से कहती है–"जब मैने देखा कि आपकी परोपकार कामरायें धन के बिना निष्फल हुई जाती हैं, जो कि मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है, तो मैंने उसी बाधा को हटाने के लिए यह बेड़ी अपने पैरों में ड़ाली। मैं दरिद्रता को संसार की विपत्तियों में सबसे दुखदायी समझती हूँ। लेकिन मेरी सुख लालसा किसी भले घर में शान्त हो सकती थी, उसके लिए मुझे जगदीशपुर की रानी बनने की जरूरत न थी।"[3] इसके अतिरिक्त–"सेवासदन' में सुमन अपने पतन के लिए अपने चंचल–चरित्र को कारण के रूप में स्वीकार कर लेती है। 'प्रेमाश्रम' का ज्ञानशंकर, इसी प्रकार, अनेक स्थानों पर अपनी दुर्बलताओं को स्वीकार कर लेता है। उपन्यासों के धनी–वर्ग के पात्र भी अपनी शोषण–नीति एवं विलासमय जीवन की सत्यता को अन्य पात्रों के सम्मुख स्वीकार करने में तनिक भी नहीं हिचकते। प्रेमचंद के ज्ञानशंकर, महेन्द्रकुमार विनय, विशाल सिंह, समरकांत, खन्ना, राय साहब, अमरपालसिंह आदि पात्रों में यही प्रवृत्ति विद्यमान है।"[4]

---

[1] 'निर्मला'–प्रेमचंद पृ0 76।

[2] 'प्रेमाश्रम' पृ0 382

[3] 'कायाकल्प' पृ0 192

[4] प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प–विधान–डॉ0 कमल किशोर गोयनका पृ0 518–519

प्रेमचंद अन्य पात्रों के सम्भाषण के द्वारा भी अपने पात्रों का चरित्र–चित्रण करते है इस प्रणाली के अनुसार एक पात्र किसी दूसरे पात्र की भर्त्सना अथवा सरहना द्वारा उसके चरित्र को विश्लेषित करता है। ''प्रेमचंद के उपन्यासों के पात्र बातचीत के समय एक–दूसरे के स्वभाव तथा चरित्र पर भी प्रकाश डालते हैं। प्रेमचंद के सभी उपन्यासों में यह प्रवृत्ति विद्यमान है,..............'प्रेमाश्रम' का ज्ञानशंकर अपने श्वसुर रायसाहब कमलानंद का उसके सम्मुख उसके चरित्र–कथन का साहस नहीं कर सका, परन्तु उसकी अनुपस्थिति में बड़ी निड़रता से उसके चरित्र पर प्रकाश डालता है। प्रेमचंद के पात्र अपने संम्वादों में अनुपस्थित गुणी पात्रों के गुणों और दुर्गणी पात्रों के दुर्गुणों का समान रूप से उद्घाटन करते है। 'प्रेमाश्रम' और 'प्रतिज्ञा' का अमृतराय, प्रेमाश्रम का प्रेमशंकर 'रंगभूमि' का सूरदास, 'कायाकल्प' का चक्रधर 'गबन' का जालपा 'कर्मभूमि'का अमरकांत आदि पात्रों के चरित्र की अन्य पात्र उनकी अनुपस्थिति में इतनी प्रशंसा करते हैं कि उन्हें साधु, देवता और महान् व्यक्ति की कोटि तक पहुँचा दिया गया है। इसके समान ही ज्ञानशंकर, क्लार्क, महेन्द्रकुमार, जॉनसेवक, रमानाथ, आदि पात्रों की अनुपस्थिति में उनके दुर्गुणों का उद्घाटन करके उन्हें बुरे व्यक्तियों के रूप में प्रस्तुत किया है।''[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेमचंद ने चरित्र–चित्रण की उपरोक्त विधियों का उपयोग करके हिन्दी उपन्यासों की रचना विधि में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित करते हुए हिन्दी उपन्यासों के भावी विकास की सुदृढ़ अधारशिला भी रखी। कहना न होगा कि पात्रों के सृजन तथा उनके चरित्र–चित्रण में प्रेमचंद ने जिस संवेदनशीलता और मनोवैज्ञानिक दृष्टि का परिचय दिया है वह उनके पूर्ववर्ती उपन्यासकारों के यहाँ अपवाद स्वरूप ही दिखाई पड़ता है। चरित्र शिल्प की विविधता की दृष्टि से प्रेमचंद के उपन्यासों में विविध प्रकार के पात्रों का चित्रण हुआ है। गतिशील, गत्यात्मक, सत् खल, कुंठाग्रस्त, विश्लेषक आदि प्रेमचंद के पात्र प्रतिपाद्य विषय के अनुकूल हैं। यथार्थ जीवन से सम्बन्ध रखने के कारण उनके समस्त पात्र जन सांधारण के जीवन की विविध अनुभूतियों को अभिव्यक्ति प्रदान करने में पूर्णरूप से सफल हैं। उनके चरित्र–चित्रण में मौलिकता, सप्राणता, स्वाभाविकता तथा सह्रदयता आदि गुण विशेष रूप से विद्यमान हैं। औपन्यासिक शिल्प की सार्थकता इस तथ्य में निहित है कि पात्र–चित्रण स्वमेव पूर्ण, तर्क सम्मत, विश्वसनीय, स्वाभाविक तथा सजीव प्रतीत हों प्रेमचंद के पात्र इस कसौटी पर खरे उतरते हैं।

---

[1] प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प–विधान–डा0 कमलकिशोर गोयन का पृ0 519

कथोपकथन–

वास्तविक जगत में जिस प्रकार मानव स्थूल से लेकर सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए परस्पर वार्तालाप का आश्रय ग्रहण करते हैं इसी प्रकार कथा–संसार के पात्र मानव–जीवन की सुख–दुख अनुराग–विराग इत्यादि अनुभूतियों को अपने कथोपकथन के माध्यम से व्यक्त करते हैं। कथानक को सहज तथा स्वभाविक गति प्रदान कर पात्रों को जीवन्तता प्रदान करने में कथोपकथन का महत्वपूर्ण योगदान होता है–" उपन्यास में कथोपकथन एक ऐसा तत्व है जिससें उपन्यास–लेखक अपनी रचना को वास्तविकता का रूप देने में सफल हो जाता है। इससे ऐसा आभास होने लगता है कि हम वास्तविक जगत् के जन–समुदाय में विचरण कर रहे हैं। कथोपकथन के द्वारा उपन्यास का सारा व्यापार हमें वास्तविक जगत के व्यवहार के अनुरूप ही झलकने लगता है। पाठक लेखक की काल्पनिक–सृष्टि का स्वयं रसास्वादन करने का अवसर प्राप्त कर लेता है।"[1] कथोपकथन के माध्यम से उपन्यासकार पात्रों की स्वभावगत प्रवृत्तियों, अनुभूतियों पर प्रकाश ड़ालते हुए उसके व्यक्तित्व को विश्लेषित करने में सफल होता है। प्रेमचंद का मानना है–"उपन्यास में वार्तालाप जितना अधिक हो और लेखक की कला से जितना ही कम लिखा जाय उतना ही उपन्यास सुन्दर होगा। वार्तालाप केवल रस्मी नही होना चाहिए।"[2] इसीलिए प्रेमचंद के समस्त उपन्यासों का लगभग पचास से साठ प्रतिशत कथोपकथन से आच्छादित है। उनके उपन्यासों की इसी विशेषता ने उनके कथा–साहित्य में एक ऐसी सजीवता भर दी है जो केवल वर्णनात्मकता द्वारा सम्भव नहीं थी।

प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों को जीवन्तता नाटकीयता तथा प्रभावशीलता प्रदान के लिए कथोपकथन का उपयोग अत्यन्त कुशलता पूर्वक किया है। एक सफल औपन्यासिक कृति में कथोपकथन की भूमिका कितनी अहम होती है। इस तथ्य से प्रेमचंद भली–भाँति अवगत थे यह सत्य है कि–"प्रेमचंद ने अपनी आरम्भिक कृतियों में सम्वादों को एक समान स्थान नही दिया है। 'असरारे मआविद' में कुल उपन्यास के आधे से कम पृष्ठों में सम्वादों की योजना की गई है। इससे स्पष्ट है कि प्रेमचंद अभी सम्वादों के महत्व को पूरी तरीके से हृदयंगम

---

[1] प्रेमचंद और उनका साहित्य–डॉ0 शीला गुप्त–पृ0 245।

[2] प्रेमचंद–'कुछ विचार' पृष्ठ 70

नहीं कर पाए है। 'सेवासदन' और 'प्रेमाश्रम' में आधे से अधिक तथा 'रंगभूमि' से 'गबन' तक के उपन्यासों में दो–तिहाई पृष्ठ तक, 'कर्मभूमि' तथा 'गोदान' में दो–तिहाई से कुछ अधिक पृष्ठ दिए गए हैं। यह स्थिति सम्वादों में उत्तरोत्तर महत्व देने की सूचक है।"[1] प्रेमचंद कथोपकथन का प्रयोग मुख्य रूप से कथा के विकास तथा चरित्र चित्रण के लिए किया है इसके अतिरिक्त अपने विचारो की अभिव्यक्ति–हेतु भी वे कथोपकथन का आश्रय लेते है। अपने रचनात्मक कौशल से उन्हांने अपने उपन्यासों में कथोपकथन को अत्यन्त सजीव तथा प्रभावोत्पादक वना दिया है।

कथोपकथन प्रेमचंद के उपन्यास की कथा के अभिन्न अंग है। घटनाओं को प्रगतिशील बनाने के लिए वे कथोपकथन का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में करते हैं यद्यपि प्रारम्भिक कृतियों में कथोपकथन द्वारा कथा के विकास की प्रवृत्ति में कमी दिखाई देती है परन्तु " 'सेवासदन' से सम्वादों की कथा के लिए उपयोग की प्रवृत्ति में वृद्धि हो गई है। प्रेमचंद ने घटित–अघटित घटनाओं की सूचना, कथा–सूत्रों को सम्बद्ध करने, कथा–संकेत तथा पात्रों के संकल्प, भविष्यवाणी आदि देने के लिए पात्रों के सम्वादों का उपयोग किया है। 'सेवासदन' के पश्चात् प्रायः सभी उपन्यासों में ये प्रवृत्तियाँ विद्यमान है।"[2] प्रेमचंद के उपन्यासों में कथोपकथन द्वारा कथा का विकास स्थान–स्थान पर परिलक्षित होता है। उदाहरणार्थ प्रेमाश्रम में प्रेमशंकर तथा डाक्टर प्रियनाथ के वार्तालाप द्वारा अभियुक्त की अपील करने की ओर संकेत करके कथा का विकास किया है। "डॉ0 प्रियनाथ भाई साहब, अवश्य अपील कीजिए। आप आज ही इलाहाबाद चले जाइये। आज के दृश्य ने मेरे हृदय को हिला दिया। ईश्वर ने चाहा तो अब की सत्य की विजय होगी।"[3] रंगभूमि में जॉनसेवक सूरदास की जमीन हड़पने की घोषणा करता हुआ कथा का विकास करता है–"सारी दुनिया भी अब इस जमीन को मेरे हाथों से नहीं छीन सकती। मैं सारे शहर में हलचल मचा दूंगा, सारे हिन्दुस्तान को हिला डालूंगा। अधिकारियों की स्वेच्छाचारिता की यह मिसाल देश के सभी पात्रों में उद्‌घृत की जायेगी।"[4] प्रतिज्ञा में अमृतराय दाननाथ से कहता है–"कई जगह जाना है। अनाथालय के लिए चन्दे की अपील करनी है। जरा

[1] प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प–विधान–डॉ0 कमल किशोर गोयन का पृ0 520

[2] प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प–विधान–डॉ0 कमल किशोर गोयन का–पृ0 520

[3] 'प्रेमाश्रम'–प्रेमचंद 316।

[4] रंगभूमि–प्रेमचंद पृ0 221।

दस–पांच आदमियों से मिल तो लूँ। भले आदमी विरोध ही करना था, तो अनाथालय बन जाने के बाद करते, तुमने रास्ते में कांटे विखेर दिये।"[1] इस प्रकार अमृतराय तथा दाननाथ के कथोपकथन द्वारा प्रेमचंद ने अनाथालय की स्थापना का संकेत देकर कथा का उत्तरोत्तर विकास किया है।

प्रेमचंद ने कथोपकथन का उपयोग चरित्रांकन के उद्वेश्य से करते हुए पात्र के चरित्र तथा उसके मनोभावों पर प्रकाश ड़ाला है। पात्र के चरित्र–चित्रण के लिए प्रेमचंद ने कथोपकथन का उपयोग कई प्रकार से किया है–पात्र के स्वगत भाषण द्वारा स्वयं अपने चरित्रांकन, अन्य पात्रों के पारस्परिक वार्तालाप द्वारा दूसरे पात्र का तथा अनुपस्थित किसी तीसरे पात्र का चरित्रांकन। कथोपकथन द्वारा चरित्र–चित्रण की ये प्रवृत्ति 'सेवासदन' से लेकर उनके प्रायः सभी उपन्यासों में विद्यमान है। उदाहरण के लिए 'प्रेमाश्रम' में प्रेमशंकर तथा ज्ञानशंकर के सम्भाषण द्वारा प्रेमशंकर के आदर्शवादी–चरित्र पर प्रकाश ड़ाला है।"मैं अपने श्रम की रोटी खाना चाहता हूँ। बीच का दलाल नही बनना चाहता। अगर सरकारी पत्रों में मेरा नाम दर्ज हो तो मैं इस्तीफा देने को तैयार हूँ। तुम्हारी भाभी के जीवन के निर्वाह का भार तुम्हारे सहायता करता करता रहूँगा।"[2] रंगभूमि में जॉनसेवक तथा सूरदास की आपसी बातचीत द्वारा सूरदास की परोपकारी प्रवृत्ति को उद्‌घाटित किया है सूरदास जॉनसेवक से कहता है–" साहब इस जमीन से मुहल्लेवालों का बड़ा उपकार होता है–कहीं एक अंगुल भर चरी नही है। आस पास के सब ढोर यहीं चरनें आते हैं। बेच दूंगा तो ढोरों के लिये कोई ठिकाना न रह जायेगा।"[3] इसी प्रकार रंगभूमि में सोफ़िया के प्रति विनय के प्रेमभाव का परिचय विनय के इस स्वगतभाषण में मिलता है। " कहीं वह यह तो नहीं समझ गयी कि मैंने जीवन–पर्यन्त के लिए सेवाव्रत धारण कर लिया है। मैं भी कैसा मन्द बुद्धि हूँ। उसे माता जी की अप्रसन्नता का भय दिलाने लगा............ ....क्या मैं अपने आत्म समर्पण से, अपने अनुराग से उसे सन्तुष्ट नहीं कर सकता ? यदि मेरे सेवा–व्रत, मात्र–भक्ति और संकोच का यह परिणाम हुआ, तो जीवन दुस्सह हो जायेगा।"[4] प्रेमचंद ने कथोपकथन को अपने विचारों के स्पष्टीकरण का

---

[1] 'प्रतिज्ञा' प्रेमचंद–पृ0 78।

[2] 'प्रेमाश्रम'–प्रेमचंद–पृ0 153

[3] रंगभूमि–प्रेमचंद–पृ0 12

[4] रंगभूमि–प्रेमचंद–पृ0 301

माध्यम भी बनाया गया है। इस प्रकार के कथोपकथन उनके लगभग सभी उपन्यासों में पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं।

उनके प्रत्येक उपन्यास में उनके विचारों को अभिव्यक्त करने वाला कोई न कोई पात्र अवश्य उपस्थित होता है। जैसे प्रतिज्ञा में अमृतराय, वरदान में बाला जी, सेवासदन में पद्म सिंह और विट्ठलदास, प्रेमाश्रम में प्रेमशंकर रंगभूमि में सूरदास के 'कायाकल्प' में चक्रधर 'गबन' में जालपा, 'कर्मभूमि' में अमरकांत तथा गोदान में मेहता आदि के संवाद अथवा भाषण प्रेमचंद के विचारों को ही विश्लेषित करतें हैं। परन्तु उन्होंने केवल एक पात्र तक अपने विचारों को सीमित रखा हो ऐसा नहीं है। उन्होंने एक ही उपन्यास के कई पात्रों को अपना प्रतिनिधि पात्र बनाया है। यथा 'सेवासदन' में पद्म सिंह, विटठलदास और गजानन्द 'प्रेमाश्रम' में प्रेमशंकर और, मायाशंकर, 'रंगभूमि' में सूरदास सोफ़िया तथा मिसेज सेवक, गबन में जालपा देवीदीन गोदान में होरी रायसाहब मेहता और मालती समय–समय पर प्रेमचंद के विचारों को ही व्यक्त करते हैं। पात्रों के कथोपकथन द्वारा प्रेमचंद के विचारों की अभिव्यक्ति के कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं। 'कायाकल्प' में मनोरमा तथा चक्रधर के संवाद प्रेमचंद के ही विचार को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं चक्रधर मनोरमा से कहता है–"लोकमत पर विजय पाने का अर्थ है, अपने सद्विचारों और सत्कर्मों से जनता का आदर और सम्मान प्राप्त करना। आत्म पर विजय पाने का आशय निर्लज्जता या विषय वासना नहीं, बल्कि इच्छाओं का दमन करना और कुवृत्तियों को रोकना है।"[1] रंगभूमि में विनय से सोफिया विवाह के लिए सामाजिक स्वीकृति को अनिवार्य बताते हुए प्रेमचंद के विचारों को ही विश्लेषित करती है–" आत्मिक मिलाप के लिए कोई बाधा नहीं, पर सामाजिक संस्कारों के लिए अपने सम्बन्धियों और समाज के नियमों की स्वीकृति अनिवार्य है, अन्यथा वे लज्जास्पद हो जाते हैं। मेरी आत्मा मुझे कभी क्षमा न करेगी। अगर मेरे कारण तुम अपने माता–पिता, विशेषतः अपनी पूज्य माता के कोप–भाजन बनो, और वे मेरे साथ तुम्हें भी कुल कलंक समझने लगें।"[2]

प्रेमचंद के कथोपकथन की सजीवता तथा स्वभाविकता का प्रमुख कारण यह है कि उनके कथोपकथन पात्रों की प्रवृत्ति के अत्यन्त समीप है उनकी वार्ता स्वाभाविक होती है उसमें कृत्रिमता अथवा आड़म्बर का लेश भी नहीं होता उनका

---

[1] 'कायाकल्प' पृष्ठ 93।

[2] रंगभूमि' पृ0 433।

देहाती पात्र उसी गर्व से बात करता है जैसे उनका शिक्षित पात्र। प्रेमचंद के ग्रामीण पात्र वार्तालाप करते समय कहीं भी किसी प्रकार की हीनता का अनुभव नहीं करते–"पद, मर्यादा, स्थिति, वर्ग के अन्तर्गत विभिन्न पात्र अत्यन्त ही स्वाभाविक और सहज ढंग से अपने–अपने वर्ग में हँसते बोलते हैं। उनका आपस मे हास–परिहास भी रस पूर्ण होता है। विभिन्न उपन्यासों में आए हुए, प्रसंग ग्रामीण पात्रों की वार्तालाप के साथ सुख–दुख, हास–परिहास के सुन्दर नमूने हैं। अबोध बच्चों की वार्तालाप उनकी ही बोली और जिज्ञासायुक्त शब्दों में ब्यक्त की गई है। 'निर्मला' और 'रंगभूमि' में सूरदास और मिठुआ की वार्तालाप इसके उदाहरण है। पति–पत्नी के पारस्परिक संभाषण में मान, प्रेम, रूठने–मनाने के नाना प्रकार के उपकरण संजायें हुए हैं। 'गबन' में इसके उदाहरण मिलते हैं। सपत्नियों का झगड़ा और एक दूसरे पर अग्नि–वाण–वर्षा का मनोरंजनकारी रूप 'कायाकल्प' में मिलता है। व्यवसाय–बुद्धि से सम्बन्ध रखने वाली व्यवहारिक शिष्टता के बहाने मोहक वाग्जाल विछाकर ग्राहकों को फँसाने वाली कुशल व्यापारियों की मनोवृत्तियों का परिचय हमें 'गबन' में दीख पड़ता है।"[1]

प्रेमचंद के कथोपकथन अधिकांशतः सुन्दर सजीव स्वाभाविक संक्षिप्त तथा रोचक हैं क्योंकि प्रेमचंद संवाद को स्वाभाविकता का पुट देने के लिए पात्रानुकूलता का विशेषरूप से ध्यान रखते हैं जिसके अन्तर्गत वे अपने सभी पात्रों से उनकी आयु, स्वभाव, प्रकृति, संस्कार शिक्षा और परिस्थितियों के अनुरूप भाषा का प्रयोग करते हैं–" प्रेमचंद अपने पात्रों से उनकी प्रकृति के अनुरूप ही शब्द और भाषा का प्रयोग कराते हैं। मक्कार की बातें मक्कारी से भरी हुई होती हैं। सत्यप्रिय की सच्चाई से। क्रोधी साधारण बातचीत में भी अपना क्रोध नहीं छिपा पाता। शान्त प्रकृति का पात्र (प्रेमशंकर, 'प्रेमाश्रम') शब्दों द्वारा ही सहिष्णुता का आदर्श खड़ा कर देता है। 'रंगभूमि' में ईश्वर सेवक अपनी बातचीत के ढंग से 'ईसू मुझे अपने दामन में छिपा,' 'गबन' में इन्सपेक्टर साहब 'हल्फ से कहता है' आदि–आदि वाक्यों को अपनी बातचीत के बीच 'टेक' बनाकर बोलते हैं। अंग्रेजी पढ़े लिखे पात्र हिन्दी के साथ बीच–बीच में अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग करते हैं। मुसलमान पात्र बराबर उर्दू में बातचीत करते हैं। अपढ़ पात्र व्याकरण की अशुद्धियों से भरपूर–भाषा के व्यवहारिक रूप को बोलते हैं। 'धर्म' को 'धरम' 'शास्त्रार्थ' को 'सरतार्थ' देहाती पात्र प्रयोग करते हैं।"[2] प्रेमचंद के कथोपकथन की

---

[1] प्रेमचंद और उनका साहित्य–शीला गुप्त पृ0 248–249।

[2] प्रेमचंद और उनका साहित्य–शीला गुप्त पृ0 249।

एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उनके प्रायः सभी उपन्यासों में पात्रों के वार्तालाप विशिष्ट प्रतीत होते हैं। वार्तालाप का यह वैशिष्ट्य उनके पात्रों के कथोपकथन में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि प्रेमचंद के उपन्यासों में कथोपकथन सोद्देश्य हैं वे कथ्य की अभिव्यक्ति में पूर्ण रूप से सहायक हैं। वे पात्रों के चरित्र को प्रकाश में लाने तथा कथानकों को गति प्रदान करने के समस्त वांछित गुण यथा रोचकता संक्षिप्तता, स्वाभाविकता, नाटकीयता, सजीवता, पात्रानुरूपता, प्रसंगानुकूलता, भावानुरूपता, सार्थकता आदि पूर्णरूप से उनके संवादों में विद्यमान हैं। प्रेमचंद की औपन्यासिक कृतियाँ कथोपकथन की दृष्टि से बहुत समृद्ध हैं। उन्होंने कथोपकथन के महत्व को केवल समझा ही नहीं है वरन् उसे पूरी तरह हृदयंगम करते हुए अपनी रचनाओं में उनकी कलात्मक संयोजना भी की है। प्रभावोत्पादक तथा अभिव्यंजक, कथोपकथन हिन्दी उपन्यास साहित्य को प्रेमचंद की एक महत्वपूर्ण देन है।

अध्याय— 8

उपसंहार

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

अध्याय आठ

उपसंहार

किसी युग विशेष की साहित्यिक कृति तद्‌युगीन सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं दार्शनिक परिस्थितियों को भली भांति जानने तथा समझने का एक सशक्त माध्यम होती है। युगीन परिवेश में होने वाले क्रांतिकारी परिवर्तनों की छटा स्पष्टरूप से देखी जा सकती है क्योंकि एक सहृदय, सज़ग तथा निष्ठावान साहित्यकार अपने युग से अपने परिवेश से विलग रह ही नहीं सकता। अतएव उसके लिए युग चेतना आवश्यक नहीं अनिवार्य होती है। साहित्य में युग जीवन की अभिव्यक्ति साहित्यकार की युगीन चेतना के परिचायक होती है। हिन्दी कथा साहित्य में प्रेमचंद युग चेतना के प्रमुख संवाहक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनकी रचनाओं में भारतीय समाज अपने सम्पूर्ण वैविध्य के साथ विद्यमान है। रचनात्मक स्तर पर युग की आत्मा को अपने भीतर समेट कर एक तरह से वे अपने युग को जी रहे थे।

प्रेमचंद की चेतना अपने समय की नब्ज़ की गहरी पहचान से उदभूत चेतना है। प्रेमचंद जब तक जिए अपने युग, अपने समाज, अपने लोगों को हिस्सा बनकर जिए। भारतीय जनमानस से भावनात्मक स्तर पर उन्हें बहुत गहरा लगाव था। इसी कारण वे उसके दुख से उसकी पीडा से मर्माहत थे और उनकी मुक्ति के लिए वेचैन थे। साहित्य उनके लिए अपने देश के लाखों करोड़ों लोगों की मुक्ति के संघर्ष का अस्त्र था। समाज से कटकर उनके लिए साहित्य का कोई अस्तित्व न था। उनके समीप साहित्य मानव सेवा के गम्भीरदायित्व के निर्वाह का नाम है।

प्रेमचंद से हिन्दी कथा साहित्य के एक नये अध्याय का आरम्भ होता है। वस्तुतः प्रेमचंद हिन्दी साहित्य के वह पहले उपन्यासकार हैं जिन्होने तिलस्मी, ऐय्यारी, जासूसी उपन्यासों के मनोरंजक किन्तु काल्पनिक मायालोक तथा सामाजिक उपन्यासों के एकांगी तथा उथले यथार्थ लोक का निषेध कर अनेकानेक समस्याओं, इच्छाओं, आकांक्षाओं, आशाओं, निराशाओं, सुख–दुखों और मानव चरित्र के जटिल सम्बन्धों से निर्मित हमारे आस–पास के जीवन की प्रमाणिक पहचान उभारी। जीवन की सच्चाइयों, सामाजिक विसंगतियों तथा राजनीतिक सवालों को अपने कथा साहित्य का प्रतिपाद्य बनाकर तद्‌युगीन भारतीय समाज में जितनी समस्याएं विद्यमान थीं प्रेमचंद ने उन सभी को अपने उपन्यासों कथा–कहानियों में अभिव्यक्ति प्रदान की उनकी मानवीय संवेदना देशकाल से जुड़कर जीवन के बुनियादी प्रश्नों बाह्याभ्यांतरिक सच्चाइयों मानव के पारस्परिक सम्बन्धों, तनावों एवं अन्तर्विरोधों को उद्‌घाटित करती है ।

प्रेमचंद साहित्य का फलक इतना विराट है कि वह मध्यकालीन भारत की गाथा से लेकर समसामयिक भारतीय जनता, किसान तथा मज़दूर के जीवन के यथार्थ तक फैला है जिसमें मनुष्यता का सही स्थापन है तो सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार भी किसानों–मज़दूरों की संगठित चेतना का आभास है तो स्त्रियों की सामाजिक जागृति का संकेत भी, धर्मरूढ़ियों के विरोध में उठने वाली आवाज़ है तो भारतीय सभ्यता, तथा सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा का आह्वान भी, विपरीत परिस्थितियों की स्वीकृति है तो मुक्ति की छटपटाहट भी। यही कारण है कि उनके उपन्यासों में तद्‌युगीन भारत का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक जन जीवन अपने समस्त अव्यवों के साथ रूपायित हो उठा है। 'वरदान' से लेकर 'मंगलसूत्र' तक उनकी समस्त कृतियों के कथानक किसी न किसी रूप में अपने युगीन जीवन से सम्बन्धित हैं जिनके द्वारा धार्मिक आडम्बरो, सामाजिक विकृतियों, रूढ़ परम्पराओं, वर्णव्यवस्था का विरोध, संयुक्त परिवारों का विघटन, सामंतों तथा ज़मीदारों के अत्याचार, पूँजीवादी शोषण, राजनीतिक

गतिविधियों औपनिवेशिक शोषण तंत्र के पुर्जे के नौकरशाही की लूट–खसोट, सम्प्रदायिक्ता और इस जैसे जाने कितने ही सामाजिक विषयों का आकलन प्रेमचंद के उपन्यासों में हुआ है।

प्रेमचंद ने सामाजिक समस्याओं की नींव पर अपने साहित्यकरूपी भवन को निर्मित किया है। वे व्यक्ति और समाज के अन्तः सम्बन्धों की परत दर परत पड़ताल करते हैं तथा उन पर गहनता पूर्वक विचार करके उन्हें अपने साहित्य में विश्लेषित करते हैं। भारत के ग्रामीण एवं नागरिक जीवन का सूक्ष्म अनुशीलन करने के पश्चात देश की पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, तथा राजनीतिक समस्याओं को अपने उपन्यासों के माध्यम से सुलझाने का वे भरसक प्रयास करते हैं। प्रेमचंद का समय तीव्र संक्रान्ति का समय था। अंग्रेजी शिक्षा तथा पाश्चात्य सभ्यता के संक्रमण के परिणाम स्वरूप जीवन में प्रत्येक स्तर पर नवीन जीवन मूल्यों एवं सांस्कृतिक प्रतिमानों की स्थापना का प्रयत्न जारी था। प्रेमचंद एक क्रांति दृष्टा साहित्यकार थे युग जीवन के वैचारिक मंथन से उपजे इस परिवर्तन से प्रेमचंद खूब वाकिफ थें। जिस प्रकार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में तेजी से परिवर्तन हो रहे थे ठीक उसी प्रकार के परिवर्तन प्रेमचंद के मानसिक धरातल पर भी हो रहे थे। अपने लेखन कार्य के आरम्भ में शोषण तथा अन्याय के दमन की उत्कट आकाँक्षा उन्हें सुधार की तमाम सम्भावनाओं की ओर ले गयी। इसी कारण अपनी आरम्भिक रचनाओं में वे आर्यसमाज, हिन्दू समाज तथा सर्वोदयी गाँधीवादी नीति के अनुसार जनता का मार्ग दर्शन करते हैं परन्तु इन सुधारों से बात बनती न देख वे अपना रास्ता बदल लेते हैं और इस विषय में अपना पक्ष चुनते हैं ।

युग तथा समाज के प्रति उनका अपना दृष्टिकोण था जो प्रगतिशील था। जिन रूढ़ तथा अंध परम्पराओं ने सामाजिक विकास को बाधित कर रखा था प्रेमचंद उन्हें भली–भाँति जान रहे थे और अपने कथा साहित्य में उनका यथार्थ चित्रण करते हुए उनपर कुठाराघात कर रहे थे। प्रेमचंद का सामाजिक सरोकार

उनकी गहन अन्तर्दृष्टि इस तथ्य को परख चुकी थी सामाजिक विकृतियों, तथा विद्रुपताओं के निराकरण के बिना व्यक्ति का विकास सम्भव नहीं क्योंकि व्यक्ति और समाज परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। सामाजिक कथाकार होने के नाते प्रेमचंद सामाजिक विकास में विश्वास रखते थे। रूढ़ियों, अंधविश्वासों से मुक्त, अन्याय, अत्याचार तथा शोषण विहीन एक आदर्श समाज की स्थापना उनका लक्ष्य था और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वह जनमत तैयार करना चाहते थे। क्योंकि जीवन की समस्त समस्याओं में वे सामाजिक समस्या को वह सबसे महत्वपूर्ण मानते हैं इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि समाज में रहकर ही व्यक्ति की जीवन की अच्छी–बुरी प्रवृत्तियों का निर्माण होता है और उसी के आधार पर एक के बाद एक समस्याएं अस्तित्व में आती हैं और मिटती हैं। समाज के प्रति प्रेमचंद अपना एक दार्शनिक दृष्टिकोंण रखते हैं। वे सामाजिक, आर्थिक, समानता पर आधारित एक ऐसे समाज के इच्छुक हैं जो अन्याय असमानता और अत्याचार से रहित हो जहाँ भेदभाव के नश्तरों से मानवता आहत न हो जहाँ मनुष्य को धन–दौलत के तराजू पर न तौला जाए जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सब बराबर हों सबको समान सुविधाएं उपलब्ध हों । प्रेमचंद व्यक्तिगत सुधार की बात करते हैं तो केवल इसलिए कि व्यक्ति समाज की इकाई है और उसके सुधार के पश्चात ही समाज का सुधार सम्भव है। क्योंकि व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध अविच्छिन्न है दोनो एक–दूसरे पर निर्भर हैं। अतः प्रेमचंद के अधिकतर पात्र समाजोन्मुखी हैं और किसी न किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस सम्बन्ध में 'सेवासदन' की पात्र सुमन का उदाहरण दृष्टब्य है जिसमें प्रेमचंद ने सुमन की व्यक्तिगत कथा के माध्यम से वेश्या समस्या को प्रस्तुत किया है और इस दृष्टि से सुमन वेश्या समाज का प्रतिनिधित्व करती है। 'सेवासदन' के अतिरिक्त 'प्रेमाश्रम', 'गबन', 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि', 'गोदान' तथा मंगलसूत्र में भी वह अपने पात्रों की एकान्तिक सत्ता में सामाजिक सत्ता को देखते हुए व्यक्ति तथा वर्ग के बीच समन्यवय स्थापित करने का सफल प्रयोग करते रहे हैं।

प्रेमचंद एक ऐसे महान साहित्यकार हैं जिन्होने अपनी कहानियों तथा उपन्यासों में अपने युग के अनाचार एवं समाज की निर्दयता का बड़ा ही मर्मस्पर्शी और यथार्थ चित्रण किया है। इसके साथ ही उन परिस्थितियों को भी रेखाँकित किया है जिनके हाथों में मध्यवर्ग, सामन्त, जमींदार किसान मज़दूर नारी अछूत तथा समाज से बहिष्कृत लोगों के जीवन की बागडोर है। अपनी लेखनी से वह केवल साहित्य की रचना नहीं करते बल्कि पूरे समाज का निर्माण करते हैं। प्रेमचंद ने जिस प्रकार के साहित्य की रचना की है उसके निर्माण के लिए किसी भी रचनाकार को जीवन की गहरी समझ होनी चाहिए। अपने समय की नब्ज़ पर मज़बूत पकड़ होनी चाहिए अपने युग की माँग से पूरी तरह परचित होना चाहिए। समसामयिक जीवन की जटिल वास्तविकता का अनेक सामाजिक प्रश्नों एवं धार्मिक विसंगतियों का जैसा निर्भय चित्रण प्रेमचंद साहित्य में हुआ है वह प्रेमचंद जैसे सशक्त कलाकार के बूते की ही बात है ।

प्रेमचंद अपने युग की विषमता मूलक शोषण पर आधारित समाज व्यवस्था से असन्तुष्ट नज़र आते हैं। वे जन साधारण के कलाकार थे और उन्ही के मध्य उन्होने अपना जीवन व्यतीत किया था। आम आदमी के जीवन के उतार–चढ़ाव से वह बहुत अच्छी तरह परिचित थे जीवन पर्यन्त इन्हीं दीन–हीन तथा निरीह प्राणियों के साथ रहने के कारण वह उनके दुख को अपना दुख समझते थे उन की पीड़ा उनके करूण –क्रन्दन को खुद सुनते तथा अपने साहित्य के माध्यम से दूसरों तक पहुँचाते थे। प्रेमचंद ने अपने कथा साहित्य में विशाल भारत की 80–85 प्रतिशत पीड़ित तथा शोषित ग्रामीण जनता का चरित्राकन बड़ी ही कुशलतापूर्वक किया है। साम्राज्यवादी शोषक तथा शासक इस बात को भली–भाँति जानते थे कि अगर भारत के गाँवों में बसने वाला यह विशाल जन–समूह संगठित हो जायेगा तो उनके अस्तित्व के लिए सबसे बड़ा खतरा बन जायेगा । अतः उनकी संगठित चेतना पर लगाम लगाने के लिए सबसे अधिक

शोषण इसी वर्ग का किया गया ब्रिटिश सरकार ने अपने औपनिवेशिक शोषण के अस्त्र को और भी अधिक पैना और धारदार बनाने के लिए उसे सामन्तों ने एक ओर अपने कारिन्दों, पुलिस तथा कानून के बल पर ड़रा धमका कर अपने वश में रखा वहीं दूसरी ओर धर्माचार्यों पण्डे–पुरोहितों की सहायता से धर्म का भय दिखाकर उन्हें दिग्भ्रमित किया यही कारण है कि भारतीय जनता पर सामन्ती शोषण के साथ उनके आचार व्यवहार का वर्चस्व भी कायम रहा जिसके परिणाम स्वरूप वह एक ओर रूप परम्पराओं, अंध विश्वासों तथा धार्मिक छल प्रपंचों के पास में बँधी रही और दूसरी तरफ सामन्ती नैतिकता के बोझ तले दबी रही परन्तु यह बोझ उन संस्कारों का गला नहीं घोंट पाया जो युगों – युगों से संचित भारतीय सभ्यता और संस्कृति से उसे विरासत में मिले थे जो उसके शरीर का नहीं उसकी आत्मा का हिस्सा थे भारतीय जनता के चरित्र के इस पक्ष को प्रेमचंद ने उसकी आत्मा में उतर कर जाना था हिन्दुस्तान के आम–आदमी का यही सच्चा रूप प्रेमचंद के पात्रों में परिलक्षित होता है।

भारतवर्ष की अधिकतर जनता कृषि पर ही निर्भर है उसके सिवा उनकी जीविका का अन्य कोई साधन नहीं है। साहित्यकार अगर इन किसानों की जीवन गाथा को अपने साहित्य से पृथक करता है तो वह देश की बहुसंख्यक जनता का प्रतिनिधित्व कैसे कर सकता है। अतः प्रेमचंद ने इन कृषकों की उस वेदना का जिसका साक्षात्कार उन्होने अपने निजी जीवन में किया था अपने अनुभव के आधार पर उनका सजीव चित्रण किया। प्रेमचंद के पूर्व हिन्दी साहित्य जगत में ऐसा कोई साहित्यकार नहीं था। जिसने इस प्रकार के उपन्यास की रचना की हो क्योंकि दीन हीन किसानों की विदग्ध गाथा का चित्रण करना वे अपनी गरिमा के विरूद्व समझते थे। अपनी मान–प्रतिष्ठा में वृद्वि करने के लिए वे ऐसे तिलस्मी, जासूसी उपन्यासों की रचना करते थे जिनका उद्वेश्य मनोरंजन मात्र था। प्रेमचंद ने इस लोकापवाद की परवाह किये बिना अपने जीवन का उद्वेश्य उन लोगों से पृथक निर्धारित किया। उनके भीतर छिपे हुए जागरूक और संवेदनशील कलाकार

ने पाप और पुण्य के राक्षसों और देवताओं के स्थान पर देश के करोड़ों किसानों के दिलों में उठने वाली टीस और बेचैनी और उनकी असहयवेदना को अपने उपन्यासों का विषय बनाया क्योंकि इस दर्द और पीड़ा के कड़वे घूँट का उन्होने अपने निजी–जीवन में पग–पग पर पान किया था। प्रेमचंद जानते थे कि देश की साधारण जनता में साहस धैर्य और मनोबल की कमी नही है । आवश्यकता केवल इस बात की है कि उन्हें इस मनोबल और साहस का ज्ञान कराया जाए और उनके भीतर अंकुरित होने वाली चेतना को पूर्ण रूप से जागृत कराया जाए जिससे उनके ह्वदय में एक स्वतंत्र और सुन्दर जीवन जीने के तीव्र लालसा उत्पन्न हो। प्रेमचंद का मानना था कि अगर जन साधारण के आन्दोलन और संघर्षों को लेकर साहित्य न लिखा गया तो मृत प्राय होगा। उनके अनुसार साहित्यकार का कर्तव्य है कि वह जनता की सेवा करने के लिए साहित्य का सृजन करे। उस युग में 'प्रेमाश्रम' जैसे उपन्यास की रचना करना अपने आप में एक अदम्य साहस का कार्य था। इस प्रकार मानव कल्याण का ध्वज लिए प्रेमचंद ऐसे साहित्यिक सफर पर निकल पड़े जिसे उनसे पहले किसी ने नहीं तय किया था उनकी प्रतिभा की यह विशेषता है कि उन्होने जो साहस किया वह दुस्साहस सिद्व नहीं हुआ ।

हिन्दी कथा साहित्य में सर्वप्रथम कृषक जीवन और उसकी समस्याओं का चित्रण करने का श्रेय प्रेमचंद को ही प्राप्त है। अपने उपन्यासों में उन्होने जमींदारों के शोषण और किसानों के संघर्ष के विविध पहलुओं को उजागर किया है। किसानों की खून पसीने की कमाई हड़प लेने को अपना जन्मसिद्व अधिकार समझने वाले जमींदार वर्ग के प्रेमचंद कट्टर विरोधी थे। 'प्रेमाश्रम', कर्मभूमि तथा गोदान में उनके इस विरोध के स्थान –स्थान पर दर्शन होते हैं कृषकों के हित के लिए प्रेमचंद जमींदारी प्रथा की समाप्ती के इच्छुक थे। प्रेमचंद के किसानों समस्याओं के यथार्थ चित्रण में जो अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई उसका कारण यह है कि किसानों के जीवन से उनका गहरा सम्बन्ध था। उनके जीवन का

अधिकांश समय इन्ही किसानों के बीच रहकर गुजरा था। वे इस शोषित वर्ग की पीड़ा से भली–भाँति अवगत थे। इन फटे हाल वेवश मजबूर किसानों से उन्हें सच्ची सहानुभूति थी इसके अतिरिक्त एक सत्य और भी है वह यह कि यदि प्रेमचंद की अंग्रेजी साम्राज्यवाद और जमीदारों–जागीरदारों के आपसी सम्बन्धों का पूर्ण ज्ञान न होता तो 'प्रेमाश्रम' और 'गोदान' जैसे उपन्यास की रचना करना सम्भव नहीं था ।

किसानों का बाल–बाल कर्ज से बिंधा होता है, साल के तीन सौ साठ दिन उसे भरपेट भोजन भी नसीब नहीं होता, जेठ की जलती दोपहर में खेतों में जलना पड़ता है पूस की ठंडीरात में खेतों की रखवाली में ठिठुरते हुए गुजारनी पड़ती है इसके अतिरिक्त किस प्रकार प्रकृति के कोप से प्रताड़ित होकर वह बिलबिला उठता है । प्रेमचन्द कृषक जीवन की इन समस्त विसंगतियों को पूरी सहानुभूति के साथ चित्रित करते हैं। उनके 'प्रेमाश्रम' तथा 'गोदान' उपन्यास कृषक जीवन के औपन्यासिक दस्तावेज हैं । जिनमें कृषकों के जीवन का एक आयामी रूप नहीं उभरता प्रेमचंद ने कृषक जीवन के सम्पूर्ण यथार्थ को चाहे वह मनोवैज्ञानिक यथार्थ हो अथवा सामाजिक मन से मन का था परिस्थितियों से परिस्थितियों का अथवा परिस्थितियों से मनस्थितियों का उनकी अनेक बाहरी एवं भीतरी पर्तों को पूरी ईमानदारी के साथ चित्रित किया है ।

प्रेमचंद गाँव की पैदावार थे और ग्राम्य जीवन उन्हें बहुत प्रिय था। वे किसानों तथा ग्रामीण जनता के सच्चे पक्षधर थे परन्तु ग्राम्य जीवन का विश्लेषण करते समय प्रेमचंद ने कभी भी पक्षपात पूर्ण दृष्टिकोण नहीं अपनाया अपने उपन्यासों में वे ग्रामीण जनता के गुणों पर ही प्रकाश नहीं, डालते अपितु उसके दोषों तथा दुर्बलताओं को भी सामने लाते हैं। गाँव वालों की रूढ़िगत–रूढ़िवादिता तथा अंध विश्वासों के प्रति वे जगह–जगह खेद व्यक्त करते हैं। कृषकों की समस्याओं का विश्लेषण करते समय प्रेमचंद उनके प्रत्येक पहलू पर गम्भीरता से विचार करते हैं वे किसानों की दीनता के लिए केवल जमींदार तथा उनके

सहयोगी शोषक वर्ग को ही उत्तरदायी नहीं ठहराते अपितु किसानों के अन्ध विश्वास धर्म भी रूढ़िवादी परम्पराओं का दृढ़ता पूर्वक पालन करने को भी उनकी दुर्दशा का जिम्मेदार मानते हैं किसानों के चरित्र के इस दुर्बल पक्ष का प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में स्थान –स्थान पर बड़ा ही यथार्थ चित्रण किया है ।

प्रेमचंद का सीधा सम्बन्ध मध्यवर्गीय परिवार से था। अतः मध्यवर्ग के आन्तरिक तथा बाह्य दो पहलुओं से पूर्णतः परिचिति थे । इसलिए इस वर्ग का चित्रण उन्होने अत्यन्त यथार्थपूर्वक और सजीव ढंग से किया । भारत में मध्यवर्ग की उत्पत्ति ब्रिटिश सरकार की देन है उन्नीसवीं सताब्दी के मध्य में ये वर्ग उभर कर सामने आया। अग्रेंज शासकों ने इस वर्ग का उपयोग अपने शासन को सुदृढ़ करने और उसे सुचारुरूप से संचालित करने के लिए एवं अपने इस उद्वेश्य की पूर्ति के लिए इस वर्ग की शिक्षा–दीक्षा के लिए ऐसी प्रणाली अपनायी जिसके परिणाम स्वरूप भारतीयता के प्रति हीनता के भाव ने इस वर्ग के लोगों के मन में जगा बना ली। और वह अपनी संस्कृति से पाश्चात्य संस्कृति को श्रेष्ठ समझने लगे । इस प्रकार उन्हें मानसिक दासता के संस्कार उत्पन्न हो गए । इस वर्ग के लोगों की महत्वाकांक्षाऐं बहुत ऊँची थी परन्तु अपनी असमर्थता और साधन हीनता के कारण वह उसे पूर्ण करने में सक्षम नहीं थे । अतः अपनी इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए उनके अन्दर स्वार्थ परता और अवसरवादिता की भावना ने जन्म ले लिया, फलतः इस वर्ग का नैतिक पतन इस स्तर तक हुआ कि वे समाज व राष्ट्र के हित को कोई महत्व न देते हुए व्यक्तिगत स्वार्थ साधनों में लगे रहे। समस्त मानवीय और नैतिक मूल्यों के पतन के कारण कुत्सित मानसिक और भृष्ट आचरण इस वर्ग की जीवन प्रणाली के अभिन्न अंग बन गए । प्रेमचंद के समस्त अपन्यासों में इस वर्ग के समाज विरोधी आचरण के यथार्थ परक चित्र भरे–पड़ें हैं। मध्यवर्ग के उसके विघटनशील आर्थिक आधार और स्वयं की उच्चवर्ग में सम्मिलित करने की लालसा ने उसे द्विधाग्रस्त प्रवृत्ति का बना दिया । उसकी पतनोन्मुख आर्थिक स्थिति जब उसकी महत्वाकाँक्षाओं की पूर्ति के मार्ग में बाधक

होती हैं तो वह अपने सामाजिक स्तर को उच्च बनाकर दिखाने के लिए मिथ्याड़म्बर और प्रदर्शन का आश्रय लेता है । प्रेमचंद मध्यवर्ग की इस मानसिकता के चतुर–चितेरे हैं अतः उन्होने इस वर्ग के पात्रों का चित्रण करते हुए उनके चरित्र की इस त्रुटि को अपने समक्ष रखा है। बिट्रिश शासन के शोषणतंत्र का मुख्य अंग भारत का नौकरशाही तप का इसी मध्यवर्ग के अन्तर्गत आता है । अंग्रेजों का कृपापात्र ये नौकरशाही वर्ग भोली–भाली जनता का कितनी निर्दयता पूर्वक शोषण करता है उसका यथार्थवादी चित्रण प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में स्थान–स्थान पर किया है ।

परतन्त्रता के बेड़ियों से आबद्ध कोई भी समाज विकास तथा प्रगति के पथ आगे नहीं बँढ़ सकता प्रेमचंद इस बात को भली–भाँति जानते थे देश को विदेशी शासकों के चंगुल से छुडाने की तीब्र इच्छा उनके ह्दय में विधमान थी भारत के जन–जन को सुखी तथा समद्ध देखने हेतु वे पूर्ण स्वराज्य की बात करते है । प्रेमचंद कथा साहित्य के सूत्र कई स्तरों पर देश की स्वाधीनता के संघर्ष से बंधे हैं । प्रेमचंद ने अपने कथा संसार की सृष्टि करते समय अपने युग के व्यापक राष्ट्रीय तथा राजनीतिक परिदृश्य को अपनी आँखों से ओझल नहीं होने दिया जो अपने समय के साथ उनकी गहरी संबद्धता का साक्षी है । उनके भीतर का जागरूक तथा संवेदनशील कथाकार छोटी से छोटी धटना से प्रभावित होता था अपनी मानसिक चेतना पर युग चेतना के दबाव को महसूस करता था । युग चेतना का यही प्रभाव व्यापक रूप से उनके साहित्य में प्रतिफलित हो उठा है।

भारतीय राजनीति में गाँधी जी के पदार्पण ने विदेशी सत्ता से आजादी की कामना जन–जन के ह्दय में भर दी उस पर रूसी क्रांति में सर्वहारा वर्ग की सफलता ने उत्पीड़ित तथा शोषित भारतीयजनता को झकझोर कर रख दिया । भारतवासी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हों संगठित होकर संघर्ष के लिए तत्पर हो गए इन परिस्थितियों में प्रेमचंद जैसे जागरूक लेखक तटस्थ कैसे रह

सकता था । जनता के इस संघर्ष को अपना संघर्ष बनाया उन्होने सभी मोर्चो पर इस जंग को जारी रखते हुए समाज में व्याप्त कुरीतियों शोषण तथा अत्याचार का जमकर विरोध किया इतना ही नहीं अपनी बीस साल पुरानी नौकरी से इस्तीफा देकर आज़ादी की लड़ाई के कुरूक्षेत्र में अपनी कलम रूपी तलवार को लेकर कूद पड़े ।

प्रेमचंद की गाँधी जी में बड़ी श्रद्वा थी देश को स्वाधीनता दिलाने में देश की जनता में राजनीतिक चेतना को संचार करने में अत्याचार के विरूद्व उन्हें संगठित करने जनशक्ति का रूप देने में गाँधी जी ने जो अपूर्व योगदान दिया उसके लिए देश की समस्त जनता की भाँति प्रेमचंद भी गाँधीजी से बहुत प्रभावित थें और उनका बहुत आदर करते थे । इसी कारण कुछ आलोचक उन्हें गाँधीवादी सिद्ध करने का प्रयास करते हैं जो उचित नहीं है क्योंकि गाँधीजी का प्रशंसक होना एक बात है और गाँधीवादी होना दूसरी बात प्रेमचंद ने लेखों के माध्यम से इस भ्रांति का निवारण होता है । यह सत्य है कि गाँधी जी के हृदय परिवर्तन सिद्वान्त में प्रेमचंद की आस्था थी । परन्तु आदर्श जीवन और आदर्श समाज के सम्बन्ध में गाँधीजी और प्रेमचंद के दृष्टिकोण भिन्न थे । गाँधी जी वर्ण व्यवस्था के समर्थक थे जबकि प्रेमचंद वर्ण व्यवस्था के कट्टर विरोधी । गाँधी जी वर्ग समन्वय के उपासक थे और प्रेमचंद वर्ग संघर्ष के प्रवल समर्थक ।

जिस समय साहित्य के क्षेत्र में राजनीतिक प्रवेश वर्जित था प्रेमचंद ने उसके महत्व को पहचाना । जनता की समस्याओं का आर्थिक तथा सामाजिक विश्लेषण करते समय प्रेमचंद उन्हें राजनीतिक संदर्भों से जोड़कर देखना नहीं भूलते। प्रेमचंद तद्युगीन राजनीति के छल प्रपंच को समझते थे। राजनीतिक परिस्थितियों का जितना स्पष्ट और यथार्थ चित्रण प्रेमचंद साहित्य में हुआ है कदाचित किसी अन्य साहित्यकार के यहाँ हुआ हो प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों का तद्युगीन राजनीतिक गतिविधियों को बड़ी ही वेबाकी से चित्रित किया है । प्रेमचंद ने तत्कालीन भारत के राजनीतिक जीवन के विभिन्न पात्रों एवं घटनाओं

के माध्यम से अंग्रजी साम्राज्यवाद, देशी नरेशों की कुत्सित मानसिकता तथा शोषण वृत्ति, विदेशी, पूँजीवाद एवं सामंतवाद की आपसी साँठ–गाँठ तथा जनमानस में उभर रहे वास्तविक द्वन्द को पूरी सच्चाई से चित्रित किया है । प्रेमचंद युगीन राजनीति की एक अजीव विड़म्बना यह थी कि सामंत और पूँजीपति समान रूप गरीबों को शोषण कर रहे थे । प्रेमचंद ने इस सत्य का अनावरण करते हुए उनके वास्तविक चरित्र को उजागर किया है ।

अपने उपन्यासों में पूँजीवादी संस्कृति के उपलक्ष्य में उत्पन्न मानव की पाषाण हृदयता और धन लोलुपता का परिचय देते हुए यह दिखाने की चेष्टा की है कि ज्यों–ज्यों पूँजीवादी विचारधारा का विकास होता चलता है त्यों–त्यों मानव मूल्यों का ह्रास होता जाता है । 'रंगभूमि' में प्रेमचंद गाँव की टूटती विखरती सामाजिक तथा सांस्कृति जिन्दगी के विविध प्रसंगों को उपस्थित कर इस बात का बोध कराते हैं कि सामंती तथा पूँजीवादी तिकड़में किस प्रकार हमारे जीवन को खोखला कर रही हैं । प्रेमचंद की स्पष्ट मान्यता थी कि औद्योगिक सभ्यता के विस्तार से केवल हमारा आर्थिक जीवन ही प्रभावित नहीं होगा वरन् हमारी मानसिकता, हमारा दृष्टिकोण, समाजिक, सम्बन्ध जीवन पद्वति तथा मानदंड सभी कुछ परिवर्तित हो जाएंगे। आज के उपभोक्ता वादी युग में हम प्रेमचंद की इस सोच को वास्तविकता में परिवर्तित देखते हैं।

साम्प्रदायिक वैमनस्य प्रेमचंद युग की एक महत्वपूर्ण समस्या थी । जिस का प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों मे यथा प्रसंग वर्णन करते हुए सम्प्रदायिक एकता पर बहुत कुछ लिखा है । अपने उपन्यास जिसके माध्यम से प्रेमचंद हिन्दू तथा मुसलमानों को इस सत्य से अवगत कराना चाहते हैं कि परस्पर मिल–जुल कर रहने में उनका कल्याण है। वे उन्हें उन शक्तियों से सावधान कराना चाहते हैं जो अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए उनके मध्य फूट डालना चाहती हैं । उनके इस उद्वेश्य को विफल करने के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता है धर्म के प्रति उदारवादी दृष्टिकोण की । 'कायाकल्प' में चक्रधर के माध्यम से वे द्वेषाग्नि से

उत्तेजित हिन्दू–मुसलमानो के सोये हुए विवेक को जाग्रत करके उन्हें हिंसा और क्रोध के मार्ग से विमुख करते हैं । प्रेमचंद ने राष्ट्रीयता को सांस्कृतिक सन्दर्भों से न जोड़कर उसे सामाजिक तथा राजनीतिक सन्दर्भों से सम्बद्व करके देखते हैं वह एक ऐसे भारत का सपना देखते हैं जो साम्प्रदायिक सौहार्द की बुनियाद पर खड़ा हो जहाँ धर्म, सम्प्रदाय, वर्ण और जाति या अमीर–गरीब का भेद न हो जहाँ सर्वत्र समानता तथा भाई चारा हो भारत की धर्म निरपेक्ष छवि की रक्षा हेतु जिन सेकुलर मूल्यों के लिए आज आवाज़ उठाई जा रही है । प्रेमचंद ने उस की रूप अपने साहित्य के माध्यम से पहले ही तैयार कर दी थी । साम्प्रदायिक एकता पर 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचंद ने न्याय, अधिकार तथा धर्म के नाम पर पनपने वाले आर्थिक वैषम्य का अनावरण किया है और किसानों की वास्तविक स्थिति का विश्लेषण करते हुए उनके न्याय और अधिकार की मांग की है।

प्रेमचंद के सम्मुख उनके युग की कई समस्याएँ विकराल रूप धारण करें खड़ी थी जिसे एक सहृदय तथा जिम्मेंदार लेखक होने के नाते उन्हें सुलझाना था । नारी जीवन की समस्या इन्हीं समस्याओं में से एक थी । भारतीय नारी का जीवन अनेक समस्याओं से अच्छादित है जिनमें विवाह की समस्या इनकी महत्वपूर्ण समस्या है जिसकी कोख से दहेज की समस्या का जन्म होता है । 'प्रतिज्ञा', 'सेवासदन', निर्मला में प्रेमचंद दहेज अनमेल विवाह, बाल–विवाह तथा वृद्व विवाह जैसी ज्वलन्त सामाजिक समस्या को उपन्यास का विषय बनाया है । जिसमें प्रेमचंद ने पुरूष प्रधान समाज में नारी की निस्सहायता, पराधीनता तथा उसके साथ किये जाने वाले पशुवत व्यवहार का विश्लेषण करते हुए उन्हें पूरी वास्तविकता के साथ चित्रित किया है ।

प्रेमचंद नारी जीवन में त्याग, श्रद्वा, सहजता, सरलता तथा प्रेम आदि की आवश्यकता पर बल देते हुए समाज में नर–नारी के लिए दोहरे मान दण्डों पर चिंता व्यक्त करते हैं । पुरूष प्रधान समाज में नारी के व्यक्तित्व के विकास की सम्भावना को प्रेमचंद बहुत कम पाते हैं । नारी मुक्ति का आह्वान करते हुए

प्रेमचंद उसे सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में पुरुषों के समकक्ष स्थान देने की बात करते हैं साथ ही उन रूढ़ परम्पराओं से मुक्त होने का हौसला भी देते हैं जो समाज में उनकी दुर्दशा का कारण बनी थी परन्तु इतना होने पर भी वे उसे भारतीय मर्यादा का उल्लंघन करने की अनुमति नहीं देते नारी स्वातंत्र्य का समर्थन करते हुए उनका कार्यक्षेत्र मूलतः घर ही हो ऐसा उनका मानना था। उनके नारी विषयक इन विचारों को 'कर्मभूमि' में (सुखदा, मुन्नी, नैना, रेणुका देवी, सकीना तथा पठानिन।) स्पष्ट रूप से देख सकते हैं।

प्रेमचंद ने तद्युगीन समाज में धर्म के नाम पर फैली, रूढ़ियों, भ्रांतियों, छूत, अछूत की भावना पर जमकर प्रहार किये है। वे प्रत्येक व्यक्ति को समाज में उचित स्थान दिलाना चाहते है। धर्म का आश्रय लेकर समाज में किसी जाति विशेष को ऊँच या नीच समझना उनकी दृष्टि में नितान्त अनुचित हैं। प्रेमचंद अछूत समस्या को विस्तृत रूप प्रदान करते हुए उसे राजनीतिक तथा आर्थिक परिप्रेक्ष्य में देखते हैं। गरीब तथा दलित वर्ग को अपनी वास्तविक स्थिति का अंदाजा है जिस पर क्रोध आता है। किन्तु क्षोभ की इस चिन्गारी को वह सीने में दबाए रखता है। ऐसा करना उसकी विवशता है। प्रेमचंद दरिद्र तथा दलित वर्ग की इस प्रवृत्तिगत विशेषता से भली प्रकार परिचित थे। व्यवस्था की विसंगतियों के साथ–साथ वे उनकी लाचारी को भी उभारतें हैं उनके मन में दबी विद्रोह की चिन्गारी की ओर संकेत करते हैं,। समाज में ऊंची–नीची जातियों के पारस्परिक सम्बन्धों एवं उनके जीवन व्यवहारों का प्रेमचंद ने बड़ी ही गहनतापूर्वक अध्ययन किया था। नीची जाति के लोग समाज में किस प्रकार उपेक्षित जीवन व्यतीत कर रहे है, सामाजिक अन्याय के शिकार इन दीन–दुखियों को दुख के कैसे–कैसे पहाड़ ढ़ोने पड़ते है। ऊँच–नीच की भावना का दानव किस प्रकार मानवता के टुकड़े किये डालता है इसे वे भली–भाँति देख रहे थे और समाज की इस भयावह त्रासदी के विभत्स रूप को अपनी रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान कर रहे थे।

प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं के माध्यम से एक अति विस्तृत संसार को रचकर हिन्दी साहित्य का जितना समृद्ध किया है उतना किसी अन्य लेखक ने नही किया, यह कहना अतिश्योक्ति न होगा। वैसे तो संख्या की दृष्टि से प्रचुर मात्रा में साहित्य रचने वाले हिन्दी में बहुत मिल जायेंगे परन्तु प्रेमचंद की रचनाओं जैसी इतिहास बद्ध गतिशीलता अन्यत्र कहीं दुर्लभ है। प्रेमचंद जब तक जिये देश के एक सक्रिय, कर्मठ तथा निष्ठावान नागरिक की तरह जिये प्रेमचंद की रचनाओं में चित्रित समाज अतीत का हिस्सा नहीं वरन् आज के युग की सबसे बड़ी सच्चाई है। स्वतन्त्रता के 61 वर्ष व्यतीत होने के पश्चात भी जनमानस चारों ओर से भिन्न–भिन्न प्रकार की गुलामी में जकड़ा हुआ है। शिक्षा व्यवस्था भ्रष्ट है, निर्धन बच्चें विद्यालयों में प्रवेश से वंचित है, न्यायालयों में धन की पूजा होती है, इन्साफ की बोली लगायी जाती है, सारा समाज बाजारवादी मानसिकता से ग्रसित है, बलात्कार, अन्याय और उत्पीड़न का चहुँ और बोल–बाला है, कानून के रक्षक ही भक्षक बनें हुए हैं, राम के रूप में रावण जगह–जगह आजादी से घूम रहे है। देश की बहुसंख्यक जनता भूख से पीड़ित है, अंग्रेजो द्वारा लगाया गया साम्प्रदायिक विद्वेष का वृक्ष आज भी हरा भरा है हिन्दू–मुसलमान आज भी आपस में जूझ रहें हैं। अछूत आज भी पीड़ित है बस उनके उत्पीड़न का स्वरूप बदल गया है। पढ़ लिखकर भी लोग मनोविकार की गुलामी कर रहे हैं आज भी वे जात–पात के बन्धनों से मुक्त नही हो पाये हैं। यह वहीं सामाजिक विकृतियाँ तथा समस्याएं है जिनको लेकर प्रेमचंद चिंतित थे और जिनको निराकरण के लिए वे समाज का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट करने हेतु उन्हें अपने कथा साहित्य में चित्रित किया इस दृष्टि से प्रेमचंद साहित्य आज पहले से अधिक सार्थक एवं प्रासांगिक है। प्रेमचंद भारत के जिस सुनहरे भविष्य का स्पप्न देखते थे उसे साकार करना जितना चुनौती पूर्ण कार्य उस समय था आज भी वह उतना ही चुनौती पूर्ण है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

सूची

प्रेमचंद साहित्य –(आधार ग्रन्थ)

1. 'वरदान'–हिन्दुस्तान प्रकाशन हाउस, बनारस संस्करण –1950
2. 'सेवासदन'–हिन्द पुस्तक एजेन्सी–कलकत्ता संस्करण–1993
3. 'प्रेमाश्रम'–हंस प्रकाशन इलाहाबाद–हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय–संस्करण –1997
4. 'प्रतिज्ञा'– सरस्वती प्रेस बनारस– संस्करण –1949
5. 'निर्मला'– सुमित्रा प्रकाशन इलाहाबाद संस्करण –2002
6. 'रंगभूमि'–प्रथम भाग–गंगा पुस्तक माला लखनऊ– संस्करण –1995 वि0
7. 'रंगभूमि'–द्वितीय भाग– गंगा पुस्तक माला लखनऊ– संस्करण –1996 वि0
8. 'कायाकल्प'– सरस्वती प्रेस बनारस– संस्करण– 1940
9. 'गबन'– सरस्वती प्रेस बनारस– संस्करण 1937
10. 'कर्मभूमि'–हंस प्रकाशन इलाहाबाद प्र0 संस्करण–मार्च 1994
11. 'गोदान'– सरस्वती प्रेस बनारस– संस्करण 1939
12. 'मंगलसूत्र'–हंस प्रकाशन इलाहाबाद वर्तमान संस्करण–1991
13. 'मानसरोवर'– भाग–1 सरस्वती प्रेस बनारस– संस्करण 1947
14. 'मानसरोवर'–भाग–2 सरस्वती प्रेस बनारस– संस्करण 1936
15. 'मानसरोवर'–भाग–3 सरस्वती प्रेस बनारस– संस्करण 1938
16. 'मानसरोवर'–भाग–6 सरस्वती प्रेस बनारस– संस्करण 1947
17. 'मानसरोवर'–भाग–8 सरस्वती प्रेस बनारस– संस्करण 1950
18. 'गल्पसमुच्चय'–सरस्वती प्रेस बनारस– संस्करण 1931
19. 'कफन' तथा अन्य रचनाएँ– सरस्वती प्रेस बनारस– संस्करण 1938
20. चिट्ठी पत्री–भाग–1, 2 हंस प्रकाशन इलाहाबाद–प्र0सं0 1962
21. विविध प्रसंग–भाग–1, 2, 3 संकलन अमृतराय हंस प्रकाशन इलाहाबाद–प्र0सं0 1962 द्वि0 स0 1976
22. मंगलाचरण–संकलन अमृतराय– हंस प्रकाशन इलाहाबाद–प्र0 संस्करण 1962
23. कुछ विचार–प्रेमचंद– सरस्वती प्रेस बनारस– प्र0 संस्करण 1939
24. साहित्य का उद्देश्य–प्रेमचंद– हंस प्रकाशन इलाहाबाद–नवीन संस्करण फरवरी 2009

सहायक सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

1.	ए अरविंदाक्षन	&	प्रेमचंद के आयाम अन्सारी रोड़ दरियागंज नई दिल्ली प्र0सं0 2006
2	अनिल गोयल डॉ0	]	हिन्दी कहानी में नारी की सामाजिक भूमिका आर्याना पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली।
3	अभिलाषदास	]	कबरी दर्शन प्रका0 पारख प्रकाशन कबीर संस्थान प्रीमतनगर, सुलेम सराय इलाहाबाद। पहली बार–वि0सं0 2039 सन् 1982ई0
4	आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी	]	सम्पत्ति शास्त्र शान्ति प्रकाशन पुराना बैहराना इलाहाबाद संस्करण 1994
5	अलका अग्रवाल, शिखा अग्रवाल	]	गांधी दर्शन विविध आयाम प्रका0 श्रीमती शशि जैन पोइन्टर पब्लिशर्स, व्यास बिल्डिंग, एस.एम.एस0 हाईवे जयपुर प्र0सं0 1999
6	अजमेर सिंह काजल ड़ॉ0	]	उपन्यासकार–राजेन्द्र यादव (समाजशास्त्रीय अध्ययन) प्रका0 श्री सोमनाथ ढल संजय प्रकाशन–एम0डी0 हाउस गली मुरारीलाल, अन्सारी रोड़, दरियागंज नई दिल्ली प्र0सं0 2002
7	अमृतलाल नागर	]	साहित्य और संस्कृति राजपाल एण्ड सन्स कश्मीरी गेट दिल्ली सं0 1986
8	आचार्य क्षिति मोहन शास्त्री	]	भारतवर्ष में जाति भेद प्रकाशक गिरिजा शंकर वर्मा अभिनव भारती ग्रन्थ माला प्र0सं0 1940

9	अग्रहायव तारायन्द	]	भारतीय स्वतंन्त्रता–आन्दोलन का इतिहास सूचना प्रकाश विभाग भारत सरकार प्र0सं0 1891, 1965 दि0 1903 अप्रैल 1932
10	अमृतराय	]	प्रेमचंद कलम का सिपाही हंस प्रकाशन इलाहाबाद सं0 1992
11	आशारानी ब्होश	]	नारी विद्रोह के भारतीय मंच नई दिल्ली प्र0सं0 1991
12	आशारानी ब्होश	]	नारी शोषण आइने आयाम नई दिल्ली प्र0सं0 1994
13	आशा चावला डॉ0	]	प्रेमचंद की सामाजिक चेतना हैदराबाद सन् 1985
14	ओम अवस्थी	]	प्रेमचंद के नारी पात्र प्र0सं0 1962
15	अमृतराय,	]	प्रेमचंद–स्मृति, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद
16	अमृतराय,	]	प्रेमचंद–स्मृति : स्नेह के फूल, सं0 1959 ई0 अमृतराय
17	इन्द्र विद्या वाचस्पति	]	भारतीय स्वाधीनता संग्राम का इतिहास प्रकाशक मार्तण्ड उपाध्याय मंत्री सस्ता साहित्य मंडल नई दिल्ली–पहलीबार 1960
18	ई0एम0एस0 नम्बद्रीपाद	]	गॉधी जी और उनका 'वाद' पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस प्रा0लि0 रानी झांसी रोड़, नई दिल्ली, हिन्दी संस्करण दिसम्बर–1960
19	इन्दनाथ मदान	]	प्रेमचंद चिन्तन और कला प्रका0 सरस्वती प्रेस बनारस
20	इन्द्रनाथ मदान डॉ0	]	प्रेमचंद एक विवेचन प्रकाशन राधाकृष्ण प्रका0 प्र0लि0 प्रथम संस्करण–1989

21 22	उषा मंत्री उर्मिला डॉ0	]]	हिन्दी उपन्यास में पारिवारिक सन्दर्भ नेशनल पब्लिशिंग हाउस दरियागंज नयी दिल्ली प्रथम सं0 1991 हरिनारायण आप्टे और प्रेमचंद के उपन्यासों का तुल्नात्मक अध्ययन दिल्ली प्र0सं0 1970
22	कृष्णदेव झारी डॉ0	]	उपन्यासकार प्रेमचंद और उनका गोदान, एक नया मूल्यांकन– प्र0सं0 मार्च 1965 भारतेन्दु भवन, चण्डीगढ़।
23	कमल किशोर डॉ0	]	प्रेमचंद अध्ययन की नयी दिशाए गोयनका प्रं0सं0–1981, 38 ईस्ट कृष्ण नगर, दिल्ली।
24	कृष्ण चन्द्र पाण्डे डॉ0	]	प्रेमचंद के जीवन दर्शन के विधायक तत्व प्र0सं0 1970 रचना प्रकाशन खुल्दाबाद, इलाहाबाद।
25	कलावती प्रकाश डॉ0	]	प्रेमचंद एवं समकालीन भारतीय उपन्यासकार प्र0सं0 1998 साहित्यागार चौड़ा रास्ता जयपुर।
26	कमलेश भारद्वाज	]	भारतीय संस्कृति के मूलआधार पोइन्टर पब्लिशर्स जयपुर (राजस्थान) प्र0सं0 2002
27	कालूराम शर्मा डा0 प्रकाश व्यास डॉ0	]	भारतीय संस्कृति का विकास सं0 1997 प्रकाशक पंचशील प्रकाशन फिल्म कालोनी, जयपुर।
28	कृष्ण देव डॉ0	]	उपन्यासकार प्रेमचंद और उनका गोदान एक नया मूल्यांकन प्रकाशक–भारतेन्दु भवन, चण्डीगढ़ प्रथम संस्करण मार्च 1965

29	कमल किशोर गोयनका	]	प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प–विधान सरस्वती प्रेस दिल्ली इलाहाबाद प्र0सं0 1974
30	कृष्णा नाग डॉ0	]	हिन्दी उपन्यास की शिल्प विधि का विकास प्रका0 लोक चेतना प्रकाशन लार्डगंज (कछियाना) जबलपुर प्र0सं0 1962
31	कुमारी नूरजहाँ डॉ0	]	कहानीकार प्रेमचंद प्रकाशक हिन्दी साहित्य भंडार 55 चौपरिया रोड़ लखनऊ प्र0सं0 1975ई0
32	कमलेश भारद्वाज	]	भारतीय संस्कृति के मूल आधार श्रीमती शशि जैन पोइन्टर पब्लिशर्स ब्याज बिल्डिंग जयपुर (राज0) प्र0सं0 2002
33	कुंवरपाल सिंह डॉ0	]	हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना दिल्ली प्र0सं0 1976
34	कलावती डॉ0	]	प्रेमचंद एवं समकालीन भारतीय उपन्यासकार प्रकाशन जयपुर 1998
35	कमलादेवी गर्ग	]	प्रेमचंद प्रतिभा प्र0सं0 1950
36	कमल किशोर गोयनका	]	प्रेमचंद और शतरंज के खिलाड़ी प्रका0 पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली प्र0सं0 1980
37	कमल किशोर गोयनका	]	प्रेमचंद कुछ संस्मण प्रेमचंद सं0 1980
38	कुवंर पाल सिंह डॉ0	]	प्रेमचंद एक और जनवादी साहित्य की परम्परा प्र0सं0 1980 सत्यसाची भाषा प्रका0 नई दिल्ली।
39	कोमल कोठारी विजयदानदथा	]	प्रेमचंद के पात्र अक्षर प्रकाशन प्रा0लि0 प्रथम सं0 1970

40	खेलचन्द्र आनन्द डॉ0		हिन्दी के श्रेष्ठ उपन्यासकार प्र0सं0—1978 सूर्य प्रकाशन नई सड़क दिल्ली।
41	गोपालजी पाण्डेय	]	हिन्दी उपन्यासों में मनोभावों का स्वरूप प्र0सं0 1999 सुलभ प्रकाशन लखनऊ।
42	गीतालाल,	]	प्रेमचंद का नारी चित्रण हिन्दी साहित्य संसार पटना प्र0सं0 जनवरी 1965
43	गोपाल राय प्रो0	]	उपन्यास की संरचना राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, इलाहाबाद पटना प्र0सं0 2006
44	गिरिधर प्रसाद शर्मा डॉ0	]	हिन्दी उपन्यासों का मनो विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रका0 इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन कृष्ण नगर दिल्ली सं0 1978
45	चण्डी प्रसाद बेनी, डॉ0		हिन्दी उपन्यास और समाजशास्त्री विवेचन प्रकाशन कानपुर सं0 1962
45	चन्द्रभानु मिश्र	]	प्रेमचंद की कहानी कला प्रभाकर प्रकाशक नत्हल प्रकाशन विद्या मन्दिर रानी कटरा, लखनऊ प्र0सं0 1984
46	जगदीश चन्द्र	]	निराला—काव्य में सांस्कृतिक चेतना प्र0सं0 1973 अभिनव प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली।
47	जगनारायण एम0ए0	]	उपन्यास के मूल्य तत्व प्रका0 श्री अजन्ता प्रेस लिमिटेड नया टोला पटना। सम्वत—2010
47	जगत नारायण हैकरवाल डॉ0	]	इलाहाबाद प्र0सं0 1962
48	जगदीश नारायण निगम डॉ0	]	भारतीय अर्थशास्त्र एवं आर्थिक विकास किताब महल, इलाहाबाद 1961।

49	जनेश्वर वर्मा डॉ0	]	प्रेमचंद एक मार्क्सवादी मूल्यांकन प्र0सं0 1986 प्रकाशक ग्रन्थम रामबाग कानपुर
50	डी0डी0 तिवारी डॉ0	]	हिन्दी उपन्यास स्वातंत्रय संघर्ष के विविध आयाम तक्षशिला प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली प्र0सं0 1985
51	जर्नादन प्रसाद झाद्विज	]	प्रेमचंद क उपन्यास झपरा सं0 1933
52	डा0 डी0सी0 मिश्रा	]	भारत का सा0आ0 एवं रा0 इतिहास कानपुर सं0 1993
53	पारसनाथ सिंह	:	प्रेमचंद कालीन उपन्यासों में ग्रामीण जीवन प्रकाशक–358 कटरा शेखर झांहौजकाजी दिल्ली। प्रथम संस्करण 1985
54	सम्पादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी	:	प्रेमचंद कीर्ति प्रकाशन, वेतियाहाता, गोरखपुर। प्र0सं0 1980
55	सं0 विजय गुप्त	:	प्रेमचंद और प्रगतिशील लेखक न्यू पंचशील होटल अम्बिकापुर। प्र0सं0–1980
56	डॉ0 बदरीप्रसाद	:	प्रगतिवादी हिन्दी उपन्यास ओम प्रकाशन आजदपुर दिल्ली।–प्र0सं0 1987
57	डॉ0 रामबक्ष	:	प्रेमचंद और भारतीय किसान वाणी प्रकाशन दिल्ली। प्र0सं0–1982
58	संपा0 दयानन्द पाण्डेय	:	प्रेमचंद व्यक्तित्व और रचना दृष्टि भावना प्रकाशन दिल्ली। प्र0सं0 1982
59	डॉ0 बच्चन सिंह	:	आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद। प्र0सं0 1978
60	डॉ0 बाल कृष्ण पाण्डेय	:	प्रेमचंद विचार धारा और साहित्य शिल्पी प्रकाशन मीरापुर इलाहाबाद। प्र0सं0–2003
61	नरेन्द्र मोहर	:	भारतीय संस्कृति प्रकाशन प्रभात प्रकाशन आसफ अली रोड़ नई दिल्ली। प्र0सं0 1999
62	रामधरी सिंह दिनकर	:	धर्मनैतिकता और विज्ञान उदयाचल प्रकाशन पटना। प्र0सं0 1959
63	बदाम सिंह रावत	:	प्रेमचंद का कथा संसार गिरनार प्रकाशन शिव सोसायटी, मेहसाना संस्करण–1980
64	शिवकुमार मिश्र	:	दर्शन साहित्य और समाज पीपुल्स लिटरेसी मटिया महल दिल्ली पृ0सं0 1981
65	रामदरश मिश्र	:	हिन्दी उपन्यास एक अन्यर्यात्रा राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली प्र0सं0

			1968
66	राजेश्वर सक्सेना	:	इतिहास विचार धारा और साहित्य कोणार्क प्रकाशसन दिल्ली प्र0सं0 1983।
67	डॉ0 राधाकृष्णन	:	भारतीय दर्शन–तीसरा सं0 1973 राज्यपाल एण्ड संस
68	डॉ0 वेदप्रकाश वर्मा	:	धर्मदर्शन की मूल समस्याएँ प्र0सं0 1991 द्वितीय 1995 पुनः 1996
69	संगम लाल पाण्डेय	:	भारतीय दर्शन की कहानी – रामनारायण लालब बेनी प्रसाद प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता इलाहाबाद। प्र0सं0 1964
70	डॉ0 रामानन्द तिवारी	:	भारतीय दर्शन की भूमिका शास्त्री प्र0सं0 अप्रैल 1958 विद्या भवन, चौड़ा रास्ता जयपुर।
71	पारस नाथ द्विवेदी	:	भारतीय दर्शन प्रकाशन श्री राम मेहरा कम्पनी आगरा। प्र0सं0 1973
72	डॉ0 भगीरथ मिश्र	:	काव्य शास्त्र षष्ठ सं0 1980 ई0 विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक वाराणसी।
73	डॉ0 राजेश्वर गुरू	:	प्रेमचंद एक अध्ययन (जीवन चिन्तन और कला) प्रकाशक मध्य प्रदेशीय प्रकाशक समित जुमेराती गेट भोपाल प्र0सं0 1958
74	ले0 शिवकुमार मिश्र	:	प्रेमचंद विरासत का सवाल पिपुल्स लिटरेसी मटिया महल दिल्ली प्र0 1981
75	सरोज गौण	:	प्रेमचंद की कहानियों में ग्राम्य जीवन का चित्रण करूण प्रकाशन शान्ताकारम सिविल लाइन्स सुलतानपुर प्र0सं0 1976
76	डॉ0 सुभद्रा	:	प्रेमचंद साहित्य में ग्राम्य जीवन, अलंका प्रकाशन, दिल्ली प्र0सं0 1972
77	संपादक सुरेश कुमार	:	प्रेमचंद और भारतीय साहित्य केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा प्र0सं0 1983
78	डॉ0 दिनेश प्रसाद मिश्र	:	प्रेमचंद विविध आयाम प्र0सं0 1983 अनुपम प्रकाशन पटना
79	डॉ0 दिनेश प्रसाद मिश्र	:	प्रेमचंद विविध आयाम प्र0सं0 1983 अनुपम प्रकाशन पटना
80	डॉ0 बैजनाथ प्रसाद	:	भगवती चरण वर्मा के उपन्यासो में युगचेतना शुक्ल–प्र0सं0 1977 प्रकाशन प्रेम प्रकाशन मन्दिर।
81	सम्पादक रामप्रसाद त्रिपाठी	:	हिन्दी विश्वकोष–भाग–6 नागरी मुद्रण वाराणसी प्र0सं0 1966

82	रामधरी सिंह दिनकर	:	संस्कृति के चार अध्याय प्रकाशक केदानाथ सिंह उदयाचल राष्ट्र कवि दिनकर पथ, राजेन्द्र नगर पटना। प्र0सं0 मार्च 1956 ई0दि0 1956ई0 पुनरावृत्ति 1990 ई0 जनवरी 193ई0 194, 1996
83	शिवदान सिंह चौहान	:	हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्षस्णजीत प्रिंटर्स पब्लिशर्स चांदनी चौक दिल्ली सं0 1958
84	डॉ0 सरोज प्रसाद	:	प्रेमचंद के उपन्यासों मे समसामयिक परिस्थितियों का प्रतिफलन–जीत मल्होत्रा रचना प्रकशसन–45–ए, खुल्दाबाद इलाहाबाद। प्र0सं0 1962
85	लेखक ताराचन्द	:	तृतीय खण्ड, भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास प्रकाशन विभाग सूचना और प्रकाशन मंत्रालय भारत सरकार प्र0सं0 फरवरी 1942
86	रजनीपामदत्त	:	आज का भारत दि मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड नई दिल्ली, बम्बई, कल्कत्ता मद्रास समस्त विश्व में सहयोगी कम्पनियॉ सं0प्र0 हिन्दी सं0 1977
87	संपा0 श्री दुलारे लाल भार्गव	:	भारतीय अर्थशास्त्र (प्रथम भाग)(माधुरी संपादक) गंगा पुस्तक माला कार्यालय लखनऊ सं0–1982
88	डॉ0 महेन्द्र भगनागर	:	समस्या मूलक उपन्यासकार प्रकाशक ओमप्रकाश बेरी हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी प्र0सं0 1957
89	शंकर सहाय सक्सेना	:	भारतीय ग्राम्य अर्थशास्त्र हिन्दी साहित्य सम्मेलन सम्वत् 2005
90	सुदर्शन कुमार कपूर	:	भारतीय कृषि अर्थ व्यवस्था प्रकाशक राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ आकादमी तिलक नगर जयपुर। प्र0सं0 1974

91.	रचना और राजनीति	:	प्रेमशंकर वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली प्र0सं0 1999
92.	भारतीय संस्कृति	:	देवराज प्रकाश शाखा, सूचना विभाग उ0प्र0 प्र0सं0 1960
93.	साहित्य और संस्कृति	:	देवेन्द्रमुनि शास्त्री भारतीय विद्या प्रकाशन वाराणसी प्र0सं0 1970
94.	प्रेमचंद उपन्यास सहित्य में सांस्कृति चेतना	:	नित्यानन्द पटेल प्रका0 लिपि प्रकाशन अन्सारी रोड़, दरियागंज नई दिल्ली प्र0सं0 1980
95.	प्रेमचंद, जीवन, कला, और कृतित्व	:	हंसराज रहबर प्रकाशक रामलालपुरी, संचालक आत्माराम एण्ड संस कश्मीरी गेट, दिल्ली–दूसरा सं0 1962
.		:	
97.	मध्यवर्गीय चेतना और हिन्दी उपन्यास	:	भूपसिंह भूपेन्द्र श्याम प्रकाशन फिल्म कालोनी जयपुर प्र0सं01987
98.	संस्कृति का दार्शनिक विवेचन	:	देवराज –प्रकाशन लखनऊ सं0 1957ई0
99.	हिन्दी उपन्यास सांस्कृतिक एवं मानववादी चेतना	:	डॉ0 सच्चिदानन्द राम प्रकाशक राजीव प्रकाशन आलोपीबाग इलाहाबाद प्र0सं0 1979
100.	साहित्य और संस्कृति	:	सम्पादक वासुदेव शरण अग्रवाल प्रका0 विश्व वि0 चौक वाराणसी प्र0सं0 1971
101	शिल्प और दर्शन	:	श्री सुमित्रानंदनपंत प्रका0 रामनारायण लाल बेनी माधव प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता इलाहाबाद प्र0सं0 1961
.		:	
103.	साहित्य और संस्कृति पर दार्शनिक चिंतन	:	सूर्यकान्त नागर–(लेखक की आजादी) लेख संग्रह तीसवॉ अंक–अगस्त 2005 भारतीय ज्ञानपीठ
.		:	
105.	संस्कृति एवं सभ्यता भारतीय दृष्टिकोण	:	बृज बिहारी निगम प्र0सं0 1987 स्मृति प्रकाशन, शहराराबाग, इलाहाबाद।
106.	साहित्य और संस्कृति	:	डॉ0 देवराज प्रकाशक नन्द किशोर एण्ड ब्रदर्स चौक वाराणसी सं0–1958
107	हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग	:	मंजुलता सिंह प्रका0 आर्यबुक डिपो नाईवाला करौलबाग, नई दिल्ली सं0–1971
108	डॉ0 रांगेय राघव के उपन्यास और युगचेतना	:	डॉ0 सुमन सिंह प्रका0 शांति प्रकाशन पुराना बैरहाना इलाहाबाद प्र0सं0 1999
109.	संस्कृति साहित्य का इतिहास	:	वाचस्पति गैरोला–चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी प्र0सं0 वि0 संबत्–2016
110.	हमारी सांस्कृतिक एकता	:	रामधरी सिंह दिनकर प्रकाशक श्री अजन्ता प्रेस लिमिटेड पटना

113	आयार्च हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में सांस्कृतिक बोध	:	संजीव भानावत पंचशील प्रकाशन प्र0सं01981
114	संस्कृति के चार अध्याय	:	रामधरी सिंह दिनकर प्रका0 राजपाल एण्ड संस कश्मीर गेट, दिल्ली प्र0सं0 1956
115.	भारतीय संस्कृति	:	नरेन्द्र मोहन प्रकाशन प्रभात प्रकाशन आसफ अलीरोड़ नई दिल्ली सं0 1999
117.	उपन्यासकार प्रेमचंद	:	सुभाषिनी शर्मा–नन्दन प्रकाशन रानी कटरा लखनऊ प्र0सं0 दिसम्बर 1975
118.	हिन्दी उपन्यास कला	:	डॉ0 प्रताप नारायण टंडन हिन्दी समिति सूचना विभाग उत्तर प्रदेश लखनऊ प्र0सं0 1965
119.	गोदान	:	संपा0 राजेश्वर गुरू–प्रका0 राधाकृष्ण प्रा0 लि0 अंसारी रोड़ दरियागंज नई दिल्ली तृतीय सं0 1990
120.	प्रेमचंद और उनका साहित्य	:	डॉ0 श्रीमती शीला गुप्त साहित्य भवन प्रा0 लिमिटेड इलाहाबाद प्र0सं0 1972
121.	उपन्यासकार प्रेमचंद समाजशास्त्रीय अध्ययन	:	डॉ0 राजकुमारी गुगलानी, मंथन पब्लिकेशन, रोहतक प्र0सं0 1983
122.	प्रेमचंद कालीन उपन्यासों में ग्रामीण जीवन	:	पारस नाथ सिंह कैपिटल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली प्र0सं0 1985
123.	प्रेमचंद का चिंतन अपनी जमीन	:	राममूर्ति त्रिपाठी लोक भारती प्रकाशन, महात्मा गॉधी मार्ग इलाहाबाद प्र0सं0 1991
124.	हिन्दी उपन्यासों मे वर्ग भावन	:	डॉ0 प्रताप नारायण टंउन प्रकाशन लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ प्र0सं0 1956
125.	प्रेमचंद–साहित्य का उद्देश्य	:	इलाहाबाद प्र0सं0 जुलाई 1956
126.	हिन्दी उपन्यास कला	:	डॉ0 प्रताप नारायण टंडन हिन्दी समिति सूचना विभाग उत्तर प्रदेश लखनऊ प्र0सं0 1965
127.	हिन्दी–उर्दू उपन्यास शिल्प बदलते परिप्रेक्ष्य	:	डॉ0 प्रेम भटनागर–प्रकाशन अर्चना प्रकाशन जयपुर मालवीय नगर, प्र0सं0 1996
128.	हिन्दी के लघु उपन्यासों का शिल्प	:	माधुरी खोसला–विजयन्त प्रका0 नई दिल्ली
131.	कथाकार प्रेमचंद की मूल संवेदनाएँ	:	डॉ0 शशि भूषण सिंहल
132.	प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प–विधान	:	कमल किशोर गोयन का सरस्वती प्रेस दिल्ली इलाहाबाद प्र0सं0 1974
134.	हिन्दी का गद्य साहित्य	:	रामचन्द्र तिवारी गोरखपुर प्रकाशन अप्रैल 1955
135.	प्रेमचंद की शैली	:	भोलानाथ तिवारी–प्रबन्ध सम्पादक शीला बन्धु प्रेमचंद अंक अप्रैल जून 1980
136.	प्रेमचंद कथा साहित्य समीक्षा और मूल्यांकन	:	डॉ0 धर्म कृष्ण त्रिपाठी प्रेम प्रकाशन मन्दिन चर्खेबालान दिल्ली प्र0सं0 1993
137.	रचनाकर्म	:	संपादक–डॉ0 माया प्रकाश पाण्डेय प्रकाशक शील प्रकाशन आनन्दद गुजरात–जुलाई सितम्बर 2004 अक्टूबर दि0 2004
139.	शिल्प–निरूपण	:	सुरेश चन्द गर्ग–सर्वोदय साहित्य प्रकाशन गोलधर वाराणसी नवम्बर–1962

'अन्य ग्रन्थ'

1.	A.N. Bardwaj	The Problems of Sheduled cast and Tribes I India. Delhi 1st Edition 1979
2.	A.R. Desai	Social Background of India Nationalism. Papular Book Depot Bombay 1959
3.	Humayun Kabir	The Indian Heritage. 2nd Edition 1960
4.	Jawahar Lal Nehru	The discovery of India. Signet Press Calcutta 1945
5.	Karan Devendra	Status and Position of Women In India. New Delhi 1985
6.	K.M. Paniker	hindu Society at Crossroad. Asia Publishing House Bombay 1956
7.	Lal Lajpat Rai	The Arua Samaj. Lahore 1932
8.	M.K. Gandhi	Hindu Swaraj or Indian Home Rule. Navjeevan Publishing House Ahmedabad 1958.

9.	M.K. Gandhi	Women and Social Injustice. Navjeevan Publishing House. 1958
10.	Nagendra (Ed.)	Premchand Bansal and Company Delhi 1st Edition 1981.
11.	R.H. Greaton	The English Middle Class
12.	R.C. Mazumdar	British Paramountry and India Renaissance Vol. IX.
13.	Rajni Palm Dutt	India Today. Peaples-Publishing House Bombay 1949
14.	S. Natrajan	A Century of Social Reforms In India. Asia Publishing House Bombay.

140.	कहानी–कला और प्रेमचंद	:	लेखक श्रीपति शर्मा प्रकाशक–विद्या मन्दिर बहमनाल काशी–प्रथम सं0 1948
.141	धर्मशास्त्र का इतिहास–खण्ड, प्र0 चतुर्थ	:	पाण्डुरंग–वामनकांणे, अनुवादक अर्जन चौबे कश्यप लखनऊ प्र0सं0 1964
142.	भारम का सामाजिक आर्थिक एवं राजनैतिक इतिहास	:	डॉ0 डी0सी0 मिश्रा प्रकाशक साहित्य रत्नालय गिलिस बाजार कानपुर सं0–1993
143.	प्रेमचंद और प्रगतिशील लेखन	:	सम्पादक विजय गुप्त, चित्रलेखा प्रकाशन सोहबतिया बाग इलाहाबाद प्रथम सं0 1980
144.	कथाकार प्रेमचंद विवेचन और मूल्यांकन	:	डॉ0 रामदरशमिश्र डा0 ज्ञान चन्द्र गुप्त राधा पब्लिकेशन असांरी रोड़ दरियागंज नई दिल्ली
145.	महिला विकास और सशक्तिकरण,	:	प्रज्ञा शर्मा, अविष्कार पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स–प्रथम सं0–2001
146.	भारतीय समाज में नारी	:	प्रज्ञा शर्मा–पोइन्टर पब्लिशर्स, व्यास बिल्डिंग एस0एम0एस0 हाइवे जयपुर (राज0)
147.	हिन्दू नारी कार्यशीलता के बदलते आयाम	:	डॉ0 श्रीमती प्रभावती जाड़िया आकांक्षा पब्लिकेशन्स बीन (म0प्र0)
148.	प्रेमचंद व्यक्तित्व और कृतित्व	:	शची रानी गुर्टू इण्डिया पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली बम्बई सं0 1955
149.	प्रेमचंद मूल्यांकन और मूल्यांकन	:	डॉ0 नत्थन सिंह, विभूति प्रकाशन के नये नवीन शाहदरा दिल्ली प्र0सं0 1982
150.	प्रेमचंद एक अध्ययन (जीवन, चिन्तन और कला)	:	राजेश्वर गुरू प्र0सं0 1958 जुमेराती गेट, भोपाल
151.	भारतीय साहित्य के निर्माता	:	प्रेमचंद–प्रकाशचन्द्र गुप्त दिल्ली
152.	प्रेमचंद के विविध आयाम	:	सम्पादक डॉ0 दिनेश प्रसाद सिंह अनुपम प्रकाश पटना प्र0सं0 1982 अनुपम प्र0 पटना
153.	हिन्दी साहित्य में चरण और चेतना	:	डॉ0 ज्ञान सिह रंजन डा0 वीणा मान प्र0सं0 1787 प्रेम प्रका0 मन्दिर बल्लीमारान दिल्ली।
.152	प्रेमचंद की कहानियों का महत्व (स0) मार्कण्डेय	:	डॉ0 सत्य प्रकाश मिश्र प्रका0 सुमित प्रकाशन इलाहाबाद प्र0सं0 1998
155.	उपन्यासकार प्रेमचंद	:	ले0 सुभाषिनी शर्मा प्र0सं0 दि0 1975 नन्दन प्रकाशन लखनऊ
156.	प्रेमचंद के उपन्यास साहित्य मे सांस्कृति चेतना	:	नित्यानन्द पटेल प्र0सं0 1980 अन्सारी रोड़ दरियागंज नई दिल्ली।
157.	प्रेमचंद : कहानीकार	:	सुरेन्द्र आनन्द प्र0सं0 1964 आनन्द प्रका0 कृष्णनगर, इलाहाबाद

पत्र एवं पत्रिकाए

1— मासिक, हंस प्रेमचंद स्मृति अंक, मई 1937

2—हस—माच 1933

3—हंस—नवम्बर 1935

4—हंस—अगस्त 1933

5—(त्रैमासिक) हिन्दी अनुशीलन, जून 2004

6—(मासिक) सुमन लिपी—फरवरी और मार्च 1994

7—वागर्थ (मासिक) प्रेमचंद जयन्ती—जुलाई—2004

8—कथाक्रम (मासिक) दलित विशेषाँक नवम्बर 2000

9—आलोचना (त्रैमासिक) अक्टूबर, 1979 से दिसम्बर 1980

10—पत्रिका समालोचक, जनवरी 1925

11—त्रैमासिक हिन्दुस्तानी, अक्टूबर — दिसम्बर 2005

12—(मासिक) आजकल, फरवरी 2007

13—विशाल भारत, दिसम्बर 1929

14—दैनिकपत्र अमरउजाला, 19 अगस्त 2006

15—समाचार पत्र हिन्दुस्तान—8 फरवरी 2005

16—हिन्दुस्तान अगस्त—2005

17.	साहित्य भारती जुलाई सितम्बर 2003	: डा0 सच्चिदानन्द पाठक—हिन्दी संस्थान लखनऊ
18	कल्पना जनवरी 1970 वर्ष 21, अंक 1—212	
19	साक्षात्कार मई, 2005	
20	रामान्जयन संदेश वर्ष 18, अंक 69 अप्रैल—मई, जून—2005 अंतरंग	: नवल जायसवाल लोहिया अध्ययन केन्द्र नागपुर का प्रकाशन
21.	सत् साहित्यिक शोध मासिकी साहित्य	सागर—अक्टूबर 2005
22	मंगल प्रभात वर्ष 48, अंक, 10, 4, 6	अक्टूबर 2005
23	रचनाकर्म	: संपादक—डॉ0 माया प्रकाश पाण्डेय प्रकाशक शील प्रकाशन आनन्नद गुजरात—जुलाई सितम्बर 2004 अक्टूबर दि0 2004
24	आलोचना (त्रैमासिक) जनवरी से जून 1983	: सं0 नामवर सिंह—सं0 नन्द किशोर नवल प्र0 शीला सन्धु
25	शाह और संवाय	: भारत की सम्पत्ति और उसकी कार्योपयोगी क्षमता

26 कँवल भारती–प्रतिक्रॉति का इतिहास

27 रजनी पामदत्त-- : अनुवाद ओम प्रकाश सिंघल–भारत वर्तमान औरभावी

28 डॉ0 पुरुषोत्तम सत्य प्रेमी, सुमन लिपि मासिक फरवरी मार्च 1994

29 अवध अर्चना अगस्त–अक्टूबर 2003 सं0 विजयरंजन

30 युद्धरत आम आदमी जुलाई सितम्बर 1995 हजारीबाग।

31 राष्ट्रभाषा संदेश पाक्षिक मुखपत्र विभूति मिश्र 30 सितम्बर 2005

32 दैनिक जागरण 29 जुलाई 2005

33 प्रेमचंद परिचर्चा कल्याण मललदि लोक भारती प्रका0 इलाहाबाद प्रेमचंद शताब्दी 1979–80

34 विवरण–पत्रिका वार्षिक अक्टूबर 2005 हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद

35 हिन्दी अनुशीलन भारतीय हिन्दी परिषद का त्रैमासिक सं0 डॉ0 रामकमल राय जून 2004

36 वीणा अगस्त 2005 सम्पादक डॉ0 श्याम सुन्दर लाल–रवीनन्द्रनाथ टैगोर मार्ग–इन्दौर

37 संस्कृति, राष्ट्र और संस्कृति प्रदूषण–15716, प्रो0 महेन्द्र रायजादा

38 धर्म का स्वरूप तथा इसकी उपादेयता–डा0 महेन्द्र चन्द्र शर्मा

39 संम्पादक–मुरलीधर पाण्डेय सम्पादकीय–पोस्ट बाक्स मुम्बइ

40 संयोग साहित्य–त्रैमासिक–हिन्दी डाइजेस्ट, वर्ष 6 अंक 314 जुलाई–दिसम्बर–2003